

# भुशुण्ड रामायण

पूर्व खण्ड

संपादक

डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह

एम०ए०, पी-एच०डी०, डी० लिट०

आचार्य तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

५२६

२०

३१५

सह-संपादक

पं० जनार्दन शास्त्री पाण्डेय

एम०ए०, साहित्याचार्य

सम्पूर्णनन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

प्राक्कथन ( अंग्रेजी )

डॉ० वी० राघवन्

अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय



विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

प्रकाशक  
विश्वविद्यालय प्रकाशन  
चौक, वाराणसी-१

© डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह

Rs. 100-00

प्रथम संस्करण : १९७५ ई०

मुद्रक  
विश्वनाथ भार्गव  
मनोहर प्रेस, वाराणसी-१

## विषय-सूची

### विषय

	पृष्ठ
(क) Introduction—Dr. V. Raghavan	१-२१
(ख) प्रस्तावना	१-६२
(ग) कथा-त्रस्तु	१-३८
१. राम-स्तुति	१
२. राम के परात्पर-स्वरूप-विषयक देवताओं की जिजासा	२
३. राम का स्वरूप-निरूपण	४
४. भुशुण्डि चरित	६
५. गरुड़ द्वारा राम का साक्षात्कार-लाभ	९
६. हनुमान का राम-दर्शन	१२
७. हनुमान का राम-स्तवन	१७
८. आदिरामायण कथावतारण	२१
९. राम-माहात्म्य	२२
१०. राम-जन्म	२५
११. वेदों द्वारा राम-स्तुति	३३
१२. राम जन्मोत्सव	३४
१३. नामकरण संस्कार तथा राम सहस्रनाम वर्णन	३८
१४. सीता सहस्रनाम	४५
१५. लक्ष्मण सहस्रनाम	५३
१६. भरत-शत्रुघ्न का नामकरण एवं चारों भाइयों की बाल-लीला	६०
१७. नारद से रामजन्म की सूचना पाकर उन्हें मारने के लिए रावण द्वारा राक्षसों की नियुक्ति : उनके भय से दशरथ का बालकों को सरयू पार गोप-प्रदेश में भेजना	६३
१८. राम का बालचरित	६८
१९. कौशल्या का विश्वरूप दर्शन	७२
२०. सुनीथ का उद्घार	७५
२१. वत्सचारण-लीला	८०
२२. इन्द्रमान भंग	८७
२३. गोपियों को वरदान	९२
२४. राम की विहार-लीला	९७
२५. राम की रासलीला	१०३
२६. दण्डकारण्यवासी मुनियों द्वारा रामस्तुति	१६५
२७. जल-विहार	१६९
२८. वन-विहार	१७४

## विषय

	पृष्ठ
२९. राम के अद्भुत चरित, गोपियों का विस्मय और सीता द्वारा समाधान	१७७
३०. राम का भाइयों सहित गोप-प्रदेश से अयोध्या के लिए प्रस्थान : गोपियों का विलाप एवं प्रवोधन	१८४
३१. शिव का राम की रसमयी लीलाओं के दर्शनार्थ अयोध्या आगमन : गोपियों को शाप	१९८
३२. रामगीता महोपाख्यान	२०१
३३. गोप तथा गोपियों द्वारा राम-स्तुति	२६६
३४. राम का युवराजपद प्राप्ति	२७२
३५. राम द्वारा सरयू स्नान करते समय लुप्त दशरथ का वरुणलोक से आनयन	२७६
३६. छायासुर वध	२७८
३७. वसन्तोत्सव	२८१
३८. सीता का पक्षी द्वारा राम के पास अपना चित्र भेजना	२८४
३९. राम के दूतरूप में राजपुत्रों का व्रज आगमन	२८९
४०. विरह-विह्वल गोपियों का राजपुत्रों से संवाद	२९६
४१. राजपुत्रों का अयोध्या प्रत्यागमन	३००
४२. राजपुत्रों को राम का उपदेश	३०२
४३. विश्वामित्र का अयोध्या आगमन और राम-लक्ष्मण का उनके साथ प्रस्थान	३०८
४४. विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा	३११
४५. विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का मिथिलागमन	३१५
४६. धनुभाँग	३२०
४७. परशुराम से भेंट	३२४
४८. राम-विवाह	३३९
४९. रसालवन की शापित वल्लरियों का उद्धार	३४१
५०. रामनाम का महत्व एवं उसके कीर्तन का फल	३६०
५१. श्रीराम माहात्म्य	३६३
५२. शेष की पराभक्तिपूर्ण राम-स्तुति	३६५
५३. शेष की वर-प्राप्ति	३६८
५४. राम यीवराज्य-प्रतिष्ठा	३७०
५५. दशरथ-अश्वमेध में राम का वैकुण्ठ से अग्नि लाना	३७५
५६. राम का ऐश्वर्यगुण व्याख्यान	३७८
५७. राम का वीर्यगुण व्याख्यान	३८८
५८. राम का यशोगुण व्याख्यान	३९४
५९. राम का श्रीगुण व्याख्यान	४०३
६०. राम का ज्ञानगुण व्याख्यान	४०९
६१. राम का वैराग्यगुण व्याख्यान ( सीता वनवास )	४१९

विषय	पृष्ठ
६२. द्विज गवानयन	४३९
६३. मातुलोद्धार	४५७
६४. दशरथ की तीर्थयात्रा ( अवधमंडल तथा मगध के तीर्थ, उनका माहात्म्य )	४७५
६५. दशरथ की तीर्थयात्रा ( सरयू पार गोप-प्रदेश में राम की बाल-लीला के पुण्यस्थल )	४८७
६६. दशरथ की तीर्थयात्रा ( नैमित्तिक विषय, प्रयाग, पुष्कर, गंगासागर, श्रुंगवरेपुर, हरिद्वार, गलता, महाकालेश्वर, अवन्ती, नर्मदा, सहस्रधारा, प्रभास, द्वारका आदि )	४९५
६७. दशरथ की तीर्थयात्रा ( उत्तराखण्ड के तीर्थ—काश्मीर-मंडल, बदरिकाश्रम, मानसरोवर, केदार, कैलाश, विष्णुपदी, यमुनोत्री आदि )	५२०
६८. दशरथ की तीर्थयात्रा ( ब्रजप्रदेश के तीर्थ )	५२९
६९. दशरथ की तीर्थयात्रा ( यमुनोत्पत्ति )	५६२
७०. दशरथ की तीर्थयात्रा ( कैकेयी सहित दशरथ का ब्रजागमन )	५८९
७१. दशरथ की तीर्थयात्रा ( डाकिनी वृत्त )	६२१
७२. दशरथ की तीर्थयात्रा ( आदि ब्रजभ्रमण—वन, कुंज, गोवर्धन, ज्योतिर्लिङ्-गेश्वर आदि का दर्शन )	६२३
७३. दशरथ की तीर्थयात्रा ( ब्रजप्रदेश में राम की गोचारण-लीला का श्रवण )	६२९
७४. दशरथ की तीर्थयात्रा ( ब्रज में राम के बाल-लीला स्थलों का दर्शन )	६५२
७५. दशरथ की तीर्थयात्रा ( कालियदमन-लीला श्रवण )	६७२
७६. दशरथ की तीर्थयात्रा ( ब्रज के गोचारण-स्थलों तथा मुनि आश्रमों का दर्शन )	६७६
७७. दशरथ की तीर्थयात्रा ( गोधन पूजा )	६८७
७८. दशरथ की तीर्थयात्रा ( सुकंठ द्वारा राम के कैशोर चरित का वर्णन )	६९६
७९. दशरथ की तीर्थयात्रा ( सखियों के साथ राम की माधुर्य-लीला )	७०७
८०. दशरथ की तीर्थयात्रा ( राम का कुंजभवन में रहस्यपूर्ण परिणय )	७१६
८१. दशरथ की तीर्थयात्रा ( पराशक्ति सहजा का चरित्र-श्रवण—शिव द्वारा सहजा-स्तुति )	७२५
८२. दशरथ की तीर्थयात्रा ( सहजा-चरित )	७४५
८३. दशरथ की तीर्थयात्रा ( सहजा-राम केलि )	७५५
८४. दशरथ की तीर्थयात्रा ( सहजा के साथ राम की रासलीला )	७६५
८५. दशरथ की तीर्थयात्रा ( चीरहरण लीला )	७७५
८६. दशरथ की तीर्थयात्रा ( महारास )	७८२
८७. दशरथ तीर्थयात्रा ( उपासना, ज्ञान, लीलादि तत्त्वों का निरूपण )	७९१
८८. दशरथ तीर्थयात्रा ( सहजोत्पत्ति तथा लीलाधाम माहात्म्य )	८११
८९. दशरथ की तीर्थयात्रा ( राम की ब्रजांगनाओं के साथ क्रीड़ा )	८१८
९०. दशरथ की तीर्थयात्रा ( राम की रहस्य-लीला )	८२४

## विषय

पृष्ठ

११. दशरथ की तीर्थयात्रा ( मिथिलावासी ब्राह्मण मूरिशर्मा और उमकी पुत्री चन्द्रावती की कथा )	८२०
१२. दशरथ तीर्थयात्रा ( रावण द्वारा भेजे गये राक्षसों का वध )	८३०
१३. दशरथ तीर्थयात्रा ( राम की द्वादशवर्षीय आदि ब्रजलीला का सुन्दरित तथा सुकंद्र द्वारा वर्णन )	८४६
१४. दशरथ तीर्थयात्रा ( दशरथ का आदि ब्रज में राम के विहार, रास, रति, दानलीला, मानलीला, संकेतादि स्थलों तथा कुंजों का दर्शन, ब्रज से नैमिप, वाराणसी, गया, महेन्द्राचल, श्रीपर्वत, श्रीरंगम्, वैकटगिरि, काँची, रामेश्वर, कन्याकुमारी, अमरकंटक, द्वारका, प्रभासादि तीर्थों से होते हुए गंधमादन पर्वत पर गमन )	८५४
१५. दशरथ तीर्थयात्रा ( विशालाक्षी उपाख्यान )	८६७
१६. दशरथ तीर्थयात्रा ( हिमालयस्थ तीर्थों—कूपचिल, नेपाल तथा मोरंग का दर्शन, कामाक्षा होते हुए मिथिला गमन और जनक द्वारा आतिथ्य )	९००
१७. दशरथ तीर्थयात्रा ( सहजा-पूजा-विधान )	९१२
१८. दशरथ तीर्थयात्रा ( शुकदेव के पथ-प्रदर्शन में मथुरा-मण्डल के तीर्थों का दर्शन )	९३४
१९. दशरथ तीर्थयात्रा ( दशरथ का मुनियों के साथ दण्डकक्षेत्र होते हुए अयोध्या आगमन )	९५६
२००. दशरथ की तीर्थयात्रा ( अयोध्या में ऋषि-आश्रमों की स्थापना )	९६६
२०१. प्रमोदवनवास महिमा	९७३

## शुद्धि पट्टिका

पृ०	इलो०	अशुद्धि:	शुद्धि:
३२	५७	भवनो परात्मा	भवनः परात्मा
२९९	२	दृग्स्त्रणि	दृग्श्रूणि
३००	१४	राघवेन्द्र	राघवेन्द्र
३३४	३२	पृथिवीप्येषा	पृथिवीहोषा
३३५	५१	सुद्धरम्	सुदुर्धरम्
३९९	पृष्ठ शीर्षक	चतुवति	चतुर्वति
४१८	कॉलोफन	नामव्याख्यानं	ज्ञान-व्याख्यानम्
४८१	७४	अभ्यासे	अभ्याज्ञे
६१०	२७१	समुभिताः	समुत्भिताः
६१२	३०३-४	अनृता पिहिताः	अनृतापिहिताः
६१३	३०९	पुरापुंसा	पुरा पुंसा
६१३	३१४	वहुस्यां	वहु स्यां
६१५	३३५	कालेऽपि	कालोऽपि
६२०	४०७	विहाय	विहार
६५५	४७	सप्तसदनं	संपत्सदनं
६५५	४७	सदारमनिकेतनम्	सदारामनिकेतनं
८४८	२१	भूरणि	भूरीणि
८५४	११०	नैमित्तिज्ञी	नैमित्तिकी
८६५	१२९	-न्नमुत्तम	-न्नमुत्तमम्
८८०	२३	तंधातु	तं धातु
८८०	२५	-पुलकाट्य	पुलकाढ्य



## English Introduction

In connection with my study of the *Rāmāyaṇa*-versions in India and Greater India, I had long been after the *Bhuśundi Rāmāyaṇa* and I was glad to know some time back from Sri.P.D. Modi of Vishwavidyalaya Prakashan, Varanasi, that he was bringing out an edition of this text by Dr. Bhagavati Prasad Singh, Head of the Hindi Department of the Gorakhpur University. I am glad to have this opportunity of writing an Introduction in English to this publication of the first Book of the *Bhuśundi Rāmāyaṇa*.

I came across, during my work on the *New Catalogus Catalogorum*, this work with a variety of intriguing names and noted some data on it under the titles *Ādi-Rāmāyaṇa* ( NCC. I. Revised edn. p. 22 ) and Kāka Bhuśundi ( *Ibid.* III. p. 296 ). MSS. of the text show other titles also, *Bṛhad-Rāmāyaṇa* and *Mahā-Rāmāyaṇa*.

There is a text called *Citrakūṭamāhātmya* in 16 chapters in which also Kāka Bhuśundi appears; it deals with the places in and around Mt. Citrakūṭa sanctified by Rāma's association; actually a few sacred places in Deccan and South India are also included here. From the analysis, descriptions and colophons of its mss.,<sup>1</sup> we find that it is in three dialogue-frames, Atri-Bharata, Pārvatī-Śiva and Bhuśundi-Śāṇḍilya; Bhuśundi figures as the speaker and although the name Ādi-Rāmāyaṇa occurs among the titles of the text, it would appear to be a text not forming part of our present *Bhuśundi Rāmāyaṇa* spoken by Brahmā to Bhuśundi.

There are numerous variations on the Rāma-story in the Rāmāyaṇas in the regional languages, but there are such variations in Sanskrit sources themselves. These latter fall into two classes, the Sister Epic and the Purāṇas<sup>2</sup> on the one hand, and on the other texts which call themselves *Rāmāyaṇas*, and which, alongside of the work of Vālmīki, claim to be either Vālmīki's own work or of others like Brahmā. The better known among these other *Rāmāyaṇas* in Sanskrit are the *Adbhuta*, the *Ānanda* and the *Adhyātma Rāmāyaṇas*;<sup>3</sup> but there are also others not known even so much and the *Bhuśundi Rāmāyaṇa* is one such.

1. IO. 3704. RASB.V. 3208, Hpr. II. 64

2. See my 'The Greater Rāmāyaṇa' All-India Kasiṭaja Trust, Varanasi, 1973.

3. On these I have delivered recently some lectures in the University of Bombay.

To understand the variations that are found in Rāmāyanas in the Indian regional languages as well as in versions in Greater India,<sup>1</sup> it is necessary to canvas the material in all the versions in Sanskrit. The *Bhuśundi Rāmāyaṇa* is of interest in this respect as the name of Bhuśundi appears in several places in Sanskrit literature, and above all, the *Rāmacaritamānasa* of Tulasīdas was influenced by the *Bhuśundi Rāmāyaṇa*. It appears from Tulasī's words in the beginning that he was drawing upon Kāka Bhuśundi's version. To Tulasī, Bhuśundi was a well-established 'Rāma-bhakta' and he refers to Rāma as 'Bhuśundi mana mānasa hamsa !' (Book I) and to Kāka Bhuśundi as "most proficient in the path of Rāmabhakti"—'Rāma-bhakti patha parama pravīṇa' (Book VI) and one eternally engaged in reciting the story of Rāma. The framework of the narration of Rāma-story and Rāma-devotion as given by Kāka Bhuśundi to Garuḍa and the story that Kāka Bhuśundi was a sage cursed by sage Lomaśa to become a Crow because of his importunate questionings on doctrinal matters, are all to be found in the latter part of the *Uttarakāṇḍa* of the *Rāmacaritamānasa*.

In the beginning of the present text of the *Bhuśundi Rāmāyaṇa*, which is given as the narration of Brahmā, Bhuśundi's story occurs first (ch.4). Bhuśunda was born of Sūrya and Kālakanṭakī, the terrible sister of Kāla; he took the form of a ferocious Crow, vanquished the mount of Viṣṇu, Garuḍa. He was becoming a menace to the world of the Gods and they represented the danger from him to Brahmā. Brahmā advised Bhuśunda that it was unbecoming of him to indulge like that in violence and spoke to him about the greatness of Rāma and devotion to Rāma. In the course of this instruction, Brahmā mentions what Garuḍa was taught on the same subject by Hanumān and exhorts Bhuśunda to cultivate devotion to Rāma<sup>2</sup>. Then on the request of the Bird, Brahmā proceeds to narrate the story of Rāma.

Because of this, this narrative is called *Brahmā-Bhuśundi-samvāda* and *Brahma-Rāmāyāṇa* and *Ādi-Rāmāyaṇa*.

The work is the product of the age in which the doctrine of Bhakti on one hand and the cult of Rāma-bhakti on the other were at their

- 
1. I have dealt with these in my 'Rāmāyaṇa in Greater India', South Gujarat University, Surat, 1975.
  2. In book VI. 1 of the *Yogavāsiṣṭha*, Chs. 14–26, a totally different story of Bhuśunda is given. Alambusā, one of the members of the Māṭṛ- gaṇa group attending upon Śiva has a birth to twenty one Crows, the Chief of which is Bhuśunda. Bhuśunda lives an exemplary saintly life in a corner of Mt. Meru and in answer to Vasiṣṭha's questions, gives an exposition of spiritual life and *sādhana*.

peak in the North, especially in the area centering round Banaras. Whatever had come to be associated with the highly developed and popular form of Kṛṣṇa-worship, came to be extended to Rāma also. In fact, the whole ideology and episodes of Kṛṣṇa appear duplicated in the present version of the Rāmāyaṇa, which may therefore be legitimately called a *Rāma-Bhāgavata*.

Rāma is the full and Supreme Being and it is of Rāma that Bala-Rāma and Kṛṣṇa are partial manifestations. Using the very statement in the *Bhāgavata*,

एते त्वंशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् । I. 3.28

our text says :

रामस्य बलकृष्णाद्याः सर्वेऽप्यन्शाः सनातनाः । I.vi. 32

यस्यांशा मत्स्यकूर्मच्चाः बलकृष्णादयस्तथा । ix. 8

एते चांशकलाश्चैव रामस्तु भगवान् स्वयम् । ix. 18

न रामात्परतस्तत्वं वेदेरपि निचीयते । ix. 19

परं ब्रह्म स्वयं रामः सञ्चिदानन्दविग्रहः । ix. 23

बलकृष्णादयः सर्वेऽप्यवतारपदं गताः ।

अवतारी स्वयं रामः—॥ ix.28

Rāma is the 'Ādi-Nārāyaṇa' (vi.22)

This Supreme Being called Rāma has two forms, the Supreme one abiding in His own place called *Sītāloka* and the other one abiding in *Cilloka*, otherwise called Ayodhyā.

सीतालोकं परं स्थानं चिन्मयानन्दलक्षणम् ।

कोसलाख्यं पुरं नित्यं चिल्लोक इति कीर्तिम् ॥

Sītā is His natural 'Śakti', His bliss-aspect, Sahajānandini; and Rādhā, Rukmini etc. are only her other forms.

या ते शक्तिः सहजानन्दनीयं

सीतेति नाम्नी जगतां शोकहन्त्री ।

तस्या अंशा एव ते सत्यभासा-

राधा-रुक्मिण्यादयः कृष्णदाराः ॥ vi. 6.

The two, Rāma and Sītā, constitute but one entity.

रामस्य चापि सीतायाः मिथस्तादात्म्यसूचकम् ।

यथा रामस्तथा सीता तथा श्रीसहजा भता ॥ vii. 26-7.

The next stage in this *Rāma-māhātmya* is the assimilation of the personality of Rāma completely to that of Kṛṣṇa, particularly as a *Rasika*, as the embodiment of Bliss and the object of Supreme enjoyment for all devotees. vi. 12 says :

नमस्ते रसिकेन्द्राय शृङ्गाररसभूतये ।

For the delectation of the devotees, Rāma puts forth many *lilās*:

रसास्वादाय साधूनां लीलाया राघवस्य च । vii.21.

The next step in this process of assimilation to the Kṛṣṇa-ideology is the equation of the river Sarayū with Yamunā and the conception of a parallel to the *Bṛndāvana*, the *Pramodavana* on the banks of the Sarayū where Rāma is said to be in eternal sport.

प्रमोदवनमध्यस्थां कोसलां सरयूं तथा । vi.27

He is sporting here from under an Aśoka tree, in the company of His Sakhī, Sahajānandinī-Sītā and myriad other women.

प्रमोदविपिने स्थित्वा संप्रयुक्तस्तदाज्ञया ।

तदंशभूता अन्याश्च रामाः संमोदयिष्यति ॥ ix. 5-6

The *Sītā-loka* where His higher form abides is called *Sītā-Vaikuṇṭha* and the *Pramodavana* on the Sarayū is called *Rāma-Vaikuṇṭha*.

तत्परस्तस्य वै रूपे सीतावैकुण्ठसंज्ञकम् ।

रामवैकुण्ठसंज्ञं तु प्रमोदवनपूदाहृतम् ॥ ix. 26.

With whom is Rāma in eternal sport here? And what is the sport He is enjoying? The sport is *Rāsa*-dance and those that are in this eternal *Rāsa-lilā* with Him, besides His primary Śakti Sahajānandinī (Sītā) are, as in the Kṛṣṇa-manifestation, Gopīs or Ābhīra or cowherd women. This leads us on to the complete 'bhāgavatisation' of the *Rāmāyaṇa*. The *Bhāgavata* is not only closely followed but its motifs on the one hand and the expressions on the other are reproduced:

1. As the incarnation of Rāma is narrated in Ch. x here, the description of Kṛṣṇa's Avatāra in the *Bhāgavata* X-i.2-4 is kept by the author in his mind. x.4 here is a close echo of *Bhāgavata* X.i.3.9,10,12.

2. As Rāma manifests Himself Daśaratha and Kauśalyā sing his praise ( x. 8-28 ) in terms of the hymns of the Gods and of Vāsudeva and Devakī in the *Bhāg.*, X-i. 2-3. Many phrases and words here in the two works are close to each other. Kṛṣṇa's reply to Vāsudeva and Devakī in *Bhāgavata* X-i. 3-32-45 is embodied here in Kauśalyā's address to Rāma x.29 ff.

3. This is followed by a hymn to Rāma by the *Śruti*s ( Vedas ) ( xi.1-3 ) which is a brief imitation of the elaborate and tough *Śruti-Gītā* of the *Bhāgavata*. (X. 87).

4. The Upajāti and Anuṣṭubh verses which open Ch. xii and describe the auspicious circumstances attending Rāma's birth cannot but remind one of the verses describing the similar situation in *Bhāg.* X-i.3.

5. In Ch. xvii Nārada takes the trouble of going to Laṅkā and appraising Rāvaṇa of the birth of Rāma who is to kill him according to the divine plan. Rāvaṇa immediately orders his emissaries to go out and terrorise the Gods and the pious men. Daśaratha becomes afraid and sends his three queens and their four sons to the other banks of Sarayū and hides them in the hamlets of cowherds ( xvii. 22ff ). The place is called here too *Vraja* ( xix. 4 ). The counterparts of Nandagopa and Yaśodā are the chief of cowherds ( Gavendra ) called Sukhita and Maingalyā.

Rāvaṇa like Kāṁsa, keeps sending demons of different forms to do away with Rāma; and surprisingly the same train of demons come, do the same things as in the *Bhāgavata*, and get killed at Rāma's hands: *Pūtanā*, ( xvii. 24–45, the ch. itself being called *Pūtanā-vadha* ), a demon who enters Rāma's bedstead ( xviii. 2–6 ), a hurricane demon ( *Vātyāsura*, xviii. 7ff. ) and so on.

6. As the place where Rāma is kept is also a *Vraja*, like that of Kṛṣṇa, Rāma also is described as playing with the cowherd lasses, *Gopīs*, and indulging in pranks like stealing curd and butter, in the manner of Kṛṣṇa. xix. 9. The well-known verse on Kṛṣṇa कस्तूरीतिलकं etc. which is found in the *Kṛṣṇakarnamṛta* ( II. 109 ) is given here in two verses in a shorter metre :

कस्तूरीतिलकविराजिभालदेशो  
मुक्तास्तड्मणिगलचारुकण्ठहारः ।  
नासाग्रे पृथगजमौक्तिकं दधानो  
बिभ्राणः करकमलेन मञ्जुवेणुम् ॥  
चूडालः करयुगहेमकञ्जणश्रीः  
श्रीखण्डद्रवमकरीविरोचिगात्रः ।  
गोपालीमनसि विवर्धयन् मनोजं  
कुर्वाणो दधिनवनीतचौर्यलीलाम् ॥ xix. 8-9

In these and other terms the *Gopīs* complain about the pranks of Rāma and Lakṣmaṇa.

7. Instead of the mud that Kṛṣṇa is alleged to have eaten, it is complained here that Rāma ate Badarī fruits, and when his mother asked him about it, he opened his mouth and the mother saw within her little son's mouth the whole universe. ( xviii. 19–29 ).

8. Ch.xx. The breaking of the pots of milk, butter and curd, Rāma being bound by the foster-mother by a rope which is always insufficient in length, his moving about dragging the tree to which he was tied, all of which are after the episode of *Dāmodara* and *Yamalārjuna-*

*bhañjana* of Kṛṣṇa. The tree that fell assumed the original form of the Brahman Sunītha who had been cursed to become a tree for holding Jñāna to be higher than *Bhakti*.

9. Corresponding to the Indra-festival, its prohibition by Kṛṣṇa and Kṛṣṇa's promulgation of the worship of Govardhana and Indra flooding the Vraja with rains, we have here the episode of a Vaiṣṇava-yāga started by Daśaratha and his queens, and Indra pouring down rains to spoil it. (Ch. xxii). Instead of holding up a mountain as Kṛṣṇa did, Rāma held up his huge umbrella and protected the whole Vraja from the rains. Parallel to the *Govindapaṭi-abhiṣeka* of the *Bhāgavata*, there is here a hymn to Rāma by Kāmadhenu and the humbled Indra bathing Rāma in Kāmadhenu's milk.

10. Ch. xxiii. Rāma and Laksmaṇa tending the cows of Pramoda-vana, along with its cowherd boys; the appearance of the demon in the form of an ass and his death; then taking the cows to the Sarayū waters at a spot where the waters were poisoned by a snake, and the counterpart of the episode of Kāliya in the *Bhāg*.

11. Also here the episode of Rāma teaching a lesson to sages engaged in sacrifices and blessing their wives (Cf. *Bhāg.* X. i. 23); and the episode of saving the Vraja from the forest-fire (*Bhāg.* X. i. 19).

12. If the Gopis observed the Kātyāyanī-vrata in the *Bhāg.* (X. i. 22) to obtain Kṛṣṇa as their Lord, the womenfolk of Pramoda-vana learn a love-mantra from Durvāsas and repeat it with due austerities. What follows is the counterpart of the *Rāsalīla* of the *Bhāg*; as Rāma was an *Ekapatnī-vrata* in that incarnation, all the womenfolk had to become Sītā for this purpose. (Chs. xxiii, xxiv). xxiv. 5 in Mandākrānta describing Rāma in this sport is a replica of *Bhāg.* X. i. 21. 5. The name Rāma and its etymology given by Vālmīki are aptly used here by the text: रामो रमयतां वरः (7). In xxv. Brahmā explains to Bhuśunda the inner truth of Rāma's *Rāsalīla* and its close relation to Kṛṣṇa.

13. Ch. xxvi. Rāma-Rāsa continued; *viraha* (separation) between Rāma and Sītā and Rāma's consequent suffering. Dūtis approach Rāma and speak to him of the pangs of separation of the womenfolk and appeal to Rāma to come to their help. Rāma says that he would first wait for Sītā and after his marriage with her, he would come to these women. Sītā manifests herself.

Ch. xxvii. A description of the Śarat season, as in the *Bhāg*. follows; Rāma plays on the flute, sings and calls for Sītā. Ch. xxviii, Sītā's appearance and Rāma's sports with her.

14. A second and longer hymn on Rāma by the *Vedas* and the *Upaniṣads* then occurs ( xxix ); this is sung at dawn for rousing Rāma and Sītā from their slumber.

15. xxx-xxxii. Sītā disappears; Rāma's sports with the other women. xxxi. 1 is a close imitation of *Bhāg.* X.i. 29.1; other verses here have also their parallel in the *Bhāg.* A further whole Ch. is closely modelled on the corresponding one in the *Bhāg.* Rāma's words dissuading the women and their reply to him are after the model in the *Bhāg.* Like Kṛṣṇa, Rāma suddenly disappears from their midst and they search for him, addressing the trees etc. The text closely follows the incidents in its prototype here. xxxii. 1 opens with the same expression as *Bhāg.* X.i. 30.1. Ch. xxxiii gives the counterpart of the *Gopikā-gītā* (*Bhāg.* X.i. 31), the lament of the separated women. Ch. xxxiv, Rāma appearing again before them, with Sītā by his side. They all go to the sands of Sarayū and enjoy themselves in the *Rāsa*-dance again ( xxxv ). Verse xxxv. 54 गोपीं गोपीमन्तरा रामचन्द्रो रामं रामं चान्तरा गोपनार्यः, is after the *Kṛṣṇakarṇimṛta* verse—अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवः ( II. 35. ) etc. and along with the earlier imitation of the verse कस्तूरीतिलकं provides a clue to the date of the text.

16. xxxvi. The sages of the Daṇḍaka forest praise Rāma and long to enjoy him and Rāma assures them that their longing will be fulfilled in his next Avatāra as Kṛṣṇa.

17. xxxvii, xxxviii. Rāma's sports with the women in the waters and the woods (*Jala-kriḍā* and *Vanakriḍā*).

18. xl. Daśaratha sends word that Rāma and the brothers are required to come back to Ayodhyā so that their marriages might be celebrated. There is here a description of the feelings of the cowherds of Pramodavana on the impending separation from Rāma, which is also after a similar description in the *Bhāg.*

19. Then follows a section entitled *Rāmagītā* ( xlvi-lx ) in which Rāma gives a discourse on Bhakti to the womenfolk of Pramodavana who are deeply affected by his impending departure. The discourse is naturally modelled after the *Bhagavadgītā*, has the same 18 chapters and has many passages reminiscent of the *Bhagavadgītā* and the *Upaniṣads*. *Prema* is given as the greatest *Yoga* ( xlvi. 7 ). Image-worship is described in xlvii. Ch. xlviii gives a list of 108 names of Rāma's Śakti called Sahajā who is the same as Sītā and says that She is the daughter of a cowherd couple on the Sarayū bank, Nandana and Rājanī ( 43 ) and that a cowherd named Kuśala to whom she belonged, offered her to him ( Rāma ) out of devotion ( 44 ). Ch. xlix is a replica of the *Vibhūtiyoga*

chapter of the *Bhagavadgītā* and has numerous echoes from that chapter of the *Gītā*. Then follows in the same chapter a *Viśvarūpadarśana* of Rāma by the women whom Rāma blesses with the divine vision. They see the Rāma of Pramodavana in all his glory. In the next chapter is described their vision of the transcendent (*aprakṛta*) form of Rāma; the hymn of the Gopīs here again has echoes of Arjuna's *Viśvarūpa-stuti* in the *Gītā*. The Lord blesses them saying that his permanent abode on earth — where he is in eternal līlā — is Pramodavana, that he will go for a time to finish the work of restoration of Dharma ordained for the Rāma-incarnation and come back, and that during his absence they should all remain there immersed in him without the sense of differentiation (*abheda*) ( 41 ). Rāma then explains the many forms he assumes for helping his seekers in their contemplation (li-lii). The story is then given of the penance done formerly by Nandana, Gavendra, Sukhita and their wives Rājanī and Maṅgalyā of the Pramodavana which led to Lord and the His Śakti appearing there as their children. ( liii ). The pre-history of the 16,000 women of the Pramodavana ( liv ) who were originally the sages of Daṇḍakāraṇya is then told ( lv ). Ch. lvi continues the story and makes express mention of the Kṛṣṇa-avatāra and the Gopīs observing Kātyayānī-vrata to obtain Kṛṣṇa as their Lord and the episode of the Lord taking away their clothes. The counterpart in the Rāma-incarnation of each thing in the Kṛṣṇa-incarnation is also mentioned. In fact, all of them in the Pramodavana, and later in the Vṛndāvana, are the Gods of heaven ( Devas ) ( lvi-lvii ). Ch. lviii sets forth the *dharma*s to be done by Vaiṣṇavas or the devotees of Viṣṇu, pilgrimage, service in Viṣṇu-shrines, baths, gifts etc. In Ch. lix, the contemplation of the Lord within one's heart, according to the *Dahara-vidyā* of the *Chāndogya Upaniṣad* is expatiated upon. With this, the *Rāmagītā* which began in Ch. 43 ends and it is called in the colophon *Rāmagītā-Upaniṣat-samhitā*. It extends to the same number of 18 chapters as the *Bhagavadgītā*. With concluding hymns on Rāma by Sukhita, the chief of the cowherds, and the other cowherds, Rāma's life in Pramodavana comes to an end.

From Ch. lxi, the *Rāmāyana*-story proper begins. Rāma and the brothers have returned from the Pramodavana. Daśaratha already knew that Rāma has come to destroy Rāvaṇa and other Rākṣasas. Rāma is referred to as the Supreme Brahman in Upaniṣadic terms ( xli. 5-14 ). We may note only deviations or additional ideas not found in Vālmīki:

1. In the early chapters on the birth of the four sons to Daśaratha, we are told twice ( xii. 30; xv. 1 ) that Lakṣmaṇa was the second son and Bharata the third ( xvi. 1 ) and Śatrughna the fourth ( xvi. 10 ).
2. That Lakṣmaṇa is the manifestation of Sesha is expressly stated ( xv. 2 ).

3. The four brothers are equated with the four Vyūhas; Rāma-Vāsudeva, Lakṣmaṇa-Saṅkarṣaṇa, Bharata-Pradyumna and Śatrughna-Aniruddha ( xv and xvi ).

4. Ch. lxii. Daśaratha goes to Sarayū for bath and is carried away by an aquatic animal. Rāma dives into the waters, is received there and honoured by Varuṇa and comes out with Daśaratha. This is after the episode of Nanda being carried away by Varuṇa's emissaries and Kṛṣṇa bringing him back, Bhāg. X.i. 28.

5. Ch. lxiii. Daśaratha celebrates along with his sons, the spring festival on the banks of Sarayū when a demon named Chāyāsura casts a shroud of darkness in which everybody except Rāma is thrown into a swoon. Rāma kills the demon.

6. The Vasanta festival continues ( Chs. lxiv, lxv ). Rāma sees an unusual bird of great beauty, the like of which is not found in creation. In the conversation between the bird and Rāma, Rāma says that he abides eternally in the Pramodavana, but has also to carry out the work of the avatāra which has now to be attended to. The bird then flies to Mithilā and before Sītā there—already immersed in thoughts of Rāma—drops a picture of Rāma. The bird gradually drags Sītā to a secluded place in the garden and asks her to give a picture of hers to be conveyed to Rāma. Sītā does so. The episode is evidently inspired by the romance of Nala and Damayantī.

7. Five chapters that follow ( 66-70 ) hark back to Pramodavana and its cowherds who are affected deeply by the departure of Rāma. Three princes from Rāma's side go there and console them. This section is a replica of the visit of Akrūra to Gokula and the words of comfort that he spoke to the Gopas and Gopis in the *Bhāgavata*. Expressions in the two texts run close in this episode also.

8. On the return of the princes from Pramodavana, there is an additional matter which should be noted. Rāma gives a philosophical discourse to the princes ( ch.LXX ) and as part of this, Rāma narrates a dialogue between Bharata and Śāṅdilya; the point to be noted here is that this concerns the future incident of Bharata refusing the kingdom and preferring the life of a recluse attending upon Rāma's Sandals. ( lxx. 18 ff.). Sage Śāṅdilya gives Bharata a philosophical discourse, embodying expressions from the Upaniṣads ( lxx.22,—*Mahānārāyaṇa* ) and exhorting Bharata to adore within his heart Rāma, the Supreme Being. Śāṅdilya's teachings include the repetition of Rāma's Name and its efficacy ( 28 ). The wearing of marks or the replica ( mudrā ) of Rāma is also emphasised ( 36 ).

9. After Viśvāmitra comes and takes Rāma and Lakṣmaṇa and the three are proceeding, we have, in the manner of the *Bhāg.*, a demon in the form of an ass introduced as attacking Rāma ( ch. lxxii ). It is after Rāma's killing of this Gardabha-asura, that the demoness Tāḍakā comes. Curiously a line occurs here mentioning her two sons as having already been dealt with by Rāma ! (13) Rāma kills some of the demons who come to ruin Viśvāmitra's sacrifice and drive away some (lxxiii). Lakṣmaṇa expresses his wonder at Rāma's prowess but Rāma says that it was Lakṣmaṇa's power that entered Rāma and destroyed the demons, for Lakṣmaṇa was Samkarṣaṇa and Kāla ! 27, 30 ); in truth, as far as he Rāma himself was concerned, there was neither trouble with demons nor any pleasure with gods ( 29 ). Echoing *Bhagavadgītā* V. 18, , the text then says that good or bad, Rāma sees everything with an equal eye ( 31 ). The text adds that Viśvāmitra's sacrificial austerities went on for years and Rāma stayed on protecting them from the demons ( 32 ff. ).

10. A new idea introduced here is what is found in some versions in regional languages like Tamil and Hindi and in some Greater Indian versions, namely, the meeting of Rāma and Sītā before the breaking of the bow. Our text makes Rāma and Lakṣmaṇa stroll in the garden outside Mithilā where Sītā comes to worship Ambikā in the Śiva temple ( lxxv ). Rukmiṇī in the *Bhāg.*, we may recall, refers to the custom of worshipping Ambikā by girls to be married. Rāma expresses his infatuation for her, refers to her being his Śakti in Pramodavana, and to her coming Svayamvara at which he is going to win her hand.

11. Earlier, when describing the birth of the four sons to Daśaratha, there is no mention at all of the putrakāmeṣṭi sacrifice by Rāyaśringa but suddenly now, when introducing Rāma to Janaka, Viśvāmitra describes the four boys as the 'good fortune of Rāyaśringa' ! ( lxxvi. 24 ). Again the Rāyaśringa-episode is referred to in the exchanges with Paraśurāma ( lxxvii. 46 ). Also all the four girls in Janaka's house are straightaway mentioned by Viśvāmitra as suitable brides for the four boys ( 26 ).

12. In the confrontation with Paraśurāma, the new idea to be noted is that he sends first a messenger to Jānaka to convey his protest and anger with regard to Rāma breaking Śiva's bow. Paraśurāma, after his prolonged outburst against Rāma, finally realises that Rāma is the Supreme Being.

13. After the marriage and as *Yuvārāja*, Rāma is said to spend a thousand years. In the middle here, there is a story of the *Creepers* in the *Rasālavana* ( mango-grove ) next to the Pramodavana having been

originally heavenly damsels born of Brahmā's mind and waiting to be relieved of their curse and restoration to their original status by Rāma. ( LXXX-LXXXV ).

14. The mission of destroying demons or of blessing devotees is but incidental to the *avatāra*; Rāma's primary nature is to be in eternal and blissful *līlā* ( LXX xvi. 4-6 ); He is just *Prema* and Ānanda. ( 12 )

15. xci. Ādi Nārāyaṇa tests Rāma by carrying away the sacrificial fires of Daśaratha; Rāma visits Ādi Nārāyaṇa and brings the fires back.

16. Rāma's *Yauvarājya* is very elaborately described; the greatness of Rāma's Name, his personality as Supreme Being and his prowess are all described. In connection with the last ( Ch.xciii ), the future exploits of Rāma are touched upon, his making the Sea submissive, his building the Causeway and taking the monkeys across for the conquest of Laṅkā, his destruction of Rāvaṇa, his killing of Vālin, Hanumān's prowess and devotion and obedience to Rāma. The whole section is on the *Ṣadguṇya*, the six qualities, of Rāma as *Bhagavān*. Ch. xciv includes a long learned hymn on Rāma by the Śruti, set in Advaitic terms and composed in long metres.

17. When describing the sixth quality of *Vairāgya* ( ch. xcvi ), the text narrates the future story of Rāma allowing Sītā, in her pregnant state, to go to the forests and stay some time with the womenfolk of the hermitages, presenting them clothes, ornaments etc. Lakṣmaṇa takes Sītā and leaves her there. When Sītā is having a pleasant sojourn in the hermitages, one of the hermit ladies tells Sītā that there has been going around a rumour that Rāma was told by his court-clown ( *Vidūṣaka* ) that although the people praised Rāma for all that he was and had done, they yet expressed some dissatisfaction with his taking back his wife who had been in captivity in Rāvaṇa's palace and that Sītā's sojourn in the forest might be due to this. Sītā is sad to hear this but Vālmīki consoles Sītā that Rāma who is the Supreme Being is above all this and that She Sītā is his Supreme Śakti and should not think of these small things. A lady messenger Kausikī goes from Sītā to Rāma and she finds Rāma unaffected. This future story is strangely brought in during Rāma's *yauvarājya* to illustrate his quality of *Vairāgya*.

18. Another exploit of Rāma as Yuvarāja. The Brahmins complain that tigers from forests had eaten their cows; Rāma restores their cows. ( xcviii )

19. Daśaratha and Vasiṣṭha realise that young Rāma is none else than the Supreme Being ( xcix ). Rāma then, along with Lakṣmaṇa, goes to the other worlds to bring back those of his side who were dead in their battle with the Rākṣasas in Viśvāmitra's hermitage.

20. Now begins a series of chapters devoted to Daśaratha's pilgrimage (*Tīrthāyatrā*). Finding that Rāma, as yuvarāja, is looking after the kingdom well, old Daśaratha undertakes visits to several holy spots, waters, shrines etc. This section extends from ch. 101 to 145, almost to the end of the Book and covers the holy spots of Ayodhyā, those on the Sarayū and the Gaiṅgā, Banaras, Naimisāranya, etc. Some holy places and rivers of South India are also mentioned : Śrīparvata mountain, a R̄ṣabhādri in Pāṇḍyadeśa ( 103. 118 ), Kāverī, Kanyākumāri on the sea, Gokarṇa, Veṇā, Godāvari, Kṛṣṇa-veṇā, Varadā, Payoṣṇī, Daṇḍakāraṇya, Śūrpāraka, Saptagodāvara, Tuṅgāraṇya. Then Mt. Kālañjara, Citrakūṭa and Mandākinī, Śrīgaberapura, Prayāga; then Puṣkara, Kurukṣetra and Gangādvāra. All this Vasiṣṭha describes to Daśaratha and recommends to the King for his visits.

A further series of holy places follows: Jambūmārga and cities nearby; Ujjain, Narmadā, Omkāreśvara (Māndhātā), Prabhāsa, Dvārāvati and other spots of Saurāṣṭra; then the tīrthas of Brahmāvarta and Kurukṣetra; then of Kashmir and of the Himālayan regions; then Yamunā and Mathurā and its holy spots; and in this connection an elaborate account of Yamunā's stories is given and it is to be noted that a description of her relations with Kṛṣṇa, the next incarnation, is also given here. Daśaratha then goes to Pramodavana where Rāma is in eternal sport and which is called *Ādi-vraja*, the original of the Vraja of Kṛṣṇa-avatāra.

21. In ch. cxix, there is the repetition of the episode of the festival to Indra being vetoed by Rāma and the latter asking the cowherds to worship Brahmans, the devotees of Viṣṇu and the mountain there, which is an echo of the Govardhana-uddharaṇa story in the *Bhāg*. This and other stories of Rāma are recalled and told to Daśaratha who is on a visit to Pramodavana. The accounts sometimes bring in descriptions of other incarnations of Rāma like the Narasimha ( ch. cxiii ). Many stories of Rāma's līlās as Lover and Rasika of Pramodavana are also told to Daśaratha, including the Gopī-vastrāpaharaṇa by Rāma comparable to the one by Kṛṣṇa ( Ch. cxxviii ), the *Rāsalīlā* that follows ( chs. cxxix-cxxx ) and so on. It may be noted that the *Rāsalīlā* passages here in ch. cxxx ( esp.vv.73,74 ) are after the manner of the *Gītagovinda*. The imitation of the *Bhāg* is also very palpable ( vv. 63, 104, 105 ).

22. Ch. cxxvii gives a list of 36 delicacies which are served to Daśaratha during his stay in the Vraja ( vv. 11-18 ); several of these are vernacular names and provide a clue to the date of the composition. Another list of 56 dishes, dear to Rāma and served to Daśaratha follows ( vv. 19-27 ) which is also full of vernacular names.

23. The episodes of Rāvaṇa's demon-emissaries attacking Rāma in the Vraja and Rāma killing them are narrated to Daśaratha.

24. In an interim dialogue between Brahmā and Sarasvatī, it is said that these early, boyhood *līlās* of Rāma for twelve years in Pramodavana were 'Rahasyas', secrets, and Vālmiki did not write about these in his epic. Reference is made in this connection to these Brahma-Bhusundi narratives and some others of this kind ( ch. cxxxvi ).

25. Daśaratha is given a resume of the Rāmāyaṇa-story after Rāma left the Vraja. After the marriage with Sītā and the return of the boys from Mithilā upto Daśaratha's pilgrimage, which had taken place, the things which are to happen are told :

i. Rāma's proposed coronation, Kaikeyī's two boons, Rāma going to the forest and reaching Citrakūṭa.

ii. A new idea : Rāma shooting two arrows assuring protection to the Sages of the forest against Virādha and other Rākṣasas and the two arrows coming into Pramodavana; the two arrows turning into Rāma and Lakṣmaṇa and their flashing lustre turning into Sītā.

iii. Killing of Virādha and reaching Pañcavatī; the Śurpaṇakhā-episode and destruction of Khara and his hosts.

iv. Rāvaṇa hearing of this and sending Mārīca as a deer; Rāvaṇa carrying off Sītā, not the real Sītā but only her 'Chāyā', her real person having been deposited in Gārhapatya Fire ( cxxxvi. 102-3 ).

जहार रावणस्तूर्णं सीतां छायामयीं स्त्रियम् ।  
सीता तु गार्हपत्यान्तौ प्रविष्टा श्रीः स्वयंभवा ॥

v. Rāma's separation from Sītā and his killing of Rāvaṇa and making Vibhiṣaṇa King of Lāṅkā; his receiving the real Sītā from fire ( v. 106 ); and return to Ayodhyā with all his allies.

26. Daśaratha's further pilgrimage and his visits to rivers Sarayū, Kauśikī, and Gomatī; then Brahmāvarta, Naimisāraṇya, Prayāga, Harikṣetra, Śoṇa, Vārāṇasī, Gayā, Confluence of Gaṅgā and the Sea, Kapilā-śrama, Hāṭakeśavara, Puruṣottama ( Pūri ), Mt. Mahendra ( shrine of Paraśurāma ), Sapta Godāvara, Veṇā and Kṛṣṇa, Pampā, Bhīmarathī, the Shrine of Mahāsena ( Kumāra ), Śrīparvata; then in Tamil Country ( v. 35 ). Veṅkaṭādri ( Tirupati ), Kāmakoṭi-city with Śiva and Viṣṇu Kāñcīs ( v. 36 ), Kāverī, Śrīraṅga, Ṛṣabhādri, Harikṣetra, Madhurai ( where Rāma sported with Tamil women v. 41 ), Setu, Kṛtamālā, Tāmraparṇī, Malaya, Kanyā Kumārī, Anantapura ( Trivandrum ) and other sacred places of Kerala, Gokarṇa, the shrine of Āryā ( Mūkāmbikā ? ); then Tapatī; ( the geographical order is irregular ); Payosṇī, Nirvindhyā, then Tapati;

Dāṇḍakāranya, Narmadā, Māhiṣmatī, Amarakanṭaka, Ambikāvana, Sarasvatī; then places in Saurāṣṭra and Kathiawar: Prabhāsa, Dehotsarga, Somanātha, Dvārakā<sup>1</sup>, ( a statement again that Rāma is the Avatārī, Kṛṣṇa etc. His Avatāras, Rādhā etc. replicas of Sītā; so also Yamunā of Sarayū and so on-vv. 97-100 ).

There is an actual reference to Śuka and the *Bhāgavata Purāṇa* ( v. 108 ).

Daśaratha's further Tīrthayātrā : Sindhu ( Indus ), Kashmir, Kurukṣetra, Sarasvatī, Pṛthūdaka, Yamunā, Gaṅgādvāra, Viśālā, Kedāra, Badarī; interim story of Viśālā and her relation with Rāma ( Ch. cxxxix ).

Ch. cxl. Daśaratha moves east : Kūrmācala, Nepāla, Kāmarūpa; then back to Mithilā. Long conversation with Janaka in Mithilā; expatiation on the greatness of Sītā, the Sītā-Gāyatrī-mantra, her worship etc. It is with the strength of Her Mantra that Rāma and Lakṣmaṇa got an adamantine body in the battle and conquered Rāvaṇa and others ( cxlii. 93-4 ). Sītā *Raseśvarī* ( v. 227 ).

Daśaratha then comes to Mathurā and the sacred spots there. Śuka is made here to speak to Daśaratha on the greatness of Rāma ( cxliii. 36 ff ). The love of the sages and Rāma's promise that they will become Gopīs in Bṛndāvana and enjoy him repeated once more. The spots in Bṛndāvana sanctified by Kṛṣṇa and his *līlās* told to Daśaratha !

Daśaratha meeting Paraśurāma and hearing the praise of Rāma from him.

Daśaratha returns to Ayodhyā after these long pilgrimages ( cxlv ) and is overjoyed to meet Rāma and others. Curiously, among the many sages whom Daśaratha introduces to Rāma, Śuka is also mentioned. Daśaratha reports on his pilgrimages and Rāma blesses the sages who are to enjoy him.

The chapter ( cxlvi ) and the first Book Pūrvakhaṇḍa end with a reference to Rāma as the embodiment of the Supreme Bliss mentioned in the *Taittirīyopaniṣad*.

The critical review of the contents of the first Book given above is based on the edition of that book now offered. There are three more books, *Khaṇḍas*, *Pāścima*, *Dakṣina* and *Uttara*. The story from Sītā's marriage to return of Rāma to Ayodhyā with her is dealt with in Book II. The

1. Five gems of Saurāṣṭra are mentioned ( v. 86 ): Rivers, Women, Horses, Dvārakā and Somanātha.

departure to the forests and return to Ayodhyā after Rāvaṇa's end is dealt with in Book III. Book IV describes the later life and Rāma's return to his original abode. The more noteworthy points in the account as seen in Books II, III and IV may be added on the basis of the resume of the story (*Kathāsāra*) furnished in Hindi by the Editor. A detailed critical account will have to wait till these remaining Books are published.

The second book, the *Pascima-Khaṇḍa*, starts with the story of the marriage of Rāma and Sītā. The noteworthy points here are :

1. The Queen of Mithilā, *Sunayana*, prays to Goddess Lakṣmī who incarnates in four forms in the former's house. This evidently refers to the three other sisters who are married to the three brothers of Rāma.
2. Having heard of Sītā's beauty, Rāma sends her a bird-messenger and Sītā sends him her picture, through the same bird.
3. Rāma meets Sītā first in the garden, where, as in the case of Rukmiṇī in the *Bhāgavata*, Sītā had come to worship Ambikā as a preliminary to the marriage.
4. Rāvana attends the Svayamvara.
5. When Daśaratha started exercising his mind over his age and the transfer of the Kingdom, one alternative he thought of,—which does not occur in any other version—is the division of the Kingdom equally among the four sons, but he prefers the time-honoured family practice of bestowing it on his eldest son.
6. Indra is worried that if the coronation goes through, the gods' plan to put an end to Rāvaṇa will be frustrated. So through Brahmā's intercession, Sarasvatī goes to Ayodhyā and makes Mantharā and Kaikeyī ask for the two boons. This is seen in the *Adhyātma Rāmāyaṇa*.
7. The crow which harasses Sītā in the forest is mentioned straight away as Jayanta.
8. Even before his coming back with Rāma's sandals, i.e. as soon as he hears of Rāma's departure to the forest, Bharata refuses to stay in the palace and takes his abode in a hermitage on the banks of the *Tamāsā*; it is from there that he performs the obsequies of Daśaratha.
9. When Bharata is conducting the administration of Ayodhyā with Rāma's sandals from Nandigrāma, Bakāsura and Rāvaṇa feel jealous of the prosperity of the Kingdom and plan to steal Rāma's sandals. The two come there in person but do not succeed.

10. When Rāma is in Citrakūṭa, the Gopīs of Pramodavana go with their cattle to Rāma and spend a lot of time with him. Rāma and Sītā ( Sahajā ) and the Gopīs enjoy the *Rāsa*-dance.

11. It is after seeing Rāma well-established in the forests, amidst the sages, that Rāvaṇa goes on a series of severe penance, worshipping Śiva at Ujjain, Kāśī, Gaṅgāsāgara, Hāṭakeśvara and Kailāsa. Śiva gives Rāvaṇa boons with which he brings the whole world under him. Rāvaṇa goes on his victory campaign but is humiliated at the hands of Kartavīrya at Māhiṣmatī. Rāvaṇa then goes again to Kailāsa and brings Śiva's Liṅga and consecrates it in Laṅkā.

12. Even when he is in Citrakūṭa, Rāma is attacked by demons and he kills them.

13. After Rāma reaching Atri's hermitage the cowherds of Pramodavana, unable to see Rāma anymore, return.

14. At Pañcavaṭī Rāma spends twelve years, worshipping at Ambikeśa Mahādeva's temple there.

15. Rāma knows that the golden deer is a deceit of the Rākṣasas and tells Sītā that she who had given up a Kingdom should not be tempted by this. Sītā presses Rāma to go after the deer.

16. The line drawn by Lakṣmaṇa which Sītā should not cross is mentioned.

17. Sītā leaves her real self in the Fire before Rāvaṇa takes hold of her.

18. Rāvaṇa takes her on his shoulder.

19. The date of this event is Māgha Śukla Caturdaśi.

20. Kabandha informs Rāma not only of Sugrīva as worthy of Rāma's friendship but gives all particulars about Rāvaṇa and his abode. As regards Sugrīva, Kabandha adds that Sugrīva wants Vālin's kingdom and wife Tārā.

21. The popular tradition that Śabari offered Rāma fruits she had already tasted and found good, is given. She does not go to heaven. Rāma asks her to stay on doing her penance till Kṛṣṇāvatāra when to have become jealous of Śabari with the result there was famine and Agastya had to bring water there by his powers and make the sages beg Śabari's pardon.

22. The trees which Rāma is asked by Sugrīva to shoot at are said to have not one but a few serpents and Rāma is said to kill them too.

23. Dundubhi's carcass is thrown afar by Rāma, not with the tip of his toe, but with the tip of his arrow.

24. After the first encounter with Vālin, Sugrīva returns wounded and Rāma touches his body to relieve him of all pain and Rāma himself puts a garland on his neck to distinguish him.

25. Rāma is said more than once to regret his having killed Vālin either for his own selfish purpose or for no sufficient reason.

26. When Lakṣmaṇa goes to Kiśkindhā to pull up indolent Sugrīva, Rāma with his divine form, visits Laṅkā and in the Aśokavana with Sītā and the Gopis of Pramodavana who gather there, has his third *Rāsalila*.

In the *Ananda Rāmāyaṇa* ( Book I ), Rāma is said to be enjoying at this time the company of Sītā in her Sāttvic form in Rāma's own body.

27. In Laṅkā, Hanumān is said to see Vibhīṣaṇa's house and the *Tulasi* plants there.

28. Hanumān does not come back to Sītā to take leave of her before he starts on his return flight.

29. The stones of the *Setu* stood on the waters because of Rāma-Nāma which Nala kept reciting. The bridge took *four days* to build; it started on *Pauṣa Kṛṣṇa Daśamī*, and was completed on *Trayodaśī*.

30. They take *three days* to cross over to the Laṅkā-side.

31. The siege of Laṅkā is for *eight days*.

32. On first sighting Rāvaṇa at a distance in his palace, Rāma is said to shoot and shatter his parasol and fly-whisk (*chatra-cūmara*). The *Adhyātma Rāmāyaṇa* has this.

33. The battle actually starts on *Pauṣa Kṛṣṇa Trayodaśī*.

34. The date of Āṅgada's mission is given as *Māgha Śukla Prathama*.

35. Āṅgada meets Sītā after his mission and encounter with Rāvaṇa and brings Rāma news of Sītā's suffering.

36. The date of the battle with Indrajit is *Vaiśākha Kṛṣṇa Navami*. This was the 10th day of the battle and on the 11th day, there was one day's respite.

37. There is an interesting dialogue here between Sugrīva and Rāma. Sugrīva asks, "you have promised to give Laṅkā to Vibhīṣaṇa; if Rāvaṇa surrenders and asks for your pardon, what will you do?" Rāma replies, "I will give him Ayodhyā."

Now, the great Rāma-singer and the foremost Karnatic music composer Tyāgarāja has embodied this idea in a song of his in Rāga Kāpi Nārāyaṇī, 'Sarasa Sāma Dāna' describing Rāma as an adept in all the four policies of Sāma, Dāna, Bheda and Daṇḍa, as adopted by him in the battle against Rāvaṇa.

38. Kumbhakarṇa first tells Rāvaṇa that Rāma is the Supreme Being. His fight lasts five full days. *Phālguna Amāvāsyā* was Kumbhakarṇa's funeral.

39. *Caitra Kṛṣṇa Dvitiyā* was the date of Indrajit's sacrifice. Although Lakṣmaṇa does the fighting, Rāma is brought in to touch the fallen fighters on his side and bring them back to life with his ambrosial touch.

40. Indrajit falls on *Caitra Kṛṣṇa Caturdasi*. Sulocanā is mentioned as Indrajit's wife; Rāma first offers to revive Indrajit for her but she wants only Rāma's blessings; and she then mounts the pyre with her husband's body. Indrajit and Sulocanā are blessed by Rāma and they are born as a Gopa pair in the Kṛṣṇa-incarnation.

41. Rāvaṇa's own fight was from *Caitra Śukla Prathama* to *Asṭami*.

42. Because of Ekādaśi intervening, the battle is said to stop for a day.

43. Strangely Kubera's *Puṣpaka* is said to come to help Rāma in the battle. Rāma is said to fight from the *Puṣpaka*.

44. Rāma's *Brahmāstra* becomes tenfold and falls on the ten heads of Rāvaṇa and destroys him.

45. Vibhīṣaṇa first declines the Kingdom, preferring Rāma's devotion and service. Rāma makes Vibhīṣaṇa a *Cirañjīvin* and bestows the Kingdom on him.

46. Lakṣmaṇa is sent, not Hanumān or Vibhīṣaṇa, to meet and bring Sītā.

47. The dead monkeys are revived not by Indra's *amṛta*, but by the ambrosial look of Sītā.

48. At Sītā's request, Rāma receives Trijaṭā.

49. Rāma leaves for Ayodhyā on the *Puṣpaka* on *Vaiśṅkha Śukla Pañcami* and as mentioned in Vālmīki, on *Pañcami*, they arrive at Bharadvāja's *āśrama*.

50. The coronation was on *Saptami*.

*The Uttarakāṇḍa story :*

51. Sītā is pregnant and wants to go the hermitages in the forest and give presents to the hermit-women there and obtain their blessings. Rāma agrees, although reluctantly, as he does not like to be separated from her.

Although any gossip among people in Ayodhyā is not mentioned here as the reason for Sītā's going, later when Sītā is happily enjoying her time in the hermitages, a hermit tells her one day that there has

been some talk that some villain referred in Rāma's assembly to Sītā's stay in Rāvaṇa's place and this might have made Rāma send Sītā away.

52. Regarding the final stages of Rāma's sojourn on earth, as narrated here, we may note :

( a ) When *Kāla* ( Time ) comes at Brahmā's instance and sees Rāma, Rāma tells *Kāla* that His ( Rāma's ) *Līlā* is beyond all *Kāla* and *Māya* and therefore there is no end to his *Līlā*. *Kāla* reports this to Brahmā.

( b ) When *Kāla* comes a second time, he sees Rāma and Sītā as one person, an ardhanārīśvara.

( c ) When Durvāsas comes and Lakṣmaṇa peeps in to report, Lakṣmaṇa sees Rāma in his terrible *Viśvarūpa*.

( d ) Rāma gives a discourse on Viṣṇu Bhakti in 18 chapters to Durvāsas.

( e ) Rāma addresses Lakṣmaṇa as inseparable from him as Lakṣmaṇa is Saṅkarṣaṇa Śeṣa. Rāma asks Lakṣmaṇa to stay on at the Sarayū-bank, doing meditation.

( f ) Then after a time, Rāma announces his decision to leave for his permanent abode and asks all those who want to come along with him to follow. His brothers and associates and the Gopas and Gopīs, all leave with him.

Except for the ideas noted above, the narrative of the story follows the course of events as seen in Vālmīki.

The *Bhuśundi Rāmāyaṇa* is also a source of information on literature on *Rāma-bhakti* and versions of the Rāma-story oriented to *Madhura-bhakti*. In 1.9.14, Brahmā first refers to Vālmīki's version and then to another text on the Rāmāyaṇa-story called *Rāmānukriḍā* which, from the name, seems to deal with the boyhood sports of Rāma on the model of those of Kṛṣṇa. A little later in the same chapter ( vv. 29–30 ), *Rāmāyaṇas* spoken by *Hayagrīva*, *Vālmīki*, *Brahmā*, *Bhuśundi* and *Vasiṣṭha* are mentioned and the text adds : the above are but a fraction; Rāmāyaṇa is endless : '*Rāmāyaṇam anantakam*'. Ch. 25, vv. 13–23 give Brahmā, Śuka, Śeṣa and Sītā as the custodians of Rāma-story. The recipients of the story are Bhuśundi, Parīkṣit, Earth, Lakṣmaṇa and Hanumān (13–16). Śuka gave to Parīkṣit; Śeṣa to Earth, Sītā to Lakṣmaṇa and Lakṣmaṇa to Hanumān. The texts associated with these are said to be five *Samhitās* : Of these that of Bhuśundi is in 36,000 verses; another is in 40,000, the third in one lakh and that of Hanumān, in one lakh and preserved in *Vāyuloka*. The *Brahmasamhitā* i.e. the *Bhuśundi Rāmāyaṇa* incorporates matter from all these. 1.94.33 mentions Vālmīki, Hayagrīva, Hanumān, Agastya, and Śeṣa. 137–87 refers to Atri's narration of Rāma-story.

Chapter 136, vv. 46-49 speak of the *Rāma-caritas* spoken by Vālmīki, Agastya, Hayagrīva, Śiva, Hanumān, Vāyu (?), Lakṣmaṇa (?), Sītā (?) and other sages. At the very end of the work (4th Book) the following are mentioned as having successively given this Rāma-story : Rāma to Sītā in Pramodavana; Sītā to Lakṣmaṇa; Lakṣmaṇa to Bharata; Rāma to Hanumān; Hayagrīva to Agastya, Agastya to Brahmā; and Brahmā to Bhuśundi. In the *Citrakūṭamāhitmya* the sages *Bharadvāja*, *Ātreya*, *Sūlikṣṇa*, *Sāṅḍilya* and *Agastya* figure as interlocutors. In the *Bhuśundi Rāmāyaṇa* the framework is : Brahmā describes to Bhuśundi, Bhuśundi to Dālbhya and Dālbhya to Lomaśa (I. 136. 72-73).

In the *Bhuśundi* and the *Uttarakāṇḍa* of Tulasi's *Rāmacaritamānasa*, two other names *Garuḍa* and *Lomaśa* figure. Lomaśa on Rāma occurs in the *Mahābhārata* (Vana, Tīrtha-yātrā) and the *Padmapurāṇa*, *Patalakhanda*.<sup>1</sup> The vista of such Rāma-works is enlarged considerably by the Editor of the present text who mentions in his Introduction : *Śivasamhitā*, *Lomaśasamhitā*, *Sadāśivasamhitā* *Satyopākhyāna*, *Bṛhatkosalakhanda*, etc. which, in the manner of the *Bhuśundi Rāmāyaṇa*, expatiate on Rāma's boyhood, sports in Pramodvana, his *Rāsalilā* etc.

These works on *Rāmabhakti* are not based on Rāmānuja's philosophy as has been assumed by some. They are, on the other hand, outspoken in their Advaitic character but as in the case of the *Bhāgavata*, Bopadeva and Madhusūdana Sarasvatī, this Advaita is integrated with fervent Bhakti of the *Madhura*-type. In I. 9, 20-21, the *Bhuśundi Rāmāyaṇa* mentions the *Vedānta*, *Brahma Sūtras*, etc. In I. 44. 12 ff. Upaniṣads are quoted<sup>2</sup> and the Advaitic conception of the Supreme Brahman, the lower Brahman, the appearance of multiplicity etc. are set forth. In ch. 110, vv. 301 ff where the treatment is quite Śāstraic, the Advaitic ontology is set forth, Auḍulomi's view in the *Vedānta Sūtras* that, on the end of the embodied existence, the individual soul becomes one with the Supreme, *Sadyomukti* or immediate release etc. are mentioned. Earlier, in ch. 94, vv. 49-58, couched in the same technical language, Kṛṣṇa Dvaipāyana, his *Vedānta Sūtras*, Ekadaṇḍī Sannyāsa without Śikhā and Yajñopavīta, and *Advaita* are spoken of (52). The expression 'Nirguna' also occurs.

The standpoint of the *Bhuśundi Rāmāyaṇa*, as already mentioned, is synthetic, Advaita being integrated to *Madhura-bhakti*. Rāma is called *Rasika* and Sītā *Raseśvari* (142. 227). Rāma is said to be of the form of *Prema* (Love) and *Ananda* (86. 12). In another place, *Premā-nanda* is given as greater than *Brahmānanda* (110-334). At the same time the idea of *Parā Bhakti* and *Nirguna Bhakti* is also given

1. See my 'The Greater Rāmāyaṇa' pp. 10-49. There is a lot more in Hindi.

2. Upaniṣads are used often and in 59, *Daharavidyā* is described.

( 7.22; 45-3 ). While the lower *bhakti* is of 3, 9, 27 or 81 kinds, *Nirguna Bhakti* is only one ( 45. 3 ). *Jñāna* with *Bhakti* and *Sevā* is considered as the means ( 110. 357 ). The naming of *Sītā* or the *Sakti* of *Rāma* with whom *Rāma* is in eternal sport as *Sahajī* or *Sahajānandī* betrays Tāntrik influence.

The four forms of Viṣṇu, Vāsudeva, Sankarṣaṇa, Pradyumna and Aniruddha are thrice referred to but only in a general way and never in the way of the *Pāñcarātra*. In ch. 16, the four brothers are also called by these four names, in Kṛṣṇa's story in ch. 56; the four forms occur again, and also in ch. 110, v. 353. But even as the word *Pāñcarātra* does not occur anywhere, the word 'Vyūha' for these four forms is completely absent.

As already noted, the *Bhusundi Rāmāyaṇa* is composed under the inspiration of the *Bhāgavata* but as the date of that Purāṇa is not certain, we may seek other evidences for the date of the *Bhusundi Rāmāyaṇa*. The lower limit is clear, viz. A. D. 1574, the date of the composition of the *Ramacaritamānasā* which was influenced by the *Bhusundi Rāmāyaṇa*. As for the upper limit, we may take two texts, the *Gīta-govinda* whose impress the text bears in a clear manner : 130. 73-4, describing the sports of *Rāma* with the Gopīs, and the *Kṛṣṇakarnamṛta* of Līlāśuka; the well-known verses there describing Kṛṣṇa 'Kasturi-tilakam' etc. is put into two verses in a shorter metre ( 18. 8, 9 ) and in the description of the *Rasalila*, the verse 'Anganām anganām antare Mādhavaḥ' of Līlāśuka is imitated (35-54 ). The *Gītagovinda* belongs to the 12th century A.D. and Līlāśuka's date is most probably C. 1300 A.D. The *Bhusundi Rāmāyaṇa* may therefore be placed in the 14th century A.D.

The *Bhusundi Rāmāyaṇa* is written, as already said, under the inspiration of the *Bhāgavata* but it does not ignore Sanskrit grammar as the *Bhāgavata* does in a big way; the lapses in the *Bhusundi Rāmāyaṇa* are very few. The main defect is that it is prolix and in the description of *Rāma*'s boyhood sports, it gives them once in the normal sequence of events and repeats them fully later when Daśaratha, during his visit to Pramodavana, is shown the places where the various *līlās* were displayed by *Rāma*. Command of language and poetic capacity are also prominent in the descriptions of persons, places, seasons, festivals etc.

The Editor has used four mss., and as he says, the mss. do not show much difference. He is to be congratulated not only for his editorial work but also for bringing to light this work which occupies an important place in *Rāma* and *Rāmāyaṇa* literature. It is hoped that he will bring out soon the other Books of the text.

## प्रस्तावना

भारतीय वाङ्मय में रामायण रचना की एक विशिष्ट परंपरा है। इस विशाल देश के दीर्घकालीन इतिहास में रामचरित पर आधृत जितना प्रचुर एवं विविधरूपात्मक साहित्य लिखा गया है वह उसके लोकाकर्पण का श्रेष्ठतम प्रमाण है। युगों-युगों में राष्ट्र के सांस्कृतिक जीवनदर्शन के अन्यतम प्रतीक के रूप में राम की जीवनगाथा समकालीन मनोभावों से संबलित हो जनजीवन में नवचेतना का संचार एवं चिरंतन मूलयों की स्थापना करती रही है। रामकथा के विकास के तीनों स्तरों—ऐतिहासिक, साहित्यिक तथा साम्प्रदायिक—में विरचित रामायणों के अनुशीलन से उपर्युक्त उपपत्ति की यथार्थता सिद्ध होती है। महर्षि वाल्मीकि ने दाशरथि राम की गाथा लिखी; भास, कालिदास और कुमारदास ने मानवीय संवेगों से संपूर्ण महामानव राम का चरित्रांकन किया तथा कंबन, कृत्तिवास एवं तुलसी की वैष्णव-भक्ति से आप्लावित वाणी ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी शैली में लोकतत्त्वों से परिप्लुत ब्रह्म राम की अवतारलीला का वृत्त प्रस्तुत किया। भुशुण्ड रामायण रामकथा की इस विशाल परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

## हस्तलेखों की खोज

इस महान् ग्रंथ के अनुसंधान की ओर मेरी प्रवृत्ति का उन्मेष बढ़े ही आकस्मिक रूप में हुआ। १९५१ ई० में मैंने 'उन्नीसवीं शती का रामकाव्य—विशेषतः महात्मा 'बनादास का अध्ययन' शीर्षक विषय पर पी० एच० डी० उपाधि के लिए कार्य करना प्रारम्भ किया। उससे सम्बद्ध सामग्री संकलित करने के निमित्त मैं अयोध्या के मन्दिरों तथा व्यक्तिगत पुस्तकालयों का आलोड़न करने लगा। एक दिन मुझे महात्मा रामचरणदास का 'राम नवरत्न सार संग्रह' नामक ग्रंथ नयेसखा बाबा हनुमानशरण के संग्रह में प्राप्त हुआ। उसमें एक स्थान पर 'भुशुण्ड रामायण' से उद्धरण दिया हुआ था।<sup>१</sup> इसके पूर्व मैंने इस ग्रंथ का नाम भी नहीं सुना था। श्री रामदास गौड़ द्वारा 'हिन्दुत्व' में दी गयी अप्राप्य रामायणों की सूची में भी इसका उल्लेख नहीं था। उक्त ग्रंथ में प्राप्त उद्धरण से भुशुण्ड रामायण के अस्तित्व में मेरा विश्वास जगा। इसी प्रसंग में एक दिन संयोगवश मैं लक्ष्मण-किला-पुस्तकालय ( अयोध्या ) देखने गया। वहाँ के तत्कालीन वयोवृद्ध महन्त रामदेवदासजी से उक्त ग्रंथ की चर्चा की। उन्होंने हँसते हुए कहा, "भैया ! भुशुण्ड रामायण की पोथी मेरे यहाँ है किन्तु वह पूजा में रहती है, बेठन में बँधी भगवान के सामने रखी है। वहाँ से हटायी नहीं जा सकती। आपको पढ़ने के लिए प्राप्त नहीं हो सकती। हाँ, दर्शन कर सकते हैं।" यह कहकर उन्होंने मुझे उसका दर्शन कराया। मेरे संतोष के लिए बेठन खोलकर महन्तजी ने उसका प्रथम पृष्ठ दिखा दिया जिसके ऊपर 'अथ श्रीमदादिरामायण पूर्वखंड ( पुस्तकालय श्री लक्ष्मण-किला ) और भीतर हाशिये पर 'भु० पू०' लिखा था। जिज्ञासा करने पर महन्तजी ने कहा, 'इसका नाम तो भुशुण्ड रामायण है जैसे भु० पू० ( भुशुण्ड रामायण, पूर्वखंड ) से स्पष्ट है किन्तु यह

आदि रामायण के नाम से भी जाना जाता है। यह साधना का ग्रंथ है। केवल दीक्षित भक्तों को दिखाया जाता है। सामान्य लोगों के काम का नहीं है।” इसके बाद उन्होंने पुस्तक पूर्ववत् वेष्ठित कर दी। इस कृपा से कृत्कृत्य हो मैं आगे कुछ कहने का साहस न कर सका। बाबाजी ने कहा, ‘इसको देखने वहुत लोग आते हैं किन्तु मैं दूर मे देखने को कह देता हूँ। खोलता नहीं। कुछ दिन पहले एक अंगरेज आये थे। उन्हें भी नहीं दिखाया।’ इस परिस्थिति में ग्रंथ को देखने का सुयोग मिल गया, यही क्या कम है? यह मोचकर अपने भाग्य की सराहना करता हुआ मैं घर चला आया। बाबाजी के मिद्दान्तप्रेम और दृढ़ता से मैं परिचित हो गया था। इसलिए इच्छा रखते हुए भी मैं उनसे ग्रंथ के अध्ययन की सुविधा देने का प्रस्ताव न कर सका।

इसके बाद जब भी मैं अयोध्या जाता तो महन्तजी से अवश्य मिलता और हर बार वे कृपापूर्वक उस ग्रंथ का दर्शन करा देते थे। इस प्रकार कई वर्ष बीत गये। बाबा रामदेवदासजी का साकेतवास हो गया। उनके उत्तराधिकारी सीतारामशरण जी हुए। गद्दी से पुराना संवंध होने के कारण मेरे कार्यक्षेत्र से वे भलीभांति परिचित थे। बाबा रामदेवदास के अंतेवासी होने से पहले उन्होंने कई बार उनसे मेरी भेट करायी थी। मैंने उनसे भी पुस्तक देखने की बात कही। वे सहमत हो गये और मन्दिर में ही बैठकर मुझे पुस्तक देखने की अनुमति दे दी। मैंने उस दिन कुछ नोट लिये, फिर घर चला आया।

बलरामपुर के पास एक गाँव में बाबाजी की खेती होती थी। मैं उन दिनों वहीं कालेज में प्राचार्य था। वे अपने फार्म पर आते-जाते हुए मेरे यहाँ पधारते थे। इससे उत्तरोत्तर घनिष्ठता बढ़ती गयी। एक दिन बलरामपुर में मेरे घर पर ठहरने के समय बाबाजी ने कहा, ‘आपको यहाँ से बार-बार पुस्तक देखने के लिए अयोध्या जाने में कठिनाई होती है, अतः अब मैं ऐसा प्रवन्ध करूँगा कि आप घर पर लाकर उसका अध्ययन कर सकें।’ यह कहकर वे अयोध्या चले गये। यह बात आश्विन के कृष्णपक्ष के अन्त में हुई थी। उसके कुछ ही दिनों बाद उन्होंने एक शिष्य द्वारा मेरे पास संदेश कहला भेजा “पुस्तक मिल जायगी आकर ले जाऊ।” उस दिन आश्विन शुक्ला सप्तमी थी ( २४ अक्टूबर, १९५५ )। मैं तत्काल अयोध्या चला गया। बाबाजी उपस्थित थे। उन्होंने बैठन में बैंधा हुआ सम्पूर्ण हस्तलेख प्रसन्नतापूर्वक दे दिया। मैं कृतार्थ हो गया।

भुशुण्ड रामायण का हस्तलेख प्राप्त हो जाने पर जिज्ञासानिवृत्ति के लिए मैं पहले उसे आद्योपान्त देख गया। प्रति खंडितं थी। फिर भी उससे मुझे यह पता लग गया कि श्रृंगारी रामोपासना का वह प्रमुख उपजीव्य ग्रंथ है। पी० एच० डी० के लिए काम करते हुए श्रृंगारी रामभक्ति का विशाल साहित्य मेरे देखने में आया था। प्रस्तुत ग्रंथ में निरूपित रामचरित में रसिक रामोपासना के सिद्धान्तों की गहरी व्याप्ति देखकर मेरी इच्छा इसी को डी० लिट० का शोध-विषय बनाने की हुई। इस धारणा से मैंने उक्त ग्रंथ की अन्य प्रतियों की खोज आरम्भ की। भगवदनुग्रह से अयोध्या में ही श्रावण कुंज के महन्त सरयूशरणजी के पास दो प्राचीनतर एवं सम्पूर्ण प्रतियाँ उपलब्ध हो गयीं। एक सं० १७७९ में मथुरा में लिपिबद्ध हुई थी और दूसरी रीवाँ में सं० १८९९ में। इन तीन हस्तलेखों के मिल जाने से मुझे अपार संतोष हुआ। किन्तु उसकी अन्य पांडुलिपियों का अनुसंधान चलता

रहा। कालान्तर में ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ोदा में एक और प्रति का पता चला। वहाँ के अधिकारियों के स्वाभाविक सौजन्य से मुझे सम्पादन कार्य के लिए वह प्रति सुलभ हो गयी। इन चार प्रतियों के आधार पर 'पूर्वखंड' का सम्पादन किया गया। बिहार के रोहतास जिले के समृद्धता नामक गाँव में एक और प्रति विद्यमान बतायी जा रही है। इसी प्रकार जयपुर में भी एक हस्तलेख प्राप्त होने की सूचना मिली है। इन दोनों में से यदि कोई प्राप्त हो गया तो उसका अगले तीन खण्डों के पाठ-निर्धारण में समुचित उपयोग हो जायगा। उक्त चारों प्रतियों का अनुशीलन करने पर ज्ञात हुआ कि उनमें पाठभेद बहुत कम है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उनकी पूर्वज प्रति एक ही रही होगी। अयोध्या के संतों के अनुसार भुशुण्ड रामायण की लक्ष्मणकिला वाली प्रति महात्मा जानकीवरशारण कुलू (काश्मीर) से लाये थे। उन्होंने सं० १९२० से १९३३ के बीच पश्चिमोत्तर भारत का पर्यटन किया था। इस यात्रा में उन्होंने कुछ वर्ष काश्मीर में भी बिताये थे। साम्प्रदायिक परम्परा के अनुसार वे रसिक रामभक्त थे। भुशुण्ड रामायण में माधुर्य रामभक्ति का प्रतिपादन देखकर इसकी ओर उनका आकर्षित होना स्वाभाविक था। उसकी प्रतिलिपि उन्होंने किस प्रकार प्राप्त की, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। उसका लिपिकाल सं० १९२१ है। मूल प्रति कहाँ गयी, इसका पता नहीं। रीर्वां तथा मथुरावाली प्रति वह हो नहीं सकती कारण कि वह अयोध्या की ही एक दूसरी सत्य-सम्प्रदाय की गद्दी से सम्बद्ध है। वह पूर्ण है जब कि लक्ष्मणकिला की प्रति खंडित है। यह तथ्य भी उक्त प्रतियों के विभिन्न स्रोतों से सम्बद्ध होने का द्योतक है। किन्तु जब तक मूल प्रति प्राप्त नहीं हो जाती तब तक उपर्युक्त मान्यता की उपयोगिता केवल इस दृष्टि से है कि शैवागम के प्रसिद्ध केन्द्र काश्मीर में प्राप्त होने से उसके स्वरूप-निर्माण में तदेशीय समसामयिक अध्यात्मसाधनाओं का भी प्रभाव संभावित है।

भुशुण्ड रामायण की उपर्युक्त पाण्डुलिपियों के साथ उसी नाम की एक अन्य रामायण से उद्धृत 'श्रीसीताराम युगलसहस्रनाम' नामक ग्रंथ पर भी विचार कर लेना सभीचीन से उद्धृत 'श्रीसीताराम युगलसहस्रनाम' नामक ग्रंथ पर भी विचार कर लेना सभीचीन होगा। इसकी पाण्डुलिपि मुझे महाराजा बलरामपुर के निजी पुस्तकालय में प्राप्त हुई थी। इसमें  $3\frac{1}{2}'' \times 1\frac{1}{2}''$  आकार के ७९ पत्र हैं, प्रति पृष्ठ में मात्र तीन पंक्तियाँ हैं और छंद सत्या कुल १३१ है। ग्रन्थ की पुष्पिका इस प्रकार है:—

"इति श्री भुशुण्डी रामायणे ब्रह्मानारदं संवादे बालकांडे द्वासीतिरध्यायः ॥१२॥  
इति श्रीसीतारामजुगल सहस्रनाम संपूर्णम् । शुभमस्तु ॥ श्री श्री ॥"

इसके अंतर्गत नारद के प्रश्न करने पर ब्रह्मा द्वारा 'सीताराम युगलसहस्रनाम' की जपविधि तथा उसके ऋषि, मंत्र, बीज, शक्ति, अंगन्यास, करन्यास आदि का वर्णन है। सहस्रनाम के अंतर्गत ही रचयिता ने सारा रामचरित कह डाला है। अंत में फलश्रुति दी गयी है—

सीताराम सहस्रनाम युगलं सद्वैष्णवानां धनम् ।  
ये शृण्वन्ति पठन्ति पूजनपराः रामैक तादात्मनः ॥  
ते भक्ताः कवयो धनाद्य सुखिनो सत्पुत्र मानावराः ।  
वाजीवारणसैन्यकाधिपतयो विस्तार कीत्ययुतः ॥

सीताराम सहस्रनाम युगलं श्रोताथवापाठकः ।  
 श्रद्धाभक्तियुतेन शुद्धमनसा देवादिभिर्वंदितः ॥  
 तस्यैवं भवति ध्रुवं हृदि हरिः संगक्तियुक्तस्थितः ।  
 कृत्यांशापनिवारकः कुलपतिर्वंकुण्ठदायं भजेत् ॥  
 गंगा स्नान तडाग कूप खननादानादगंगा पिण्डदात् ।  
 तीर्थानामटनात् प्रयागकरणादश्वादि संपद प्रदात् ॥  
 यत्पुर्णं लभते हयाऽध्वरकृते चांद्रायणानां व्रतात् ।  
 सीताराम सहस्रनाम पठनात्तत्सर्वदां प्राप्यते ॥<sup>१</sup>

ग्रन्थकार ने इसकी रचना सीताराम विवाह के अवसर पर शाखोच्चार के रूप में शर्तानन्द तथा वशिष्ठ द्वारा की गयी बतायी है। इसलिए राम की माधुर्य-लीला के उपासकों के लिए यह विशेष रूप से मननीय कहा गया है—

श्रीसीतारामयोर्दिव्यं माधुर्यं चरितं वरं ।  
 सहस्रनाम युगलं यदभूत्परिणयोत्सवे ॥<sup>२</sup>  
 सुदेयं सदुपासकान् प्रेमभक्ति समन्वितान् ।  
 इदं सर्वस्व परमं न देयं चान्यमार्गिणः ॥<sup>३</sup>

नामों के वर्णन में सीताराम की शृंगारी लीलाओं को प्रमुखता दी गयी है। प्रमोद-वन में उनके द्वारा रचाये गये रास तथा अनेक प्रकार की अन्य माधुर्यपरक क्रीड़ाओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है—

उर्वी कन्या सुकेशी च मंजुघोषादिवेष्ठिता ।  
 प्रमोदारण्यरामेषु रमो नृत्यपरायणाः ॥  
 प्रमोदारण्य रसिका प्रमोदारण्य भाषिता ।  
 प्रमोदारण्य नटनः प्रमोदारण्यकेलि कृत् ॥  
 प्रमोदवन पुष्पान्या प्रमोदवनगामिनी ।  
 प्रमोदवन हर्षाद्यः प्रमोदारण्य रास कृत ॥<sup>४</sup>

इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि श्रीसीताराम युगल सहस्रनाम नामक यह ग्रन्थ जिस 'भुशुण्ड रामायण' का अंश बताया गया है, वह भी प्रस्तुत 'भुशुण्ड रामायण' की भाँति शृंगारी रामोपासना का ही कोई अन्य ग्रन्थ रहा होगा। आलोच्य ग्रन्थ से उसे भिन्न मानने के कई कारण हैं :—

१. प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राप्त राम और सीता के सहस्रनाम संदर्भित ग्रन्थ के 'युगल सहस्रनाम' से सर्वथा भिन्न हैं।

- 
१. श्रीसीताराम युगलं सहस्रनाम, छं० १२९, १३०, १३१ ।
  २. वही छं० ५ ।
  ३. वही, छं० १२९ ।
  ४. वही, छं० १२, १३, १४ ।

२. प्रस्तुत ग्रन्थ पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन चार खण्डों में विभाजित है, किन्तु श्रीसीताराम युगल 'सहस्रनाम' वाला 'भुशुण्डरामायण' जैसा उसकी पुष्टिका से प्रकट है, काण्डों में विभाजित प्रतीत होता है क्योंकि यह सहस्रनाम बालकाण्ड का अंश कहा गया है।

३. प्रस्तुत ग्रन्थ में वर्णित 'सहस्रनाम' में राम-कृष्ण तथा सीता-राधा की लीलाओं का समन्वित वर्णन है। किन्तु नवप्राप्त ग्रन्थ में मात्र रामावतार की लीलाओं का उल्लेख है।

४. प्रस्तुत ग्रन्थ में सहजा को राम की पराशक्ति माना गया है। किन्तु 'श्रीसीताराम युगल सहस्रनाम' में उनका नाम तक नहीं आया है।

इन विभिन्नताओं को देखते हुए मेरा यह अनुमान है कि 'श्रीसीताराम युगल सहस्रनाम' का अंगी ग्रन्थ 'भुशुण्ड रामायण' रसिक रामभक्ति से सम्बद्ध होते हुए भी प्रस्तुत 'भुशुण्ड रामायण' से पृथक् कोई अन्य रचना है, जिसका संधान अब तक नहीं मिल सका है। यह भी असंभव नहीं कि अनेक स्तोत्रों तथा सहस्रनामों की भाँति किसी सम्प्रदायनिष्ठ मनस्वी ने धर्म मावना से प्रेरित होकर 'युगल सहस्रनाम' को रचना करके महत्त्व अक्षुण्ण रखने तथा श्रद्धालुओं को आकृष्ट करने के उद्देश्य से उसे परंपराप्रसिद्ध 'भुशुण्ड रामायण' से सम्बद्ध कर दिया हो। किन्तु यह अनुमान ही है। संभव है भविष्य में निर्दिष्ट प्रति के प्राप्त हो जाने पर यह निराधार सिद्ध हो जाये।

आलोच्य ग्रन्थ की पाण्डुलिपियों के प्राप्ति-स्थलों के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि उत्तरी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में श्रृंगारी रामभक्तों के बीच इसका व्यापक प्रचार था। इसे प्रसंग में यह प्रश्न स्वतः उठता है कि यदि गोस्वामी तुलसीदासजी की परवर्ती रामभक्ति धारा में माधुर्योपासना का स्वर ही सर्वाधिक सशक्त रहा है और प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना भी उसी दृष्टिकोण से हुई है तो फिर रसिक साधना के साथ ही इसका भी लोकव्यापी प्रचार क्यों नहीं हुआ? यह समस्या मैंने स्वयं ग्रन्थोपलब्धि के समय विद्यमान सम्प्रदाय के मान्य वयो-वृद्ध आचार्यों—श्रीरामकिशोरशरण, महात्मा विदेहजाशरण और जयपुर मन्दिर के महन्त श्रीराजकिशोरीवरण के समक्ष रखी थी। समाधान के रूप में उन सबों का यह कहना था कि पूर्वाचार्यों ने रामचरित के माधुर्यपक्ष को गोप्य माना है और उसके लोक-प्रचार का कड़े शब्दों में निषेध किया है। भगवान् राम की माधुर्यकेलि साधकों की मानसीपूजा का विषय है, प्रकट अथवा व्यावहारिक उपासना का नहीं। इसीलिए अगस्त्यसंहिता, हनुमत्संहिता और कोशलखण्ड ऐसे मान्य ग्रन्थों का भी लोक-प्रचार न हो सका। श्रीकृष्णचरित में रास, अवतार-लीला का एक अविभाज्य अंग है, किन्तु रामचरित में वह मात्र नित्य अथवा अवतारी-लीला का। आगे चलकर मुझे इस तथ्य के समर्थन में भुशुण्डरामायण के अन्तर्गत ही कतिपय उल्लेख प्राप्त हो गये। कथा के उपरांहार में ब्रह्मा इस दिव्य चरित को समाधि की दशा में दैवी स्फुरण द्वारा उपलब्ध बताकर उसे अत्यंत गोपनीय रखने का आदेश देते हुए कहते हैं—

इति ते सर्वमाख्यातं भुशुण्ड क्रमतोमया ।

आदि रामायणं नाम श्रीरामचरितं शुभम् ॥

एतत्कल्पभवं चापि कल्पांतरभवं तथा ।

समाधावुपलब्धं यत्सारं सारं विमृश्य च ॥

इदं ते गुह्यवद्धीयं न प्रकाश्यं कथंचन ।  
प्रभोरेवाज्ञयाप्रोक्तं रामस्यकरुणांवुद्यः ॥<sup>१</sup>

हनुमत्संहिता में भी राम की माधुर्यलीला को गुह्यात्-गुह्यतर माना गया है—  
विभीषणाद्याश्च ये साध्या वैष्णवा वैष्णवी तथा ।  
सर्वेषामप्यलभ्यं यत्माधुर्यं जानकीपतेः ॥  
रसिकानां हृदाह्लाद कारिणीं पावनी कथाम् ।  
कथयंति महात्मानः प्राप्नुवन्ति हरेपर्दं ॥  
साधुपृष्ठोऽसि ब्रह्मर्षे मनसैवेति निश्चितम् ।  
गुह्यादगुह्यतरं दिव्यं तवप्रीत्या वदाम्यहम् ॥  
पावनं सर्वसाधूनां रसिकानां च जीवनम् ।  
न देयं कस्यचिदेतत्प्राणात्प्रियतरं महत् ॥<sup>२</sup>

मेरा विचार है कि राम की रासलीला तथा अन्य प्रसंगों में चित्रित घोर शृंगारी चेष्टाओं को ये वैष्णव-भक्त सामाजिक नैतिकता की दृष्टि से अनुचित और आराध्य के लोकप्रतिष्ठित मर्यादापुष्ट स्वरूप के विपरीत समझते थे । इसलिए उनके प्रकाशन पर कड़े प्रतिबन्ध लगाये गये । यद्यपि विलासिता के ऐसे स्थूल तथा उन्मुक्त चित्रण कृष्ण के रास तथा अन्य लीला-वर्णनों में, भागवत एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण में, भरे पड़े हैं । किन्तु लीलावतार होने से वहाँ लोक तथा परलोक दोनों दृष्टियों से उसे अभिनन्दनीय मान लिया गया था । राम की अवतार-लीला में ऐश्वर्य की प्रधानता थी । इसलिए उनकी मर्यादित लीलाएँ ही प्रकाश्य कही गयीं । यहाँ माधुर्य गोप्य था अतः वीतराग तथा साधनानिष्ठ महापुरुषों के लिए भी उसकी साधना दुरुह बताई गयी—

श्रुतं रामस्य माहात्म्यं तव वक्रान्महाकवे ।  
ऐश्वर्यमतुलं तेजः प्रभावं परमात्मनः ॥  
माधुर्यं गोपनीयं च यदलभ्यं सुरासुरैः ।  
ब्रह्मावेदविदांश्रेष्ठ कपिलोनारदस्तथा ॥<sup>३</sup>  
अस्याधिकोरणे लोके केऽपि केऽपि महामुने ।  
अतः सर्वप्रयत्नेन गोपनीयं सदैव हि ॥<sup>४</sup>

‘श्री सीताराम युगल सहस्रनाम’ में भी राम की शृंगारी लीलाओं की रहस्यमयता का प्रतिपादन किया गया है—

इदं ते कथितं वत्स श्री सीतारामयोः शुभं ।  
सहस्रनाम युगलं भावुकानां मनोज्ञहं ॥  
तस्मात्प्रयत्नेन भो वत्स ! वैष्णवानां महद्वनम् ।  
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नन्तः ॥<sup>५</sup>

१. भुशुण्डि रामायण, उत्तरखण्ड ६२, ५३, ५४, ५५ ।

२. हनुमत्संहिता २१७, १०, ११, १३ ।

३. वही, ११३ ।

४. वही, २६।५६ ।

५. श्री सीताराम युगल सहस्रनाम-छं० १२५, १२६ ।

इसके फलस्वरूप यह ग्रन्थ केवल रसिक सम्प्रदाय के मर्मसाधकों के बीच एक सीमित क्षेत्र में ही पढ़ा-मुना जाता था। विद्वानों एवं रामकथा के प्रेमियों की दृष्टि से वह निरन्तर ओझल रहा। ग्रंथस्वामी इसे साम्प्रदायिक रहस्य के रूप में सुरक्षित रखते रहे इसलिए प्रकाशित करने का प्रश्न नहीं उठा। मैंने स्वयं जब इसके सम्पादन की योजना बनायी तो कुछ प्रतिष्ठित सम्प्रदायाचार्यों ने गोपनीय साम्प्रदायिक साधना के तत्त्वों को सार्वजनिक सम्पत्ति बनाने के इस प्रयास का तीव्र विरोध किया किन्तु पर्याप्त विमर्श के अनन्तर इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में आश्वस्त होकर वे शान्त हो गये। प्रकृत ग्रंथ की उपलब्धि और प्रचार-विषयक यह वृत्त देने का प्रयोजन मात्र इतना है कि भुशुण्ड रामायण के अद्यावधि अप्रकाशित रहने के कारण स्पष्ट हो जाए।

### ग्रंथ का नाम तथा रचयिता

भुशुण्ड रामायण के प्राप्त हस्तलेखों में इसके तीन नाम और दिये गये हैं—आदि रामायण, ब्रह्म रामायण तथा भुशुण्ड रामायण। ब्रह्मा ने ब्राह्मकल्प में समाधि की स्थिति में स्फुरित रामचरित की अवतारणा इसके माध्यम से की<sup>१</sup> इसलिए आदि रामायण, परात्पर ब्रह्म राम के अवतार तथा अवतारी चरित्र का प्रकाशक होने से ब्रह्म रामायण और भुशुण्ड की जिज्ञासा निवृत्ति के निमित्त निर्मित होने से भुशुण्ड रामायण नाम की सार्थकता प्रतिपादित की गयी है। इन तीनों में से भुशुण्ड रामायण नाम ही अधिक लोकप्रचलित है। ‘युगल सहस्रनाम’, ‘राम नवरत्न सार संग्रह’, ‘रामचरितमानस की निगमागमी टीका’ आदि में यही नाम उल्लिखित है और संत-समाज में भी यह इसी नाम से प्रसिद्ध है। मेरी सम्मति में अन्य दो नामों के अप्रचलित होने का कारण उनके द्वारा भ्रान्ति प्रसार की संभावना थी। आदि रामायण के रूप में वाल्मीकि रचित प्रबन्धकाव्य चिरप्रतिष्ठित<sup>२</sup> है और ‘ब्रह्म रामायण’ नाम रखने से उसे राम के संगुण

१. आदि रामायणं नाम श्री रामचरितं शुभम् ॥

किञ्चित्समाधवालोक्य प्रवक्ष्यामि प्रयत्नतः ।

अवतार चरित्रं च मूल चरितमेव च ॥

एकीकृत्य लभेद्यत्र प्रवक्ष्यते मया द्विज ॥

एवं मया भुशुण्डाय प्रोक्तं तत्संहितामयम् ।

आदि रामायणं नाम ब्रह्मे कल्पे विनिर्मितम् ॥

तच्छ्रूयतां सुराः सर्वे श्री रामचरितं शुभम् ॥

भु० रा० पूर्वखंड ७।२९-३२

२. हिन्दुत्व [पृ० १३७] में इसके अतिरिक्त एक और ‘आदि रामायण’ की चर्चा आयी है। यह ‘महारामायण’ के नाम से भी जाना जाता है। इस ग्रंथ की जो विषय-सूची दी गयी है उससे प्रकट होता है कि इसकी भी रचना शृंगारी रामभक्ति परम्परा के किसी विद्वाने की थी। अनेक प्रसंगों में इसके वर्णन भुशुण्ड रामायण से मिलते-जुलते हैं। इधर ‘महारामायण’ के जो अंश स्फुट प्रसंगों के रूप में उपलब्ध हुए हैं उनमें शृंगारी रामभक्ति का निरूपण पाया जाता है। किन्तु कथाभाग अप्राप्य है। बाबू रामदास गौड़ ने इस पूरे ग्रंथ को अप्राप्त बताया है। मेरा अनुमान है कि आदि रामायण नाम से प्रसिद्ध उक्त रचना भुशुण्ड रामायण की ही परम्परा का कोई शृंगारी रामचरित काव्य रहा होगा।

चरित के स्थान पर उनकी निर्गुणलीला का प्रतिपादक समझे जाने का खतरा था। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रंथ के तत्त्वों के वक्ता-श्रोता परम्परा से प्रमृत होने की प्रक्रिया प्रचलित राम-धरितों से सर्वथा भिन्न है। उसके अनुसार यह कथा मर्वप्रयम राम ने सीता को प्रमोदवन में सुनायी फिर सीता ने लक्ष्मण और लक्ष्मण ने भरत को बताया। उमे ही राम के मुख से कभी हनुमान ने सुना। फिर वही कथा ब्रह्मा ने हयग्रीव और मुनियों ने अगस्त्य से प्राप्त की। भुशुण्ड को ब्रह्मा तथा धरणी को शेष द्वारा राम का वही रहस्यपूर्ण चरित मुनने को मिला।<sup>१</sup> इसी परम्परा से भुशुण्ड रामायण के अतिरिक्त दो अन्य ग्रंथों का भी अवतरण हुआ। ये हैं—हनुमत्संहिता और ब्रह्मसंहिता<sup>२</sup>। उपर्युक्त परम्परा में विरचित रामचरित काव्यों अथवा मिद्दान्त ग्रंथों में से अब तक केवल हनुमत्संहिता और ब्रह्मसंहिता उपलब्ध हो सकते हैं किन्तु उनमें से एक के परम्पराया प्राप्त तथा भुशुण्ड रामायण में निर्दिष्ट आकार में बड़ा अन्तर है। इतर परम्पराओं में लिखी गयी रामायणों के सम्बन्ध में कोई तथ्य उपलब्ध नहीं है। ‘हिन्दुत्व’ में दिये गये रामायणों की सूची यदि विश्वसनीय मानी जा सके तो अगस्त्य रामायण को इसी परम्परा में निर्मित कहा जा सकता है।<sup>३</sup>

### रचनाकार

छत्तीस हजार श्लोकों के इस विशाल ग्रंथ का परितः अनुशोलन करने पर भी कहीं और किसी भी रूप में इसके निर्माता का संधान नहीं मिलता। प्रतीत होता है कि उस महापुरुष ने कथा के वक्ता ब्रह्मा के विराट् व्यक्तित्व में ही अपनी काव्य-प्रतिभा के लोकोत्तर प्रकाश को लय कर दिया। इस प्रकार व्यास, वाल्मीकि एवं शुक्रदेव के नाम पर पुराण, स्मृति एवं गाथाओं की रचना करनेवाले आत्मलयी साहित्यकारों की भक्तिभागीरथी में एक और श्रद्धादीप प्रवाहित हुआ।

### कथा-संयोजन

आलोच्य ग्रंथ में सम्पूर्ण रामकथा चार खण्डों में विभक्त है—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर। पूर्वखण्ड में राम के जन्म से लेकर युवराज पद पर प्रतिष्ठित होने तक का वृत्त प्रस्तुत किया गया है। पश्चिम खण्ड में विवाह और उसके उपरान्त अयोध्या आगमन की कथा है। दक्षिण खण्ड में राम वनगमन से लेकर राज्याभिषेक तक और उत्तरखण्ड में राम की परिकरों एवं प्रजा के साथ नित्यवाम यात्रा का वर्णन है। इनके अतिरिक्त रामराज्य की सम्पन्नता, सीता-वनवास, लक्ष्मण की तिरोधान लीला, दशरथ की तीर्थयात्रा, रावण की दिव्यिजय यात्रा और सहस्रार्जन से उसका युद्ध, चित्रकूट में राम की विहार लीला, सीता जन्मो-पाख्यान, सरयू जन्म-कथा, मन्दाकिनी की उत्पत्ति, पादुका राज्य-वर्णन, आभीरों की चित्रकूट यात्रा, विष्णु का मोहिनी रूपधारण, रावण-तप, मेघनाद की इन्द्रविजय आदि कथाएँ प्रसंगवश कहीं क्रम से और कहीं परिस्थितिवश क्रम का बिना ध्यान रखे, चारों खण्डों में सन्निविष्ट मिलती हैं।

इस सम्बन्ध में एक बात विशेष ध्यान देने की यह है कि पूर्वखण्ड में चित्रित राम

१. भृ० रा० उत्तर० ६३।५६, ५७, ५८।

२. भृ० रा० पूर्व० १०।१२०, २१, २२।

३. हिन्दुत्व, पृ० ३८।

ੴ ਸਾਹਿਬ

स्त्रीं रुतायन् नमः सामेनाकृष्णविष्णुः एते एवमेहर्वरेण्यासंपूर्णतिमारोक्षिणः ॥  
चित्यसर्वदानन्दपत्त्वस्थैरन तदव्ययस्तः उसागोच्चरभयतिष्ठत् इति किञ्चाप  
सेवते प्राप्तादवनमज्जूत मुनयः सात्त्वत्पर्यामानासाभिस्त्राव्यक्ताः वृक्षावाच दृष्ट्युक्त्वा द्विभू  
भमध्यात्तराम् पूराण्यमूर्त्यसनुमानः ॥ अश्रुषाशिरावदादिश्चरणस्थापामीस्तत्युर्वते  
पूर्वदिशापुर्वानुज्ञात्तरामामज्जूत ॥ अश्रुषाश्रमनिनेत्याद्वृत्तवक्त्राः पूर्वा पि  
गतः साधुगोपायादुदन्फलाशता ॥ भावयतोपादुच्छिसातुरजनानकायेत पैरेषुत  
प्रत्यहपूरणः प्रभान एदद्वैभव्यात्तराममध्यव्याप्ते विस्मयात्तरायामा ॥ ग गहिर्याम  
परायपृष्ठः तत्त्वदुस्त्रियाध्यापामत्प्रप अस्त्वद्वृष्टिः तेजानेनभाविष्यत्तिसहजात  
मपाश्यग्नः पृथग्नाधारमनप रक्षितासीएताभ्युत्ता इत्यहिप्रत्यामुक्तिभूतान् ॥  
तत्कां पौष्ट्रया नियन्त्यात्तरामामज्जूताः पृथग्नाध्यापादुर्वत्तमा ॥ त्वयपर्वति  
पानम् रिमापित्तरोपमः लोक्यतिवित्तस्त्रियापिण्यतो ब्रह्मणात्तद्वित्तरामत्तयचः ॥ ७३ ॥  
इति श्रीमद्बादिग्रनथरामायामानुष्टुप्तस्त्रियादपूर्वतेऽभवत्तिजननस्थापनामध्याङ्कत्वां ऋषिः  
शाध्यकरतमोधायः उच्चत ३२२८ के प्राप्तश्लोके सिद्धितेर्विद्या ॥ ८८ ॥

म० १८६६ के हस्तलिखित 'भुशुगिड रामायण' ( रीवाँ )  
का अंतिम पाठ '

ताकन्तासेष्टतरमुर्विल्लयंकमाणिदिवानेसः यान्मुजोपजनेविधूतकल्पवस्त्रं रुग्मासादेवेऽप्येत्यन्वेचत्वं  
तेभवनप्राप्तेविषुक्तश्चिरंरेण। इत्येतत्प्रमुदावाविषुक्तरागस्त्रद्युसोख्यात्मनोरमस्पामित्तसह योग्यमज्जलाणा  
नन्मामलंकर्मचनक्रासंस्कारे तेषामानवोजावनिषुक्तश्चस्वनेत्रलाजपुष्टरथयान्त्रयमन्वेत्वा  
इवेदा॥२१॥ ॥दृष्टश्चीमदादिरामापणबलठुरेऽसंवादे प्रत्येष्वभलीत्ताकथं नन्मामदाग्निविद्वान्  
समाप्त्वा श्वासादेवहि एवेदः॥ संवर्प्पत्तिष्वन्तलालदासमथुरामधे॥ श्वासाद्यापानम्॥ अ॥ श्वासा॥  
अ॥ अ॥ गम्भिरिन्॥ न विग्नं तत्त्वम्॥

ਤੁਲਕ ਮਦ ਅਮੀਰ ਸਿਵਾਨ ਹੁਲਾ ਨੁਜੀ ਪ੍ਰਾਨੇ ਰਾਖੇ ਬੈਂਦੂ ਭਾਗ ਅਗੋਸ਼ੇ

मं० १७७६ के छस्तलिखित 'भुशुग्राम रामायण' ( मथुरा )  
का अंतिम पष्ठ

85

इष्टादिसमल्प्रहात् यत्पूर्णं  
लज्जेहयाऽध्वरहृते चांका  
यरानां ब्रह्मतात् सातुरप्रस

हस्तामपरनत्तस्विन्द्रप्रा-  
यते १३ इतिक्षुसुंदीरणा-  
यतोजस्तामाहसंवदेवालाः

‘भुशुरिंड रामायण’ ( बलरामपुर ) के बालकांडांतर्गत  
सीताराम युगल सहस्रनाम  
का अंतिम पृष्ठ

प्रमुख वनकूनिंदाक्षिण्य प्रभुशामिदिः प्रियमस्तजेष्वर्णवनचंद्रचकोरयग्ननयन्यन्युग्मिभेष्यन्ति धनावृक्षद्वयः ३५ इतीर्थीप्रदार्दिग्मायरावस्तुस्तुस्तुस्तु उत्तरवेदे ग्रंथमा हात्या दिनिस्पृणानामाप्तिपृष्ठागतमाध्यापः ४३ संघर्ण १०० रु के चैत्रलक्षणः १० युरोका लिंगावाच्चीप्रियवृभगवतीप्रसाद

की बाल तथा कंशोर लीलाएँ श्रीमद्भागवत के आदर्श पर ही वर्णित हैं। कहीं-कहीं तो रामनाम हटा देने पर वे कृष्ण की लीलाओं के सर्वथा मेल में आ जाती हैं। रचयिता ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अयोध्या के समीप सरयू के उस पार गोप-प्रदेश की कल्पना की है। राक्षसों के भय से विवाह के पूर्व तक चारों भाइयों का बाल्य-जीवन वहीं व्यतीत होता है। राम गोपों और गोपिकाओं से इस प्रकार स्थापित घनिष्ठ सम्बन्ध का आद्योपान्त निर्वाह करते हैं। सहजा नाम की गोपी उनकी स्वात्म-शक्ति के रूप में कृष्ण-कथा की राष्ट्र के समान ही समादृत है।

साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण श्रृंगारी रामोपासना के उपजीव्य विविध कथाप्रसंगों की योजना से अनेक स्थलों पर मूलकथा आच्छादित और उसका प्रवाह बाधित हो गया है। इसके फलस्वरूप कहीं-कहीं कथासूत्र लुप्त होता सा प्रतीत होने लगता है।

प्रचलित रामायणों में विशेष रूप में अध्यात्म्य रामायण से इसकी कथावस्तु का साम्य दिखायी देता है फिर भी उपक्रम, उपसंहार तथा उपबूँहण में ऐसी अनेक मौलिक उद्भावनाएँ हैं जिनसे पूरी कथा आदि से अन्त तक अत्यंत आकर्षक हो गयी है।

भेद केवल दार्ढनिक मान्यताओं का है। अध्यात्म्य रामायण अद्वैतदर्शन से परितः प्रभावित है। यह उसके कथा तथा उपदेश भाग में प्राप्त सैद्धांतिक उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है। किन्तु भुशुण्ड रामायण श्रीसम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का पोषक है। भगवान की रसात्मिका लीलाओं के उद्भावन तथा संयोजन में रचयिता की वृत्ति विशेष रूप से रमी है। उसने रामकथा के परंपरागत प्रसंगों में यथावसर बड़े ही महत्वपूर्ण संशोधन एवं परिवर्धन किये हैं जिससे व्यक्तिस्त्रभाव एवं सामाजिक मनोविज्ञान के भीतर उसकी गहरी पैठ और अभिव्यंजना-शक्ति की प्रखरता का पता चलता है। ऐसे प्रसंगों के माध्यम से चिरपरिचित रामकथा में सन्निविष्ट आकर्षण के नवांकुर पाठक को विस्मय-विमुग्ध कर देते हैं।

### रचनाकाल

धर्मग्रंथों तथा साहित्यिक रचनाओं में कृतिकार द्वारा आत्म-परिचय तथा निर्माण तिथि न देने की भारतीय परंपरा का आलोच्य ग्रंथ में भी पूरा सक्कार किया गया है। ऐसी स्थिति में उसके सम्भावित प्रणयन-काल के निश्चय का एकमात्र मार्ग शैली तथा विषयगत अंतःसाक्ष्य ही रह जाता है। ऐसे एक भी बाह्यसाक्ष्य प्राप्त नहीं है जिनसे लेखन-काल-विषयक कोई उल्लेखनीय प्रकाश प्राप्त हो सके। अतः आलोच्य ग्रंथ में एतद्विषयक उपलब्ध सूत्रों पर संक्षेप में विचार कर लेना समीचीन होगा।

### (क) हस्तलेखों का लिपिकाल

भुशुण्ड रामायण की उपलब्ध प्रतियों में सर्वाधिक प्राचीन मथुरा की प्रति है जिसका प्रतिलिपि काल सं १७७९ वि० है। जयपुर तथा आरा (बिहार) की प्रतियों के प्राप्त न होने से उनके लिपिकाल के संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इससे मात्र इतना विदित होता है कि १८ वीं शती में इस ग्रंथ का उत्तरी भारत के भक्ति-केन्द्रों में प्रचार हो गया था। दुर्भाग्य से इस ग्रंथ की उपलब्ध चारों प्रतिलिपियों में आदर्श पाण्डुलिपियों का हो गया था।

उल्लेख नहीं है। इस कारण इनके द्वारा प्रतिलिपि परंपरा की स्थापना तथा मूल प्रति के लिपिकाल के संधान में कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं प्राप्त होता।

### (ख) तांत्रिक प्रभाव

भुशुण्ड रामायण के कथात्मक वैशिष्ट्य तथा आच्यात्मिक तत्त्वों पर पूर्व मध्यकालीन तांत्रिक साधना का अत्यंत व्यापक एवं गम्भीर प्रभाव लक्षित होता है। तीसरी शती में लेकर १२ वीं शती अर्थात् निरन्तर एक हजार वर्षों तक इस देश की साधनापद्धति तन्हों में आक्रान्त रही है। इस काल में कापालिक, कौल तथा उत्तरकालीन ब्रीदों के वज्रयानी, महजयानी और गुह्यशक्ति-साधना का अपूर्व विकास हुआ। शैव तन्हों में पुहप-शक्ति तथा शाक्त तन्हों में स्त्री-शक्ति को प्रधानता दी गयी है। इन दोनों तत्त्वों के मंगटट अथवा युगनद्व रूप की उपायना के लिए विविध साधनाओं का प्रवर्तन हुआ। उत्तर कौलों ने नवीं तथा १० वीं शती में कुल (शक्ति) तथा अकुल (शिव) के सामरस्य को हो त्रिपुरमुन्दरी की मंज़ा दी और इस प्रकार कामेश्वर-कामेश्वरी का समन्वय ही साधना का अन्तिम लक्ष्य निश्चित किया। योग-साधना में इस लक्ष्य की पूर्ति मूलाधारस्थ कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर सहस्रारस्थ शिव से मंगम कराने की प्रक्रिया द्वारा सिद्ध हुई।

भुशुण्ड रामायण के रचयिता ने पात्रों के शील-निरूपण तथा चरित्र-चित्रण में इन सभी साधनाओं के आधारभूत तत्त्वों का यथावसर सन्निवेश किया है।

### कापालिक

कापालिक शैव तांत्रिक थे। ये शक्तिनाथ शिव को केवल ज्ञान तथा शक्ति को उपासना का विषय मानते थे। इनमें शक्ति के चँडी अथवा महिपर्मदिनी रूप की विशेष प्रतिष्ठा थी और उनकी उपासना की विचित्र पद्धतियाँ प्रचलित थीं—जिनमें श्मशान-साधना प्रमुख थी। भुशुण्ड रामायण में तत्कालीन वैष्णवों द्वारा की जानेवाली नवरात्र की महाष्टमी को चण्डी पूजा की चर्चा है। मेरे विचार में यह कापालिकों का ही प्रसाद था। शैव-शास्त्र मतानुयायियों के वैष्णवधर्म में दीक्षित होने से इस प्रकार की समन्वयी प्रवृत्ति का विकास अनिवार्य था—

एकादाहं सिताष्टम्यां चण्डिकार्मचितुं गतः।

श्मशानस्थां श्यामलेशानीं साक्षामहिषमर्दिनीम् ॥

रात्रावुयोषितः स्नातः पूजयित्वा हरिप्रियाम् ।

चकारचोत्सवं तत्र गीतवाद्य पुरः सरम् ॥१॥

कापालिकों के वेष एवं क्रिया-कलाप का भी वर्णन आलोच्य ग्रन्थ के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट सन्दर्भों में प्राप्त होता है। देवताओं तथा असुरों द्वारा समुद्रमन्थन के समय कन्यारूप में वारुणी देवी का आविर्भाव हुआ। वे पंचमुखी तथा त्रिनेत्रा थीं। उनकी १८ भुजाएँ विविध आयुधों एवं उपादानों से सुसज्जित थीं, जिनमें कापालिकों द्वारा धारण किये जानेवाले ‘कपाल’ तथा ‘खट्टवांग’ भी थे। गोरखनाथ के पूर्ववर्ती शैव कापालिकों की वेष-सज्जा के यही दो प्रमुख उपादान थे। वारुणी देवी का सेवन तो उनका जीवन-लक्ष्य ही था—

ततश्चादौ विरासीन्मथ्यमाना सुरासुरैः ।  
 कन्यारूप धरादेवी वारुणी या सुरप्रिया ॥  
 हिम कुन्देन्दु धवला पंचवक्त्रा त्रिलोचना ।  
 अष्टादश भुजैर्युक्ता सद्यानन्द कारिणी ॥  
 शुभासने समासीना प्रमत्त वृषभोपरि ।  
 नीलकंठी तडित्तुल्या सर्वाभरण भूषिता ॥  
 कपाल खट्वांगवरा धण्टा डमरु वांदिनी ।  
 परशांकुगधरा देवी गदा मूशल धारिणी ॥<sup>१</sup>

अहमाण रचित 'संदेशरासक' में भी कापालिनी द्वारा इनके धारण किये जाने का उल्लेख है—

तुय समरंत समाहि मोहु विसमटिठ्यउ,  
 तहि खणि खुवइ कवालु न वामकरटिठ्यउ ।  
 सिज्जासणउ न मिल्हउ खण खट्टंग लय,  
 कावालिय कावालिण तुय विरहेण किय ॥<sup>२</sup>

भारतीय धर्म-साधनाओं के इतिहास का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि दसवीं शती के आस-पास कापालिकों का बड़ा जोर था । जैन कवि पुष्पदंत विरचित महापुराण तथा 'मालती माधव' में इनका उल्लेख पाया जाता है । उससे यह भी ज्ञात होता है कि शैव मतानुयायी थे और मद्यपान करते थे ।

## २. कौल

नाथपंथ के प्रवर्तन के पहले पूर्वोत्तर भारत में कौलों का बड़ा प्रभाव था । गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ इसी मत के अनुयायी थे । उन्होंने इसकी दीक्षा कामरूप में ली थी । और योगिनी-कौलमत का प्रवर्तन किया था ।<sup>३</sup> इसमें कापालिक और बौद्धमत के अनेक तत्त्व ज्यों के त्यों गृहीत हो गये थे । शक्ति अथवा स्त्री-पूजा इनकी विशेषता थी । भुशुण्डि रामायणकार ने सीता को 'योगिनी परमाकला' की संज्ञा संभवतः इस वामपंथी योगसाधना से ही प्रभावित होकर दी है—

'खेचरी भूचरी सिद्धा योगिनी परमाकला ।'<sup>४</sup>

इस मत के अनुयायी नैतिक एवं सामाजिक मर्यादाओं 'पाशों' अथवा 'बन्धनों' को तोड़ने में ही अध्यात्म साधना की सार्थकता मानते थे—

१. भु० रा० दक्षिण खण्ड, १६३।११, १३, १५, १६
२. संदेशरासक, पृ० २२
३. महायोगिनी कौले मत्स्येन्द्र पादावतारिते ।  
कामरूपे इदं शास्त्रं योगिनीनां गृहे गृहे ॥
४. भु० रा०, पृ० ४९।२९

अनाचारः सदाचारस्त्वकार्यं कार्यमेव च ।  
 असत्यमपि सत्यं स्यात् कीलिकानां कुलेश्वरि ॥  
 घृणा लज्जा भयं शोको जुगुप्सा चेति पञ्चमम् ।  
 कुलं शीलं तथा जातिरष्टी पाशाः प्रकीर्तिताः ॥

आलोच्य ग्रन्थ का रचयिता कीलों के इस लोकविरोधी आचरण में पूर्णतया परिचित था । इसीलिए उसने उनकी साधना-प्रणाली को अघोर-पंथियों के 'छलयोग' का प्रतिस्फुट कहा है—

छलयोगस्तथा सांख्यं वामं शाकं तथैव च ।  
 सिद्धान्तः कीलमार्गश्च कर्मासङ्कल्पश्च वंदिकः ।  
 इत्यादीन् वर्जयेत् मार्गान् लोकव्यामोहकारकान् ॥१

यह बात विचार करने की है कि ग्रन्थकर्ता ने उपर्युक्त जिन 'लोक-न्यामोहक' पथों की चर्चा की है, वे सभी १२ वीं शती के पूर्ववर्ती हैं । मेरा अनुमान है कि 'छलयोग' से उसका तात्पर्य योगमूलक कील-साधना से है । कारण कि पूर्वमध्यकालीन साधन मार्गों में नाना रूपधारी कील ही लोक-प्रवंचना के लिए सर्वाधिक दुर्नामि थे । निम्नांकित प्रसिद्ध उक्ति इनकी चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करती है—

अन्तः शाक्ताः वहिर्श्वाः सभामध्ये च वैष्णवाः ।  
 नाना रूपधरा कीलाः - विचरन्ति महीतले ॥

इनका उत्कर्षकाल सामान्यतया दशवीं शताब्दी माना जाना है ।

### सिद्ध

पूर्व मध्यकालीन भारत में सिद्धों के तीन वर्ग थे, कील सिद्ध, बौद्ध सिद्ध तथा नाथ सिद्ध । बौद्ध सिद्ध महायान बौद्धधर्म की वज्रयानी तथा सहजयानी शाखाओं से सम्बद्ध थे, कील सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथं के योगिनी कीलमत से और नाथसिद्ध गोरखपंथ से । ये तीनों योग-साधना की विभिन्न पद्धतियों द्वारा उपार्जित आध्यात्मिक शक्ति से रोग-निवृत्त, इच्छानुसार विविध शरीर-धारण, आकाशमार्ग से गमन आदि चमत्कारी कृत्यों के सम्पादन से जन-सामान्य को विस्मय-विमुग्ध कर अपनी ओर आकर्षित करते थे ।

ब्रह्म्यामल तंत्रोक्त 'राम सहस्रनाम' में इन तांत्रिक सिद्धियों का विस्तार से वर्णन किया गया है—

तंत्राणि तंत्र जालानि सरहस्यानि यानि च ।  
 तानि तानि महासिद्धि कल्पितानि शुभानि च ॥  
 गुटिका पादुकासिद्धिः परकाय प्रवेशनं ।  
 वाचा सिद्धिश्चार्थसिद्धिस्तथा सिद्धिर्मनोमयी ॥  
 ज्ञान विज्ञान कर्माणि नाना सिद्धि कराणि च ।  
 लक्ष्मी कुतूहलासिद्धिवर्छिष्ठासिद्धिस्तु खेचरी ॥

भुशुण्ड रामायण में अनेक स्थलों पर इस प्रकार की सिद्धियों का प्रदर्शन करनेवाले योगियों का उल्लेख है ।

( १ ) लक्ष्मण के सहस्रनाम का उल्लेख करते हुए उन्हें खेचरी विद्या का ज्ञाता तथा सिद्धिदाता कहा गया है—

अमंदो मदनोन्मादी महायोगी महासनः ।  
खेचरी सिद्धिदाता च योगविद् योगपारगः ॥१॥

इस प्रसंग में निर्दिष्ट उनके 'अवधूत', 'महायानी', 'वज्रसार', 'खट्वांगी', 'कपर्दी' आदि नाम निश्चय ही बौद्ध तथा नाथसिद्धों का प्रभाव प्रकट करते हैं—

रजस्वलोऽतिमलौनोऽवधूतो धूत पातकः ।  
विषज्वरनिहंता च कालकृत्या विनाशिनः ॥२॥  
मदोद्भूतो महायानी कालिन्दी पात भेदनः ।  
कालिन्दी भयदाता च खट्वांगी मुखरोऽन्लः ॥३॥  
कपर्दी रुद्र दुर्दर्शो विरूप वदनाकृतिः ।४  
वज्रसारः सारधरः शार्ङ्गी वरुण संस्तुतः ॥५॥

( २ ) भुशुण्ड रामायण में सिद्धवेषधारी शिव द्वारा स्तम्भ-मंत्र के प्रयोग से रोग-निवारण-विषयक निम्नांकित घटना का उल्लेख यह प्रकट करता है कि तत्कालीन लोक-जीवन में सिद्धों की मान्यता मुख्य रूप से उनकी अलौकिक मंत्रशक्ति पर आधूत थी । वे धूम-धूमकर जनता में अपनी चमत्कारिक-शक्ति का प्रदर्शन करते थे ।

१. भ० रा० पूर्व० ५४।१८

२. वही, ५८।६७

३. वही, ५८।६८

४. वही, ५८।७३

५. वही, ५८।७४ ।

६. सिद्ध योगियों का रामोपासना के प्रति आकृष्ट होने का स्पष्ट संकेत कलचुरि नरेश लक्ष्मीकरण के रीवाँ अभिलेख में प्राप्त होता है । इसका आरंभ मंजुघोष ( बौद्धधर्मानुसार बुद्धि के देवता ) की स्तुति से होता है । उसके निम्नांकित त्रुटित श्लोक में 'रामदेवालय' से 'सिद्धों' का सम्पर्क निर्दिष्ट है—

‘यो ( ये ? ) रामदेवालयमान्ति सिद्धाः ते ..... प्रथान्ति’ सर्वप्रथम डॉ० राखालदास वंद्योपाध्याय ने इसका संपादन उपर्युक्त रूप में किया था किन्तु आगे चलकर डॉ० वी० वी० मिराशी ने पर्याप्त अध्ययन के अनन्तर इसका जो पाठ प्रस्तुत किया उसकी एक पंक्ति में 'सिद्धार्थयोगी मलयानु सिंहः' की चर्चा आयी है । मलयसिंह नामक इस सिद्धार्थ योगी ने रामदेवालय की स्थापना की थी । प्रश्न उठता है कि रामोपासना में हचि रखनेवाला यह सिद्ध योगी बौद्ध था अथवा योगिनीकौलमतानुयायी ? अभिनवगुप्त के समय में उक्त दोनों मतों के सिद्ध पाये जाते थे । तंत्रालोक में इनकी विचारधाराओं में सामंजस्य स्थापना का

शिवं संप्रस्थितस्तस्मात्पालिग्रामं भमाययी ।  
 वटुवेषधरो विप्रो वसानो हरिणाजिनम् ॥<sup>१</sup>  
 कौपीनधरो विप्रो जटिलः कक्षविन्यस्त पुस्तकः ।  
 धृतापाढ़ पूत तनु मौजी मेखलयान्वितः ॥<sup>२</sup>  
 प्रसन्नवदनाम्भोज तपसा प्रज्वलन्निव ।<sup>३</sup>  
 गच्छ गोपेन्द्र दूरे त्वं सभार्य सभृत्यकः ॥  
 प्रयोगं मम मंत्राणां पथ्य त्वं ब्रजभूपते ।<sup>४</sup>  
 स्तम्भमस्या हरिष्यामि तद्वेतुं च निवेदये ॥<sup>५</sup>

उपर्युक्त मतों के सिद्धों में नाथपंथियों को ढोड़कर शेष दोनों में मांस-भक्षण साधना का एक प्रमुख अंग माना जाता था। बालमीकि रामायण में राम के मांसाहार का स्पष्ट वर्णन, वनवासी जीवन में विशेष रूप से मिलता है। किन्तु वैष्णव-भक्ति-आनन्दोलन में अहिंसा को महत्त्वपूर्ण स्थान मिलने के कारण परवर्ती सामचरित काव्यों—अध्यान्य रामायण, आनन्द रामायण,<sup>६</sup> रामचरित मानस,<sup>७</sup> उभय प्रबोधक रामायण<sup>८</sup> आदि में हिंसा को राधसीवृत्ति मानकर रामपक्ष के सभी प्रमुख पात्रों को उससे प्रायः विरत चित्रित किया गया है।

भुशुण्ड रामायण में कथानायक राम, उनकी भहर्घमिणी सीता और लक्ष्मण चौदह वर्षीय वनवास काल में मांसाहार में रुचि लेते दिखाये गये हैं। चित्रकूट वास के समय जानकी का मृगमांस बनाने,<sup>९</sup> महर्षि भरद्वाज द्वारा किये गये भरत के समाज सहित आतिथ्य में

प्रयास लक्षित होता है। कारण कि ये दोनों ही किसी प्रकार 'मीन चेतन', 'मच्छन्द विभु', अथवा 'मत्स्येन्द्रनाथ' से सम्बद्ध थे जो अभिनवगुप्त के दीक्षागुरु थे। तंत्रालोक में रामतत्त्व की योगपरक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। उससे भी पता चलता है कि इसके सूत्र उन्हें पूर्ववर्ती योगमूलक साधनामार्गों में प्राप्त हुए थे। गोरखनाथ आचार्य अभिनवगुप्त के सतीर्थ थे। इस कारण उनके द्वारा प्रवर्तित पंथ में भी राम को मान्यता मिली—गोरखबानी में विभु, निराकार, जगत्पालक राम के यशोगान का यही रहस्य है। कालान्तर में कबीरादि ज्ञानाश्रयी शाखा के साधकों को 'निर्गुण राम' की उपलब्धि इसी स्रोत से हुई।

१. भु० रा० पूर्व ७२९।५७
२. भु० रा० पूर्व० ७३०।५८
३. वही, ७३०।५९
४. वही, ७३०।६९
५. वही, ७३०।७०
६. आनन्द रामायण, विलासकांड ५८ १-७
७. उभय प्रबोधक रामायण
८. रामचरितमानस, बालकाण्ड १८३ सो०
९. मेघानि मृगमांसानि जानकी भर्तुराज्या ।  
पक्ता स्वादूनि विविधान्युपनिन्ये पुरस्तयोः ॥

मत्स्य-मांस और मैरेयक को प्रचुरता,<sup>१</sup> भरत की चित्रकूट-यात्रा में अयोध्यावासियों के लिए मांसादि की प्रचुर व्यवस्था,<sup>२</sup> आदि प्रसंगों से यह छविनित होता है कि इस ग्रंथ के रचनाकाल तक अध्यात्मोन्मुख जन-जीवन में मांसाहार के प्रति जुगुप्सा की वह भावना जागृत नहीं हुई थी जो वैष्णवभक्ति-आन्दोलन के उत्तरी भारत में व्यापक प्रसार से १६वीं शताब्दी के बाद हुई। इसका कारण समकालीन कौल शाकत तथा बौद्धसिद्धों का प्रभाव रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

### सहज साधना

सहजानन्दी कौलाचार्यों का मुख्य उद्देश्य साधकों को प्रवृत्ति से निवृत्ति अथवा भोग से योगदशा की प्राप्ति कराना था। इसकी सिद्धि के लिए जो साधना-प्रक्रिया कौलमत में प्रवर्तित हुई उसमें पंचमकार तथा चक्रपूजा का विशिष्ट स्थान था। इस पद्धति से ये सामरस्य में स्थिति-प्राप्ति संभव मानते थे जो सहजानन्द का ही पर्याय है। सहज इसलिए कि भोगपरक मानवस्वभाव के अनुकूल होने से यह अनायास सिद्ध हो जाती है। मत्स्येन्द्रनाथ ने 'अकुलवीर तंत्र' में इस इन्द्रियातीत ज्ञान को अद्वैत स्थिति का साधक कहा है—

सहजोऽकृत्रिमो यस्मात् [ तस्मात् ] संगोन साहजः ।

सुखं न सहजान्यद् सुखं चासंग लक्षणम् ।

ज्ञात्वा निःसंगतां नाम्नीं निर्बोधागत तत्सुखम् ।

विश्वं रसमयं कृत्वा मग्नः सहज सागरे ॥<sup>३</sup>

+            +            +            +

स्वयं देवी स्वयं देवः स्वयं शिष्यः स्वयं गुरुः

स्वयं ध्यानं स्वयं ध्याता स्वयं सर्वत्र देवता ॥<sup>४</sup>

देवान् पितृंश्च संपूज्य रामः परमधर्मवित् ।

सहस्रीमित्रि सीताम्यां बुभुक्षेऽखिल यज्ञभक्त् ॥ भु० रा० दक्षिणखंड २७।२

१. भरतः श्वेततुरगैर्भूषिते रत्नमालिनि ।

महतिस्पर्यदन वरेधिष्ठितः प्रयगौ पुरः ॥

ब्रह्मघोषं प्रकुर्वतः प्रययुः द्विजसत्तमाः ।

मत्स्य मांस सुराहस्तास्तस्य वेश्याः जनाः पुरः ।

शकुनं सूचयामासुर्मतिंगश्चतुरंगमाः ॥

वही, ३१।८२, ८३, ८४

२. मुनिराजापयामास योगसिद्धो महातपाः ।

आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि भरतस्याद्य सुश्रियः ॥

मैरेयाणि मनोज्ञानि भक्ष्यानि विविधानि च ।

दधि दुर्घ सितादीनि, कल्पयन्तु विशेषतः ।

मान्यानि सुविचित्राणि मासानि च मधूनि च ।

चतुर्विधानि चान्नानि तथा भोगान्पृथग्विधान् ॥

वही, ३४।१०१, ०५, ०७

३. अद्वय वज्र संग्रह, पृ० ६३ ।

४. अकुल (ए० पी०), पृ० २६ ।

शक्ति मत के उत्कर्ष से तत्कालीन अन्य वर्म-साधनाएँ प्रभावित हुएं बिना न रह गये। उसने अपने सिद्धान्त में लोकव्यापक वैष्णवधर्म को भी लपेटा। राम-कृष्ण आदि अवतारों को शक्ति का ही स्वरूप मानकर उसने वैष्णवों के हृदय में शान्तधर्म के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने का उल्लेखनीय प्रयास किया—

कृष्णस्तु कालिका साक्षात् रामं मूर्तिश्चतार्णि ।  
कमला मत्स्य रूपः स्यात् कूर्मस्तु कमलामुखी ॥<sup>१</sup>

इतना ही नहीं राम को परशिव और सोता को गोगे में अभिन्न बताकर उसने रामनाम को भी परात्पर ब्रह्म का बोधक स्वीकार कर लिया—

रामः परशिवो ज्ञेयो नाऽवतारो नरोपि च ।  
मत्परं ब्रह्म विख्यातं तद्रामेत्यथरं द्वयं ॥<sup>२</sup>

ये तथ्य प्रकारान्तर से तत्कालीन यमाज में रामभक्ति का व्यापक प्रभाव प्रकट करते हैं।

शान्तों ने समन्वय का मार्ग अपनाकर वैष्णवों को अपने घेरे में लाने की यह बड़ी ही मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनायी थी। वैष्णवधर्म में चिरप्रतिष्ठित मर्यादा के बंधन तोड़कर भोग को प्रमुखता देने वाली यह साधना अपेक्षाकृत अधिक सरल तथा लोकमानसानुकूल थी। आरंभिक वैष्णव कवियों—नामदेव, कवीर, तुलसी आदि ने शान्तों की इस लोकविरोधी प्रवृत्ति को पहचानकर ही उन्हें हठधर्मी और हेय ठहराया है।<sup>३</sup>

मेरा विचार है कि कौल तांत्रिकों द्वारा प्रवर्तित स्त्री-पूजा तथा योनिपूजा<sup>४</sup> से पूर्व मध्यकालीन वैष्णव-काव्यों में स्त्री-सौंदर्य के नग्न एवं कामोत्तेजक चित्रण का सम्बन्ध

१. मुण्डमालातन्त्र ।

२. शक्ति संगम तंत्र ।

३. भैरऊ भूत सीतला धावै । खरवाहन ऊहु छार उड़ावै ॥

सिव सिव करते जो नह धियावै । वरद चढ़ै डउरु डमकावै ॥

महामाई की पूजा करै । नर सों नारि होइ अउतरै ॥

तू कहियत हो आदि भवानी । मुक्ति की विरिया कहा छिपानी ॥

नामदेव की हिंदी पदावली, पृ० ९९

साकत ते सूकर भला, राखै सूचा गांडँ ।

साकत वपुरा मरि गया, कोई न लेइहैं नांडँ ॥

असुभ भेष भूषन करे, भक्ष्याभक्ष्य जे खाहिं ।

तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥

४. आनीय युवतीं रम्यां कुलकर्म विलासिनीम् ।

षोडशाब्देन युवतीं पीनोन्नत पयोधराम् ॥

उन्मत्ता मत्त मातंगी सदा धूर्णित लोचनाम् ।

मृगशावक नेत्रां च सारंगी मृदु हासिनीम् ॥

कबीर ग्रंथावली पृ० ११२।१२

रामचरितमानस, उत्तर० ९८।० क

स्थापित किया जा सकता है। संभवतः इसी से प्रेरणा प्राप्त कर संस्कृत के ललित काव्य-ग्रंथों में घोर शृंगारी वर्णन की परंपरा स्थापित हो गयी। हनुमन्नाटक, जानकीहरण आदि रामकाव्यों में उसका स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है।

भुशुण्ड रामायण में 'सहजानन्दनी सीता' की राम के साथ की गयी सुरत-क्रीड़ा के प्रक्र काम को ही सहजानन्द की संज्ञा दी गयी है और कौलाचार्यों के सिद्धान्तानुसार कुल-शील तथा लज्जा के परित्याग में ही गोपिका रूप में आविर्भूत अग्निकुमारों की परकीया रति की सार्थकता बताई गयी है—

कृत्वा तपो वरं लब्ध्वा दिव्यमायुर्मनोरथम् ।  
ततो निज वरं सत्यं कर्तुं रामौ महामनाः ।  
कामतत्त्वेन ताः सर्वाः रमयामास गोपिकाः ।  
अथ प्रादुरभूत् कामः सहजानन्द लक्षणः ॥  
जानकीं वेपयामास सहजानन्द रूपिणीम् ॥  
सा वेपिता कामशरैः प्रादुर्भूय रघूद्वाहात् ॥  
दिव्य वेश धरा भूत्वा क्षोभयामास राघवम् ॥  
संक्षुब्धं कामबाणेन तामार्लिंगितुमीर्यवान् ॥  
तवरूपविमोहिताः स्त्रियः कलिताः कामकरेकृताशयाः ।  
कुलशील विलज्जयातुराः पथिरुद्धाः सरितो यथाभवन् ॥<sup>१</sup>

इसी प्रसंग में उनकी उस 'निधुवन' क्रीड़ा का भी उल्लेख है जो परवर्ती रसिक भावना के राम और कृष्ण-भक्तों का मुख्य उपजीव्य बन गयी—

नव निकुंज लतावन मंडपे कुसुम क्लृपतले कुरुथोन किम् ।  
निधुवन क्रियया सहजं सुखं स्मर विलास कलाकुशलौ युवाम् ॥<sup>२</sup>

इसी प्रकार नारी-सौन्दर्य तथा सुरत-क्रीड़ाओं के वर्णन में भी कौलों जैसी लिप्तता लक्षित होती है—

ततस्तदाकर्ण्य सुवेणु निःस्वरं प्रियोदितं मन्मथवेग वर्धनम् ।  
स्मरोन्मदप्रोद्धतमानसावहिर्हृदन्तरादाविरभून्नितंविनी ॥  
अशोकवल्लीवन मण्डपान्तराद् विनिःसरन्ती सहजारुणांशुकाः ।  
घटस्तनी सन्मणिहार भूषणा स्फुरत्पदन्यास विरचितावनिः ॥  
मराल गत्यांचित मंजु विग्रहा नितम्बभारोद्वहनोक्षमा रमा ।  
मृदुस्मितद्योत विभासितानना मनोहरापांग विभूषितेक्षणा ॥

सर्वलिंकार संयुक्तां विवस्त्रा पूजयेत् प्रिये ॥ ( वीर चूडामणि ) ।  
सर्वधर्मान् परित्यज्य योनिपूजारती भवेत् । ( प्राण-तोषिणी )

१. भु० रा० पूर्व० अ० २६।६, ७, ८।९ [ ६४ ]

२. वही, अ० २६।२८ [ १०५ ]

३. भु० रा० पूर्वखंड २८।१९

अनधर्यंकांचीगुणानादिधंटिका मनोजकेयर् विलम्बिदोर्लता ।  
त्रपाग्निमग्ना कलितावगुण्ठना सुवृतदीव्यजघनप्रभाम्बरा ॥१

### सहजयानी बौद्ध

वज्जयानी बौद्धों ने कौलों की इस सहजसाधना को अपने तत्त्ववाद में स्थान देकर पराकाष्ठा को पहुँचाया ।<sup>२</sup> इन्होंने भी निर्वाण अथवा मुक्ति को योग द्वारा प्राप्य ठहराया । इनके भत में भी आदि बुद्ध तथा आदि प्रज्ञा अथवा पुरुष एवं प्रकृति के मंयोग मंघटन द्वारा महासुख की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है और वह भोग द्वारा ही उपलब्ध हो सकता है । इस घोर प्रवृत्तिमार्गी धर्म ने विचार और आचार दोनों पक्षों में मानव-जीवन में पूर्णतम उपभोग का समर्थन कर नारी अथवा शक्ति की रहस्यपूर्ण पूजा का प्रतिपादन किया । तांत्रिकता प्रधान बौद्धधर्म का यह स्वरूप आठवीं शती के अनन्तर उत्तरोत्तर विकसित होता गया । हिन्दुओं के निम्नवर्ग में यह विशेष लोकप्रिय हुआ । उसके फलस्वरूप प्रत्येक स्त्री में निवास करनेवाली प्रज्ञापारमिता के भोग द्वारा ही सहजानन्द प्राप्ति का पथ मानवमात्र के लिए खोल दिया गया ।

### पराशक्ति सहजा की उद्भावना

भारतीय तथा विदेशी स्रोतों से उपलब्ध रामकथा के जो स्त्रीपात्र अव तक प्रकाश में आये हैं, उनमें कहीं भी ‘सहजा’ का नामोल्लेख नहीं मिलता । किन्तु भुशुण्ड रामायण में सीता की भाँति इन्हें भी राम की स्वरूपशक्ति माना गया है । ग्रन्थकर्ता ने सीता को मर्यादाशक्ति, और सहजा को प्रेमाशक्ति की संज्ञा दी है । सहजा की जीवन-गाथा का वर्णन करते हुए उसने इन्हें अयोध्या के निकटवर्ती व्रज-प्रदेश के निवासी नन्दनगोप तथा राजनी की पुत्री और कुशलगोप की पत्नी बताया है । राम के प्रति उनका अलौकिक अनुराग देखकर पति ने इन्हें राम को समर्पित कर दिया था । इस दृष्टि से कृष्णचरित में जो स्थान राधा का है, भुशुण्ड रामायण में

१. वही, २७।२१, २२, २३, २४ ।

२. विसअ रमन्ते ण विसअहि लिप्पइ ।

उअल हरन्ते ण पाणीच्छप्पइ ॥

एमइ जोइ मूल सगत्तो ।

विसइ ण बाज्जइ विसअ रमन्तो ॥- - -दोहाकोश, स० ७१

यह कौलों के निर्लिप्त-भोग सिद्धान्त का ही रूपान्तर था—

भोगो भोगायते साक्षात् पातकः सुकृतायते ।

मोक्षायते च संसारः कुलधर्मः कुलेश्वरि ॥

कुलार्णवतंत्र, पृ० १२

३. सरथ्या अपरे पारे नन्दनो नाम धेनुपः ।

तत्प्रिया राजनी नाम तस्यां जाता तु जानकी ॥

सहजा नाम सा प्रोक्ता कुशलेन विवाहिता ।

गोपेन ममभक्तेन सा महां विनिवेदिता ॥

वर्णित रामचरित में वही स्थान सहजा का ।<sup>१</sup> ग्रन्थकार ने अनेक स्थलों पर अपनी इस मान्यता की पुष्टि की है—

अहं कृष्णश्च रामश्च वृद्धावन विहारवान् ।  
प्रमोदवनसारंगोऽप्यशोकवनसारवित् ॥  
यत्र मे रमणी राधा वृषभानुसुता स्वयम् ।  
मत्स्वरूपैक निरता सदा मद्रूप संगिनी ॥  
सैयं श्रीः सहजानन्दा प्रेमालय पताकिका ।  
नानया सहशी लक्ष्मीर्न शेषो न विधिः शिवः ॥<sup>२</sup>

सहजा को सीता से अभिन्न मानते हुए भी रचयिता ने राम के लोक-लीला-चित्रण में कहीं भी पृथक्-रूपेण सहजा के साथ की गयी मधुर-क्रीड़ाओं का विधान नहीं किया है अपितु राम की दिव्य लीलाओं में ही स्थान देकर इन्हें साधना का मुख्य आधार माना है। इनके परिचय में जो शब्दावली प्रयुक्त हुई है; उसमें शैव-शाक्तागमों में निरूपित महाशक्ति का स्वरूप स्पष्टतया सामने आ जाता है—

कंदर्पकोटिजननी कोटिब्रह्माण्डनायिका ।  
विजया वीजिनी विद्याऽविद्यादानपरायणा ॥<sup>३</sup>  
खेचरी भूचरी सिद्धा वैष्णवी वैष्णवप्रिया ।  
रक्तांशुक प्रिया रक्ता नव विभ्रम महारिणी ॥<sup>४</sup>  
क्रियावती वेधवती मन्त्रिणी मन्त्रनायिका ।  
आग्नेयीन्द्राणिका रुद्री वाणी वशवर्तिनी ॥<sup>५</sup>  
एकान्त भक्तसुलभा जय दुर्गा जय प्रिया ॥<sup>६</sup>

प्रस्तुत ग्रन्थ के 'राम-गीता' प्रसंग में इनकी आराधना को तांत्रिकों की उपास्य देवी की भाँति ही दुर्जेय एवं रहस्यपूर्ण बताकर तांत्रिक-प्रणाली से तत्सम्बन्धी मंत्र-तंत्रादि साधन का<sup>७</sup> विस्तार से विवेचन किया गया है—सहजा का द्वादशाक्षर मंत्र, उसके कृषि, देवता, छंद, बीज, शक्ति,

१. सहजा जानकी सीता मोदिनी राधिका रमा ।  
आनन्दिनो परालीला ललना लास्यकारिणी ॥

भु० रा०, पूर्व० ४८।२२

२. भु० रा०; पू० ख० ५६।२५, २६, २८ ।

३. वही, १४।१० ।

४. वही, पू० ४७।३१

५. वही, पू० ४८।३७, ४०

६. वही, पू० ५१।२३ ।

७. सीतायाः यत्परम् तत्त्वं दुर्जेयं योगिनामपि ।

रहस्यकिल वेदानाम् तंत्राणां च विशेषतः ॥

भु० रा० ९०९

कीलक, अंगन्यास आदि की<sup>१</sup> व्याख्या करने के पश्चात् मूलाधार-चक्र में निरंजन ज्योति तथा सनातन जीव शक्ति के रूप में उसके ध्यान का निर्देश दिया गया है—

ध्यानमस्या: प्रवक्ष्यानि यत्प्रोक्तं मेऽविसूनुना ।  
 कलितं योगिमुख्यैर्यत्स्वचित्कमले पुरा ॥  
 प्रमोदवनसधामन्तरङ्गोकवनवासिनी ।  
 मणि हेमलसदिव्य मिहासनविगजिता ॥  
 तस्योपरि महापद्मे मत्तभ्रमरसेविते ।  
 अष्टपत्रे शुभे दिव्ये सख्याष्टुक समन्विता ॥  
 रक्तांशुकपरीयाना वरा भयलसत्करा ।  
 महोपनिपदां वृन्देः स्तूयमाना समन्ततः ॥  
 कटाक्षालोकभावेण संजीवितमनोभवा ।  
 तडित्पुंजलसत्कांतिः कोटिचन्द्रसमानना ॥  
 कोटिसूर्येन्दुवह्नमाना तेजोरूपा सनातनी ।  
 दक्षवाहुलता पाशावष्टव्यरघुपुंगवा ॥  
 सस्मितेक्षण कल्लोलैर्मादयंती रघूद्वह्म ।  
 अनेक कोटि ब्रह्माण्डसृष्टि स्थितिलयात्मिका ॥  
 इच्छा ज्ञानक्रियाशक्तिरूपिणी ब्रह्मरूपिणी ।  
 एवं भूता सदाध्येया प्रमोदवननायिका ॥<sup>२</sup>

सहजा एवं राम का यह युगल विग्रह हिन्दू-तंत्रों के शक्ति, शिव तथा बौद्धों के प्रज्ञा उपाय की संयुक्तावस्था का ही प्रतिरूप है जिसे प्रेम की परमोक्तुष्टि स्थिति अथवा सहज दशा कहा गया है। वैष्णवागमों में चैतन्य मंहाप्रभु के पूर्व से प्रचलित ‘ब्रह्मसंहिता’ में शक्ति तथा शक्तिमान् की इस संयोग दशा को ध्यान-साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता रहा है—

१. अपि मे ब्रूहि तत्त्वं मंत्रं तंत्रं पुरस्सरम् ।  
 यज्ञात्वा मोहपोशेन नावृतः स्यात् कदाचन ॥  
 किं च मंत्रं किं च पुनः तन्त्रं किं च तन्मंत्रं साधनम् ।  
 केन विज्ञानेन विज्ञाता सहजानन्दिनी भवेत् ॥      भु० रा० पूर्व० १४२१५, ६  
 ‘ऊँ ह्रीं ओं क्लीं सहजानन्दिन्यै स्वाहा’—भु० रा० पू० खं०, पू० ९१३ (पाद-टिप्पणी)  
 प्रणवो भुवनेशानी कमला काम एव च ।  
 सहजानन्दिनी डेन्तं स्वाहा तो द्वादशोक्षरः ॥  
 हिरण्यगर्भ एतस्य मुनिश्छंदोऽस्यत्यनुष्टुपम् ।  
 सहजानन्दिनी देवी देवता ब्रह्मरूपिणी ॥  
 लक्ष्मीबीजं त्रपाशक्तिः कामाद्यं कीलकं स्मृतम् ।  
 षोढा कृत्वा मनं कुर्यात् कराङ्गन्यास मेव च ॥

परमात्मा हरिर्देवस तच्छक्षिः श्रीरिहोदिता ।  
श्रीदेवी प्रकृतिः प्रोक्ता केशवः पुरुषः स्मृतः ।  
न विष्णुना विना देवी न हरिः पद्मजां विना ॥९

ब्रह्मसंहिता में भुशुण्डि रामायण की ही भाँति सहस्रदल कमल के मध्यभाग में गोकुल (अथवा साकेत) उसके भीतर तांत्रिक उपासना के—यंत्र, कीलक आदि और कर्णिका में न्यास, लिंगरूप में पुरुष (शिव अथवा नारायण) तथा योनिरूप में प्रकृति (पार्वती अथवा रमादेवी) विराजमान कही गयी हैं।<sup>१</sup> ‘सदाशिव संहिता’ में प्राप्त इष्टदेव के ध्यान का विवरण इससे अधारशः मिल जाता है—

तदूर्ध्वं सर्वं सत्त्वानां कार्यकारणं मानिनां ।  
निलयं परम दिव्यं महावैष्णवं संज्ञकम् ॥  
एतद् गुह्यं समास्थानं ददातु वांछितं हि नः ।  
तदूर्ध्वं तु परं दिव्यं सत्यमन्यद्विवस्थितम् ॥  
न्यासिनां योगिनां स्थानं भगवद्वावनात्मनां ।  
महाशंभुर्मोदते तत्र सर्वं शक्ति समन्वितः ॥  
तदूर्ध्वं तु परंकान्तं महावैकुण्ठं संज्ञिकम् ।  
वासुदेवादयस्तत्र विहरन्ति स्वं मायया ॥  
तदूर्ध्वं तु स्वयं भाति गोलोकः प्रकृतेः परः ।  
वाङ्मनोगोचरातीतो ज्योतिरूपः सनातनः ॥  
तस्यमध्ये पुरं दिव्यं साकेतमिति संज्ञकम् ।  
योषिद्रत्नं मणिस्तंभं प्रमदागणं सेवितम् ॥  
तन्मध्ये परमोदारः कल्पवृक्षो वरप्रदः ।  
तस्याधः परं दिव्यं रत्नमंडपमुत्तमम् ॥  
तन्मध्ये वेदिकारम्या स्वर्णरत्नं विनिर्मिता ।  
तन्मध्ये च परं शुभ्रं रत्नं सिंहासनं शुभम् ॥  
सहस्रारं महापद्मं कर्णिकायुक्तमुन्नतम् ।  
तन्मध्ये मुद्रिकाभिन्नं मुद्राद्वाभ्यां विभिन्नकम् ॥  
वह्नीन्दुमंडले नापि वैष्णितं विन्दु भूषितम् ।  
चन्द्रकोटि प्रतीकाशं छत्रकं च सचामरं ॥  
तत्रास्ते भगवान् रामः सर्वदेव शिरोमणिः ।  
तत्रादौ चिन्तयेत्तेजो वह्निरूपं सुशक्तिकम् ॥  
तेजसा महताश्लिष्टमानदैकाग्रं मंदिरम् ।  
एकाग्रं मनसा पश्येत्तत्रदेवो सुविग्रहम् ॥

- 
१. जीव गोस्वामो कृत ‘भागवत संदर्भ’ में उद्धृत ( Obscure Religious Cults P. 129 )
  २. ब्रह्मसंहिता, अ० ५, श्लोक २-१० ( बहरामपुर संस्करण )

द्विभुजं मधुरं शान्तं जानकी प्रेम विह्वलम् ।  
 दोर्दण्डचण्डकोदण्डं शरच्चन्द्र महाभुजम् ॥  
 सीतार्लिंगित वामाङ्गां कामरूपं रसोत्सुकम् ।  
 तरुणारुणसंकाशं विकचाम्बुजं पादकम् ॥<sup>१</sup>

प्रस्तुत प्रसंग में 'सीता' और भुशुण्ड रामायण में 'सहजा' का मुद्रारूप में ध्यान निश्चय ही कश्मीर शैवमत के अनुसार है ।

तांत्रिक शैवमत में 'शक्ति' को मुद्रा की संज्ञा दी गयी है, क्योंकि वह जीव को समस्त पापों से मुक्ति दिलाती है और चर्तन्य का विम्ब्र अथवा प्रतिविम्ब्र है । इनमें खेचरी या निष्का-मुद्रा सर्वप्रधान है । अन्य मुद्राएँ उसी के अन्तर्गत हैं । भुशुण्ड रामायण में 'सहजा' खेचरी के नाम से भी संबोधित की गयी है ।

खेचरी भूचरी सिद्धा वैष्णवी वैष्णवप्रिया ।<sup>२</sup>

योगपीठ अथवा तन्त्रपीठ में कामबीज से अभिमन्त्रित उनके अक्षर विग्रह की स्थापना कामबीज से दंतधावन का अभिमन्त्रण<sup>३</sup> श्रीबीज से अभिमन्त्रित जल से मुख विशुद्धि<sup>४</sup> पोडशो-पचार पूजा<sup>५</sup> अस्त्राभिमन्त्रण<sup>६</sup> आदि का<sup>७</sup> विधान भी सर्वथा तन्त्राचार-सम्मत है ।

तत्र चितामणिमयं योगपीठं विभावयेत् ।  
 कोटिसूर्येन्दुसंकाशं नानारत्नविचित्रतम् ॥  
 तत्र सोमस्तवनं वटवृक्षं विचिन्त्ययेत् ।  
 तन्मूले भावयेद् दिव्यं रत्नसिंहासनोत्तमम् ॥  
 तस्योपरि महापद्ममष्टपत्रं मनोहरम् ।  
 तत्र कलृसासमां देवीं सहजानन्दिनीं स्मरेत् ॥  
 श्रीरामप्रेमनिरतां प्रेमानंद स्वरूपिणाम् ।  
 रत्नमाणिक्य भूपाद्यां रामार्लिंगित विग्रहाम् ॥  
 पादाम्बुज नखज्योत्सना परब्रह्म प्रकाशिनीम् ।  
 कोटिलक्ष्मी शिरोमौलि गिराचार्यः समंततः ॥  
 शब्दब्रह्म स्वरूपज्ञैः समंतात्पर्युपासिताम् ।  
 चराचर जगद्योनि चराचर जगन्मयीम् ॥

१. श्रीरामनवरत्न०, पृ० २९-३२ पर उद्धृत
२. भु० रा० पूर्व० १४।३०
३. वही, पूर्व० १४२।१६६
४. वही, पूर्व० १४२।५०
५. वही, पूर्व० १४२।५१
६. वही, पूर्व० ९१६।५१
७. वही, १४२।५३
८. वही, १४२।९२

अकुटी तजितोद्भूतकलां कालस्य कालिनीम् ।  
 कालशक्तिप्रदां लोके कालगोचर केलिनीम् ॥  
 कालस्य कलनारूपां कलनाद मनोहराम् ।  
 प्रेमानन्दमयी साक्षाद्ग्रावयेत्पीठ नायिकाम् ॥  
 पीठं संपूजयेत्तस्याः कुसुमाक्षत चन्दनैः ।  
 प्रत्येकं पीठशक्तीश्च भावयेत्वार्चयेत् क्रमात् ॥<sup>१</sup>

इनों क्रम में महाशक्तिस्वरूपा सहजानन्दनी के विग्रह के ध्यान एवं मानसी-सेवा का भी विधान किया गया है—

इत्युदीर्याखिलं विश्वं तन्मयं भावयेद्धृदि ।  
 ततो मूलाधार पद्मे भावयेत् कुण्डलीमयीम् ॥  
 चतुर्दलं तत्र पद्मं सिन्दुरारुण सुन्दरम् ।  
 तत्कर्णिकागतं दिव्यं स्वयंभूलिङ्गं मुद्यतम् ॥  
 शंखावर्त्तकमात्स्य वेष्टनीं हृष्टसूत्रतः ।  
 सार्धत्रिवलयाकारां सर्वतत्त्वं स्वरूपिणीम् ॥  
 सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटि सुशीतलाम् ।  
 कोटि पावक विद्योतां जीव शक्ति सनातनीम् ॥  
 तांचेतियत्वा प्रणवेन मूलमंत्रेण वा चक्रविभेदरीत्या ।  
 नीत्वा सहस्रच्छदनं समंतात्प्रकाशमानां महसांभरेण ॥  
 उल्लसिता शेष सरोरुहान्तः प्रसर्पदंशप्रकरप्रसारम् ।  
 संयोजयेच्चन्मयधाम्नि तस्मिन् स्वत्सुधापूर विलीनगात्राम् ॥  
 संयोग जन्मामृत वारिधारा संस्नातं सर्वावयवानवद्याः ॥  
 तिष्ठेच्चिरं चिन्मय सामरस्य प्रमोदधारा विनिमग्न चित्तः ।  
 ततस्तां भुजगीरूपां मूलप्रकृतिरूपिणीम् ।  
 जीवशक्तिं यथास्थानं स्थापयेत्सुखितान्तरः ॥<sup>२</sup>

ब्रह्मसंहिता तथा सदाशिवसंहिता दोनों के अन्तर्गत निर्दिष्ट स्वरूपध्यान में शक्तिमान की अपेक्षा शक्ति को अधिक महत्व दिया गया है। महाशक्तिस्वरूपा सहजा के लिए 'पादाम्बुज नखज्योत्स्ना परब्रह्मप्रकाशिनी', 'कालस्यकालिनी', 'कालशक्तिप्रदा' आदि विशेषणों का प्रयोग इसी उद्देश्य से हुआ है। इसके अनन्तर किशोरीरूपा, सहजा के यंत्र की व्याख्या तथा उसकी पूजा-विधि पर प्रकाश डाला गया है।<sup>३</sup>

मूलमंत्र से आत्मरक्षा करने के पश्चात् सहजामंत्रसाधना की विशेष न्यास-विधि का उल्लेख है। उसका महत्व बताते हुए कहा गया है कि महाप्रतापी रावण के विरुद्ध संग्राम में

१. भु० रा० १४६।१०३, १०५, १०८, १०९, ११०, ११२, ११५, ११६, ११८,

११९, १२२

२. भु० रा० पू० ख० १४२।२७-३४

३. भु० रा० पू० १४६।१३०, १३१, १३२

राम और लक्ष्मण की विजय का मुख्य कारण राम द्वारा इसी पद्धति से सहजा की पूजा करना था, जिससे उनका समस्त शरीर मंत्रमय होकर वज्र का हो गया था।<sup>१</sup>

अभिनव गुप्त ने इच्छा, ज्ञान और क्रिया के द्वारा शिव के अंजित अथवा व्यक्त होने का उल्लेख किया है। निरंजनपद प्राप्ति के लिए इन तीनों शक्तियों में सामरस्य लाना अनिवार्य है।<sup>२</sup> इसीलिए इन्होंने इस प्रक्रिया अथवा साधन को भी निरंजन नाम दिया है।<sup>३</sup>

भुशुण्ड रामायण में सहजा देवी भी निरंजन, आत्मज्योति, हंसरूपा एवं स्वानंदवोध स्वरूपा मानी गयी हैं।

सामरस्य दशा की चिन्मयानन्द धारा में निरंजन करने के लिए आलोच्य ग्रन्थ में चक्र-भेदन-प्रक्रिया की भी विस्तार से व्याख्या की गयी है, जिसमें नित् शक्ति अथवा कुण्डलिनी जाग्रत हो षड्चक्र अथवा छः भूमियों का क्रम से भेदन कर सातवीं भूमि सहस्रार में प्रवेश करके अमृतरसपान करती है—यही योग की सिद्धांवस्था है, जिसे जनन्मामान्य को बोधगम्य बनाने के लिए योगियों ने संयोगावस्था अथवा पूर्णतृप्ति दशा की संज्ञा दी है।

कश्मीर शैवमतानुयायियों, संहजयानी बीदों तथा परवर्ती सहजिया वैष्णवों की भाँति भुशुण्ड रामायणकार ने भी इस स्थिति को पुरुष-प्रकृति अथवा भोक्ता-भोग्य की अद्वैतावस्था माना है। राम स्वयं को सहजानन्द स्वरूप<sup>४</sup> बताकर लीला यात्रा के लिए अपने और सहजा के द्विधा विभक्त होने की बात कहते हैं।<sup>५</sup>

तंत्राधार्य अभिनव गुप्त ने 'सहज' और 'राम' की जैसी व्याख्या की है, वह भुशुण्ड रामायण द्वारा चित्रित सहजा और राम के स्वरूप के सर्वथा अनुकूल है। उन्होंने राम को जड़ तथा अजड़ विश्व-वैचित्र्यद्वारा क्रीड़ा करनेवाला परम तत्त्व माना है और उसे शिव से अभिन्न

१. क्रमोक्तमाद्विधायित्यं साक्षान्मन्त्रमयो भवेत् ।

अमुं न्यासविर्धिकृत्वा वाक्पतिर्जायिते नरः ।

अमुनान्यास वर्येण संग्रामे रामलक्ष्मणो ।

वज्रांगता परिप्राप्य रावणादीन् विजित्यरे ॥

भु० रा०, पू० खं० १४६।१२, ९३

२. लोली भूतमतः शक्तित्रितयं तत्त्वशूलकम् ।

यस्मिन्नाशु समावेशाद् भवेद्योगीनिरंजनः ।

तंत्रालोक आ० ३, पू० ११५

३. 'क्रियादेवी निरंजनाम्'

तंत्रालोक आ० ३, पू० ११४

४. श्रीराम सहजानन्द पुराणपुरुषोत्तम ।

प्रपन्न पारिजातेश पाहिमामित्युदीरयेत् ॥

मत्स्वरूपवरं लब्ध्वा संगताविह जन्मनि ।

भु० रा० पू० ५९।४१

५. एकोऽहं सन् द्विधाजाता सहजा राम एव च ।

वही, पू० ५३।२३

वताया है। उनकी मान्यता है कि राम आभासरूप विश्व में क्रोड़ासक्त रहता है।<sup>३</sup> उसका यह क्रोड़ासक्त स्वरूप ही भक्तों का ध्येय है।

तंत्रों के अनुसार सृष्टि की रचना परम शिव में उद्दीप्त काम का परिणाम है। इसीलिए विश्व की सारी क्रियाएँ काम-भावना से संचालित होती हैं। अप्रतिहत गति होने से उसे सहज या स्वयंभू नाम दिया गया है। इच्छा से ही मूलसत्ताविन्दु तथा नाद का रूप धारण करती है। अतः प्रकारान्तर से उसकी भी मूलप्रेरकशक्ति कामभावना ही मानी जायगी। तात्पर्य यह कि मूलसत्ता की सृष्टि-रचना-विषयक इच्छा का नाम ही 'सहज' है। इसीलिए वैष्णव साधक राधा-कृष्ण, सीता-राम की माधुर्य-केलि का ध्यान कर कृतार्थ होते हैं। सहज वैष्णवधर्म में कृष्ण को 'रसराज' कहा जाता है। जगतरामराय विरचित 'आत्मबोध' (बंगला) में राम को भी यही संज्ञा दी गयी है और उन्होंने स्वरचित अद्भुत रामायण के अंतर्गत 'रामरास' शीर्षक एक पृथक् अध्याय भी रखा है। इससे यह पता चलता है कि भुशुण्ड रामायणकार द्वारा की गयी सहजाशक्ति की उद्घावना के पीछे पूर्ववर्ती सहजानन्दी कौलों तथा परवर्ती सहजयानी बौद्धों का वही आदर्श काम कर रहा था जिसने सहजिया वैष्णवों को कृष्ण की भाँति राम में भी रास-वर्णन की प्रेरणा प्रदान की थी और इस स्तर पर दोनों में अभेद-कल्पना को प्रोत्साहित किया था।

### ध्यानयोग

सगुण रामोपासना का प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ होते हुए भी कदाचित् तांत्रिक-साधना से ही प्रभाव ग्रहणकर आलोच्य-ग्रन्थ में एक स्थल पर ध्यानयोग द्वारा ब्रह्मनिर्वाण लोक में ज्योति ब्रह्म राम का साक्षात्कार-लाभ करने की साधना-प्रक्रिया का वर्णन किया गया है—

अस्मिन् ब्रह्मपुरे दिव्ये नवद्वारे महापथे ।  
दहराग्यं पुण्डरीक वेश्म नित्यं विराजते ॥  
ज्योतिरूपं ब्रह्मरूपमूर्जस्वलमनुत्तमम् ।  
कला सहस्रकलितं निष्कलं कालवर्जितम् ॥  
यद्वासिनो महोदारा हंसाः प्रकृति कोमलाः ।  
ब्रह्मनिर्वाणलोकस्य राजानः सकला अपि ॥  
अहं यत्र प्रभुः साक्षात् परब्रह्म परात्परः ।  
ज्योतिरिङ्ग्नं वद्यत्र ज्योतिः कण विभूषिताः ॥  
सकलं निष्कलं वापि पूर्णं सकल निष्कलम् ।  
नित्यं श्रीविग्रहोपेतं श्रीलालित पदाम्बुजम् ॥  
प्रेमणा सहज भावेन समुपेतः सदा शुचिः ।  
स्नायात् सुविमले तीर्थे ब्रह्मादि सुर सेविते ॥

३. तत्सजडाजडात्मनां विश्व वैचित्र्यात्मना क्रीडति इति राम।

तंत्रालोक, खण्ड १ आ० १ पृ० १३१

सुपूर्णे त्रिपथातीरे ललाटे वैन्दवे मरे ।  
 सहस्रदल मध्यस्थ चन्द्रमण्डल विश्रुतेः ॥ ५ ॥  
 सुधारसैर्भृतं पूर्ण वैन्दवं विशदं सरः ।  
 तत्र संस्नानमात्रेण नरः पूतः प्रजायते ॥  
 भावनाधिकार योग्यश्च भाव्यमर्थमवाप्नुयात् ।  
 दिव्येन तपसा युक्तः समाधि फलमाप्नुयात् ॥  
 समाधौ संपरिणते ध्यानं फलति तत्त्वतः ।  
 फलिते ध्यानयोगे तु ध्येयं साक्षात्कृतं भवेत् ॥  
 ध्येयमस्मि परंब्रह्म यत्पूर्णममृतं विदुः ।  
 सत्यज्ञानानन्दस्ये मयि जीवं समर्पयेत् ॥  
 अकर्ता जायते सद्यो निर्लेपश्चैव निर्गुणः ।  
 कर्ता च करणं कार्यं यावदेतावती भिदा ॥ २० ॥  
 मत्स्वरूपाश्रयो विद्वान् कृत्कृत्यः प्रजायते ।  
 न तस्य त्रिपुलोकेयु कर्तव्यमवशिष्यते ॥<sup>१</sup>

ध्यान की यह पद्धति सर्वात्मवादी एवं योगाचारपरक वौद्धधर्म में उसी प्रकार प्रतिष्ठित हो गयी थी जैसे वैदिकधर्म में पतंजलि की योग-साधना समादृत थी । परमज्योति स्वरूप परात्पर ब्रह्म राम का यह सगुण-निर्गुण मिश्रित ध्यान कालान्तर में रामभक्ति की निर्गुण तथा सगुण शाखा के भक्तों के लिए अपने विशिष्ट भावानुसार अत्यन्त प्रेरणाप्रद सिद्ध हुआ । स्वामी रामानन्द ने रामभक्ति का प्रवर्तन करते हुए रामतत्त्व की इस परम्परागत विशेषता को उजागर ही नहीं किया, अपने उपदेशों और रचनाओं के<sup>२</sup> द्वारा साकार एवं निराकारोपासक भक्तों के लिए रामभक्ति में विशेष आकर्षण उत्पन्न कर दिया । इससे महजयानी वौद्धों और नाथपंथी योगियों से प्रभावित साधक-वर्ग रामभक्ति की ओर उन्मुख हुआ । बंगाल में चैतन्य महाप्रभु के समकालीन उनके अनेक अनुगत भक्त रामोपासक हो गये और नाथपंथियों का मुख्य प्रभाव-क्षेत्र राजस्थान साम्प्रदायिक रामभक्ति का प्रधान केन्द्र बन गया । स्वामी रामानन्द के विशिष्य श्रीकृष्णदास पयदारी द्वारा स्थापित गलता गढ़ी इस योगपरक रामभक्ति की लोकविश्रुत उद्गम स्थली के रूप में प्रसिद्ध हुई । रामोपासना की तपसी शाखा इसीसे निकली । इसके प्रवर्तन का श्रेय पयदारीजी के ज्येष्ठ शिष्य कृष्णदास को दिया जाता है ।

१. भु० रा०, पूर्व० ५११, ५, १०, ११, १३, १६-२०, २४

२. चाचरी भूचरी खेचरी अगोचरी उन्मुखी पाँच मुंद्रा साधते सिद्ध राजा ।

—रामानंद की हिन्दी रचनाएँ, पृ० ५

सहज सुन्न मैं चित्त बसंत । जिनि जाइ अंत ॥

न तहाँ इच्छ्या ओं अंकार । न तहाँ नाभिन नाल तार ॥

न तहाँ माया स्यौ बिसन । न तहाँ चौबीसो वपु बरन ॥

न तहाँ दीसै माया भंड । रामानंद स्वामी रमै अखंड ॥

सिद्धा सहजे लीना सहजे दीना सहज सुरति ल्यौ लाई ॥

—वही, पृ० ८

—वही, पृ० १४

सारांश यह कि भुशुण्ड रामायण में जिस 'सहजा' को राम की पराशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, उसका उत्स कौलों की सहज साधना ही है जिसका प्रचार उत्तरी भारत में ८ वीं० शती से व्यापक रूप में हो चला था। सहजयानी बौद्धों ने इसके विकास में अपूर्व सहायता की। फलतः १२ वीं शती तक हिन्दू समाज के निम्नवर्ग में इस साधना के बहुत अनुयायी बन गये थे।

इस संदर्भ में एक और बात लक्ष्य करने की है और वह है भुशुण्ड रामायण में सहजा तथा श्रीदेवी की अभेद स्थापना। श्रीदेवी, कमला अथवा लक्ष्मी की पर्याय होने से यद्यपि श्री वैष्णवों में विशेष समादृत थीं, किन्तु महाशक्ति का प्रतिरूप होने से कौल तथा कापालिक मतों में भी उनकी पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। इनमें सैद्धान्तिक समानता का एक और कारण था, एक ही केन्द्र से उन्हें तीनों मतों का प्रचार। दक्षिण का श्रीपर्वत वैष्णव, शाक्त और शैव तांत्रिकों की साधना-भूमि थी। वाणभट्ट ने कादम्बरी में शाक्त तांत्रिकों के पीठरूप में श्रीपर्वत का उल्लेख किया है। इसे वज्रयान की भी उत्पत्ति-स्थली कहा जाता है। भुशुण्ड रामायण में इसे शिवपीठ माना गया है और दशरथ के द्वारा को गयी यहाँ के अधिष्ठातृदेव शिव की पूजा का उल्लेख कर प्रकारान्तर से वैष्णवों में इसकी मान्यता की पुष्टि की गयी है।<sup>१</sup>

तात्पर्य यह कि ९ वीं तथा १० वीं शताब्दी में उत्तरी भारत के आध्यात्मिक जीवन में व्याप्त शाक्त तथा बौद्ध तंत्रों से समकालीन धार्मिक सम्प्रदाय पर्याप्त संबल ग्रहण कर रहा था। इसका एक सबल प्रमाण शाक्त तंत्रों में प्रतिष्ठित दश महाविद्या में प्रमुख तारा की उपासना का बौद्धों तथा वैष्णवों में समान रूप से प्रचार है। इनके स्तोत्र, सहस्रनाम, कल्प आदि से सम्बद्ध प्रचुर साहित्य प्राप्त होता है। तारा तंत्र, ताराभक्ति सुधानिधि, तारा रहस्य, तारा कल्पलता पद्धति, एकजटी तंत्र, चीराचार तारा कर्पूरस्तोत्र आदि<sup>२</sup> ग्रन्थों में इनकी पूजा-पद्धति तथा महिमा का विशद विवेचन किया गया है और कुलाचार की मूल प्रेरणाशक्ति के रूप में इन्हें सायुज्य मुक्ति की एकमात्र साधिका बताया गया है।

महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने आलोच्य युग में बौद्धधर्म में हिन्दुओं की बढ़ती हुई निष्ठा का उल्लेख करते हुए बताया है कि 'हिन्दुओं का एक तंत्र बतलाता है कि वशिष्ठ तारामंत्र की सिद्धि पाने के लिए उत्सुक थे, परन्तु वे भारत में रहते हुए इसकी प्राप्ति न कर सके। अतः उन्हें तुषाराच्छन्न पर्वतों की यात्रा करके चीन जाना पड़ा, जहाँ बुद्ध ने उन्हें सिखलाया कि वे कैसे उस मंत्र की सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं।'<sup>३</sup> कहने की आवश्यकता नहीं, महर्षि वशिष्ठ राम के ही नहीं उनके पूर्वजों के भी कुलगुरु थे। अतः तंत्राश्रित भक्ति-साधनों में रामतत्त्व को मान्यता प्रदान करने में इस तथ्य ने सहायता प्रदान की हो तो कोई आश्चर्य नहीं। शास्त्रीजी का अभिमत है कि बौद्धों तथा ब्राह्मणों दोनों को अपने-अपने तंत्र एक ही

१. श्री पर्वतं जगामाथ यत्र साक्षादुमापतिः। —मु० रा०, पूर्ववृण्ड ( दशरथ तीर्थयात्रा )  
१३७।३४

२. तांत्रिक साहित्य—म० म० पं० गोपीनाथ कविराज, पृ० २८

३. भक्तिमार्गी बौद्धधर्म—नगेन्द्रनाथ वसु ( भूमिका—पं० हरप्रसाद शास्त्री—पृ० १४-१५ )

स्रोत से प्राप्त हुए थे ।<sup>१</sup> यह बात दूसरी है कि गुह्य-साधना की स्वीकृति होने से बौद्धधर्म के भीतर तांत्रिकधारा को विकास के लिए अपेक्षाकृत अधिक उर्वर क्षेत्र मिला । किन्तु रामोपासना में इसके अवशेष अनेक रूपों में उपलब्ध हैं । भुशुण्डि रामायण में सीता और तारा में अभेद स्थापना की गयी है और सीतासहस्रनाम में तारा का भी उल्लेख है :—

‘तारा त्रयापद्मजा’<sup>२</sup>

‘सीता तारा पद्मा’<sup>३</sup>

ये तत्त्व वैष्णव-भक्ति के प्रतिपादक प्रस्तुत ग्रन्थ पर शाक्त तंत्रों तथा महायान की परवर्ती शाखाओं, मंत्रयान एवं वज्रयान का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रकट करते हैं ।

### प्रकरण योजना में तांत्रिक आदर्श

समकालीन बौद्ध तथा शाक्त साधना का यह प्रभाव भुशुण्डि रामायण की प्रकरण योजना में भी स्पष्ट दिखायी देता है । ब्राह्मणधर्म परम्परा में निर्मित प्रवन्ध-काव्यों का प्रसंग-विभाजन अध्याय, काण्ड, सर्ग, प्रकरण आदि नामों से होता रहा है, किन्तु इसके विपरीत आलोच्य-ग्रन्थ चार खंडों—पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण में विभक्त हैं । संभवतः इस योजना के मूल में नेपाल के बौद्धग्रन्थों में निर्दिष्ट पांच व्याानी बुद्धों का आदर्श है, जिनके नाम हैं—वैरोचन, क्षोम्य, रत्नसंभव, अभिताभ और अमोघसिद्ध । ये महायानियों के अनुसार असदिस्मुष्टिकर्ता स्वयम्भू अथवा आदिबुद्ध से संभूत हैं । इनमें से चार चारों दिशाओं में और एक उच्चतर ब्रह्माण्ड में स्थित कहा जाता है । इसी आदर्श पर शाक्तों ने महाशक्ति के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा ऊर्ध्व आम्नाय में स्थित छः रूपों का उल्लेख किया है । चैतन्यदास-रचित ‘विष्णुगर्भपुराण’ में इनमें से ऊर्ध्व आम्नाय की देवी ‘श्रीविद्या’ के नाम से अभिहित की गयी हैं और उन्हें मोक्ष का एकमात्र हेतु माना गया है ।

मोक्षक हेतुविद्या श्रीविद्या नात्र संशयः ।<sup>४</sup>

श्रीविद्या दस महाविद्याओं में षोडशी के नाम से प्रसिद्ध हैं और त्रिपुरसुन्दरी के रूप में पूजी जाती हैं । इनकी उपासना में काम अथवा मन्मथ की प्रधानता है । ये शक्तिचक्र की साम्राज्ञी तथा ब्रह्मविद्यास्वरूपा आत्मशक्ति मानी जाती हैं । इनका पूजन भुक्ति-मुक्ति दोनों का प्रदाता कहा जाता है—

यत्रास्तिभोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः ।

श्रीसुन्दरी सेवन तत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च कारस्थ एव ॥<sup>५</sup>

१. भक्तिमार्गीं बौद्धधर्म—नगेन्द्रनाथ वसु—भूमिका पृ० १४-१५

२. भु० सा० १५०/३९

३. वही०, १५०/

४. त्रिशती, ११९ (तांत्रिक-साहित्य, महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज) भूमिका पृ० २७

५. त्रिशती, पृ० ३०

भुशुण्ड रामायण में सीता से इनकी अभिन्नता स्थापित करते हुए इनके यंत्र-मंत्र पुरस्सर कामेश्वरी रूप का गुणगान किया गया है—

रक्ताशोकलतामंडपमध्यस्थे स्मरमंत्र महाविधे श्रीमंत्र निधे  
महामंत्र विधे महा श्रीयंत्र नायिके महाचक्र नायिके मातज्ज्ञ कुल  
पूजनीय चित्तामणि चरणनख चन्द्रिके ॥१

मेरा विचार है कि भुशुण्ड रामायणकार ने उक्त ग्रन्थ के चार खण्डों का नामकरण चारों दिशाओं के आधार पर महायानी बौद्धधर्म तथा शाक्ततंत्रों में निर्दिष्ट उपर्युक्त पद्धति से ही प्रेरणा प्राप्त करके किया है। परवर्ती उङ्घिया वैष्णव-भक्तों ने चारों दिशाओं में स्थित चारों विष्णु के नियंत्रक उच्चतर स्तर में विद्यमान विष्णु को वैकुण्ठनाथ की संज्ञा दी है और उनका लोक वैकुण्ठ बताया है। इससे भी यह पता चलता है कि भागवत सम्प्रदाय में बौद्ध तथा शाक्त साधकों की उक्त विचारधारा ज्यों-की-त्यों स्वीकार कर ली गयी थी।<sup>२</sup>

इस आधार पर यह अनुमान करना असंगत न होगा कि भुशुण्ड रामायण की रचना उस समय हुई जब उत्तरी भारत में शाक्त एवं बौद्धधर्म के ह्लास के साथ ही वैष्णवधर्म का उत्कर्ष प्रारम्भ हो गया था। तांत्रिक साधनाओं के प्रसार का यह समय भारतीय इतिहास का पूर्वमध्यकाल है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस युग की चार विशेषताएँ<sup>३</sup> मानी हैं— सिद्धान्त प्रचार की प्रवृत्ति, आराध्य देवों की शक्तियों की कल्पना, लोकधर्म के सामने शास्त्रीय मतवादों की पराजय और चतुर्व्यूह सिद्धान्त। वाराहीतंत्र में तांत्रिक-साधना का एक महत्त्व-पूर्ण तत्त्व ध्यानयोग बताया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आलोच्य-ग्रन्थ इन सभी विशिष्टताओं से समन्वित हैं।

इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात यह है कि ऐतिहासिक दृष्टि से तांत्रिक मतों के उत्कर्ष का यह युग चंदेलों तथा गहरवारों द्वारा उत्तरी भारत में स्थापित शासन का उत्कर्ष-काल है। चंदेलों द्वारा खजुराहों में चौंसठ ग्रोगिनी मंदिर का निर्माण, गहरवारनरेश गोविन्द चन्द्रदेव की पत्नी कुमारदेवी की तंत्रयान तथा जयचन्द्र की वज्रयान में आस्था से उक्त उपपत्ति की पुष्टि होती है। किन्तु इसके साथ ही इस काल के शासक-वर्ग का वैष्णव तथा शैव मत में भी समान रूप से आस्थावान् होना यह प्रकट करता है कि तांत्रिक मतों का प्रभाव जन-सामान्य पर ज्यों-ज्यों क्षीण हो रहा था, त्यों-त्यों वे अन्य धर्म सम्प्रदायों की ओर झुकते जा रहे थे। चंदेले, शैव तथा गहरवार वैष्णव मत के प्रति अधिक समादर का भाव रखते थे। गहरवारनरेश चन्द्रदेव ने ११०० ई० के लगभग काशी में आदिकेशव के मंदिर में तुलादान दिया था और जयचन्द्र 'आदिकेशव' का उपासक ही नहीं था, ११६८ ई० में उसने कृष्णभक्ति की दीक्षा भी ले ली थी।<sup>४</sup> किन्तु धार्मिक विचारों में ये सभी अत्यन्त उदार थे। इसलिए गहरवार

१. भु० रा०, पूर्व २७/१९

२. द्रष्टव्य :—भक्तिमार्गी बौद्धधर्म ( नगेन्द्रनाथ वसु ) पृ० ११२

३. मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ० ३७

४. काशी का इतिहास, पृ० १४६

युग में काशी में विश्वनाथ की स्थापना संभव हो सकी।<sup>१</sup> उक्त विग्रह का सबसे पहले उल्लेख एक गहरवार शिलालेख में प्राप्त होता है।<sup>२</sup> भुशुण्ड रामायण में दशरथ-तीर्थयात्रा के प्रसंग में विश्वनाथ दर्शन<sup>३</sup> का प्रसंग आया है तथा गोमती-गंगा संगमस्य मार्कण्डेय महादेव की भी चर्चा है।<sup>४</sup> इन दोनों विग्रहों की आराधना समकालीन समाज में व्यापक रूप से प्रचलित थी और वैष्णव भी साम्प्रदायिक भेद-भाव त्यागकर शिव-मंदिरों में पूजा करने जाते थे, इससे यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है। काशी-मंडल के उक्त दोनों ज्योतिलिङ्गों की प्राचीनता असंदिग्ध है। मार्कण्डेय महादेव का उल्लेख महाभारत में<sup>५</sup> मिलता है और विश्वेश्वर अथवा विश्वनाथ का सर्वप्रथम उल्लेख गहरवार राजाओं के एक अभिलेख में हुआ है।<sup>६</sup> यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि आलोच्य-ग्रन्थ की रचना के पूर्व इन शैवपीठों को लोकमान्यता प्राप्त हो चुकी थी। यह काल ११ वीं शती के आसपास हो सकता है।

### साम्प्रदायिक प्रभाव

पूर्व मध्यकालीन इतिहास तथा साहित्य में तांत्रिक, शैव, शाक्त तथा वौद्ध मतों के ह्रास और वैष्णवधर्म के पुनरुत्थान के सूत्र विविध रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं। यारहवीं शती के अंतिम चरण में स्वामी रामानुजाचार्य द्वारा प्रवर्तित श्रीसम्प्रदाय की लहरें उत्तरी भारत में फैल चुकी थीं और समकालीन धार्मिक जीवन पर उसका गहरा प्रभाव पड़ने लगा था। क्षेमेन्द्र का शैव मत त्यागकर वैष्णवधर्म स्वीकार करना उसके उत्कर्ष की सार्वजनिक स्वीकृति का एक उज्ज्वल उदाहरण था।<sup>७</sup> चन्देल राजाओं के शासनकाल में प्रतिष्ठित जानकीशया, रामचरणद्वय, सीताकुण्ड, सौमित्रक्षेत्र आदि रामतीर्थों का वर्णन कार्लिंजर माहात्म्य में आया है।<sup>८</sup> इससे पता चलता है कि ११ वीं शती के लगभग वैष्णवधर्म के पुनरुत्कर्षकाल में रामभक्ति को भी प्रसार के लिए उपयुक्त वातावरण प्राप्त हुआ। डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रामभक्ति के विकास सूत्रों की विवेचना करते हुए यह विचार व्यक्त किया है कि राम

१. वही, पृ० १४५

२. जे० ए० एस० बी० ३१ पृ० १२३

३. तत्र संपूज्य विधिवद् विश्वेश्वरमुमापतिम् ।

कोटियज्ञ फलं प्राप्य सोऽन्ततो मुक्तिमाप्नुयात् ॥

--भु० रा०, पूर्व० १०३/३९

४. ततश्चगोमती गंगासंगमे तीर्थ मुत्तमम् ।

अग्निष्ठोमादि फलदं मार्कण्डेय महामुनेः ॥

तत्र स्नात्वा वसेत्तत्र जपहोम परायणः ।

ब्रह्मयज्ञं विनिर्वर्त्य जनः स्यात् पंक्तिपावनः ॥

--वही, पूर्व० १०३/४१,४२

५. काशी का इतिहास, पृ० १२

६. काशी का इतिहास, पृ० १४५

७. काशी का इतिहास, पृ० १४९

८. चंदेल और उनका राजत्वकाल, पृ० २३४

अवतार को विशिष्ट उपास्य समझकर भी कोई सम्प्रदाय उन दिनों प्रतिष्ठित होना चाहिए। रामतत्त्व को प्रधानता देनेवाले<sup>१</sup> राम पूर्वतापनीय तथा उत्तर-तापनीय उपनिषदों की रचना—उसी परम्परा में हुई होगी।

राम-कथा के साथ ही धर्म-साधना का जो स्वरूप आलोच्य-ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है वह श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की दार्शनिक तथा आचार-सम्बन्धी मान्यताओं के सर्वथा मेल में है। कुछ स्थलों पर तो इसकी स्पष्ट रूप से घोषणा भी की गयी है। लक्ष्मी-नारायण महिमा<sup>२</sup>, वैष्णव मत का महत्त्व, वैष्णव की परिभाषा<sup>३</sup>, वैष्णवाचार का विवरण<sup>४</sup>, प्रपत्ति सिद्धान्त<sup>५</sup>, प्रपन्न के लक्षण<sup>६</sup>, वैष्णवों के पंच-संस्कार<sup>७</sup> नाम-जप, पड़क्षर राम मन्त्रो-पासना,<sup>८</sup> श्रीमन्त्र विद्या,<sup>९</sup> वैष्णवभक्ति में ऊँच-नीच की भावना का त्याग,<sup>१०</sup> वैष्णवों की पोडशोपचार पूजा,<sup>११</sup> वैष्णव-निन्दकों की भर्त्सना,<sup>१२</sup> वैष्णव-धर्म की पंचमुख्य संहिताएँ,<sup>१३</sup> वैष्णवों का एकायनमार्ग.<sup>१४</sup>, श्रीवैष्णव संन्यासियों का उल्लेख आदि तत्त्वों का समावेश भुशुण्डि रामायण को श्रीवैष्णवों की साम्प्रदायिक मान्यताओं का प्रतिष्ठापक सिद्ध करता है। भेद केवल इतना है कि जहाँ श्रीवैष्णव वैकुंठाधिपति लक्ष्मीनारायण को ही प्रमुखता देते हैं, वहाँ भुशुण्डि रामायणकार राम को विष्णु का और सीता को लक्ष्मी का अवतार बताते हुए भी उन्हें महानारायण के द्वारा नमस्कृत्य मानता है।

भुशुण्डि रामायण में निर्दिष्ट पांच वैष्णव संहिताओं में से ब्रह्मसंहिता और परम-संहिता को श्लेष्डर ने भी प्राचीनतम संहिताओं में स्थान दिया है। रामानुजाचार्य ने 'आगम प्रामाण्य' में परमसंहिता के उद्धरण दिये हैं तथा रामानुजाचार्य ने ब्रह्मसंहिता का उपयोग अपने सिद्धान्तों के समर्थन में किया है। इन दोनों संहिताओं का समय निर्भ्रान्त रूप में ४००—८०० ई० के बीच निश्चित किया जा सकता है। शुक्रसंहिता के निर्माणकाल के विषय में अधिकाधिक रूप से कुछ भी कहना कठिन है, किन्तु हनुमत-संहिता का उल्लेख डॉ० राजेन्द्र

१. मध्यकालीन धर्म-साधना, पृ० ४२
२. भु० रा०, पृ० १५०।३९
३. भु० रा०, पश्चिम १३
४. वही, पश्चिम ७३
५. वही, पूर्व १२८
६. वही, उत्तर ० पत्र ११
७. वही, उत्तर ० १५
८. भु० रा०, पृ० ८९
९. वही, पूर्व ११२
१०. वही, दक्षिण २७।२५
११. वही, पूर्व ८८।७१
१२. भु० रा०, पूर्व ६४
१३. वही, पूर्व १०१
१४. वही, दक्षिण १५। ( एकायनमार्ग श्रीपति का ध्यान )

हाजरा के 'कैटलाग' ( भाग ७, पृ० २५० ) में है। डॉ० बुल्के ने इसे सं० १७१५ वि० ( सन् १९५८ ई० ) के पूर्व निर्मित माना है।<sup>१</sup> यह 'पूर्व' उक्त ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय तथा शैली को देखते हुए ११ वीं शती तक निर्वाचि रूप से खीचा जा सकता है।

### अर्हिसा में अनास्था

एक बात जो इस ग्रन्थ में परम्परागत वैष्णव सिद्धान्तों के प्रतिकूल मिलती है, वह है मांस, मदिरा तथा स्त्रियों के उन्मुक्त उपयोग का उद्घोष। पीछे बौद्ध-तांत्रिकों तथा कौलों के प्रभाव का विवेचन करते हुए यह दिखाया गया है कि आलोच्य-ग्रन्थ में वर्णित रामकथा, विभिन्न पात्रों का चरित्र-चित्रण इन साधनाओं से विशिष्टरूपेण प्रभावित है। सिद्धों की पंचम-कार साधना में मांस भी एक महत्वपूर्ण तत्त्व था। वैष्णव धर्म-साधना में इसका सेवन सर्वथा निषिद्ध था। वाल्मीकि रामायण के अयोध्या<sup>२</sup> तथा उत्तरकाण्ड<sup>३</sup> में वनवास के समय राम-लक्ष्मण के मांसाहार का वर्णन अनेक स्थलों पर आया है। उत्तरकाण्ड में तो उनके द्वारा 'मैरेयक' नामक मादक द्रव्य-सेवन का भी उल्लेख है। किन्तु वैष्णव मत के उत्तरी भारत में प्रसार के पश्चात् लिखी गयी रामायणों में अर्हिसा को सदाचार का मुख्य बंग मानते हुए मर्यादापुरुषोत्तम को इसमें आस्थावान् दिखाया गया है। अतः वैष्णव-परम्परा में निर्मित होते हुए भी आलोच्य-ग्रन्थ में निरामिष भोजन जैसे अनिवार्य वैष्णवाचार की अवहेलना खटकती है। मेरी दृष्टि में इस व्यतिक्रम का प्रधान कारण भुशुष्ठि रामायण की वस्तु-योजना पर पूर्ववर्ती तांत्रिक मतों का गहरा प्रभाव है।<sup>४</sup> निम्नांकित उद्धरणों में इसके स्पष्ट संकेत मिलते हैं :

१. रामकथा, पृ० १८३,
२. स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हृत्वा मेघै प्रतापवान् ।  
अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्दे जातवेदसि ॥  
तं तु पक्वं समाज्ञाय निष्टप्तं छिनशोणितम् ।  
लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रमय राघवमन्त्रवीत् ॥ वा० रा० अयो० १५६।२६-२७
३. अशोकवनिकां स्फीतां प्रविश्य रघुनन्दनः ।  
आसने च शुभाकारे पुष्पप्रकर भूषिते ॥  
कुशास्तरणसंस्तीर्णं रामः सनिषसाद ह ।  
सीतामादाय हस्तेन मधु मैरेयकं शुचि ॥  
पाययामास काकुत्स्थः शचीमिव पुरंदरः  
मांसानि च सुमृष्टानि फलानि विविधानि च  
रमयामास धर्मत्मा नित्यं परमभूषिताः (वा०रा०उत्तर० ४२।१७,१८,१९,२२
४. रक्तमांस प्रियोवीरो नारायण स्वरूपकः ।  
रक्तस्थिर्चर्वको विद्वान् दीनानाथो दिव प्रभुः ॥  
रामः सदा शिवो मूर्तिः कालमूर्ति दिग्म्बरः ।  
रामकृपाकरो देवो विश्वव्यापी निरंजनः ( ब्रह्मामल तंत्र, सृष्टि प्रकरण )

मेध्यानी मृगमांसानि जानकी भर्तुराज्या ।  
 पक्त्वा स्वादूनि विविधान्युपर्णित्ये पुरस्तयोः ॥<sup>१</sup>  
 भारद्वाजस्य वचनाद् भरतातिथ्य कर्मणि ।  
 अनृत्यन् वल्लिकास्तत्र वल्लिका एव चोज्जगुः ॥  
 मद्यं मांसं च सुस्वादु साधु क्लृप्तं सुपाचितं ।  
 इष्यते यद्यावत्तस्य तत्सुलभं तदा ॥<sup>२</sup>—भुशुण्ड रामायण, दक्षिण ३४।५।२५७

### ऐतिहासिक संदर्भ

?—यवन आक्रमण

भारत पर मुसलमानों के आक्रमण का श्रीगणेश आठवीं शती के आरंभ में मुहम्मदबिन कासिम के सिंध पर आक्रमण के साथ हुआ, किन्तु उसकी अटूट श्रृंखला १००० ई० से महसूद गजनवी के उत्तर-पश्चिम सीमांत नगरों पर आक्रमण से चली । धन, भूमि-ग्रहण और धर्म प्रचार के लिए उन्होंने देश के उत्तरी-पश्चिमी प्रदेशों को जिस प्रकार पदाक्रान्ति किया, जो नृशंसतापूर्ण अत्याचारं किये, उसकी झलक भुशुण्ड रामायण के उन प्रसंगों में मिलती है, जहाँ रघुवंशियों और यवनों की सेनाओं में युद्ध के वर्णन आये हैं :—

अपीमान् पश्यसि प्राज्ञ प्रजालोकान्सुपीडितान् ।  
 स्वचक्र परचक्राभ्यां नित्यमुद्दिग्न मानसान् ॥  
 प्रबलो यवनाधीशो विपक्षैरिक्तरैर्युतः ।  
 मांसाद्वुजतिते देशान्सर्वानुत्तरकोशलान् ॥  
 क्षेत्राणि नष्टप्रायाणि कृषिकाणां समन्ततः ।  
 विलुप्ताराशयश्चैवधान्यानां वर्ष भोजनाः ॥<sup>३</sup>

प्रतीत होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के निर्माण के समय तक भारत में मुसलमानों की कुछ बस्तियाँ भी स्थापित हो गयी थीं । ग्रन्थकर्ता द्वारा समकालीन भारत को ‘म्लेच्छप्राय देश तथा धन्यदेश’ में विभाजन इस सम्भावना की पुष्टि करता है ।

कीकटेषु त्रिशंकोश्च छायादेशश्च भूमिषु ।  
 धन्यदेशेषु च तथा म्लेच्छ प्रायेषु चांतक ॥<sup>४</sup>

१. भु० रा०, दक्षिण १८।२

२. वही, दक्षिण ३४।५२, ५७

३. भु० रा०, दक्षिण ५।१।२१, २२, २३

४. ‘म्लेच्छ’ शब्द पूर्वमध्यकालीन हिन्दी तथा संस्कृत-साहित्य में ‘यवन’ की भाँति ही मुसलमानों के लिए प्रयुक्त होता था । निम्नांकित उद्धरण से यह स्पष्ट है—

म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्द प्रभावतः ।

संयोगिनश्च ते ज्ञेया अयोध्यायां बभूविरे ॥ ( भविष्य पुराण )

—उद्धृत; रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पृ० ३८

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च ।

सत्पीड़ा व्यग्रलोकेषु कृष्ण एवगतिर्मम —वल्लभाचार्य (कृष्णाश्रय षोडशग्रंथ, छं० २)

## २. शूरों और सतियों की चर्चा

भारतीय इतिहास के पूर्वमध्यकाल में विदेशी आक्रमणों से देश के परम्परागत धर्म एवं संस्कृत के रक्षार्थ चलाये गये दीर्घब्यापी संघर्ष में पुरुषों और स्त्रियों ने अपूर्व धैर्य, सहनशीलता तथा साहस का परिचय दिया था। सामाजिक मर्यादा एवं व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को बचाने के लिए असंख्य नर-नारियों ने आत्म-सम्मान की बलिवेदी पर अपने प्राण अर्पित किये। अनगिनत देश-भक्त पुरुषों ने रणचंडी की अर्चना अपने शरीर से निकलती हुई रक्तधारा से की और स्त्रियों ने हँसते-हँसते वीरगति प्राप्त पति शव के साथ अपनी देह को चिता की लपटों में भस्मसात् कर डाला।

सतियों की यह परम्परा बहुत प्राचीनकाल से चली आ रही थी। रामायण, कथा-सरित्सागर तथा ब्रह्मसंहिता में इसके प्रचलित होने के अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। भक्तियुगीन निर्गुण साहित्य की ज्ञानमार्गी<sup>१</sup> शाखाओं में तो शूरों और सतियों का मुक्तकंठ से गुणगान किया ही गया है, प्रेममार्गी सूफी कवि भी समकालीन हिन्दू समाज में प्रचलित सती प्रथा के मूल में विद्यमान सर्वतोभावेन आत्मार्पण अथवा आत्माहृति भावना पर मुख्य थे।<sup>२</sup>

भुशुण्ड रामायण में सतियों के महत्त्व-गान के साथ ही दिव्यधाम में उनके निमित्त सुरक्षित लोकों का भी वर्णन आया है :—

ततः सलक्ष्मणो रामः सुवाहु समरेहतान् ।  
मातुलान् पुरुषश्रेष्ठानानेतुमुपचक्रमे ॥  
यदूर्ध्वरेतसां स्थानं मुनीनांयुक्त चेतसाम् ।  
शूराणां सतीनां च पातिव्रत्यजुषां गृहम् ॥३

१. सूरा सीस उत्तरिया, छाँडी तनकी आस,

आगा तै हरि हरखिया, आवत देखा दास ॥—कवीर ग्रंथावली, पृ० १८१

सती जरन को नीकसी, चित धरि एक विवेक ।

तन मन सौंपा पीव कों, अंतर रही न रेख ॥—वही, पृ० १८२

२. नागमती पदुमाकृति रानी। दुवी महासत सती बखानी।

दुवी आइ चढ़ि खाट बईठीं। औ सिव लोक परा तिन्ह दीठीं ॥

\*

\*

\*

चंदन अगर काढ़ि सर साजा। और गति देइ चले लै राजा।

बाजनं बाजहिं होइ अकूता। दुओं कंत ले चाहहिं सूता ॥

\*

\*

\*

जियत जो जरहि कंत की आसा। मुएँ रहसि बैठेहि एक पासा ॥

\*

\*

\*

रातों पिय के नेह गइँ, सरग भएउ रतनार,

जो रे उंवा सो अँथवा, रहा न कोइ संसार ॥

—पदमावत ( जायसी ग्रंथावली डॉ० म०प्र० गुप्त ), पृ० ५५३-५४

३. भु० रा०, पूर्व, १००।१, ६

ऊपर से देखने पर यह आश्रयजनक लगेगा कि सतियों के माहात्म्य-वर्णव की जो परम्परा मुगलकाल के पूर्ववर्ती साहित्य में अक्षुण्ण रूप से चलती रही वही तुलसीदास जैसे लोक-संग्रही भक्तकवि की दृष्टि में सामाजिक मर्यादा-रक्षा के लिए धातक प्रतीत होने लगी। दोहावली में वे लिखते हैं :—

सीस उधारन किन कह्यो, बरजि रहे प्रिय लोग ।  
घर ही सती कहावती, जरती नाह वियोग ॥१

मेरे विचार में इसका मुख्य कारण रहा होगा स्त्रियों में पहले की तरह स्वेच्छया आत्म-दाह करने की प्रवृत्ति का ह्लास और समाज में इस तथाकथित अनिवार्य कर्तव्य-पालन के लिए विधवांओं का बल्पूर्वक आग की लपटों में झोंक देने की पाश्विक प्रवृत्ति का विकास। तुलसी के ही निम्नांकित वक्तव्य से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

परमारथ पहिचानि मति, लसति विषय लपटानि ।  
निकसि चिता ते अधजरति, मानहु सती परानि ॥२

### ३. काशी की सीमा

दशरथ की तीर्थयात्रा के प्रसंग में भारत के विभिन्न तीर्थों का माहात्म्य वर्णन करते हुए भुशुण्ड रामायणकार ने तत्कालीन काशी को 'विन्दुमाधव' और 'लोलार्क कुण्ड' के बीच स्थित बताया गया है—

एकतो भगवान् विष्णुर्माधवः संप्रतिष्ठितः ।  
अपरत्र च लोलार्कः कोटिद्वयमिदं स्थितम् ॥३  
धनुराकरतापन्नं काशीपुरमुदित्वरम् ।

टीका—'एकस्यां कोटी विन्दुमाधवः अपरस्यां च लोलार्कः'

उभयोर्मध्ये वाराणसीः (मथुरा हस्तलेख)

गोविन्दचन्द्र देव के एक लेख में 'इन्द्रमाधव' अथवा 'विन्दुमाधव' नामक विष्णु

१. दोहावली, छं० २५४

२. वही, छं० २५३। 'अर्थात् परमार्थ को पहचान कर साधनारत विरक्त साधक की बुद्धि यदि पुनः विषयों में आसक्त होती है तो संसार में उसकी वैसी ही विडंबना होती है जैसे चिता में प्रविष्ट होकर प्राणों के मोह अथवा भस्म होने की यातना से भयमीत होकर भागनेवाली अधजली सती निन्दनीय मानी जाती है।' इस कथन से यह विदित होता है कि गोस्वामीजी ने ऐसी अनेक सतियों का दृश्य देखा था जो सतीत्वभाव की पुष्टि हुए बिना पहले तो लोकापवाद के भय से पति के साथ जलने को तैयार हो जाती थीं किंतु चिता में आग लगने पर लपटों से घबराकर फिर भाग खड़ी होती थीं। उनके इस आचरण की आरूढ़ पतित साधुओं के आचार से सादृश्य स्थापना करके तुलसी ने लोकान्वीक्षण-विषयक अपनी अंतर्दृष्टि का परिचय दिया है।

३. भु० रा०, पूर्व १०३। ३५

मंदिर का उल्लेख है।<sup>१</sup> पंचगंगा घाट पर माधवराव और हरवाली मस्जिद मुस्लिम शासन-काल में इसी को व्वस्त करके बनी थी, किन्तु बाद में उसी के समाप्त विन्दुमाधव का एक मंदिर पुनः बन गया। गोस्वामी तुलसीदाम के समय तक प्राचीन विन्दुमाधव का मंदिर विद्यमान था, यह विन्दुमाधव-विपयक विनयपत्रिका के उक्त पद से स्पष्ट है। गहरवारों के ही शासन-काल में लोलार्क-कुण्ड में स्नान करके गोशल देवी द्वारा एक गाँव दान में देने का उल्लेख है। प्रतीत होता है कि उसी के आमपास विश्वनाथ की भी स्थापना हुई, कारण कि इस विग्रह की सर्वप्रथम चर्चा एक गहरवार अभिलेख में ही मिलती है। भुशुण्डि रामायण में प्राप्त इन तीनों पूज्य स्थलों का उल्लेख यह प्रकट करता है कि उसके रचनाकाल तक इनकी प्रतिष्ठा हो चुकी थी। विन्दुमाधव तथा लोलार्क के बीच में काशी-स्थिति प्रकारा-न्तर से उसकी प्राचीनतम सीमा वरुणा और असी ( जिससे उसे वाराणसी की संज्ञा मिली ) की मान्यता का संकेत देते हैं।<sup>२</sup>

#### ४. 'निष्क' का प्रचलन

राम के युवराज होने पर अयोध्या की समृद्धि-वर्णन के सन्दर्भ में 'निष्क' शब्द का प्रयोग हुआ है—

कोसलानां निवसति रामचन्द्र सतां गतो ।  
लक्ष्मीशो देवदेवेशो प्रभो त्रैलोक्य वल्लभे ॥  
ब्रह्मक्षत्र विशां चैव शूद्राणां च गृहे-गृहे ।  
सुवर्णमणि निष्काढ्या विलसन्त्यड्ना गणाः ॥<sup>३</sup>

शब्दकल्पद्रुम<sup>४</sup> में 'निष्क' को मुद्राविशेष तथा आभूषण दोनों अर्थों में परम्परया प्रयुक्त बताया गया है और मनुस्मृति, रामायण आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त विष्णुगुप्त, भरत, हेमचन्द्र शार्ङ्गधर प्रभृति आचार्यों की तद्विपयक मान्यता का उल्लेख किया गया है। भाषा में 'चारिमोहर' लिखकर कोषकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह वस्तुतः सोने का एक सिक्का था, जिसका स्त्रियाँ उरोभूषण अथवा कंठहार बनवाकर आजकल की अशर्कियों से बनी हुमेल की भाँति प्रयोग करती थीं। किन्तु वास्तव में था यह सिक्का ही जो दीनार, ट्रंक, द्रम आदि की भाँति विनिमय में व्यवहृत होता था।

बारहवीं शताब्दी के बाद भारतीय इतिहास में इसके प्रयोग के प्रमाण नहीं मिलते, अलः यह धारणा अलीक नहीं है कि प्रस्तुत ग्रंथ का निर्माण उसके पूर्व किसी समय हुआ होगा।

१. एपि० इंडि० ८१५२, १५३१५—इहै परम फल परम बड़ाई

त्रिवसिख सुभग विन्दुमाधव छबि देखिह नयन अघाई ( वि० प० पद ६२ )

२. एमि० इंडि० ५११६-११८

३. विशेष द्रष्टव्य—

'Social Factors in the morphogenesis of Varanasi—Dr. Ramlochan Singh ( Published in Urban Geography of Developing Countries )'

४. भू० रा०, पूर्व ३७०११, ५

## समन्वय-दृष्टि

### ( क ) राम-कृष्ण की अभिन्नता

वैष्णव मत की चिरप्रतिष्ठित परम्परा के अनुसार भुशुण्ड रामायण में राम और कृष्ण की तात्त्विक दृष्टि से अभेद स्थापना की गयी है और राधा-कृष्ण को सीताराम का प्रतिरूप माना गया है। इसके साथ ही इन दोनों अवतारों की लीला-भूमियों की एकता का भी प्रतिपादन किया गया है। राम की ब्रजलीला,<sup>१</sup> ब्रज में सर्वत्र रामचरितगान<sup>२</sup> और राम-कृष्ण का समन्वित लीलावर्णन<sup>३</sup> इसके प्रमाण हैं। इष्टपरत्व की भावना से प्रेरित होकर यद्यपि कथाक्रम में कृष्ण की सारी लीलाओं को रामलीला का अनुकरण मान कहा गया है और राम में श्रद्धा न रखनेवाले कृष्ण-भक्तों को उसे सुनाने का निषेध किया गया है किन्तु आलोच्य-ग्रन्थ के कथा-संघटन को देखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थकार भागवतवर्णित कृष्णचरित के सांचे में ही रामचरित को ढालने के लिए कृतसंकल्प है। इस दृष्टि से कृष्णोपासकों की मायुर्यासक्ति ही नहीं—उनके द्वारा वर्णित कृष्णलीला के विविध रूपों, लीला-विधान में सहायक पात्रों तथा लीला-भूमियों की नामावली भी ज्यों-की-त्यों रख दी गयी हैं। इससे यह विदित होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के रचनाकाल तक राम तथा कृष्ण भक्तों में इष्टपरत्व को लेकर वह स्पर्धा तथा ईर्ष्या, द्वेष की भावना उत्पन्न नहीं हुई थी जो परवर्ती आनन्द रामायण<sup>४</sup> तथा दो सौ बावन और चौरासी वैष्णवों की वार्ताओं में दिखायी देती है।

भुशुण्ड रामायण में निर्दिष्ट राम-कृष्ण की अभिन्नता का परवर्ती वैष्णव-भक्ति काव्य ग्रन्थों में पूरी तरह निर्वाह हुआ। कृष्ण कण्ठमृत<sup>५</sup> में राम के कृष्ण रूप-धारण तथा राम-लिंगामृत<sup>६</sup> के अन्तर्गत राम-कृष्ण में अभिन्नता प्रतिपादन आदि तथ्यों से उक्त धारणा की पुष्टि होती है।

### ( ख ) शिव और राम की परस्पर गूढ़ भावासक्ति

वैष्णव-भक्ति के उद्गम स्थल द्रविड़ देश में शैवों-वैष्णवों के बीच जो वैमनस्य था, प्रतीत होता है वह भुशुण्ड रामायण के रचनाकाल तक शमित हो चुका था। उक्त दोनों मतों में सौहार्द स्थापना का यह कार्य तांत्रिक साधकों ने राम और शिव में अभेद प्रतिपादन द्वारा पूरा किया।<sup>७</sup> यद्यपि इस ग्रन्थ में भी राम के लोकप्रसिद्ध शत्रु रावण के मुख्य उपास्य शिव ही बताये गये हैं और उन्हीं के द्वारा प्रदत्त वरदान<sup>८</sup> को रावण के अत्याचारों का मूल कारण बताया गया है तथापि राम और उनकी पराशक्ति सीता अथवा सहजा द्वारा की गयी शिव की पूजा और स्तुतियों का अनेक प्रसंगों में उल्लेख है और शिव को भी राम के अनन्य भक्तरूप<sup>९</sup> में चित्रित किया गया है। ग्रन्थकार ने पंचवटी में राम-लक्ष्मण द्वारा की गयी अस्तिकेश

१. भु० रा०, पूर्व० ६५०।२५३-२७६

२. वही, पूर्व० ६०।१५।८४

३. वही, पूर्व० २०९।१५-१६

४. आनन्द रामायण, पू० ३९७।२

५. कृष्ण कण्ठमृत ३।९४

६. रामलिंगामृत, सर्ग १८

७. रामः पराक्रमी कामी, कामदेवस्य पालकः।

( रुद्रयामल तंत्र, सृष्ट प्रकरण, छंद ९७० )

रामो हरः पार्वतीशः स्मर्यते च दिवानिशं ॥

८. भु० रा०, दक्षिण १९।१२२-२७

९. भु० रा०, पूर्व० ४३।३६-३७

महादेव की पूजा<sup>१</sup> का विस्तार से वर्णन, शैवसिद्धों<sup>२</sup> के प्रति अद्भुत लोकार्पण तथा गंगा और गोमती के संगम पर स्थित मार्कण्डेय महादेव<sup>३</sup> के प्राचीन मठ का उल्लेख कर शैवपीठों तथा शैव-साधना में अपनी प्रगाढ़ निष्ठा व्यक्त की है। इससे समकालीन समाज में राम तथा शिव के भक्तों के पारस्परिक सौहार्द का पता चलता है।

यहाँ एक बात ध्यान देने की यह है कि शैवपीठों की भाँति शैवसिद्धों द्वारा प्रतिष्ठित योगसाधना का महत्त्व भी आलोच्य-ग्रन्थ में श्रद्धापूर्वक स्वीकारा गया है। ‘राम गीता’ के अन्तर्गत उपदिष्ट साधनामार्गों में योग को विशेष स्थान देकर कुण्डलिनो जागृत करने तथा पद्मक्र मेदने की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए योग के स्वाथय तथा पराश्रय भेद बताकर ज्ञानयोग की अपेक्षा भक्तियोग को सुगम एवं श्रेयस्कर माना गया है।

इस सम्बन्ध में एक उलझानेवाली बात है। प्रस्तुत ग्रन्थ में शैव-सिद्धान्त के प्रति अविरोध भाव व्यक्त करते हुए भी नाथसिद्धों के विषय में लेखक का सर्वथा मौन-ग्रहण। ग्रन्थ के भीतर कहीं भी गोरखपंथ, नाथपंथ अथवा नाथसिद्धों का उल्लेख नहीं मिलता, न कहीं नाथाचार की ही चर्चा आयी है। सिद्धों और उनके चमत्कारों का निर्देश अवश्य है किन्तु उससे यह स्पष्टतया लक्षित नहीं होता कि वे सिद्धकील हैं, सहजयानी हैं या नाथपंथी। इसके पूर्व प्रस्तुत ग्रन्थ के विषयतत्त्व पर सहजमार्ग कीलों तथा सहजयानी बौद्धों के प्रभाव की विवेचना की जा चुकी है। उसके प्रकाश में यह अनुमान करना असंगत न होगा कि सन्दर्भित सिद्धों से रचयिता का तात्पर्य बौद्धों तथा कीलसिद्धों से ही है। कारण कि पूर्वमध्यकालीन धर्म सम्प्रदायों में बौद्धों की वज्रयानी शाखा द्वारा प्रतिपादित मध्यममार्ग में ही सर्वप्रथम “मैथुन” को धर्मसाधना का अनिवार्य अंग स्वीकार किया गया था। आचार्य असंग और नागार्जुन की तद्विषयक मान्यताओं का समकालीन विद्वत्समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। आलोच्य-ग्रन्थ की रचना के समय ये सारे तत्त्व इस देश के आध्यात्मिक वातावरण में व्याप्त थे, अतः वे उसी रूप में ग्रहण कर लिये गये।

### ( ग ) निर्गुणोपासना का समर्थन

भुशुण्ड रामायण की रचना का मुख्य लक्ष्य परात्पर ब्रह्म राम की सगुण लीलाओं का गान और उसके माध्यम से वैष्णव-भक्ति का प्रचार रहा है। इसके अन्तर्गत श्रीवैष्णवों के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है। किन्तु इसके साथ ही निराकार ब्रह्म की महृत्ता स्वीकार करते हुए निर्गुण भक्ति का महत्त्व भी विस्तार से वर्णित है—

एकान्ते विमले क्षेत्रे योगक्षेमं विधाय च ।

मन्त्रिष्ठां भावनां कुर्याद् यथाशीघ्रं भवं तरेत् ॥

वैदिकैस्तान्त्रिकै कर्मव्यूहैः सुविमले हृदि ।

प्रवृत्तो भावनां यातां तां कुर्यान्मदुपाश्रयाम् ॥

हृत्पुण्डरीक मध्ये तु साकेतं भावयेन्मुहुः ।

तत्र मां भावयेत् पूर्णलीलाभिः पुरुषं परम् ॥

१. वही, दक्षिण, २४०

२. वही, पूर्व १२४।९१-९५

३. वही, पूर्व १०३।४१-४८

यद्धि किञ्चिदवस्तु जातं भावयेत्तन्मदात्मकम् ।  
 मत्तः परं नैव किञ्चिन्मयीदं सर्वमेव तु ॥  
 जडः स्फुरति जागत्सु स्वप्ने भांति चिदन्तरा ।  
 सुषुप्तौ सच्चिदानन्दो ह्यन्तरात्मा प्रकाशते ॥  
 यल्लीनावतिष्ठन्ते स्वरूपानन्द भोगिनः ।  
 आनन्दमय आनन्दभुगित्युपनिषत्सु सः ॥  
 तुरीयस्त्वहमेतेभ्यः समः सर्वत्र सर्वगः ।  
 विद्यया तु यदा विद्या नश्यतिध्वान्त वद्वुचा ॥  
 तदा परमानन्दः प्रकाशात्मो प्रकाशते ।  
 सर्वाध्यास निवृत्तौ तु शुद्धा देहेन्द्रियादयः ॥  
 परब्रह्मनन्द पद दायकं ह्याधिदैवकम् ।  
 मत्स्वरूपानन्द भोगहेतुस्तुर्यतदुच्यते ॥  
 अहमेव फलं यस्याः सा तुर्या परिकीर्तिता ।  
 निर्गुणं भावमापन्ना सर्वतोऽपि विशिष्यते ॥<sup>२</sup>

इन उद्घरणों से यह प्रकट होता है कि श्रीसम्प्रदाय के अन्तर्गत उस समय वैष्णव-भक्ति की सगुण और निर्गुण—दोनों धाराएँ समानान्तर प्रवहमान थीं। साधकों की प्रवृत्ति के अनुसार आचार्यगण इनमें से किसी एक को अपनाकर परमार्थ साधनों में अग्रसर होने की व्यवस्था देते थे। स्वामी रामानन्द ने वैष्णव मत की इस विशिष्टता को ध्यान में रखकर राम-भक्ति को साम्रादायिक स्वरूप प्रदान करते समय उत्तरी भारत में उसकी निर्गुण तथा सगुण दो शाखाएँ स्थापित की थीं और अपने शिष्यवर्ग में उसके पुरस्कर्ताओं के दो स्पष्ट वर्ग बनाये थे—सगुण भक्ति के उपदेशाओं में अनन्तानन्द और निर्गुण भक्ति के उन्नायकों में कबीर अग्रगण्य हुए। इन दोनों शाखाओं में सिद्धान्त-विषयक मौलिक मतभेदों के कारण उद्गम स्थल एक होते हुए भी पारस्परिक स्नेह-सद्भाव उत्तरोत्तर क्षीण होता गया। गोस्वामी तुलसी-दास के समय तक ‘निर्गुण राम’ एवं ‘सगुण राम’ के भक्त एक दूसरे के घोर आलोचक बन गये थे। सूर ने ‘अविगत गति कछु कहत न आवे’ प्रतीकवाले पद में निर्गुण भक्ति को जनसामान्य के लिए अव्यवहार्य बताकर सगुण साधना का मनोवैज्ञानिक आधार पर समर्थन किया।<sup>३</sup> कहना

१. भु० रा०, पूर्व० ४४१९, १०, ११, १२, २०, २२, २३, २४ २. वही, पूर्व० ४५। ११, १३

३. सूर, तुलसी तथा परमानन्द दास जैसे सगुण भक्तिधारा के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं में सिद्धों और योगियों की इस लोकविरोधी प्रवृत्ति की खुलकर आलोचना की गयी है—  
मधुकर ये सुनि तन मन कारे ।

कहुँ न सेत सिद्धताई तन परखे अंग तिहारे ॥

कीन्हौं कपट कुंभ बिच पूर्ख, पय मुख प्रगट उधारे ।

बाहर देखि मनोहर दरसत, अंतरगत जु ठगारे ॥

अब तुम चले ग्यान विष ब्रज दै हरन जु प्रान हमारे ।

ते क्यों भले होहिं सूरज प्रभु रूप बचन कृत कारे ॥ —सूरसागर, द्वितीय खण्ड, पृ० १५१९

न होगा कि राम तथा कृष्णभक्ति शाखाओं के प्रतिनिधि भवतों के निर्गुण गाथना विगेशी उद्गारों के पीछे उसमें व्यास शांकर मतानुयायियों की अद्वैतपरक, वौद्वनिद्वाओं की नहजमार्गी तथा नाथपंथियों की हठयोगी विचारधारा के प्रति धोर जुगुप्सा की भावना थी। इसका मुख्य कारण या, उनके द्वारा समाज में फैलाये जाते हुए दम्भ, पाक्षण्ड, निष्ठाहीनता और निराशा के भाव।

भुशुण्ड रामायणकार के समझ ये परिस्थितियाँ नहीं थीं। इमलिए उमने श्रीवैष्णवों के परंपरागत साम्प्रदायिक सिद्धान्त के अनुसार भक्ति की उन दोनों निर्गुण तथा गगुण गाथना-पद्धतियों का यथोचित सत्कार किया।

#### ५. राम-मूर्तियों की श्रृंगारी मुद्राएँ

वैखानस आगम, भुशुण्ड रामायण, जानकीहरण तथा वैष्णव-गंहिताओं में राम के श्रृंगारी-लौला-चित्रण का प्रभाव तत्कालीन स्थापत्य-कला पर भी पड़ा। चन्देल राजाओं द्वारा निर्मित खजुराहों के मंदिरों में उत्कीर्ण राम और सीता की प्रतिमाओं में अभिव्यक्त मुद्राओं से यह स्पष्ट हो जाता है। उसमें दो मूर्तियाँ राम-सीता की हैं, जिनमें से एक में युगल-कियोर आलिंगनवद्व हैं।<sup>१</sup> दूसरी मूर्ति में राम चतुर्भुजी है, उनका चौथा हाथ सीता को आलिंगन-पाश में भरता हुआ उनके बायें स्तन पर स्थित है। राम के बायें सीता त्रिभंगीमुद्रा में आलिंगन मुद्रा में खड़ी हैं। यह मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर में है।<sup>२</sup> राम-सीता की इसी प्रकार की एक मूर्ति

अपने सगुन गोपालहि-माई इहि विधि काहै देति।

ऊधौ की इन मीठी बातनि, निर्गुन कैसे लेति ॥

—मूरसागर, पृ० १५४९

असुभ वेष भूषन धरै, भच्छा मच्छ जु खाहि ।

तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहि ॥ (रामचरित मानस, (उ० ९८क)

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग,

निगम नियोग सों सो केलि ही छरौ सो है ॥—कवितावली, उत्तर ८४  
जो गोपिन के प्रेम न होतो अरु भागवत पुरान ।

ती सब औधड़ पंथहि होतो कथत गमैया ज्ञान ॥

बारह बरस को भयो दिगम्बर ज्ञानहीन सञ्चासी ।

खान-पान घर-घर सबहिन के भसम लगाय उदासी ॥

पाखंड दंभ बढ़ो कलिजुग में श्रद्धाधर्म भयो लोप ।

परमानन्ददास वेद पढ़ि बिगन्यो कापर कीजै कोप ॥—परमानंद सागर, पृ० २८९

१. खजुराहो की देव प्रतिमाएँ —डा० रामाश्रय अवस्थी, चित्र सं० ३६, पृ० १११

२. अथवक्ष्ये गुणातीतं मदीयं ध्यानमुत्तमम् ।

प्रमोदवन कुञ्जान्तर्दिव्य कल्पलता गृहे ॥

सहजानन्दया शक्त्या युक्तं वामाङ्गसंस्थया ।

दिव्य श्रृंगार वेशाद्यं मुक्ताहार विभूषितम् ॥

ग्वालियर संग्रहालय में भी है।<sup>१</sup> ये सभी मूर्तियाँ नवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच उत्कीर्ण की गयी हैं।

वैखानस आगम में किरोट मुकुट सहित धनुर्धर राम को त्रिभंगीमुद्रा में और उनके दक्षिण पार्श्व में वायें हाथ में नीलोत्पल धारण किये दाहिना हाथ पसारे हुए तथा प्रफुल्ल नेत्रों से राम की ओर देखती हुई सीता की मूर्ति<sup>२</sup> के निर्माण का निर्देश किया गया है।

यह विचारणीय है कि खजुराहो में उत्कीर्ण उपर्युक्त मूर्तियाँ जैन-मन्दिरों की हैं, जिनकी सांसारिक जीवन के प्रति विरक्ति भावना विदित है। पूर्व मध्यकालीन बौद्धों की भाँति ही जैनों द्वारा निर्मित मूर्तियों एवं साहित्य में भी लौकिक वैभव, सौन्दर्य तथा कामासक्ति का उद्घाटन चित्रण मिलता है। यहाँ पंडित राहुल सांकृत्यायन आलोच्यकालीन समाज के सभी वर्गों में व्याप्त वासनात्मक प्रवृत्ति की ओर लक्ष्य करते हुए कहते हैं, 'इस युग में तंत्र, मंत्र, भैरवीचक्र या गुप्त यौनस्वातंश्य का बहुत जोर-शोर था। बौद्ध और ब्राह्मण दोनों ही इसमें होड़ लगाये हुए थे। भूत, प्रेत, जादू-मंतर और देवी-देवतावाद में जैन भी किसी से पीछे नहीं थे। आखिर चक्रेश्वरी देवी यहाँ भी विद्यमान हुई और हमारे मुनि कवि<sup>३</sup> भी निर्वाण कामिनी के आर्लिंगन का खूब गीत गाने लगे।'<sup>४</sup> भक्ति-शृंगार से मंडित इस प्रकार की साहित्यिक तथा स्थापत्य सामग्री राम की शृंगारी भक्ति के विकास में प्रेरणाप्रद सिद्ध हुई होगी, इसमें संदेह नहीं।

### भुशुण्ड रामायण का मध्यकालीन राम-भक्ति-साहित्य पर प्रभाव

वैष्णव, शैव, शाक्त तथा बौद्ध स्रोतों से पोषित मध्यकालीन धर्म-साधना का जो समन्वित रूप भुशुण्ड रामायण में उभरा उससे उत्तरी भारत के पर्वती मध्यकालीन भक्ति-साहित्य का प्रभावित होना अवश्यम्भावी था। इसने राम-तत्त्व की ही नयी व्याख्या नहीं प्रस्तुत की, राम-कथा को भी एक ऐसे सांचे में ढाला जो उसके प्रचलित रूप से बहुत अंशों में भिन्न था।

हरिचन्दन लिपाड़गं मणिवर्यावितंसकम् ।  
किशोरकंज पद्माक्षं रासरूपं मनोहरम् ॥

—भु० रा०, पूर्व ५१२९, ३०, ३१

१. कैटलाग आव स्कल्पचर्स इन दि आर्कियोलाजिकल म्यूजियम, ग्वालियर, पृष्ठ २५
२. इ० हि० ई० । परि० सी०, पृ० ४०-४१  
नमस्ते रसिकेन्द्राय शृंगारसमूर्तये ।  
सीता कटाक्ष संदोह विजिताय परात्मने ॥ भु० रा०, पू० १३।१२
३. मुनि स्थूलभद्र वर्णित नारी-सौन्दर्य का एक चित्र है—  
कन्न जुगल जसु लह लहंत किर मयण हिंडोला ।  
चंचल चपल तरंग चंग जसु नयण कचोला ॥  
तंगु पयोहर उल्लसई सिंगार थपक्का । कुसुम बाण निय अमिय कुम्भ किर थापण मुक्का ॥  
—विद्यापति ( डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० १११, ११२ पर उद्धृत )
४. हिन्दी काव्यधारा, पृ० ३७

जहाँ तक रामकथा के स्वरूप-परिकार का प्रश्न है उस पर सर्वाधिक प्रभाव भागवत में वर्णित कृष्णचरित के उन तत्त्वों का पढ़ा, जो भुशुण्डि रामायण में ज्यों-के-त्यों ग्रहण कर लिये गये थे। इसमें संदेह नहीं कि मध्यकालीन रामचरित काव्यों में ये तत्त्व भुशुण्डि रामायण के माध्यम से आये, कारण कि उसके पूर्ववर्ती किसी कथाकाव्य में रामचरित को कृष्णचरित प्रतिरूप बनाने का ऐसा सजग प्रयास नहीं हुआ था जैसा भुशुण्डि रामायण में दिखायी देता है।

इसके अतिरिक्त रामकथा के मूलब्रोत वाल्मीकि रामायण में निरूपित रामचरित को समकलीन वातावरण के अनुसार लोकोपयोगी रूप प्रदान करने में भी भुशुण्डि रामायणकार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसके परिणामस्वरूप कालान्तर में रामकथा प्रेमियों को वह इतनी आकर्षक लगी कि सारे परवर्ती रामचरित काव्यों में वह आदर्श रूप में ग्रहण कर ली गयी। क्या साधनात्मक और क्या कथात्मक दोनों दृष्टियों से भुशुण्डि रामायण में अंकित रामचरित बाद के राम-काव्यों का पथ-प्रदर्शक बन गया। कालक्रम से राम-काव्य पर पड़नेवाले इन दोनों प्रकार के प्रभावों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

### अध्यात्म रामायण

अध्यात्म रामायण की रचना रामकथा के माध्यम से वेदान्त सिद्धान्त को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से की गयी थी। इस ग्रन्थ में निरूपित आध्यात्मिक सिद्धान्तों का अनुशीलन करने से पता चलता है कि रचयिता के समक्ष अवश्य ही अनेक साम्प्रदायिक रामचरित काव्य थे, जिनसे उसके निर्माण में पर्याप्त सहायता ली गयी थी। स्वयं ग्रन्थकार का कहना है—

‘रामायणानि वहुशः श्रुतानि वहुभिर्द्विजैः।’

डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची का अनुमान है कि प्रस्तुत संदर्भ में जिन रामायणों की ओर संकेत किया गया है, उनमें से हो सकता है भुशुण्डि रामायण भी हो।<sup>१</sup> अध्यात्म रामायण में वर्णित रामकथा का स्वरूप प्रायः वही है जो भुशुण्डि रामायण के पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण खण्डों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अध्यात्म रामायण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग ‘राम गीता’<sup>२</sup> भी इसी नाम से भुशुण्डि रामायण में दो स्थलों<sup>३</sup> पर दो भिन्न प्रसंगों तथा रूपों में आयी है। इन दोनों रामकथाश्रित ग्रंथों में भेद केवल इतना है कि जहाँ भुशुण्डि रामायण में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तानुकूल भक्ति तथा ज्ञान-साधना का वर्णन है वहाँ अध्यात्म रामायण में अद्वैतपरक वेदान्तिक दृष्टिकोण को प्रमुखता दी गयी है।

डॉ० वादवील रामचरित मानस के स्रोतों का अनुसन्धान करते हुए उक्त ग्रन्थ की टीकाओं में प्राप्त भुशुण्डि रामायण-विषयक उल्लेखों को देखकर इस नतीजे पर पहुँची हैं कि

- 1. ‘Of the various sectarian Ramayanas the Pamp Ramayana, the yogavashishtha, the Bhushundi Ramayan were probably in existence when the Adhyatma Ramayana was composed.’ Adhyatma Ramayana by Dr. Prabodha Chandra Bagchi—P. 75 ( Part I Ed. Nagendranath ) Preface.
- 2. अध्यात्म रामायण, आदिकाण्ड, प्रथम अध्याय
- 3. भुशुण्डि रामायण, पूर्व० अ० ४३/५९

'यह ग्रन्थ अभी तक अप्राप्य है, पर इसकी सत्ता स्वीकरणीय है।'<sup>१</sup> इस सम्बन्ध में वे आगे कहती हैं, भुशुण्ड रामायण के विषय का हमारा ज्ञान और भी दुःखद इसलिए है कि यदि इस ग्रन्थ की नकल ही हुई हो तो इस ज्ञान से रामचरितमानस की रचना और उत्तरकाण्ड के स्वरूप की कई विशेषताओं को समझा जा सकता है।<sup>२</sup>

श्रीमती वादवील ने रामचरित मानस और अध्यात्म रामायण के अरण्यकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक भुशुण्ड द्वारा वर्णित कथा में साम्य देखकर यह संभावना व्यक्त की थी कि 'कदाचित् वे एक ही आधार पर आश्रित हैं और यह आधार भागवत पुराण से प्रभावित कोई साम्प्रदायिक रामायण ही होगी। सम्भवतः यह भुशुण्ड रामायण ही हो।'<sup>३</sup> भुशुण्ड रामायण के प्रकाश में आ जाने से उनका यह अनुमान अब तथ्याश्रित प्रमाणित हो सकेगा।

अध्यात्म रामायण में उक्त ग्रन्थ के पाठ तथा संकीर्तन पर बल दिया गया है और उसको नमस्कार मात्र करने से देवार्चन तथा सर्वशास्त्रस्वाध्याय की फलप्राप्ति सहज संभव कही गयी है।<sup>४</sup> उसके अन्तर्गत रामभक्तों और समुदाय को विशेष महत्त्व देते हुए उन्हें 'महाभागवत' नाम से अभिहित किया गया है। इन तथ्यों के प्रकाश में डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची ने अध्यात्म रामायण की रचना के पूर्व रामभक्ति के साम्प्रदायिक रूप के अस्तित्व और उसके अन्तर्गत 'रामनवमी' व्रत के श्रद्धापूर्वक मनाने की परम्परा प्रचलित होने की संभावना व्यक्त की है।<sup>५</sup>

इसके अतिरिक्त रामभक्ति साधना में प्रेमतत्त्व को प्रमुख स्थान देने की प्रेरणा भी अध्यात्म रामायण के रचयिता ने भुशुण्ड रामायण से ही प्राप्त की हो तो कोई आशर्य नहीं। प्रेमभक्ति के सम्बन्ध में उक्त दोनों ग्रन्थों में उपलब्ध विचार-साम्य से इसकी पुष्टि सहज ही हो जाती है—

'तस्माद्राधव सद्गुर्किस्त्वयि मे प्रमलक्षणा ।'

'अतोऽहं राम रूपं ते स्थूलमेवानुभावये ॥

यस्मिन् ध्याते प्रेमरसः सरोमपुलको भवेत् ।

तदेव मुक्तिः स्याद्राम यदा ते स्थूलभावकः ॥'

( अध्यात्म रामायण )

भुशुण्ड रामायणकार के अनुसार यह निर्गुणाश्रयी प्रेम लक्षणभक्ति स्वरूप-ज्ञान की प्राप्ति में सहायक होती है—

१. तुलसीदास रचित रामचरित मानस का मूलाधार व रचना-विषयक समालोचनात्मक अध्ययन पृ० १९ ( भूमिका )
२. वही, पृ० २० ( भूमिका )
३. वही, पृ० २०
४. अ० रा० १/३३,३४
५. अध्यात्म रामायण ( नगेन्द्रनाथ सिद्धान्त रत्न ) भाग १, पृ० ७ ( भूमिका )
६. वही, अ० ३/३/ ४५,३३
७. वही, अ० ३/३/४५

निर्गुणात्वेकरूपैमन्निष्ठा मतफलोदया ।  
 मत्स्वरूपात्मिका नित्यं भूयोमत्प्रेमलक्षणा ॥<sup>१</sup>  
 प्रेमाद्वयश्चैव सम्बन्धो येन प्राप्नोति मानवः ।  
 अक्रिये ज्ञान सम्बन्धो न घटेत कदाचन ॥  
 अज्ञेये ज्ञान सम्बन्धो न भवेच्च कथंचन ।  
 प्रेमाद्वयस्तु महान् योगो नित्यं मम रसाभिधः ॥<sup>२</sup>  
 श्रवणादि मुहुर्भक्तिसाधिनैः साधिताकृतिः ।  
 जनो यो मां प्रपद्येत ज्ञात्वा परम पूरुषम् ॥  
 तस्मै ददामि तां भर्क्ति प्रेमाद्वयां मदुपाश्रयाम् ।

\* \* \* \*

नित्यं लीला रसाभिज्ञः श्रुतमत्प्रेम लक्षणः ।  
 ज्ञात पारमहंस्यश्च मत्प्रेम लभते नरः ॥  
 मत्प्रेम मदिरामत्स्तृणवन्मन्यते जंगत् ।  
 मत्प्रेम भागिनो दृष्ट्वा प्रहृष्येत् प्राप्तवन्धुवत् ॥<sup>३</sup>

अध्यात्म रामायण के व्याख्याकार नरोत्तम ने 'प्रेमरस' विषयक ऊपर निर्दिष्ट श्लोक की टीका करते हुए उस पर रूप गोस्वामीकृत 'श्रीहरिभक्ति रसामृत सिन्धु' के एक छंद की छाया बतायी है ।<sup>४</sup> किन्तु मेरा विचार है कि अध्यात्म रामायणकार ने रामकथा का सारा ढाँचा भुशुण्ड रामायण से प्राप्त करने के साथ ही प्रेमलक्षणा भक्ति के विशिष्ट तत्त्व भी वहीं से लिये होंगे । वैसे लेखक का भक्तिरसामृत सिन्धु की अपेक्षा सीधे नारद भक्तिसूत्र<sup>५</sup> से प्रेमभक्ति की प्रेरणा प्राप्त करना अधिक संगत लगता है ।

## २. आनन्द रामायण

राम का कृष्ण-रूप धारण करना<sup>६</sup> राम की विलास-क्रीड़ाओं का वर्णन<sup>७</sup>, देवांगनाओं

- 
- १. भु० रा० २०३/३
  - २. भु० रा०, पूर्व २०६/६,७
  - ३. भु० रा०, पूर्व २०७/१७,१८,२०,२२
  - ४. अतो मुक्ति दत्वाद यस्मिन् स्थूलरूपे प्रेमाचाऽसौ रसश्चेति प्रेमरसः ।

तत्त्वलक्षणं यथा—

सम्यङ् मसृणित स्वान्तो ममत्वातिशयान्वितः ।  
 भावः स एव शान्तात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥  
 —रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृत सिन्धौ —अध्यात्म रामायण  
 सं० नगेन्द्रनाथ, पृ० ८ पर उद्धृत

- ५. नारद भक्तिसूत्र ( गीता प्रेस ) पृ० २०
- ६. आनन्द रामायण, पृ० २५१, ३८७/८०, ४०६/११५
- ७. वहीं, विलासकाण्ड, सर्ग १

को द्वापर में रास का वरदान<sup>१</sup>, सीताराम की विहार-लीला<sup>२</sup>, राम सहस्रनाम<sup>३</sup>, रामपूजा, रामोपासना<sup>४</sup> आदि प्रसंगों में आनन्द रामायण पर भुशुण्ड रामायण का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। इसके अतिरिक्त सोलह हजार देव, नाहण, क्षत्रिय तथा वैश्य कन्याओं का द्वापर में गोपी रूप धारण, उनके साथ कृष्णरूप में संयोग-स्थापना का आश्वासन और उस स्थिति में भी उनके एक पत्नीव्रत की अक्षुण्णता की रक्षा, गोपीरूप में लीलाप्रवेश की सुलभता तथा राम की काम-क्रीड़ा का उन्मुक्त वर्णन<sup>५</sup>, देवांगनाओं को द्वापर में राम का दास<sup>६</sup> प्रभृति प्रसंग भी आनन्द रामायण पर भुशुण्ड रामायण की गहरी छाया प्रकट करते हैं।

### ३. कृत्तिवास रामायण

महाकवि कृत्तिवास रचित बंगला रामायण के लंकाकाण्ड में कथा आयी है कि जब गरुड़ ने मेघनाद द्वारा प्रयुक्त नागपाश से राम को मुक्त किया तो राम ने प्रसन्न होकर उन्हें वर माँगने को कहा। गरुड़ ने उनसे त्रिभंगीमुद्रा में वंशी बजाते हुए कृष्णरूप में दर्शन देने की प्रार्थना की। राम ने गरुड़ की इच्छा पूरी कर दी। संयोगवश राम का यह रसमय नन्दननन्दन रूप हनुमानजी ने भी देख लिया। वे अपने इष्टदेव को इस प्रकार वेश-परिवर्तन के लिए विवश करनेवाले गरुड़ से कुद्ध होकर बौले, 'इसका बदला मैं कृष्णवतार में लेकर रहूँगा।'<sup>७</sup>

इस कथा का मूलस्रोत भुशुण्ड रामायण के पूर्वखण्ड में प्राप्त होता है, जिसमें हनुमान के ही माध्यम से गरुड़ को अयोध्या में राघवललभ कृष्ण के रूप में राम का दर्शन-लाभ हुआ था—

दर्दशं रामस्य गुंजाकलापं मयूरपिच्छस्फुरितावतंसम् ।  
वंशीकरं गोपदारैः परीतं कृष्णं त्रिभंगीललितं खगेन्द्रः ॥८॥

१. वही, पृ० २८२

२. वही, विलासखण्ड, सर्ग ५-६

३. वही, राज्यकाण्ड, प्रथम सर्ग

४. वही, मनोहरकाण्ड, तृतीय सर्ग

५. आनन्द रामायण, राज्यकाण्ड, सर्ग ११, १२

६. वही, पृ० २८२

७. राम बलेन पक्षी कैले उपकार। वर माँग पत्रीवर वांछा जे तोमार ॥

गरुड़ बलेन वांछा आछे एई मने। द्विभुज मुरलीधर देखिअे नयने ॥

त्रिभंगि भंगिम रूप गले बनमाला। शिखि पिच्छ बद्ध चूड़ा अर्द्धवामेहैला ॥

अलका आवृत शशी श्रीमुख मंडल। श्रुतियुगे मनोहर मकर कुंडल ॥

गले बनमाला परिधान पीताम्बर। सेई रूपे देखिबे बासना निरंतर ॥

भक्तवत्सल राम ताहार नितरे। दांडाला त्रिभंग भंगिम रूप धरे ॥

धनुक तजियो बांसी धरिलेन करे। हनुमान देखे बस भावितेछे दुरे ॥

लेइबे इहार शोध तारि विद्यमाने। लेइबे इहार शोध कृष्ण अवतारे ॥

—कृत्तिवास रामायण, लंकाकाण्ड

८. भु० रा०, पूर्व ११२२

अयोध्या दक्षिणे भागे श्रीकृष्णं रुक्मिणीयुतम् ।  
ददर्श गरुडस्तत्र ननाम विघृतांजलिः ॥१

इसके साथ ही भुशुण्ड रामायण (पूर्वखण्ड) की भाँति कृत्तिवास रामायण में भी राम की बाल-लीला के वर्णन में उनको मारने के लिए रावण द्वारा राक्षसों को भेजे जाने की चर्चा भी आयी है।<sup>३</sup>

#### ४. 'अग्रदास पदावली' तथा 'ध्यान मंजरी'

रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी अग्रदास तुलसीदास के पूर्व समकालीन हैं। इनका आंविर्भाव १६वीं शती में दुआ था। सम्प्रदाय का नामकरण, उसकी साधना-पद्धति, पंचधा-भाव-सम्बन्ध, मानसी-पूजा, साकेत के दिव्यलीला स्थल; प्रमोदवन की भावना, चित्रकूट का राम की रासस्थली के रूप में चित्रण आदि प्रसंगों का जो स्वरूप इन्होंने अपनी 'पदावली' तथा 'ध्यान मंजरी' में प्रस्तुत किया है, वह भुशुण्ड रामायण में निरूपित राम की मायुर लीला के सर्वथा अनुरूप है। कुछ स्थलों पर तो ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे उसकी रूपना भुशुण्ड रामायण को सामने रखकर की गयी है। विशेष रूप से 'ध्यान मंजरी' में निरूपित मानसी-पूजा-पद्धति तो पूर्णतया आलोच्य-ग्रन्थ के आदर्श पर ही वर्णित है। अग्रदासजी ने अपनी साधना-पद्धति पर आगम प्रभाव का उल्लेखकर स्थिति स्पष्ट कर दी है।

सुनि आगम विधि अर्थ कछुक जो मनहिं सुहायो ।  
यहु दंपति वर ध्यान यथामति वरनि सुनायो ।<sup>३</sup>

इनके शिष्य भक्तमाल रचयिता नाभादास ने भी गुह की आगमों में निष्ठा की चर्चा करते हुए उनमें से शिवसंहिता नामक एक ग्रन्थ का उल्लेख किया है—

आगमोक्त शिव संहिता अगर एक रस भजन रति ।

उरग अष्टकुल द्वारपाल सावधान हरिधाम थिति ॥४

भारतीय धर्म-साधना में आगमिक विचारधारा के विकास में उत्तरकालीन बौद्धों, शैवों तथा शाक्तों का विशेष हाथ रहा है। वैष्णवभक्ति में ये तत्त्व इन्हीं स्रोतों से आये। इनकी प्राचीनता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि द्रविड़ प्रबंधम् के गायक आलवारों तक की वाणी इनसे प्रभावित है। यामुनाचार्य के 'आगम प्रामाण्यम्' तथा 'काश्मीराणां प्रामाण्यं' से यह पता चलता है कि वैष्णवों का पांचरात्रमत काश्मीर शैवागम से बहुत अंश में साम्य रखता था। 'स्पंदकारिका' में उत्पलाचार्य द्वारा 'पांचरात्र श्रुति', 'पांचरात्र उपनिषद्' तथा 'जयाख्य संहिता' का आधार ग्रन्थ के रूप में उल्लेख यही सिद्ध करता है। यह सर्वविदित है कि इन तीनों ग्रन्थों में नारायण ही उपास्यदेव के रूप में प्रतिष्ठित हैं विशेषतः जयाख्य संहिता की तो उपास्य-मूर्ति ही वैकुण्ठ नारायण की है—काश्मीर की प्रसिद्ध ऐतिहासिक

१. वही, पूर्व ६।३४

२. कृत्तिवास रामा० १।४५

३. ध्यान मंजरी (अग्रदास) पृ० २३

४. भक्तमाल सटीक (रूपकला) पृ० २६०

कृति राजतरंगिणी में भी कल्हण ने वैकुण्ठ मंदिरों के बनाये जाने का उल्लेख किया है। पूर्व मध्यकालीन वैष्णवधर्म ने आगम साहित्य, इन विविध प्रभावों को आत्मसात् कर राम तथा कृष्ण-भक्ति में रस-साधना का मार्ग प्रशस्त कर दिया। सगुण भक्ति की राम तथा कृष्ण-भक्ति शाखाओं के अनुयायी उक्त स्रोतों से अपनी भावना की पुष्टि के लिए यथेष्ट संबल प्राप्त करते रहे।

#### ५. राम लिंगासृत

काशीवासी अद्वैत ब्राह्मण द्वारा १६०८ ई० में विरचित इस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर राम की लीलाओं का कृष्णलीला के अनुरूप चित्रण किया गया है। इसके तेरहवें सर्ग में भोजन, श्रृंगार, संयोगादि का वर्णन है और १८वें सर्ग में राम, कृष्ण तथा राम-शिव में अभेद स्थापना की गयी है। यह रामकथा दो गोपिकाओं के संवाद रूप में कही गयी है। उनमें से एक रघुवंशी गोपिका है। वही वक्ता है और दूसरा श्रोता। कहने की आवश्यकता नहीं कि रामकथा में रघुवंशी अथवा अयोध्या की गोपिका की उद्भावना सर्वप्रथम भुशुण्ड रामायण में ही मिलती है।<sup>१</sup>

#### ६. संहिता ग्रंथ

उत्तरी भारत में वैष्णवधर्म के सांप्रदायिक रूप की प्रतिष्ठा हो जाने के बाद प्राचीन संहिताओं के आदर्श पर अनेक नवीन संहिताओं की रचना हुई। श्लेष्डर ने वैष्णवों की जिन प्रमुख संहिताओं की नामावली प्रस्तुत की है, उनमें इनका उल्लेख नहीं है—इसी से इनका परवर्ती होना स्पष्ट है। किन्तु साम्प्रदायिक क्षेत्र में इनकी मान्यता ही इस बात का प्रमाण है कि ये पूर्वाचार्यों द्वारा प्रवर्तित वैष्णव सिद्धान्त ग्रन्थों पर आधारित हैं। ये कब लिखी गयी हैं, इसके विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना कठिन है। किन्तु श्रृंगारी रामोपासकों में सिद्धान्त ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित संहिताओं में राम की मधुराभक्ति और मधुर-लीलाओं का विशद वर्णन मिलता है। लीला-चित्रण के सिद्धान्त और प्रक्रिया-वर्णन दृष्टि से ये भुशुण्ड रामायण से प्रेरित प्रतीत होती हैं। नीचे संक्षेप में परवर्ती संहितांग्रंथों और उनमें उपलब्ध श्रृंगारी रामभक्ति के कुछ विशिष्ट तत्त्वों का उल्लेख किया जाता है—

#### (क) शिव संहिता

अयोध्या के प्रमोदवन में सीता के साथ रसिकेन्द्र राम का नित्यरास-मान लीलादि के एकान्तिक प्रसंग। गोलोक में वृन्दावन के प्रतिरूप साकेत का निर्माण।<sup>२</sup> नाभादास ने भक्तमाल में इसकी चर्चा रसिक रामभक्ति के प्रवर्तक अग्रदास की भक्तिभावना के स्वरूप निरूपण के प्रसंग में की है।

१. रामकथा (बुल्के) पृ० १९७

२. तत्राशोक वनं रम्यं रसस्थानं हि केवलम् ।

तन्मध्ये जानकी रामी नित्यं लीला रत्तौ स्थितौ ॥

संहितौ वनिता यूथैः शतैरपि मनोहरैः ।

## ( ख ) शुक्र संहिता

कृष्ण की वृन्दावन-लीला की भाँति ही राम की चित्रकूट में रास योजना, राधाकृष्ण द्वारा सीताराम का रूप धारण<sup>१</sup> तथा सुखित मांगल्या द्वारा राम का पालन-पोषण<sup>२</sup> ।

## ( ग ) लोमक्षा संहिता

इसके बाठ अध्यायों ( १५ से २२ तक ) में रामरास का विधान है । २०वें अध्याय में सीता की मुख्य सहचरी चंद्रकला द्वारा रासमंडल का आनयन एवं रामरास योजना तथा आठ योगिनियों की सहायता से रासलीला की पूर्णता का वर्णन है ।

## ( घ ) सदाशिव संहिता

राम के दिव्यधाम 'साकेत' का वर्णन, उनके रसिकरूप का ध्यान, रामनाम माहात्म्य, भक्ति-साधना की प्रक्रिया का विवेचन, हनुमान का सखीरूप में आचार्यत्व तथा सीतामंत्र के महत्त्व का उल्लेख किया गया है । रसिकाचार्य रामचरणदास ने 'रामनवरत्नसार संग्रह'<sup>३</sup> में शृंगारी रामभक्ति की पुष्टि के लिए इस ग्रन्थ से विशेष सहायता ली है ।

१. ततस्तद्युगलं श्रीमद्राघा कृष्णात्मकं महत् ।  
सीतारामात्मकं युग्मं प्राविशन्नति पूर्वकम् ॥  
सीता च सुन्दरी तत्र सर्वं लीलाविदेवता ।  
चित्रकूटाद्विके रम्ये यद्वृन्दावनमद्भुतम् ॥  
यमुनायाः परिणतासरयू सरसा सरित् ।  
अभूतं गोवर्धनत्वेन दिविरत्नाभयो गिरिः ॥  
प्रमोदवनयत्रासीद्विव्यं वृन्दावनं वनम् ।  
पारिजात तरुजहतो वंशीवट तरुहि सः ॥  
तेच रास विलासाद्याः प्रादुराप्सुः समंततः ।  
सर्वश्च देवता तत्र गोपी भाव भाविताः ॥  
तथा षष्ठि सहस्राणि दंडकारण्य योगिनाम्  
गोपी भाव समासाद्य रेजुः श्रीसद्मंडले ।  
श्रुतयश्चैव कालश्च रास मंडल मध्यगा ॥

—उपासनात्रय सिद्धान्त, पृ० ११२ पर उद्धृत

२. आभीरो सुखितो नाम धात्रीपतिः पुरा ।  
स एव समभून्नन्दो मांगल्या च यशोदिका ॥  
त एव गोपी गोपाद्याः लीला परिकराश्चते ।  
सैव श्री जानकी देवी वृषभानुसुताऽभवत् ॥

—उपासनात्रय सिद्धान्त, पृ० १२२, १४३

३. सीताऽलिंगित वामाङ्कं कामरूपं रसोत्सुकम् ।  
तरुणारुणं संकाशं विकचाम्बुज पादकम् ॥

रामनवरत्नसार संग्रह—रामचरणदास, पृ० ३०-३२ पर उद्धृत

## ६. रामकर्णामृत

रामकर्णामृत में राम का धनुष-बाण त्यागकर वंशी ग्रहण करना और उनके इस मुरलीधर कृष्णरूप की वंदना की गयी है।<sup>१</sup>

## ७. सत्योपाख्यान

राम की गोपलीला, उनका कृष्ण रूपधारण, सरयूतटस्थ द्वादश वनों में विहार-लीला<sup>२</sup> वसन्त-लीला<sup>३</sup> सीता की मान-लीला आदि का वर्णन।

## ८. वृहत्कोशल खण्ड

राम के सखाओं का स्त्रीरूप धारणकर रास-लीला में सम्मिलित होना—गोपिकाओं, राजकन्याओं, देवकन्याओं तथा यक्ष-किन्नर-गन्धर्व कन्याओं के साथ राम की रास 'क्रीड़ा'<sup>४</sup> का वर्णन है। इन सारे चित्रणों में कृष्ण की रासलीला की गहरी छाप तथा घोर शृंगारिकता का पुट है।<sup>५</sup>

## ९. रामतत्त्व प्रकाश

रसिक रामभक्त मधुराचार्य द्वारा विरचित इस ग्रन्थ के अन्तर्गत सरयू तट पर राम की रासलीला<sup>६</sup> गोपिकाओं के साथ राम का विहार<sup>७</sup> आदि प्रसंगों की योजना हुई है।

## १०. सुन्दरमणि संदर्भ

मधुराचार्य की ही इस अन्य कृति में वाल्मीकि रामायण के विशिष्ट स्थलों की शृंगार-परक व्याख्या, गोपिकाओं का शिव के वरदान से सीता का सखीत्व प्राप्ति और राम के साथ रास-विलासादि का दुर्लभ सुख-भोग, राम-कृष्ण में अभिन्नता का प्रतिपादन<sup>८</sup> आदि वर्णित है।

## ११. उत्कलीय वैष्णव-साहित्य

उत्कल के पंचसखा भक्तों में भी राम-कृष्ण की अभिन्नता स्वीकार्य रही है। महात्मा

१. प्रसून वाणांकित भिक्षु चापं, चक्राब्ज पाशांकुश वंशनालम् ।  
करैर्दधानं घननीलवर्णः श्रीकृष्णरूपं प्रणमामि रामम् ॥
२. विहाय कोदंडमिमं मुहूर्तं गृहण पाणौ मणि चारु वेणु ।  
मायूरवर्हञ्च निजोत्तमांगे सीतापते राघव रामचन्द्र ॥ —रामकर्णामृत, २१२४
३. रामस्तु कृष्णरूपेण रामरूपेण माधव । —सत्योपाख्यान, पूर्वार्द्ध, अध्याय १७, १८, ३३
४. वही, पूर्वार्द्ध, अध्याय २०
५. वही, अध्याय ११५
६. एकान्ते सरयू तीरे कल्प पादप कानने ।  
श्रीमान् नटवर वपुः कोटि कंदर्प सुन्दरः ॥
७. रासलीलां पुनश्चक्रे ताभित्तिस्तरगो विभुः । —रामतत्त्व प्रकाश, पृ० १६४
८. वही, पृ० १६५
९. कृष्णपदेन श्रीरामो गृह्यते । —सुन्दरमणि संदर्भ, पृ० २१

यशोवंत दास ने योगमाया और भगवान् की लीला का वर्णन करते हुए रामनाम का अर्थ राधा-कृष्ण बताया है।<sup>१</sup> तथा नित्यधाम में जीव और परम की विहार-क्रीड़ा को ही 'रामनाम' की संज्ञा दी है।<sup>२</sup>

## १२. रामचरितमानस ( तुलसीदास )

भुशुण्डि रामायण राम की मधुर-लीलाओं का प्रतिपादक ग्रन्थ है, किन्तु इसके विपरीत रामचरितमानस में ऐश्वर्यपरक लीलाओं को ही विशेष महत्त्व दिया गया है। दोनों प्रबन्ध-कारों की रचना में दृष्टिकोण का यह भेद इतना स्पष्ट है कि इसे देखते हुए भुशुण्डि रामायण में अंकित रामकथा के स्वरूप तथा आध्यात्मिक सिद्धान्तों से रामचरितमानस के प्रभाव ग्रहण करने की कल्पना भी साहस की बात होगी, किन्तु इन दोनों ग्रन्थों के वर्ण-विवरण एवं रचना-शैली का गहराई से अनुशीलन करने पर प्रभूत मात्रा में उपलब्ध समता के तत्त्व अव्येता को विस्मय में डाल देते हैं और उसे यह स्वीकार करने के लिए विवश कर देते हैं कि मानस की कथा-संरचना में गोस्वामीजी ने भुशुण्डि रामायण से अवश्य सहायता ली होगी और यह ग्रन्थ आदर्श के रूप में मानसकार के समक्ष उसकी पूरी रचनावधि में निरन्तर सामने रहा होगा। कथा-प्रसंगों के अतिरिक्त इन दोनों ग्रन्थों में सैकड़ों स्थलों पर प्रयुक्त अलंकारों, उक्तियों और वाक्यांशों में अद्भुत साम्य दृष्टिगोचर होता है।

इस सन्दर्भ में यह व्यातव्य है कि भुशुण्डि रामायण की विषय एवं शैलीगत समता मानस के अतिरिक्त तुलसी विरचित कतिपय अन्य ग्रन्थों के भी कुछ विशिष्ट प्रसंगों के साथ पायी जाती है, विशेष रूप से कवितावली और गीतावली में। यहाँ नमूने के लिए उक्त तीनों ग्रन्थों से एतद्विषयक उद्धरण दिये जा रहे हैं, इससे विज्ञ पाठक मानस के स्वरूप-निर्माण में भुशुण्डि रामायण के योगदान का महत्वांकन स्वतः कर लेंगे।

### रामजन्म

चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु नवम्यां श्रोपुनर्वसी ।  
अभिजित नाम योगोऽसौ कौसल्यानन्दनो भवत् ॥

—भु० रा०, पूर्व १०/२

नौमी तिथि मधुमास पुनीता । सुकुल पच्छ अभिजित हरिप्रीता ॥

—रामचरितमानस, बाल० १९१/१

### लक्ष्मण-परशुराम संवाद

राम—किंचित्सूपृष्ठं न वा स्पृष्टं धनुस्तत् पुरवैरिणः ।

तद्वै चिरेण जीर्णत्वाद भज्यत करोमि किम ॥ —भु० रा०, पूर्व ७८/१२

छुअतहिं टूट पिनाक पुराना ।

मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ॥ ( मानस, बाल २८३/८ )

१. श्रीकृष्ण प्रसंग ( म० म० पं० गोपीनाथ कविराज ) पृ० २८२

२. वही, पृ० २८०

लक्ष्मण—धनुरेक गुणंधते बलमस्माकमूर्जितम् ।  
उपवीतं नवगुणं विशिष्टं भवतां बलं ॥

—भु० रा०, पूर्व ७८/२३

देव एक गुनु धनुष हमारे । नवगुन परम पुनीत तुम्हारे ॥

—मानस, बाल २८२/७

राम—अलमस्मिन् क्षीरकंठे कोपेन भृगुवल्लभ ।  
तत् क्षम्यताम् मुनीशान पादयोस्ते नता वयम् ॥

—भु० रा०, पूर्व ७८/२६

नाथ करहु बालक पर छोहू । सूध दूधमुख करिअ न कोहू ॥

—मानस, बाल० २७७/१

परशुराम—किमुच्यते क्षीरकण्ठो विषकण्ठोऽस्ति खल्वसौ ।

—भु० रा०, पूर्व २८/२७

गौर सरीर स्याम मन माहों । कालकूट मुख पयमुख नाहीं ॥

—मानस, बाल० २७७/७

संवाद-शिल्प की दृष्टि से निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त भाव भी यदि मानस के प्रकृत प्रसंग में गृहीत हो गये होते तो काव्योत्कर्ष कितना बढ़ जाता—

लक्ष्मण—विषकण्ठस्य शिष्येण क्षन्तव्यो भवतास्मि भोः ।<sup>१</sup>

भार्गव—विषकण्ठत्व साम्येन तर्तिक त्वमपि मे गुरुः ।

लक्ष्मण—भगवन्नन्यतात्पर्यान्मयोक्तं क्षन्तुमर्हसि ।<sup>३</sup>

किरीटमधि रूढेऽपि बाले शिशिररोचिषि ॥

शिति कण्ठस्य नो चित्ते धत्ते कोपाड़कुरः पदम् ।<sup>४</sup>

भार्गव—त्रिवर्णा पृथिवोप्येषा कृता क्षत्रियवर्जिता ।

नीरेणुको कृता भूमिर्दुष्ट क्षत्रिय शोणितैः ।<sup>५</sup>

लक्ष्मण—भार्गव त्वत्कुठारेण कृता नीरेणुको मही ।

भार्गव—आस्तां तावत् कथं पापो रेणुकावृत्तमुल्कटम् ।<sup>६</sup>

संस्मारयतिमेऽनेन मर्मस्पर्शं करोत्युत ॥<sup>७</sup>

### पुष्पवाटिका प्रसंग

तत्रागमच्च मिथिलेन्द्र कुमारिका सा

सीता स्वयं नमितुमालयमस्तिकायाः ।

तां वीक्ष्यभूय उदितस्मर वाणताप

संभ्रान्त चित्त इव तत्क्षणमास रामः ॥

भु० रा०, पू० ७५/४

१. भु० रा०, पूर्व ७८/२७

२. वही, पूर्व ७८/२८

३. वही, पूर्व ७८/२९

४. वही, पूर्व ७८/३२

५. वही, पूर्व ७८/३४

६. वही, पूर्व ७८/३५

तेहि अवसर सीता तहैं आई । गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥

—मानस, बाल० २२८/२

जासु विलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥

—वही, २३१/३

एषा विमानादवरुह्य याति विद्यावरी चापि सुरी नरी वा ।

सौदामिनी वा रतिकामिनी वा शची रमा वा हिमशैलजा वा ॥

न मे प्रयात्येव मनोरथान्तवर्धिष्णुभिन्ः प्रतिमैर्महोभिः ।

जाने ममानङ् गजतापहारिणी पीयूष धारेयमहो भविष्यति ॥

—भु० रा०, पूर्व ७५/६

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा । सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ।

भए विलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमि तजे हगंचल ॥

देखि सीय सोभा सुख पावा । हृदयं सराहत वचन न आवा ॥

मानस, बाल० २३०/३,४,५

सो सब कारन जान विधाता । फरकहिं सुभग अंग सुनु आता ॥

रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाठ । मन कुपंथ पग धरई न काठ ॥

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी ॥

—वही, ३२१/४-६

नाना दिगन्तदेशेभ्यो नानानामान एव ते ।

सीता स्वयंवरोत्साहे संगता अभवन्नृपाः ॥

—भु० रा०, पूर्व ७५/२०

दीप दीप के भूपति नाना । आए सुनि हम जो प्रन ठाना ॥

—मानस, बाल० २५०/७

इत्युक्तः स मुनी राजा जनकेन मनस्विना ।

राममालोक्य प्रोवाच सस्मितं मधुरं वचः ॥

सम्बध्यतां परिकरो हरकार्मुकरोपणे ।

वत्स राम त्वमियति समस्ते वीर मण्डले ॥

इत्युक्तो भगवान् रामः स्वयं साक्षाद्रमापतिः ।

दृष्ट्वा हरधनुः सद्यो लीलयैव समाददे ॥

—भु० रा०, पूर्व ७६/३०,३१,३३

बिस्वामित्र समय सुभ जानी । बोले अति सनेह मय बानी ॥

उठहु राम भंजहु भव चापा । मेटहु तात जनक परित्तापा ॥

ठाढ़ भए उठि सहज सुभाएँ । ठवनि जुबा मृगराज लजाएँ ॥

—मानस, बाल० २५४/५६.५७

ज्यां समारोपयामास समालम्ब्य बभञ्ज च ।

धनुर्भंगोद्भवः शब्दो गगनं क्षमामपूरयत् ॥

चचाल धरणी सर्वा पर्वताश्च चकम्पिरे ।  
तत्रास वासुकिकुलं विभुदेवगणा दिवि ॥  
महाशब्देन जातेन सागराश्च विसुस्तुवः ।  
गिरीणां कन्दरास्वन्तर्धनीभूतो महाध्वनिः ॥  
हर्यक्षान् क्षोभयामास प्रलयाधातदुःसहः ।  
तदा रामधनुर्भूडगात् सीता पूर्णमनोरथा ॥

—भु० रा०, पूर्व/७६/३६-३९

गुरहि प्रनाम मनहि मन कीन्हा । अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा ॥  
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरे भुवन धुनि धोर कठोरा ॥  
भरे भुवन धोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले ।  
चिक्करहि दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले ॥

मानस, बाल० २६०/५,८,९,१०

सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँति । जनु चातकी पाई जलु स्वाती ॥

### राम-वनेगमन

मंथरा नाम कैकेया दासी मंदतयाधिया ।  
तस्याः कण्ठे सन्निविश्य ब्राह्मी प्रतिविधास्यति ॥

भु० रा०, दक्षिण खण्ड ६/१०

नाम मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि ।  
अजस पेटारी ताहि केरि गई गिरा मति केरि ॥

राम० च० मानस, अयोध्या० १२/०

तेषां बाधकौ मातः शोकः मोहौ भविष्यतः ।  
अथाचतुर्दशैवाब्दान्प्रवासौ नौ भविष्यति ॥  
ततः परन्तु जननि तीत्वा पदमनुत्तमां ।  
कृत्वा सत्य गिरा तात स्वर्गिणां निरुपद्रवं ॥  
पुनरप्यागमिष्यावो नगरी भूरि मंगलां ।  
भवन्तीं सुखयिष्यावो हृतशत्रु बलौ बलात् ॥

—भु० रा०, दक्षिण-६/७२,७३,७४

बरसचारिदस बिपिन बसि, करि पितुं बचन प्रमान ।

आइ पाय पुनि देखिहऊँ, मनु जनि करसि मलान ॥

रामचरित मानस, अयोध्या ५३/०

स एव सुकृति लोके लक्ष्मणो दुःख वर्जितः ।  
योवै सर्वात्मा भावेन सीता रामी निषेवते ॥

—भु० रा०, दक्षिण १२/११,१२

अहह धन्य लछिमन बड़भागी । राम पदारविन्द अनुरागी ॥

—रामचरित मानस, उ० /३

ततो ब्रवीत्स्वयं रामो लक्ष्मणेन रघोदितं ।  
न वाच्यं पश्यं राजा दुःखी मद्विरहा भृशं ॥  
सद्यः परुषमाकर्ण्य त्यजेत्प्राणानपि क्वचित् ।

—भु० रा०, दक्षिण १३५१, ५२

पुनि कछु लखन कही कटु वानी । प्रभु वरजे बड़ अनुचित जानी ॥  
सकुचि राम निज सपथ देवाई । लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई ॥

—रामचरित मानस, अयोध्या ९६।४, ५

मरणं जीवनं चैव वियोगो योग एव वा ।  
सुख दुःखं लाभ हानिः जयोऽपि वा पराजयः ॥  
सर्वं देवेन नियतं लभते मानुषा वशः ।  
किं तत्र शोकमोहाभ्यामात्मा केवलात्मना ॥

—भु० रा०, दक्षिण २६।६९, ७०

सुनहु भरत भावी प्रवल, विलखि कहेउ मुनिनाथ ।  
हानि लाभु जीवनु मरनु, जसु अपजसु विधि हाथ ॥  
अस विचारि केहि देइअ दोसू । व्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू ॥  
तात विचारु करहु मन माहीं । सोच जोगु दसरथ नृपु नाहीं ॥

—मानस, अयोध्या १७।१।२

### चित्रकूट में राम द्वारा सीता का शृंगार

रामभक्ति की रसिकधारा के अनुयायो न होते हुए भी उसमें निरूपित राम की मधुर लीलाओं से तुलसी प्रभावित हुए थे । इसके प्रमाण में रामोपासना के विकासात्मक अध्ययन का इतिहास प्रस्तुत करनेवाले आलोचक गीतावली एक पद उद्धृत करते हैं, जिसमें चित्रकूट-प्रवास के समय राम अपनी प्रियतमा के उत्तमांगों का वन्य-पुष्पों, एवं गैरिक, रामरज आदि धातुओं से बने रंगों द्वारा निर्मित पत्र-रचना से शृंगार करते दिखाये गये हैं । संयोगवश राम के माधुर्य-विलास का यह प्रसंग भुगुण्डि रामायण में ज्यों-का-त्यों मिल जाता है—

चिरं विहृत्य वैदेह्या भगवान् रति वर्द्धनः ।  
अशोभत शिलापृष्ठे पौलोम्यैव पुरंदरः ॥  
अथ शृङ्गारयामास प्रियां विस्त्रस्त भूषणां ।  
चम्पकैर्गुंफयामास वेणोमलक शालिनीं ॥  
अलकेषु बबंधास्य केशरस्य सुमान्यलं ।  
चक्रे कमलपत्रेश्च कंचुकी कुच कुंभयोः ॥  
सनालैः पंकजैश्चक्रे वाह्यो केयूर युग्मकं ।  
विचित्रं पुष्पस्तवकैर्भूषाः कल्पितवान् पृथक् ॥  
पंचवर्णं प्रसूनाद्यां सजं कमल शालिनीं ।  
वक्षसिन्यस्तवान् रामो रमण्याः सवशवदः ॥

हरिताल रसैमिश्रां सिन्दूराक्षां मनः शिलां ।  
 संघृष्य रमणों गुण्यां भाले तिलकमातनोत् ॥  
 विभूष्य स्वामिनी मेष स्वयं चाभूषितस्तया ।  
 रेजा ते तावुभौ तत्र शोभमानौ परस्परं ॥  
 इत्यं चिरं कंदरायां चित्रकूट महीमृथः ।  
 क्रीडित्वा प्रेयसीयुक्तो निर्जगाम ततः शनैः ॥

—भ० रा०, दक्षिण १७।४१-४८

चित्रकूट अति विचित्र, सुन्दर बन महि पवित्र ।  
 पावनि पय सरित, सकल मल निकंदनी ॥  
 सानुज जहैं वसत राम, लोचनाभिराम ।  
 बाम अंग बामा वर विश्व वंदिनी ॥  
 फटिक सिला संकुल सुरतरु तमोल ।  
 ललित लता जाल हरति छवि वितान की ॥  
 विरचित तहैं पर्णसाल, अति विचित्र लखन लाल ।  
 निक्सत जहैं नित कृपाल राम जानकी ॥  
 निजकर राजीवनयन पल्लव दल रचित सयन ।  
 प्यास परसपर पीयूष प्रेम पान की ।  
 सिय अंग लिखै धातुराग, सुमननि भूषन विभाग ॥  
 तिलक करनि कहौंका कृपा निधान की ।  
 माधुरी बिलास हास, गावत जस तुलसीदास ॥  
 बसति हृदय जोरी, प्रिय परम प्रान की ॥

—गीतावली, अयोध्या ।४४

भरत का ससैन्य चित्रकूट गमन तथा तद्विषयक निषादराज की प्रतिक्रिया—

जानेहं भरतो मात्रा रामं प्रब्राज्य कानने ।  
 लयंगतेऽधुना ताते निःशंको राज्य लोभतः ॥  
 हंतुमारब्धवानेष सानुजं वन वासिनं ।  
 हा रघूणामियं बुद्धिः कथं जाताक्षयोन्मुखी ॥  
 इक्ष्वाकूणां भटायेते रामद्रोह मलीमसाः ।  
 स्वत एवाद्यं गंतारो धर्मराज निकेतनं ॥  
 शृण्वन्तु मे वचो दासा महापौरुष मंडनाः ।  
 लौहयंत्र सतैर्गत्वा रुधन्तु निखिलं नदीं ॥  
 इक्ष्वाकूणां महाघोरा पश्येयं महती चमूः ।  
 नोत्तीर्य सरितं गच्छेद्रामचन्द्र मम प्रभुः ॥  
 अन्ये च विदिता वीरा भवतां ये महाबलाः ।  
 सेनां संव्यूहा तिष्ठन्तु ते सर्वे लौहयन्त्रिणः ॥

सज्जतां लौहयन्त्राणि लक्ष्य सः पुरुषा मम ।  
 वेघयन्तु परान् दुष्टान् लोहर्पिडैः सहस्रशः ॥  
 ननु प्रथमेतेषां प्रवृत्तिरनुमीयतां ।  
 यद्येषामभि योगश्चेद्रामचन्द्रे मम प्रभी ॥  
 इत्युक्त्वा बलवान् वीरः शृंगवेरपुराधिपः ।  
 गृहीत्वोपायनान् दिव्यान् मत्स्यान् पाठीन् रोहितान् ॥

--भु० रा०, दक्षिण ३२/५,६,२५,१५,१६,१७,१८,२१,२७

जानहि सानुज रामहि भारी । करउँ अकंटक राजु मुखारी ॥  
 भरत न राजनीति उर आनी । तब कलङ्क अब जीवन हानी ॥  
 अस विचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु ।  
 हथबाँसहु बोरहु तरनि, कीजिय धाटा रोहु ॥

--रामचरितमानस, अयोध्या० १८९/५,६

होहु संजोइल रोकहु धाटा । ठाटहु सकल मरै कै ठाटा ॥  
 सनमुख लोह भरत सन लेऊँ । जियत न मुरसरि उतरन देऊँ ॥

--वही, अयोध्या० १९०/१,२

गहहु धाट भट समिटि सब, लेऊँ मरम मिलि जाइ ।  
 बूझि मित्र अरि मध्यगति, तस तब करिहऊँ आइ ॥

--वही, अयोध्या० १९२

अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग माँगे ।  
 मीन पीन पाठीन पुराने । भरि-भरि भार कहारन्ह आर्ने ॥

--मानस, अयो० १९३/२,३

### दशरथ-मरण

रामस्य विरहात्सः पिता ते समाधि गतः ।  
 हा राम राम रामेति विलपन् शोक संवृतः ॥

--भु० रा०, दक्षिण २७/१०

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।  
 तनु परिहरि रघुबर विरह राउ गएउ सुरधाम ॥

--रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड १५५/०

### भरत की सौगंध

हत्वा मित्रं गुह विप्रं तात्मित्रयोप्यभिपद्यतां ।  
 रामस्य यो वने वासे स्वप्नस्थोपि विचंतयेत् ॥  
 स्त्री वधाग्निदानाच्च गुरुकन्या विदूषणात् ।  
 मित्र द्रोहाद्गोद्विजाति वह्निनिष्ठीवनात्तथा ॥

--भु० रा०, दक्षिण० २८/५३,६०

जे अघ मातु पिता सुत मारे । गाइ गोंठ महिसुर पुर जारे ॥  
जे अघ तिय बालक वध कीन्हें । मीत महीपति माहुर दीन्हें ॥

—रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड १६७/५,६

### दशरथ का दाह-संस्कार

ते तत्र सरयूतीरे विमले सिकतामये ।  
प्रसन्न शाद्वलच्चित्ते शिविकां निदधुर्जनाः ॥  
श्रीखण्डैर्मल्योद्भूतैः शुष्कैरगरुदारुभिः ।  
भूयः कर्पूर कस्तूरी काश्मीर्विदधुश्चितां ॥

—भु० रा०, दक्षिण ३०/३१

ततः प्रधान प्रवरा: समुत्थाप्य महीतलात् ।  
नृपात्मजौ ततो निन्युः प्रकर्तु मुदकक्रियां ॥

—वही, दक्षिण ३१/१,३२

चन्दन अगर भार बहु आये । अमित अनेक सुगन्ध सुहाए ॥  
सरजु तीर रचि चिता बनाई । जनु सुरपुर सोपान सुहाई ॥  
एहि विधि दाहक्रिया सब कीन्हीं । बिधिवत न्हाई तिलांजुलि दीन्हीं ॥

—रामचरितमानस, अयोध्या १७०/३,४,५

### चित्रकूट की सभा

कृतांजलि पुटो धीमान् भरतो भक्ति सन्नतः ।  
पुरो रामस्योपविष्ठो विवक्षुः प्रणयान्वितः ॥

—भु० रा०, दक्षिण ४०/१५

भरत भये ठढ़े कर जोरी ।  
बोले बचन बिनीत उचित हित करुना रसहि निचोरी ॥

—गीतावली, अयोध्या, पद ७०

प्रददौ पादुके तस्मै भरताम महाभुजः ।  
ते गृहीत्वा प्रभोर्वीरः प्रहर्ष किञ्चिदान्वजत् ॥  
ततः स रामचन्द्रस्य कृत्वा भक्त्या प्रदक्षिणां ।  
महानागेन्द्र शिरसि पादुके समरोपयत् ॥

—भु० रा०, दक्षिण ४३/६०,६१

प्रभु करि कृपा पावरी दीन्हीं । सादर भरत सीस धरि लीन्हीं ॥

—रामचरितमानस, अयोध्या ३१५/५

### राम की तिरोधान लीला

भुशुण्ड रामायण में राम के लीला-संवरण का विस्तार से वर्णन किया गया है । राम-चरितमानस में वह अत्यन्त संक्षेप में है, किन्तु अध्यात्म रामायण का यह प्रसंग भुशुण्ड रामायण पर आंधृत होने से विशद है । यहाँ केवल मानस तथा भुशुण्ड रामायण के एतद-विषयक विवरण तुलना के लिए उद्धृत किये जाते हैं—

सज्जतां लौहयन्त्राणि लक्ष्य सः पुरुषा मम ।  
 वेवयन्तु परान् दुष्टान् लोहर्पिडैः सहस्रशः ॥  
 ननु प्रथमेतेषां प्रवृत्तिरनुमीयतां ।  
 यद्येषामभि योगश्चेद्रामचन्द्रे मम प्रभौ ॥  
 इत्युक्त्वा बलवान् वीरः श्रृंगवेरपुराधिपः ।  
 गृहीत्वोपायनान् दिव्यान् मत्स्यान् पाठीन् रोहितान् ॥

--भु० रा०, दक्षिण ३२/५, ६, २५, २५, १६, १७, १८, २१, २७

जानर्हि सानुज रामर्हि भारी । करउँ अकंटक राजु मुखागी ॥  
 भरत न राजनीति उर आनी । तव कलङ्क अब जीवन हानी ॥  
 अस विचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु ।  
 हथबाँसहु बोरहु तरनि, कीजिय घाटा रोहु ॥

--रामचरितमानस, अयोध्या० १८९/५, ६

होहु संजोइल रोकहु घाटा । ठाटहु सकल मरै कै ठाटा ॥  
 सनमुख लोह भरत सन लेऊँ । जियत न सुरसरि उत्तरन देऊँ ॥

--वही, अयोध्या० १९०/१, २

गहहु घाट भट समिटि सब, लेऊँ मरम मिलि जाइ ।  
 बूझि मित्र अरि मध्यगति, तस तब करिहऊँ आइ ॥

--वही, अयोध्या० १९२

अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग माँगे ।  
 मीन पीन पाठीन पुराने । भरि-भरि भार कहारन्ह आने ॥

--मानस, अयो० १९३/२, ३

### दशरथ-मरण

रामस्य विरहात्सः पिता ते समाधि गतः ।  
 हा राम राम रामेति विलपन् शोक संवृतः ॥

--भु० रा०, दक्षिण २७/१०

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।  
 तनु परिहरि रघुबर विरह राउ गएउ सुरधाम ॥

--रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड १५५/०

### भरत की सौगंध

हत्वा मित्रं गुरु विप्रं तात्मित्रयोप्यभिपद्यतां ।  
 रामस्य यो वने वासे स्वप्नस्थोपि विचंतयेत् ॥  
 स्त्री वधाग्निदानाच्च गुरुकन्या विदूषणात् ।  
 मित्र द्रोहादगोद्विजाति वह्निनिष्ठीवनात्तथा ॥

--भु० रा०, दक्षिण० २८/५३, ६०

जे अघ मातु पिता सुत मारे । गाइ गोंठ महिसुर पुर जारे ॥  
जे अघ तिय बालक वध कीन्हें । मीत महीपति माहुर दीन्हें ॥

—रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड १६७/५,६

### दशरथ का दाहसंस्कार

ते तत्र सरयूतीरे विमले सिकतामये ।  
प्रसन्न शाद्वलच्चित्ते शिविकां निदधुर्जनाः ॥  
श्रीखण्डैर्मल्योद् भूतैः शुष्कैरगरुदारुभिः ।  
भूयः कर्तूर कस्तूरी काश्मीर्विदधुश्चितां ॥

—भु० रा०, दक्षिण ३०/३१

ततः प्रधान प्रवरा: समुत्थाप्य महीतलात् ।

नृपात्मजी ततो निन्युः प्रकर्तु मुदकक्रियां ॥

—वही, दक्षिण ३१/१,३२

चन्दन अगर भार वहु आये । अमित अनेक सुगन्ध सुहाए ॥

सरजु तीर रचि चिता बनाई । जनु सुरपुर सोपान सुहाई ॥

एहि विधि दाहक्रिया सब कीन्हीं । विधिवत न्हाई तिलांजुलि दीन्हीं ॥

—रामचरितमानस, अयोध्या १७०/३,४,५

### चित्रकूट की सभा

कृतांजलि पुटो धीमान् भरतो भक्ति सन्नतः ।  
पुरो रामस्योपविष्टो विवक्षुः प्रणयान्वितः ॥

—भु० रा०, दक्षिण ४०/१५

भरत भये ठाढ़े कर जोरी ।

बोले बचन बिनीत उचित हित करुना रसहि निचोरी ॥

—गीतावली, अयोध्या, पद ७०

प्रददौ पादुके तस्मै भरताम महाभुजः ।

ते गृहीत्वा प्रभोर्वारः प्रहर्षं किञ्चिदाव्रजत् ॥

ततः स रामचन्द्रस्य कृत्वा भक्त्या प्रदक्षिणां ।

महानागेन्द्र शिरसि पादुके समरोपयत् ॥

—भु० रा०, दक्षिण ४३/६०,६१

प्रभु करि कृपा पावरी दीन्हीं । सादर भरत सीस धरि लीन्हीं ॥

—रामचरितमानस, अयोध्या ३१५/५

### राम की तिरोधान लीला

भुशुण्ड रामायण में राम के लीला-संवरण का विस्तार से वर्णन किया गया है । राम-चरितमानस में वह अत्यन्त संक्षेप में है, किन्तु अध्यात्म रामायण का यह प्रसंग भुशुण्ड रामायण पर आंधृत होने से विशद है । यहाँ केवल मानस तथा भुशुण्ड रामायण के एतद्-विषयक विवरण तुलना के लिए उद्धृत किये जाते हैं—

आदाय चिन्मयानन्द स्वरूपः सर्वजन्किभूत् ।  
रमते स्वात्मरमणो रामो रामादि केलिभिः ॥  
रत्नाद्रेः परितो निकुंज भवने भूयोऽपि रामस्ततः ।  
कृत्वा स्वेच्छतरं मुहुर्विहरणं कर्माणि दिव्यानिगः ॥  
यान्युद्गीय जनो विधृतकल्पः स्वरूपमासादये ।  
भूयो नैव च कल्पते भवमयं प्राप्स्यविमुक्तिश्चरम् ॥

—भू० रा०, दक्षिण० २३३।१९, २०

पुनि कृपाल पुर बाहेर गये । गजरथ तुरग मंगावत भये ॥  
देखि कृपा करि सकल सराहे । दिये उचित जिन्ह तिन्ह तेइ चाहे ॥  
हरन सकल थ्रम प्रभु थ्रम पाई । गए जहाँ मीतल अँवराई ॥

—मानस, उत्तर० ५०।३, ५

रामचरितमानस में भुशुण्ड रामायण निर्दिष्ट स्थान पर 'निकुंज वन' के स्थान पर 'सीतल अँवराई' है जिससे परमपुरुष राम अपनो परागन्कि सीता के साथ नित्य केलिरत रहते हैं । रसिक साधकों का परम लक्ष्य प्रिया-प्रियतम की विहार-जीला का ध्यान है । अतः आराध्ययुगल की लीला इसी भाव के अनुरूप दिखायी गयी है । मर्यादा के आग्रह में तुलसी ने निकुंजभवन के स्थान पर 'सीतल अँवराई' का निर्देश कर प्रकारान्तर से इसका समर्थन किया है ।

मानस के अन्त में गोस्वामीजी द्वारा दी गयी फलश्रुति भी भुशुण्ड रामायण के तद्विषयक छन्दों से अधिकांशतः मिल जाती है—

फलश्रुति—इत्येतत्प्रमुदादवी विहरण स्वच्छन्द मौख्यात्मनो ।  
रामस्यामिति सदगुणीध जलधे जन्मामलं कर्म च ॥  
भक्त्या संशृणुते स मानववरो जीवन्विमुक्तोश्चरेत् ।  
स्वानन्दामृतं लाभपुष्ट हृदयो भूयो भवे नोद्ध्रवेत् ॥

—भू० रा०, दक्षिण २३३।२१

पुण्यपापहरं सदाशिवकरं विज्ञान भक्तिप्रदं,  
माया मोह मलापहं सुविमलं प्रेमाम्बु पूरं परं ।  
श्रीमद्रामचरितमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये,  
ते संसारपतञ्ज घोर किरणैः दह्यन्ति नो मानवाः ॥

—मानस, उत्तरकाण्ड, अन्तिम श्लोक

भुशुण्ड रामायण और रामचरितमानस में शब्दावली तथा भाव-साम्य के इस प्रकार के असंख्य उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

### राम की कृपाशीलता और राम-नाम माहात्म्य

सम्प्राप्ते सङ्कटे चापि महाभय उपस्थिते ।  
संग्रामे विषमे घोरे दुर्गमे जल संगमे ॥

राजद्वारे भयकरे तथैवाध्वनि दुर्गमे ।  
क्रव्यादद्विप सर्पादी सद्यो नाशार्थमुद्यते ॥  
कान्तारे दुर्गमे चैव पवते सिंह संयुते ।  
भूतप्रेत पिशाचाधैजूम्भ काद्यैरुपद्वुते ॥  
रामेति यस्य नाम्नैय तरन्ति विपदोऽखिलाः ।  
जायन्ते निर्भयाः लोकाः कोऽन्यस्तस्माच्च वीर्यवान् ॥

भु० रा०, पूर्व० ९३।६०, ६३

काल कराल, महाविष, पावक मत्तगयन्दहु के रद तोरे ।  
साँसति संक चली, डरपे हुते किकर ते करनी मुख मोरे ॥

—कवितावली, उत्तर ४८

कानन भूधर वारि बयारि महाविष व्याधि दवा अरि घेरे ।  
सङ्कट कोटि जहाँ तुलसी, सुत मातु पिता हित बन्धु न नेरे ॥  
राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे ।  
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मोरे ॥

—व्रही, उत्तर०, ५०

### स्फुट प्रसंगों में कथ्य तथा शैलीगत साम्य

- (१) इन्द्रालयेऽपि न तथा सुविभाति शोभा न ब्रह्मासद्वनि नवा खलु भोगवत्याम् ।  
साकेतवासजुषि नीचतरेऽपि वर्णे याद्वक् बभूव नव किन्नरवीक्षणीया ॥

—भु० रा०, पूर्व० ९५।४६

जो संपदा नीच गृह सोहं । सो विलोकि सुरनायक मोहा ॥

—रामचरितमानस, बाल० २८।८

- (२) अथ क्रुद्धो ब्रवीद्रामेः सौमित्रे धनुरानय ।  
अहमेकेन वाणेन जलर्धि खलु शोषये ॥

—भु० रा०, पश्चिम, पू० ११५

लछिमन बान सरासन आनू । सोखों वारिधि विसिख कृसानू ॥

—रामचरित मानस, सुन्दर, ५७।१

- (३) यन्मे हुतं कृतं तसं तदन्न सकलं बभौ ।  
मल्लोचन पथं यातः सदारः सानुजो भवान् ॥

—भु० रा०, दक्षिण० १३६।४

आजु सुफल तप तीरथ त्यागू । आजु सुफल जप जोग विरागू ।

सफल सकल सुभ साधन आजू । राम तुम्हर्हि अवलोकत आजू ॥

—रामचरितमानस, अयोध्या, १०६।५, ६

करि प्रनाम सब कहैं कर जोरे । राम राउ गुर साधु निहोरे ॥

—मानस, अयोध्या, २९७।५

(४)

जगाहे काननं सर्वं प्रियान्वेषण तत्परः ।  
पृच्छमानः तरुलता गुल्म तुंग वनस्पतीन् ॥

—भु० रा०, दक्षिण १५८१४

लछिमन समुझाये वहु भाँती । पूछत चले लता तरु पाती ॥

—रामचरितमानस, अरण्य०, ३०१८

(५)

गणयेन्नभसीस्तारा भुवः पांशकणानपि ।  
कश्चित्सुसूक्ष्मधी राम न तु ते विशदान् गुणान् ॥

—भु० रा०, दक्षिण ११८१८

जलसीकर महिरज गनि जाहीं । रघुपति चरित न वरनि सिराहीं ॥

—रामचरितमानस, उत्तर०, ५११४

तुलसी-साहित्य पर पड़नेवाले भुशुण्ड रामायण के इन विषय तथा शैलीगत प्रभावों के बावजूद इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि उन्न दोनों लोतों में उपलब्ध रामचरित का स्वरूप एवं उद्देश्य एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं । अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि तुलसी ने भुशुण्ड रामायण में निरूपित रामकथा तथा अनेक स्थलों पर उसकी भाषा-शैली का छायाग्रहण करते हुए भी उसके मूलस्वर मायुर्य भावना की उपेक्षा कर ऐश्वर्याश्रित रामभक्ति को क्यों महत्त्व दिया ? मेरे विचार में इसके निम्नांकित कारण हो सकते हैं—

१. युगीन परिस्थितियों को देखते हुए भारतीय जन-मानस में आशा, उत्साह तथा साहस का संचार करने के लिए रासलीला की अपेक्षा राम की राज्य-लीला का गान तुलसी को अधिक श्रेयस्कर जँचा ।

२. भुशुण्ड रामायण आगमिक धारा की उपासना का एकान्त समर्थक ग्रन्थ था, जिसमें माधुर्यभाव की प्रधानता थी, आराध्य को छोड़कर अन्य देवी-देवताओं का तिरस्कार था, वर्णश्रिम धर्म की उपेक्षा थी, आचार-सम्बन्धी नियमों में शियिलता स्वीकार्य थी, युगल-किशोर की अष्ट्याम-लीला का चिंतन अथवा ‘मानसी-पूजा’ ध्येय थी । किन्तु इसके विपरीत तुलसी की भक्ति दास्यभाव की थी, स्मार्त धर्म में आस्था रखने के कारण उनके हृदय में अन्य देवी-देवताओं के प्रति भी उचित समादर था, वर्णश्रिम धर्म में उनकी दृढ़ आस्था थी और लोक-मर्यादा की रक्षा के लिए सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन में आचार-विषयक नियमों का कड़ाई से पालन करने का आग्रह था । संक्षेप में भुशुण्ड रामायण व्यष्टि साधनापरक एकांतिक भक्ति का प्रतिपादक था, किन्तु तुलसीदास साधनोन्मुख लोकधर्म के पुरस्कर्ता थे । इसलिए उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ के कथात्त्व तथा कहीं-कहीं शैली को अपनाते हुए भी उसमें निर्दिष्ट शृंगारी साधना की उप्रेक्षा की । जनमानस के उचित दिशा-निर्देश के लिए तत्कालीन परिस्थितियों में यही श्रेयस्कर था । किन्तु तुलसी की परवर्ती रामभक्ति साधना में एक प्रकार से माधुर्यधारा का पूर्ण आधिपत्य हो गया । रीतिकालीन-प्रवृत्तियों ने इसके विकास में अभूतपूर्व शृंगारी योग दिया । इसके फलस्वरूप भुशुण्ड रामायण रसिक सम्प्रदाय के कवियों का प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ बन गया । महात्मा रामसखे, हरियाचार्य, रामप्रियाशरण, कृपानिवास,

प्रेमसस्ती, रामचरणदास, युगलानन्यशरण, रामरसरंगमणि, प्रेमलता प्रभृति रसिकाचार्यों की कृतियों में भुशुण्ड रामायण का गहरा प्रभाव दिखायी देता है।

आलोच्य-ग्रन्थ से प्रेरणा ग्रहण की यह परम्परा अब तक अदाघ रूप से चली आ रही है। महात्मा राजकिशोरीवरशरण, वावा रामकिशोर शरण, जानकीजीवनशरण, मैथिलीशरण भक्तमाली, विदेहजाशरण आदि आधुनिक रामभक्त कवियों की रचनाएँ भुशुण्ड रामायण में प्रतिपादित रस-साधना के सिद्धान्त और शैली से ओत-ओत हैं।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि आचार्य रामानुज द्वारा प्रवर्तित श्री वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत विकसित भक्तिपरक रामकथा काव्यों में भुशुण्ड रामायण प्राचीनतम होने के साथ ही १२वीं शती के पश्चात् निर्मित सम्पूर्ण रामभक्ति-साहित्य का प्रमुख प्रेरणास्रोत रहा है। मध्यकाल की साम्प्रदायिक रामायणों का तो यह आदर्श ग्रन्थ था ही, सामान्य रामकाव्यों के भी उपजीव्य के रूप में इसकी महत्ता अक्षण्ण रही।

रामभक्ति के क्षेत्रों में इस महाग्रन्थ की लोकमान्यता से प्रभावित होकर गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना करते समय इसके कथातत्त्व को विवेकपूर्वक ग्रहण किया और उसमें उपदिष्ट भक्ति-पद्धति का भी यथेष्ट सत्कार किया। सर जार्ज प्रियर्सन ने रामचरितमानस के टीकाकारों द्वारा निर्दिष्ट उसके तीन आधार ग्रन्थों—अध्यात्म रामायण, भुशुण्ड रामायण और वशिष्ठ संहिता का उल्लेख करते हुए यह बताया है कि उनमें से प्रथम और तृतीय उपलब्ध है किंतु द्वितीय अर्थात् भुशुण्ड रामायण अप्राप्य है। उसकी कोई प्रति उनके देखने में नहीं आयी, न उसके किसी हस्तलेख के उपलब्ध की उन्हें सूचना ही प्राप्त हो सकी। निष्कर्ष रूप में उनका कहना है कि रामचरितमानस की रचना में तुलसीदास ने केवल वाल्मीकि रामायण से ही नहीं अपितु उस समय प्राप्त रामकथा-सम्बन्धी अन्य वैष्णव ग्रंथों से भी भरपूर सहायता ली थी।<sup>1</sup>

उन्होंने लोकमंगल के विचार से आगम और तंत्राचार से प्रभावित उसकी गुह्य शृंगारी साधना की उपेक्षा कर प्रेमाभक्ति तथा रामचरित के मर्यादापरक प्रसंगों को ज्यों-का-

1. We have seen that Tulsidas states in so many words that he consulted other sources besides the epic of Valmiki. The commentators agree in mentioning three works as having been sued by him, the Adhyatma Ramayana, the Bhusundi Ramayana and the Vashishtha Samhita.... The Bhushundi Ramayana I have never seen, nor do I know if MSS of it exist, but the other two works are well known and easily obtainable... of one thing I am certain. Tulsidas wrote his poem with his whole being saturated not only with Valmiki's Ramayana but also with all the other then existing Vaishnava works dealing with the history of the Master whom he adored" (The Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland for 1912 pp. 794-798 )

त्यों ग्रहण कर लिया और उनके आधार पर राम की लोक-पावनी कथा लिखकर रामचरित के दिव्य प्रकाश से लोकमानस का अन्धकार दूर किया।

भुशुण्ड रामायण के उपर्युक्त विशिष्ट तत्त्वों को दृष्टिपथ में रखते हुए यह कहना अत्युक्ति न होगी कि वैष्णव-भक्ति के उद्भवकाल से लेकर मध्यकाल तक भारतीय धर्मसाधना के क्षेत्र में विकसित विभिन्न मत-मतान्तरों और संवेदनशील रचनाकारों द्वारा उनसे गृहीत सत् प्रभादों का ऐसा विश्वकोश कदाचित् ही कहीं उपलब्ध हो सके। अतः रामभक्तिशास्त्र के ही नहीं, सम्पूर्ण वैष्णवभक्ति धारा के अनुशीलन में इसकी महत्ता स्वतः सिद्ध है।

भारतीय धर्मसाधना में रामोपासना के एक सर्वथा नवीन पक्ष को प्रकाश में लानेवाले इस सरस ग्रन्थ को सभी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं जहाँ एक ओर अपार संतोष का अनुभव कर रहा हूँ, वहीं दूसरी ओर इसके महत्त्वांकन-विपयक अपनी अक्षमता पर लज्जावनत हूँ। इसकी भाषा-शैली तथा विषयतत्त्व दोनों में चंचु प्रवेशमात्र होने से संपादनकाल में मेरी मानसिक स्थिति कुछ बैंसी ही रही जैसी पके वेल के चतुर्दिक् मैंडरानेवाले भाँरे की होती है। किन्तु विवश था। हमारी साधनहीनता से अवगत होते हुए भी परमप्रकाशक ने इस महान् कृति के प्राकृत्य का निमित्त मेरे जैसे अल्पज्ञ एवं अकिञ्चन को बना दिया। दैवयोग से यह न्यूनता सुहृद्वर श्रीजनार्दन शास्त्री पाण्डेय का सहयोग पा जाने से बहुत अंश तक दूर हो गयी। उन्होंने इसके संपादन तथा मुद्रण में आत्मीयतापूर्ण भाव से जो अथक थ्रम किया है, आभार प्रदर्शन कर उसका भार उतारने का उपक्रम करना शुद्ध कृतधनता होगी।

लक्ष्मण किला पुस्तकालय ( अयोध्या ) के अधिष्ठाता महंत श्रीसीतारामशरण, श्रावण कुञ्ज ( अयोध्या ) के महंत श्रीसरयूशरण तथा प्राच्यविद्या मंदिर; बडोदा के नियामक श्री भो० ज० सांडेसरा तथा वलरामपुर के महाराज पाटेश्वरीप्रसाद सिंह का मैं विशेष आभारी हूँ। इन महानुभावों की कृपा से ही मुझे भुशुण्ड रामायण की दुर्लभ पांडुलिपियाँ विमर्श के लिए सुलभ हो सकीं।

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी के अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तमदास मोदी ने इस महाकाय ग्रन्थ को लोक-सुलभ कराने का साहस किया, यह व्यावसायिक दृष्टि की अपेक्षा उनकी सांस्कृतिक अभिरुचि का ही प्रतिफल था। कुछ अनिवार्य परिस्थितियों में मुद्रित होने के बाद भी प्रस्तुत खण्ड एक वर्ष तक मेरे प्रमाद से प्रकाश में न आ सका। इस बीच जिज्ञासुओं के पत्रों का ताँता लगा रहा। एतदर्थ मैं प्रकाशक तथा सुहृद्वर्ग—दोनों से क्षमाप्रार्थी हूँ। भावग्राही पाठकों से मेरा विनम्र निवेदन है कि अशक्त तथा परवश निमित्त की सीमाओं पर ध्यान न देकर ब्रह्मद्रव से आप्लावित इस राम-गंगा में मज्जन कर अन्तःसुख लाभ करें।

रामनवमी

सं० २०३१

साकेत, बेतियाहाता

गोरखपुर

भगवतीप्रसाद सिंह

## कथावस्तु

एक बार ब्रह्मा द्वारा अनुष्ठित यज्ञ में समागत देवताओं ने निवेदन किया, 'विश्व पितामह ! आप जगत्सृष्टा हैं, वेदों के आश्रय हैं, स्वराट् एवं विराट् हैं, त्रिकालज्ञ हैं। आप से कुछ भी छिपा नहीं है। अतः कृपया बतायें कि इस जगत् का आश्रय कौन है ? क्या निमित्त है ? क्या सार है और क्या वेद्य है ? इसका विनियोक्ता कौन है ? उसका स्वरूप क्या है ? उसका सगुण-निर्गुण रूप किस प्रकार ध्येय एवं ज्ञेय है ? आप यह यज्ञ किस देव के प्रीत्यर्थ कर रहे हैं ? इन सारे प्रश्नों का उत्तर आप ही दे सकते हैं।'

ब्रह्मा बोले, 'देवगण ! तुम्हारे ये प्रश्न अत्यंत लोकोपयोगी हैं। इनसे भक्त और परमहंस सभी कृतार्थ होंगे। इस जगत् के मूल एवं निमित्त कारण भगवान् राम हैं। वे ही परमतत्त्व हैं। आरंभ में सृष्टि की रचना के लिए उन्होंने ही मुझे नियुक्त किया था। उनका स्वरूप वेदों के लिए भी अगोचर तथा सगुण-निर्गुण भेदाभेदरहित है। वैसे तो उनका संस्थान चिदानंद और परमस्थान चिन्मयानंदपूर्ण सीतालोक है, किन्तु पृथ्वी पर कोशलपुरी ही उनका चिल्लोक है। विविध यंत्रों द्वारा में उन्हीं की पूजा करता हूँ। वे ही हविर्भोक्ता तथा फलप्रदाता हैं। पूर्वकाल में महापुरुषों से प्राप्त उनके दिव्य जन्मकर्म का वृत्तान्त आदिरामायण नाम की रचना में मैंने भुशुण्ड को बताया था। उसे तुम्हें सुनाता हूँ।'

देवताओं ने जिज्ञासा की, 'वैष्णवाग्रणी ! भुशुण्ड कौन थे ? उनको आपने आदिरामायण कैसे सुनाया ? उसमें मूल चरित तथा अवतार चरित-सम्बन्धी क्या दिव्य कथाएँ हैं ? कृपया सुनायें।' ब्रह्मा बोले : 'महाकाल की कालकट्का नाम की एक बहन थी। सूर्य के संयोग से उसने भुशुण्ड नामक पक्षी को जन्म दिया। वह अतुल पराक्रमी हुआ। मुझसे वर प्राप्त करके उसने विष्णुवाहन गरुड़ को पराजित किया। सूर्य, चन्द्र तथा देवतागण उसके आतंक से त्रस्त हो गये। तीनों लोकों के निवासी भयभीत रहने लगे। इस स्थिति से त्राण पाने के लिए देवताओं ने मुझसे कहा, 'ब्रह्मन् ! आप से वर पाकर भुशुण्ड अत्याचारी हो गया है। उसका नियंत्रण आप ही कर सकते हैं।' देवताओं का कष्ट दूर करने के लिए मैं भुशुण्ड के पास गया। मधु समुद्र के मध्य में एक द्वीप था। वहाँ एक पर्वत पर वह रहता था। मधु द्वार पर उपस्थित देखकर उसने यथोचित सत्कार किया। कुशलवार्ता के मुझे द्वार पर उपस्थित देखकर उसने यथोचित सत्कार किया। कुशलवार्ता के पश्चात् मैंने उससे कहा, 'हे पुत्र ! तुमने तीनों लोकों को त्रस्त कर रखा है। यह तुम्हारे लिए अनुचित है। राम ने विश्व की रचना भक्तों के सुख के लिए की है। तुम्हारे लिए अनुचित है।'

राम ने विश्व की रचना भक्तों के सुख के लिए की है। यदि साधु दुःखी हुए तो वे कृपित होंगे और राम के क्रुद्ध होने पर चराचर का कुशल कहाँ ? इससे तुम्हें शान्त रहना चाहिए। शान्ति के बिना तुम्हारी भगवद्भक्ति विफल हो जायगी। तुम राम के परमभक्त हो, जानी हो, इसलिए विश्व-कल्याण तुम्हारा हो जायगी। तुम राम के परमभक्त हो, जानी हो, इसलिए विश्व-कल्याण तुम्हारा

प्रथम कर्तव्य होना चाहिए।' भुशुण्ड ने पूछा, 'राम के बलदेव, कृष्णादि सहस्रों रूप हैं उनमें से उनका मुख्य रूप कौन है?' मैंने उत्तर में कहा, 'सारे रूप राम के ही हैं और भक्तों के भावानुसार वे सभी रूप व्येय तथा ज्ञेय हैं। प्राचीनकाल में एक बार राम के स्वरूप-विषयक इसी प्रकार की जिज्ञासा हनुमान से गरुड़ ने की थी। उस समय हनुमान वेगपूर्वक आकाशमार्ग से जा रहे थे। गरुड़ के पूछने पर वे बोले, 'मैं कोशलपुरी जा रहा हूँ। मध्याह्न में रामदर्शन की बेला है। मुझे देरी हो गही है, इसलिए रुक नहीं सकता।' गरुड़ ने कहा, 'वे राम कौन है? मनुष्य, देव या गंधर्व?' हनुमान बोले, 'आश्चर्य है, कि तुम राम को नहीं जानते। वे चक्रवर्ती महाराज हनुमान बोले, 'गरुड़ ने कहा, 'वे राम कौन है? मनुष्य, देव या गंधर्व?' गान नहीं किया वह आत्मवंचक है। राम जगत् के कारण, सच्चिदानन्द विग्रह हैं। वे ही एकमात्र भुक्ति-मुक्तिप्रद हैं। मारे अवतार उन प्रमोदवन-विहारी राम के हो अंश हैं।' यह सुनकर भुशुण्ड ने हनुमान से राम का दर्शन कराने की प्रार्थना की। हनुमान ने कहा, 'मुझे शीघ्रता है। तुम मेरे साथ नहीं चल पाओगे। कल आ जाना।' दूसरे दिन गरुड़ अयोध्यापुरी गये। वहाँ उन्हें हनुमान द्वारा नित्यसेवित राम का दर्शन प्राप्त हो गया। गरुड़ को अयोध्या के दक्षिणी भाग में रुक्मणी सहित श्रीकृष्ण के भी दर्शन हुए। उन्होंने राम के लोक-मंगलकारी चरित का गान करते हुए कुछ दिन वहाँ मणिपर्वत के समीप निवास किया। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर एक दिन राम ने कहा, 'गरुड़! तुम जाकर साकेत के उत्तर, सरयू के दोनों तटों पर विचरो। जो मनुष्य, पशु, कीट या पतंग वहाँ शरीर त्याग करेंगे, उन्हें मेरा चतुर्भुज रूप प्राप्त होगा। तुम उनको स्वर्ग ले जाओगे। यही तुम्हारी सेवा होगी।' यह आदेश देकर राम ने गरुड़ को विदा किया। देवताओं की जिज्ञासा-निवृत्ति के लिए भुशुण्ड का इतना वृत्तान्त वताने के बाद ब्रह्मा ने राम के दिव्य जन्मकर्म-विषयक ब्रह्मकल्प में स्वरचित आदिरामायण की कथा आरम्भ की।

प्राचीनकाल में रावण के नेतृत्व में राक्षसों द्वारा किये गये अत्याचारों से तीनों लोकों के निवासी त्राहि-त्राहि करने लगे। तब आकाशवाणी हुई : 'सारस्वत कल्प के त्रेतायुग में अंशों सहित मैं दशरथ-पुत्र राम के रूप में अयोध्या में अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारूँगा। इस विधान को पूरा करने के लिए मेरे स्वांश सहित देवगण भी पृथ्वी पर जन्म धारण करेंगे।' कालान्तर में ब्रह्मवाणी सत्य हुई। ककुत्स्य वंश में कौशल्या के गर्भ से आद्याशक्ति सहित स्वयं ब्रह्म का अवतार हुआ। भुशुण्ड ने पुनः कहा, 'भगवन्! जिस राम ने मेरे देखते-देखते रावण का सकुल वध किया, उसका चरित सुनाइए।' ब्रह्म बोले, 'वाल्मीकि ने रोष्ण का चरित वर्णन किया है, उसे ही समाधि संयोग से हृदयंगम कर मैं तुम्हें सुनाता हूँ।'

चैत्र शुक्ल नवमी को अभिजित योग एवं पुनर्वसु नक्षत्र में राम का प्राकट्य हुआ। उनका शरीर श्रीवत्स चरण, वाणादि चिह्नों से युक्त था और महाशक्ति सीता उनके वामांग में विराजमान थीं। दशरथ और कौशल्या ने स्वयंब्रह्म का अवतार जानकर उनकी करबद्ध स्तुति की। उस अवसर पर त्रिदेवों तथा चारों वेदों ने

उपस्थित हो दंडवत् किया और पृथक्-पृथक् स्तुतियाँ कीं। पृथ्वी पर विद्याधर और किन्नरियों ने आनंदोत्सव मनाया तथा आकाश में देवताओं ने दुंदुभि बजाकर अपना हृदयोल्लास व्यक्त किया। महाराज दशरथ ने स्नान करके जातकर्म संपन्न किये। ब्राह्मण तथा नेगी अभीष्ट दान पाकर संतुष्ट हुए। तेरहवें दिन विशिष्ट ने चारों बालकों का गुणानुसार नामकरण संस्कार किया। राम, लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न का रूप-लावण्य दिन-दिन बढ़ता गया। राम के लोकमोहक सौन्दर्य को देखकर तीनों लोकों के निवासी आनंद-मग्न हो गये।

इसी बीच देवर्षि नारद लंका गये और रावण से बोले, 'देवताओं की प्रार्थना से तुम्हारा नाशकर्ता उत्पन्न हो गया है। उससे बचने का शीघ्र उपाय करो, नहीं तो शत्रु के बड़े हो जाने पर आत्मरक्षा के तुम्हारे सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जायेंगे।' इतना कहकर वे ब्रह्मलोक चले गये। रावण इस संवाद से पहले तो अत्यंत भयभीत हुआ फिर सारी परिस्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार करके बोला, 'मैं शिव के चरणों पर शीश चढ़ाकर उनके प्रसाद से असीम शक्ति प्राप्त करूँगा। तब वैष्णवों का मूलो-च्छेद करूँगा और देवताओं का सर्वनाशकर उन्हें स्वर्ग से निकाल बाहर करूँगा। देखें विष्णु क्या कर लेते हैं?' अपनी इस योजना को उसने तत्काल कार्यान्वित करने के लिए राक्षस सेनापतियों को आदेश दिया। उनके अकल्पनीय अत्याचारों से विश्व कांपने लगा। देवता स्वर्ग से भागकर गिरि-कन्दराओं में जा छिपे, उनमें से कुछ महाराज दशरथ के पास आये और यह संवाद सुनाया। वृद्धावस्था में प्राप्त चारों पुत्रों की सुरक्षा के लिए वे व्यग्र हो उठे। अयोध्या में पुत्रों की रक्षा कदाचित् ही हो सके, यह सोचकर उन्होंने गुपरूप से चारों बालकों को सरयू पार कामिकावन में सुखित गोप के घर भेज दिया। उसकी स्त्री मांगल्या उनका बड़े ही स्नेह से पालन-पोषण करने लगी। वे गोप-बालकों के साथ गायें चराते हुए नाना प्रकार की मनो-मुग्धकारी कीड़ाएँ करते थे। रावण को किसी प्रकार इसका पता लग गया। उसने उन्हें मारने के लिए छद्मवेषधारी अनेक राक्षस भेजे, किन्तु राम ने उन सबका वध कर डाला। इन्हीं दिनों एक बार दशरथ ने विष्णुयज्ञ का आयोजन किया। इससे अपनी अवमानना समझकर इन्द्र कुपित हो गये। उन्होंने अखण्ड जल-वर्षा से अयोध्या को बहा देने का संकल्प किया। राम ने मेघावरोधक छत्र धारणकर साकेतपुरी तथा उससे संलग्न गोप-प्रदेश की रक्षा की।

परात्पर ब्रह्म की अवतार-लीला के रसास्वादन के निमित्त १६ हजार दंडकारण्यवासी मुनियों ने पूर्व योजनानुसार ब्रज-प्रदेश में गोपीरूप में जन्म लिया था। उन्होंने राम को वररूप में प्राप्त करने के लिए धोर तप किया। उनमें नंदन और राजिनी की पुत्री सहजानन्दिनी सर्वप्रधान थीं। गोपियों की निष्ठा से प्रसन्न होकर राम ने कहा, 'मैं एक पत्नीव्रत हूँ, अतः तुमलोग सीता की आराधना करके उनके अंशरूप में ही मुझे स्वीकार्य हो सकती हो।' गोपियों ने अनन्य भाव से सीता की आराधना में ही मुझे स्वीकार्य हो सकती हो।' गोपियों ने अनन्य भाव से सीता की आराधना कर उन्हें प्रसन्न कर लिया। तब सीता की मध्यस्थिता से उन्हें राम की प्रमोदवन-कर उन्हें प्रसन्न कर लिया। महारास आरंभ हुआ। इस दिव्य लीला का लीला में प्रवेश का अधिकार मिल गया। महारास आरंभ हुआ।

दर्शन करने के उद्देश्य से शिव कैलाश से अयोध्या आये। किंतु लीलायोजिका गोपियों ने उनकी अवज्ञा कर दी। इससे रुष्ट होकर शिव ने उन्हें शाप दिया कि तुमलोग शीघ्र ही लीलाबिहारी राम के वियोग-दुःख से पीड़ित होगी। यह कहकर शिव राम के पास गये और उनकी भावपूर्ण स्तुति की। चलते हुए उन्होंने राम से उक्त शाप की बात कह दी और उनके आश्रिताओं को उससे प्राप्त होनेवाले कष्ट के लिए क्षमा-याचना करने लगे। राम ने कहा 'देवदेव ! तुम्हारा शाप मेरे अवतार-कार्य की सिद्धि में सहायक होगा। अतः वह मेरी इच्छा के सर्वथा अनुकूल है।'

इसके अनन्तर वे गोपियों को संभावित वियोगजन्य दुःख से उद्धार का उपाय बताते हुए बोले, 'तुमलोग प्रत्यक्ष संपर्क के अभाव में भी मुझसे सहज ही तादात्म्य स्थापित कर सकती हो। प्रकृति-पुरुष सब में ही हूँ। पूजा और ध्यान के द्वारा तुम मेरी नित्य-लीला में अहर्निश लीन रह सकती हो। नित्यधाम परमानन्दमय है। उसमें प्रवेश का अधिकार साधकमात्र को है चाहे वे निर्गुणमार्गी भक्त हों या सगुणो-पासक। यों तो पंच भक्तिभावों में से किसी भी एक का अवलम्बन लेने से अक्षर-धाम की प्राप्ति हो जाती है। किन्तु 'रसध्यान' सर्वाधिक सुगम साधन है। मेरी लीला सहायिका षोडश प्रमुख सखियों का आश्रय ग्रहण करने से लीला-भेद तथा लीला-रस का तत्त्वज्ञान सहज मुलभ हो जाता है। उनके द्वारा साधना के विभिन्न अंगों एवं स्तरों का भी परिज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।' 'रामगीता' के इन तत्त्व-पूर्ण उपदेशों से गोपियों के मानस-नेत्र खुल गये और भावी वियोग से उत्पन्न उनकी चिंता दूर हो गयी।

वयस्क होने पर राम भाइयों सहित धात्री-गृह से अयोध्या चले आये। पुत्रों को राज्य-संचालन के योग्य होते देखकर महाराज दशरथ की इच्छा वानप्रस्थ लेकर तीर्थाटन करने की हुई। युवराज राम को शासन का भार सौंपकर उन्होंने सेवकों, साधु-संन्यासियों तथा अन्य प्रियजनों की एक विशाल मंडली साथ लेकर सप्त द्वीपस्थ तीर्थों का दर्शन करने के उद्देश्य से कैकेयी सहित प्रस्थान किया। काशी, मार्कण्डेय महादेव, प्रयाग, गलता, बद्रीनाथ, केदारनाथ आदि तीर्थों का दर्शन करते हुए वे ब्रज-प्रदेश में गये। वहाँ शुकदेव ने स्वयं उपस्थित होकर उन्हें मुख्य तीर्थों का दर्शन कराया : उन्होंने देखा कि ब्रज में सर्वत्र राम की लीलाओं का गान हो रहा है। वहाँ से वे दक्षिण के तीर्थों का पर्यटन करने गये। केरल, द्वारकापुरी, गंध-मादन आदि पुण्य-स्थलों से होते हुए वे परशुराम का दर्शन करने दंडकक्षेत्र गये। इन समस्त तीर्थों में महाराज दशरथ को व्यापक ब्रह्म राम का साक्षात्कार हुआ। अंत में समाज सहित रेणुकातीर्थ में स्नानकर बटेश्वर होते हुए वे अयोध्या लौट आये। उनके साथ अत्रि, गौतम, कश्यपादि ऋषि भी आये। महाराज दशरथ ने उनके लिए प्रमोदवन में रमणीक आश्रम बनवा दिये। वहाँ निवास करते हुए वे तत्त्वचितन में कालयापन करने लगे। वशिष्ठ ने ऋषियों की उपस्थिति का लाभ उठाकर अनेक ज्ञान-गोष्ठियाँ आयोजित कीं। ऋषिगण सीता-लक्ष्मण सहित राम की आराधना करते हुए उनकी नित्यलीला में प्रवेश पाने के लिए कठोर साधना करने लगे।

तीर्थयात्रा से लौटने पर प्रजा तथा मांत्रियों ने महाराज दशरथ से उनकी अनुपस्थिति में युवराज राम के शासन में अभिव्यक्त षड्क्रिध ऐश्वर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। पुत्रों का उत्कर्ष श्रवण कर वे गदगद हो गये।

उधर परमपुरुष की नित्यसंगिनी सीता को पुत्री के रूप में प्राप्त करने के लिए मिथिलानरेश जनक की महारानी सुनयना ने महालक्ष्मी की उपासना की। वे ही चतुर्धा होकर चार पुत्रियों के रूप में विदेह के घर अवतरित हुईं। सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा दिग्दिगंत में फैल गयी। राम ने एक पक्षी द्वारा उनके पास संदेश भेजकर विवाह की इच्छा प्रकट की। सीता ने उसो के हाथ अपना एक चित्र राम के पास भेजा। इसी बीच महर्षि विश्वामित्र राक्षसों के उत्पात से यज्ञ-रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को माँगने अयोध्या पधारे। महाराज दशरथ ने विशिष्ट के समझाने पर दोनों पुत्रों को विश्वामित्र के साथ भेज दिया। विश्वामित्र का संकट दूर कर दोनों भाई उन्हीं के साथ महाराज जनकद्वारा आयोजित धनुष-यज्ञ देखने मिथिला गये। पुष्पवाटिका में उनकी भैंट सीता से हुई। वहाँ वे सखियों के साथ अंबिका-पूजन के लिए गयी थीं। एक दूसरे को देखते ही वे परस्पर गूढ़ प्रेम-सम्बन्ध रज्जु से आबद्ध हो गये।

धनुषयज्ञ में देश-देशांतर के राजा ही नहीं, देव, गंधर्व तथा राक्षस भी मनुष्य रूप धारणकर सम्मिलित हुए थे। महाराज जनक की प्रतिज्ञा के अनुसार उनमें से कोई भी धनुष तोड़ नहीं सका। रावण ऐसे महापराक्रमी भी उसे उठाने में असमर्थ रहे। तब राम ने उसको क्षणमात्र में दो टूक कर डाला। इसके अनन्तर वहाँ परशुराम का आगमन हुआ। शिव-धनुष तोड़े जाने का संवाद पाकर वे बहुत दुःखी हुए। यह जानकर कि यह इन्हीं दोनों भाइयों की करतूत है, उनके क्रोध की सीमा न रही। लक्ष्मण उनके कटु शब्दों को न सह सके। दोनों में विवाद छिड़ गया। बात बढ़ते देखकर राम ने लक्ष्मण को चुप किया और परशुराम का तेज खींचकर उन्हें शांत कर दिया। वीतराग हो वे तपस्या करने वन को चले गये। चारों पुत्रों का विवाह कर महाराज दशरथ पुत्र-वधुओं सहित सकुशल अयोध्या लौट आये।

महाराज दशरथ बूढ़े हो चले थे। उनकी इच्छा राज्य-संचालन का भार योग्य उत्तराधिकारी को सौंपकर शांतिमय जीवन व्यतीत करने की हुई। राम के व्यक्तित्व में ऐश्वर्य, वीर्यादि षड्गुणों का परमोज्ज्वल प्रकाश देखकर वे उन्हें ही राजा बनाना चाहते थे। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण परंपरया वही उसके अधिकारी भी थे, तथापि इस महत्त्वपूर्ण विषय में उन्होंने मंत्रियों से परामर्श कर लेना उचित समझा। मंत्रि-परिषद् बुलायी गयी। महाराज दशरथ ने उसके समक्ष दो प्रस्ताव रखे—एक था सारा राज्य चारों पुत्रों में बराबर बाँट देना और दूसरा था कोशल राज्य की अखंडता रक्षित करने के लिए उसका पूरा दायित्व राम को सौंपना। मंत्रियों ने एक स्वर से दूसरे प्रस्ताव का अनुमोदन किया। फलतः राम के अभिषेक की तैयारी एक स्वर से दूसरे प्रस्ताव का अनुमोदन किया। नाना देशों से निमंत्रित राजे भैंट लेकर अयोध्या आने धूमधाम से आरंभ हो गयी। नाना देशों से निमंत्रित राजे भैंट लेकर अयोध्या आने लगे। सारी नगरी अपूर्व ढंग से सजायी गयी। यह समाचार पाकर इन्द्र चिन्ताग्रस्त

हो गये। उन्होंने विचार किया कि रामावतार तो रावण-वध के लिए हुआ है किन्तु ये राज्य-भोग में लिस होने जा रहे हैं। अब देवताओं का व्राण कैसे होगा? वे तत्काल प्रजापति ब्रह्मा के पास गये और बोले, 'लोकेश! राम का राज्याभिषेक हो जाने से देवकार्य वाधित हो जायगा। अतः उसका निवारण होना चाहिए।' ब्रह्मा ने कहा, 'मैंने इसका उपाय पहले से ही सोच रखा है। सरस्वती कैकेयी की मंद वुद्धि दासी मंथरा के कंठ में प्रवेश करेंगी। वह पति द्वारा पहले की गयी दो वर प्रदान करने की प्रतिज्ञा का स्मरण रानी को दिलायेंगी। इसके अनुसार भरत को राज्य और राम को वनवास मिलेगा।'

इधर अयोध्या में अभिषेक के निमित्त देवस्थापना और पूजा का कार्य प्रारंभ हो गया था। राम को प्रातः ओपधिजल से स्नान कराने की तैयारी भी पूरी हो चुकी थी। इसी समय कैकेयी ने करुण-क्रन्दन प्रारंभ किया। महाराज दशरथ यह देखकर स्तव्य रह गये। उन्होंने कैकेयी से उसका कारण पूछा। वह रोषभरे शब्दों में बोली, 'आपने मेरे निरपराध पुत्र को घर से निकालकर सौत के लड़के को युवराज बनाने का घड्यंत्र रचा है। मेरा जीवन धिकार है। यह सारी सजावट मेरी आँखों में ज्वाला उत्पन्न कर रही है। बहुत पहले आपने मुझे दो वर देने को कहा था। वह आज तक नहीं दिया। यही आपकी सत्यवादिता है?' राजा बोले, 'माँगो! मैं तुम्हें अभी दोनों वर सहर्प दूँगा।' कैकेयी प्रसन्न हो गयी। उसने बड़ी निष्ठुरता से कहा, 'मेरे पुत्र भरत को अयोध्या का राज्य और राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास—बस ये दो वर दीजिए।' इन शब्दों को सुनते ही राजा संताप, लज्जा और उद्वेग से व्यथित हो कैकेयी के महल से बाहर चले गये। वशिष्ठ ने उन्हें बहुत समझाया, किन्तु प्रवोध नहीं हुआ। पिता की शोचनीय स्थिति का संवाद पाकर राम उनके पास गये। महाराज दशरथ उन्हें देखते ही जोर-जोर से विलाप करने लगे। कुछ समय तक पिता को समझाने का प्रयास कर राम वन-यात्रा की तैयारी में लग गये। क्षणभर में यह बात पूरे राजप्रासाद में फैल गयी। लक्ष्मण भाई की सेवा के लिए साथ जाने को तैयार हुए। राम के बहुत रोकने पर भी वे अयोध्या रहने को राजी न किये जा सके। इसके बाद राम माता के पास गये और सारी व्यवस्था कह सुनायी। कौशल्या का वात्सल्य-स्रोत फूट पड़ा, उनके करुण विलाप से सारा भवन गूँजने लगा। राम ने अपने अवतारधारण का लक्ष्य समझाते हुए उन्हें वन जाने की सार्थकता बतायी, किन्तु वे आश्वस्त न हो सकीं। पति के साथ सीता भी वन जाने को तैयार हो गयीं। राम ने वनवास की कठिनाइयों का वर्णन करते हुए उन्हें रोकने का बहुत प्रयास किया, किन्तु वे किसी भी मूल्य पर पति को छोड़कर अवधवास के लिए तैयार नहीं हुईं। अंततोगत्वा गुरुजनों को प्रणामकर तीनों ने अयोध्या से विदा ली। चलते हुए सीता ने उर्मिला को यथोचित उपदेश दिया। सुमन्त रथ सजाकर राजद्वार पर लाये। महाराज दशरथ ने प्रस्थान बेला में रुँधे हुए गले से उनसे कहा, 'वन दिखाकर उन्हें पाँच-सात दिनों में अयोध्या वापस ले आना।' राम और लक्ष्मण सुमंत द्वारा संचालित रथ पर बैठे और सीता पालकी

पर चलीं। उनके प्रयाण करते समय अयोध्यावासी फूट-फूटकर रोने लगे। अट्टालिकाओं पर चढ़ी स्त्रियाँ जब तक रथ की धूल दिखायी देती रही, अश्रुपात करती हुई अपलक देखती रहीं। रथ के पीछे-पीछे अपार जनसमूह उमड़ता चला जा रहा था। ब्राह्मणों को पैदल चलते देखकर राम रथ से नीचे उतर पड़े और उनसे लौट जाने का अनुरोध किया। किन्तु वे नहीं लौटे।

राम ने प्रजावर्ग के साथ वनपथ की पहली रात तमसा नदी के तट पर वितायी। उस दिन फलाहार हुआ। थके होने से सभी सो गये, केवल लक्ष्मण धनुप-वाण लेकर पहरा देते हुए जागते रहे। साथ चलने में पुरजनों को बहुत क्लेश होगा, यह सोचकर राम ने उन सबको व्यामोहित कर सोते हुए छोड़ दिया और सीता-लक्ष्मण सहित रथारूढ़ हो बन की राह ली। प्रातःकाल उठने पर उन्हें अनुपस्थित पाकर पुरवासी व्यथित हो उठे। विवश हो सभी रोते-कलपते अयोध्या लौट आये। राम के वियोग में राजधानों के सारे उत्सव बन्द हो गये। सभी लोग उनके पुनरागमन की प्रतीक्षा करते हुए तपोमय जीवन व्यतीत करने लगे।

वनपथगामी राजकुमारों ने तमसा से आगे चलकर गोमती पार किया । फिर सई नदी उतरकर संध्या को शृंगवेरपुर पहुँचे । वहाँ एक इंगुदी वृक्ष के नीचे आसन लगा । समाचार पाकर निषादराज मिलने आये । वह रात सुमंत और लक्ष्मण ने भक्तिवार्ता करते हुए बितायी । गुह राम-सीता को पृथ्वी पर विश्राम करते देख बहुत दुःखी हुआ । प्रातः राम ने सुमंत से कहा ‘अब हम पदयात्रा करेंगे, आप रथ लेकर अयोध्या लौट जायें । हमलोगों के विछोह से दुःखी पिता को सांत्वना देना और मेरी ओर से यह निवेदन कर देना कि भरत को ननिहाल से शीघ्र बुलाकर युवराज बना दें । भरत के अयोध्या आने पर उनसे मेरा संदेश कहना कि वे राज्य पाकर नीतिपथ का किसी भी स्थिति में परित्याग न करें ।’ राम के ये शब्द सुनकर सुमंत की आँखों से अश्रुधारा बह चली । लक्ष्मण के भी नेत्र डबडबा आये । उन्होंने अलग से संदेश भेजते हुए सुमंत से कहा, ‘पिताजी से निवेदन करना कि उन्होंने निरपराध राम को वन भेजकर पितृधर्म के विरुद्ध आचरण कर दुष्कृत कर्म किया है ।’ राम ने सुमंत को पुनः संबोधित करते हुए कहा, ‘आर्य ! लक्ष्मण के परुषवचन पिता से न कहना । इसे सुनकर वे प्राणधारण नहीं कर सकेंगे ।’ सुमंत बोले, ‘भगवन् ! मैं आपका दास हूँ । यहाँ से जाने की इच्छा नहीं होती । अपने चरणों में स्थान देकर कृतार्थ करें ।’ राम ने वियोग-विह्वल सुमंत को किसी प्रकार परितोष देकर अयोध्या लौट जाने को सहमत कर लिया । सुमंत के चले जाने पर गुह से वटक्षीर मँगाकर दोनों भाइयों ने जटा बनायी । तापस वेष में तीनों गंगा पार करने के लिए तट पर जाकर नाव पर चढ़े । बीच धारा में पहुँचने पर सीता ने गंगा की पूजा की और पति तथा देवर सहित पुनः दर्शन करने का वरदान माँगा । गंगा पार कर तीनों ने एक वृक्ष के नीचे विश्राम किया । आगे चलकर अनुज और पत्नी सहित राम ने एक न्यग्रोध वृक्ष के नीचे रात बितायी । रात में कैकेयी की निष्ठुरता का स्मरणकर तीनों बहुत देर तक विलाप करते रहे । वहाँ से वे त्रिवेणी तट पर स्थित प्रयाग गये ।

महर्षि भरद्वाज ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। निवास के लिए एकांत स्थान वताने की प्रार्थना करने पर उन्होंने राम को चित्रकूट जाने को कहा। प्रातः संगम स्नान करके तीनों चित्रकूट की ओर चले। मार्गस्थ प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करते हुए यथासमय वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक सुन्दर पर्णशाला बनायी और उसी में मुख्पूर्वक रहने लगे। चित्रकूट में सीता के साथ राम ने विपुल काल तक विहार किया। कभी स्फटिक शिला पर बैठकर उनका पुष्पों से शृंगार करते और कभी उनके कोमलांगों पर पर्वतीय धातुओं से बने रंगों के द्वारा पत्ररचना करते। इसी बीच जयंत ने एक दिन सीता पर नख और चोंच से आक्रमण कर दिया। राम ने उस पर अभिमंत्रित वाण का प्रहार किया। वह तीनों लोकों में शरण की याचना करते हुए चक्कर लगाता रहा, किन्तु कोई भी उसका त्राण करने के लिए तैयार न हुआ। अन्त में विवश होकर वह राम की शरण में आया। राम ने उसे मात्र एकाक्ष कर छोड़ दिया।

राम को पहुँचाकर लौटते हुए सुमंत ने अयोध्या में सूर्यस्त के समय प्रवेश किया। उन्हें खाली रथ लेकर आते देख सारे नगर में हाहाकार मच गया। रानियाँ करुण-स्वर में विलाप करने लगीं। महाराज दशरथ पुत्र एवं पुत्रवधू के लौट आने की बाट जोह रहे थे, सुमंत को अकेला आया सुनकर व्याकुल हो गये। सुमंत ने उनके पास जाकर राम का संदेश कहा। महाराज मूर्च्छित हो सिंहासन से नीचे गिर पड़े। सुमित्रा और कौशल्या ने उठाकर उन्हें आसन पर बिठाया। रानियाँ रोने लगीं। महाराज दशरथ वनवासी कुमारों के कष्ट का स्मरणकर विद्वल हो गये। सुमंत ने मार्ग को सारी कथा कही। उसे सुनकर महाराज विलाप करते हुए भूमि पर लोटने लगे। पश्चात्ताप और चिंता से वे विजड़ित हो गये। इसी अवस्था में उन्होंने कौशल्या को अंधतापस के शाप का वृत्तांत वताया। इसके कुछ ही क्षणों बाद महाराज ने राम-राम कहते शरीर छोड़ दिया।

कोशलनरेश के महाप्रयाण का समाचार पाकर अरुंधती तथा मुनिगण सहित महर्षि वशिष्ठ रानियों को सान्त्वना देने भवन में पधारे। सब ने मन्त्रणा कर भरत को उनके मामा की राजधानी गिरिव्रज से तत्काल बुलाने का निश्चय किया। दूतों को वहाँ मात्र सामान्य कुशल समाचार कहकर दोनों भाइयों को साथ ले आने का आदेश दिया गया।

अयोध्या की विपन्नस्थिति का आभास भरत को दुःस्वप्नों के द्वारा दूतों के पहुँचने के पूर्व ही होने लगा था। वे प्रियवियोग की आशंका से अनमने हो रहे थे। इसी समय सात दिन तक निरंतर यात्रा करके दूत गिरिव्रज पहुँच गये। गुरु का तत्काल चलने का निर्देश सुनकर दोनों भाइयों ने मामा से विदा ली और तीव्रगामी रथ से अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। कई दिनों तक यात्रा कर वे गोमती तट पर आये, वहाँ स्नान किया और फिर चल पड़े। अयोध्या के निकट पहुँचने पर उन्हें सारा वातावरण हर्ष-शोभा-विसर्जित दिखायी पड़ा। कोशलपुरी सौथी हुई-सी और पशु-पक्षी रोते हुए दृष्टिगत हुए। राजभवन में प्रवेश करने पर कैकेयी ने उनका

स्वागत किया। कुशल-प्रश्न पूछने पर उसने पति के दिवंगत होने का समाचार सुनाया और कहा, 'राम बनवासी हो गये। अब तुम अकंटक राज्य करो।' ये शब्द कोमल हृदय भरत को बाण के समान लगे, वे राम-राम कहते हुए अचेत होकर गिर पड़े। इसके अनंतर वार्ताक्रिम में इसका पता लगने पर कि सारे अनर्थ की जड़ मंथरा है, शत्रुघ्न क्रुद्ध हो उठे। वे उसकी चोटी पकड़कर घसीटने लगे। भरत को दया आ गयी। उन्होंने मंथरा को छुड़ा दिया। फिर दोनों भाई कौशल्या के पास गये। भरत ने पूरे काण्ड से अपने असंपृक्त होने के प्रमाणस्वरूप अनेक सौंगधें खायीं। कौशल्या ने उन्हें आश्वस्त कर दिया। विशिष्ट ने अन्त्येष्टिकी-व्यवस्था-सम्बन्धी घोषणा की। उसके अनुसार सरयू तीर पर चिता बनी और वह वेद-मंत्रों द्वारा यज्ञार्थिन से प्रज्वलित की गयी। उस समय का करुणा-दृश्य देखकर विशिष्ट ऐसे वीतराग महापुरुष भी विचलित हो गये। शवदाह के अनन्तर सब ने सरयू में स्नानकर जलांजलि दी। अन्त्येष्टि कृत्य समाप्त हो जाने पर भरत ने कहा, 'पिता और राम से रहित अयोध्या मेरी दृष्टि में श्मशान नगरी है। मैं उसमें प्रवेश नहीं करूँगा।' उन्होंने सरयू तट पर ही एक तृण-कुटी में निवास करना आरंभ किया। दशाह के बाद वहीं उन्होंने पिता की त्रयोदशाह-क्रिया सम्पन्न की।

मृतककर्म समाप्त हो जाने पर मंत्रियों ने भरत से राज्यपद ग्रहण करने का अनुरोध किया। किन्तु उन्होंने अपने को राम का सेवक मात्र कहकर उसे अस्वीकार कर दिया। भरत ने राम को मनाने के लिए वन जाने का निश्चय किया। तैयारी पूरी हो जाने पर विशाल सेना के सहित मूनिगण, प्रजावर्ग तथा माताओं को साथ लेकर उन्होंने चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया। शृंगवेरपुर के निकट पहुँचकर गंगा में जलांजलि दी और वहीं डेरा पड़ गया।

इसकी सूचना निषादराज को मिली। उसे यह भाँपते देर न लगी कि वह रघुवंशियों की सेना है। उसने सोचा कि कदाचित् भरत अकंटक राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से राम के विरुद्ध सेना सजाकर आये हैं। किंतु उसके अनुभवी साथियों ने सलाह दी कि पहले भरत के मनोभावों का अध्ययन कर लिया जाय फिर तदनुकूल कार्यवाही करना उचित होगा। यह विचारकर निषादराज प्रचुर उपहार लेकर भरत की सेवा में उपस्थित हुआ और उनसे शृंगवेरपुर चलने की प्रार्थना की। परन्तु भरत सहमत नहीं हुए। उन्होंने भरद्वाजाश्रम का मार्ग पूछा। प्रस्थान करने के पूर्व वह भरत को उस इंगुदी वृक्ष के निकट ले गया, जिसके नीचे राम ने रात्रिवास किया था। तृणशैय्या के अवशेषों को देखकर भरत की आँखों में राम ने अंसू भर आये। साथ चलते हुए निषादराज ने पूछा, 'आप कहते हैं कि राम को आँसू भर आये। मैं माता का पाप दास्योदक से धोने जा रहा हूँ। राम को सेना सहित अयोध्या लौटा दूँगा, स्वयं वन चला जाऊँगा।'

गंगा तट पर पहुँचकर निषादराज ने पाँच सौ नावों पर सारी सेना और

समाज को चढ़ाया। उसके साथ भरत प्रयाग पहुँचे। भरत को अतिथिरूप में पाकर महर्षि भरद्वाज ने उनका राजोचित सत्कार किया। उनकी मिद्दि के प्रभाव से व्यवस्था के लिए ब्रह्मा, विश्वकर्मा तथा इन्द्र समाज-सहित वहाँ आ गये। अलौकिक सत्कार से अयोध्यावासी परम संतुष्ट हुए। भरत ने महर्षि भरद्वाज को सारा वृत्तान्त बताते हुए माता के कुकृत्य के लिए पश्चात्ताप किया। भरद्वाज बोले, 'माता का कोई दोष नहीं, सब विधि का विधान है।' फिर उन्होंने भरत से सेना और रानियों समेत आने का कारण पूछा। भरत बोले, 'मैं अपने साथ अभिषेक की सारी सामग्री लाया हूँ। राम को राजपद पर प्रतिष्ठित कर उन्हें सेना-सहित अयोध्या वापस भेज दूँगा और मैं वन को चला जाऊँगा।' प्रातः सेना लेकर भरत चित्रकूट को चले। वहाँ पहुँचने पर बहुत देर तक राम के आश्रम की खोज करते रहे। एक स्थान पर उन्हें क्षीण धूमरेखा आकाश में उठती हुई दिखायी पड़ी। कुछ आगे बढ़ने पर जात हुआ कि वह एकान्त में स्थित एक कुटी से निकल रही है। भरत को प्रतीत हो गया कि राम की पर्णकुटी वही है। अतः रथ तथा सेना को आगे योजन पीछे छोड़कर लक्ष्मण द्वारा लगाये गये सफल वृक्षों और लताओं को देखते हुए वे शत्रुघ्न सहित कुटी की ओर बढ़े।

निर्जन वन में अकस्मात् उत्पन्न कोलाहल से राम को यह पता लग गया कि कोई सेना आयी है। उन्होंने लक्ष्मण से उसकी टोह लेने को कहा। लक्ष्मण एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गये। वहाँ से सारी सेना साफ दिखायी पड़ती थी। लौटकर अग्रज से बोले, 'यह सेना रघुवंशियों की है। मेरा अनुमान है कि उसे भरत हमारे विरुद्ध संजाकर लाये हैं।' यह कहते-कहते उनका वीरदर्प उद्दीप्त हो उठा। वे बोले, 'मैं आज युद्धभूमि में भरत का वध करूँगा।' राम ने वीच ही में उन्हें रोकते हुए कहा, 'क्रुद्ध मत हो, भरत मुझसे मिलने के लिए आ रहे हैं, युद्ध करने नहीं।' ये बातें हो ही रही थीं कि भरत सामने आते हुए दिखायी पड़े। भाई को पर्णकुटी के सामने बैठा देखकर वे रोते हुए आगे बढ़े। उनका शरीर रोमांचित हो उठा। निकट आते-आते वे विहूल हो पृथ्वी पर गिर पड़े। राम ने दौड़कर उन्हें उठाया और गले लमा लिया। उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। भरत ने भाई को पिता के दिवंगत होने की सूचना दी। यह हृदयद्रावक संवाद पाकर राम संज्ञाशून्य हो पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर संभलकर उठे और मंदाकिनी तट पर जाकर बेर तथा इंगुदी के फलों से पिंडदान किया। वहाँ से लौटकर कुटी के द्वार पर आ पितृ-चरणों का स्मरणकर चारों भाई देर तक रोते रहे।

दूसरे दिन अवधावासियों तथा मुनियों की सभा लगी। राम को अयोध्या लौटाने के लिए विचार-विमर्श होने लगा। भरत ने आरंभ में ही अग्रज से निवेदन किया, 'मैं अभिषेक के लिए सारे द्रव्य लाया हूँ। आप राज्यग्रहण कर प्रजापालन के लिए अयोध्या लौट चलें। अंतकाल में पिता को मोह हो गया था, उसका मार्जन करें।' राम ने उत्तर में कहा, 'पिता के वचनों के रक्षार्थ मैं १४ वर्ष तक लक्ष्मण सहित वन में रहूँगा। तुम रघुकुल की मर्यादा निभाते हुए अयोध्या जाकर प्रजापालन

करो।' इस पर जाबालि ऋषि बोले, 'राम ! परोक्ष की चिता छोड़कर प्रत्यक्ष धर्म का पालन करना चाहिए।' राम ने कहा, 'मुनिवर ! पिता के द्वारा किये गये कर्म का मैं हनन न करूँगा। मुझे अधर्म में प्रवृत्त न करें।' इसका प्रत्याख्यान करते हुए जाबालि ने कहा 'जिसको जलांजलि दे दी उसकी वाणी का पालन करना व्यर्थ है।' इस विवाद को समाप्त करने के लिए वशिष्ठजी बोले, 'राम ! माता-पिता, वृद्ध और गुरु के वचन मान्य होते हैं। तुम मेरा कहना मानकर अयोध्या लौट चलो।' राम ने विनीत भाव से निवेदन किया 'गुरुवर ! मैं पिता के वचन का पालन करने के लिए प्रतिश्रुत हूँ।' भरत ने भाई का ढढ़ निश्चय देखकर आर्तस्वर में पुनः कहा, 'जबतक प्रभु कृपा नहीं करेंगे, मैं निराहार और निर्जल रहकर यहाँ सेवा में पड़ा रहूँगा।' राम उन्हें समझाते हुए बोले, 'भाई ! ऐसा क्यों कहते हो ? प्रायोपवेशन ब्राह्मणों का धर्म है, क्षत्रियों का नहीं। जीवित रहते मैं पिता के वचनों का उल्लंघन नहीं करूँगा और न अपने स्थान पर वनवास के निमित्त तुम्हारा प्रतिनिधित्व ही मुझे मान्य होगा। हमारा तुम्हारा इसी में कल्याण है कि दोनों स्वर्गस्थ पिता के वचनों का पालन करें।' रावणवध के इच्छुक वहाँ छद्मवेष में समुपस्थित देव-गंधर्व और ऋषियों ने राम के इन वाक्यों का सहर्ष अनुमोदन किया। फिर उन लोगों ने भरत को समझाते हुए कहा, 'वत्स ! कैकेयी के कृत्य को निमित्तमात्र समझो।' भरत ने अन्त में कहा, 'मैं चक्रवर्ती साम्राज्य का भार वहन करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। पृथ्वी-रक्षा का मुझमें किंचित् भी सामर्थ्य नहीं है।' इतना कहते-कहते उनका गला भर आया और वे राम के चरणों पर गिर पड़े। राम ने उन्हें गोद में बैठा लिया और बोले, 'भाई ! मेरी आज्ञा का पालन करो। अयोध्या लौट जाओ। गुरु वशिष्ठ और इन वृद्ध मंत्रियों से पूछकर राज्यकार्य करो। मेरी प्रतिज्ञा अचल है।' वशिष्ठजी ने व्यवस्था दी, 'राम ! अपनी पादुका भरत को दे दो। यही अपने प्रभाव से त्रैलोक्यन पालन करेगी।' राम ने भरत को चरणपीठ दे दिये। भरत ने उन्हें शिरोधार्य कर अयोध्या लौटना स्वीकार कर लिया।

भरत ने कुछ दिन ठहरकर समाज-सहित चित्रकूटस्थ मुनियों के आश्रमों का दर्शन किया, फिर भरद्वाजाश्रम तथा शृंगवेरपुर होते हुए वे अयोध्या लौट आये। माताओं को नगर में छोड़कर वे स्वयं नन्दिग्राम में कुटी बनाकर राम का स्मरण करते हुए कालयापन करने लगे। राम की पादुकाओं को सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर वे छत्र-चामर-व्यजनादि से उनकी पंचकाल सेवा में लीन रहते थे। प्रजा के सारे महत्वपूर्ण आवेदन पादुकाओं की सेवा में निवेदित होते थे। संदिग्ध विषयों में आकाशवाणी से व्यवस्था प्राप्त होती थी। आपत्तिकाल में स्मरण तथा स्तवन मात्र से पादुका सारे कष्ट दूर कर देती थी। उसके इस अप्रतिम प्रभाव की चर्चा तीतों लोकों में फैल गयी। अव्यवस्था तथा अराजकता के समर्थक रावण और वाणासुर को यह अच्छा न लगा। उन्होंने पादुकाहरण की योजना बनायी। दोनों वेष बदलकर रात के तीसरे पहर में नन्दिग्रामस्थ योगपीठ पर आये। किन्तु लोख प्रयास करने पर भी वे दोनों पादुकाओं को चोरी से उठाकर ले जाने में सफल न हो सके।

भरत के लीटने के पश्चात् अयोध्या के समीपवर्ती नन्दिग्राम तथा पालिग्राम के गोप-गोपियाँ गोपराज सुखित और मांगल्या के नेतृत्व में राम को मनाने उसी मार्ग से चित्रकूट गये। निषादराज और महर्षि भरद्वाज ने उनका यथोचित संत्कार किया। चित्रकूट पहुँचने पर सीता ने सब का भावपूर्ण आतिथ्य किया। उन्होंने अपनी नित्यसखियों का आह्वान कर उनके द्वारा अतिथियों के भोजन आवासादि की दिव्य व्यवस्था करायी। राम के आग्रह से सुखित ने दूत भेजकर शेष गोप-परिवारों को भी पशुओं सहित चित्रकूट बुला लिया। वहाँ गोचारण की पर्याप्ति सुविधा थी। इसलिए वे सभी चिरकाल तक ठहरे रहे। राम ने चित्रकूट में गोपियों के साथ अनेक रास किये। स्फटिक शिला पर सीता और सहजा के साथ उनकी अंतरंग लीला चलती रही। इसी कारण चित्रकूट की गणना राम के तीन प्रमुख विहार स्थलों में होने लगी।<sup>१</sup> चित्रकूट-वास के समय राम के दर्शनार्थ दूर-दूर से ऋषि-मुनि आते रहे। एक बार सीता और लक्ष्मण सहित वे अत्रि-आश्रम पर गये। मुनियों को जल का कष्ट था। अतः उनकी इच्छानुसार राम ने मंदाकिनी के रूप में व्योमगंगा की अवतारणा की।

इस प्रकार दक्षिणापथ में राम का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ते देखकर उसे निरस्त करने के लिए रावण अध्यात्म-शक्ति का उपार्जन करने में जुट गया। शिव को प्रसन्न करने के लिए उसने नर्मदा-तट पर धोर तपस्या की। उसने उज्जैन में महाकालेश्वर, काशी में विश्वनाथ, गंगासागर-संगम पर हाटकेश्वर तथा कैलाश पर्वत पर जाकर पावंतीनाथ की आराधना की। भूमंडल के विभिन्न प्रदेशों में धूम-धूमकर उसने निविड़ कान्तारों में वास करते हुए कठिन तपश्चर्या की। कालान्तर में शिव की कृपा से वह सभी शास्त्रों में पारंगत हो वेदाचार्य के रूप में प्रसिद्ध हो गया। विद्याबल की भाँति बाहुबल में भी वह अप्रतिभ हो गया। उस मदोन्मत्त ने यक्षराज कुबेर को भगाकर उनकी राजधानी लंका पर अधिकार कर लिया। तब पुलस्त्य ऋषि ने विधिवत् अभिषेककर उसे लंकापुरी का राजा बना दिया। इसके उपलक्ष्य में रावण ने व्योमगंगा के जल से शिव को अभिषेक कराया और उनकी पूजा में अनेक बार अपने सिर काट-काटकर चढ़ाये। अवढरदानी शिव ने वरदान देकर ब्रह्मादि देवों को उसका आज्ञानुवर्ती बना दिया। वरदर्पित हो उसने त्रैलोक्य-विजय का अभियान किया। पृथ्वी के सारे देश जीतकर उसने वहाँ अपने सहधर्मी राक्षसों को बसा दिया।

इसी विजय-यात्रा में वह एक बार नर्मदा तीर पर गया। संयोगवश उस समय वहाँ सहस्रार्जुन नामक महापराक्रमी राजा भी पड़ाव डाले पड़ा था। उसने जल-क्रीड़ा करते हुए अपनी विशाल भुजाओं से नदी का प्रवाह रोक दिया। इसके फलस्वरूप रावण की छावनी जलप्लावित हो गयी। उसके भोजन, पान तथा पूजा

१. राम की रासलीला के, वरीयता क्रम से, तीन केन्द्र माने जाते हैं—प्रमोदबन महारास, चित्रकूट मध्यरास और लंका अधम रास की स्थली है।

की सारी सामग्री डूब गयी। रावण ने अपने सैनिकों को वहाँ से सहस्रार्जुन को शीघ्र हटाने का आदेश दिया। सहस्रार्जुन तथा रावण की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। रावण की सेना पराजित हुई और वह बन्दी बनाकर लोहे के पिंजड़े में डाल दिया गया। उसके कुंभकर्णादि सेनाध्यक्ष रणक्षेत्र से भाग गये। उन्होंने पुलस्त्य ऋषि से सारा समाचार कहा। रावण को छुड़ाने के लिए पुलस्त्य स्वयं महिष्मतीपुरी गये और सहस्रार्जुन से अपने दुर्विनीत पौत्र को प्राणदान देने का अनुरोध किया। सहस्रार्जुन ने ऋषि के कहने पर उसे मुक्त कर दिया।

रावण को इस अपमान के कारण बड़ी ग़लानि हुई। महर्षि पुलस्त्य ने सांत्वना देते हुए उससे कहा, 'चिता मत करो। तुम कालान्तर में स्यातिलाभ करोगे। किन्तु इसके लिए कठोर तप अपेक्षित है। शिवाराधन से अभीष्ट सिद्ध होगा।' पितामह के आदेशानुसार वह शिवार्चन के लिए कैलाश गया। वहाँ से दिव्यलिंग लाकर उसने लंका में स्थापित किया। शिव प्रसन्न हो गये। उनकी कृपा से उसने पंचतत्त्वों के सहित ब्रह्मा और इन्द्र को भी वश में कर लिया। अब केवल विष्णु बच रहे। रावण ने अपनी सारी शक्ति उनके प्रभाव के उन्मूलन में लगाने का संकल्प किया। उसके द्वारा प्रोत्साहित हो मेघनाद ने वैष्णवधर्म का सर्वनाश कर विश्व-विजय का बीड़ा उठाया। इस कार्य में सहायता के लिए सुलोचना ने पिता का स्मरण किया। शेष ने उपस्थित होकर जामाता को इन्द्र-विजय का वरदान दिया। मेघनाद ने देवलोक पर आक्रमण कर दिया। उसके आतंक से इन्द्र मरुदगणों के साथ भागकर गिर-कंदराथों में छिप गये, असंख्य देवताओं का वधकर वह देवस्त्रियों और देवकन्याओं को बंदी बना लंका ले आया। इसी प्रकार किन्नरों, यज्ञों और मनुष्यों को भी हराकर त्रैलोक्य-विजयी बन वह सेना-सहित लंका लौट आया। शक्तिमद से उन्मत्त राक्षसों के उत्पात से विश्व थर-थर काँपने लगा।

राम को अत्रि आश्रम पर आया जानकर दंडकारण्यवासी सुतीक्ष्ण, उद्वालक, विश्वामित्र, च्यवन, दुर्वासा आदि मुनि वहाँ गये। उन्होंने राक्षसों द्वारा किये गये अत्याचारों की करुण-नाथा सुनाते हुए राम से कहा, 'रावण द्वारा भेजे गये नृशंस राक्षस मुनियों को खा जाते हैं और उनके बालकों को चुराकर मार डालते हैं। इससे हमारे आश्रम सूने हो चले हैं। पति और पुत्र के शोक में स्त्रियाँ तथा माताएँ विलख रही हैं। तपस्वियों की हड्डियों से भूमि पट गयी है। दक्षिणापथ प्रायः ब्राह्मणशून्य हो गया है। यज्ञों में राक्षस अनेक प्रकार से विज्ञ उपस्थित करते हैं। मल और मूत्र की वर्षा कर उसे अपवित्र करते हैं, यज्ञगिन बुझा देते हैं। स्त्रियों तथा कन्याओं को बलात् भ्रष्ट करते हैं और देवालयों को नष्ट कर डालते हैं। ये सारे अत्याचार लंका-बलात् भ्रष्ट करते हैं। उसके वध से ही हमारा धर्म और जीवन रक्षित पति रावण के संकेत से हो रहे हैं। हम आपके शरणागत हैं, रक्षा करें।' हो सकता है। इसके लिए आप ही सक्षम हैं। हम आपके शरणागत हैं, रक्षा करें।' मुनिगण यह निवेदन कर ही रहे थे कि उसी समय वहाँ इन्द्र, मरुदगण, कुबेर, ब्रह्मादि देवता भी आ गये और अपनी अकथनीय विपत्ति का वर्णन करने लगे। राम ब्रह्मादि देवता भी आ गये और अपनी अकथनीय विपत्ति का वर्णन करने लगे। राम ने सबको आश्वासन देकर विदा किया। आश्रम से प्रस्थान करते समय अनुसूया ने

योग प्रभाव से सीता को दिव्य वस्त्राभूषण तथा अंगरागादि सौन्दर्य प्रसाधनों से अलंकृत किया। इसके पश्चात् वे कुछ दिन चित्रकूट और ठहरे। इस बीच मृगया करते समय राक्षसों ने उन पर अनेक आक्रमण किये, किन्तु अपने अतुल बल से राम ने शत्रुओं के सारे प्रहार प्रभावहीन कर दिये।

चित्रकूट से पंचवटी जाते हुए उनकी विराघ नामक भयानक राक्षस से भेट हो गयी। राम ने उसका संहारकर उस प्रदेश के निवासी मुनियों की चिता दूर की। उधर चित्रकूट में राम की दीघंकाल तक अनुपस्थिति से व्याकुल गोप-गोपी उन्हें ढूँढते हुए अत्रि-आश्रम पर गये। मर्हषि अत्रि ने उन्हें राम का यह संदेश बताकर लौटा दिया कि वे रावणवध के पूर्व उनका दर्शन नहीं कर सकेंगे। हताश हो सारा गोप-समाज अवध प्रदेशस्थ व्रजभूमि को लौट गया।

राक्षसबहुल प्रदेश में यात्रा करते हुए राम आगे चले। उनके पीछे सीता थीं फिर लक्ष्मण। अगस्त्य ऋषि के आश्रम पर पहुँचने पर उनका बड़ा स्वागत हुआ। ऋषि-पत्नी लोपामुद्रा ने सीता की यथोचित अभ्यर्थना की। अगस्त्य ऋषि ने उनके निवास के लिए गोदावरी तीर पर स्थित पंचवटी नामक स्थान को सर्वथा उपयुक्त बताया। उनके निर्देशानुसार राम भाई और स्त्री-सहित घने जंगलों को पार करते हुए आगे बढ़े। मार्ग में राक्षसों द्वारा मारे गये मुनियों की अस्थियों का विशाल समूह देखकर वे कहणाभिभूत हो उठे। पंचवटी पहुँचकर राम वहाँ की प्राकृतिक शोभा देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने पर्णकुटी बनायी और अपने १४ वर्षीय वनवास के साढ़े बारह वर्ष वहीं व्यतीत किये। उसके समीप ही अंबिकेश महादेव का मठ था। पंचवटी-प्रवासकाल में वे इस दिव्यलिंग की निरन्तर पूजा करते रहे।

रावण के भाई खर, दूषण और त्रिशिरा जनस्थान में सेना-सहित निवास करते थे। उनके अत्याचारों से सारा मुनिसमाज अहर्निश आतंकित रहता था। एक दिन रावण की बहन शूर्पणखा कामभाव से प्रेरित हो अत्यंत सुंदर वेष धारणकर राम के समीप आयी। राम ने पूछा ‘देवि! इस विजन वन में तुम अकेली क्यों घूम रही हो?’ वह बोली, तुम्हारे सौन्दर्य पर आसक्त होकर रमण करने की इच्छा से। ‘राम ने कहा, ‘यदि तुम अत्यंत कामारूढ़ हो तो मेरे भाई से संपर्क स्थापित करो। मैं तो एक पत्नीव्रत हूँ।’ यह सुनकर वह लक्ष्मण के पास गयी, किन्तु उन्होंने उसे यह कहकर निराश लौटा दिया कि तुम पहले मेरे बड़े भाई से विवाह का प्रस्ताव कर चुकी हो, इसलिए मेरे लिए अग्राह्य हो। लक्ष्मण की सिद्धान्तवादिता से निराश हो वह पुनः राम के पास गयी। उसकी विवेकशून्य मुग्धता देखकर जानकी हँस पड़ी। इससे अपने को अपमानित अनुभव कर वह बिगड़कर बोली, ‘तुझे इसका दंड अभी देती हूँ।’ यह कहकर वह कराल रूप धारणकर सीता पर झपट पड़ी। लक्ष्मण को यह समझते देर न लगी कि वह राक्षसी है। राम के संकेत से उन्होंने खड़ग निकालकर उसके नाक-कान काट डाले। रक्त बहाती हुई वह आकाश में उड़ी। अपने भाई खर-दूषण के पास जाकर उसने इस अपमान का बदला लेने के लिए अनुरोध किया। उसकी प्रेरणा से तीनों भाई सेना सजाकर चढ़ आये। राम ने लक्ष्मण से कहा, ‘तुम

सीता को लेकर कुटी में चले जाओ। मैं इनसे अकेले निपट लूँगा।' इतने में राक्षस-सेना कुटी के समीप आ गयी। राम ने घमासान युद्ध करके तीनों को धराशायी कर दिया। इसके बाद शूर्पणखा लंकापुरी गयी। उस समय संध्या हो चुकी थी। उसने रावण के सामने करुण-क्रदंन करते हुए सारा वृत्तान्त निवेदित किया, फिर बोलीं, 'तुम कैसे जगदविजयी हो; जिसके भाई एक सामान्य तापस द्वारा मारे जायें और बहन इस प्रकार कुरुप की जाय। यदि इसका बदला न लिया गया तो मैं जहर पीकर प्राण त्याग दूँगी। मेरा अपमान करने वाले राम के साथ एक सुंदरी स्त्री है। उसने मेरी हँसी की है। उसे हर लाओ तभी मेरा संताप मिटेगा।'

शूर्पणखा का परिवेदन सुनकर रावण जल उठा। कुमति के रूप में सीता उसके हृदय में प्रविष्ट कर गयीं। उसने निश्चय कर लिया कि इस अपमान का प्रतिशोध मात्र स्त्रीहरण है। भाइयों के मारे जाने का संवाद पांकर उसे अपार दुःख हुआ। उसने उन तीनों की धृतोदक-क्रिया करके मारीच के घर जाकर एकांत में मंत्रणा की। उसके अनुरोध पर मारीच स्वर्णमृग का रूप धारण करने पर सहमत हो गया। रावण बोला, 'तुम्हारा पीछा करते-करते जब राम दूर निकल जायेंगे तो मैं सीता को हर लाऊँगा। फिर उसे डरा-धमकाकर अपनी अंकशायिनी बना लूँगा। साधु परकार्य सिद्धि के लिए आत्मविनाश करते हैं, तुम मेरा इतना उपकार करो।' इसके पश्चात् शीघ्र ही रावण मारीच को लेकर पंचवटी गया। पंचवटी से शोड़ी दूर पर रथ छोड़कर उसने ब्राह्मण का रूप धारण कर लिया और मारीच को स्वर्णमृग का रूप धरकर आश्रम के सामने विचरने के लिए भेज दिया।

उस समय दिन का तीसरा पहर था। रोम, सीता और लक्ष्मण तीनों कुटी में विश्राम कर रहे थे। सीता की दृष्टि अक्समात् स्वर्णमृग पर पड़ी। वे पति से बोलीं, 'देखिए इसका रंग कितना सुंदर है, इस दिव्य मृग की स्वर्णिम त्वचा से मैं कंचुकी बनाऊँगी। इसका मांस भी स्वादिष्ट होगा। वह हमारे भोजन के काम आयेगा। सोंग आपके हाथों में शोभित होगी।' राम बोले, 'प्रिये! यह मायामृग प्रतीत होता है। जनस्थान में अनेक राक्षस छद्मवेष में घूमते रहते हैं। अभी कल हमने रावण की बहन को कुरुप किया है। हो-न-हो उसीका बदला लेने के लिए कोई राक्षस इस वेष में रावण द्वारा भेजा गया है। यहाँ का सारा वातावरण अत्यंत संदिग्ध है। हम किसी चीजें पर विश्वास नहीं कर सकते। राजपुत्री! समय की प्रतीक्षा करो। तुमने साम्राज्य का वैभव छोड़ा। इस क्षुद्र लोभ का भी संवरण करो।' इस प्रसंग में उन्होंने सीता को छद्मवेषधारी राक्षस द्वारा हरी गयी एक सुंदरी रानी की कथा सुनायी। किन्तु सीता अपने हठ पर ढढ़ रहीं। राम भवितव्यता को अमिट मान लक्ष्मण पर सीता की रक्षा का भार छोड़कर मृग के पीछे चले। उन्होंने जाते समय लक्ष्मण पर सीता की रक्षा का भार छोड़कर मृग के पीछे चले। उन्होंने जाते समय भाई को स्पष्ट आदेश दिया कि जब तक मैं न लौटूँ, आश्रम से बाहर न जाना। राम मृग का पीछा करते-करते बहुत दूर निकल गये। तब अवसर पाकर वाण छोड़ा। वह मृग का पीछा करते-करते बहुत दूर निकल गये। तब अवसर पाकर वाण छोड़ा। वह शब्द सुनकर सीता बहुत घबड़ा गयीं। उन्होंने पति पर विपत्ति की आशंका यह शब्द सुनकर सीता बहुत घबड़ा गयीं। उन्होंने पति पर विपत्ति की आशंका

करते हुए लक्ष्मण को तत्काल उनकी सहायता के लिए जाने को कहा। लक्ष्मण बोले, 'यह शब्द प्रवचनापूर्ण है। आर्य ने मुझे तुम्हारे रक्षार्थ यहाँ नियुक्त किया है। मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता। यह विश्वासघात होगा।' सीता कुद्ध होकर बोलीं, 'तुम राज्यलक्ष्मी के लोलुप हो।' यह सुनकर लक्ष्मण रोते हुए बोले, 'देवि! काल-विषय से तुम ऐसा कह रही हो। मैं राम को पिता और तुम्हें माता मानता हूँ। तुम्हारे आक्षेप से विद्ध होकर मैं जा रहा हूँ किंतु धनुष-कोटि से एक रेखा सींचे जाता हूँ। इसे पार न करना।'

इसके अनन्तर उन्होंने सीता की रक्षा के लिए पंचवनस्पतियों एवं वनदेवी को नियुक्त किया। लक्ष्मण के आँखों से ओझल होते ही रावण आश्रम के द्वार पर आ गया। उसे देखते ही वनस्पतियाँ हिलने लगीं। यज्ञाग्नि अकस्मात् प्रज्वलित हो उठी। रावण ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु वह लक्ष्मण-रेखा पार न कर सका। फिर उठी 'देवि! दीन ब्राह्मण को भिक्षा दे दो।' रेखा से बाहर आने के पूर्व सीता का बोला 'देवि! दीन ब्राह्मण को भिक्षा दे दो।' रेखा से बाहर आने के पूर्व सीता का मूलस्वरूप गार्हपत्य अग्नि में प्रविष्ट कर गया। फिर मानुषीरूप में वे लीलार्थ रेखा पार कर भिक्षा देने रावण के सामने चली गयीं। रावण ने अपना भयानक रूप प्रकट करके सीता को उठाकर अपने कंधों पर बिठा लिया और आकाशमार्ग में लंकाभिमुख हुआ। उस दिन माघ शुक्ला चतुर्दशी थी। राक्षसगृहीता सीता के रुदन का शब्द हुआ। उस दिन माघ शुक्ला चतुर्दशी थी। राक्षसगृहीता सीता के रुदन का शब्द मार्गस्थ जटायु के कानों में पड़ा। उसने पहचान लिया कि वह अवश्य उनके मित्र अयोध्या-नरेश दशरथ की कुलवधु है। उसने रावण को रोका और बड़ी देर तक उससे युद्ध करता रहा। अंततः दोनों पंखों के कट जाने से वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। रावण सीता को लेकर लंका चला गया। राम के आने तक पक्षिराज जटायु अपना प्राण संजोये रहा।

उधर मारीचवध के अनन्तर राम कुटी की ओर लौट ही रहे थे कि उन्हें लक्ष्मण सामने आते दिखायी दिये। भाई द्वारा स्पष्ट शब्दों में मना करने पर भी सीता को कुटी में अकेली छोड़कर आने का कारण पूछने पर लक्ष्मण ने सीता के तीव्र अन्तरोध का वृत्तान्त कह सुनाया। राम सशंकित हो उठे। दोनों भाई व्यग्रचित हो आश्रम की ओर चले। निकट आने पर उन्हें वहाँ के लता-वृक्ष और पक्षी रोते एवं पश अमंगल मूचक शब्द करते दिखायी दिये। अप्रत्याशित अकल्याण की कल्पना मात्र से राम का शरीर जलने लगा। उन्हें लगा कि अवश्य ही आश्रम में सीता नहीं हैं। आगे बढ़ने पर कुटी को सीतारहित पाकर वे मूर्छित होकर गिर पड़े। लक्ष्मण ने गोदावरी से ठंडा पानी लाकर उनका मुख सींचा। भाई की विरह चेष्टाएँ-देख और विलाप सुनकर उनका हृदय फटने लगा। फिर धैर्यधारण कर वे बोले, 'नाथ! बताइये हमें आगे क्या करना है? तुम्हारी सेवा में यह प्राण अर्पित है।' इस घटना के बाद राम का मन उस स्थान से उच्च गया। पर्णकुटी त्यागकर दोनों भाई सीता को खोजते हुए आगे बढ़े।

गोदावरी तीर पर सीता के पदचिह्नों को देख राम अचेत होकर गिर पड़े। लक्ष्मण ने उठाकर उन्हें ढाढ़स बैंधाया। कुछ दूर चलने पर उन्होंने मार्ग में जटायु

को निश्चेष्ट पड़ा देखा । उनके समीप जाने पर वह बोला 'राम ! तुम्हें देखने के लिए ही मैं अवतक प्राण रक्षित किये रहा । सीता को हरकर-लिये जाते हुए रावण को मैंने रोका था । उसीसे युद्ध करते-करते मेरी यह दशा हुई ।'

इतना कहकर उसने प्राणत्याग दिया । राम ने देवासुर संग्राम तथा मृगया में सहायक अपने पिता के अभिन्न मित्र की अपने हाथों दाह-किया करके जलांजलि दी ।

जटायु के मुख से रावण द्वारा सीता के हरे जाने का निश्चित समाचार पाकर राम का आक्रोश दीप हो उठा । वे लक्ष्मण से बोले, 'यदि सीता जीवित है तो मैं जीवन धारण करूँगा अन्यथा चराचर जगत् को भस्म कर डालूँगा ।' यह सुनकर देवता भय से काँपने लगे । लक्ष्मण ने समझाया, 'प्रभो ! आप विश्वरक्षक हैं । रावण को मारकर त्रिलोकी को सुखी करें ।' इसके बाद घने वन पार करते हुए दोनों भाई शापित कबंध के पास पहुँचे । राम ने अल्पप्रयास से ही उस मानवभक्षी का वध करके सद्गति प्रदान की । मरते समय उसने कहा, 'पतितपावन ! समुद्र के बीच में स्थित लंकापुरी रावण की राजधानी है । उसको जीतने में बालि का भाई सुग्रीव सहायक होगा । यदि वह चिरकांकित किञ्चिक्धा का राज्य और तारा सुन्दरी को पा जाये तो प्रत्युपकार में सीतान्वेषण की व्यवस्था कर देगा । उसके अधीन असंख्य वानर-सेना है ।' इसे दैवी प्रेरणा मानकर दोनों भाई ऋष्यमूक की ओर चले ।

मार्ग में ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और दुर्गम कंदराओं से होते हुए वे पंपासर पहुँचे । सरोवर में स्नानकर कुछ देर विश्राम किया । वहाँ पक्षीयुग्मों को क्रीड़ा करते देखकर राम व्याकुल हो उठे । वे बड़ी देर तक सरोवर के तट पर बैठे प्रलाप करते रहे । स्वस्थ होने पर उसके किनारे स्थित मुनियों के आश्रमों में जाकर उन्होंने विज्ञानकथाएँ सुनीं । संध्या समय वहीं ठहर गये । रात में बहुत देरतक लक्ष्मण क्लांत एवं दुःखित भाई का चरण दबाते रहे । वियोगी राम को भाई के शील एवं निष्ठापूर्ण सेवा से अपार सन्तोष हुआ ।

पंपासर से ऋष्यमूक जाते हुए राम परमभक्ता शबरी नामक भीलनी के घर गये । रास्ते में मुनियों ने उनका आतिथ्य करना चाहा किंतु वे रुके नहीं । शबरी उद्विग्नतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी । उत्कठा से कभी भीतर जाती, कभी बाहर आती । पदार्पण करते ही उसने दोनों भाइयों का पाद्य, अर्ध्य, आचमन, स्नान, मधुपर्क आदि से स्वागत किया । राम की सेवा के निमित्त उसने अनेक प्रकार के फल और साग पृथक्-पृथक् दोनों में सजाये थे । उनमें से परीक्षा के लिए उसने कुछ स्वयं चखकर रखे थे । राम ने मुक्त-कंठ से प्रशंसा करते हुए उन्हें खाया । शबरी भक्तवत्सल के अचित्य अनुग्रह से अभिभूत हो गयी । आराध्यदेव को जूठे फल खिलाने से उसे बड़ी ग़लानि हुई । राम ने उसका मनस्ताप दूर करने के लिए कहा, 'देवि ! तुम तीर्थपावनी हो । आगामी कल्प में तुम मुझे प्रमोदवन में प्राप्त करोगी । तब तक यहीं तप करते हुए भक्तियुक्त शरीर धारण करो ।' यह कहकर चलते हुए उसने उन्हें सादर ताम्बूल अर्पित किया ।

मुनियों को राम का यह आचरण अच्छा नहीं लगा । वे आपस में कहने लगे,

‘आश्चर्य है ! राम ने हम यज्ञव्रती मुनियों की उपेक्षाकर मंदवृद्धि एवं दुराचारिणी भीलिनी का आतिथ्य ग्रहण किया । वडों की वुद्धि उल्टी होती है ।’ इस प्रकार उन लोगों ने शबरी और राम दोनों की भरपेट निन्दा की । दैवयोग से इस निराधार आक्षेपजनित पाप का दंड उन्हें तत्काल भोगना पड़ा । सारे आश्रमों की यज्ञाग्नि अकस्मात् बुझ गयी, नदी का जल रक्तमय हो गया । हव्य-सामग्री कीड़ों से भर गयी । इससे उनके स्नान-यज्ञादि कर्म बन्द हो गये । धर्मनाश का भय उपस्थित हो गया ।

इसी समय महर्षि अगस्त्य का उघर आना हुआ । मुनियों ने अपनी दुर्घटस्था उनसे कह मुनायी । अगस्त्य बोले, ‘ब्राह्मणो ! तुम पापकर्म से तेजोहीन हो गये हो । रामावतार लोकमंगल के लिए हुआ है । वे ही यज्ञात्मा हैं, यज्ञभुक् हैं । अज्ञानवश तुम उन्हें पहचान नहीं सके । उन्हीं की शरण में जाने से इस कष्ट से निवृत्ति मिल सकती है ।’

अगस्त्य के निर्देशानुकूल राम को ढूँढते हुए मुनि लोग ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे । वहाँ उनकी दोनों भाइयों से भेंट हुई । मुनियों ने अत्यन्त आर्तस्वर में क्षमायाचना की । राम ने कहा, ‘मेरे लिए भक्तों का अपमान असह्य है । महायोगिनी शबरी का तुमलोगों ने तिरस्कार किया है । वह सर्वदेवप्रणम्य है । उसी की आराधना करने से तुम्हारा पाप कटेगा ।’ मुनि लोग वहाँ से अगस्त्य ऋषि के साथ शबरी के घर गये और उससे अनुनय-विनयपूर्ण शब्दों में निवेदन किया, ‘माता ! ब्राह्मणों का पाप क्षमा करो । अपना पैर धोकर हमारे आश्रम की नदी को पवित्र करो ।’ शबरी बोली, ‘ब्राह्मणदेव ! मैं आपके जृठनयोग्य भी नहीं हूँ ।’ यह कहकर वह महर्षि अगस्त्य के पैरों पर गिर पड़ी । अगस्त्य के अनुरोध से वह मुनियों के आश्रम पर गयी । उसके आगमन मात्र से सारा आश्रम पवित्र हो गया । मुनियों के धर्मकार्य पूर्ववत् चलने लगे ।

ऋष्यमूक गिरि पर विचरण करते हुए एक दिन राम-लक्ष्मण ने सुग्रीव और हनुमान के साथ नलनीलादि प्रमुख वानरों को बैठे देखा । उस समय वे बालि-वध के लिए मंत्रणारत थे । सुग्रीव बालि के भय से ही उस अभिशास पर्वत पर निवास करता था । इसलिए उसे दो अपरिचित धनुर्धरों को देखकर शंका हुई । उसने हनुमान को उनका परिचय प्राप्त करने के लिए भेजा ।

राम के समक्ष उपस्थित होकर वे बोले, ‘मैं वायुपुत्र हनुमान हूँ । सुग्रीव ने मुझे आपके पास यह जानने के लिए भेजा है कि आपलोग कौन हैं और किस उद्देश्य से यहाँ पधारे हैं ? मैं मनसा-वाचा-कर्मणा आपका अनुगत हूँ ।’ राम उन्हें देखते ही प्रेम-विह्वल हो गये और गदगद स्वर में बोले, ‘हे महाबली ! आओ तुम्हें आँलिंगन करूँ ।’ यह कहकर उन्होंने हनुमान को गले लगा लिया । फिर कहा, ‘मैं अयोध्यानरेश दशरथ का पुत्र राम हूँ । मेरी स्त्री राक्षसराज रावणद्वारा हर ली गयी है । उसी को खोजते हुए धूम रहा हूँ ।’ हनुमान ने राम से कहा, ‘भाई के अत्याचारों से व्रत सुग्रीव आपकी सहायता करना चाहता है । उसके पास वानरों की विशाल सेना है ।

उससे मित्रता कर लीजिए।' राम ने इसके उत्तर में कहा, 'मैं भी सुग्रीव से मैत्री कर उसका उपकार करना चाहता हूँ।' हनुमान बोले, 'भगवन् ! आप सर्वसमर्थ हैं, पूर्णकाम हैं। आपको सहायक की आवश्यकता नहीं है। फिर भी मैं सुग्रीव को बुलाये लाता हूँ।' यह कहकर वे सुग्रीव के पास गये।

वह प्रतीक्षा कर ही रहा था, तुरन्त मंत्रियों-सहित साथ चल पड़ा। राम के सम्मुख उपस्थित होकर सबने पृथक्-पृथक् दंड प्रणाम किये। हनुमान ने राम से सुग्रीव की मैत्री करायी फिर बोले, 'सुग्रीव ! संसार में जिसका दास्य दुर्लभ है, उसकी मित्रता तुझे अनायास प्राप्त हो गयी है।' सुग्रीव ने कृतकृत्य होकर कहा, 'प्रभो ! अब अपने स्वरूप से विश्व को आनन्दपूर्ण और चरित से दिशाओं को ज्योतिर्मय कीजिए।' इसके पश्चात् उसने सीता के आभूषण लाकर राम को दिये। उन्हें देखते ही राम व्याकुल हो गये। कंकण, केयूर और ग्रैवेयक को बारी-बारी से संबोधन कर वे देर तक विलाप करते रहे। सुग्रीव ने सांत्वना प्रदान करते हुए कहा, 'जानकी के कारण ही रावण की मृत्यु लिखी है। इसीलिए उस पापी ने उनका हरण किया है। आप घबराएँ नहीं। मैं असंख्य वानरों को भेजकर उनका संधान कराऊँगा और धर्म-नाशक रावण के वध में सर्वप्रकारेण सहायक होऊँगा।' उसके इन उत्साहवर्धक शब्दों को सुनकर राम बोले, 'जानकी को एक-एक क्षण युग के समान बीत रहा होगा। इसलिए शीघ्रता करो। मैं बालि का वध करके तुझे निरापद कर दूँगा।'

राम के इस प्रकार आश्वासन देने के बाद सुग्रीव ने मन-ही-मन सोचा, 'ये असामान्य सामर्थ्यवान् जान पड़ते हैं किन्तु मर्त्यशरीर होने से शंका होती है। इस हेतु परीक्षा लेने के बाद ही इनकी सहायता करना उचित होगा।' यह विचारकर उसने राम से कहा, 'सामने ताड़ के सात वृक्ष हैं, इन्हें जो एक बाण से काटकर गिरा देगा वही बालि-वध में सक्षम होगा।' राम ने वक्ररेखा में स्थित उन सातों ताड़-वृक्षों को एक ही बाण में धराशायी कर दिया और उनके मूल में रहनेवाले सर्पों को भी मार डाला। इसके अनन्तर सुग्रीव ने दुंदुभि नामक दैत्य की हड्डियाँ दिखाते हुए राम से कहा, 'हिमालय की भाँति विशदाकार इस अस्थि-पंजर का उद्धार कीजिए।' राम ने बायें हाथ से धनुषकोटि द्वारा उसे उठाकर आकाश में फेंक दिया। इन दोनों परीक्षाओं में राम को खरा उत्तरते देखकर सुग्रीव को उनकी दैवीशक्ति पर पूरा विश्वास हो गया। बालि से प्रत्यक्ष संघर्ष में विजय-प्राप्ति की आशा लिये हुए वह प्रसन्न मन अपने पर्वतीय प्रवास स्थान को छला गया।

दूसरे दिन बालि के प्रासाद के सामने जाकर सुग्रीव उसे द्वंद्युद्ध के लिए ललकारने लगा। बालि पहले तो भीरुचित्त छोटे भाई की मूर्खता पर हँसा, किन्तु उसके बार-बार आह्वान करने पर बद्धकक्ष हो बाहर निकला। दोनों में कुछ देर तक घोर युद्ध हुआ। गदा, शक्ति, वृक्षादि का खुलकर प्रयोग हुआ। अंत में मुष्ठिका युद्ध होने लगा! बालि के घातक प्रहार से सुग्रीव बुरो तरह घायल हो गया। वह खून बहाते भागता हुआ राम के पास आकर बोला, 'मित्र ! तुमने धोखा दिया। किसी प्रकार प्राण बचाकर आया हूँ। मैं इसी डर से भागा-भागा फिरता था। तुम्हारे

बल पर ही पुनः भिड़ने गया। उसका फल पा गया। राम ने धायल सुग्रीव का शरीर हाथ से सहलाया। उनके स्पर्शमात्र से उसकी सारी व्यथा दूर हो गयी। सुग्रीव के स्वस्थ होने पर राम ने कहा, 'तुम दोनों भाई एक ही आकृति के हो। इसलिए मैं दुविधा में पड़ गया कि संधान करने पर वाण कहीं तुम्हें ही न लग जाय और मैं मित्रवध के पाप का भागी बनूँ। एक बार तुम फिर जाकर बालि से भिड़ो। अबकी बार उसका अवश्य प्राणान्त कर दूँगा।' यह कहकर राम ने पहचान के लिए उसके गले में फूलों की माला पहना दी।

राम के द्वारा प्रोत्साहित सुग्रीव पुनः बालि से युद्ध करने गया और राजद्वार पर जाकर गर्जने लगा। बालि ने कहा, 'अबकी बार इस दुष्ट को जीवित नहीं छोड़ूँगा। प्रतीत होता है कि सी सबल का सहारा पा गया है।' तारा को अनागत भविष्य की छाया प्रत्यक्ष दिखायी देने लगी। उसने पति को रोकना चाहा। किंतु वह बलदृप्ति, स्त्री के चेतावनीपूर्ण शब्दों की अवहेलना कर, युद्ध-क्षेत्र में जा सुग्रीव से भिड़ गया। राम ने लक्ष्यकर वाण छोड़ दिया। वह बालि के हृदय में विध गया जिससे अचेत हो वह महापराक्रमी पृथ्वी पर गिर पड़ा। चतुर्दिक् हाहाकार मच गया। राम भी उसे देखने गये। अन्तिम साँसें चल रही थीं। स्वार्थप्रेरित हो उसे निरपराध मारने के कारण राम मन-ही-मन बहुत दुःखी हुए। राम को सामने खड़ा देखकर बालि ने उनसे सुग्रीव के साथ मैत्री करने का कारण पूछा। राम ने कहा, 'मेरी पत्नी को रावण हर ले गया है। मैं उसके वध में सहायक व्यक्ति की खोज में था। यही हमारी सुग्रीव से मैत्री का हेतु है और तुम्हारे वध का भी।' बालि बोला, 'इतने छोटे से काम के लिए आपने सुग्रीव से मिलकर मेरा वध किया। मैं रावण को कक्ष में दबाकर स्त्रियों के मनोरंजन के लिए यहाँ ले आया था। आपकी आज्ञा पाकर उसे अनायास पकड़ लाता।' इतना कहते-कहते उसकी वृत्तियाँ रामपद में लीन हो गयीं। राम का चरणस्पर्श करते हुए शरीर त्यागकर उसने योगिदुर्लभ गति प्राप्त की। राम ने सुग्रीव को किञ्चिक्धा का राजा बनाकर अंगद को युवराज पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

वर्षागम हो चुका था। अतः चातुर्मास व्यतीत करने के लिए राम भाई सहित प्रवर्षण पर्वत पर चले गये। वहाँ की प्राकृतिक शोभा सीता के वियोग में उन्हें अत्यंत द्याहक लगी। एक दिन अपनी स्थिति का विश्लेषण करते हुए वे विषण्ण मन लक्षण से कहने लगे, 'मेरे कारण परिवार के सभी लोगों को कितना कष्ट झेलना पड़ा? पिता ने शरीर छोड़ा, भरत व्रतनिष्ठ हो तपोमय जीवन बिता रहे हैं। तुम्हें मेरे साथ कष्ट भोगना पड़ रहा है और सीता रावण की बंदिनी होकर असह्य यातना भोग रही हैं। कहाँ हमारा निर्मल कुल और कहाँ यह कलंक! मैंने अधर्म से बालि को मारा। इस पाप के कारण मुझे कभी मुक्ति नहीं मिलेगी।' लक्षण ने इस प्रकार चितायुक्त राम को सांत्वना देते हुए धैर्य धारण कराया। किसी भाँति वर्षा बीतो।

एक दिन राम ने भाई से कहा, 'सुग्रीव ने सीता की खोज कराने का वादा किया था। प्रतीत होता है रूपवती तारा को पाकर वह विलासमग्न हो गया

है। तुम अभी किञ्चिंधा जाकर राज्यमद से अंधे उस वानर को मेरे पास ले आओ।' लक्ष्मण बोले, 'आपके कारण ही उसे राज्य मिला। अब यदि वह सहायता करने से विमुख होता है तो मैं उसे मार डालूँगा।' राम ने कहा, 'तुम उसे केवल मेरे पास तक ले आओ, फिर प्रत्रोध हो जायगा।' लक्ष्मण के किञ्चिंधा चले जाने पर राम दिव्य शरीर से लंका गये वहाँ अशोकवाटिका में सीता ने प्रमोद-वनश्री का प्रादुर्भाव कराया और रावण द्वारा हरी गयी असंख्य देव, गंधर्व तथा राजकन्याओं के साथ रासलीला का विशाल आयोजन हुआ।

लक्ष्मण जिस समय किञ्चिकधा के राजभवन में पहुँचे, सुग्रीव सो रहा था। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद उन्होंने प्रतिद्वारा द्वारा अग्ने आने के समाचार के साथ ही उसके पास संदेश कहलाया, तुम अन्तःपुर के भोग-विलास में मग्न हो, तुम्हारा वियोगी मित्र सहायता की प्रतीक्षा कर रहा है। मेरे साथ शीघ्र उनसे मिलने चलो अन्यथा तुम्हारी भी वही गति होगी जो बालि का हुई।' तारा ने यह सुनकर लक्ष्मण के सादर प्रासाद में बुलाया और उनका यथोचित सत्कार किया। सुग्रीव ने अपनी असावधानी के लिए क्षमा-याचना की। रात को लक्ष्मण वहीं ठहर गये। प्रातः वानर यूथपतियों तथा अंगद के साथ सुग्रीव शिविकारूढ़ हो राम से मिलने चला। माल्य-वान पर्वत पर उसने जटाधारी राम को कैलाशनाथ शिव को भाँति योगासन से बैठे हुए देखा। निकट पहुँचकर उसने दंडवत् किया। राम ने सुग्रीव का आलिंगन किया और उसे अंगद सहित अपने निकट बैठाया। फिर लक्ष्मण से बोले, 'भाई! तुम्हीं इन्हें मेरे पास ला सकते थे अन्यथा इस राजा को मुझ वनवासी की सुधि कैसे आती?' सुग्रीव ने निवेदन किया, 'प्रभो! आपको भूलनेवाला यमद्वार को जायगा। आपने बालि से प्राणरक्षा कर मेरा उद्धार किया। मैं कृतार्थ हो गया। अपराध क्षमा करें।' इन दैन्य-भरे शब्दों को सुनकर राम का क्रोध जाता रहा। फिर सीतान्वेषण और लंकापति रावण से युद्ध-विषयक व्यवस्था की चर्चा आरंभ हुई। उस समय भूमंडल के विभिन्न देशों से आये हुए अनेक वर्ण और आकार के वानर यूथपति हाथ जोड़े खड़े थे। सीता की खोज के निमित्त उन्हें भेजते हुए सुग्रीव बोला, 'एक मास के भीतर यदि तुमलोग सीता का अन्वेषण न कर सके तो सभी मेरे हाथों मृत्यु-दण्ड के भागी होंगे।'

हनुमान, अंगद, जाम्बवान आदि यूथपतियों के नेतृत्व में वानरी-सेना अग्रणित वनों एवं उपत्यकाओं का आलोड़न करती हुई समुद्र तट पर पहुँची। वहाँ सुग्रीव के दंडभय से चिंताग्रस्त हो वे सभी विचार-विमर्श कर ही रहे थे कि अकस्मात् संपाती नामक गृध्र से भेट हो गयी। सबको मलिनवदन देखकर उसने उनकी उद्धिग्नता का कारण पूछा। वानरों ने सारी कथा कह सुनायी। वह बोला, ‘मैं यहाँ से देख रहा हूँ, राक्षसियों से घिरी शोक-विद्वला सीता अशोकवाटिका में बैठी हैं। अब तुममें से कोई चाहे तो वहाँ जाकर उनका समाचार ला सकता है।’ सामने दुस्तर सागर था। उसे पार करके लंका जाने का कोई साहस न कर सका। सभी किंकर्त्वविमूढ़ थे। तब हनुमान ने साहस बाँधा। वे गम्भीरनाद करते हुए समीपस्थ पर्वत पर चढ़े।

गये। उनका शरीर स्वर्णशैल के समान कान्तिमान् था। हुंकार करके वे ववंडर उठाते हुए आकाश में उड़े। मार्ग में एक महाकाय राक्षसी ने छाया के माध्यम से उन्हें पकड़कर नीचे समुद्र में खोंचना चाहा। वह निगलने के लिए मुँह फैलाये हुए जीभ लपल्पा रही थी। हनुमान निर्भय हो नीचे उतरे। उन्होंने उसका मुँह फाड़ डाला और मारकर सौ योजन विस्तृत समुद्र के पार फेंक दिया।

समुद्र लाँधकर हनुमान लंका में रात को प्रविष्ट हुए। सम्पूर्ण नगर स्वर्ण प्राकारों से घिरा था। राक्षसकुमार सांगवेद पाठ कर रहे थे। होम-धूम से दिशाएँ सुवासित थीं। राक्षस लोग विविध प्रकार की विलासक्रीड़ाओं में रत थे। हनुमान इस प्रकार नागरिकों के कार्य-कलाप का निरीक्षण करते हुए रातभर धूमते रहे। पिछले पहर उन्होंने तुलसी वृक्ष से आवृत विभीषण का घर देखा। वहाँ रामार्चन हो रहा था। यह देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर सीता को खोजते-खोजते वे अशोकवाटिका में पहुँचे। वहाँ देखा कि एक वृक्ष की जड़ों का आश्रय लिये हुए जगन्माता प्रियतम के नाम-स्मरण में तल्लीन आँसुओं से अंचल भिंगोती हुई नतमुख बैठी हैं। इस विपन्नावस्था में भी उनका मुखमंडल दिव्य आभा से परिपूर्ण था। हनुमान प्रणाम करके सामने खड़े हो गये। फिर बोले, 'माता! मैं राम का दूत हूँ। भगवान् अनुज सहित माल्यवान गिरि पर प्रवास कर रहे हैं। कपीन्द्र सुग्रीव से उनकी मैत्री हो गयी है। उसकी विशाल वानरीसेना राक्षसों से आपका उद्धार करने के लिए प्रभु की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही है। एक-एक वानर बीर समस्त राक्षसी सेना के संहार की शक्ति रखता है। आप चिन्ता न करें। प्रभु ने पहचान के लिए यह मुद्रिका दी है।' मुद्रिका पाकर सीता को राम के करस्पर्श-सा आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने फिर सोचा कि यह राक्षसीमाया तो नहीं है। हनुमान सीता की मत्तःस्थिति समझकर बोले, 'माता! मैं राम का अनन्य दास हूँ। उनकी पादुकाएँ ही मेरी एकमात्र शरण्य हैं।' इन शब्दों से सीता का सन्देह दूर हो गया। उन्होंने पूछा, 'हनुमान! तुमने शतयोजन विस्तृत लवण सागर कैसे पार किया? यहाँ निर्विघ्न कैसे पहुँचे? पतिदेव से मेरी स्थैति का निवेदन न करना। वे मेरी अन्तर्दशा से पूर्णतया अवगत हैं। मात्र इतना कह देना कि मुझ राक्षसगृहीता का वे अविलम्ब उद्धार करें।' विदां होते हुए सीता ने हनुमान को अभिज्ञान रूप में अपना शिरोभूषण दिया।

अशोकवाटिका में रावण के द्वारा नियुक्त राक्षसियों का सीता के साथ दुर्व्यवहार देखकर हनुमान की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने राक्षस रखवालों की उपस्थिति में ही वाटिका ध्वस्त कर डाली और प्रतिरोध करनेवालों को मौत के घाट उतार दिया। यह सुनकर राक्षस सैनिक बड़ी संख्या में एकत्र हो गये। हनुमान ने उन सबको भूलुंठित कर दिया। इस उत्पात की सूचना रावण को मिली। उसने अक्षयकुमार को भेजा। वह भी हनुमान की क्रोधाग्नि में भस्मसात् हो गया। तब कुपित होकर राक्षसराज ने मेघनाद को उपद्रवी वानर को दंडित करने का आदेश दिया। मेघनाद से हनुमान का भीषण युद्ध हुआ किन्तु अंत में

उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोगकर हनुमान को बन्दी बना लिया। हनुमान रावण के समक्ष प्रस्तुत किये गये। उसने उन्हें जीवित जला देने का आदेश दिया। इस हेतु उनकी पूँछ में बहुत-सा कपड़ा लपेटा गया। फिर उसमें तेल डालकर आग लगा दी गयी। हनुमान ने विचित्रलीला की। राक्षसों के बंधन से अपने को मुक्त कर वे कँगूरे पर चढ़ गये और घूम-घूमकर अपनी पूँछ से निकलती हुई लपटों से सारी लंका भस्म कर डाली। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। अपना कार्य समाप्तकर वे समुद्र में कूद पड़े। तापजनित पीड़ा और श्रम परिहार के लिए वे दीर्घकाल तक जलक्रीड़ा करते रहे। स्वस्थ हो वे आकाशमार्ग से अपने सहयोगी वानरों के पास महेन्द्र पर्वत पर आ गये।

हनुमान को कृतकार्य देखकर वानरों को अपार हर्ष हुआ। वे सभी उन्हें लेकर राम के पास गये। हनुमान ने सीता के द्वारा प्रदत्त शिरोभूषण राम को दिया। उसे देखकर विरह-व्यथा के उद्देश से राम मूर्छित हो गये। चेतना प्राप्त होने पर वे बोले, 'राक्षसों से सीता का उद्धार कैसे किया जायगा? बीच में अपार समुद्र है। सेना कैसे पार उतारी जायगी? यह एक अलौकिक कार्य है। इसका उपाय भी लोकोत्तर होना चाहिए। इस सम्बन्ध में मेरी राय है कि हमलोग बद्धांजलि हो उपवासपूर्वक सागर की आराधना करें। इससे प्रसन्न होकर वह मार्ग दे देगा। तब सारी वानरी सेना सहज ही पार हो जायगी।' यह निश्चय करके वे सुग्रीव, वानर-यूथपतियों, जांबवान और लक्ष्मण सहित चार दिनों तक उपवास करते हुए समुद्र तट पर पड़े रहे, किन्तु वह रंचमात्र भी नहीं पिघला। समुद्र की ऐसी निष्ठुरता देखकर राम को क्रोध आ गया। वे लक्ष्मण से बोले, 'मेरा आयुध लाओ। एक बाण से ही इसे सुखा दूँगा। यह प्रार्थना से माननेवाला जीव नहीं है।' इतना कहकर उन्होंने प्रत्यंचा पर चढ़ाकर कराल बाण छोड़ दिया। शराग्नि के सम्पर्क से समुद्र भीषण अंतर्दाह से पीड़ित हुआ। जलचर व्याकुल होकर ऊपर आ गये। सागर के कुटुम्बी मरणासन हो गये। इस अप्रत्याशित आपत्ति की सूचना समुद्र को अपनी पत्नी से मिली। कारण का पता लगाने के लिए उसने दिव्यदृष्टि से देखा तो ज्ञात हुआ कि वह अग्नि राम के बाण से उत्पन्न हुई है। अपने अज्ञान-जनित अपराध के लिए समुद्र पश्चात्ताप करने लगा। इसके मार्जन हेतु प्रभूत उपहार लेकर वह क्षमा-याचना के लिए राम की शरण में आया। कुलवृद्ध समझकर राम ने उसे यथेष्ट सम्मान दिया। फिर उससे कहा, 'मेरी सेना समुद्र पार करना चाहती है। मार्ग दो अन्यथा वाणाग्नि से मैं प्रजासहित तुम्हारे परिवार को भस्म कर डालूँगा।' समुद्र काँपते हुए स्वर में बोला, 'देव, मुझे सुखाएँ नहीं। एक उपाय बताता हूँ। आपके यूथपति नल-नील पथर लाकर सेतु बाँधें। सारी सेना उसी पर चढ़कर पार हो जायगी।' यह युक्ति सबको पसंद आयी। राम ने वाणाग्नि का प्रकोप शांत कर दिया। समुद्र प्रसन्न हो घर लौट गया।

राम ने सुग्रीव, हनुमान आदि को समुद्र द्वारा बतायी गयी पद्धति से सेतु बाँधने का आदेश दिया। वानरों ने दूर-दूर से बड़े-बड़े शिलाखंड लाकर समुद्र-तट

पर ढेर लगा दिये । उस पर उगे वृक्षों से झड़े हुए फल-फूलों से मारी तटवर्ती भूमि आच्छादित हो गयी । फिर सेतु बाँधने का कार्य आरंभ हुआ । हनुमान प्रस्तर-खण्ड उठा-उठाकर देने लगे, नल और नील राम का स्मरणकर और शिलाओं पर राम-नाम लिखकर उन्हें यथास्थान रखते हुए सेतु बाँधने लगे । नाम के प्रताग से वे विशाल शिलाएँ जलस्तर पर तैरने लगीं । यह देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये । सेतुबंध का कार्य पौष्ट कृष्ण १० को आरंभ हुआ था और मात्र चार दिनों में पौष्ट कृष्ण १३ को पूरा हो गया । वानरों ने राम को जब यह संवाद सुनाया तो उन्हें जानकी-प्राप्ति के सदृश ही सुखानुभव हुआ । सेतु तैयार हुआ देखकर वानर यूथ-पतियों ने राम से शत्रुनाश के लिए सेना उतारने का आदंश देने की प्रार्थना की । राम ने विधिवत् पूजा करके पौष्ट कृष्ण १४ से सेना उतारने का कार्य आरम्भ करने की अनुमति दी । तीन दिन में १८ महापद्म संख्यक वानरी-सेना समुद्र के उस पार उतर गयी । लंका से संलग्न सुबेल पर्वत पर पड़ाव पड़ा । सैनिकों ने रावणपुरी का चारों ओर से घेरा डाल दिया और उसे निरंतर आठ दिनों तक घेरे रहे । तब तक एकादशी आ गयी ।

रावण ने शत्रु-शक्ति का पता लगाने के लिए शुक-सारण नाम के दो गुप्तचर भेजे । वानरों ने उन्हें छिपकर आपस में बातें करते देख लिया । वे तुरन्त उन्हें पकड़कर राम के समक्ष ले आये । राम ने यह कहकर उन्हें मुक्त करा दिया कि इन बेचारों को बाँधने से हमारे अभीष्ट की सिद्धि नहीं होगी । दोनों प्राणदान पाकर भाग गये । द्वादशी को प्रमुख वानर सेनापतियों की लंका के मुख्यद्वारों पर नियुक्ति की गयी । यह समाचार पाकर वस्तुस्थिति का अध्ययन करने के उद्देश्य से रावण नगरद्वार पर स्वयं उपस्थित हुआ । राम ने दूर ही से पहचानकर उसके छत्र और चामर वाण से काटकर नीचे गिरा दिये । उसी समय उसके पास शुक-सारण भी आ गये । उन्होंने रावण को राम की अपार सेना और उसके अजेय सेनापतियों के नाम बताये और राम द्वारा विभीषण के लंकापति घोषित किये जाने की भी सूचना दी । यह सुनकर रावण ने अपने सेनाध्यक्षों को बुलाया । उनकी सम्मति से पौष्ट कृष्ण १३ को युद्ध आरम्भ करने का निश्चय हुआ । मंदोदरी ने राम के अतुल पराक्रमसूचक कृत्यों का वर्णन करते हुए पति से सीता को उन्हें सौंपकर युद्ध से विरत होने के लिए बहुत अनुनय-विनय किया, किंतु उसने एक नहीं माना । प्रत्युत उसी को उपदेश देते हुए बोला, ‘प्रिये, तुम्हें भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है । वानर और मनुष्य हमारे भक्ष्य हैं । राक्षस उन्हें खाकर तृप्त होंगे । भाग्य के मारे बेचारे स्वयं यहाँ मरने आ गये । विश्वासघाती विभीषण को मैं उसकी करनी का मजा चखाऊँगा । दोनों तापस कामांध होकर अपने को सर्वनाश के गर्त में फेंक रहे हैं । राम का वधकर मैं जानकी को अपनी अंकशायिनी बनाऊँगा ।’ इस प्रकार की अनेक वीरदर्पणपूर्ण उक्तियों से उसने मंदोदरी को ढाढ़स बँधाया ।

युद्ध आरम्भ करने के पूर्व राम ने रावण को समझाने के लिए युवराज अंगद को भेजने का निर्णय लिया । अंगद के प्रस्थान करते समय उन्होंने रावण से अपना

यह संदेश कहने को कहा, 'तुमने परस्त्रीहरण कर अत्यंत गर्हित कर्म किया है। सीता को लंका में बंदिनी देखकर उन्हें मुक्त करने के निमित्त मुझे ब्रह्महत्या के पाप का भागी बनने के लिए विवश न करो।' रावण के दरबार में अंगद माघ शुक्ला प्रतिपदा को उपस्थित हुए। उनके मुख से राम का सन्देश सुनते ही रावण क्रोध से उबलने लगा। उसने राक्षसों को उन्हें पकड़कर प्राणदण्ड देने का आदेश दिया। राक्षसों ने अंगद को धेर लिया। वे गरजते हुए रावण पर टूट पड़े और उसके नाक-कान नोच डाले, शिरस्त्राण फाड़ डाला। लोगों के देखते-देखते वे तीव्रगति से सभाभवन से बाहर निकल आये। अशोकवाटिका जाकर सीता का समाचार लेते हुए वे नगर से बाहर हो गये। उन्हें रोकने का किसी को भी साहस नहीं हुआ। राम के पास पहुँचकर अंगद ने सीता की दयनीय स्थिति का विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा, 'रावण और उसके द्वारा नियुक्त राक्षसियाँ भाँति-भाँति के भय और प्रलोभन देकर सीता को पथञ्चष्ट करना चाहती हैं किन्तु वे आपका नाम जपती हुई अब तक किसी प्रकार अपनी रक्षा कर रही हैं। त्रिजटा मात्र एक ऐसी राक्षसी है, जो उन्हें आश्वासन देकर प्राणरक्षा के लिए प्रोत्साहित करती रहती है। उसने भविष्यवाणी की है कि अंततोगत्वा विजय राम की ही होगी।'

संधि-वार्ता के विफल हो जाने पर दोनों पक्ष पूरी तैयारी के साथ युद्ध-सेत्र में उत्तर पड़े। घमासान युद्ध आरंभ हुआ। रावण के बड़े-बड़े योद्धा एक के बाद एक मारे जाने लगे। राक्षसी सेना को पराजित होते देखकर रावण ने मेघनाद को भेजा। उसने राम को द्वन्द्ययुद्ध के लिए चुनौती दी। राम ने उसका सामना करने के लिए लक्ष्मण को भेजा। वैशाख कृष्ण ९ को लक्ष्मण और मेघनाद के बीच घोर युद्ध हुआ। मेघनाद लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों का प्रहार सह न सका। पराजित होकर वह लंका लौट गया। किन्तु रात में फिर वापस आकर उसने लड़ाई आरंभ कर दी। अबकी बार उसने नागपाश से दोनों भाइयों को बाँध लिया। तब राम ने गरुड़ का स्मरण किया। वे तत्काल जा पहुँचे और नागपाश काटकर राम-लक्ष्मण को बंधनमुक्त कर दिया। फिर वे राम से बोले, 'भगवन्! आपकी यह नर-लीला बड़ी विचित्र है। आप परात्पर ब्रह्म हैं, सीता आद्याशक्ति हैं। अपनी प्रकृति में स्थित हो भू-भार हरण कीजिए।' स्वतंत्र होने पर दोनों भाइयों का मेघनाद से तुमुल संग्राम हुआ। वह पुनः पराजित होकर लंका चला गया। उस दिन दशमी थी। एकादशी को युद्ध बन्द रहा। राम सुबेल पर्वत पर सहायकों से विचार-विमर्श कर रहे थे। उस बीच सुग्रीव ने बातों-ही-बातों में उनसे कहा, 'नाथ! आप लंका का राज्य विभीषण को दे चुके हैं। अब यदि रावण आकर क्षमा माँग ले और सीता को लौटा दे तो आप विभीषण से की गयी अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह कैसे कर सकेंगे?' राम ने निर्भान्त हो उत्तर दिया, 'मैं उसे अयोध्या का राज्य दे दूँगा।'

इस प्रकार रात में बहुत देर तक वाग्विनोद चलता रहा। प्रातः दोनों भाई पुनः रणक्षेत्र में जा डटे। उस दिन हनुमान ने सैन्य-संचालन किया। उनका सामना करने के लिए धूम्राक्ष नामक महापराक्रमी राक्षस भेजा गया। हनुमान से उसका

दो दिनों तक घोर युद्ध हुआ। व्रयोदशो को वह खेत रहा। उसके बाद प्रहस्त आया। राम के बाणों से धायल हो वह युद्ध-क्षेत्र छोड़कर लंका भाग गया। इस प्रकार विश्वसनीय भटों को पराजित होते देख रावण ने व्रस्त होकर विश्वविद्यात योद्धा कुंभकर्ण को जगाने का उपक्रम किया। यह प्रयास पंचमी से अष्टमी तक चलता रहा। जागने पर उसके खाने के लिए अपार खाद्य एवं पेय पदार्थ एकत्रित किये गये थे। इस निमित्त संगृहीत मांस का पर्वत-सा खड़ा हो गया। पान के लिए रक्त तथा मंदिरा की अनेक बावलियाँ, कूप और कुंड भरा दिये गये। पकवानों के अनगिनत विशाल ढेर लगा दिये गये। राक्षसों ने अथक पारंप्रथम करके किसी प्रकार उसे जगाया। तेरह चतुर्युर्गी के पश्चात् नींद खुलने पर उससे रावण ने कहा, 'भाई उठो, मेरा काल आ गया है। एक मर्यादा-तापस राक्षसों का संहार कर रहा है।' इतना कहकर उसने युगों से भूखे भाई को भरपेट भोजन-पान कराया। तृप्त होकर घोर गर्जन करते हुए वह रावण से बोला, 'युद्ध क्यों हो रहा है? और किससे?' इसके उत्तर में रावण ने आदि से लेकर अंत तक सारी कथा कह सुनायी।

भाई के कुकृत्य पर पश्चात्ताप करते हुए और उसके फलस्वरूप राक्षसकुल का सर्वनाश निश्चित मानकर उसने रावण से कहा, 'तुमने यह घृणित कर्म क्यों किया? पुलस्त्य ऋषि के वंशज होने से हमें उनके अनुरूप आचरण करना चाहिए। परस्त्री का विषवल्ली की भाँति दूर से ही त्याग करना चाहिए। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो अब भी समय है, राम की शरण में जाओ और सीता को उन्हें सींप दो। रावण को यह उपदेश अच्छा नहीं लगा। वह बोला, 'भाई! प्रतीत होता है तुम भी तापसों से डर गये। तुम निश्चिन्त होकर खाओ और सोओ। मैंने लंका का राज्य तुम्हारे बल पर नहीं स्थापित किया है। असंख्य पराक्रमी राक्षस हमारे लिए प्राण उत्सर्ग करने को तैयार हैं।' रावण के क्रोधभरे वाक्यों को सुनकर कुम्भकर्ण ने कहा, रावण! मुझे विभीषण मत समझो मैं तुम्हारे आदेश का पालन करूँगा किन्तु मेरा दृढ़ मत है कि तुम्हारा यह कर्म इह तथा पर दोनों लोकों में सदगति का नाशक है। राम सनातन पुरुष हैं। उन्हें तुम नहीं पहचानते। मैंने मुनियों से उनके दिव्यगुणों की चर्चा सुनी है। हम लोग स्वार्थमूळ हैं इस कारण साक्षात् परब्रह्म से द्वेष करते हैं।' इतना कहकर उसने रावण को प्रणाम करके रणक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया। रावण ने उसे आर्लिंगन कर विजय-प्राप्ति का आशीर्वाद देते हुए विदा किया।

कुम्भकर्ण के पर्वताकार महाभयंकर रूप को देखते ही बानरों में भगदड़ मच गयी। वह उन्हें पकड़-पकड़कर खाने लगा। सेना को विचलित होते देखकर लक्ष्मण आगे बढ़े। उनसे वह भिड़ गया। दोनों में पाँच दिनों तक भयानक संघर्ष हुआ। छठे दिन फागुन कृष्ण १४ को वह राम के हाथों मारा गया। कुम्भकर्ण ऐसे भाई की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण के धैर्य का बाँध टूट गया। अंतःपुर की स्त्रियों में कुहराम मच गया। रावण करुण विलाप करते-करते मूर्छित हो गया। उसने फागुन अमावस्या को भाई की अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की। फागुन शुक्ला प्रतिपदा को सेना

सजाकर पुनः राक्षस सेनापतियों का एक वृहद् समूह भेजा गया। चार दिनों तक लड़ाई चलती रही उस बीच शत्रु पक्ष के अनेक प्रख्यात वीर मार डाले गये। पंचमी को अतिकाय आया। राम से उसका दो दिनों तक युद्ध हुआ। सप्तमी को वह भी जूझ गया। अष्टमी को कुम्भ-निकुंभ की बारी आयी। वे दोनों इन्द्र-वज्र से मारे गये। तब रणोन्मत्त मकराक्ष सेनासहित आ धमका।

इस प्रकार युद्ध चल ही रहा था कि मेघनाद ने शत्रु पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से चैत्र कृष्णा द्वितीया से सकाम यज्ञ आरम्भ किया। विभीषण के द्वारा राम को पता चल गया कि इस यज्ञ के पूरा होने पर मेघनाद अजेय हो जायगा। अतः विघ्न उत्पन्न कर यज्ञ-श्रष्ट करने के उद्देश्य से राम ने हनुमान के नेतृत्व में वानरों का एक शक्तिशाली गुल्म भेजा। उनके उत्पात से मेघनाद यज्ञ को अधूरा छोड़ने पर विवश हुआ। इसका प्रतिशोध लेने के लिए शत्रुओं का पीछा करते हुए वह युद्ध-क्षेत्र में आ गया। उसके माया-युद्ध से वानर-सेना घबड़ा गयी। हनुमान, सुग्रीव, अंगदादि महावलवान् सेनाध्यक्ष भी भग्न पराक्रम हो नतमस्तक हुए। राम ने यह स्थिति देखकर उनसे हतोत्साह होने का कारण पूछा। सब ने इन्द्रजीत के हाथों अपनी पराजय स्वीकार कर ली। राम ने अमृतस्नावी हाथों से स्पर्श करके उनकी मायाजनित तन्द्रा दूर कर दी। तब राम की आज्ञा से इन्द्रजीत से लड़ने के लिए लक्ष्मण ने युद्ध-भूमि में पदार्पण किया। दोनों में बहुत देर तक भयंकर युद्ध होता रहा। अंत में लक्ष्मण ने घनघोर वाण वर्षा कर उसकी भुजाएँ तथा सिर काट डाला। पति की मृत्यु का संवाद पाकर सुलोचना विलाप करती हुई शव लेने के लिए युद्ध-भूमि गयी। उस दिन चैत्र कृष्णा चतुर्दशी थी। उसने परमपुरुष के रूप में राम की स्तुति की। राम ने दयार्द्र होकर उसके पति को जीवित करने की इच्छा व्यक्त की। सुलोचना ने इसे अस्वीकार करते हुए उसका असुर भाव दूरकर राम से उसे जन्मान्तर में दास्यभक्ति प्रदान करने का अनुरोध किया। इसके अनन्तर वह पति का शव लेकर सती हो गयी। राम की कृपा से कालान्तर में मेघनाद ने सम्मुख गोप और सुलोचना ने उसकी पत्नी के रूप में जन्म लेकर अविरल दास्यभक्ति प्राप्त की।

अपने सभी प्रभुख सहायकों के मारे जाने पर रावण स्वयं युद्ध-भूमि में गया। चैत्र शुक्ला १ से ८ तक उसने विकट युद्ध किया। वानरी-सेना उसके आक्रमणों से त्रस्त हो उठी। राम ने लक्ष्मण को उससे लड़ने के लिए भेजा। युद्ध करते-करते रावण थक गया। किंतु किसी प्रकार लक्ष्मण वश में आते न दिखायी दिये तब उसने उन पर विकराल शक्ति छोड़ दी। वह लक्ष्मण के हृदय में लगी। वे मूर्छित होकर गिर पड़े। विपत्ति के दिनों में एकमात्र सहायक अनुज को मरणासन्न देखकर राम विह्वल हो विलाप करने लगे। असमय देखकर कुछ देर के बाद उन्होंने धैर्य धारण किया। फिर सहयोगियों से परामर्श करके निशल्यीकरण ओषधि लाने के लिए हनुमान को द्रोणाचल भेजा। ओषधि ढूँढ़ने में देरी होने की संभावना को देखकर वे पर्वत ही उठा लाये।

ओषधि पहचान कर निकाली गयी। उसके सेवन से लक्ष्मण गतशल्य हो

गये। इस व्यवधान के कारण दशमी को युद्ध बंद रहा। फिर एकादशी आ गयी। उस दिन भी विराम रहा। चैत्र शुक्ला द्वादशी को कुबेर द्वारा भेजे गये पुष्पकविमान पर चढ़कर राम रावण से युद्ध करने रणक्षेत्र में आये। यह संग्राम वैशाख कृष्ण १४ तक चलता रहा। अंतिम दिन राम ने रावण पर व्रह्मास्त्र का प्रहार किया। वह आकाश में जाकर दसधा विभक्त हो गया। पृथ्वी पर आकर उसके दसों भागों ने रावण के दशों सिर काट डाले। राजसराज मूलोच्छन्न महावृक्ष की भाँति घोर शब्द करते हुए धराशायी हो गया। वैशाख अमावस्या को दाह-संस्कार के अनन्तर पंचतत्त्वों के नियामक उस लोक परितापी के ऐहिक अवशेष भी अनन्त में विलीन हो गये।

रावण-वध के पश्चात् राम वानरों सहित सुबेल पर्वत पर लौट गये। उन्होंने विभीषण को वहीं बुलाकर राज्याभिषेक का प्रस्ताव किया। विभीषण ने राजपद ग्रहण करने में असहमति प्रकट करते हुए कहा, 'प्रभो! मैं दास्य मात्र का अभिलाषी हूँ। आप की सेवा करते हुए तुलसीपत्र खाकर जीवन बिताऊँगा, मुझे राज्य की स्पृहा नहीं है। राज्य-सुखभोग मोहग्रस्त कर देता है। राम उसका प्रबोध करते हुए बोले, 'मेरा स्मरण करते हुए राज्य करो तो मोह नहीं होगा। तुम्हारी निष्ठा पर प्रसन्न होकर मैं तुम्हें मार्कण्डेय की भाँति चिरजीवी होने का वरदान देता हूँ।' इसके बाद उन्होंने विधिपूर्वक विभीषण का राज्याभिषेक किया।

राम ने सीता को लाने के लिए लक्ष्मण को लंका भेजा। विरह-विदग्धा जानकी को शिविका पर चढ़ाकर अनुचरी राक्षसियों के साथ लक्ष्मण अशोकवाटिका से सादर राम के पास ले आये। अग्नि-परीक्षा के लिए चिता तैयार की गयी। इस अभूतपूर्व दृश्य को देखने के लिए आकाश में यक्ष-देव-गंधर्वों के साथ महाराज दशरथ और जनक भी उपस्थित हुए। सीता ने सभी उपस्थित लोगों के सामने अग्नि में प्रवेश किया। उनके अखंड तेज से अग्नि ठंडी पड़ गयी। चिता से वे निष्कलंक बाहर निकल आयीं। सबने तीन वार उच्च स्वर में धोषित किया 'सीता शुद्ध हैं।' चारों ओर जय-जयकार होने लगा। सीता की अमृतवर्षिणी दृष्टि से युद्ध में मारे गये सभी वानर जीवित हो गये।

इसके बाद हनुमान, सुग्रीव, जांबवान, अंगद, विभीषण आदि पार्षदोंसहित राम ने अयोध्या चलने की तैयारी की। प्रस्थान करते समय सीता ने पति से कहा, अशोकवाटिका में बंदिनी जीवन में मेरी अनन्य सहायिका त्रिजटा आपके सामने है, आपके वियोग में यही मेरी प्राणरक्षिका थी।' राम ने कृपादृष्टि से देखकर उसे कृतार्थ किया। वैशाख शुक्ला ४ को इष्टमित्रों-सहित राम ने पुष्पकविमान से अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। पंचमी को दंडकारण्य होते हुए वे भरद्वाजाश्रम पर (प्रयाग) पहुँचे। वहाँ भरत ने वृद्ध मंत्रियों तथा महती सेनासहित उनका स्वागत किया। राम ने मनुष्य का रूप धारण किये हुए वनवासी जीवन में सहायक अपने मित्रों को भरत तथा मुनियों से मिलाया। सबने एक दूसरे को गले लगाया। प्रयाग से विमान पृथ्वी स्पर्श करते हुए धीरे-धीरे अयोध्या की ओर बढ़ा। नगर के निकट-

वर्ती उपवन के पास सभी उससे उत्तर पड़े । राम के आदेश से पुष्पक कुबेर के पास वापस भेज दिया गया । वहाँ से चिंताकुला माताओं का दर्शन करने सभी लोग नंगे पाँव अयोध्या की ओर चले । माताओं से राम के मिलने का हश्य अत्यन्त हृदय-द्रावक था । अनवरत अंसू बहाते हुए उन्होंने रावणविजयी पुत्र का अंग स्पर्शकर अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव किया । सुग्रीवादि समस्त आगन्तुक अतिथियों ने चरण-वंदन कर उनको असीम सम्मान दिया ।

वशिष्ठजी की आज्ञा से वैशाख शुक्ला सप्तमी को राम का राज्याभिषेक हुआ । ब्राह्मणों को अपार दान मिला । सारी पुरी मनोयोगपूर्वक अलंकृत की गयी थी । मुसज्जित रथ पर राम के वाम भाग में सीता विराजमान थीं । भरत छत्र, लक्ष्मण और शत्रुघ्न व्यजन लिये उनकी दोनों ओर सेवारत थे । राजभवन के द्वार पर रथ रुका । राम उत्तरकर सीधे पिता के सभाभवन में गये । वहाँ पितृ-चरणों का साक्षात् दर्शन कर राम ने उनकी श्रद्धापूर्ण वंदना की ।

पिता को संबोधन करते हुए वे गदगद कण्ठ से बोले, 'आपकी गोद में बैठकर हमने क्या-क्या सुख नहीं किये । आपने हमारा जैसा लालन-पालन किया, वह अविस्मरणीय है ।' वहीं माता कैकेयी भी आ गयी थीं । राम ने उनका चरण-स्पर्श किया । उन्हें लज्जावनतमुखी तथा म्लानवदना देखकर वे बोले, 'माता, तुम्हारे ही पुण्य से पिता के सत्यव्रत की रक्षा हुई । तुम्हें किसी प्रकार की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है ।'

राम ने लंका से साथ आये हुए मित्रों को नित्य नूतन प्रकार से सत्कृत करते हुए आधे मास तक रोक रखा । उसके पश्चात् हनुमान को अपने पास रख अन्य सभी को सादर विदा किया । गो-ब्राह्मणों की रक्षा करते हुए प्रजा-वर्ग का वे भाई की तरह अत्यन्त स्नेहपूर्वक पालन करने लगे । पृथ्वी पर सर्वत्र सुख-शांति एवं सम्पन्नता की अजस्र वर्षा होने लगी । राम के राज्य करते हुए धर्म के चारों चरण मूर्तिमान् थे । तीनों भाइयों का अपार सौहार्द्द तथा प्रजा की अखण्ड श्रद्धा प्राप्त कर वे राज्यश्री का एकच्छत्र भोग करने लगे ।

इस प्रकार कुछ दिन बीत जाने पर सीता को गर्भवती जानकर एक दिन राम ने उनसे एकांत में कहा, 'प्रिये !' तुम्हारी कोई इच्छा हो तो बताओ, उसे तत्काल पूरी करूँगा ।' सीता बोलीं, 'आपकी कृपा से मुझे तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । केवल एक अभिलाषा शेष है । वनवास के समय जिन मुनिपत्नियों, मुनि-कुमारों और ऋषियों से संपर्क हुआ था, उन्हें विविध प्रकार के वस्त्राभूषण एवं भोग्य पदार्थ देने का मैंने संकल्प किया था । मुझे यह देखकर बहुत दुःख हुआ था कि जंगलों में रहकर साधना करनेवाले मुनिपरिवार अत्यन्त अभावपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं । उन्हें भोजन-वस्त्र के लिए अपार कष्ट उठाना पड़ता है । उनकी सेवा करने की मेरी बलवती इच्छा पूरी करें । मैं अपने साथ सारी सामग्री लेकर जाऊँगी और आश्रमों में उसे वितरित कर तपस्वियों का आशीर्वाद प्राप्त करूँगी । फिर आपकी राजधानी में आ जाऊँगी ।' नित्यसंगिनी के वियोग की संभावना से

कातर राम को उन्हें वन जाने की अनुमति देते हुए जितना कष्ट हुआ तपस्त्रियों की सेवा में उनकी रुचि देखकर उतना ही संतोष ।

लक्ष्मण को तत्काल बुलाकर उन्होंने कहा, 'जानकी मुनि-पत्नियों की सेवा करना चाहती हैं । इस समय इनका संकल्प विशेष रूप से पूरा करना चाहिए । तुम इनकी इच्छानुसार वस्त्र, आभूषण, रत्न, भोग्य पदार्थ तथा अन्य सामग्री प्रचुर मात्रा में गाड़ियों में लदाकर ले जाओ । ये तापस दंपत्तियों की जिस प्रकार पूजा करना चाहें उसकी व्यवस्था कर इन्हें आसमनोरथ करो । गर्भवती स्त्रियों की इच्छा विशेष रूप से पूरी करनी चाहिए अन्यथा उनसे उत्पन्न संतान यावज्जीवन अभिलाषाग्रस्त रहती है । दास-दासियों तथा सखियों के साथ इनको वहाँ स्थित कर शीघ्र मेरे पास चले आना ।' भाई के निर्देशानुसार लक्ष्मण ने समस्त अपेक्षित वस्तुओं को बैलगाड़ियों में रखवाया और सेवकों तथा सखियोंसमेत मणिकंचन-मंडित सीता को सरयू के पार वन-प्रदेश में स्थित आश्रम-मण्डल में ले गये । वहाँ उनके आवास की समुचित व्यवस्था कर वे सीता से बोले, 'अब आप यहाँ अपनी इच्छानुसार धन, पट, आभूषण और भोजन से ऋषि-परिवारों की सेवा-पूजा करें । मुझे आर्य के पास जाने की अनुमति दें । कार्य समाप्त होने पर मैं फिर आकर आपको अयोध्या ले जाऊँगा ।' इतना निवेदन कर उन्होंने सीता के चरणों की वन्दना की । तदनन्तर मुनि-स्त्रियों को करबद्ध प्रणाम करके उन्हें सीता को सौंप शीघ्रगामी रथ पर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया ।

सीता को प्राकृतिक तथा आध्यात्मिक रमणीयता से पूर्ण आश्रमों में निवास करते हुए अपार आनन्द हुआ । मुनि-पत्नियाँ उन्हें देखकर आनन्द-विह्वल हो गयीं । उनका स्वागत करती हुई वे बोलीं, 'जनकपुत्री ! तुम्हारे आगमन से हम सभी कृतार्थ हुईं । तुम रघु और निमि कुल की गौरव हो । तुम्हारे पातिव्रत से स्त्री-वर्ग भुवन-मणित हुआ । हम लोगों ने तुम्हें वनवास के समय देखा था तभी से दर्शन की उत्कंठा थी । आज हमारा जन्म सफल हो गया । हम तापसियाँ निस्पृह जीवन व्यतीत करती हैं । यदि कोई स्पृहा थी तो यही कि तुम्हारा सामीप्य प्राप्त हो जाय । तुम्हारी पुण्य-कथा संसार-पावनी है । दुष्ट रावण तुम्हारे शीलव्रत से ही मारा गया । उसके परिणामस्वरूप आज हम सभी सुखी तथा स्वतंत्र होकर तुम्हारा यशगान करती हैं । पतिव्रते ! गर्भ-प्रसवन काल तक यहीं रहो । गर्भिणियों की इच्छा वनश्री देखने की रहती है । हमारी इच्छा है कि यहाँ निवास करते हुए तुम अत्यन्त शक्ति-शाली संतान को जन्म दो । रघुवंशियों के कुल का यह परंपरागत स्वभाव है कि भावी संततियाँ अपने गुणोत्कर्ष से पूर्वपुरुषों की कीर्ति को उत्तरोत्तर आच्छादित करती हैं ।'

तापसियों के इन स्तुतिपूर्ण शब्दों को सुनकर सीता बोलीं, 'हमलोग गृहस्थी की ज़ंझटों में निरंतर फ़ंसी रहती हैं । आपलोगों का दर्शन पुण्य से होता है । हमारा जो कुछ भी उत्कर्ष है, वह आपके चरणों की कृपा से ही । जो काल आपके साथ बीते, वही सार्थक है । यह समझकर ही हमने स्वामी से यहाँ आने की अनुज्ञा प्राप्त की है ।'

इसके पश्चात् सीता ने समस्त तापसियों, कन्याओं और ऋषि-कुमारों की विधिवत् पूजा की और उन्हें नाना प्रकार के पदार्थ अपित करके अपना संकल्प पूरा किया। उनके अतिथि बनकर वनवासी पशु-पक्षी भी पूर्ण रूप से तृप्त हुए। वस्त्रों, पुष्पों, तोरणों और ध्वजाओं से आश्रम समलङ्घित किये गये और वहाँ की पुण्यभूमि सुगन्धित द्रव्यों से सिंचित एवं सुवासित हुई। इससे वह आश्रममण्डल साकेतपुरी-सा सुसज्जित लगने लगा। इस प्रकार नियमित रूप से सेवा करती हुई सीता तापसियों के बीच कुटुम्बवत् प्रसन्नचित्त रहने लगीं।

इस प्रकार के मनोनुकूल वातावरण में प्रिया की अंतःवृत्ति रमते सुनकर राम ने उन्हें बुलाने के लिए लक्षण को नहीं भेजा।

एक दिन किसी तापसी को सीता ने कहते सुना, 'आश्चर्य है ! राम ने सीता को रावण के यहाँ रहने के कारण त्याग दिया। मुझे साकेतवासियों से पता चला है कि एक बार सभा में वैठे हुए राम के पूछने पर किसी विद्वषक ने बताया कि उनके सारे कृत्यों की संसार में भूरि-भूरि सराहना हो रही है। केवल एक प्रसंग पर आक्षेप है और वह है पर-पुरुष के द्वारा स्पृष्ट एवं कामवश अपने यहाँ रखी गयी भार्या का उनके द्वारा पुनः ग्रहण। लोगों को आशंका है कि इससे दुराचारिणी स्त्रियों को अवलंबन मिलेगा। पति के दंडित करने पर वे तत्काल इस घटना का उल्लेख उदाहरण रूप में कर देंगी। ऐसी उपहासपूर्ण चर्चा अयोध्या में द्वार-द्वार पर और घर-घर में हो रही है। सज्जनों को इससे कष्ट होता है।'

यह सुनकर सीता स्तब्ध रह गयीं। आँखों से अजस्त्र अश्रुपात करती हुई वे करुणस्वर में बोलीं 'पतिदेव ने यह क्या किया ? मैंने स्वप्न में भी कभी व्यभिचार का चितन नहीं किया। उन्होंने देवताओं, मनुष्यों, वानरों और राक्षसों—सबके समक्ष मेरी शपथपूर्वक अग्निपरीक्षा ली। मैं वैश्वानर की प्रचंड ज्वाला से निष्कलंक बाहर निकल आयी। आज वे यह सब कुछ भूल गये। यह असह्य वेदना मुझसे सही नहीं जायगी। मैं पुनः अग्नि में प्रवेश करूँगी। किन्तु क्या करूँ गर्भवती हूँ। दुर्देववश वह भी नहीं कर सकती। राम सर्वसमर्थ हैं जो चाहे करें। उनका वह प्रेम, और वे गुण मेरे दुर्भाग्य से आज सभी लुप्त हो गये। पुरुष स्वभाव से ही निष्ठुर होते हैं।'

सीता इस प्रकार प्रलाप कर ही रही थीं कि यह संवाद पाकर महर्षि वाल्मीकि वहाँ आ गये। वे उन्हें धैर्य बँधाते हुए बोले, 'पुत्री ! रोओ मत। प्रभु सब कुछ जानते हैं। किन्तु दैववंचित दुर्दान्त लोक अनभिज्ञ है। इस समय राम केवल लोकोपासना में निरत हैं। वे तुम्हारा कभी भी त्याग नहीं करेंगे। तुम शान्तिपूर्वक तपोवन में रहो। लोक का संशय लोक ही दूर करता है। राम पद्म-पत्रवत् निर्लिपि हैं। तुम उनकी नित्याशक्ति हो। प्राकृत-जन तुम्हारी महिमा क्या जानें ?' चिताकुला सीता को इस प्रकार समझाकर वे उन्हें अपने आश्रम पर ले गये। उधर राम सीता के विरह में योग साधनारत होकर तीव्र विरक्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे।

वाल्मीकि आश्रम में निवास करते हुए सीता के लव और कुश नामक दो पुत्र हुए। उनकी तीनों बहनों ने भी अयोध्या में यशस्वी संतानों को जन्म दिया। राम ने

स्वर्गारोहण के पूर्व अयोध्या के चक्रवर्तीं साम्राज्य को अपने तथा भाइयों के पुत्रों में बांट दिया। लव-कुण्ठ को क्रमशः कुशावली और अवंती का राज्य मिला। लक्ष्मण के पुत्रों की कारापथ, भरत के पुत्र पुष्कर की पुष्करावती तथा शत्रुघ्न के पुत्र सुवाहु की मथुरा राजधानी बनी। राम की ऐश्वर्यलीला का यह अन्तिम कृत्य था। इसके पश्चात् उनके लोकान्तरण के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का संघटन प्रारम्भ हो गया।

रावणवध से राक्षसी-शक्ति का पराभव हो जाने के कारण भूलोकवासियों की भाँति स्वर्गस्थ देवगण भी निरापद हो गये थे। किन्तु उन्हें एक नयी चिन्ता ने जा घेरा। राम के द्वारा स्थापित धर्मराज्य में भक्तिभावना के चतुर्दिक प्रसार से उनकी पूछ कम हो गयी। अतः इन्द्र के नेतृत्व में उनका एक प्रतिनिधि मंडल ब्रह्मलोक गया। वहाँ उन लोगों ने ब्रह्मा से निवेदन किया, 'पितामह! आपकी प्रेरणा से परात्पर ब्रह्म ने साकेतपुरी में अवतार ग्रहणकर नृशंस रावण का वध किया और धर्मत्रयी की स्थापना की। गो-ब्राह्मणों की रक्षा से लोकधर्म के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। देवदुर्लभ रामभक्ति का सर्वत्र प्रचार हुआ। परमभक्त विभीषण को लंका का राजपद देकर वैष्णवों की महिमा स्थापित की गयी। भक्तों के दुःख नाश के लिए राम, सीता, लक्ष्मण तथा हनुमान के निवास-स्थान तथा पदांकित स्थल तीर्थरूप में प्रतिष्ठित हो गये। सर्वदेव नमस्कृत्य एवं समस्त सिद्धिप्रद परब्रह्म के भूलोक में रहते अब लोग उन्हीं की सेवा-पूजा में लीन रहते हैं। हम देवतागण सर्वथा उपेक्षित तथा प्रभावहीन हो गये हैं। भगवान् राम का अवतारकार्य भी पूरा हो चुका है। ऐसी स्थिति में हमारी आपसे प्रार्थना है कि अपने नित्यधाम में उनके पुनरागमन की व्यवस्था कर हमें चिंतामुक करें।'

देवताओं के इस प्रतिवेदन की यथार्थता का अनुभव कर ब्रह्मा ने काल का स्मरण किया। वह विकरालवदन भयंकर शब्द करता हुआ तत्काल आ गया। ब्रह्मा बोले, 'तुम अभी अयोध्या जाओ। वहाँ हम दोनों के नियंत्रक चराचर नायक स्वयंब्रह्म राम विराजमान हैं। उनसे एकांत में निवेदन करो कि आपकी अवतार-लीला पूरी हो गयी है, अतः निजधाम प्रमोदवन को पधारने का कष्ट करें।' काल ने आज्ञा शिरोधार्य कर ब्रह्मा को प्रणाम किया और तत्क्षण अयोध्या चला गया। वहाँ पहुँचने पर उसने राम को सिंहासनासीन देखा। किंतु उनकी आकृति अप्रत्याशित रूप से कोटि काल के समान दुर्धर्ष एवं भीषण थी। यह देखकर वह भय से काँपने लगा। फिर ब्रह्मा के आदेश का स्मरणकर उसने कर्तव्य-पालन के लिए धैर्य धारण करके अपने सहज गुणों का प्रकाश किया। फलतः सरोवरों में अकाल ही कमल विकसित हो उठे। चारों ओर वसंतश्री छा गयी। यह लीला देखकर राम ने समझ लिया कि काल आ गया है। वही मेरे मनोरंजन के लिए लीला कर रहा है। उन्होंने लक्ष्मण को प्रतिहार का कार्य सौंपा। एकांत देखकर काल भीतर आया।

काल ने दूर से ही भगवान् को साष्टांग प्रणाम किया और बड़ी देर तक भाव-पूर्ण स्तुति करता रहा। फिर बोला, 'भगवन्! मैं काल हूँ। आपकी आज्ञा से

सृष्टिमात्र को अपना ग्रास बनाता हूँ—देव, गंधर्व, राक्षस, यक्ष, किञ्चर कोई मुझसे बचने नहीं पाता। आज ब्रह्मा के द्वारा एक विशेष कार्य के लिए आपके पास भेजा गया है। इन्द्रादि देवों के प्रतिवेदन पर पितामह ने आप से यह निवेदन करने को कहा है कि भूमि-भार हरण के लिए आयोजित आपकी अवतार-लीला का उद्देश्य पूरा हो चुका है और उसकी अवधि भी समाप्त हो चुकी है। एक बात और है। आपके द्वारा स्थापित राज्य-व्यवस्था में सभी लोग सुखी हैं, सौभाग्यशाली हैं, पूर्णियु हैं। जहाँ-जहाँ आपके चरण जाते हैं, वहाँ-वहाँ दुर्भाव एवं दुर्गति का सर्वथा लोप हो जाता है। आपके राज्य करते हुए घर-घर में नित्य उत्सव होते रहते हैं। सारा संसार मंगलमय हो गया है। मनसा-वाचा-कर्मणा सभी धर्म-परायण हो गये हैं। इससे यमपुरी खाली पड़ी है और ब्रह्मा का सृष्टि-वैवम्य-सामर्थ्य लुप्त हो गया है। आपके द्वारा नियुक्त देवता व्यर्थाधिकार हो गये हैं। इसलिए आप भूलोक-लीला का संवरण कर अपने निजधाम, प्रमोदवन को पधारें, जहाँ कालत्रय के गुणों का प्रवेश नहीं है और जिसका इन्द्रादि देव भी बड़े भाग्य से दर्शन कर पाते हैं। ब्रह्माजी ने यह संदेश आपके चरणों में निवेदन करने को कहा है। आप सर्वतंत्र स्वतंत्र हैं, जो इच्छा हो करें।'

काल के इन शब्दों को सुनकर राम बोले, 'तुमने ठीक ही कहा। मैंने देवताओं और मनुष्यों का कार्य पूरा कर लिया है। अब तीनों लोकों में मेरे लिए कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं हैं। दुर्दान्त राक्षसों का संहार हो गया। लोक में शातिमय राज्य-व्यवस्था स्थापित हो गयी। इसके साथ ही मेरी राजलीला का प्रयोजन पूरा हो गया किंतु भक्तों को रसानंद प्रदान करने वाली आह्लादकारिणी रासलीला का कार्य अभी अवशिष्ट रह गया है। वह लीला काल एवं माया से परे है। वहाँ काल की कलन-क्रिया समाप्त हो जाती है। उसके अनन्त प्रवाह में कोटि-कोटि कल्प विलीन होते रहते हैं। भौतिक कार्य-कलाप में प्रयुक्त कालगणना के मानदंड से उसकी माप कैसे होगी? ब्रह्माजी से कह देना कि वे अपने वर्षप्रभाण से मेरे लीला-वर्षों की माप न करें।' इसके बाद काल ब्रह्मलोक गया और सारी बातें ब्रह्मा से निवेदित कर दी।

ब्रह्मा ने कहा, 'सच्चिदानन्दविग्रह राम ने ठीक ही कहा है। वे काल, माया तथा गुणों के नियंत्रणकर्ता हैं। उनको कौन वर्जित कर सकता है। हम सभी उनके वशवर्ती हैं। तुम उनकी इच्छा का अनुवर्तन करो। तुमने भगवान् को अपना भयानक रूप दिखाकर महान् अपराध किया है। अतः पुनः अयोध्या जाकर इस अविनय के लिये क्षमा-याचना करो। वे दयासिंधु हैं शीघ्र प्रसन्न हो जायेंगे।' ब्रह्मा को प्रणाम कर लिये क्षमा-याचना करो। उसे आया जानकर राम ने लक्ष्मण को प्रतिहार नियुक्त कर काल पुनः साकेत गया। उसे आया जानकर राम ने लक्ष्मण को प्रतिहार नियुक्त कर स्वजनों को विदा किया। काल को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसके दरबार में प्रवेश करते ही स्वात्मशक्ति स्वरूपिणी जानकी को सिंहासन पर बैठाकर भगवान् स्वयं अन्तर्धान हो गये। उसने जगन्माता को दूर से ही प्रणामकर पूछा, 'भगवान् राम कहाँ हैं?' इतना कहने के बाद वह देखता क्या है कि परालक्ष्मी सीता भी अंतर्धान हो गयीं।

इस प्रकार सिंहासन को सूना देखकर काल युगलस्वरूप को ढूँढ़ने निकला । उसने तीनों लोक छान डाले किन्तु उनका कहीं संधान न मिल सका । तब उसने भगवान् की दिव्य लीलास्थली सरयू तटस्थ प्रमोदवन में प्रवेश करना चाहा । द्वार पर आते ही उसे एक अत्यन्त वृहदाकार भयंकर पुरुष मिला । वह गरजकर बोला, 'मुझे युद्ध में पराजित करो तभी भीतर घुसने पाओगे । दोनों में घोर युद्ध छिड़ गया । वह एक हजार वर्षों तक चलता रहा । अंततः काल पराजित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । तब उसने द्वाररक्षक से अपना परिचय देने को कहा । वह बोला, 'मैं प्रमोदवन का रक्षक और राम का भक्त हूँ ।'

काल ने पराजित हो ब्रह्मलोक को प्रस्थान किया । मार्ग में गंगा तथा गंडकी नदी के संगम पर स्थित वशिष्ठाश्रम के निकटवर्ती वन में उसने सीतासहित राम को मृगयाविहार करते देखा । वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और ब्रह्मा के आदेशानुसार पूर्वकृत अपराध के लिए क्षमा माँगी । राम ने क्षमा करते हुए उससे कहा, 'तुम मुझे कहाँ-कहाँ ढूँढ़ आये ?' काल ने सारा वृत्तान्त सुनाते हुए अंत में कहा, 'मैं निराश हो ब्रह्मलोक जा रहा था, बीच में सीभाग्य से आपके दर्शन हो गये । क्रतार्थ हो गया ।' राम ने कहा, 'मैं यहाँ भी हूँ, साकेत में भी हूँ, प्रमोदवन में भी हूँ । अब तुम लौटकर पुनः साकेत जाओ, जहाँ मेरा सिंहासन है ।' काल उसी समय साकेत चला गया । उसने देखा कि मणिजटित सिंहासन पर त्रैलोक्य सुन्दर राम सीतासहित विराजमान हैं । इस दिव्यदर्शन से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा । राम ने उसे निकट बुलाकर कहा, 'तुम हमारे भक्त हो । मैं अब ब्रह्मा के वचन को सत्य करने के लिए अपने दिव्य-धाम को जाना जाहता हूँ । मेरी सारी लीलाएँ पूरी हो चुकीं । तुम अपनी तिरोभावकारिणी शक्ति का प्रसार करो ।'

काल से यह मंत्रणा हो रही थी कि दैवयोग से उसी समय वहाँ महर्षि अत्रि के पुत्र महायोगी दुर्वासा आ गये । लक्ष्मण ने उनका अर्चना द्वारा यथोचित सत्कार किया । मुनि ने लक्ष्मण से कहा, 'तुम शीघ्र राम को मेरे आगमन की सूचना दो ।' लक्ष्मण चिन्ता में पड़ गये । पूर्वांगनुक से राम मंत्रणारत थे । उस समय मुनि के आने की सूचना देने के लिए भीतर जाना अनुचित था इससे भाई के निर्देश की अवज्ञा होती थी । वे मुनि से बोले, 'देव, ! ऐसा ही करूँगा । क्षणभर रुक जाइए । मैं प्रतिहार का कार्य कर रहा हूँ ।' दुर्वासा ने क्रुद्ध होकर कहा, 'रघुवंशी राजाओं ने यह सनातन रीति स्थापित कर रखी है कि मुनि अंतःपुर में भी निर्बाध चले जाते हैं । यह तो दरबार है । तुम द्वार पर आये मुझको रोक रहे हो । अभी घोर शाप देता हूँ ।' लक्ष्मण शाप और राजाज्ञा की अवहेलनाजनित दंड के भय से चिताविष्ट हो भीतर गये । वहाँ भाई का विकराल स्वरूप देखकर वे संत्रस्त हो उठे । उनके विराट् मुख के भीतर चन्द्र, सूर्य तथा तारागणों सहित सातों लोक, स्वर्ग, नरक तथा वरुणालय, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र समस्त दैवी, मानुषी तथा राक्षसी सृष्टि समाहित हृष्टिगोचर हुई । उसी प्रकार काल भी भयंकर आकृति धारण किये था । लक्ष्मण को ऐसा प्रतीत हुआ कि उन दोनों में से एक विश्व के जीवों को ग्रस रहा है,

दूसरा उन्हें आत्मसात् कर रहा है। इन अदृष्टपूर्व रूपों को देखकर लक्ष्मण संशय में पड़ गये कि उन दोनों में राम कौन है? वे सोचने लगे कि मेरे विश्वमोहन बंधु का ऐसा भयानक स्वरूप क्यों हो गया? इनमें से दूसरा कौन है? रुद्र या यम? यह विचार करते-करते उनकी आँखें मुँद गयीं और वे मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ देर बाद उठने पर उन्हें सीतासहित राम पूर्ववत् सिंहासनस्थ दिखायी पड़े। राम ने काल को विसर्जित करते हुए पान का बीड़ा दिया। वह प्रसन्नचित चला गया।

काल के विदा हो जाने पर लक्ष्मण ने भाई से दुर्वासा के आने की बात कही। राम स्वर्ण-सिंहासन से उत्तरकर द्वार तक गये, मुनि को सादर भीतर लिवा लाये और सीता के साथ उनकी पूजा की। मुनि बोले, 'आपने अवतार लेकर राक्षसी माया से संत्रस्त जीवों का त्राण किया। अब प्रार्थना है कि भूतमात्र के आत्यंतिक दुःख-नाश के लिए उस ज्ञान का उपदेश करें, जिसके द्वारा मृत्युलोक के जीव सहज ही भवसंतरण कर सके।' स्वकथित गीता के १८ अध्यायों में भक्ति, दर्शन तथा वैष्णवाचार की विशद व्याख्या करके राम ने दुर्वासा को दिव्यदृष्टि प्रदान की। उसके द्वारा स्वरूप दर्शन प्राप्तकर वे कृतकृत्य हो गये। भगवान् ने आगामी सारस्वत कल्प में उन्हें लीला-प्रवेश का आश्वासन दिया। मुनि प्रभु को आँलिगन कर उनके चरण-कमलों को हृदय में धारण किये हुए अपने आश्रम को चले गये। उन्होंने अपना शेष जीवन राम-यशागान करते हुए रामतीर्थों के पर्यटन में व्यतीत किया। इसी भाँति कतिपय अन्य देवर्षियों ने भी राम की अहेतुकी कृपा से रसभोग फलात्मिका भक्ति प्राप्त की।

दुर्वासा के चले जाने पर प्रतिहार रूप में राजाज्ञा का उल्लंघन करने से भयभीत लक्ष्मण राम के समीप जाकर बोले, 'नाथ! आपका विकराल रूप देखकर मैं बहुत डर गया। आप से बातें करनेवाला वह दूसरा व्यक्ति कौन था? मैंने आपके आदेश की अवज्ञा की है। इस हेतु अंपराधी हूँ। कृपया उचित दंड की व्यवस्था दें।' राम ने कहा, मुझसे बातें करनेवाला वह अन्य व्यक्ति काल था। वह मेरा आज्ञापालक है। अपने प्रयोजनवश मुझसे कुछ मंत्रणा करने आया था। मैंने देवकार्य पूरा कर लिया है। कर्म, भक्ति तथा ज्ञानमार्ग का पथ प्रशस्त कर लोकधर्म की भी यथेष्ट स्थापना कर चुका हूँ। अब यहाँ मुझे कुछ भी करना अवशिष्ट नहीं रह गया है। अतः इस लीला का पटाक्षेप होगा।'

अग्रज के मुख से लोकान्तरण का संवाद सुनते ही लक्ष्मण उद्विग्न हो उठे। उन्हें दुःखी देखकर राम ने कहा, 'भाई! तुमने दंड की व्यवस्था देने की बात कैसे कही? हम दोनों अद्वय हैं। उनमें कौन दंड्य है कौन दंडयिता? तुम मेरे अभिन्नांश कही? हम दोनों अद्वय हैं। तुम्हारे बिना मेरी लीला हो ही नहीं सकती। तुम त्रिकाल में शेषावतार संकर्षण हो। तुम्हारे बिना मेरी लीला हो ही नहीं सकती। किन्तु तुम्हें मैंने प्रतिहार का कार्य सौंपा था। भी मेरे कोपभाजन नहीं बन सकते। किन्तु तुम्हें मैंने प्रतिहार का कार्य सौंपा था। इसलिए यदि तुम दण्डसेवन नहीं उसका तुमने परिस्थितिवश अतिक्रमण किया। दण्ड का स्वरूप होगा—मेरे लोक-करोगे तो लोक में वेद-विष्णवी अपवाद फैलेगा। दण्ड का स्वरूप होगा—मेरे लोक-लीला के तिरोधान काल तक तुम्हारा त्याग।'

लक्ष्मण बोले 'प्रभो ! मैं आपकी समस्त राजसी तथा रसमयी लीलाओं में साथ रहा । अब वियोग कैसे सह पाऊँगा ? यदि इस प्रकार छोड़ना था तो मझे लीलारसास्वादन कराया ही क्यों ? आपके चरितों का स्मरणकर मेरा अंग-अंग जला जा रहा है । कोई भी दण्ड दें किन्तु चरण-कमल से अलग न करें । मैं आपका सान्निध्य प्राप्त करने के लिए पशु, पक्षी, लता, गुलम, वृक्षादि कुछ भी होने को रंगार हूँ । प्रमोदवन-लीला में मुझे भी स्थान दें, जिससे कभी भी आपके विश्लेष की पीड़ा न भोगनी पड़े । आप लीलोपसंहार न करें । लीला ही मेरा सर्वस्व है । उसके अभाव में मैं जीवन धारण न कर सकूँगा ।'

राम ने कहा, भाई लक्ष्मण ! मेरी लीला का कभी अभाव नहीं होता । तुम किसी भी स्थिति में मुझसे अलग नहीं हो सकते । मैं तुम्हारे हृदय में स्थित हो लीलाएं करता हूँ, अज्ञान से इतर प्रतीत होता है । तुम्हीं कल्पांत में प्रलय के अनन्तर शेष रूप में मुझे शश्यासुख देते हो । मेरे लीलानंद के लिए तुम्हारा वही परमरूप है । तुम्हें मोह नहीं करना चाहिए ।' यह सुनकर लक्ष्मण बोले, 'राजीव लोचन ! आप स्वयं ब्रह्म हैं । अपना स्वरूप आप ही जानते हैं या आपकी कृपा से भक्तजन उसका किंचित् आभास पा सकते हैं । मेरी यही अभिलापा है कि जन्म-जन्म में आपकी चरणरज प्राप्त करता रहूँ । लीलानंद को छोड़कर मुझे सावंभीम पद भी स्वीकार्य न होगा ।' इस पर राम ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, 'मेरा नाम, धाम, लीला तथा परिकर सभी नित्य हैं । भूमि का भार उत्तारकर अब मैं प्रेमाभक्ति के प्रपोषणार्थ लोकलीला के समस्त परिकरों को लेकर प्रमोदवन जाऊँगा । तब तक तुम ध्यान-ज्ञान तत्पर रहकर सरयू तटस्थ अपने आवास में धैर्य धारण करके प्रतीक्षा करो ।' भगवान् के इन उपदेशपूर्ण वाक्यों से लक्ष्मण का लीलातिरोधान की संभावना से उत्पन्न दुःख दूर हो गया । बड़े-ही विनयपूर्ण स्वर में उन्होंने निवेदन किया, 'आपकी परालीला कालातीत है । वही प्रेमी भक्तों का संबल हैं । आपके स्वरूप प्रबोधन से मेरी विरह कातरता दूर हो गयी । मैं आपकी रसात्मिका लीला में सम्मिलित हो नित्य परिकरों के साथ निर्भय विचर्षणा ।' यह कहकर वे अपने सरयूतटस्थ प्रासाद में चले गये और दण्डस्वरूप एकांतवास करते हुए परम निवृत्तिभाव से कालक्षेप करने लगे ।

राम के परमधामगमन की तैयारी का समाचार पाकर अयोध्यावासी व्याकुल हो गये । उन्होंने समवेतरूप में उपस्थित होकर निवेदन किया, 'महाराज ! हम लोगों ने सुना है कि आपका अयोध्या के परे भी कोई धाम है और अब वहाँ के लिए प्रस्थान करना चाहते हैं । हम लोगों को छोड़कर क्यों जा रहे हैं ? हमारा उद्धार मेरी लीला का आविर्भवि-तिरोभाव होता रहता है । तुम लोग सदैव मेरे दर्शन, आलाप तथा कथा-श्रवण में लीन रहते हो । अयोध्या-मंडल के निवासी पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों तक को मैं मृत्यु के अनन्तर गरुड़वाहनत्व प्रदान कर स्वर्ग भेजता हूँ । अतः तुम सभी अनायास ही परमपद के अधिकारी होगे ।'

अयोध्यावासियों के चले जाने पर भगवान् ने गोपों को बुलाया और दिव्यधाम यात्रा की योजना से उन्हें अवगत कराते हुए कहा, ‘अपनी लोकलीला का प्रयोजन पूरा करके मैं प्रमोदवन जा रहा हूँ। तुम लोग मेरा स्मरण करते एवं मेरे वचनों में आस्था रखते हुए धैर्यपूर्वक जीवन-यापन करना। इस प्रकार आश्रितों का प्रबोधन कर वे अपनी मर्यादाशक्ति सीता और प्रेमाशक्ति सहजा को लेकर नगर से बाहर सरयू तट पर स्थित आरामकुंज में चले गये। वहाँ से उन्होंने अयोध्या में दुंडुभी द्वारा यह घोषणा करायी कि आज मैं नित्यधाम के लिए प्रयाण करूँगा। जो चलना चाहे मेरे साथ चले। यह संवाद पाकर स्वाराज्य पद-प्राप्ति की आकांक्षा से सारे अयोध्यावासी कुटुम्बियों, सम्बन्धियों, मित्रों तथा सेवकों सहित एकत्र हो गये। इसका आभास पाकर कीट, पतंग, पशु, पक्षी आदि भी वहाँ आ गये। सबने अमृतोपम सरयू जल में स्नानकर दिव्य शरीर प्राप्त किया। भगवान् राम सीतासहित दिव्य सिंहासन पर बैठे। तीनों भाई तथा हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, नल, नीलादि पार्षद उनकी सेवा में उपस्थित थे। सरस्वती वीणा धारण किये स्तुति कर रही थीं, बृहस्पति, शेष प्रभृति देवता स्तोत्रपाठ में मग्न थे। उसी समय अवधवासियों को ले जाने के लिए अग्नित दिव्य विमान आ गये। राम ने समागत प्रजा को उन पर आरूढ़ होने का आदेश दिया। आकाश में किन्नरों का मधुरगान गूँज उठा। देवता और गंधर्व पुष्प-वर्षा करने लगे। उनके देखते-देखते दिशाओं को प्रकाशित करते हुए विमान अयोध्यासियों को लेकर उड़ चले। अन्तिम विमान में परिकरों एवं पराशक्ति सहित भगवान् राम स्वयं विराजमान थे।

राम की परमधाम यात्रा के पश्चात् उनके, द्वारा आदिष्ट राजकुमार गण अयोध्या के ब्रज-प्रदेश में गये। वहाँ गोप-गोपियों से संपर्क स्थापित कर उन्होंने राम की रसमयी लीलाओं के प्रत्यक्षानुभूत तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त किया। कालांतर में इन्हीं के द्वारा भक्ति का विश्वव्यापी प्रचार हुआ।

इस प्रकार भक्तराज भुशुण्डि को रामचरित का सांगोपांग वर्णन सुनाकर ब्रह्मा बोले, ‘ब्रह्म राम की कथा मुझे समाधि में जैसे उपलब्ध हुई थी उसका सारांश मैंने इस आदिरामायण नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। यह गुह्यलीला जन-सामान्य में कदापि प्रकाश्य नहीं है। तुम्हें अधिकारी समझकर मैंने इस लोक-पावन चरित को कथानायक की आज्ञा से सुनाया। इसे सर्वप्रथम प्रमोदवन में राम ने सीता से कहा था, फिर सीता ने लक्ष्मण को और लक्ष्मण ने भरत को सुनाया। हनुमान न उसी को कभी राम के मुख से सुना। पुनः हयग्रीव से अगस्त्य ने प्राप्त किया। उन्हीं से सुनकर मैंने प्रभु का यह रहस्यमय चरित्र वर्णित किया। यह कथा चित्तपोषक तथा हृदय को पवित्र करनेवाली है। इसके पठन एवं श्रवण से समस्त लौकिक एवं पारमार्थिक मनोरथ सिद्ध होते हैं। एकांतिक तथा रसज्ञ भक्तों के लिए यह विशेष रूप से मननीय है।’ रामभक्त भुशुण्डि इस अनुग्रह के लिए ब्रह्मा के प्रति कृतज्ञता निवेदित करते हुए बोले, ‘पितामह! आपकी कृपा से राम का यह अद्भुत चरित सुनकर आज मैं धन्य हो गया। मेरा मोह दूर हो

गया। मुझे पूर्वजन्म का ज्ञान प्राप्त हो गया। मैं अनेक जन्मों से रामभक्त रहा हूँ। आपके अनुग्रह से वह भक्ति सुदृढ़ हो गयी। इस द्वीपस्थ पर्वत पर मैं रामभक्त्यामृत पान कर अहर्निश आत्म-विभौर रहता हूँ।

इसके बाद भुशुण्ड ने ब्रह्मासहित सभी समुपस्थित देवों की पूजा की और अत्यन्त विनम्र भाव से उन्हें करबद्ध प्रणामकर विसर्जित किया।

श्रीगणेशाय नमः । श्रीरामाय नमः ।

## प्रथमोऽध्यायः

ॐ आदिरामायणं नामं श्रीरामचरितं शुभम् ।

किञ्चित्समाधावालोच्य प्रवक्ष्यामि प्रयत्नतः ॥

ॐ नमः परमहंसास्वादितचिन्मयमकरन्दाय रुचिरनखशिखान्तरल्ल-  
प्ररोहपल्लवितर्सिंहासनप्रान्तपीठप्रदेशाय मुनिमानसमधुकरप्रमोदाय  
श्रीरामचन्द्रचरणयुगलाय ।

### ब्रह्मोवाच

रामं लोकाभिरामं रघुवरतनयं कोशलामुक्तिपुर्या  
खेलन्तं कामकेर्लि सुविमलसरथूतीरकुञ्जे नटन्तम् ।  
जानक्या चारुहासच्छविविशदशरच्चन्द्रिकाकान्तिमत्या  
संयुक्तं राज्य (ज ?) वेषं ललितरसमयं ब्रह्म पूर्णं नमामि ॥१॥  
भक्तानां प्राणनाथं वरदपरिवृद्धं<sup>२</sup> वंशवर्यं वरेण्यं  
शुद्धं श्यामावदातं हरितमणिरुचिं सच्चिदानन्ददेहम् ।  
आभीरीनेत्रपद्मप्रकरदिनकरं पूर्णचन्द्राभिरामं  
रामं श्यामं प्रकामं निजहृदि कलये कोटिकामावतारम् ॥२॥  
मुक्ताहाराभिरामं मणिमुकुटसमाबद्धसद्गुच्छं  
मन्दस्वच्छामृताब्धिः<sup>३</sup> प्रतिमविहसितं चारुबिम्बोष्ठकान्तिम् ।  
शृङ्गारे कान्तवेषं परमतमरसानन्दसाक्षात्कृताङ्गं  
गम्भीरावर्तनाभिं त्रिवलिमद्गुदरं<sup>४</sup> नौमि रामं रमेशम् ॥३॥  
एकं नित्यं स्वसाक्षि स्वमहिमनि सदा संस्थितं स्वानुभावं  
स्वाधारं ब्रह्मणोऽप्याश्रयममितगुणं भूरि कल्याणवेषम् ।  
महांसेशं (तं रासेशं ?) निरंशं निरवधिमवधिं वस्तुमात्रस्य तत्त्वम्  
निस्त्रैगुण्यं महस्तत् स्मरसि न हृदये पूर्णरामाभिधानम् ॥४॥

१. °नखरशिखरांतं-रीवां, मथुरा । २. °परिवृद्धं-अयोध्या । ३. °स्वच्छ°-अयो० ।  
४. °मुदरं—अयो० ।

मत्स्यं कूर्मं वराहं नृहरिमथ हरिं वामनं हंसरूपं  
 यज्ञं नारायणाख्यं त्रिभुवनललितं भार्गवं वै हयास्यम् ।  
 प्रद्युम्नं<sup>१</sup> वासुदेवं कलिभलदमनं<sup>२</sup> रेवतीप्राणनाथं  
 बुद्धं कर्लिक यदन्त्ये न भवति सकलं ब्रह्म रामं स्मरामि<sup>३</sup> ॥५॥  
 या ते नित्यैव लीला प्रभु(म ?)दवनमहारण्यवृद्धावनादौ  
 वेदानां गोचरत्वं व्रजति न कथं स्वात्मभाषा स्फुरन्ती ।  
 सा मे सर्वस्वमास्तां रतिमयसहजानन्दकेलीनिधानं  
 नान्या प्रेमणार्थता त्वय्यतिशय<sup>४</sup> वरदेश प्रभो रामभद्र<sup>५</sup> ॥६॥  
 रक्ताशोकद्रुमालीविरचितसुमहामण्डपान्तर्निषणां  
 सीतासङ्केतकेलीप्रियमत उरसा<sup>६</sup> क्रान्तगोपीकदम्बम् ।  
 नीलाभ्रश्यामलं<sup>७</sup> तज्जयतु हृदि सदा पूर्णशृङ्गारतत्त्वं  
 धाम श्रीरामनाम त्रिभुवनसुखदं कोटिकामावतारम् ॥७॥  
 पद्भ्यां मञ्जीरवद्भ्यां सुललितम(ल ?)वली<sup>८</sup> पल्लवश्रीमुखाभ्यां  
 क्रीडन् केलीनिकुञ्जे विहसितसहजानन्दनीशक्तियुक्तः ।  
 शुष्कं दावाग्निदग्धं द्रुमविटपमहा (हो ?) वंशिकानादवृष्टचा<sup>९</sup>  
 पीयूषाघैर्नयन्तं पुनरपि हरित (तां ?) रामचन्द्रं भजेऽहम् ॥८॥  
 हंहो माधुर्यलक्ष्मीस्तव नयनसुखं वर्धयत्वस्मदीयं  
 पूर्णा ते राम दृष्टिर्भवतु सकरुणा नित्यमेव प्रसन्ना ।  
 त्वत्कीर्तिः कण्ठदेशे निवसतु नितरामादिविद्वत्प्रगीता  
 चित्तेऽन्तर्भातु नित्यं तव पदयुगलं विश्वतापापहन्तृ<sup>१०</sup> ॥९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 ब्रह्मस्तुतिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ।

- 
१. इतः पूर्व=त्रुटिचिह्नं दत्त्वा प्रान्तभागे अधिकं रीवांपुस्तके—  
 “रामं कृष्णं च बुद्धं यवनवधकरं चक्षते वेदवेदो  
 यस्यांशं तं परेशं स्मर यदि सततं सन्निधिं वाच्छ्वसे चेत् ॥”
  २. कंसारिकृष्णं-मथु०, अयो० । ३. प्रसिद्धमेतेऽशां रामस्य श्रीरामं परात्परं  
 स्मर—मथु० अयो० । ४. नाना केषार्थतात्वय्यविषय—अयो० । ५. रामचन्द्र—  
 अयो० । ६. °प्रियमन उरसः—अयो० । ७. °श्यामलां—अयो० । ८. °नवली—  
 रीवां, अयो० । ९. °वृष्टा—अयो० । १०. °हात्वं—रीवां, अयो० ।

## द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मणो विपुले सत्रे संगता देवतागणाः ।  
यजमानं पर्यपृच्छन् बृद्धं विश्वपितामहम् ॥ १ ॥

**देवा ऊचुः**

भगवन् देवदेवेश ब्रह्मन् लोकपितामह ।  
त्वमेव जगतः कर्ता॑ वेदस्य च समाश्रयः ॥ २ ॥  
त्वत्तो नान्योऽस्य॒ जगतः प्रवर्तनविधिक्षमः ।  
आदिमूर्तिः स्वयम्भूस्त्वं स्वराट् चैव विराट् प्रभुः ॥ ३ ॥  
वेत्सि भूतं भवद् भाव्यं दिव्येन ज्ञानचक्षुषा ।  
क आश्रयोऽस्य जगतः किं निमित्तं तथा प्रभो ॥ ४ ॥  
किं सारमत्र वेद्यं च बहुवलिग्नि चागमे ।  
भवतः संमतं किं च लोकेशस्य विधेर्वद ॥ ५ ॥  
क आदौ विनियोक्ता च कः स्वभावोऽस्य संततम्<sup>३</sup> ।  
किं स्वरूपं क आकारो ब्रह्मापि वद कीदृशम् ॥ ६ ॥  
कीदृशं तस्य संस्थानं किं स्थानं परमं पदम् ।  
सगुणं निर्गुणं<sup>४</sup> चापि ध्येयं ज्ञेयं च कीदृशम् ॥ ७ ॥  
एतदुद्देशतः पृष्ठं विरिज्ज्वे वद विस्तरात् ।  
त्वत्तोऽन्यो नास्य प्रश्नस्य प्रतीकर्ता जगत्त्रये ॥ ८ ॥  
तस्माद्वद् विधे सर्वं दीर्घसत्रेऽत्र तावके ।  
श्रोतुं च सक्षणान् विद्धि<sup>५</sup> सभ्यान् नो वेदवेदिनः ॥ ९ ॥  
भवांश्च दीक्षितो यज्ञे कं देवं यजसे पुनः ।  
एतच्च नो वद ब्रह्मन् परात्परविदुत्तम्<sup>६</sup> ॥ १० ॥  
सर्ववेदारविन्दानां मकरन्दरसं परम् ।  
नित्यं श्रावय नो ब्रह्मन् सदस्यत्र हविर्भुजाम् ॥ ११ ॥

१. कुर्याद्—अयो० । २. नान्यस्य—रीवां, अयो० । ३. संततः—अयो० ।

४. सगुणं० इति पूर्वार्धम्—मथु० । ५. सक्षणादविद्धि—मथु०, सक्षणान्वेद—अयो० ।

६. ‘‘………वद ब्रह्मन्………विदुत्तम्’—अयो० ।

हर्वीषि भुजते देवाः क एकः फलदायकः ।  
मखेषु वापि यज्ञेषु तदिदं च वद प्रभो ॥१२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
प्रश्नरूपं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

●

### तृतीयोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्ठं सभास्तारा<sup>१</sup> लोकोपकृतिः कारणम् ।  
भक्ताः परमहंसाश्च कृतार्थाः स्युर्यतोऽखिलाः ॥ १ ॥  
राम एवास्य जगतश्चाश्रयः सर्वभूतभूत<sup>२</sup> ।  
राम एव निमित्तं च निजलीलारसात्मकः ॥ २ ॥  
राम एव परं सारं वेद्यं निगममूर्द्धसु ।  
ममापि संमतं<sup>३</sup> (तत्त्वं ?) राम एव न संशयः ॥ ३ ॥  
मामादौ सर्वजगतो राम एव नियुक्तवान् ।  
रामस्य च स्वभावोऽस्ति वेदानामप्यगोचरः ॥ ४ ॥  
नीलरूपं चिदाकारः सच्चिदानन्दविग्रहः ।  
प्रतिष्ठा ब्रह्मणोऽप्येतत् परं ब्रह्म च तादृशम् ॥ ५ ॥  
सगुणं निर्गुणं चापि भेदाभेदविवर्जितम् ।  
एकरूपं सदा ध्येयं पूर्णं मायाविवर्जितम् ॥ ६ ॥  
चिदानन्दोऽस्य संस्थानं स्थानमस्य सनातनम् ।  
सीतालोकं परं स्थानं चिन्मयानन्दलक्षणम् ॥ ७ ॥

१. महाभागा—रीवां, सभावद्भिः—अयो० । २. लोकस्योत्पत्तिः—रीवां,  
कोपप्रकृतिः—अयो० । ३. °रूपभूत—रीवां, मथु० । ४. विगम—अयो० ।  
५. संगतं—अयो० ।

कोशलाख्यं पुरं नित्यं चिल्लोक इति कीर्तितम् ।  
 अहं च विविधैर्यज्ञैः कोशलाधिपतिं यजे<sup>१</sup> ॥८॥  
 हविर्भुजां च सर्वेषां राम एव परायणम् ।  
 हविर्भुजामधिष्ठानं राम एव फलप्रदः ॥९॥  
 क्रतुयज्ञमये सत्रे सारभुग् राम एव हि ।  
 आदिरामायणं नाम श्रीरामचरितं शुभम् ॥१०॥  
 किंचिन्मूलचरित्रं च पवित्रं मङ्गलालयम् ।  
 जन्म कर्म च रामस्य वक्ष्ये त्रिभुवनेशितुः ॥  
 एकैकं विमलं गीतं वर्णितं चैव सूरिभिः ॥१२॥

देवा ऊचुः

को वा भुशुण्डनामासौ वैष्णवप्रवरो मतः<sup>२</sup> ।  
 तस्मै च कथमाख्यातमादिरामायणं शुभम् ॥१३॥  
 का च तत्र कथा दिव्या श्रीरामचरितात्मिका ।  
 अवतारचरित्रं किं किं वा मूलचरित्रकम् ॥१४॥  
 एतन्नो वद भो ब्रह्मन् संदिहानान् सभासदः ।  
 रामचन्द्रामृतकथाप्रश्नस्योत्तरमद्भुतम् ॥१५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 उपदेशकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

१. भजे—रीवां । २. प्रवरोत्तमः—अयो० ।

## चतुर्थोऽध्यायः

**ब्रह्मोवाच**

कालस्य भगिनी घोरा नाम्ना या कालकण्टका ।  
 तस्यां जातः<sup>१</sup> सूर्ययोगाद् भुशण्डो नाम वै द्विजः ॥ १ ॥  
 काकवेषधरः शूरो लोहतुण्डोऽशनिच्छदः<sup>२</sup> ।  
 विद्युद्गात्रो<sup>३</sup> मेघरावी प्रलयन्तानलेक्षणः ॥ २ ॥  
 महासत्त्वो<sup>४</sup> महावीरो महाबलपराक्रमः ।  
 नीलमेघसमाकारः कालकण्टकिकासुतः ॥ ३ ॥  
 त्रैलोक्यं स विनिर्जित्य ववृधे बलसंवृतः ।  
 तुण्डाधातेन नितरामुत्क्षिपन् कुलपर्वतान् ॥ ४ ॥  
 करालदशनः<sup>५</sup> शूरो नखोदीर्णमहोदधिः ।  
 पक्षतिद्वयशब्देन ब्रह्मण्डमपि<sup>६</sup> भेदयन् ॥ ५ ॥  
 गरुडं बलदुर्धर्षं विष्णुवाहनमद्भुतम् ।  
 बलाद्रणे विनिर्जित्य भुशुण्डो ववृधेतराम् ॥ ६ ॥  
 ततः सकोपनः कोपात् कृत्वा शब्दं भयानकम् ।  
 उत्पत्य प्रगतो व्योम्नि चालयन् सर्वखेच्चरान् ॥ ७ ॥  
 पक्षवाताहतास्तस्य विमानावलयो पतन् ।  
 ताराः प्रवेशयामास निजपक्षादिरोमसु ॥ ८ ॥  
 सूर्यं प्रकम्पयामास भगवन्तं दिवाकरम् ।  
 चन्द्रं च खण्डयामास तुण्डधातैर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥  
<sup>७</sup>अत्रासयद् देवगणान् महाबलपराक्रमः ।  
 पक्षानिलहतास्भोधिः समन्तादुदतिष्ठत ॥ १० ॥  
 ततो जवात् समुत्पत्य पदभ्यां भूमिमकम्पयन् ।  
 सुमेरुस्तद्वलेनोच्चैरकम्पत सुरालयः ॥ ११ ॥

---

१. यातः—अयो०, रीवां । २. सनिछदः—रीवां । ३. विद्युद्गत्तो—अयो०  
 रीवां । ४. महातत्त्वो—अयो०, रीवां । ५. करालवदनः—रीवां । ६. चापि—रीवां,  
 वापि—मथु० । ७. अत्राश<sup>८</sup>—रीवां ।

'विचेलुभूरिवेगेन सप्तपातालभूमयः ।  
इत्थं त्रिभुवने भीति कुर्वन् परमदर्शनः ॥१२॥  
स्वर्गं मर्त्यं च पातालमत्रासयत भीषणः ।  
ब्रह्मलब्धवरो घोरः काकरूपी दुरासदः ॥१३॥

### देवा ऊचुः

त्वया दत्तवरो घोरः काकरूपधरः<sup>३</sup> खरः ॥१४॥  
त्रैलोक्यं त्रासयत्येष भुशुण्डो नाम वै द्विजः ।  
तत्प्रतीकारकरणे भवानेकः क्षमो विधे ॥१५॥  
नो चेदसौ त्रिभुवनं निजपक्षमूले  
संपूर्णयिष्यति बली वरलाभदृसः ॥  
न ह्यस्य<sup>३</sup> वीर्यबलदर्पनिवारणाय।  
कोऽपि क्षमस्त्रिभुवने नरदेवमध्ये ॥१६॥  
इत्युक्तस्त्रिदशैर्ब्रह्मा भुशुण्डस्यालयं ययौ ।  
मध्ये मधु<sup>४</sup>समुद्रस्य द्वीपवर्ये महागिरौ ॥१७॥  
महाघोरे वने यत्र न देवा नापि मानवाः ।  
ब्रह्माणमागतं ज्ञात्वा वृद्धं लोकपितामहम् ॥१८॥  
सद्य एवासनात्तर्णमुदतिष्ठद् द्विजोत्तमः ।  
दिव्यासने तं संस्थाप्य कृत्वा पूजां महीयसीम् ॥१९॥  
उवाच प्रहसन् प्रीत्या पक्षिराजो विचक्षणः ।

### भुशुण्ड उवाच

भगवन् भवतो दृष्ट्वा संपूर्णा मे मनोरथाः ॥२०॥  
गृहाश्रमे<sup>५</sup> पवित्रत्वं (-त्वमागतं ?) भवदागमात् ।  
महतामागमो लोके केवलं भूतये नृणाम् ॥२१॥

### ब्रह्मोवाच

भवता वत्स वीर्येण त्रासितं भुवनत्रयम् ।  
नैतत्त्वोचितं धीमन् यस्मात्त्वं वैष्णवाग्रणीः ॥२२॥

१. विखेलु—रीवां । २. °धरो—अयो० । ३. न त्वस्य—अयो० । ४. सुधा—  
°मथु० । ५. “सार्थकता” इति टिप्पणी कृता पत्रप्रान्ते—मथुरा० ।

रामेण रचितं विश्वं भक्तानां सुखहेतवे ।  
 साधवो यदिदुःस्थाः स्युस्तदा रामः प्रकुप्यति ॥२३॥  
 रामे प्रकुपिते देवे कुतः क्षेमं चराचरे ।  
 तस्मादुपशमं गच्छ शान्तिरेव सतां मता ॥२४॥  
 शान्ति विना हरेर्भवित्तिर्वफलैव भविष्यति ।  
 यस्मान्नोद्विजते विश्वं स वै भागवतोत्तमः ॥२५॥  
 त्वं रामसेवकवरो विद्वान् विदितवेद्यकः ।  
 जगतो हितमन्विच्छन् सृष्टिरेषा हरेयतः ॥२६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 भुशुण्डोपशमो नाम<sup>१</sup> चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पञ्चमोऽध्यायः

#### भुशुण्ड उवाच—

बलकृष्णादिरूपाणि रामस्य स्युः सहस्रशः ।  
 तेषां मुख्यतमं किञ्चिद् ब्रूहि मह्यं पितामह ॥ १ ॥

#### ब्रह्मोवाच—

सर्वाण्येव स्वरूपाणि श्रीरामस्य श्रियः पतेः<sup>२</sup> ।  
 ध्येयानि चैव ज्ञेयानि शान्तानि प्रयतात्मभिः ॥ २ ॥  
 पुरा खलु खगेन्द्रेण गरुडेन मनोषिणा ।  
 धावन् गच्छन् वायुपुत्रो हनुमानिदमीरितः ॥ ३ ॥

#### गरुडउवाच—

हनुमन्<sup>३</sup> कुत्र वेगेन यासि त्वं धावनोद्घृतः ।  
 अत्याहितमिदं कार्यं कथमेवं भविष्यति<sup>३</sup> ॥ ४ ॥

१. भुशुण्डोपशमे—अयो०, मथु०, रीवां । २. सीतापतेः—अयो०, रीवां ।

३. हनुमान्—मथु०, रीवां ।

### १ हनुमानुवाच

नागान्तक खगाधीश याम्यहं कोशलापुरे ।  
 अतिकालो भवत्येष त्वं न जानासि किं सखे ॥५॥  
 रामदर्शनवेलेयं मध्याह्ने कोशलापुरे ।  
 तत्र गच्छाम्यहं तूणं तेन धावनवेगतः ॥६॥

### गरुडउवाच

कोऽसौ रामस्त्वया प्रोक्तश्चातुर्वर्ण्येऽस्ति कश्चन ।  
 आहोस्त्वित् कोप्यसौ देवो दैत्यो गन्धर्व एव वा ॥७॥

### हनुमानुवाच

त्रैलोक्याधिपतिः श्यामो नीलनीरदविग्रहः ।  
 रामो दाशरथिदेवो भवतो विदितो न किम् ॥८॥  
 आत्मैव वज्ज्चितस्तेन येन रामो न वीक्षितः ।  
 न श्रुतो नैव च ध्यातो न प्रेम्णा परिकीर्तितः ॥९॥  
 रामोऽस्य जगतो हेतुः सच्चिदानन्दविग्रहः ।  
 परमात्मा प्रभुः साक्षी स एव च गतिर्नृणाम् ॥१०॥  
 न तं विना मुक्तिदोऽन्यो नामृतस्याश्रयोऽपि च ।  
 स एव च परं ब्रह्म वेदमूर्ढ्यसु गीयते ॥११॥  
 एको रामः सर्वभूतान्तरात्मा  
 सर्वावासः सर्वकल्याणभूमा ॥  
 सर्वशाश्वो प्रभोद्वनधामा  
 यस्यांशांशा भान्ति सर्वेऽवताराः ॥१२॥

### गरुड उवाच

एवं चेत्तर्हि हनुमन् प्रसादाद् भवतो मम ।  
 तदर्थं किं न भवेत् सर्वकल्याणदं सखे ॥१३॥

१. “इदं कार्यं अत्याहितं महाभीतिदं प्राणं त्यक्त्वापि साध्यं भविष्यत्यन्यथा एवं प्रकारेण धावनं कथं भवेत्” इति टिप्पणी (४ श्लोके)–मथु० ।

### हनुमानुवाच

आगच्छ खगराज त्वं कोशलाधिपतेः पुरम्<sup>१</sup> ।  
 तत्र श्रीरामचन्द्रस्य दर्शनं ते भविष्यति ॥१४॥  
 मत्सार्थं ते न निर्वाहस्त्वमागच्छ दिनान्तरे ।  
 अहमद्य गमिष्यामि शीघ्रदर्शनलालसः ॥१५॥  
 इत्युक्त्वा हनुमांस्तूर्णं कोशलां नगरों ययौ ।  
 दिनान्तरे च गरुडस्तत्र यातः सकौतुकम् ॥१६॥  
 गत्वा दर्शा रघुपुञ्जवमभ्रनीलं  
 सीतायुतं कटिनिषङ्गधनुःशराद्यम् ॥  
 केयूरकड़कणकिरीटसुकुण्डलाढचं  
 पीताम्बरं मधुरहासमुखारविन्दम् ॥१७॥  
 एवं विलोक्य गरुडः सुमग्नो रूपसागरे ।  
 ततो हनुमता प्रोक्तो राम एषोऽभिवन्द्यताम् ॥१८॥

### गरुड उवाच

गुजास्त्रजः<sup>२</sup> केकिपिच्छावतंसः<sup>३</sup>  
 करे रसाला मुरली यदा स्थात् ॥  
 गोपाङ्गनाशचेद्विलसन्ति पाश्वें  
 सीतापते त्वां प्रणमामि नित्यम् ॥१९॥

### हनुमानुवाच

सर्वस्वरूपो भगवानयमेव रघूत्तमः ।  
 यादृशी भावना यस्य तादृशस्तस्य<sup>४</sup> भासते ॥२०॥  
 एष एव पुनर्देवः परिवृत्यावलोक्यताम् ।  
 ततः स गरुडो भूयः परिवृत्य व्यलोक्यत् ॥२१॥

१. पुरे--मथु० । २. सजः--अयो०, मथु०, रीवां । ३. °तंसाः--मथु० ।  
 ४. तादृशी--मथु०, अयो० ।

ददर्श रामस्य<sup>१</sup> गुज्जाकलापं  
मयूरपिच्छस्फुरितावतंसम् ।  
वंशीकरं गोपदारैः परीतं  
कृष्णं त्रिभञ्जीललितं खगेन्द्रः ॥२२॥  
वृन्दावनस्थं स्मितपीयूषवर्षैः  
सिञ्चन्तमङ्गानि मृगीदृशां च ।  
राधान्वितं पीतदुकूलयुग्मं  
हृष्ट्वा स तुष्टाव हृदि प्रसन्नः ॥२३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्ड-संवादे  
गरुडाय दर्शनदानं नाम<sup>२</sup> पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



### षष्ठोऽध्यायः

#### गरुड उवाच

तव स्वरूपं भगवन्नप्रमेयं  
वेदानामप्यादिसर्गोद्भवानाम् ।  
न च भ्रमेन्मा<sup>३</sup>दृश एष जन्तुः  
किमद्भुतं नाथ दयासमुद्र ! ॥ १ ॥  
तथापि ते भक्तवर्यो हनूमान्  
ज्ञात्वा समुद्वार्यतमं शठं भास् ।  
प्रदर्शयामास भवन्तमद्भुतं  
सर्वावितारांश<sup>४</sup>समूहमूलम् ॥ २ ॥

१. रामस्यांशं-मथु०, सुरयामं-रीवां । २. °दाने पंचमो-अयो०, मथु०, रीवां ।  
३. श्रयेन्मा-अयो० । ४. °वतारस्य-अयो० ।

दृष्टवैव ते नाथ पदास्वुजद्वयं  
 मायादिदोषातिगमद्वितीयम् ।  
 जातोऽस्मि भाग्येन विमुक्तमोहः  
 समुद्धृतोऽज्ञानरथात्तोऽहम् ॥ ३ ॥  
 अथापि भूयः करुणामृतं मयि  
 प्रवर्षतस्ते दीनवात्सल्यमेतत् ।  
 विज्ञातमेव व्यापि वैकुण्ठलोकात्<sup>१</sup>  
 परं पदं तेऽस्ति विमुक्तमेदम् ॥ ४ ॥  
 सर्वेऽपि ते वलकृष्णादिसंज्ञा  
 अनेककार्यप्रभवोऽवताराः ।  
 तवांशांशा एव ते त्वं च पूर्ण-<sup>२</sup>  
 शिवलोकेशः सहजानन्दनीशः ॥ ५ ॥  
 या ते शक्तिः सहजानन्दनीयं  
 सीतेतिनाम्नी जगतां शोकहन्त्री ।  
 तस्या अंशा एव ते सत्यभामा-  
 राधारुविमण्यादयः कृष्णदाराः ॥ ६ ॥  
 सर्वेऽशास्ते पूर्णशक्त्या समेताः  
 पूर्णनिन्दाः पूर्णचिच्छक्तिभाजः ।  
 तथापि दृष्टे त्वयि मूलैकमूले  
 महोदधौ पल्वलवत् स्फुरन्ति ॥ ७ ॥  
 प्रमुद्धने त्वं सहजाकेलिरक्तो  
 नित्यं विभासि प्रभुराभीरिकाभिः ।  
 संप्रत्यभिज्ञाय निजं स्वरूपं  
 सर्वा लीलां कृतवानत्र भूताम् ॥ ८ ॥  
 अतः परं नाथ न मेऽस्ति मोहो  
 भवत्स्वरूपे सहजानन्दनीश ।

१. वैकुण्ठो—अयो० रीवां । २. एव पूर्णस्तत्त्वं—मथु० रीवां ।

त्वमेव      सीतापतिरद्भुतक्रियः  
                   सहजापतिर्वापि<sup>१</sup>      प्रमोदधाम्नि ॥१॥  
 सदास्तु मे राम रति (हि) वै<sup>२</sup> त्वयि  
                   स्वसच्चिदानन्दरसैकसिन्धौ ।

तत्वं तव श्रीहयशीर्ष एव  
                   जानाति वागीश उदारचित्तः ॥१०॥

नान्यस्य सामर्थ्यमिहास्ति राम  
                   मनोवचोभ्यामपरिच्छेद्यमूर्तौ ॥११॥

नमस्ते रसिकेन्द्राय शृङ्खाररसमूर्तये ।  
 सीताकटाक्षसंदोहविजिताय                  परात्मने ॥१२॥

गोसंघ गोप गोपीश गोकुलेश रसालय<sup>३</sup> ।  
 करुणामृतपाथोधे रामचन्द्र नमोस्तु ते ॥१३॥

न ते परिच्छित्तिरनन्तवेदै-  
                   न योगदृष्टिप्रसरैस्तपोभिः ।

स्वेच्छैकमात्रेण                  चिदेकरूपो  
                   भवान्परिच्छेद्यतमः      स्वभक्तैः ॥१४॥

अक्रियस्यापिते गोष्ठे रिङ्गणं बाललीलया ।  
 जानुभ्यां भूतलस्थायि                  दैत्यमर्द्दनहेतवे ॥१५॥

तव गोदोहनं राम न वै गोपोचितं भवेत् ।  
 एता हि सद्गिरस्तासां सारं भक्तिः समुद्धृताऽ<sup>४</sup> ॥१६॥

यद्यत्करोषि नटवेषधरो विलासी  
                   तत्तत्तवैव<sup>५</sup> परमार्थत एव कार्यम् ।

नान्यस्य राम रमणीशतकामरूप  
                   गीतं सदैव निगमन्त्रितयेन नूनम् ॥१७॥

१. वै—अयो०, °पतित्वं—रीवां । २. रतिवै—अयो०, रीवां, मथु० । ३. गोकुले  
 सुरसालय—रीवां । ४. समुद्धृता—रीवां । ५. त्यैव—अयो० ।

एवं कृत्वा गरुडो राघवस्य  
स्तोत्रं मुहुस्तच्चरणारविन्दे ।  
अपीपतत् पुलकितविग्रहोऽय-  
मानन्दजाश्रूणि दृग्भ्यां विमुञ्चन् ॥१८॥

### श्रीराम उवाच

उत्तिष्ठ वत्स खगराज परं शुभं ते  
मद्वर्णनेन गत एव स मोहभावः ।  
मद्भक्तिमांस्त्रभुवने विचर प्रसन्नो  
नह्यस्ति तेऽभिलषिताचरणेऽन्तरायः ॥१९॥

### ब्रह्मोवाच

इत्थं श्रीरघुनाथस्य प्रसादमुपलभ्य सः ।  
कृतबुद्धिः कृतार्थात्मा बभूव बहुनिर्वृतः ॥२०॥  
तस्माद् भुशण्ड पक्षीन्द्र रामं भजितुमर्हसि ।  
श्री रामचन्द्रं प्रेमणा वै न<sup>१</sup> पश्यति स विजितः ॥२१॥  
तस्यैव सर्वरूपाणि रामस्य परमात्मनः ।  
आदिनारायणेशस्य सेव्यानि कृतनिश्चयैः ॥२२॥  
एवं स<sup>२</sup> गरुडो दृष्ट्वा राघवेन्द्रं परात्परम् ।  
महापुर्या हनुमता सेव्यमानमर्हनिशम् ॥२३॥

### हनुमानुवाच

पक्षीन्द्र त्वं हि धन्योऽसि राघवेन्द्रस्य दर्शनात् ।  
अत्याहितं हि देवानां भवतो वै भविष्यसि ॥२४॥

### गरुड उवाच

श्रीमतो राघवेशस्य देवदेवस्य शर्णङ्गणः ।  
दर्शनार्थमागतोऽहमयोध्यां मुक्तिदां पुरीम्<sup>३</sup> ॥२५॥  
अद्यैव सफलं जन्म साकेतदर्शनेन मे<sup>४</sup> ।  
अद्यैव सफलं ध्यानं प्रमोदवनदर्शनात् ॥२६॥

१. न यः-रीवां । २. हि-मथु० । ३. °र्थ प्रागतोहं पुरीमयोध्यां मुक्तिदां-  
रीवां, मथु० । ४. दर्शने मम-रीवां, मथु० ।

धिग् धिग् जन्म च तेषां वै ये न पश्यन्ति सादरम् ।  
प्रमोदवनभृथस्थां कोसलां सरयूं तथा ॥२७॥  
कोटयो ब्रह्मणाभृत्र रुद्राणां च भरुत्वताम् ।  
वसूनां वरुणानां च स्तुवन्तः पुरतः स्थिताः ॥२८॥

### हनुमानुवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि गरुड त्वं हि संप्रति ।  
सकुलस्त्वं पुनीतोऽसि राघवेन्द्रस्य दर्शनात् ॥२९॥  
श्रीरामे देवदेवेशे कोशलायां विराजति ।  
अंशावताराः कृष्णाद्याः प्रणभन्ति ह्य॑संख्यकाः ॥३०॥  
न ततोऽन्यमहं जाने देवदेवं खगेश्वर ।  
सर्वावतारनिधेश्च रघुवीराद् गुणाकरात् ॥३१॥

### गरुड उवाच

रामस्य बलकृष्णाद्याः सर्वेऽप्यंशाः सनातनाः ।  
न ततोऽन्यत्किमप्यस्ति स्थूलं सूक्ष्मं जगत्त्रये<sup>१</sup> ॥३२॥  
इत्युक्त्वा ताक्षर्यः कपीशं गच्छन् कर्तुं परिक्रमाम् ।  
महावैकुण्ठसेव्याया अयोध्यायाश्च सर्वतः ॥३३॥  
अयोध्यादक्षिणे भागे श्रीकृष्णं रुक्मणीयुतम् ।  
ददर्श गरुडस्तं च ननाम विधृताऽजलिः ॥३४॥  
नमन्तं गरुडं दृष्ट्वा रुक्मणीवल्लभो हि सः ।  
उवाच मधुरं वाक्यं प्रहसन् गरुडं तदा ॥३५॥

### कृष्णोवाच

अद्य ते सफलं जन्म जीवितं सफलं सखे ।  
गरुड त्वं हि धन्योऽसि अयोध्यापुरिदर्शनात्<sup>२</sup> ॥३६॥  
अयोध्यां परितो देशे कोटिविष्णवादयो वयम् ।  
वसामः सततं वत्स रघुवराज्ञाप्रपालकाः<sup>३</sup> ॥३७॥

१ चा°—मथु०, अयो० । २. °ललये—मथु०, रीवां । ३. पुरीद°...मथु० ।

४. च पालकः—अयो०, मथु० ।

इदमेव विजानन्ति ते वै रघुवरप्रियाः ।  
 तदितरेऽधमा जीवाः नित्यं स्वजनिदूषकाः ॥३८॥  
 एवं साकेतमहिमानं रहस्यं परमं सदा ।  
 स्तुत्वातिहर्षितस्ताक्ष्यो मुमोद च पुनः पुनः ॥३९॥  
 उवास परया भक्त्या मणिपर्वतसन्निधौ ।  
 गायन् श्रीराघवेन्द्रस्य चरितं भुक्तिमुक्तिदम् ॥  
 विष्णवादिभिः सदा सेव्यं श्रुतिस्मृति रसं सुखं ॥४०॥  
 दृष्ट्वा प्रभावमतुलं श्रीराघवस्य  
 तथैव साकेतपुरस्य नित्यम् ।  
 नमामि (ननाम ?) रोमाञ्चितप्रेमविह्वलः  
 स मारुती राघवरत्नमद्भुतम् ॥४२॥  
 सीतार्पाति कटिनिषङ्गिणमात्तचापं  
 रामं पयोदपटलाधिकमेचकाङ्गम् ।  
 केयूरिणं कनकरत्नकिरीटजुषं  
 श्रीलक्ष्मणेन युतमद्भुतकोशलेशम् ॥४३॥  
 तुष्टाव हनुमान् प्रीत्या साष्टाङ्गनतविग्रहः ।  
 'सकुर्वन् मुहुरत्यन्तं प्रेम रामे प्रतिक्षणम् ॥४४॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 हनुमदर्शनं नाम<sup>१</sup> षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

१. कुर्वन्हि—रीवां । २. °दर्शने—रीवां, मथु०, अयो० ।

## सप्तमोऽध्यायः

**श्री हनुमानुवाच**

नमामि ते नाथ पदारविन्दं  
 विष्णवादिसेव्यं च सुखैकहेतुम् ।  
 न यत्र सद्यः प्रमितिः श्रुतीनां  
 तत्रामिते वानरः कोऽस्म एषः ॥ १ ॥  
 तत्र प्रसादो मयि नाथ जात-  
 स्तथैव धामेश्वरिप्रेमदायाः ।  
 प्रभुद्वने नित्यनिकुञ्जकेली-  
 लसन्महामञ्जुलविग्रहायाः ॥ २ ॥  
 यदंशमात्रेण भवन्ति नित्यशो  
 लक्ष्म्यादयः शक्तिवराश्च सर्वाः ।  
 लीलेश्वरी नन्दननन्दिनी सा  
 मां पातु पादास्बुजनित्यभक्तम् ॥ ३ ॥  
 नहि प्रभावा<sup>१</sup>भ्युदिते रुचीनां  
 तमोभवे<sup>२</sup> दृष्टिपथं प्रयाति ।  
 तथा त्वयीशो<sup>३</sup> कोटिसूर्यप्रकाशो<sup>४</sup>  
 श्रीराघवेन्द्रे भक्तजंनैकलभ्ये ॥ ४ ॥  
 यदि<sup>५</sup> त्वमेतत्तिमिरं मोहरूपं  
 न संहरेदीश निजाश्रितेषु ।  
 कथं तदैषां गोचरत्वं प्रयाति  
 रूपं तथैतत् सच्चिदानन्द सान्द्रम् ॥ ५ ॥  
 गोपालराजस्य च नन्दनस्य<sup>६</sup>  
 गेहे पुरा वसन् सह लक्ष्मणेन च ।

---

१. प्रभावे-मथुरो । २. भवेद्-अयो०, रीवां । ३. त्वयि मे-अयो०, रीवां ।  
 ४. प्रकाशके-अयो०, रीवां । ५. त्वमेव-अयो० । ६. नहि-अयो० । ७. नन्दनंदनस्य-  
 अयो० ।

'अरीरमद्राम भवान् व्रजाङ्गना  
 उद्धारार्थं श्रुति-ऋष्यादिरूपाः ॥ ६ ॥  
 'तवैव लीला भुवने रसाला  
 सुधाबिधवत् पालयत्येव भवतान् ।  
 'नो चेत् कदाचित् त्वयि संतिरोहिते  
 'विशुष्येयुः पारमहंस्यभाजः ॥ ७ ॥  
 एवं विचिन्त्य भगवान् व्यतनोद्भवांस्तं  
 लीलामृतोदधिभुदारमनन्तसारम् ।  
 यस्यान्तरे परमहंसवराः सदैव  
 क्रीडन्ति कालशिरसि स्वपदं निधाय ॥ ८ ॥  
 त्वं भवितलभ्योऽसि हरे जनानां  
 'न ज्ञानयोगादितपोभिरुग्रैः ।  
 कथं तवेदृक् प्रसादोऽपि लभ्यः  
 कुतस्त्वां सन्निधौ दर्शनं ते ॥ ९ ॥  
 त्वं रामचन्द्रो नृपतेः कुमारो  
 नित्यं विलासी सरयूतीरवासी ।  
 तवांश एषः श्रीकृष्णो यशोदा-  
 गर्भं भविष्यति वै द्वापरान्ते ॥ १० ॥  
 अतो ह्यनन्तः शाश्वतस्त्वं पुराणः  
 पूर्णो नित्यः सच्चिदानन्द एकः ।  
 व्योमाकारस्त्वं स्वलीलाभिरुच्चैः  
 विश्वानन्दं जनयन् भासि रामः ॥ ११ ॥  
 नमस्ते रामचन्द्राय मुक्ता॑ हारावतंसिने ।  
 पञ्चरत्नावतंसाय सीतानेत्रविनोदिने ॥ १२ ॥  
 नमो गोपीदृगाराम रामनाम शुभावह ।  
 वंशीधर॒ घनश्याम वनमालिन् व्रजेन्द्र॑ ते ॥ १३ ॥

१. आमोदयद्-अयो०, रीवां । २. तथैव-मथु० । ३. नेचित्-अयो०, मथु० रीवां । ४. नास्ति-अयो० । ५. 'पारमहंस्य भाजाः-अयो०' । ६. विज्ञातं-अयो० ।
७. गुंजा॑-मथु० । ८. धनुर्द्धर-रीवां । ९. राघवेन्द्र-रीवां ।

केलिनीकेलिकान्ताय<sup>१</sup> श्रीकान्ताय सुखाब्धये<sup>२</sup> ।  
 गुणग्रामसमुद्राय<sup>३</sup> सीताकान्ताय ते नमः ॥१४॥  
 अपराधसहस्रेऽपि सद्य एव प्रसादिने ।  
 रामाय चैव रामाय नित्यमेव नमोनमः ॥१५॥  
 एवं स्तुत्वा पदाम्भोजमग्रहीत् रसिकेशितुः ।  
 प्रेमविह्वलितो<sup>४</sup> भूत्वा हनूमन् रामसेवकः ॥१६॥

श्रीरघुनन्दनोवाच<sup>५</sup>

उत्तिष्ठ वत्स हनूमन् लीलोपासनयानया ।  
 दृढ्या ते प्रसन्नोऽस्मि भक्तोऽसि मम सर्वदा ॥१७॥  
 रामो लीलाविशिष्टोऽहं त्वामानन्दयितुं क्षमः ।  
<sup>६</sup>बालक्रीडानुचरितैः पितरौ नन्दयामि च ॥१८॥  
 दृढलीलोपासनायां मारुते मतिरस्तु ते<sup>७</sup> ।  
 मम सर्वस्वरूपेण भक्तानां प्रकटत्वतः ॥१९॥  
 लीलामाधुर्यमात्रं तु स्वमास्वाद्यं रसोत्तरैः ।  
 भक्तैः परमहंसैश्च साधुभिर्हृदयालुभिः ॥२०॥  
 रसास्वादाय साधूनां ‘लीला या राघवस्य च ।  
 आस्वाद्यमाना सा वुद्ध्वा<sup>८</sup> मुक्तिमेव प्रयच्छति ॥२१॥  
<sup>९</sup>सामीप्यं तिष्ठ हनुमन् भक्तोऽसि मम सर्वदा ।  
 भज रामं राघवेन्द्रं <sup>१०</sup>पराभक्तिमवाप्नुहि ॥२२॥  
<sup>११</sup>गरुड त्वं च देवानां कार्यं साधय गच्छ भोः ।  
 साकेतस्योत्तरे कूले सरयूतीरयोर्द्वयोः ॥२३॥  
 नृणां संचरतां मृत्यौ पशुपक्ष्यन्त्यजात्मनाम् ।  
 भृङ्कीटपतञ्जानां वत्स त्वं वाहनो भव ॥२४॥  
 चतुर्भुजांस्तान् मद्रूपानानयस्वेह यत्नतः ।

१. केलिनिकेलि<sup>०</sup>-रीवां, मथु० । २. श्रान्ताय दुस्तरभ्रमैः-मथु० । ३. <sup>०</sup>निशा-  
 न्ताय-मथु० । ४. निरस्तसंशयो-मथु० । ५. श्रीभगवानुवाच-मथु० । ६. कृष्णावतार-  
 चरितैः गरुडं नन्दयामि च-मथु० । ७. मा ते भूयान्मतिः शठा-मथु० । ८. लीला भगव-  
 तो यतः-मथु० । ९. बुद्धिर्-रीवां, शुद्धा-मथु० । १०. स्वालयं गच्छ हनूमन् जातोसिच्छ-  
 न्नसंशयः-मथु० । ११. परां मुक्तिमवाप्स्यसि-मथु० । १२. रुद्रत्वं चैव-अयोः, रीवां ।

इत्थं विसृज्य भगवान् गरुडं रघुनन्दनः<sup>१</sup> ॥  
राम परमैश्वर्यभाविते सरयूतटे ॥२५॥  
एतद् भुशुण्ड ते प्रोक्तमाख्यानं परमाद्भुतम् ।  
<sup>२</sup>रामस्य चापि सीतायाः मिथस्तादात्म्यसूचकम् ॥२६॥  
तस्माद् विप्रतिपत्तव्यं<sup>३</sup> न कदाचिन्मनोषिणा ।  
यथा रामस्तथा सीता <sup>४</sup>तथा श्रीसहजा मता ॥  
अथाहि<sup>५</sup> ते प्रवक्ष्यामि राममाहात्म्यमुत्तमम् ॥२७॥  
यस्मात्त्वं रामभक्तोऽसि वैष्णवानां तथाग्रणीः ।  
आदिरामायणं नाम श्रीरामचरितं शुभम् ॥२९॥  
किञ्चित्समाधावालोक्य प्रवक्ष्यामि प्रयत्नतः ।  
अवतारचरित्रं च मूलं चरितमेव<sup>६</sup> च ॥३०॥  
एकोकृत्य लभेद्यत्र प्रवक्ष्यते मया द्विज ।  
एवं मया भुशुण्डाय प्रोक्तं तत्संहितामयम् ॥३१॥  
आदिरामायणं दिव्यं ब्राह्मे कल्पे विनिर्मितम् ।  
तच्छृंगतां सुराः सर्वे श्रीरामचरितं शुभम् ॥३२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे कथावतारो  
नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

१. च मरुत्सुतम्-मथु० । २. श्रीरामसहजा सीता-रीवां, अयो० । ३. हि प्रति०-  
अयो०, रीवां । ४. यथा सीता तथैव सः-मथु० । ५. तथापि-मथु० । ६. चारित्र०-मथु० ।

## अष्टमोऽध्यायः

**भुशुण्ड उवाच**

जन्म कर्म च मे दिव्यं वद रामस्य विस्तरात् ।  
तत्कथामृतपानेन मम चित्तं प्रसीदति ॥ १ ॥

**ब्रह्मोवाच**

पुरा दशास्यमुख्येषु राक्षसेषु जगत्त्रयम् ।  
व्याकुलीकृतमत्यर्थं तदा विधिरचिन्तयत् ॥ २ ॥  
अहो मया कृतं विश्वं विष्णुना प्रतिपाल्यते ।  
ईशेन हियते भूयः संप्राप्ते भुवनक्षये ॥ ३ ॥  
भुवनस्य क्षयश्चापि नाधुनैव भविष्यति ।  
कल्पं सारस्वतं नाम युगं त्रेताभिधं तथा ॥ ४ ॥  
प्रायेणैषां विनाशाय द्विजधर्मत्रयोद्गुहाम् ।  
भविष्यति स्वयं रामः प्रादुर्भूतः क्वचिद्भूवि ॥ ५ ॥  
ततः समाधौ प्रबभूव वाणी  
स्वयं भविष्यामि कलाभिरन्वितः ।  
धर्मस्य संस्थापनहेतवे पुनः  
स्वभक्तपक्षप्रतिपालनाय च ॥ ६ ॥  
सरयू पुलिने रम्ये कोशला नाम मे पुरी ।  
सच्चिदानन्दनवनी शाश्वतं यत्परं पदम् ॥ ७ ॥  
पृथिव्यां भारते वर्षे प्रकटं तन्मदाज्ञया ।  
अत्रैवाहं स्वरूपेण विहरामि परिच्छदैः ॥ ८ ॥  
लीलोपकरणैर्युक्तो नित्यैरप्राकृतैस्तथा ।  
सुरा अपि भविष्यन्ति स्वांशेन प्रकटा इह ॥ ९ ॥  
इति श्रुत्वा गिरं सूक्ष्मां वेधाः प्रोवाच विस्मितः ।  
सर्वान् देवगणान् भूयो रावणादैरूपद्रुतान् ॥ १० ॥  
इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्म भुशुण्डसंवादे  
कथावतरणं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## नवमोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

तत्र काकुत्स्थवंशे तु जनिता वो हितप्रदः ।  
 तस्य सेवार्थममरा अग्रतो यूयमासथ ॥ १ ॥  
 कोटिब्रह्माण्डलक्ष्मीनामंशिनी ब्रह्मरूपिणी ।  
 आद्या श्रीर्भविता तस्य तोषणार्थं तु जानकी ॥ २ ॥  
 स जातो भगवान् रामो राघवेन्द्रो परात्परः ।  
 हरिष्यति भुवो भारं धर्मं च स्थापयिष्यति ॥ ३ ॥  
 आदिदेव्याश्च पद्मायाः करिष्यति सुखं महत् ।  
 देवीनां मानुषीणां च किञ्चरीणां तथैव च ॥ ४ ॥  
 'नागीनां च नगीनां च दृढ़मोदं जनयिष्यति ।  
 प्रमोदविपिने स्थित्वा संप्रयुक्तस्तदाज्या ॥ ५ ॥  
 तदंशभूताः अन्याश्च रामाः<sup>३</sup> संमोदयिष्यति ।  
 परमा सा स्वयं लक्ष्मीः सीता साकेतपत्तने ।  
 प्रमोदने तथा राजी सहजानन्दरूपिणी ॥ ६ ॥

### भुशुएड उवाच

श्रीरामचरितं ब्रूहि ब्रह्मन् संशृण्वतो मम ।  
 जायते परमानन्दो रोमहर्षश्च गद्गदः ॥ ७ ॥  
 यस्यांशा मत्स्यकूर्माद्याः बलकृष्णादयस्तथा ।  
 तं राममपहायान्यं श्रोतुमिच्छामहे कथम् ॥ ८ ॥  
 यः पश्यतो मे धृतचापहस्तो  
 ऋभङ्गमात्रे जलर्धि निवध्य ।  
 चकार लड़कां निजदासनाथां  
 निहत्य वेगेन च राक्षसेन्द्रम् ॥ ९ ॥

१. नागीनां चैव नागानां-अयो० । २. रामः-अयो०, रीवां ।

लङ्घाधिपः संयति जिष्णुजैत्रो<sup>१</sup>  
वरोजितो भूरितेजा दशास्यः ।  
यद्वाणवह्नेः सहसा पतञ्जतां  
जगाम साकं परिवारवग्नेः<sup>२</sup> ॥१०॥  
तस्य श्रीरघुवीरस्य चरितं मे निशामय ।  
कल्पे कल्पे तु यज्जातं विदितं चैव यत्तव ॥११॥

### ब्रह्मोवाच

अनन्तं चरितं तस्य वक्तुं नो पारये द्विज ।  
समाधौ तु सकृददृष्ट्वा वाल्मीकिः कथयिष्यति ॥१२॥  
मयापि भवते वाच्यं समाधावुपलभ्य हि ।  
विना समाधिसंयोगं कथं वक्तुं क्षमोऽस्म्यहम् ॥१३॥  
वाल्मीकिनोदितं दिव्यं रामायणमुदाहृतम् ।  
अन्यत्तु रामानुक्रीडं तद्रामायणमेव हि ॥१४॥  
मत्स्योऽस्य हृदयं विष्णुर्योगरूपी जनार्दनः ।  
कूर्मोऽस्य धारणाशक्तिर्वराहो भुजयोर्बलम् ॥१५॥  
नारांसिंहो महान् रोषो वामनः कटिमेखला ।  
भार्गवोऽस्य परो धर्मो बलरामश्च संमदः<sup>३</sup> ॥१६॥  
बुद्धस्तु करुणा साक्षात् कल्की चैतस्य संस्मृतिः ।  
कृष्णोऽशांशो ह एवास्य<sup>४</sup> वृन्दावनविभूषणः ॥१७॥  
एते चांशकलाशचैव रामस्तु भगवान् स्वयम् ।  
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च महेन्द्रः श्रीस्तथैव च ॥१८॥  
सनातनस्तथा धर्मो राम एव स्वयं द्विज ।  
न रामात् परतस्तत्त्वं वेदैरपि निचीयते ॥१९॥  
वेदान्ता ब्रह्मसूत्राणि चत्वारो निगमास्तथा ।  
सेतिहासानि सर्वाणि पुराणानि तथा द्विज<sup>५</sup> ॥२०॥  
धर्मः सांडख्यं तथा योगः सर्वं रामस्य सूचकम् ।  
तत्संकोचविकाशाभ्यां राम एव प्रतिष्ठितम् ॥२१॥

१. विष्णु—अयो० । २. सर्गेः—अयो० । ३. संमदः—अयो०, रीवां । ४. ‘कृष्णोऽशांशः—श्रीरामस्य’—इति मथु० दिष्पणे संशोधितः पाठः । ५. तथांडज—मथु० ।

रकारेण विकाशः स्यात्संकोचस्तु मकारतः ।  
 वेदशास्त्रपुराणौघैरेकं तत्वं विनिश्चितम् ॥२२॥  
 परं ब्रह्म स्वयं रामः सच्चिदानन्दविग्रहः ।  
 अहो रामस्य चरितं महानारायणेशितुः ॥२३॥  
 जिह्वाकोटिशतेनापि मया वक्तुं न शक्यते ।  
 यस्य लोकः सदा भाति गोलोकात्परतस्तु सः ॥२४॥  
 महावैकुण्ठमेतद्धि व्यापि वैकुण्ठसंज्ञकम् ।  
 तत्र॑ तस्य पदाम्भोजद्वयं सम्यक् प्रतिष्ठितम् ॥२५॥  
 तत्परस्तस्य वै रूपं सीतावैकुण्ठसंज्ञकम् ।  
 रामवैकुण्ठसंज्ञं तु॒ प्रमोदवनमुदाहृतम् ॥२६॥  
 यतो विनिर्गताश्चांशा विस्फुलिङ्गा इवारणे ।  
 बलकृष्णादयः सर्वेऽप्यवतारपदं मताः ॥२७॥  
 अवतारी स्वयं रामः सर्वाशानां निधिः परः ।  
 कस्तस्य महिमानं च वक्तुं शक्नोति दैवतः ॥२८॥  
 हयग्रीवेण यत्प्रोक्तं यच्च वल्मीकजेन च ।  
 मया त्वया च यत्प्रोक्तं वसिष्ठेन तथोदितम् ॥२९॥  
 तदंशमात्रकं विद्धि रामायणमनन्तकम् ।  
 यदि वालुकरेणूनां गणना स्यान्महामते ॥३०॥  
 तदा श्रीरामवीर्याणां गणना भवति क्वचित् ।  
 अन्यदेवहि तद्वीर्यं कल्पे कल्पे युगे युगे ॥३१॥  
 अथाभवद्वशरथमन्दिरे परे  
 पुमानसौ भुवनभरोदृतिक्षमः ।  
 मृगीदृशां नयनविमोहनाकृतिः  
 स राघवः क्षपयतु३ वाक्यचापलम् ॥३२॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 महिमवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१. अत्र-अयो० । २. “तस्मान्महावैकुण्ठात्परं नाम श्रेष्ठं प्रमोदवनं प्रमोद-  
 वनस्यैव सीतारामवैकुण्ठसंज्ञा” इति टिप्पणी—मथु० । ३. क्षपयतु-मथु० ।

## दशमोऽध्यायः

**भुशुरुड उवाच**

कीदृग्रूपधरो रामो जातो दशरथालये ।  
किमाचारः कथंभावः तद्वदस्व विधे मम ॥ १ ॥

**ब्रह्मोवाच**

चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु नवम्यां श्रीपुनर्वसौ ।  
अभिजिन्नामयोगेऽसौ कौसल्यानन्दनोऽभवत् ॥ २ ॥

स जातमात्रो निविडाम्बुदाकृतिः  
पीताम्बरः सुस्मितवक्रपञ्चजः ।

भुजद्वयो वाणवरादिच्छितिः  
स्ववामभागे श्रियमुत्तमां दधत् ॥ ३ ॥

अनध्यरत्नाभरणैर्विराजितः  
समुल्लसत्कुण्डलशोभिताननः ।

श्रीवत्सलक्ष्म्यार्पितकण्ठकौस्तुभ-  
स्त्वषा स्वयं रोचितसूतिकागृहः ॥ ४ ॥

अनञ्जलावण्यपरार्धसम्पदा  
संस्पृष्टसर्वाञ्जमनोहरोज्ज्वलः ।

शृङ्गारभञ्जीरससूचकैदृशोः  
कटाक्षपातैः कमलां प्रमोदयन् ॥ ५ ॥

आसन्नगर्भोद्भवजातनिद्रिया  
कौशल्यया लक्षितजन्मभूषणः ।

ततश्च संदेशहर्तैनवेदितो  
नृपाय दूर्वादिलशोभिपाणिभिः ॥ ६ ॥

स वासुदेवादिभिरात्मजोऽशै-

श्चतुर्भिरासेवितदिव्यविग्रहः ।

जवात् समागत्य नृपेण वीक्षितो

दृग्भ्यामदृष्टश्रुतपूर्वलक्षणः ॥ ७ ॥

तमादिपुरुषं ज्ञात्वा परं ब्रह्म स्वरूपिणम् ।

तुष्टाव वैदिकैः शब्दैः स्वयं दशरथो नृपः ॥ ८ ॥

नमो नमस्ते रघुनन्दनाय

रामाय रामाच्युतविक्रमाय ।

रामाय रामाय च राघवाय<sup>१</sup>

स्वयंभुवे श्रीपतये पराय ॥ ९ ॥

नमो हृषीकेश शिवाय तुभ्यं

समस्तदैत्यावलिनिग्रहाय ।

भूभारहत्रादिवराहमूर्तये

नृसिंहरूपाय च वामनात्मने ॥ १० ॥

नमो महामन्दरशैलधारिणे

त्रिविक्रमायातुलविक्रमाय ।

श्रीवत्सलक्ष्माय सकौस्तुभाय

श्रीरामदेवाय रघूद्वहाय ॥ ११ ॥

त्वमादिमूर्तिर्भगवान् सनातन-

स्त्रयीमयः शान्तरजस्तमोमयः ।

भक्तेषु कृत्वा करुणां कदाचि-

दिहावतीर्थ क्षपयस्यधर्मम् ॥ १२ ॥

न ते विदुस्तेज उदग्रमेतद्

विश्वे भवाद्या अपि दैवतोत्तमाः ।

स्वरूपशक्तयैव सदावदातया

प्रकाशसे संततसुप्रकाशः ॥ १३ ॥

त्वमादिदेवो विदितोऽसि संप्रति

श्रिया युतः श्रीपुरुषोत्तमो हरिः ।

१. रोचकाय—रीवां ।

न चेदिदं विश्वविलक्षणं महः  
कथं प्रकाशेत मदक्षिगोचरम् ॥१४॥

दासेषु साधुष्वमरेषु सत्क्रियां  
कृत्वावतीर्णोऽसि यदादिपूरुषः ।

तदेव दृश्योऽसि न चेत्तु मादृशै-  
र्मत्यैः सुखाद् योऽभगवान् स्वयंप्रभुः ॥१५॥

नमो नमस्ते भगवन् स्वसाक्षिणे  
स्वमायया संवृतविग्रहात्मने ।

त्रिवृत्स्वरूपाय परात्पराय  
स्व एव धामन्यनिशं विभास्वते ॥१६॥

रूपं तवैतत् क्षयितोऽवनीभरं  
चिदात्मकं भक्तदृशां मनोहरम् ।

पश्यन्ति नैवासुरभावमास्थिताः  
कथं चिदेवाविषयीकृतं सुरैः ॥१७॥

स्थानेऽस्मदानन्दकृते भवज्जनु-  
र्न रावणाद्यासुरहन्तवे<sup>२</sup> प्रभो ।

तवोद्भटा अक्षरकालधर्म-  
स्वभावसंज्ञा कति सन्ति नो भटाः ॥१८॥

यदक्षरं ब्रह्म सनातनं स्वराट्  
सहस्रनेत्राननपादबाहुकम् ।

निरञ्जनं निष्प्रतिमं निरीहं  
श्रीराम तत्त्वच्चरणं वदन्ति ॥१९॥

यः कालसंज्ञः परमो नियन्ता  
समस्तकर्ता भगवान् महोग्रः ॥

भूतं भविष्यदथ वर्तमानं  
विभ्रतदीशास्ति वपुस्त्वदीयम् ॥२०॥

१. सुखायो—अयो०, रीवां । २. °हन्यवे—अयो०, मथु० ।

यत् कर्मरूपं प्रतिजीवमाततं  
 यथोचितं यच्च यावच्च रूपम् ।

फलोन्मुखं स्वव्यतिरेकतोऽफलं  
 तत्त्वं प्रभो इष्टपूर्त्तादिसाध्यम् ॥२१॥

यत् स्वात्मभक्तेषु दयां विधत्से  
 दुष्टेषु च क्रूरतया निरीक्षितम्<sup>१</sup> ।

सृष्टिस्थितिक्षयलीलाद्वच् कुर्वन्  
 जागर्यसौ ते परमः स्वभावः ॥२२॥

तं जातमात्रं कौशल्या प्रसमीक्ष्य भुजद्वयम् ।  
 जात्वा सीतापर्ति साक्षादब्रवीन्मधुरैः स्तवैः ॥२३॥

अहो धन्ये दृष्टी पुरुषवर ते रूपममृतं  
 पिबन्त्यौ स्वानन्दोदधिरसनिमग्नेऽद्य भवतः ।

निमेषोऽसह्यो मे<sup>२</sup> किमिति रचितः कैरवपते-  
 र्थथा ज्योत्स्नाया ते नयनकरसंमर्शनमभूत् ॥२४॥

अहो अहो धन्यतमं कुलद्वयम्  
 अहो अहो धन्यतमे उभे दृशौ ।

अहो अहो धन्यतमं महीतलं  
 यत्रास्ति योगो भवता समं हरे ॥२५॥

अहो इदं रूपमतीवसुन्दरं  
 न दृष्टपूर्वं धरणीतलस्थैः<sup>३</sup> ।

अनेन लिङ्गेन रमाङ्कितेन  
 श्रीरामचन्द्रोऽसि मतो नरोत्तम्<sup>४</sup> ॥२६॥

१. °क्षितां-रीवां, अयो० । २. असहिष्णुः-अयो०, मथु० । ३. °स्थले-अयो० ।

४. २६ इलोकात्परं रीवां पुस्तकेऽधिकम्—

यदि त्वमेतत्तिमिरं मोहरूपं न संहरेदीश निजाश्रितेषु ।  
 कथं तदेषां गोचरत्वं प्रयाति रूपं तवैतत्सच्चिचनन्द्र सान्द्रम् ॥ १ ॥  
 गोपालराजस्य च नन्दनस्य गोहे वसंस्त्वं सह लक्ष्मणेन ।  
 अरीरमद्राम भवान्ब्रजाङ्गना उद्धारार्थं श्रुतित्रृष्ण्यादिरूपाः ॥ २ ॥  
 तवैष लीला भुवने रसाला सुधाबिधवत्पालयत्येव भक्तान् ।  
 नो चेत्कदाचित्त्वयि संतिरोहिते विशुष्येयुः पारमहंस्यभाजः ॥ ३ ॥

[ =अ० ७ इलो ५-७ ]

यतो निवृत्ताः खलु वैदिकीर्णिरो  
मनस्तथा यद्विषयानुधावनम् ।  
अचिन्त्यशक्तिप्रभवमत्कर्यं  
तत्त्वं परं ब्रह्म कुलेऽवतीर्य नः ॥२७॥

कर्ता महन्मङ्गलमीश गोद्विज-  
धर्मश्रुतीनां स्वमुपाश्रितानाम् ।  
कुलं तथा साधु सुविश्रुतं<sup>१</sup> रवेः ।  
स्वपौरुषेणैव महायशो दधत् ॥२८॥

एवमेव कदाचिद्वै द्वापरान्ते यदोः कुले ।  
वसुदेवाच्च देवक्यां तवांशो वै भविष्यति ॥२९॥

कवचित् सुतपसो<sup>२</sup> गेहे पृष्णिगर्भेऽप्यजीजनः ।  
तेनैव पृष्णिगर्भेति तव नामानुशश्रुम् ॥३०॥

पुरा भूमेः सजीवाया नेताऽधो वारिधेर्बलात् ।  
वराहवपुषा देव हिरण्याक्षस्त्वया हतः ॥३१॥

एवमेव स्वभक्तस्य प्रतिज्ञां रक्षता त्वया ।  
निहन्ता श्रुतिधर्माणां हिरण्यकशिपुर्हतः ॥३२॥

प्रलयार्णवमग्नानां वेदानामुद्धृतौ क्षमम् ।  
मात्स्यं वपुस्त्वयाऽस्थाय हृदयं प्रकटीकृतम् ॥३३॥

पुरा पीयूषमथने मन्थदण्डस्त्वया धृतः ।  
मन्दराख्यो महाशैलः कौमूर्म वपुरुपाश्रितः ॥३४॥

पुरा वर्लिं छलयता महामानिनमीश्वरम् ।  
मन्थे वपुर्वामिनस्य त्वयैव प्रकटीकृतम् ॥३५॥

पुरा लङ्घाधिपः कश्चिद्वयेदानीं महाबलः ।  
आसीत् स भवता देव रावणाख्यो निराकृतः ॥३६॥

संप्रत्यपि बलैर्वृद्धो राक्षसेन्द्रो दशाननः ।  
त्वयैव विनिहन्तव्यः स्तेनो देवपतिश्रियाम्<sup>३</sup> ॥३७॥

१. समलंकृतं-अयो०, मथु० । २. कवचित्तु सुतपोगेहे-रीवां । ३. गर्भेऽप्य-  
जीजनत्-अयो०, रीवां । ४. श्रियाः-रीवां ।

पुरा त्वयैव भगवंश्चरता दुश्चरं तपः ।  
 निराकृताः परशुना सुपुष्टाः क्षत्रियाः प्रभो ॥३८॥  
 अथ वैदिकजीवेषु कृपां संतन्वता त्वया ।  
 बुद्धरूपेण भगवन् पूरणीयो महामखः ॥३९॥  
 जातुचिन्म्लेच्छबहुले जगति त्रिजगत्प्रभो ।  
 त्वया कल्कस्वरूपेण पालनीयाः श्रुतिद्विजाः ॥४०॥  
 यौ बलकृष्णाविति विश्रुतिं गतौ  
                  स्वमाययात्तात्मगुणौ नरोत्तमौ ।  
 वेदेषु शास्त्रेषु तथा पुराणे-  
                  षूद्गीयमानौ खलु तौ त्वदंशौ ॥४१॥  
 एवं भवान् पूर्णकलाभिरात्मनः  
                  संक्रीडमानोऽभयदो निजानाम् ।  
 इहावतीणोऽसि दिवाकरान्वये  
                  स्वरोचिषा रोचितसर्वविश्वः ॥४२॥  
 इदं स्वरूपं निजदर्शनोचित-  
                  ममानुषं तावकमीश लिङ्गम् ।  
 आवां प्रपद्येव न चेतरे जना-  
                  स्त्वया विधेयं भगवंस्तथैव ॥४३॥  
 इयं च ते श्रीः कमलालया रमा  
                  वामाङ्गसंस्था कमलानपायिनी ।  
 अम्भोजहस्ता नयनोत्सवप्रदा  
                  धिनोति नो नयनयुगे मृदुस्मितैः ॥४४॥  
 एवं स्तवं विदधतोः कौशल्याधिपयोद्विज ।  
 आययुः सकला देवा ब्रह्माद्याः सेन्द्रशङ्कराः ॥४५॥  
 ते दण्डवत् सपदि निपत्य संमुखे  
                  सगद्गदाः पुलकलसत्तनूरुहाः ।  
 हृष्यन्तो दशमुखवेपितान्तराः  
                  पथ्याभिः<sup>१</sup> स्तुतिभिरथाभिरेभिरे ॥४६॥

१. तथ्याभिः—अयो० ।

ब्रह्मादय ऊचुः

नमो नमो भुवनभर्यार्तिहारिणे  
रिपुच्छिदे द्विजनिगमौघरक्षिणे ।

परात्परामलवपुषे रजस्तमः-  
संस्पृष्टप्रबहुलसत्त्वमूर्तये ॥४७॥

नमो नमो भवजनुषेऽभवाय च  
नमो नमो खिलवपुषेऽखिलाय च ।

नमो नमो गुणनिधयेऽगुणाय च  
नमो नमोऽखिलदृशेऽदृशाय च ॥४८॥

नमो नमो निजविभवाप्तमूर्तये<sup>१</sup>  
नमो नमो निजजनचित्तपण्यवे ।

नमो नमो निगमपथातिगामिने  
नमो नमो विततभवापवर्गद ॥४९॥

नमो नमो नः कार्यार्थमवतीर्णयि विष्णवे ।

लक्ष्मीशायाखिलद्वेष्टुसंहराय नमो नमः ॥५०॥

नमो नमः पुष्करपुञ्जमालिने  
नमो नमः पुष्करलोचनाय ते ।

नमो नमः पुष्करवर्यपाणये  
नमो नमः पुष्करमध्यवाससे ॥५१॥

यत्प्रार्थितोऽस्माभिरजत्तुःद्विःखितै-  
दर्शास्यकारागृहवासवेपितैः ।

तत्त्वं स्वयाच्चां सफलां विधातु-  
मिहावतीर्णोऽसि नमो नमस्ते ॥५२॥

कस्ते जनो वेत्ति वत प्रवृत्ति  
गुणानुषङ्गव्यतिकरवर्जितात्मनः ।

स्वमाययाखिलजनमोहनाकृते-  
रमायिनः स्वर्गभवापवर्गद ॥५३॥

१. “निजजनैश्वर्यवृद्धये धृतावताराय” इति टिप्पणी-मथु० । २. °र्जनैः सु° रीवां ।

कुर्मः किमीशा भवदेकपरायणात्मा-  
 नो वयं किमपरं समुपाश्रयामः ।  
 अभ्यर्थयाम उदितेऽनुयुगं विपक्षे  
                   गोविप्रवेदपथवर्मविर्द्धनाय ॥५४॥  
 तथापि ते सत्यमिहाचरिष्य-  
                   न्त्येते सुराः उभयतटान्तवासिनः ।  
 इहापि ते नाथ रमैव सञ्ज्ञिनी  
                   भूयान् महामोदकला विर्द्धिनी ॥५५॥  
 एषा श्री भवतो नित्या स्वांशैः क्रीडिष्यति त्वया ॥५६॥  
 रासादिलोला भवतो परात्परा  
                   विभातु नो हृदये नाथ नित्यम् ।  
 अशोककुञ्जे भवतो रमेश  
                   रमासहस्रेण यथा विलासः ॥५७॥  
 इहापि ते देव तथैव भूयात्  
                   साकेतवल्लीवनवल्लरीभिः ।  
 इमाः प्रभो सुरसरितोऽपरे तटे  
                   वनाश्रयाः सुरवर गोपकन्यकाः ।  
 रमामयास्तव जनिमानमिच्छ्वः  
                   ससंततस्तव भवितार ईश्वराः ॥५८॥  
 एवं स्तुवत्सु ब्रह्मादिष्वत्र संमोदसंब्रमाः  
 तुष्टुवुः श्रुतयोऽप्येनं समागत्य त्रिपृष्टृतः ॥५९॥  
 इति श्रीमद्बादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
                   जन्मस्तवो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## एकादशोऽध्यायः

श्रुतय ऊचुः

जय जय भुवनत्रयसंतापहरण नवाम्बुदाकृते ! सकलकल्याणगुण-  
निधान निरूपमसौन्दर्य विजितकन्दर्पकोटिदर्प मन्दस्मितमाधुरीसुधारस-  
धारापराभूतशरच्चन्द्रचन्द्रिकावलेप कमलाकुचुङ्गकमपिज्जरीकृतवक्षस्थल-  
विराजितमहाकौस्तुभमणिमरीचिमालानिराकृतत्रिभुवनतिमिर निरूपम  
नित्य निरीह निराभास निरञ्जन निर्विकार नित्याकार निर्गुण नित्यानन्द-  
मयविग्रह निःकिञ्चनजनप्रिय ब्रह्माण्डकोटिकमलासंसेव्यमानचरणकमल-  
रजःपरागपवित्रितवसुधातल नवीनवनमालाधर राम श्रीराम राघव  
मुकुन्द रामचन्द्र जनार्दन जगदीश पुरुषोत्तम द्विभुज धनुर्वर्णादिधर  
श्रीवत्सधर महापुरुष महाकारुणिक महाजिष्णो महेश्वर महाजनाचार-  
परिपालक सूर्यकुलोत्तम रघुकुलोत्तम समर्यादावतारिन् जगद्विधरणदहर-  
वेशमान्तःस्थ व्यापक परमात्मननिर्देश्याप्रमेयात्कर्य कोमलापाङ्गनिर्मुक्त-  
कटाक्षसंक्षोभितास्मन्मानसमहामदनसंवर्द्धन नमस्ते नमस्ते ॥ १ ॥

त्रिपृष्ठपुरस्थाभिरस्माभिरालोकितुं<sup>१</sup> प्रार्थितो<sup>२</sup> यद्वर्णनसुखमुखं किन्नु  
त्वदीयं प्रियं करवाम त्रिभुवनसुन्दरमिदं ते रूपमवलोकितवत्यो न वयं  
क्षणमपीतो विचलितुं शक्ताः अद्यावधि तव चरणधावनी<sup>३</sup>र्दास्य एव  
भविष्यामः ॥ २ ॥

नमः सुन्दरवर भवतेऽनर्थ्यगुण ब्रह्मादीनामपि वाङ्मनसागोचरा-  
कृतये निजानन्दरसनिमग्नाय कैशोरवेशशुद्धमूर्तये निजलीलावशीकृतलक्ष्मी-  
सहस्रमहाकेलिमहारसिकाय ब्रह्मण्याय वदान्याय साधुवादनिकेतनाय  
करिष्यमाणभुवनत्रयमङ्गलपरिणामसूचकमधुरस्मितमणिडतमुखचन्द्राय श्री-  
रामचन्द्राय ॥ ३ ॥

इत्थं संस्तूय तं नाथं श्रुतयो जातमङ्गलाः ।

सरथवा अपरे पारेऽवतेरुर्गोपवेशमषु ॥ ४ ॥

१. 'अस्माभि' रिति नास्ति—मथु० । २. <sup>०</sup> तोऽद्य दर्शन<sup>०</sup>—मथु० ।  
३. 'धावनीः क्षालिन्यः' इति टि० —मथु० ।

तास्तेषां घोषनाथानामाभीराणां कुले कुले ।  
 सहस्रशो जर्नि कृत्वा रामसेवार्थमुत्सुकाः ॥ ५ ॥  
 रामो वै भगवान् साक्षात् पूर्णः श्रीपुरुषोत्तमः ।  
 तत्क्षणात् पश्यतोरेव कौशल्यारघुनाथयोः ॥ ६ ॥  
 शैशवं रूपमास्थाय व्यरुचज्जातको यथा ।  
 तं दृष्ट्वा पितरौ तस्य ययतुर्विस्मयं परम् ॥ ७ ॥  
 अहो ! अस्य महेशस्य लीलाक्रीडनकं वपुः ।  
 अयं हि नः सुखं दास्यत्युत्तरे वयसिस्थयोः ॥ ८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 श्रुतिस्तवो नाम एकादशोऽध्यायः ।

०

### द्वादशोऽध्यायः

अथाहनन् दुन्दुभिवादिनो भुवि  
 प्रमोदिताः संसदि देवदुन्दुभीन् ।  
 जगुश्च विद्याधरकिञ्चरीगणाः  
 प्रबन्धजन्मोत्सवगायनोद्धुरा: ॥ १ ॥  
 सुराश्च तूर्यत्रिकनादमोदिताः  
 सुरद्रुमाणां कुसुमैरवाकिरन्<sup>३</sup> ।  
 कृताङ्गभूषा ननृतुश्च संभ्रमात्  
 सुराङ्गनाभिर्गगनाङ्गणस्थिताः ॥ २ ॥  
 दिशां प्रसादः<sup>४</sup> सहसा तदाभवद्-  
 ययुः सुखस्पर्शकराः समीरणाः ।  
 सुरोचिषा रोचित उद्गतो रवि-  
 न्मभस्तलं दर्पणनिर्मलं बभौ ॥ ३ ॥

१. गोपनाथानां-रीवां । २. अपि-मथु० । ३. ववृषुः कुसुमोत्करम्-अयो०,  
 मथु० । ४. प्रमोदः-अयो० ।

प्रदर्शयामास तथैव कालो  
 निजान् गुणान् संततमाधिदैविकान् ।  
 विज्ञाय सर्वेश्वरमन्त्र जातं  
 रमा निजांशैरवतारमाचरत् ॥ ४ ॥  
 ततोऽधिकूलौ<sup>१</sup> मधुरौ सरया  
 रत्नोमहेमप्रभवौ बभूवतुः ।  
 सरिच्च चान्द्री विमला विरेजे  
 समुल्लसत्काञ्चनबालुकाढचा ॥ ५ ॥  
 सर्वे द्रुमास्तत्र सुरद्रुमोपमाः<sup>२</sup>  
 सर्वे निधीनां निवहा इहासुः ।  
 सर्वे च ते दिव्यसमृद्धौ<sup>३</sup>योगा  
 ये प्रादुरासुः कमलानिकेतने ॥ ६ ॥  
 राजा दशरथः स्नात्वा कृत्तश्मश्रुरलड्कृतः ।  
 जातकर्म कुमाराणां चकार विधिवद्विजैः ॥ ७ ॥  
 जातकर्मोत्सवे<sup>४</sup> धेनूः कोटिशः समलड्कृताः ।  
 ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा युक्तः परमया मुदा ॥ ८ ॥  
 नृत्यतां गायकानां च वाद्यतां पुरयोषिताम् ।  
 मनोरथाधिकं प्रादात् पटभूषणधोरणम्<sup>५</sup> ॥ ९ ॥  
 वन्धुभ्यो ज्ञातिजेभ्यश्च महाराजेभ्य एव च ।  
 संमाननं चकारोच्चैर्वासोऽलङ्घारसंपदा ॥ १० ॥  
 तत्राशिषः प्रयुज्जानाः प्रेमपूर्णा द्विजातयः ।  
 कुमाराणां सुभव्याय जन्मस्वस्त्ययनं जगुः ॥ ११ ॥  
 अथास्थाने स्थितं भूयं सद्वादिलपाणयः ।  
 पौरा जनाः समाजग्मुरन्योन्यकृतमङ्गलाः ॥ १२ ॥  
<sup>६</sup>मण्डिता मण्डमानाश्च जातकौतुकवृद्धयः ।  
 सुहृदः साधवश्चैव भक्ता देवर्षयस्तथा ॥ १३ ॥

१. “द्विकूलावित्यपि, कूलशब्दः पुलिंगेऽपि” इति-ठि०-मथु० । २. <sup>७</sup>द्रुमा-  
 द्रुमाः-अयो०, मथु० । ३. समृद्धिं-रीवां । ४. कृतस्य श्रीं-अयो०, रीवां ।  
 ५. कामोत्सवे-अयो०, रीवां । ६. धोरणीं-मथु०, रीवां, “सर्वं स्याद्वाहनं मानं युग्मं  
 पत्रं च धोरणम्” इत्यमरः । ७. पण्डिता-रीवां ।

कोटिब्रह्माण्डनाथाश्च देवा ब्रह्मादयोऽखिलाः ।  
 कोटयश्च महेन्द्राणां यमानां कोटयस्तथा ॥१४॥  
 कोटयो वरुणानां च कुबेराणां च कोटयः ।  
 रुद्राणां कोटयश्चैव तस्मिन् जन्ममहोत्सवे ॥१५॥  
 अनृत्यन्त प्रमोदेन सिद्धगन्धर्वलोकवत् ।  
 अन्ये खदिग्भूमिचराः प्रमोदरसरज्जिताः<sup>१</sup> ॥१६॥  
 ग्रहाश्च सर्वे शुभवेषधारिणः  
 स्वरूपतः स्वस्वगृहेषु तस्थिरे ।  
 ब्रह्माण्डकोटिष्वपि याश्च संपद-  
 स्ता मूर्तिमत्यः सहस्राऽविरासुः ॥१७॥  
 राजानश्च महामोदा नानोपायनपाणयः ।  
 समाजगमुः शुभं वक्तुं तस्मिन्नरामजनोत्सवे ॥१८॥  
 दूर्वादिलसनाथेभ्यस्तेभ्यो राजा भृशं<sup>२</sup> ददौ ।  
 दिव्यभूषणवासांसि वस्तूनि बहुलानि च ॥१९॥  
 तोषेण पूर्णचित्तास्ते स्पृहयन्ति परस्परम् ।  
 नरेन्द्रस्य कुमाराणां भूय आभ्युदयं शुभम् ॥२०॥

प्रजा उच्चुः

अहो दशरथो राजा भाग्यवान् मङ्गलालयः ।  
 यस्योत्तरं वयः सम्यक् सुतजन्मोत्सवैर्युतम् ॥२१॥  
 अहो अस्य कुमाराणां दीर्घमायुर्भवत्विति ।  
 अस्मदीयैर्महाभाग्यैरते जीयासुरीश्वराः ॥२२॥  
 अहो विधे धन्यतमोऽसि यत्स्वयं  
 मनोरथं पूरितवान् नृपस्य नः ।  
 जातोऽधुना भव्यकरो नृलोकः  
 समस्तसौभाग्यकलाधिवासितः<sup>३</sup> ॥२३॥  
 ब्रह्मादयः सुराः सर्वे वसिष्ठाद्याः सुरर्षयः ।  
 प्रायुज्जन्माशिषो याभिर्वृद्धिमन्तः कुमारकाः ॥२४॥

१. “अन्ये दिक्चर खचर भूमिचराः समाययुः प्रमुदरसैरलंकृताः” इति  
 भिन्नछन्दसोत्तरं-अयो०, मथु०, रीवां । २. दृशं-मथु०, रीवां । ३. °वासतः-रीवां ।

कुमाराः विधिसुस्नाता धात्रीभिः समलङ्घताः ।  
विरेजुः सहसोद्भूता मणयो वारिधेर्यथा ॥२५॥  
ते मातृभिः कृतसुमङ्गलसूतिकायां  
नीराजितास्तपनबिम्बमहौजसोऽपि ।

‘नेत्रान्तलग्नकलकज्जलविन्दुजात-  
दृष्टिप्रदोषविषया प्रणयं पुपोषुः ॥२६॥  
दिने दिनेऽङ्गलावप्पवृद्धचा रोचन्ति बालकाः ।  
अजातदर्शदशना जननीनेत्रसौख्यदाः ॥२७॥  
आशीर्भिः पौरलोकानां जनानां च मनोरथैः ।  
वर्द्धमानाः प्रतिदिनं व्यूहात्मानो व्यरोचयन् ॥२८॥  
तेषां मध्ये महारूपलावप्पवपुषा युतः ।  
चिदानन्दमयो रामो व्यरोचत विशेषतः ॥२९॥  
द्वितीयश्च सुमित्रायाः सूनुः कज्जदलेक्षणः ।  
व्यराजत विशेषेण रामवत् परमद्युतिः ॥३०॥  
अन्यौ भरतशत्रुघ्नौ प्रभामण्डलमण्डितौ ।  
विरेजतुः सुवयसौ संपन्नौ परया श्रिया ॥३१॥  
दशरथभवनं सदा समृद्धं  
सुविततमूर्जितमिन्दिरानिवासम् ।  
रामजनुषि सुमङ्गले च जाते  
व्यरुचदतीव मनोज्ञयैव लक्ष्म्या ॥३२॥  
तथैवाविर्बभूवुस्ते बाला वै लक्ष्मणादयः ।  
बभौ राजा समासाद्य निखिलांश्च मनोरथान् ॥३३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
जन्मोत्सर्वणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

१. “नेत्रान्ते लग्नं कलं मनोहरं यत्कज्जलं तस्य विन्दुरेव दृष्टिप्रदोषविषयो  
येषां ते, दृष्टिदोषो कज्जलविन्दौ लगति न तु नेत्रे, तत्कृते नेत्रप्रान्ते कज्जलविन्दु-  
प्रदानम्” इति टिं०-मथु० ।

## त्रयोदशोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

अथ त्रयोदशतमे दिने नामविधित्सया ।  
 कुमाराणां सुजनुषां परमायुश्चकीर्षया ॥ १ ॥  
 वसिष्ठो वंशपौरोधाः मुदायुक्तः समाययोऽ ।  
 राज्ञो दशरथस्यान्तःपुरे सर्वसमर्द्धनेऽ ॥ २ ॥  
 समायातं मुनिश्रेष्ठं राजा दशरथोऽग्रहीत् ।  
 अहो मे भाग्यसंपत्या संगतोऽद्य पुरोहितः ॥ ३ ॥  
 प्राजापत्यो मुनिश्रेष्ठः परमानन्ददर्शनः ।  
 नमस्ते मुनिशार्दूल प्राजापत्य महाप्रभः ॥ ४ ॥

### वसिष्ठ उवाच

नरेन्द्र वत ते भाग्यं जातोऽसि तनु पुत्रवान् ॥ ५ ॥  
 तेषामहं कुमाराणां नामकृत्यं सुखप्रदम् ।  
 तवाज्ञया विधास्यामि यद्गोप्यममरैरपि ॥ ६ ॥  
 अहो अमी प्रभोरंशा रामस्यामिततेजसः ।  
 योऽसौ तव कुमाराणामग्रणी राम एव सः ॥ ७ ॥  
 अस्य चत्वार एवांशाः ब्रह्मरूपाः सनातनाः ।  
 वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥ ८ ॥  
 चत्वार एते पुरुषाः स्वस्वकार्यविधायकाः ।  
 धर्मरूपास्तु रामस्य पुरुषोत्तमरूपिणः ॥ ९ ॥  
 ततः संस्नातसंस्कारान् मन्त्रितान् विधिवर्तमना ।  
 नामानि चक्रे ब्रह्मर्षिः कोटिकल्पविदुत्तमः ॥ १० ॥

### वसिष्ठ उवाच

रामः श्यामो हरिविष्णुः केशवः केशिनाशनः ।  
 नारायणो माधवश्च श्रीधरो मधुसूदनः ॥ ११ ॥

१. समाजमुदान्विताः—अयो०, रीवां । २. समृद्धने—अयो० । ३. महाप्रभो—  
 अयो०, रीवां । ४. नामकृत्यं सुखप्रदं—अयो० ।

रावणारिः कंसनिहा वकोप्राणनिवर्त्तनः ।  
 ताडकाहननोद्युक्तो विश्वामित्रप्रियः कृती ॥१२॥  
 वेदाङ्गो यज्ञवाराहो धर्मज्ञो मेदिनीपतिः ।  
 वासुदेवोऽरविन्दाक्षो गोविन्दो गोपतिः प्रभुः ॥१३॥  
 पद्माकान्तो विकुण्ठाभूः कीर्तिकन्यासुखप्रदः ।  
 जानकीप्राणनाथश्च सीताविश्लेषनाशनः ॥१४॥  
 मुकुन्दो मुकितदाता च कौस्तुभी करुणाकरः ।  
 खरदूषणनाशी च मारीचप्राणनाशकः ॥१५॥  
 सुबाहुमारणोत्साही पक्षिश्राद्विधायकः ।  
 विहङ्गपितृसंबन्धी क्षणतुष्टो गतिप्रदः ॥१६॥  
 पूतनामातृगतिदो विनिवृत्ततृणानिलः ।  
 पावनः परमानन्दः कालिन्दीजलकेलिकृत् ॥१७॥  
 सरथ्यूजलकेलिश्च साकेतपुरदैवतः ।  
 मथुरास्थाननिलयो विश्रुतात्मा त्रयीस्तुतः ॥१८॥  
 कौन्तेयविजयोद्युक्तः सेतुकृत् सिन्धुगर्भवित् ।  
 सप्ततालप्रभेदी च महास्थिक्षेपणोद्धुरः ॥१९॥  
 कौशल्यानन्दनः कृष्णः किशोरीजनवल्लभः ।  
 आभीरीवल्लभो वीरः कोटिकन्दर्पविग्रहः ॥२०॥  
 गोवर्द्धनगिरिप्राशी गोवर्द्धनगिरीश्वरः ।  
 गोकुलेशो द्रजेशश्च सहजाप्राणवल्लभः ॥२१॥  
 भूलीलाकेलिसंतोषी वामाकोटिप्रसादनः ।  
 भिल्लपत्नीकृपासिन्धुः कैवर्त्तकरुणाकरः ॥२२॥  
 जाम्बवद्भक्तिदो भोक्ता जाम्बवत्यङ्गनापतिः ।  
 सीताप्रियो रुक्मिणीशः कल्याणगुणसागरः ॥२३॥  
 भक्तप्रियो दाशरथिः कैटभारिः कृतोत्सवः ।  
 कदम्बवनमध्यस्थः शिलासंतारदायकः ॥२४॥  
 राघवो रघुवीरश्च हनुमत्सख्यवर्द्धनः ।  
 पीताम्बरोऽच्युतः श्रीमान् श्रीगोपीजनवल्लभः ॥२५॥

भक्तेष्टो भक्तिदाता च भार्गवद्विजगर्वजित् ।  
 कोदण्डरामः क्रोधात्मा लङ्काविजयपण्डितः ॥२६॥  
 कुम्भकर्णनिहन्ता च युवा कैशोरसुन्दरः ।  
 वनमाली घनश्यामो गोचारणपराक्रमी ॥२७॥  
 काकपक्षधरो वेषी विटो धृष्टः शठः पतिः ।  
 अनुकूलो दक्षिणश्च तारः कपटकोविदः ॥२८॥  
 अश्वमेधप्रणेता च राजा दशरथात्मजः ।  
 राघवेन्द्रो महाराजः श्रीरामानन्दविग्रहः ॥२९॥  
 क्षत्रः क्षत्रकुलोत्तंसो महातेजाः प्रतापवान् ।  
 महासैन्यो महाचापो लक्ष्मणैकान्तसुप्रियः ॥३०॥  
 कैकेयीप्रणनिर्माता वीतराज्यो वनालयः ।  
 चित्रकूटप्रियस्थानो मृगयाचारतत्परः ॥३१॥  
 किरातवेषः क्रूरात्मा पशुमांसैकभोजनः ।  
 फलपुष्पकृताहारः कन्दमूलनिषेवणः ॥३२॥  
 पयोन्रतो विधानज्ञः सद्वर्मप्रतिपालकः ।  
 गदाधरो यज्ञकर्ता श्राद्धकर्ता द्विजार्चकः ॥३३॥  
 पितृभक्तो मातृभक्तो<sup>१</sup> बन्धुः<sup>२</sup> स्वजनतोषकृत् ।  
 मत्स्यः कूर्मो नृसिंहश्च वराहो वामनस्तथा ॥३४॥  
 रघुरामः परशुरामो बलरामो रमापतिः ।  
 रामलिङ्गस्थापयिता शिवभक्तिपरायणः<sup>३</sup> ॥३५॥  
 चण्डिकार्चनकृत्यज्ञश्चण्डीपाठविधानवित् ।  
 अष्टमीन्रतकर्मजो विजयादशमीप्रियः ॥३६॥  
 कपिसैन्यसमारम्भी सुग्रीवप्राणदः परः ।  
 सूर्यवंशध्वजो धीरो ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रियः ॥३७॥  
 ब्रह्मार्पणी ब्रह्महोता ब्रह्मकर्मविदुत्तमः ।  
 ब्रह्मजो ब्राह्मणाचारः कृतकृत्यः सनातनः ॥३८॥

१. दीनबन्धुः-रीवां । २. भक्त<sup>०</sup>-रीवां । ३. 'रुद्रमाहात्म्यवर्धनः' इति पाठान्तरं, टिं०-मथु० ।

सच्चिदानन्दरूपश्च निरीहो निर्विकारकः ।  
 नित्याकारो निराधारो रामो रमयतां वरः ॥३९॥  
 रकारादिर्मकारादिः रामः कैवल्यमङ्गलः ।  
 संदर्भीं संशयच्छेत्ता शेषशायी सतां गतिः ॥४०॥  
 पुरुषः पुरुषाकारः प्रमेयः पुरुषोत्तमः ।  
 वंशीधरो विहारज्ञो रसानन्दीजितस्मरः ॥४१॥  
 पूर्णातिथिविनोदी च वृन्दावनविलासकृत् ।  
 रत्नकटकधरो वीरो मुक्ताहारविभूषणः ॥४२॥  
 नृत्यप्रियो नृत्यकरो नित्यसीताविहारवान् ।  
 महालक्ष्मीदृढानन्दी प्रमोदवननायकः ॥४३॥  
 परप्रेमा परानन्दः परभक्तिस्वरूपकः ।  
 अग्निरूपः कालरूपः प्रलयान्तमहानलः<sup>१</sup> ॥४४॥  
 सुप्रसन्नः प्रसादात्मा प्रसन्नात्म्यः परः प्रभुः ।  
 प्रीतिः ( तः ? ) प्रीति ( त ? )-  
 मनाः प्रीतिः शकटासुरभज्जनः ॥४५॥  
 खट्वासुरवधोद्युक्तः कालरूपो दुरन्तकः ।  
 हंसः स्मरसहस्रात्मा स्मरणीयो रुचिप्रदः ॥४६॥  
 पण्डा पण्डितमानी च वेदरूपः सरस्वती ।  
 गुह्यार्थदो गुरुर्देवो मन्त्रज्ञो मन्त्रदीक्षितः ॥४७॥  
 योगज्ञो योगविनाथः स्वात्मयोगविशारदः ।  
 अध्यात्मशास्त्रसारज्ञो रसरूपो रसात्मकः ॥४८॥  
 शृङ्गारवेशो मदनो मानिनीमानवर्द्धनः ।  
 चन्दनद्रवसंशीतश्चन्दनद्रवलेपनः ॥४९॥  
 श्रीवत्सलाज्ज्ञनः श्रीमान् मानी मानुषविग्रहः ।  
 करणं कारणं कर्त्ताऽधारो विधरणो धरः ॥५०॥  
 धरित्रीधरणो धीरः स्त्र्यधीशः<sup>२</sup> सत्यवाक् प्रियः ।  
 सत्यकृत् सत्रकर्ता च कर्मी कर्मविवर्द्धनः ॥५१॥

१. <sup>१</sup>महाबलः-अयो० । २. अधीशः-रीवां ।

कार्मुकी विशिखी शक्तिधरो विजयदायकः  
 ऊर्जस्वलो बली जिष्णुर्लङ्घेशप्राणनाशकः ॥५२॥  
 शिशुपालप्रहन्ता च दन्तवक्त्रविनाशनः ।  
 परमोत्साहनोऽसहृः<sup>१</sup> कलिदोषविनाशनः ॥५३॥  
 जरासन्धमहायुद्धो<sup>२</sup> निःकिञ्चनजनप्रियः ।  
 द्वारकास्थाननिर्माता मथुरावासशून्यकृत् ॥५४॥  
 काकुत्स्थो विनयी वारमी मनस्वी दक्षिणाप्रदः ।  
 प्राच्यवाचीप्रतीच्युक्तदक्षिणो भूरिदक्षिणः ॥५५॥  
 दक्षयज्ञसमानेता विश्वकेलिः सुरार्चितः ।  
 देवाधिपो दिवोदासो दिवास्वापो द्विवाकरः ॥५६॥  
 कमलाक्षः कृपावासो द्विजपत्नीमनोहरः ।  
 विभीषणशरण्यश्च शरणं परमा गतिः ॥५७॥  
 चाणूरबलनिर्माथी महामातञ्जनाशनः ।  
 बद्धकक्षो महामल्ली मल्लयुद्धविशारदः ॥५८॥  
 अप्रमेयः प्रमेयात्मा प्रमाणात्मा सनातनः ।  
 मर्यादावतरो विज्ञो मर्यादापुरुषोत्तमः ॥५९॥  
 महाक्रतुविधानज्ञः क्रतुकर्मा क्रतुप्रियः ।  
 वृषस्कन्धो वृषस्कन्धी वृषधवजमहासखः ॥६०॥  
 चक्री शार्ङ्गी गदापाणिः शङ्खभृत् सुस्मिताननः ।  
 योगध्यानी योगगम्यो योगाचार्यो दृढासनः ॥६१॥  
 जिताहारो भिताहारः परहा दिग्जयोद्धुरः ।  
 सुपर्णसिनसंस्थाता गजाभो गजमोक्षणः ॥६२॥  
 गजगामी ज्ञानगम्यो भक्तिगम्यो भयापहः ।  
 भगवान् सुमहैर्वर्यः परमः परमामृतः ॥६३॥  
 स्वानन्दी सच्चिदानन्दी नन्दिग्रामनिकेतनः ।  
 वर्हेत्तिंसः कलाकान्तः कालरूपः कलाकरः ॥६४॥  
 कमनीयः कुमाराभो मुचुकुन्दगतिप्रदः ।  
 मुक्तिभूरिफलकारः कारुण्यधृतविग्रहः ॥६५॥

१. सत्त्वः—अयोऽ । २° योद्धा—रीवां ।

भूलीलारमणोद्युक्तः शतधाकृतविग्रहः ।  
 रसास्वादी रसानन्दी रसातलविनोदकृत् ॥६६॥  
 अप्रतर्क्यः पुनोतात्मा विनीतात्मा विधानवित् ।  
 भुज्युः सभाजनः सभ्यः पण्डः पण्डुविष्प्यजः ॥६७॥  
 चर्षणी उत्कटो वीतो वित्तदः सविताऽविता ।  
 विभवो विविधाकारो रामः कल्याणसागरः ॥६८॥  
 सीतास्वयंवरोद्युक्तो हरकार्मुकभज्जनः ।  
 रावणोन्मादशमनः सीताविरहकातरः ॥६९॥  
 कुमारकुशलः कामः कामदः कोर्तिवर्द्धनः ।  
 दुर्योधनमहावैरी युधिष्ठिरहितप्रदः ॥७०॥  
 द्रौपदीचीरविस्तारी कुन्तीशोकनिवारणः ।  
 गान्धारीशोकसंतानः कृपाकोमलमानसः ॥७१॥  
 चित्रकूटकृतावासो गङ्गासलिलपावनः ।  
 ब्रह्मचारी सदाचारः कमलाकेलिभाजनः ॥७२॥  
 दुरासदः कलहकृत् कलिः कलिविनाशनः ।  
 चारी दण्डाजिनी छत्री<sup>१</sup> पुस्तकी कृष्णमेखलः ॥७३॥  
 दण्डकारण्यमध्यस्थः पञ्चवटचालयस्थितः ।  
 परिणामजयानन्दी नन्दिग्रामसुखप्रदः ॥७४॥  
 इन्द्रारिमानमथनो बद्धदक्षिणसागरः ।  
 शैलसेतुविनिर्माता कपिसैन्यमहीपतिः ॥७५॥  
 रथारूढो गजारूढो हृथारूढो महाबली ।  
 निषङ्गी कवची खड्गी खलगर्वनिवर्हणः ॥७६॥  
 वेदान्तविज्ञो विज्ञानो जानकीब्रह्मदर्शनः ।  
 लङ्घाजेता विमानस्थो नागपाशविमोचकः ॥७७॥  
 अनन्तकोटिगणभूः कल्याणः केलिनीपतिः ।  
 दुर्वासापूजनपरो वनवासी महाजवः ॥७८॥

सुसमयः सुस्मितमुखः कालियाहिफणानटः ।  
 विभुविषहरो वत्सो वत्सासुरविनाशनः ॥७९॥  
 वृषप्रमथनो वेत्ता मरीचिर्मुनिरञ्जिराः ।  
 वसिष्ठो द्रोणपुत्रश्च द्रोणाचार्यो रघूत्तमः ॥८०॥  
 रघुवर्यो दुःखहन्ता वनधावनसश्रमः ।  
 भिल्लग्रामनिवासी च भिल्लभिल्लहितप्रदः ॥८१॥  
 रामो रविकुलोत्तंसः वृष्णिगर्भो<sup>१</sup> महामणिः ।  
 यशोदाबन्धनप्रामो यमलार्जुनभञ्जनः ॥८२॥  
 दामोदरो दुराराध्यो द्वारगः प्रियदर्शनः ।  
 मृत्तिकाभक्षणक्रीडो ब्रह्माण्डावलिविग्रहः ॥८३॥  
 बाललीलाविनोदी च रतिलीलाविशारदः ।  
 वसुदेवसुतः श्रीमान् भवयो दशरथात्मजः ॥८४॥  
 वलिप्रियो वालिहन्ता विक्रमी केसरी करी ।  
 सनिग्रहफलानन्दी सनिग्रहनिवारणः ॥८५॥  
 सीतावामाङ्गसंलिष्टः कमलापाङ्गवीक्षितः ।  
 स्यमन्तपञ्चकस्थायी भृगुवंशमहायशाः ॥८६॥  
 अनन्तोऽनन्तमाता च रामो राजोवलोचनः ।  
 इत्येवं नामसाहस्रं राजेन्द्र तनयस्य ते ॥८७॥  
 यः पठेत्प्रातरुत्थाय धौतपादः शुचिन्नतः ।  
 स याति रामसायुज्यं भुक्त्वान्ते केवलं पदम् ॥८८॥  
 न यत्र त्रिगुणग्रासो न माया न स्मयो मदः ।  
 तद्याति विरजं स्थानं रामनामानुकीर्तयन् ॥८९॥  
 न ते पुत्रस्य नामानि संख्यातुमहमीश्वरः ।  
 संक्षेपेण तु यत्प्रोक्तं तन्मात्रमवधारय ॥९०॥  
 यावन्ति सन्ति रूपाणि विष्णोरमिततेजसः ।  
 तावन्ति तव पुत्रस्य परब्रह्मस्वरूपिणः ॥९१॥  
 पाञ्चभौतिकमेतद्वि विश्वं समुपधारय ।  
 ततः परं परब्रह्म विद्धि रामं सनातनम् ॥९२॥

१. पृश्निगर्भो-रीवां, अयो० ।

नश्वरं सकलं दृश्यं रामं ब्रूमः सनातनम् ।  
 एतद्धि तव पुत्रत्वं प्राप्नो रामः परात्परः ॥१३॥  
 सद्गेहरपि वेदान्ते नेतीति गीयते ।  
 तमेव जलदश्यामं रामं भावय भावय ॥१४॥  
 य एतत् पठते नित्यं रामसाहस्रकं विभो ।  
 स याति परमां मुक्तिं रामकैवल्यरूपिणीम् ॥१५॥  
 मा शङ्खिष्ठा नराधीशः श्रीरामरसिकस्य च ।  
 अनन्तकोटिरूपाणि रामस्तेषां विभावकः ॥१५॥  
 त्रैलोक्यमेतदखिलं रामवीर्यं प्रतिष्ठितम् ।  
 विजानन्ति नराः सर्वे नास्य रूपं च नाम च ॥१७॥  
 य एतस्मिन् महाप्रीतिं कलयिष्यन्ति मानवाः ।  
 त एव धन्या राजेन्द्र नान्ये स्वजनदूषकाः ॥१८॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वसिष्ठकृतनाम-  
 सहस्रकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥



## चतुर्दशोऽध्यायः

### वसिष्ठ उवाच

या श्रीरेतस्य सहजा सीता नित्याङ्गसञ्ज्ञिनी ।  
 भवित्री जनकस्यैव कुले सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ १ ॥  
 तस्याश्च नामसाहस्रं कथयिष्यामि भूपते ।  
 यथा रामस्तथैवेयं महालक्ष्मीः सनातनी ॥ २ ॥  
 नानयोः संमतो भेदः शास्त्रकोटिशतैरपि ।  
 अस्यैव नित्यरमणी बहुनामस्वरूपतः ॥ ३ ॥  
 तस्यास्तु नामसाहस्रं यथावदुपधारय ।  
 ॐ सहजानन्दिनी सीता जानकी राधिका रतिः ॥ ४ ॥

रुक्मणी कमला कान्ता कान्तिः कमललोचना ।  
 किशोरी रामललना कामुकी करुणानिधिः ॥ ५ ॥  
 कन्दर्पवर्द्धनी वीरा वरुणालयवासिनी ।  
 अशोकवनमध्यस्था महाशोकविनाशिनी ॥ ६ ॥  
 चम्पकाङ्गी तडिकान्तिर्जह्निवी जनकात्मजा ।  
 जानकी जयदा जप्या जयिनी जैत्रपालिका ॥ ७ ॥  
 परमा परमानन्दा पूर्णमामृतसागरा ।  
 सूधासूतिः सुधारश्मिः सुधादीपितविग्रहा ॥ ८ ॥  
 सुस्मिता सुस्मितमुखी तारका सुखदेखणा ।  
 रक्षणी चित्रकूटस्था वृन्दावनमहेश्वरी ॥ ९ ॥  
 कन्दर्पकोटिजननी कोटिब्रह्माण्डनायिका ।  
 शरण्या शारदा श्रीश्च शरस्त्कालविनोदिनी ॥ १० ॥  
 हंसी क्षीराब्धिवस्तिर्वासुकी स्थावराङ्गना ।  
 वराङ्गासनसंस्थाना प्रियभोगविशारदा ॥ ११ ॥  
 वसिष्ठविश्ववसिनी विश्वपत्नी<sup>१</sup> गुणोदया ।  
 गौरी चम्पकगात्रा च दीपद्योता प्रभावती ॥ १२ ॥  
 रत्नमालाविभूषा च दिव्यगोपालकन्यका ।  
 सत्यभामारतिः प्रीता मित्रा चित्तविनोदिनी ॥ १३ ॥  
 सुमित्रा चैव कौशल्या कैकेयीकुलवर्द्धनी ।  
 कुलीना केलिनी दक्षा दक्षकन्या द्यावती ॥ १४ ॥  
 पार्वती शैलकुलजा वंशध्वजपटीरुचिः ।  
 रुचिरा रुचिरापाङ्गा पूर्णरूपा कलावती ॥ १५ ॥  
 कोटिब्रह्माण्डलक्ष्मीशा स्थानदात्री स्थितिः सती ।  
 अमृता मोदिनी मोदा रत्नाचलविहारिणी ॥ १६ ॥  
 नन्दभानुसुता धीरा वंशीरवविनोदिनी ।  
 विजया वीजिनी विद्या विद्यादानपरायणा ॥ १७ ॥  
 मन्दस्मिता मन्दगतिर्मदना मदनातुरा ।  
 वृंहिणी वृंहती वर्या वरणीया वराङ्गना ॥ १८ ॥

१-'विश्वः भगवान्, तस्य पत्नी' इति टि०-मथु० ।

रामप्रिया	रमारूपा	रासनृत्यविशारदा ।
गान्धीविका	गीतरस्या	सङ्गीतरसवर्द्धनी ॥१९॥
तालदा	तालवक्षोजा	तालभेदनसुन्दरी ।
सरयूतीरसन्तुष्टा		यमुनातटसंस्थिता ॥२०॥
स्वामिनी	स्वामिनिरता	कौसुम्भवसनावृता ।
मालिनी	तुङ्गवक्षोजा	फलमालिनी ॥२१॥
वैङ्मयहारसुभगा		मुक्ताहारमनोहरा ।
किरातीवेशसंस्थाना		गुज्जामणिविभूषणा ॥२२॥
विभूतिदा	विभा वीणा	वीणानादविनोदिनी ।
प्रियड्गुकलिकापाड्गा	कटाक्षा	गतितोषिता ॥२३॥
रामानुरागनिलया		रत्नपङ्कजमालिनी ।
विभावा	विनयस्था च	मधुरा पतिसेविता ॥२४॥
शत्रुघ्नवरदात्री	च	रावणप्राणमोचिनी <sup>१</sup> ।
दण्डकावनमध्यस्था	बहुलीला	विलासिनी ॥२५॥
शुक्लपक्षप्रिया	शुक्ला	शुक्लापाङ्गस्वरोन्मुखी ।
कोकिलस्वरकण्ठी	च	कोकिलस्वरगायिनी ॥२६॥
पञ्चमस्वरसन्तुष्टा		पञ्चवक्त्रप्रपूजिता ।
आद्या	गुणमयी	लक्ष्मीः पद्महस्ता हरिप्रिया ॥२७॥
हरिणी	हरिणाक्षी	च चकोराक्षी किशोरिका ।
गुणहृष्टा	शरज्ज्योत्स्ना	स्मितस्नपितविग्रहा ॥२८॥
विरजा	सिन्धुगमनी	गंगासागरयोगिनी ।
कपिलाश्रमसंस्थाना	योगिनी	परमाकला ॥२९॥
खेचरी	भूचरी	सिद्धा वैष्णवी वैष्णवप्रिया ।
ब्राह्मी	माहेश्वरी	तिष्मा दुर्वारबलविभ्रमा ॥३०॥
रक्तांशुकप्रिया	रक्ता	नवविद्रुमहारिणी ।
हरिप्रिया	हीस्वरूपा	हीनभक्तविवर्द्धनी ॥३१॥
हिताहितगतिज्ञा	च	माधवी माधवप्रिया ।
मनोजा	मदनोन्मत्ता	मदमात्सर्यनाशिनी ॥३२॥

<sup>१</sup>मोक्षिणी—अयो० ।

निःसप्तनी निरूपमा स्वाधीनपतिका परा ।  
 प्रेमपूर्णा सप्रणया जनकोत्सवदायिनी ॥३३॥  
 वेदिमध्या वेदिजाता त्रिवेदी वेदभारती ।  
 गीर्वाणिगुरुपत्नी च नक्षत्रकुलमालिनी ॥३४॥  
 मन्दारपुष्पस्तवका मन्दाक्षनयर्वाद्धनी ।  
 सुभगा शुभरूपा च सुभाग्या भाग्यर्वाद्धनी ॥३५॥  
 सिन्दूराङ्कितमाला च मलिलकादामभूषिता ।  
 तुङ्गस्तनी तुङ्गनासा विशालाक्षी विशल्यका ॥३६॥  
 कल्याणिनी कल्मषहा कृपापूर्णा कृपानदी ।  
 क्रियावती वेधवती मन्त्रणी मन्त्रनायिका ॥३७॥  
 कैशोरवेशसुभगा रघुवंशविर्वाद्धनी ।  
 राघवेन्द्रप्रणयिनी राघवेन्द्रविलासिनी ॥३८॥  
 तरुणी तिर्मदा तन्वी त्राणा तारुण्यर्वाद्धनी ।  
 मनस्विनी महामोदा मीनाक्षी मानिनी मनुः ॥३९॥  
 'आग्नेयीन्द्राणिका रौद्री वारुणी वशवर्तिनी ।  
 वीतरागा वीतरतिर्वीतशोका वरोरुका ॥४०॥  
 वरदा वरसंसेव्या वरज्ञा वरकाङ्क्षिणी ।  
 फुल्लेत्तदीवरदामा च वृन्दा वृन्दावती प्रिया ॥४१॥  
 तुलसीपुष्पसंकाशा तुलसीमाल्यभूषिता ।  
 तुलसीवनसंस्थाना तुलसीवनमन्दिरा ॥४२॥  
 सर्वकारा निराकारा<sup>१</sup> रूपलावण्यर्वाद्धनो ।  
 रूपिणी रूपिका रम्या रमणीया रमात्मिका ॥४३॥  
 वैकुण्ठपतिपत्नी च वैकुण्ठप्रियवासिनी ।  
 वद्रिकाश्रमसंस्था च सर्वसौभाग्यमण्डिता ॥४४॥  
 सर्ववेदान्तगम्या च निष्कला परमाकला ।  
 कलाभासा तुरीया च तुरीयाश्रममण्डिता ॥४५॥  
 रक्तोष्टी च प्रिया रामा रागिनी रागर्वाद्धनी ।  
 नीलांशुकपरीधाना सुवर्णकलिकाकृतिः ॥४६॥

१. अग्राही—रीवां, अयो० । २. नित्याकारा—अयो०, मथु० ।

कामकेलिविनोदा च सुरतानन्दवर्द्धनी ।  
 सावित्री ब्रतधर्त्री<sup>१</sup> च करामलकनायका ॥४७॥  
 मराला मोदिनी प्राज्ञा प्रभा प्राणप्रिया परा ।  
 पुनाना पुण्यरूपा च पुण्यदा पूर्णिमात्मिका ॥४८॥  
 पूर्णकिरा व्रजानन्दा व्रजवासा व्रजेश्वरी ।  
 व्रजराजसुताधारा धारापीयूषवर्षिणी ॥४९॥  
 राकापतिमुखी मरना मधुसूदनवल्लभा ।  
 वीरिणी वीरपत्नी च वीरचारित्रवर्द्धनी ॥५०॥  
 धम्मिल्लमलिलकापुष्पा माधुरी ललितालया ।  
 वासन्ती वर्हभूषा च वर्होत्तंसा विलासिनी ॥५१॥  
 बर्हणी बहुदा बह्वी बहुवल्ली मृणालिका ।  
 शुकनासा शुद्धरूपा गिरीशवरवर्द्धिता ॥५१॥  
 नन्दिनी च सुदन्ता च वसुधा चित्तानन्दिनी ।  
 हेमसिंहासनस्थाना चामरदृथवीजिता ॥५२॥  
 छत्रिणी छत्ररम्या च महासाङ्गाज्यसर्वदा ।  
 संपन्नदा भवानी च भवभीतिविनाशिनी ॥५४॥  
 द्राविडी द्रविडस्थाना आनंद्री काणटिनागरी ।  
 महाराष्ट्रकविष्या उद्गदेशनिवासिनी ॥५५॥  
 सुजङ्गा पञ्चजपदा गुप्तगुल्फा गुरुप्रिया ।  
 रक्तकाञ्चीगुणकटि: सुरूपा बहुरूपिणी ॥५६॥  
 सुमध्या तरुणश्रीश्च वलित्रयविभूषिता ।  
 गर्विणी गुरुविणी सीता सीतापाञ्चविमोचनी ॥५७॥  
 ताटङ्किनी कुन्तलिनी हारिणी हीरकान्विता ।  
 शैवालमञ्जरीहस्ता मञ्जुला मञ्जुलपिनी ॥५८॥  
 कवरीकेशविन्यासा मन्दहासमनोरथा ।  
 मधुरालापसंतोषा कौबेरी दुर्गमालिका ॥५९॥  
 इन्दिरा परमश्रीका सुश्रीः शैशवशोभिता ।

१. °ब्रतधात्री—अयो० मथु० ।

शमीवृक्षाश्रया श्रेणी शमिनी शान्तिदा शमा ॥६०॥  
 कुञ्जेश्वरी कुञ्जगेहा कुञ्जगा कुञ्जदेवता ।  
 कल्पविञ्चकुलप्रीता पादाङ्गुलिविभूषिता ॥६१॥  
 वसुदा वसुपत्नी च वीरसूर्वीरवर्द्धनी ।  
 सप्तशृङ्खकृतस्थाना कृष्णा कृष्णप्रिया प्रिया ॥६२॥  
 गोपीजनगणोत्साहा गोपगोपालमण्डिता ।  
 गोवर्धनधरा गोपी गोधनप्रणयाश्रया ॥६३॥  
 दधिविक्रयकर्त्री च दानलीलाविशारदा ।  
 विजना विजनप्रीता विधिजा विधुजा विधा ॥६४॥  
 अद्वैता द्वैतविच्छिन्ना रामतादाम्यरूपिणी ।  
 कृपारूपा निष्कलङ्घा काञ्चनासनसंस्थिता ॥६५॥  
 महार्हरत्नपीठस्था राज्यलक्ष्मी रजोगुणा ।  
 रक्षितका रक्तपुष्पा च ताम्बूलीदलचर्चिणी ॥६६॥  
 विम्बोष्टी व्रीडिता व्रीडा वनमालाविभूषणा ।  
 वनमालैकमध्यस्था रामदोर्दण्डसङ्गिनी ॥६७॥  
 खण्डिता विजितक्रोधा विप्रलब्धा समुत्सुका ।  
 'अशोकवाटिकादेवी कुञ्जकान्तिविहारिणी ॥६८॥  
 मैथिली मिथिलाकारा मैथिलैकहितप्रदा ।  
 वाग्वती शैलजा शिप्रा महाकालवनप्रिया ॥६९॥  
 रेवा कल्लोलसुरता सत्यरूपा सदाचिता ।  
 सभ्या सभावती सुभ्रूः कुरञ्जाक्षी शुभानना ॥७०॥  
 मायापुरी तथायोध्या रञ्जधामनिवासिनी ।  
 मुग्धा मुग्धगतिर्मोदा प्रमोदा परमोन्नता ॥७१॥  
 कामधेनुः कल्पवल्ली चिन्तामणिगृहाञ्जणा ।  
 हिन्दोलिनी महाकेलिः सखीगणविभूषिता ॥७२॥  
 सुन्दरी परमोदारा रामसान्निध्यकारिणी ।  
 रामाद्वाङ्गा महालक्ष्मीः प्रमोदवनवासिनी ॥७३॥

विकुण्ठापत्यमुदिता	परदारप्रियाप्रिया <sup>१</sup> ।
रामकैङ्गर्यनिरता	जम्भजित्करवीजिता ॥७४॥
कदम्बकाननस्था	कादम्बकुलवासिनी ।
कलहंसकुलारावा	राजहंसगतिप्रिया ॥७५॥
कारण्डवकुलोत्साहा	ब्रह्मादिसुरसंस्थिता ।
सरसी सरसीकेलि:	पम्पाजलविनोदिनी ॥७६॥
करिणीयूथमध्यस्था	महाकेलिविधायिनी ।
जनस्थानकृतोत्साहा	काञ्चनन्यङ्कुवज्जिता ॥७७॥
कावेरीजलसुस्नाता	तोर्थस्नानकृताश्रया ।
गुप्तमन्त्रा गुप्तगतिर्गोप्या	गोपतिगोपिता ॥७८॥
गम्भीरावर्तनाभिश्च	नानारसबिलम्बिनी ।
शृङ्गाररससालम्बा	कादम्बामोदमादिनी ।
कादम्बिनी पानमत्ता घूणिताक्षी	स्खलदगतिः ॥८०॥
सुसाध्या दुःखसाध्या च दम्भिनी	दम्भवर्जिता ।
गुणाश्रया गुणकारा कल्याणगुणयोगिनी	॥८१॥
सर्वमाङ्गल्यसम्पन्ना माङ्गल्या	मतवल्लभा ।
सुखितात्मजनिप्राणा	प्राणेशी सर्वचेतना ॥८२॥
चैतन्यरूपिणी ब्रह्मरूपिणी	मोदवर्द्धिनी ।
एकान्तभक्त्तसुलभा	जयदुर्गा जयप्रिया ॥८३॥
हरचापकृतक्रोधा	भड्गुरोक्षणदायिनी ।
स्थिरा स्थिरगतिः स्थात्री स्थावरस्था	वराश्रया ॥८४॥
स्थावरेन्द्रसुता धन्या धनिनी	धनदार्चिता ।
महालक्ष्मीर्लोकमाता	लोकेशी लोकनायिका ॥८५॥
प्रपञ्चातीतगुणनी	प्रपञ्चातीतविग्रहा ।
परब्रह्मस्वरूपा च	नित्या भवितस्वरूपिणी ॥८६॥
ज्ञानभवितस्वरूपा च	ज्ञानभवितविवर्द्धिनी ।
ब्रह्मसायुज्यसाधुश्च	रामसायुज्यसाधना ॥८७॥

१. “सहजावरदाप्रिया” इति शोधितः पाठः—मथु० ।

ब्रह्मकारा ब्रह्मयो ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणी ।  
 महाधम्मिललशोभा च कवरीकेशपाशिनी ॥८८॥  
 चिन्मयानन्दरूपा च चिन्मयानन्दविग्रहा ।  
 कैवर्त्कुलसम्पत्तिः शवरीपरिवारिणी ॥८९॥  
 कनकाचलसंस्थाना गङ्गा त्रिपथगामिनी ।  
 त्रिपुटा त्रिवृता विद्या प्रणवाक्षररूपिणी ॥९०॥  
 गायत्री मुनिविद्या च सन्ध्या पातकनाशिनी ।  
 सर्वदोषप्रशमनी सर्वकल्याणदायिनी ॥९१॥  
 रामरामा मनोरम्या स्वयंलक्ष्म्या (क्ष्या ?) स्वसाक्षिणी ।  
 अनन्तकोटिनामा च अनन्तकोटिरूपिणी ॥९२॥  
 भूलीला रुविमणी राधा रामकेलिविबोधिनी ।  
 वीरा वृन्दा पौर्णमासी विशाखा ललिता लता ॥९३॥  
 लावण्यदा लयाकारा लक्ष्मीर्लोकानुबन्धिनी ।  
 सृष्टिस्थितिलयाकारा तुर्यातुर्यातिगावधिः ॥९४॥  
 दुर्वासावरलभ्या च विच्चित्रबलवर्द्धिनी ।  
 रमणी रामरमणी सारात्सारा परात्परा ॥९५॥  
 इति श्रीजानकीदेव्याः नामसाहस्रकं स्तवम् ।  
 नामकर्मप्रसङ्गेन मया तुभ्यं प्रकाशितम् ॥९६॥  
 गोपनीयं प्रयत्नेन त्रैलोक्येऽप्यतिरुलभम् ।  
 सीतायाः श्रीमहालक्ष्म्याः सद्यः संतोषदायकम् ॥९७॥  
 यः पठेत्रयतो नित्यं स साक्षाद्वैष्णवोत्तमः ।  
 नित्यं गुरुमुखाल्लब्धवा पठनीयं प्रयत्नतः ॥९८॥  
 सर्वसंपत्करं पुण्यं वैष्णवानां सुखप्रदम् ।  
 कीर्तिदं कान्तिदं चैव धनदं सौभग्यप्रदम् ॥९९॥  
 प्रमुद्वनविहारिण्याः सीतायाः सुखवर्द्धनम् ।  
 रामप्रियाया जानक्या नामसाहस्रकं परम् ॥१००॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे सीतानाम-  
 साहस्रकं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

## पञ्चदशोऽन्यायः

**वसिष्ठ उवाच**

इदानीं तव पुत्रस्य द्वितीयस्य महात्मनः ।  
 नामसाहस्रं वक्ष्ये सुगोप्यं दैवतैरपि ॥ १ ॥  
 एष साक्षाद्वरेन्शो देवदेवस्य शार्ङ्गिणः<sup>१</sup> ।  
 यः शेष इति विख्यातः सहस्रवदनो विभुः ॥ २ ॥  
 तस्यैतन्नामसाहस्रं वक्ष्यामि प्रयतः शृणु ।  
 लक्ष्मणः शेषगः शेषः सहस्रवदनोऽनलः ॥ ३ ॥  
 संकर्षणः कालरूपः सहस्रार्चिर्महानलः ।  
 कालरूपो दुराधरो बलभद्रः प्रलम्बहा ॥ ४ ॥  
 कृतान्तः कालवदनो विद्युजिद्वो विभावसुः ।  
 कालात्मा कलनात्मा च कलात्मा सकलोऽकलः ॥ ५ ॥  
 कुमारब्रह्मचारी च रामभक्तः शुचिद्वतः ।  
 निराहारो जिताहारो जितनिद्रो जितासनः ॥ ६ ॥  
 महारुद्रो महाक्रोधी इन्द्रजितप्राणनाशकः ।  
 सीताहितप्रदाता च रामसौख्यप्रदायकः ॥ ७ ॥  
 यतिवेशो वीतभयः सुकेशः केशवः कृशः ।  
 कृष्णांशो<sup>२</sup> विमलाचारः सदाचारः सदाकृतः ॥ ८ ॥  
 बहवितंसो विरतिर्गुज्जाभूषणभूषितः ।  
 शेषाचलनिवासी च शेषाद्रिः शेषरूपधृक् ॥ ९ ॥  
 अधोहस्तः प्रशान्तात्मा साधूनां गतिदर्शनः ।  
 सुदर्शनः सुरूपाङ्गो यज्ञदोषनिवर्त्तनः ॥ १० ॥  
 अनन्तो वासुकिनर्णगो महीभारो महीधरः ।  
 कृतान्तः शमनत्राता धनुज्यकिर्णोऽद्वृटः ॥ ११ ॥

---

१. रामस्य-रीवां, अयो० । २. कृष्णांशो-मथु०, रीवां । ३. वासुकी-  
अयो०, रीवां ।

महाबलो महावीरो महाकर्मा महाजवः ।  
 जटिलस्तापसः प्रह्वः सत्यसन्धः सदात्मकः ॥१२॥  
 शुभकर्मा च विजयी नरो नारायणश्रयः ।  
 वनचारी वनाधारो वायुभक्षो महातपाः ॥१३॥  
 सुमन्त्रो मन्त्रतत्त्वज्ञः कोविदो राममन्त्रदः ।  
 सौमित्रेयः प्रसन्नात्मा रामानुक्रत ईश्वरः ॥१४॥  
 रामातपत्रभूद् गौरः सुमुखः सुखवर्द्धनः ।  
 रामकेलिविनोदी च रामानुग्रहभाजनः ॥१५॥  
 दान्तात्मा दमनो दम्यो दासो दान्तो दयानिधिः ।  
 आदिकालो महाकालः क्रूरात्मा क्रूरनिग्रहः ॥१६॥  
 वनलीलाविनोदज्ञो विछेत्ता विरहापहः ।  
 भस्माङ्गरागधवलो यतो कल्याणमन्दिरः ॥१७॥  
 अमन्दो मदनोन्मादी महायोगी महासनः ।  
 खेचरीसिद्धिदाता च योगविद्ययोगपारगः ॥१८॥  
 विषानलो विषहृश्च<sup>१</sup> कोटिब्रह्मण्डदाहकृत् ।  
 अयोध्याजनसंगीतो रामैकानुचरः सुधीः ॥१९॥  
 रामाज्ञापालको रामो रामभद्रः पुनीतपात् ।  
 अक्षरात्मा भुवनकृद् विष्णुतुल्यः फणाधरः ॥२०॥  
 प्रतापी द्विसहस्राक्षो ज्वलद्रूपो विभाकरः ।  
 दिव्यो दाशरथिर्बालो बालानां प्रीतिवर्द्धनः ॥२१॥  
 वाणप्रहरणो योद्धा युद्धकर्मविशारदः ।  
 निषज्जी कवची दृप्तो दृढवर्मा दृढव्रतः ॥२२॥  
 दृढप्रतिज्ञः प्रणयी जागरूको दिवाप्रियः ।  
 तामसी तपनस्तापी गुडाकेशो धनुर्द्धरः ॥२३॥  
 शिलाकोटिप्रहरणो नागपाशविमोचकः ।  
 त्रैलोक्यांहिंसकर्त्ता च कामरूपः किशोरकः ॥२४॥  
 कैवर्तकुलविस्तारः<sup>२</sup> कृतप्रीतिः कृतार्थनः ।  
 कौपीनधारी कुशलः श्रद्धावान् वेदवित्तमः ॥२५॥

१. विषूयहृश्च-अयो० । २. °निस्तारः-मथु० ।

व्रजेश्वरीमहासख्यः कुञ्जालयमहासखः ।  
 भरतस्याग्रणीनेता सेवामुख्यो महामहः ॥२६॥  
 मतिमान् प्रीतिमान् दक्षो लक्ष्मणो लक्ष्मणान्वितः ।  
 हनुमत्प्रियमित्रश्च सुमित्रासुखवर्द्धनः ॥२७॥  
 रामरूपो राममुखो रामश्यामो रमाप्रियः ।  
 रमारमणसंकेती लक्ष्मीवाँललक्ष्मणाभिधः ॥२८॥  
 जानकीवल्लभो वर्यः सहायः शरणप्रदः ।  
 वनवासप्रकथनो दक्षिणापथवीतभीः ॥२९॥  
 विनीतो विनयी विष्णुवैष्णवो वीतभीः पुमान् ।  
 पुराणपुरुषो जैत्रो महापुरुषलक्ष्म (क्ष ?) णः ॥३०॥  
 महाकार्षणिको वर्मी राक्षसौघविनाशनः ।  
 आर्तिहा ब्रह्मचर्यस्थः परपीडानिवर्त्तनः ॥३१॥  
 पराशयज्ञः सुतपाः सुवीर्यः सुभगाकृतिः ।  
 वन्यभूषणनिर्माता सीतासंतोषवर्द्धनः ॥३२॥  
 राघवेन्द्रो रामरतिर्गुप्त॑सर्वपराक्रमः ।  
 दुर्द्विष्णो दुर्विष्णहः प्रणेता विधिवत्तमः ॥३३॥  
 त्रयीमयोऽग्निमयः त्रेतायुगविलासकृत् ।  
 दीर्घदंष्ट्रो महादंष्ट्रो विशालाक्षो विषोल्वणः ॥३४॥  
 सहस्रजिह्वाललनः सुधापानपरायणः ।  
 गोदासरित्तरङ्गाचर्यो नर्मदातीर्थपावनः ॥३५॥  
 श्रीरामचरणसेवी सीतारामसुखप्रदः ।  
 रामभ्राता रामसमो मार्तण्डकुलमण्डितः ॥३६॥  
 गुप्तगात्रो गिराचार्यो मौनव्रतधरः शुचिः ।  
 शौचाचारैकनिलयो विश्वगोप्ता विराङ् वसुः ॥३७॥  
 क्रुद्धः सन्निहितो हन्ता रामाचर्पिरिपालकः ।  
 जनकप्रेमजामाता सर्वाधिकगुणाकृतिः ॥३८॥

सुग्रीवराज्यकाङ्क्षी च सुखरूपी सुखप्रदः ।  
 आकाशगामी शक्तीशोऽनन्तशक्तिप्रदर्शनः ॥३९॥  
 द्रोणाद्रिमुक्तिदोऽचिन्त्यः सोपकारजनप्रियः ।  
 कृतोपकारः सुकृती सुसारः सारविग्रहः ॥४०॥  
 सुवंशो वंशहस्तश्च दण्डी चाजिनमेखली ।  
 कुण्डी कुन्तलभूत् काण्डः प्रकाण्डः पुरुषोत्तमः ॥४१॥  
 सुबाहुः सुमुखः स्वञ्जः सुनेत्रः संभ्रमी क्षमी ।  
 वीतभीर्वीतसङ्कल्पो रामप्रणयवारणः ॥४२॥  
 वद्धवर्मा महेश्वासो विरुद्धः सत्यवाकृतमः ।  
 समर्पणी विधेयात्मा विनेतात्मा क्रतुप्रियः ॥४३॥  
 अजिनी ब्रह्मपात्री च कमण्डलुकरो विधिः ।  
 नानाकल्पलताकल्पो नानाफलविभूषणः ॥४४॥  
 काकपक्षपरिक्षेपी चन्द्रवक्त्रः स्मिताननः ।  
 सुवर्णवेत्रहस्तश्च अजिह्यो जिह्यगापहः ॥४५॥  
 कल्पान्तवारिधिस्थानो बीजरूपो महाड़कुरः ।  
 रेवतीरमणो दक्षो वाञ्छवी<sup>१</sup>प्राणवल्लभः ॥४६॥  
 कामपालः सुगौराञ्जो हलभूत् परमोत्त्वणः ।  
 कृत्सनदुःखप्रशमनो विरज्जित्प्रियदर्शनः ॥४७॥  
 दर्शनीयो महादर्शो जानकीपरिहासदः ।  
 जानकीनर्मसचिवो रामचारित्रवर्द्धनः ॥४८॥  
 लक्ष्मीसहोदरोदारो<sup>३</sup> दारुणः प्रभुरूपजितः ।  
 ऊर्जस्वलो महाकायः कम्पनो दण्डकाश्रयः ॥४९॥  
 द्वीपिचर्मपरीधानो दुष्टकुञ्जरनाशनः ।  
 पुरग्राममहारथ्यवटीद्रुमविहारवान् ॥५०॥  
 निशाचरो गुमचरो दुष्टराक्षसमारणः ।  
 रात्रिज्वरकुलच्छेता धर्ममार्गप्रवर्तकः ॥५१॥

१. शक्तीष्ठो-रीवां, अयो० । २. “भ्रुर्विष्णुस्तस्य प्रिया श्रीः सा प्राणः जीवनं यस्य सः” इति टि०-मथु० । ३. “लक्ष्म्याः सहोदरः कल्पतरुस्तद्वदुदारः” इति टि०-मथु० ।

शेषावतारो भगवान् छन्दोमूर्तिर्महोज्ज्वलः ।  
 अहृष्टो हृष्टवेदाङ्गो भाष्यकारः प्रभाषणः ॥५२॥  
 भाष्यो भाषणकर्ता च भाषणीयः सुभाषणः ।  
 शब्दशास्त्रमयो देवः शब्दशास्त्रप्रवर्तकः ॥५३॥  
 शब्दशास्त्रार्थवादी च शब्दज्ञः शब्दसागरः ।  
 शब्दपारायणज्ञानः शब्दपारायणप्रियः ॥५४॥  
 प्रातिशाख्यो प्रहरणो गुप्तवेदार्थसूचकः ।  
 दृप्तवित्तो दाशरथिः स्वाधीनः केलिसागरः ॥५५॥  
 गैरिकादिमहाधातुमण्डितश्चित्रविग्रहः ।  
 चित्रकूटालयस्थायो मायो विपुलविग्रहः ॥५६॥  
 जरातिगो जराहन्ता ऊर्ध्वरेता उदारधीः ।  
 मायूरसित्रो मायूरो मनोज्ञः प्रियदर्शनः ॥५७॥  
 मथुरापुरनिर्माता कावेरीतटवासकृत् ।  
 कृष्णातीराश्रमस्थानो मुनिवेशो मुनीश्वरः ॥५८॥  
 मुनिगम्यो मुनीशानो भुवनन्नयभूषणः ।  
 आत्मध्यानकरो ध्याता प्रत्यक्सन्ध्याविशारदः ॥५९॥  
 वानप्रस्थाश्रमसेव्यः संहितेषुः प्रतापधृक् ।  
 उष्णीषवान् कञ्चुकी च कटिबन्धविशारदः ॥६०॥  
 मुष्टिकप्राणदहनो<sup>१</sup> द्विविदप्राणशोषणः ।  
 उमापतिरुमानाथ उमासेवनतत्परः ॥६१॥  
 वानरव्रातमध्यस्थो जाम्बुवद्गणसंस्तुतः ।  
 जाम्बुवद्भवतसुखदो जाम्बुजाम्बुभतीसखः ॥६२॥  
 जाम्बुवद्भवितवश्यश्च जाम्बूनदपरिष्कृतः ।  
 कोटिकल्पस्मृतिव्यग्रो वरिष्ठो वरणीयभाः ॥६३॥  
 श्रीरामचरणोत्सङ्गमध्यलालितमस्तकः ।  
 सीताचरणसंस्पर्शविनीताध्वमहाश्रमः ॥६४॥

१. °हननो—मथु० ।

समुद्रद्वीपचारी च रामकंङ्कर्यसाधकः ।  
 केशप्रसाधनामर्षी महाव्रतपरायणः ॥६५॥  
 रजस्त्वलोऽतिमलिनोऽवधूतो धूतपातकः ।  
 पूतनामा पवित्राङ्गो गङ्गाजलसुपावनः ॥६६॥  
 हयशीर्षमहामन्त्रविपश्चिन्मन्त्रिकोत्तमः ।  
 विषज्वरनिहन्ता च कालकृत्याविनाशनः ॥६७॥  
 मदोद्धतो महायानी कालिन्दीपातभेदनः ।  
 कालिन्दीभयदाता च खट्वाङ्गी मुखरोऽनलः ॥६८॥  
 तालाङ्कः कर्मविष्यातिर्धरित्रीभरधारकः ।  
 मणिमान् कृतिमान् दीप्तो बद्धकक्षो महातनुः ॥६९॥  
 उत्तुड्गो गिरिसंस्थानो राममाहात्म्यवर्द्धनः ।  
 कीर्तिमान् श्रुतिकीर्तिश्च लङ्काविजयमन्त्रदः ॥७०॥  
 लङ्काधिनाथविषहो विभीषणगतिप्रदः ।  
 मन्दोदरीकृताश्चर्यो राक्षसीशतघातकः ॥७१॥  
 कदलीवननिर्माता दक्षिणापथपावनः ।  
 कृतप्रतिज्ञो वलवान् सुश्रीः संतोषसागरः ॥७२॥  
 कपर्दी रुद्रदुर्दर्शो विरूपवदनाकृतिः ।  
 रणोद्धुरो रणप्रश्नी रणघण्टावलम्बनः ॥७३॥  
 क्षुद्रघण्टानादकटिः कठिनाड्गो विकस्वरः ।  
 वज्रसारः सारधरः शार्ङ्गी वरुणसंस्तुतः ॥७४॥  
 समुद्रलङ्घनोद्योगी रामनामानुभाववित् ।  
 धर्मजुष्टो धृणिस्पृष्टो वर्मी वर्मभराकुलः ॥७५॥  
 धर्मयाजी धर्मदक्षो धर्मपाठविधानवित् ।  
 रत्नवस्त्रो रत्नधौत्रो रत्नकौपीनधारकः ॥७६॥  
 लक्ष्मणो रामसर्वस्वं रामप्रणयविह्वलः ।  
 सबलोऽपि सुदामापि सुसखा मधुमङ्गलः ॥७७॥  
 रामरासविनोदज्ञो रामरासविधानवित् ।  
 रामरासकृतोत्साहो रामराससहायवान् ॥७८॥

वसन्तोत्सवनिर्माता शरत्कालविधायकः ।  
 रामकेलीभरानन्दी द्वूरोत्सारितकण्टकः ॥७९॥  
 इतीदं तव पुत्रस्य द्वितीयस्य महात्मनः ।  
 यः पठेन्नामसाहस्रं स याति परमं पदम् ॥८०॥  
 पीडायां वापि संग्रामे महाभय उपस्थिते  
 यः पठेन्नामसाहस्रं लक्ष्मणस्य महौजसः ।  
 स सद्यः शुभमाप्नोति लक्ष्मणस्य प्रसादतः ॥८१॥  
 सर्वान् दुर्गान् तरत्याशु लक्ष्मणेत्येकनामतः ।  
 द्वितीयनामोच्चारेण देवं वशयति ध्रुवम् ॥८२॥  
 पठित्वा नामसाहस्रं शतावृत्या समाहितः ।  
 प्रतिनामाहृतिं दत्वा कुमारान् भोजयेद्वश ॥८३॥  
 सर्वान् कामानवाप्नोति रामानुजकृपावशात् ।  
 लक्ष्मणेति त्रिवर्गस्य महिमा केन वर्ण्यते ॥८४॥  
 यच्छृृत्वा जानकीजानेहृदि मोदो विवर्द्धते ।  
 यथा रामस्तथा लक्ष्मी॑र्यथा श्रीर्लक्ष्मणस्तथा ॥८५॥  
 रामद्वयोर्न भेदोऽस्ति रामलक्ष्मणयोः क्वचित् ।  
 एष ते तनयः साक्षाद्रामेण सह सङ्गतः ॥८६॥  
 हरिष्यति भुवो भारं स्थाने स्थाने वने वने ।  
 द्रष्टव्यो निधिरेवासौ महाकीर्तिप्रतापयोः ॥८७॥  
 रामेण सहितः क्रीडां बह्वी॒ विस्तारयिष्यति ।  
 रामस्य कृत्वा साहाय्यं प्रणयं चार्चयिष्यति ॥८८॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे [लक्ष्मणसहस्रनाम-  
 कथनं नाम] पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

१. लक्ष्म्या-अयो०, मथु० । २. बाह्वी॑-रीवां, मथु० ।

## षोडशोऽध्यायः

### वसिष्ठ उवाच

अथास्य ते तृतीयस्य<sup>१</sup> कुमारस्याग्निवर्चसः ।  
 शृणु नामानि भूमीश पावनानि युगे युगे ॥ १ ॥  
 भरणो भरणात्मा च भूभारहरणोत्कटः ।  
 अयोध्यापुरभर्ता च भरणीयो भरावहः ॥ २ ॥  
 प्रद्युम्नो मन्मथोऽनङ्गो वीरकर्मा निराकुलः ।  
 पुष्पधन्वा त्रिलोकीजिछ्छंबरारिम्नोभवः ॥ ३ ॥  
 परप्रतापनो वंशः सर्वाश्चर्यनिकेतनः ।  
 मीनकेतुर्महामारः कामिनीजनरोषणः ॥ ४ ॥  
 पोषणस्तोषणः क्रोशी द्वारकापुरपालकः ।  
 रामविश्लेषसहनो रामविश्लेषकातरः ॥ ५ ॥  
 कन्दर्पो दर्पहा दर्पो दर्पणो दर्पनाशनः ।  
 अयोध्याजनसंस्नेहो रामविश्लेषवारकः ॥ ६ ॥  
 श्रीराम<sup>२</sup>गमनाकाङ्क्षी प्रजादुर्भिक्षपोषकः ।  
 प्रजादुःखहरो वीरो धार्मिकः प्रतिपालकः ॥ ७ ॥  
 वाञ्छवीप्राणदयितो माण्डवीप्राणवल्लभः ।  
 रामतुल्यो रामबलो रामवत्प्रियसाधकः ॥ ८ ॥  
 कैकेयीनेत्रसुखदो महासाम्राज्यभाजनः ।  
 रुक्मिणीनेत्रसुखदो रुक्मिणीप्रीतिवर्द्धनः ॥ ९ ॥  
 त्यक्तराज्यो रामगतिर्विष्णुर्भरतरूपधृक् ।  
 अथोच्यन्ते चतुर्थस्य नामानि तनयस्य ते ॥ १० ॥  
 शत्रुघ्नः शत्रुहन्ता च मथुरापुरपालकः ।  
 श्रीमान् मधुवनानन्दी मधुजिज्जयवर्द्धनः ॥ ११ ॥  
 चापहस्तः कुशलधीरनिरुद्धोऽप्युषापतिः ।  
 श्रुतकीर्तिप्रियाकान्तः कामिनीजनवल्लभः ॥ १२ ॥

१. अथ ते तृतीयस्यास्य-अयो०, मथु० । २. श्रीराम०-मथु०, रीवां ।

चित्रलेखाकृतोत्साहुं उषावरणकामुकः ।  
 परसद्धप्रवेशी च परपत्तनदाहकृत् ॥१३॥  
 परदारप्रभोगी च वाणासुरविरोधकृत् ।  
 वाणजिद् वाणदहनो धर्ममूर्तिः सनातनः ॥१४॥  
 एतान्यन्यानि च तथा नामानि तनयस्य ते ।  
 चत्वार एते सदृशा नाम्ना कीर्त्या च मेधया ॥१५॥  
 अहमेतद्विजानामि भवान् ज्ञास्यसि कालतः ।  
 एते रविकुलोत्तंसा रघुवंशविभूषणाः ॥१६॥  
 धर्मसंस्थापनार्थायावतरन्ति युगे युगे ।  
 एषां प्रभावं ब्रह्मपि न जानाति कुतोऽपरे ॥१७॥  
 रामस्यैवाखिला देहास्तत्कार्यविधित्सया ।  
 अवतोर्णस्य पूर्णस्य पूर्णब्रह्मस्वरूपिणः ॥१८॥  
 रामऽचन्द्रस्य सर्वेऽपि अवताराः सनातनाः ।  
 एवं नामविधिं कृत्वा तूष्णीभूते महामुनौ ॥१९॥  
 राजा दशरथः प्रादाद् द्विजेभ्यः सुमहद्वनम् ।  
 रामनाममहाकर्मण्यमराः सकला अपि ॥२०॥  
 शृङ्गारितस्त्रीसहिताः समाजगमुर्दा युताः ।  
 तेभ्यो दशरथः प्रादादलङ्घाराननेकधा ॥२१॥  
 ते प्रीणिता वहवसनान्नभूषणैः  
     कृताशिषो दशरथभूपसूनुषु ।  
 यथागतं प्रतियथुरात्मनो गृहान्  
     मनोरथैर्बहुपरिपूरितान्तराः ॥२२॥  
 ते जातनामान उदाररोचिषो  
     वर्द्धुष्णवस्तुल्यवयोविभाविताः ।  
 धनुर्द्वरा बालककेलिकारिणो  
     बभुर्यथा कुञ्जरराजशावकाः ॥२३॥  
 दिने दिने पूर्णकलस्तु रामः  
     प्रभावभृद् दशरथनेत्रनन्दनः ।  
 व्यरोचत त्रिभुवनशोकनाशनः  
     शनैः शनैः क्षितितलरिङ्गणादिभिः ॥२४॥

कौशल्या रहसि तमिन्दुशोभिवक्रं  
 क्रीडन्तं क्षितितलरिङ्गणादिरीत्या ।  
 मायूरीः स्वशिरसि चन्द्रिका वहन्तं  
 सम्प्रेक्ष्य प्रसभमवाप दृष्टिसौख्यम् ॥२५॥  
 राजापि प्रणयवशीकृतान्तरोऽ भूद्  
 रामस्य स्मितसुभगं मुखं विलोक्य ।  
 रिङ्गन्तं शिशुकमजातचूडकृत्तं<sup>१</sup>  
 नो शेकुः स्वमुप<sup>२</sup> विलोक्य संविभर्तुम्<sup>३</sup> ॥२६॥  
 सुन्दर्यो नरनगनागदेवकन्या  
 दृग्दोषं शमयितुमात्तराजिकास्ताः ।  
 चुम्बन्त्यो रहसि मुखं रघूद्वहस्य  
 शिलष्यन्त्यो नवघनसुन्दरं वपुश्च ॥२७॥  
 भूयस्योऽन्तःपुरमुषिताश्चिराय नार्यो  
 रामेन्द्रं प्रणयवशाद्विलोक्यन्त्यः ।  
 आत्मानं सपदि न सस्मरुः स्वरूपं  
 सौन्दर्यामृतरससारमापिबन्त्यः ॥२८॥  
 कौशल्या कैकेयी चैव सुमित्रा च हरेमुखम् ।  
 वीक्ष्य तूम्हि न चैवाप विधुं कुमुदिनो यथा ॥२९॥  
 सोऽव्यक्तकलया वाण्या बन्धूनां नाम संगिरन् ।  
 विततान मुदं भूरि राज्ञो दशरथस्य च ॥३०॥  
 बालोऽपि रामचन्द्रोऽभूत स्वानां मोदाय पुष्टिवान् ।  
 भ्रातृभिर्वयसा तुल्यैर्भूयसीं कान्तिमावहन् ॥३१॥  
 कमनीयं किशोरस्य श्यामलं कोमलं वपुः ।  
 विलोक्य मुदमाजगमुस्त्रैलोक्यस्थानवासिनः ॥३२॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 बाल्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

१. चूडकृष्ण-रीवां । २. स्वमपि-मथु० । ३. “कौशल्यादशरथौ स्वकमपि  
 बालं रिङ्गन्तं विलोक्यापि हस्ताभ्यां सम्यक् धत्तुं न देकतुः” इति टिं०-मथु० ।

## सप्तदशोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नेव काले तु देवर्षिनारदो मुनिः ।  
 रावणालयमभ्येत्य शशंसामरगोपितम् ॥ १ ॥  
 देवगुम्भं परं तत्वं रहस्यं नारदो मुनिः ।  
 शशंसाभ्येत्य दैत्याय दशवक्त्राय साध्वसम् ॥ २ ॥

### नारद उवाच

लङ्घ्नेश विदितं तेऽस्ति जातस्तव निषूदनः ।  
 देवानां प्रार्थनैव जायमानो युगे पुरा ॥ ३ ॥  
 पुरा हिरण्यकशिपुस्त्वं येन विनिपातितः ।  
 हिरण्याक्षस्तव भ्राता स जातः कुम्भकर्णकः ॥ ४ ॥  
 स इदानीमपि तथा रामस्तव शिरोहरः ।  
 क्वचिज्जातोऽस्ति धरणौ त्रिदशैः प्रार्थितो भृशम् ॥ ५ ॥  
 तत्प्रतीकारमतुलमधुनैव विचिन्तय ।  
 नोचेद्विष्टौ गते वृद्धिं पश्चात्समनुतप्यसि ॥ ६ ॥  
 एवमुक्त्वा तु देवर्षौ नारदे निर्गते गृहात् ।  
 चकम्पे वीरवर्योऽपि राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ ७ ॥  
 अहो मम बलं देवर्माशितुं नैव शक्यते ।  
 स्वयं बलविहीनास्ते बलवन्तं गवेषिणः ॥ ८ ॥  
 सोऽहं शिवस्य चरणे स्वशिरांसि धूत्वा  
 तत्प्रीतिलब्धबलवीर्यमहाविभूतिः ।  
 देवान् नयामि सहसा त्रिदिवादधोऽद्य  
 विस्त्रांसयन् स्वपदतो वितथप्रभावान् ॥ ९ ॥  
 धर्मं च हन्मि शिवपूजनतोऽतिरिक्तं  
 सोऽपि स्वमात्रकृत एव सुखाय मेऽस्तु ।  
 नोचेच्छिवो यदरिषु प्रणयं विदध्यात्  
 तेन क्वचिन्मम भवेद्विभवस्य<sup>१</sup> पातः ॥ १० ॥

१. विभवस्य = “संसाररहितस्य समर्थस्य” इति दि०- मथु० ।

विष्णुस्तु धर्मसदनो मम किं करिष्य-  
 त्यज्ञातं॑ एव निगमागमधर्मभेतुः ।  
 ये वैष्णवास्त्रजगति द्विष एव ते मे  
 तेषामहं शिवनिषेवणतोऽस्मि जेता ॥११॥

दाम्भिका मोघकर्मणो वृथालापनपण्डिताः ।  
 वैष्णवास्तु मया क्षेप्यास्त्र॒यीधर्मवहिर्मुखाः ॥१२॥  
 ब्रह्मलोकाद् बहिः कार्यो ब्रह्मा चेन्द्रः स्वलोकतः ।  
 एवमन्येऽपि सूर्यद्या निराकार्या मयाधुना ॥१३॥

तेषां स्थानानि दासेभ्यो दास्यामि स्वाधिकारतः ।  
 ते तत्र विचरिष्यन्ति राक्षसा मे महाबलाः ॥१४॥  
 यत्रामी संस्थिता यद्वन्मन्दिरे ग्रामसूकराः ।  
 मदाज्ञापालनपरान् करिष्यामि भृतं सुरान् ॥१५॥

न मे भुजबलं सोढुं विष्णुः संप्रभविष्यति ।  
 इतिकृत्वा मर्ति क्रूरां पौलस्त्यः कालचोदितः ॥१६॥

चकार भगवद्द्वेषं तदुपश्यपीडनः ।  
 देवाश्च विद्रुतास्तेन प्राप्ता दशरथं नृपम् ॥१५॥

गुप्तभावेन तिष्ठन्ति प्रमोदवनमध्यगाः ।  
 केचित्तमेव शरणं राक्षसेन्द्रमुपाययुः ॥१८॥

परे गिरिदरीष्वेव निलीय क्वचिदाश्रिताः ।  
 एवं श्रुत्वा महाकष्टं रावणाल्लोकरावणात् ॥१९॥

राजा दशरथोऽप्यासीत् पुत्ररक्षापरायणः ।  
 रावणेन विसृष्टाश्च राक्षसा ब्रह्मराक्षसाः ॥२०॥

डाकिन्यः पूतनाद्याश्च कूष्माण्डकुणपास्तथा ।  
 इतस्ततो धातयन्तो विच्छेष्ठरणीतले ॥२१॥

राजापि भयसंत्रस्तः पुत्रप्रणयकातरः ।  
 धात्रीगृहे कुमारणां सन्निवेशं चकार सः ॥२२॥

१. “स त्ववज्ञातो मया” इति टि०-मथु० । २. छेद्या-मथु० ।

कौशल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च स्ववेशमतः ।  
सरथ्वा अपरे पारे गोपराजस्य वेशमनि ।  
सन्निवेश्य द्विजातिभ्यो बालस्वस्त्ययनं व्यधात् ॥२३॥

ते बालकास्तत्र गवेन्द्रधाम-  
न्यलङ्कृता हेममर्यैविभूषणैः ।

विचेहरानन्दितबन्धुलोचनाः

स्वरूपसौन्दर्यलस्तप्रतीकाः ॥२४॥

कदाचिदेका खलु राक्षसी छलाद्-  
विधाय रूपं किल<sup>१</sup> लोकवज्चकम् ।

साक्षादिव श्रीरगमन्निहन्तुं

यत्रास्ति रामः खलु तत्र वेशमनि ॥२५॥

स गोपवध्वा पयसा प्रपायितः

शंशायितो मृदुशयनेऽति बालकः ।

तूर्णं तयागत्य जनैरदृष्ट्या

गृहीत एव स्तनदानवाञ्छया ॥२६॥

तस्याः स्तनोत्थं विषहं विषं हरि-

र्गृहणन् प्राणैः साकमह्नाय देवः ।

प्राणान् पपौ येन तदा तथा व्यसुः

प्रकाशयामास निजं कलेवरम् ॥२७॥

गव्यूतिपञ्चकपदं युग्योजनान्त-

विक्षिप्तमध्यमिनयोजन<sup>२</sup> वज्रहस्तम् ।

संचूर्णयन् गिरिनगालयगोव्रजौघान्

दीर्घारवेण निपपात सुघोररूपम् ॥२८॥

तस्याः पतन्त्याः इवसितानलो मुखा-

न्नियन्<sup>३</sup> सुघोरेण रवेण निर्ययौ ।

वपुश्च संचूर्णितगोव्रजाङ्गणं

पपात लोकस्तददृष्टपूर्वम् ॥२९॥

१. सकल<sup>०</sup>-अयो०, रीवां । २. इनयोजनं = द्वादशयोजनमित्यर्थः । ३. नियन् = निर्गच्छन् ।

रवं तमाकर्णं जना दधाविरे  
खेलन्तमस्या उरसि व्यपश्यन् ।

रामं नवेन्दीवरदामकोमलं  
बालं भयावेगविवर्जितं तदा ॥३०॥

सहस्रादाय कौशल्या माङ्गल्या गोपसुन्दरी ।  
सविकम्पा परिष्वज्य प्राप्तप्राणमिवाग्रहीत् ॥३१॥

अथाभ्यधावद्वशरथभूपतिर्जवात्  
स्वमन्दिराद् भयमाकर्णविरोधे ।

रामं समादाय करेण वक्षसि  
जग्न्मौ शिरः किमिदमिति व्यशोचयत् ॥३२॥

या राक्षसी शैलदरीविलोचना  
शुष्कान्धु<sup>१</sup> नाभिर्द्वमचरणाङ्गुलीगणा ।

विदीर्णवक्रातिभयं चकार  
कथं शिशुर्वक्षसि नानया धृतः ॥३३॥

## राजोवाच

अहो इयं बहुभयदायिविग्रहा  
कव वा अयं कव च खलु मामकः शिशुः ।

दिष्ट्या विमुक्तो विधिनैव मोचितः  
प्राणो यथा दीनदीनस्य दीनः ॥३४॥

ततः स ब्राह्मणैः साकमकरोत् स्वस्तिवाचनम् ।  
देवान् संपूज्य विधिवद्धुत्वाग्नौ स्वाशिषोऽवदन् ॥३५॥

यन्मे व्रतं च दत्तं च यन्मे देवाः कृतार्चनाः ।  
यन्मे प्रसादिता विप्रास्तेनायं जीवताच्छिशुः ॥३६॥

यन्मे भाग्यं तथायुद्धच यन्मे पुण्यं सनातनम् ।  
यन्मे तमः परं किञ्चित्तेनायं जीविव[व?]ताच्छिशुः ॥३७॥

यन्मे शुभाशिषः प्रादात् प्राजापत्यो महामुनिः ।  
याज्ञवल्कयश्च भगवांस्तेनासौ जीविव[व?]ताच्छिशुः ॥३८॥

१. अन्धुः = कूपः ।

चिरं जीवतु मे बालो बन्धुभिर्भ्रातृभिः सह ।  
 देवतानां प्रसादेन मुनीनां च विशेषतः ॥३९॥  
 माङ्गल्याद्या महागोप्यः कौशल्याद्याश्च मातरः ।  
 पितुर्हस्तात् समादाय प्रायुज्जन् सत्यमाशिषः ॥४०॥  
 गोविन्दः पातु ते शीर्षं दृशौ पातु चतुर्भुजः ।  
 कणौ दामोदरः पातु नासिके पुरुषोत्तमः ॥४१॥  
 ओष्ठौ च पातु गोविन्दशिच्चबुके देवकीसुतः ।  
 करौ च पातु वैकुण्ठो वक्षः पातु गदाग्रजः ॥४२॥  
 कुक्षिं पातु सदा विष्णुर्नार्णभिं पातु सदा हरिः ।  
 पादौ सहस्रपात् पातु पातु पादाङ्गुलीर्विभुः ॥४३॥  
 श्रीशः पादतलं पातु सर्वतः पातु कंसहा ।  
 इति रामकुमारस्य प्रयुज्जानाः शुभाशिषः ॥  
 मुहुः संभावयामासुर्गोपा गोप्यश्च मातरः ॥४४॥  
 अहो इयं क्रूरमतिर्निजैनसा  
 मृता विधात्रैव परापकारिणी ।  
 अस्मद्भगवेव चिरं रघुप्रियो  
 रामः सदा मोदमानः स्वलीके ॥४५॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 पूतनावधो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥



## अष्टादशोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

अपरेद्युश्च माङ्गल्या यापयित्वा स्तनोद्भवम् ।  
 निधाय दन्तखट्वायां राममस्वापयच्छिशुम् ॥ १ ॥  
 तत्र कश्चिच्चन्महाघोरो विकटाख्यो महामुरः ।  
 इयाय खट्वामाविश्य स्थितो रामजयाशया ॥ २ ॥

तं प्रभुः सहसा ज्ञात्वा कामरूपं महासुरम् ।  
 चूर्णयामास स्वाङ्गस्य भारेण भगवान् प्रभुः ॥ ३ ॥  
 संचूर्णिते रामशरीरभारै—  
 व्यभज्यतासौ खलु खट्वाङ्गसङ्घैः ।  
 स आरवो व्याप्य दिशो नभश्च  
 प्रभूत्वांस्तत्र यथा यर्युर्जनाः ॥ ४ ॥  
 खट्वाङ्गसङ्घं [ङ्घं ?] प्रविलोक्य चूर्णितं  
 जनाः परं विस्मयमाययुर्हृदि ।  
 तत्राभवन् साक्षिणः केऽपि बाला  
 अनेन खट्वेयमहो विचूर्णिता ॥ ५ ॥  
 तद्वालभाषितं मत्वा नैव श्रद्धधिरे जनाः ।  
 इत्येवं विकटो नाम चूर्णितः स महासुरः ।  
 रामेण बालरूपेण रिङ्गता गोकुलाङ्गणे ॥ ६ ॥  
 अथान्येद्युरुपायातो वात्यारूपो महासुरः ।  
 भूतलं स्वस्तलं चैव कुर्वन् तिमिरसंकुलम् ॥ ७ ॥  
 प्रचण्डवेगारवचूर्णितान्त॑—  
 स्तृणोच्चयं भूरि समुत्क्षपन्नितः ।  
 अतीव वात्यामयकामविग्रहः  
 कठोररावः प्रसभं समाययौ ॥ ८ ॥  
 सुदुःसहापूरितशर्कराभरो  
 विलोपिताशेषजनेक्षणक्रियः ।  
 दुरन्तपांशुप्रकरप्रवर्षणो  
 गवेन्द्रधामाकुलमातनोत्तराम् ॥ ९ ॥  
 तस्मिन् क्षणे तु माङ्गल्या कौशल्या चाङ्गसंस्थितम् ।  
 रामं कृतमहाभारं न्यवैशयदिलातलम्<sup>२</sup> ॥ १० ॥

१. ° न्तरस् — मथु०, रीवां । २. त्यक्त्वावैशयदिलातले—अयो० रीवां ।  
इलातलं = भूतलम् ।

तं दानवो बहुतरवेगवत्तया  
रामं समादाय नभः समास्थितः ।

तावत् प्रसूर्बालमपश्यती स्थले  
चकार हा क्रन्दमलब्धजीविता ॥११॥

रामोऽपि नभसा यान्तं वात्यासुरमकारणम् ।

आत्मापहारिणं मत्वा दृढं दध्रे कृकाटिकाम् ॥१२॥

स रामहस्ताग्रनिबद्धघाटा  
निर्मुक्तजीवो भृशपीडयाहृतः ।

तत्याज देहं विकटं महोत्तले  
महाशिलापातविशेषचूर्णितम् ॥१३॥

तस्मिन् रिपोरुरसि पपात राघवः  
संचूर्णयन्निजवपुषो भरेण तम् ।

आगत्य व्रजसुदृशो अहीषुरेनं  
भाग्येन द्युतलगतं व्युपागतं च ॥१४॥

कौशल्यया भूरि सकम्पया मुहुः  
स्वाङ्के समारोप्य भृशं स लालितः ।

माङ्गल्ययागत्य चिरं गृहीतः  
शिरस्युपाद्राय<sup>१</sup> मुखेन चुम्बितः ॥१५॥

एवं बहव उत्पाता आसन् गोपीन्द्रगोकुले ।

रावणस्याज्ञया नित्यं चरद्भिर्घोरराक्षसैः ॥१६॥

ततस्ते भन्त्रणां चक्रुर्गोपालाः सुखिताद्यः ।

राजो दशरथस्याग्रे निबद्धाञ्जलयोऽखिलाः ॥१७॥

### गोपा ऊचुः

राजन्नत्र महोत्पाता दृश्यन्ते प्रतिवासरम् ।

भाग्येन जीविता बालाः प्राणादप्यधिका असी ॥१८॥

सा राक्षसी भानुषधोरदर्शना  
समागता बालकानां जिघांसया ।

१. उपादाय-अयो० रीवां ।

दिष्ट्या मृता सा रविवंशजानां<sup>१</sup>  
 पुण्यप्रभावेन महीयसैव ॥१९॥  
 ततः परं सातिकठोरखट्वा  
 स्वयं व्यक्षीर्यत् पापरूपा परेषाम् ।  
 तस्यांशया नो नृप रामचन्द्रो  
 भाग्येन लब्धो व्रजवासिनां नः<sup>२</sup> ॥२०॥  
 ततः स वात्यासुर उज्जहार  
 रामं धरण्यां निहितं जनन्या ।  
 स एव यातो यमसादनं खलो  
 बालस्तावत् कलेशभराद् विमुक्तः ॥२१॥  
 एकदास्य पदस्पृष्टौ शाखिनौ गगनस्पृशौ ।  
 स्वयं निपतितौ भूम्यां किञ्चिद्द्वरेऽयमत्यगात् ॥२२॥  
 इत्येवमस्मद्भाग्येन त्वत्पूर्वसुकृतेन च<sup>३</sup> ।  
 चिरं जीवति रामोऽसौ परं चिन्ताकुला वयम् ॥२३॥  
 जानीमहेऽमी रमणा<sup>४</sup> निजांश-  
 विनिर्मितकोटिब्रह्माण्डनाथाः ।  
 तथापि भूपाल सुरक्षणीयाः  
 सर्वस्वभूता भवतो नो विशेषात् ॥२४॥  
 पश्यन्त्य एतान् वनिता व्रजौकसां  
 जीवन्ति सीनाः सलिलान्तरे यथा ।  
 गायन्त्य एतान् मधुरस्वनेन  
 दिवानिशं बिभ्रति मानसे मुदम् ॥२५॥

## राजोवाच

जानीमहे महोत्पातान् तदत्रैव विधीयताम् ।  
 सरथ्वाः पुरतः पारे विशालं कामिकावनम् ॥२६॥

१. दृष्ट्या मृता सा ( मृतानां-अयो० ) वक्वंशजानां-रीवां, अयो० ।  
 २. ° नान्तः-अयो० । ३. त्वत्पूर्वजतमेन च-अयो०, रीवां । ४. नीरमण-अयो० ।

तत्र निश्चीयतां गोपा भवद्भिर्वसतिनिजा ।  
 नीयतां गोधनान्यग्रे पश्चान्निर्गम्यतां जवात् ॥२७॥  
 स्वान् स्वान् दारान् समादाय शकटैरनुडुद्युतैः ।  
 एवं बुद्ध्वा मतं राजो गोपा गोप्यः सगोधनाः ॥२८॥  
 गोकुलेन्द्रं पुरस्कृत्य प्रययुः कामिकावनम् ।  
 यत्र संदीपनं नाम वनानामुत्तमं वनम् ॥२९॥  
 सौगन्धिको नाम गिरिर्महारत्नविभूषितः ।  
 यत्रासने महारम्याः कतिशो रत्नवापिकाः ॥३०॥  
 सरयूजलकल्लोलतलस्त्रोतविभाविताः ।  
 कदम्बकाननं यत्र सर्वतुंकुसुमान्वितम् ॥३१॥  
 यत्र वृक्षाः सदानन्माः पवामृतफलान्विताः ।  
 तत्रावासं चकारोच्चै राजापि स्वयमादरात् ॥  
 धात्रीगृहे कुमाराणां वर्द्धतां सुखकाम्यया ॥३२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामबालचरित्रवर्णनं  
 नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥



### एकोनविंशोऽध्यायः

ते तत्र नित्यं परिवर्द्धमानाः<sup>१</sup>  
 स्वगात्रलक्ष्मी<sup>२</sup> पुपुषुः कुमाराः ।  
 संजातदन्ताः स्मितवक्त्रचन्द्राः  
 श्रिया जनानां हृदयं हरन्तः ॥ १ ॥  
 धात्रीकराङ्गुलिभरेण वितिष्ठमाना  
 भूयो रणच्चरणनूपुरजातहर्षाः ।  
 मध्याङ्गकिञ्चिणिकया कृतभूरिनृत्याः  
 स्वानां मुदं व्यधुरुदारगुणाभिरामाः<sup>३</sup> ॥ २ ॥

१. परिवृद्ध०—अयो०, मथु० । २. °लक्ष्मीः—रीवां । ३. व्यधुरपार०—अयो०  
 रीवां ।

गोपालबालनिवहेषु विराजमानाः  
सद्रत्नदण्डभररम्यकटाश्चरन्तः ।

गोपाङ्गेषु नवनीतकराढ्यहस्ताः  
श्रीरामलक्ष्मणमुखाः शिशावो विरेजुः ॥ ३ ॥

रामः सलक्ष्मणस्तत्र विचरन् व्रजवीथिषु ।

गोपालबालकैः साकं चिक्रीडे बहुधा प्रभुः ॥ ४ ॥

ववचिद् वत्सान् समादाय धावमानो व्रजाङ्गणे ।

ववचिन्मयूरशिशुभिः परिवारितविग्रहः ॥ ५ ॥

ववचिद्वंसैश्च कादम्बैः कारण्डवकुलैस्तथा ।

चटकैश्च कपोतैश्च चिक्रीडे गोकुले चरन् ॥ ६ ॥

स गोकुलवरस्त्रीणां हृदयानि प्रमोदयन् ।

बालकेलिं चकारोच्चैर्मोहयन् गोपकन्यकाः ॥ ७ ॥

कस्तूरीतिलकविराजिभालदेशो  
मुक्तास्त्रङ्गमणिगलचारुकण्ठहारः ।

नासाग्रे पृथुगजमौक्तिकं दधानो  
बिभ्राणः करकमलेन मञ्जुवेणुम् ॥ ८ ॥

चूडालः करयुग्हेमकञ्जणश्रीः  
श्रीखण्डद्रवमकरीविरोचिगात्रः ।

गोपाली मनसि विवर्द्धयन् मनोजं  
कुवणिं दधिनवनीतचौर्यलीलाम् ॥ ९ ॥

गृहे गृहे विशन् रामो विचरन् बालकैः सह ।

माङ्गल्यां चैव कौशल्यां समुपालम्भयज्जनैः ॥ १० ॥

ता गोपकन्याः स्मरबाणविद्वा  
रामेण विस्त्रिंसयता मनांसि ।

समाययुः कान्तविलोकनार्थ  
गृहानुपालम्भमिषेण लुब्धाः ॥ ११ ॥

गोप्य ऊचुः

हे माङ्गल्ये गवेन्द्रगेहिनि हे कौशल्ये दशरथमहिषि ।  
तव तनया अनयाश्चत्वारस्तेषामेष सुधूर्तो रामः ॥ १२ ॥

कृत्वा बहु नवनीतस्तेयं  
 भोजयति कपीन् शिशूं च शश्वत् ।  
 दृष्टः सपदि पलायति बालैः  
 पुनरायाति च गालौ दत्ते ॥१३॥  
 व्याकुलयति कुलवनिता शश्व-  
 :मुखमवगुणठनपिहितं पश्यन् ।  
 आकर्षत्यधुनैव विलज्जो  
 गोकुलकन्यातस्वसनानि ॥१४॥  
 उक्तः किमपि पलायति द्वारे  
 साक्षात् काम इवातिजिघांसुः ।  
 खेदयति मुहुरति॑विपुलश्रोणीः  
 कुर्वन् संततमलमपराधम् ॥१५॥  
 हसति च हासयते च शिशुभ्यः  
 कुरुते विनाः गोकुलरामाः ।  
 किमपि च वक्तुं न पारयामः  
 शिक्षय मातर्ननु निजबालम् ॥१६॥  
 एष स लक्ष्मणमपि शिक्षयति  
 साधुमिमं स्वसमं च चिकीर्षुः ।  
 बहिरन्तश्च विजित्य समस्तं  
 यथार्थनामा राजति रामः ॥१७॥  
 स्फोटयति प्रसभं दधिभाण्डं  
 विगुणोभवति निवारित एषः ।  
 एवमादि वचनानि वदन्त्यः  
 कान्तविलोकनपूरितकामाः ।  
 जग्मुरात्मसदनानि तरुण्य-  
 स्तमेव सततं भावयमानाः ॥१८॥  
 कदाच्चिद् बालकैः साकं क्रीडन् रामो व्रजाङ्गणे ।  
 वर्जितोऽपि जनन्या ८८८<sup>२</sup> कुपथ्यं बदरीफलम् ॥१९॥  
 १. सद्गति-रीवां, मुहुर-अयो०, मथु० । २. च-रीवां, मथु० ।

बालैनवेदिता माता तर्जयामास तं शिशुम् ।  
स तर्जितो जनन्या च प्रहसंस्तामुवाच ह ॥२०॥

## राम उवाच

मातर्नहं जघासाद्य<sup>१</sup> कुपथ्यं बदरीफलम् ।  
नोचेदुष्टाट्य वदनं मदीयं प्रविलोकय ॥२१॥

## ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा व्यात्तमुखस्तु रामः  
प्रदर्शयामास मुखे समस्तम् ।  
सजञ्जमं स्थावरमेतदुच्चै-  
र्यददृश्यजातं वरिर्वति लोके ॥२२॥  
अद्रयः सागरा नद्यो द्वीपाः ग्रामाः पुराणि च ।  
नरा देवाश्च गन्धर्वा वनानि भुवनानि च ॥२३॥  
सर्वं राममुखेऽपश्यन्माता माङ्गल्यया सह ।  
अदृष्टमश्रुतं चैव सर्वाश्चर्यमयं जगत् ॥२४॥

## कौशल्योवाच

किमेष जातो मतिविभ्रमो मे  
स्वप्नोऽथवा देववरस्य माया ।  
किं वाद्य किंचित् कुतुकं प्रदर्शितं  
रामेण वोचे स यथा नो वसिष्ठः ॥२५॥  
इत्थं मुहुभ्रान्तिमतिः प्रसूस्त-  
मपार्यमाणा वदने विलोकितुम् ।  
न्यमीलयन्नेत्रयुगं निजं सा  
पुनः समुन्मील्य मुखं दर्दश ॥२६॥  
सा रामचन्द्रस्य मुखेन्दुमन्द-  
हासावलोकेन पुनः समोहा ।  
पुत्रेति मत्वा समयाययत् स्तनं  
स्तनन्धयं राममानन्दरूपम् ॥२७॥

१. जघासाथ-अयो० ।

एवं स आद्यः पुरुषः पुराणः  
स्वमायथा बालभावं प्रपद्य ।  
अरज्जयद् गोकुलयोषितस्ता  
यथा तदात्मान इमा बभूवः ॥२८॥  
तन्मग्नमनसो नित्यं तदालापनतत्पराः ।  
तदगीतगानमुदिता बभूवस्तन्मयान्तराः ॥२९॥  
इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे विश्वरूपदर्शनं  
नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥



## विंशोऽध्यायः

एकदा गोपराजस्य पत्नी माङ्गल्यकाभिधा ।  
नवनीतप्रियस्यास्य स्वपुत्रस्य प्रियार्थिनी ॥  
दधिनिर्मन्थने काले प्रसक्ता शुशुभेतराम् ॥ १ ॥  
पटाम्बरं कटिविलग्नमिदं दधाना  
हस्ताम्बुजद्वयगृहीतसुमन्थनेत्रा<sup>१</sup> ।  
आन्दोलनादिरसनागुणकिङ्गीका  
भूयो रणत्कनककङ्कणशोभमाना ॥ २ ॥  
धम्मिल्लमोचनचलत्वगलत्प्रसून-  
निर्मन्थनश्रमजतोयकणावकीर्णम् ।  
संबिभ्रती वदनमिन्दुमिवामृतोत्थं<sup>२</sup>  
माङ्गल्यका मणिघटे दधि निर्मन्थ ॥ ३ ॥  
तस्याः स्तन्यं कामयानो रामो मन्थानमग्रहीत् ।  
तमङ्के स्थापयित्वा सा ततः स्तन्यमपाययत् ॥ ४ ॥

१. सुवर्णनेत्रा-मथु०,-गृहीतनेत्रा-अयो० । २. मिवामृतस्य-अयो०, मथु० ।

निरीक्ष्यती तद्वदनेन्द्रुमादराद्  
 दृष्ट्वा तु वात्सल्यरसानुविद्धा ।  
 मुहुः परिष्वज्य च चुम्बितानना  
 गोपी परानन्दपदं समभ्यगात् ॥ ५ ॥  
 विलोक्य पय उत्सेकं कीलया कृष्णवर्त्मनः ।  
 पिबन्तमेव तं त्यक्त्वा प्रययौ रक्षितुं पयः ॥ ६ ॥  
 तावत्सुसंजातरुषो जनन्या  
 बभृज दध्नो' दृष्ट्वा स भाजनम् ।  
 गृहान्तरे चाहततक्रभाजनो  
 जगाम शिक्योपरि पातितुं दधि ॥ ७ ॥  
 भूमौ घटं निधायाधस्तदुपर्यपिताङ्गिणा ।  
 कृत्वा सूक्ष्मं तु विवरं शिक्यभाण्डस्थितं दधि ॥ ८ ॥  
 पपे तत्तेन स्तेनेन शेषं बालैश्च वानरैः ।  
 तस्मिन् स्थाने समागत्य माङ्गल्या दधिभाजनम् ॥ ९ ॥  
 रामेण स्फोटितं वीक्ष्य न तमीक्ष्य च बालकम् ।  
 गृहान्तरमगात्तुर्णं तत्रापि न विलोकितः ॥ १० ॥  
 ततो गृहान्तरं गत्वा दृष्ट्वा [षुः] तादृश एव सः ।  
 नवनीतकरो यातः पलाय्य सदनान्तरम् ॥ ११ ॥  
 नितान्तमनुभूयतो दधिकणाङ्किते तत्पदे  
 निरस्य लकुटों गताऽस्य भयमोक्ष्य माङ्गल्यका ।  
 तथा स सदनान्तरे सपदि वीक्षितः संरुद्धन्  
 मृजन्मुभयपाणिना लुलितकज्जले लोचने ॥ १२ ॥  
 तस्यापराधान् विविधान् विजानती  
 बद्धुं समारब्धवती तमीश्वरम् ।  
 तत्पाणियुग्मं स्वकरे गृहीत्वा  
 नेत्रेण यावत् प्रकरोति बन्धम् ॥  
 तावत्तदासीच्चतुरड्गुलोनकं  
 ततोऽन्यदादाय बबन्ध नो ममौ ॥ १३ ॥

अन्यदन्यदुपादाय सूत्रं बद्धवती सुतम् ।  
 तत्तन्न्यूनं समभवच्चतुरड्गुलतोऽधिकम् ॥१४॥  
 ततो गृहस्थान्यखिलानि नेत्रा-  
 प्यानीय खिन्नां जननीं विलोक्य ।  
 स्वेदावकीर्णा पृथुजघनां भराता-  
 मेकेनैव स्वमबन्धयद्गुणेन ॥१५॥  
 सुवर्णनेत्रसूत्रेण स बद्धवा करयोस्तथा ।  
 विबद्धःस्वाङ्गणस्थस्य स्तम्भतः कल्पशाखिनः ॥१६॥  
 रामो जनन्यां यातायां कर्षयामास नेत्रकम् ।  
 तत्कृष्टं तेन वृक्षेण साक्षेव करेऽवहत् ॥१७॥  
 वृक्ष उन्मूलने जाते डोरकाकर्षणक्षणे ।  
 स्वयं स बद्ध एवास पतितेऽपि महोरुहे ॥१८॥  
 तस्मिन्निपतमाने तु तरौ शब्दो महानभूत् ।  
 तत एको महाकायः पुरुषः पद्मलोचनः ॥१९॥  
 सुन्दरः सुमुखः स्वच्छो ददृशो देववद्युतिः ।  
 स साष्टाङ्गं प्रणम्यादौ रामं राजीवलोचनम् ॥२०॥  
 तुष्टाव हसितो भूत्वा मुक्तः स्थावरभावतः ।

### पुरुष उवाच

नमो रामाय रामाय गोविन्दाय नमोनमः ॥२१॥  
 नमः सत्त्वाय शान्ताय नमः कारुणिकाय ते ।  
 नमः श्रीरामचन्द्राय दशाकृतिविधायिने ॥२२॥  
 नमो गोपालवेषाय नमो गोपीविलासिने ।  
 नमोऽनुग्रहरूपाय नमोऽनुग्रहकारिणे ॥२३॥  
 नमो रामावतरिणे नमो भक्तिविधायिने ।  
 नमस्ते फलरूपाय नमस्ते साधनात्मने ॥२४॥  
 सत्त्वाव्यवहितं रूपं दधते ते नमोनमः ।  
 सात्त्विकों मुक्तिमत्येत्य परभक्तिप्रदायिने ॥२५॥

शान्ताय शान्तातीताय<sup>१</sup> गुणलीलाकराय च ।  
 चिदानन्दस्वरूपाय तस्मै रामाय ते नमः ॥२६॥  
 मेघश्यामाय रामाय पोतकौशेयवाससे ।  
 बालरूपाय पद्मायाः कन्यायै तन्नमोनमः ॥२७॥  
 नमः शुक्लाय रक्ताय पीताय सितिवर्चसे ।  
 युगलीलाविनोदाय श्रीरामाय नमोममः ॥२८॥  
 कलात्मने पूर्णकलाय राघव<sup>२</sup>

अंशात्मनेऽशांशकलाश्रयाय<sup>३</sup> ।

नमो नमस्ते पुरुषोत्तमाय  
 रामाय रामाय च राघवाय ॥२९॥  
 नमस्ते रूपसंपत्या त्रैलोक्यमदनाय च ।  
 हैयञ्जवीनचौराय रसभोक्त्रे रसात्मने ॥३०॥  
 नमो रसाय रस्याय नित्यलीलामयाय च ।  
 अथेदं दर्शितं रूपं त्वयानुग्रहकारिणा ॥३१॥  
 अद्य मे सफलं ज्ञानं विशेषार्दिष्टं त्वयि ।  
 नाहं किञ्चिद्विजानामि स्वात्मानं परमेव वा ॥३२॥  
 त्वामेकमेव शरणं प्रपद्ये भक्तिभावतः ।  
 इदं ते कोमलं राम सुन्दरं चरणद्वयम् ॥३३॥  
 त्वद्भक्तिसंसिद्धिकरं मस्तके मे निधोयताम् ।  
 इति स्तुत्वा गोपबालैः परिवोतं रघूद्वहम् ॥३४॥  
 परिक्रम्य त्रिरानम्य कृतकार्यो दिवं यथौ ।

### भुशुण्ड उवाच

ब्रह्मन् को नाम पुरुषः समदृश्यत वृक्षतः ॥३५॥  
 कथं वा स्थावरो जातो यातः कुत्र च तादृशः ।  
 एतन्मे वद साश्चर्यं चरित्रं श्रीरमापतेः ॥३६॥

१. शान्तौ नीताय-अयो०, मथु० । २ राघवे-अयो०, रीवां । ३. सकलांसा-  
 श्रयाय-अयो०, मथु० ।

## ब्रह्मोवाच

विरजायाः परे पारे सुनीथो नाम वै द्विजः ।  
 ब्रह्मदर्शीं सदाचारो न तु भक्तिपरायणः ॥३७॥  
 तत्रस्थैरुपदिष्टोऽपि भक्तिमार्गं न मन्यते ।  
 आत्ममानी स्तम्भगतिर्मुक्तमानी मुनीश्वरः ॥३८॥  
 ज्ञानेऽस्य योग्यतां दृष्ट्वा नारदो ब्रह्मदर्शनः ।  
 भक्तिं प्रोवाच सपुत्रज्ञानमेवाभ्यमन्यत ॥३९॥  
 का भक्तिर्भजनीयः क एकं ब्रह्मैव केवलम् ।  
 तत्सत्यमपरं तुच्छं कस्य भक्तिं करिष्यसि<sup>१</sup> ॥४०॥  
 ज्ञानेन ज्ञातुमन्विच्छ स्वात्मानममृतात्मकम् ।  
 प्रमेयं सर्वदेवानां कस्तत्र हरिरीश्वरः ॥४१॥  
 इत्यादिमोहवचनैर्दूषयन् स मुनेर्मतिम् ।  
 तेनैव मुनिना शप्तो व्रजे जातो महोरुहः ॥४२॥  
 रामपादस्पर्शमात्राद् द्विजः संजातभक्तिकः ।  
 प्राग्ज्ञानं समनुप्राप्य भक्तराजो भवत्तराम् ॥४३॥  
 तस्माद्रामं परित्यज्य येऽन्यानपि भजन्ति ते ।  
 विहाय सरसः स्त्रोतः<sup>२</sup> कूपं कुर्वन्ति बालिशाः ॥४४॥  
 तस्मादेको रामचन्द्रोऽत्र सेव्यः  
 सर्वैर्लोकैः सर्वभावेन नित्यम् ।  
 सर्वस्येशाः सर्वदेवैकभाव्यः  
 सर्वाकारः सर्वसर्वश्च सर्वः ॥४५॥  
<sup>३</sup>रामो रामो रामरामोऽभिरामो  
 रामो रामो रामरामश्च रामः ।  
 रामो रम्यो रामचन्द्रो रमेशः  
 इत्थं चोक्त्वा मुच्यते चैव बन्धात् ॥४६॥

१. करिष्यति—अयो०, रीवां । २. सरस्त्रोतश्च—अयो०, सरयूस्त्रोतः—मथु० ।  
 ३. अत्र = चिह्नं दत्त्वा—“चतुर्दशवारनाम्ना चतुर्दशलोक-बन्धनान्मुक्तिरिति”  
 दिं०—मथु० ।

यो राममूर्ति भजते न मानवो  
 रामेति वर्णौं कुरुते न कर्णौं ।  
 स नावमासाद्य महानदीजले  
 निमज्जनं वाञ्छति मूढमानसः ॥४७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 सुनीथमोक्षणं नाम विशोऽध्यायः ॥२०॥



## एकविंशोऽध्यायः

[ब्रह्मोवाच]

माङ्गल्या चैव कौशल्या गोप्यो गोपाश्च मातरः ।  
 राजा दशरथश्चैव लक्ष्मणाद्यास्तथा सुताः ॥ १ ॥  
 सुखितश्चैव गोपालः सानुगस्तूर्णमाययुः ।  
 द्रुमपातरवं श्रुत्वा सर्वे संभ्रान्तचेतसः ॥ २ ॥  
 अकस्मात् कुत आराव इति चिन्तासमाकुलाः ।  
 त आगत्य गुणैर्बद्धं रामं तादृशमेव तम् ॥ ३ ॥  
 वृक्षस्तम्भस्थितं वीक्ष्य विस्मयं परमं यथुः ।  
 तत्रस्थाः बालकाः सर्वे सुहुरुच्चैर्बभाषिरे ॥ ४ ॥  
 अनेन कर्षता सूत्रं द्रुम उन्मीलितो जवात् ।  
 तच्छ्रूत्वा बालवचनं नैव श्रद्धधिरे जनाः ॥ ५ ॥  
 तद्विनावधि रामोऽसौ विख्यातो द्रुमभज्जनः ।  
 तं तथा विटपिस्तम्भबद्धं दृष्ट्वा तदाहसत् ॥ ६ ॥  
 उन्मोच्य रामं नृपतिश्चुचुम्ब प्रणयान्मुखम् ।  
 मैवं कुरुष्व राम त्वं कोमलाङ्गो महाश्रमम् ॥ ७ ॥  
 अनेन तव खेदेन भृशं खिद्यामहे वयम् ।  
 नवनीतस्तेयकरो मा ऋमस्व गृहे गृहे ॥ ८ ॥

यत्तवेष्टं क्रीडनकं तत्तदत्रैव कल्पये ।  
 भ्रातृभिर्बन्धुलोकैश्च तथा परिजनैर्भृशम् ॥९॥  
 बाललीलारसं चक्रे रामो रमणकोविदः ।  
 एवं केलीरसासक्तो विस्मरन् पानभोजने ॥१०॥  
 बालैः सह स' चिक्रीडे भातृणां वर्द्धयन् मुदम् ।  
 हठेन माता माङ्गल्या क्रीडन्तं रामभानयत् ॥११॥  
 शृङ्गारयामास हठात् तथैवापाययद्वठात् ।  
 एवं ते गोपसदने वर्द्धमानाः कुमारकाः ॥१२॥  
 वत्सान् संचारयामासुः सह गोपालबालकैः ।  
 सरयूतीरभासाद्य रत्नाद्रिभितस्तथा ॥१३॥  
 प्रभोदवनमासाद्य विचेहरधिगोकुले ।  
 कवचिद्वेणून् वादयन्तो गायन्तश्च तथा कवचित् ॥१४॥  
 कवचिन्मुहुः कूर्दमानाः कवचिन्नृत्यन्त एव च ।  
 कवचिद् गोपालबालाभिः खेलन्तश्च परस्परम् ॥१५॥  
 फलक्षेषैस्तथा केलीमाचरन्तं कवचिच्च ते ।  
 बहिधातुविच्चित्राङ्गाः शुशुभुर्बालरूपिणः ॥१६॥  
 कदाचित् सरयूतीरे वत्सान् चारयतामुना ।  
 ददृशो रावणहितो वत्सरूपो महासुरः ॥१७॥  
 तं दर्शयन् लक्ष्मणाय हसन् रामो महाबलः ।  
 धृत्वापराभ्यां पादाभ्यां आमयित्वा च भूरिशः ॥१८॥  
 फलिनां बहुवृक्षाणामग्रेषु समपातयत् ।  
 तस्य निष्पत्ततः कायो दशयोजनतोऽभवत् ॥१९॥  
 सरयवाः पुरतो मध्ये प्रत्यङ्गविततो महान् ।  
 वृक्षेभ्यः कम्पमानेभ्यः फलानि बहुशोऽपतन् ॥२०॥  
 तान्यदुर्बालिकाः सर्वे सुरमारणनिर्वृताः ।  
 एवं वत्सान् पाययितुं नद्यः पुलिन आगतः ॥  
 तत्रापश्यत् स्थितं रामो बकरूपं महासुरम् ॥२१॥

१. च—रीवां, सह चक्रीडे—मथु० । २. माशयत्—अयो० रीवां ।

तावत् स जग्रास जवेन रामं  
तीक्ष्णेन तुण्डेन कठोरचित्तः ।

तस्याननेऽसौ ववृधे यथासौ  
विदीर्णतुण्डो व्यसुतामुपाययौ ॥२२॥

राममासाद्य ते प्राणसदृशं लक्षणादयः ।  
बालका मुमुदुः स्वाङ्गैः परिष्वज्य विसाध्वसाः ॥२३॥

सुराश्च ते परमिकया मुदान्विताः  
सुरद्भुमस्तबकभरैर्वर्वर्षिरे ।

अहो अहो रघुवररूपसागरो  
हितप्रदो वत भुवि नः समागतः ॥२४॥

इत्याश्चर्यचरित्राणि कुर्वन् रामः सहानुजः ।  
विरेजे नितरां तत्र कल्याणगुणभाजनः ॥२५॥

कदाचिद्वनवीथीषु खेलन्तो बालकैः सह ।  
रामादयो विददृशुर्महासर्पं स्थितं पथि ॥२६॥

कन्दराव्यापवदनं शैलकायं भुजङ्गमम् ।  
दृष्ट्वा तस्यानने सर्वे विविशुः कन्दराधियः<sup>१</sup> ॥२७॥

रामो ज्ञात्वा महासर्पं व्यवर्द्धत तदोदरे ।  
बालाश्च ते निर्गमिताः पाटयित्वोदरं बलात् ॥२८॥

यावत् पापच्यमानास्ते न छ्रियेरन् विषानलैः ।  
कदाचिद्रामचन्द्रस्य जिज्ञासुविभुतां विधिः ॥२९॥

हृत्वा निन्ये निजं लोकं वत्सान् बालाश्च लोलया ।  
ऋते लक्षणशत्रुघ्नभरतान् सर्वबालकान् ॥३०॥

रामोगवेष्याणस्तान् सरयूतीरभागतः ।  
यदा चिरेण नापश्यन्मेने विधिकृतं तदा ॥३१॥

यथासौ वत्सपालानां वत्सानां च विशेषतः ।  
रूपाणि स्वयमास्थाय जगाम त्रजमन्दिरे ॥३२॥

१. कन्दराधिया-मथु०, “दरीं मन्यमानाः” टिं०-मथु० ।

बन्धवो मातरस्तेषां विशेषात् स्नेहपुष्कलाः ।  
 रामवत्प्रीयमाणास्ते प्रभोदं परमं ययुः ॥३३॥

गावो वत्सान् विजिघ्रन्त्यो बालकांशचैव मातरः ।  
 बभूवुस्तृप्तहृदया रामं दृष्ट्वा यथा तथा ॥३४॥

अन्येद्युरपि तान् वेधा जहार जनितस्मयः ।  
 रामश्चक्रे तथैवान्यान् स्वयंतावत्स्वरूपधृक् ॥३५॥

एवं यावद्दशदिनमुभौ<sup>१</sup> कर्माणि चक्रतुः ।  
 एको जहार गर्वेण ससृजेऽन्यो<sup>२</sup> निजेच्छया ॥३६॥

ततोऽतिविस्मयं प्राप्य वेधाः संजातसंभ्रमः ।  
 एकादशोऽह्नि पदयोरपतज्जातकौतुकः ॥३७॥

स दण्डवत्प्रणिपतितस्तदग्रतो  
 ज्ञात्वा रामं जातमुदग्रविक्रमम् ।

अस्तौत् स्तवैः संजनितातिहर्षो  
 भक्त्या युक्तो भूरिभाग्यं च जानन् ॥३८॥

### ब्रह्मोवाच

नमामि ते राम पदारविन्दं  
 भक्त्या लभ्यं भक्तिहीनैरचिन्त्यम् ।

स्वरूपशक्त्यैव मुदं वितन्वन्  
 विक्रीडमानो जयसे सुरान् रणे<sup>३</sup> ॥३९॥

किं वर्णनीयो महिमा तवेश्वर  
 श्रीर्यत्पदाम्भोजयुगेऽस्ति किङ्करी ।

यतो गिरः सह मनसा सञ्चिवृत्ता  
 यं न स्पृशेद् भूरिसिद्धोऽपि योगः ॥४०॥

तस्मै नमस्ते त्रिदशप्रियार्थं  
 कृतावताराय<sup>४</sup> निरीहणाय ।

स्वमायया मोहितविष्टपाय  
 स्वसाक्षिणे सेवकवत्सलाय ॥४१॥

१. “उभौ = चतुर्मुखरामौ” टिं०-मथु० । ४. “अन्यो रामः” टिं०-मथु० ।  
 २. गणो-रीवां । २. °वतारिणे-अयो० मथु० रीवां ।

ममापराधस्तव वत्सहर्तुः  
 क्षन्तव्य एषोऽतितरां रमेश ।  
 अजानतो बालकस्यापराधं  
 यथैव माता क्षमते मिट्पुरीषम् ॥४२॥  
 न ज्ञायते महिमा बालकस्य  
 ब्रह्मस्वरूपस्य हरेम्यापि ।  
 अगोचरो वेद वेदांगिरा सः  
 स्वयं त्वपायः परिदर्शनीयः ॥४३॥  
 त्वं प्रार्थितः सुरनरैर्दशवक्त्रविघ्ने-  
 स्तश्चिग्रहाय जनिभाप नरेन्द्रगेहे ।  
 जातोऽधुना विहरसीति मया प्रतीतं  
 स्वेच्छाविलासभवनाविनयं क्षमस्व ॥४४॥  
 यत्त्वं पुराणमुनिभिर्बहुधारणाद्यैः  
 स्वात्मैकयोगनिषुणैनितरां दुरापः ।  
 तत्के वयं निजगृहातिधरा वराकाः  
 श्रीराघवेन्द्र भवतो महिमानमाप्तुम् ॥४५॥  
 यज्ञो मनोरथभराय भवावतीर्णो  
 प्रभुद्वनाद् भुवननाथ समूहनाथ ।  
 तत्ते रमा विहरणे ववच्चिदन्तरायो  
 माभूत् कदाच्चिदिति संततमर्थये त्वाम् ॥४६॥  
 लोकमातापि भवतोऽनुकूलानि करोतु सा ।  
 यथा त्वमत्र भुवने चिराय विहरिष्यसि ॥४७॥  
 निजैः पदैस्तीर्थमयानि कुर्वन्  
 स्थलानि गङ्गाजलसंमितानि ।  
 स्ववीर्यगुप्तो विचरन् धरण्यां  
 धनुद्धरः क्षपयन् दुष्टसञ्ज्ञान् ॥४८॥

१. विट्पुरीषं-अयो० रीवां । “मिह सेचने, मिट् मूत्रं तत्पुरीषं वा पाठः”  
 टि०-मथु० ।

चिरमेध चिरं वर्द्धं चिरमास्व महीतले ।  
 चिरं कुरु चरित्राणि पालयन् धर्मगोद्धिजान् ॥४९॥  
 नमः पुरुषवर्यायि पूर्णायि परमात्मने ।  
 अदृश्यायाप्रमेयाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥५०॥  
 नमः श्यामाय रामाय रामाय वनमालिने ।  
 परमानन्दरूपाय गोविन्दाय नमो नमः ॥५१॥  
 नमोजगद्विधरणविष्टसेतवे  
 प्रकाशिने श्रुतिगणगोचरात्मने ।  
 स्वमायया विरचितलोकसाक्षिणे  
 अमायिने स्वचितिसुखात्मने नमः ॥५२॥  
 इत्यभिष्ट्य तं देवं पुरुषाकृतिमच्युतम् ।  
 विधिः पदोः पतित्वास तं प्रोवाच सतां पतिः ॥५३॥

### श्रीराम उवाच

गच्छ ब्रह्मन् निजं लोकं स्वकार्यं प्रतिपाद्य ।  
 एवं मूढधिया कर्म कुर्वन् मूढयते बुधः ॥५४॥  
 मा कुरुष्वात्र सन्देहं नित्यो मम परिच्छदः ।  
 अर्वाग्भः कालमायादैरूपहन्तुं न शक्यते ॥५५॥  
 अस्योपघातो न भवेत् कदाचित्  
 समूढरूपस्य परात्मकस्य ।  
 सतस्त्रिलोकीविभवातिगस्य  
 मदीयलोकस्य चिदात्मकस्य ॥५६॥  
 अहं च यत्रैव निजस्वरूपतः  
 करोमि दिव्यं रमणं स्वसाधुभिः ।  
 न तत्र माया न च कालविक्रमो  
 न लोकपालस्य तव प्रवेशः ॥५७॥

१. तवापि संप्रवेशः—अयो०, मथु०; तवापि प्रवेशः—रीवां ।

विभवोऽस्य<sup>१</sup> ह्यनाद्यन्तः सच्चिदानन्दलक्षणः ।  
 तत्राप्ययोध्यासम्बन्धी प्रकरस्तु मदात्मकः ॥५८॥  
 त्रैलोक्यनाशेऽपि न नश्यति क्वचित्  
     तदुद्गमेनोद्गमनं दधाति न ।  
 नित्योऽयमानन्दपुरोपरिच्छदः,  
     प्रमोदवल्लीवनकेलिनो मम ॥५९॥  
 अस्यैव साकेतपुरस्य नित्यशः  
     समन्ततः पञ्चमुखास्त्रिलोचनाः ।  
 ब्रह्माहरिश्चात्र गदासिचक्रभृत्  
     प्रत्यन्तभूरक्षणकारिणोऽभवन् ॥६०॥  
 कोटिब्रह्माण्डविधयः कोटिब्रह्माण्डशङ्कराः ।  
 कुर्वन्ति रक्षणं चास्य कोटिब्रह्माण्डविष्णवः ॥६१॥  
 यत्राहं क्रीडनं कुर्वे साकेतपरितो वने ।  
 तस्यैव रक्षकाः सर्वे निदशाः सेवका मम ॥६२॥  
 इत्युक्त्वा स्वस्य लोकस्य<sup>२</sup> महिमानं रघूत्तमः ।  
 विसृज्य वेधसं सायं स्वगृहान् समुपाययौ ॥६३॥  
 अग्रे कृत्वा तार्णकं चक्रवालं  
     सलक्षणः सहभरतः सशत्रुजित् ।  
 सायं गोकुलमनयद्रघूतमो  
     बभौतरां<sup>३</sup> पशुपतिबालसंगतः ॥६४॥  
 तमायान्तमनुश्रुत्य वेणुवादनलक्षितम् ।  
 द्रष्टुं गोकुलनार्यस्ताः प्रेमपूर्णाः समुद्घयुः ॥६५॥  
 माङ्गल्या चैव कौशल्या दायिनी राजभाजनम् ।  
 अग्रे समुपतस्थुस्तान् सुमित्राकेकयोयुता ॥६६॥  
 कृत्वा नीराजनं तेषां कुमाराणां मुहुर्मुहुः ।  
 स्वं स्वं निर्मज्ञयाज्जक्रुः<sup>४</sup> प्रेमसंदोहविह्वलाः ॥६७॥

१ “अस्य प्रमोदवनस्य मल्लोकस्य” टि०-मथु० । २. “साकेतप्रमोदवनस्य”  
 टि०-मथु० । ३. बभौतरां-अयो० मथु० । ४. निर्मन्थयाज्जक्रुः-रीवां ।

भुशुण्ड उवाच

कथं स राजेन्द्रसुतोऽत्युदार-  
इच्छार रामः पशुपालकृत्यम् ।  
एतन्मनःसंशयमात्र [मत्र ?] जातं  
संछेत्तुमर्हस्यमराधिनाथ ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

न गावस्ताः श्रुतयः सर्वरूपाः  
न ते वत्साः एकदेशाः श्रुतीनाम् ।  
न ते गोपा गुरवस्ते किलार्या  
न ता नार्यो भक्त्यस्तास्तु मूर्ताः ॥६९॥  
तेषां मध्ये परब्रह्म रामश्चित्सुखविश्रहः ।  
रमते स्वानुभावेन कृतार्थानां विशेषतः ॥७०॥  
इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
रामवत्सचारणलीलानुकथनं नाम  
एकार्विंशोऽध्यायः



## द्वाविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कदाचिदिन्द्रयजनं कर्तुं नृपतिरुद्यतः ।  
तथैव चान्वमोदन्त प्राप्ताः सर्वे द्विजातयः ॥ १ ॥  
रामस्तदेव यजनं कर्तुंमुद्यतमीश्वरम् ।  
उवाच वदतां श्रेष्ठो निजमाहात्म्यवर्द्धनः ॥ २ ॥

राम उवाच

तात त्वया मखाः सर्वे कृताः सर्वेऽपि वैदिकाः ।  
अश्वमेधादयो मेध्याः सत्रान्ता दीर्घसत्रकाः ॥ ३ ॥

विधिना च सुसम्पन्ना सुहुता बहुदक्षिणाः ।  
 वहवृत्तिवजो बहुगुणा बहुगोद्विजभोजनाः ॥ ४ ॥  
 बहूत्सृष्टा लब्धपशुका ब्रह्मणापि सुदुष्कराः ।  
 ते त्वया रचिता यज्ञा पालिताश्च विशेषतः ॥ ५ ॥  
 अधुना वैष्णवं कर्म कुरु प्रियसुखावहम् ।  
 घेनानुष्टुयमानेन परो धर्मो विवर्द्धते ॥ ६ ॥  
 यस्य क्रियाखिला श्रौती कलां नार्हति षोडशीम् ।  
 कुरु गोविप्रवर्याणां वैष्णवानां विशेषतः ॥ ७ ॥  
 पूजां सुमहतीं राजन् वासोलङ्कारभोजनैः ।  
 इयं च सरयू तीरे दीप्यतां दिव्यदीपकैः ॥ ८ ॥  
 रत्नाद्रिश्च पुरस्यास्य पूजनीयोऽखिलेष्टदः ।  
 यत्र गावश्च गोपाश्च सततं सुखमासते ॥ ९ ॥  
 हरितृणमयः शैलो गुल्मवीरुल्लताकुलः ।  
 अर्चनीयोऽयमतुलैवसिंभिर्भीजनैस्तथा ॥ १० ॥  
 वलिभिर्दीपदानैश्च संविधाभिश्च भूरिशः ।  
 • अर्चनीया द्विजा गावो गोपा गोप्यश्च वैष्णवाः ॥  
 दीना आढचा नरा नार्यो देवता सकला इमाः ॥ ११ ॥  
 इत्युक्तो दशरथभूपतिः सुतेन,  
 सन्तुष्टोऽधिकतरधर्मविष्णुगीत्या ।  
 ओमुक्त्वा सुरपतियागसंविधास्ता  
 विष्णवर्थं व्ययमुपचक्रमे विधातुम् ॥ १२ ॥  
 बह्वीभिः संविधाभिः स ब्राह्मणान् समपूजयत् ।  
 सुरभीर्वैष्णवांश्चैव गोपान् गोपीश्च गोकुले ॥  
 महान्तमुत्सवं चक्रे वलिपूजादिनाद्भुतम् ॥ १३ ॥  
 सरयूदीपराजीभिः परिवार्यं व्यरोचयत् ।  
 द्रुमान्नीराजयामास प्रमोदवनवासिनः ॥ १४ ॥  
 अलङ्कारैश्च वासोभिर्मण्डितान् फलपादपान् ।  
 पटहैर्दुन्दुभीभिश्च भेरीभिश्च मृदञ्जकैः ॥ १५ ॥

अनादयन् दिशः सर्वास्तस्मिन् विष्णुमहोत्सवे ।  
 स्वयं चाभूषितो राजा परमोत्सवनिर्वृतः ॥१६॥  
 माङ्गल्या चैव कौशल्या गोपगोपीजनैर्वृता ।  
 आत्मानं भूषयाऽचक्रे सुखिता वैष्णवे मखे ॥१७॥  
 रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्चैव शत्रुहा ।  
 मातृभिर्भूषिता भूरि द्विजेभ्योऽदुर्महाधनम् ॥१८॥  
 एवं समापयाऽचक्रे महता संभ्रमेण सः ।  
 राजा दशरथो यागं वैष्णवं धर्ममुत्तमम् ॥१९॥  
 श्रुत्वा यागस्य विहृतिं शक्रो रोषसमावृतः ।  
 गोपोपजनपीडार्थं भूढभावान्मनो दधौ ॥२०॥  
 परब्रह्मस्वरूपं तं रामं कारणमानुषम् ।  
 अवतीर्णमविज्ञाय पीडयामास गोकुलम् ॥२१॥  
 साकेतं च वनं चैव गोकुलं च निकेतनम् ।  
 समाच्छाद्य<sup>१</sup> स्थिता भेदाः शक्रेण प्रेषितास्तदा ॥२२॥  
 कालजीमूतसञ्ज्ञाताः साडस्वरमुपस्थितम् ।  
 आकालिकं च विज्ञायाज्ञासीद्राजा हरे रुषम् ॥२३॥  
 ततस्तेऽकालजलदा मुशलासारवर्षिणः ।  
 रुधुर्गोकुलं सर्वं चण्डवातप्रचोदिताः ॥२४॥  
 प्रचण्डवातप्रकरानुपातिता<sup>२</sup>  
 महाघनाऽसारभराः सविद्युताः ।  
 वर्षोपलैः पीडितसर्वगोधना  
 बभूवुरुद्धेगकरा महोपतेः ॥२५॥  
 एवं यावत्त्रिदिनमपतद् गोकुले भूरिवृष्टि-  
 विद्युत्पातैः खरजवमरुत्सन्ततं वर्षपातैः ॥  
 अत्यातं तद्वजपुरमभूत् कं व्रजामः शरण्यम् ।  
 क्रुद्धे चेन्द्रे दशरथनूपोऽप्यास पीडासचिन्तः ॥२६॥

१. समासाद्य-रीत्रां । २. °राः सशर्करा-रीतां ॥

एवं प्रजानां संकलेशं ज्ञात्वा रामोऽखिलप्रभुः ।  
 मेघावरोधकं नाम निजछत्रमथाग्रहीत् ॥२७॥

छत्रं ततं विशतियोजनात्मकं  
 सुरक्षकं तोयमुच्चां समूहतः ।  
 दृढं न चाभज्यत विद्युदादि-  
 महाश्मसंपातजवैः सुरेरितैः ॥२८॥

एवं यावत्पक्षसमाप्तिरासीत्  
 तावत्तस्थौ छत्रमासाद्य लोकान् ।  
 पक्षस्यान्ते व्यर्थरोषोऽधमोऽभू-  
 दिन्द्रो ज्ञात्वा देवदेवस्य शक्तिम् ॥२९॥

ततः स वारिदव्यूहं वारयामास वासवः ।  
 रामचन्द्रानुभावेन संहत्याखिलवैभवैः ॥३०॥

अथाभ्ययाद्राघवेन्द्रं शरणं  
 स्वर्गस्थेशो भूरिजातापराधः ।  
 सस्वर्धेन्द्रुः सामरः सेभराजो  
 रामक्रोधे स्वाशुभं शङ्कमानः ॥३१॥

स प्रमोदवने गत्वा रामं कमललोचनम् ।  
 अग्रहीत् पादयोस्तूष्णीं शरणार्थीं शरण्ययोः ॥३२॥

रामो ज्ञात्वा मघवासौ विशक्ति-  
 मामभ्येत्य स्वाच्च<sup>२</sup>माधावयिष्यन् ।  
 उत्तिष्ठेन्द्रेत्येवमाज्ञां चकार  
 प्रोत्थायासौ भूरि तुष्टाव रामम् ॥३३॥

देव क्षमस्व मम पातकमेतदेव  
 ज्ञातो भवान् न परमो यदिहावतीर्णः ।  
 रामः स्वयं स भगवान् अखिलांशमूल-  
 भूतः पुराणपुरुषः पुरुषोत्तमस्त्वम् ॥३४॥

१. सुरोदितैः—मथु० । २. “स्वाच्चं स्वापराधं” टि०—मथु० ।

तस्मै नमोऽस्तु भवते पुरुषोत्तमाय  
 विद्यापि यं स्पृशति नैव महामुनीनाम् ।  
 स त्वं क्षमस्व भुवनेश ममापराध-  
 मज्जस्य तावकमहिम्नि महाल्पबुद्धेः ॥३५॥  
 भक्ति निजां वितर नाथ यथाविशुद्ध-  
 स्त्वत्पादमूलमधुना शरणं व्रजामि ॥३६॥  
 नमस्ते ब्रह्मरूपाय पुरुषाय महात्मने  
 त्वामाश्रितानामशुचस्त्वया संरक्षितात्मनाम् ॥३७॥  
 जानाति यस्ते महिमानमीश  
 गुरुप्रसादेन विशुद्धचित्तः ।  
 तस्मै त्वमादर्शयसि स्वरूपं  
 सच्चिन्मुखं स्वानुभवैकगम्यम् ॥३८॥  
 इत्थं संस्तूय<sup>१</sup> देवेन्द्रे सुरभिर्जातिसंभ्रमा ।  
 अस्तौषीज्जातमहिमा राममीशं परात्परम् ॥३९॥

### सुरभिरुवाच

वत तव महिमानं गोचरीकर्तुमीशा  
 न खलु विधिशिवाद्याः कोऽयमिन्द्रो वराकः ।  
 कृतमिममपराधं मार्ष्टुमभ्यागताहं  
 तव चरणसरोजे राम निर्मञ्जनं<sup>२</sup>स्याम् ॥४०॥  
 तव पद<sup>३</sup>मनवद्यं भाति गोलोकतोऽद्वं  
 सुविमलमतिमृत्यु ब्रह्मरूपं पुराणम् ।  
 जनकनृपतिपुत्र्या संततं सेव्यमानः  
 शुभगुणनिलयस्त्वं भ्राजसे यत्र नित्यम् ॥४१॥  
 दशरथनृपसूनो श्रीपते श्यामवर्ण  
 प्रणयरसपयोधे राम हे राघवेन्द्र ।

१. “संस्तूय तूष्णीं स्थिते सति” टिं—मथु० । २. निर्मञ्जन—रीवां ।  
 ३. “प्रमोदवनरूपं” टिं—मथु० ।

सपदि चरणयोस्ते पातितात्मानमेनां  
 कृपय कृपय शश्वन्मां निजैकान्तदासीम् ॥४२॥

श्रवणयुगनिपेयं तावकं राम नाम  
 क्षितितलमवतीर्णनन्तचारित्रजुष्टम् ।

सततमनुगृहाण स्वाङ्गिसेवाभिलाषं  
 निजपदमतिमायं देहि मे राजसूनो ॥४३॥

नमस्ते ब्रह्मरूपाय नित्यानन्दमयाय च ।  
 स्वानामभयदानार्थमवतीर्णयि राघव<sup>१</sup> ॥४४॥

इति स्तुत्वा परं देवं स्नेहस्नुतपयोधरा ।  
 तूष्णीं बभूव सा धेनुस्तवकं कर्तुमक्षमा ॥४५॥

इन्द्रस्तस्यास्तनोद्भूतैः पीयूषैः शीतलामलैः ।  
 स्नापयित्वा प्रभुं रामं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥४६॥

निरुद्धवाष्पनयनः प्रणयोद्रेककातरः ।  
 कृतभक्तिरनुज्ञातः सधेनुः स्वपदं ययौ ॥४७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे इन्द्रमान-  
 भञ्जनं नाम द्वार्विंशोऽध्यायः ॥२२॥



### त्रयोर्विंशोऽध्यायः

#### ब्रह्मोवाच

ततस्ते प्रौढवयसः कुमारा मधुरत्विषः ।  
 धेनुपालनसोत्कण्ठा आसन् रामपुरोगमाः ॥ १ ॥

रामः परमधर्मात्मा गवेन्द्रसदने वसन् ।  
 धेनूः संपालयामास जनयन् गोकुले मुदम् ॥ २ ॥

गावस्तु ताः पाल्यमाना रामेण नयनोत्सवाः ।  
 बभूवः प्रीतमनसस्तदेककृततुष्टयः ॥ ३ ॥

१. राघवे-अयो०, रीवां ।

तासां चित्तं समभवद्रामैकाश्रयसंश्रयम् ।  
 चारणे दोहने ह्वाने बोधने सान्त्वने तथा ॥ ४ ॥  
 रामहस्ताम्बुजस्पर्शमुधासन्तोषनिर्वृत्ताः ।  
 नान्यं प्रतीयुस्ता गावो गोपराजस्य गोकुले ॥ ५ ॥  
 रामः पालयमानस्ता नवत्यर्बुद्धकोटिगाः ।  
 शुशुभे राज्य (ज ?) वेषेण त्रैलोक्यस्यापि मोहनः ॥ ६ ॥  
 अथ प्रातः समुत्थाय मातृभिः कृतमण्डनः ।  
 आश्रितः सानुजो रामश्चचाल व्रजतो वनम् ॥ ७ ॥  
 गावः पुरस्कृत्य स जातदोहनाः  
     शृङ्गारवेशी मधुरार्कां दधत् ।  
 गोपैस्तथा भ्रातृभिरात्वेणुको  
     ययौ वनस्याभिमुखं वनप्रियः ॥ ८ ॥  
 स दिव्ये सरयूतीरे प्रसार्य निजगोधनम् ।  
 हरित्तृणं चारयाणः शुशुभे राज्य (ज ?) वेषभूत् ॥ ९ ॥  
 स कुर्वन् विविधा लोला गोपालैः समनुव्रतैः ।  
 वनाद्वनान्तरे गच्छन् मुमुदे केलिपण्डितः ॥ १० ॥  
 जलक्रीडां क्वचित्कुर्वन् स्थलक्रीडां तथा क्वचित् ।  
 क्वचिद्द्वसन् क्वचिद् गायन् क्वचिद् वेणुरवं दधत्<sup>२</sup> ॥ ११ ॥  
 क्वचिदन्योन्यकं कुर्वन् वयस्यैर्मल्लकर्म च ।  
 क्वचिद् द्रुमच्छायतले शयानः पुरुषोत्तमः ॥ १२ ॥  
 वीज्यमानः सेव्यमानः पादसंवाहनादिभिः ।  
 एवं स्वानां मुदं तन्वन् रेमे प्रमुदकानने ॥ १३ ॥  
 कदाचित् सरयूतीरे दिव्यमाग्रवनं महत् ।  
 श्रुत्वा जगाम तत्रैव लोलास्वच्छन्दमानसः ॥ १४ ॥  
 तत्र कश्चित् खरो<sup>३</sup> नाम राक्षसेन्द्रो हि गर्वितः ।  
 महाबलो महाकायश्चुक्षुभे श्रुतकाहलः ॥ १५ ॥

१. “सवत्सार्बुद्ध”—अयो०, यावत्सार्बुद्ध—रोवां । २. घनात्—अयो०, दधात्—रीवां । ३. जरो०—अयो०, नरो०—मथु० ।

प्रगायतां<sup>१</sup> चालयतां च नृत्यतां  
 श्रीराघवेन्द्रानुगबालकानाम् ।  
 श्रुत्वा महान्तं रवमुत्पफाला-  
 सुरः खराकारधरः सुदारुणः ॥१६॥  
 स आगत्यामिलद्वेगाललक्ष्मणेनामितौजसा ।  
 मल्लकेलि वितन्वानो युयुधे बलगर्वितः ॥१७॥  
 लक्ष्मणस्तमुपादाय पश्चात्पादद्वयेन च ।  
 शिलायां पातयामास विगतासुरभूत्ततः ॥१८॥  
 लक्ष्मणेन हते तस्मिन् रासभाकारराक्षसे ।  
 पुष्पवृष्टि ददुर्देवा जयेति च गिरं मुदा ॥१९॥  
 ततो रामः प्रसन्नात्मा सर्वा धेनूः कृताशनाः ।  
 पानार्थं सरयूं निन्ये प्रमोदवनपाश्वतः ॥२०॥  
 तस्याः सरय्वाः सुरसं महाकृष्णाहिद्विषितम् ।  
 पीत्वा ता मूर्छिता भूत्वा गावः पेतुर्महीतले ॥२१॥  
 हस्तस्पर्शेन रामोऽपि कृत्वा तासां गवां सुखम् ।  
 महता घोरयुद्धेन कृष्णाहिं निरवारयत् ॥२२॥  
 ततः प्रभूति स व्यालमर्दनः कीर्तिं बुधैः ।  
 कदाचित् प्रातरशनमकृत्वैव रघूद्वहः ॥२३॥  
 गतो गोचारणार्थाय भ्रातृभिर्वान्धवैः सह ।  
 तत्र संक्षुधितो रामः प्रेषयामास बालकान् ॥२४॥  
 अन्नार्थं सरयूतीरे यजमानद्विजाश्रमे ।  
 यजन्ते यत्र मुनयो ज्योतिषोमादिभिर्मखैः ॥२५॥  
 ब्राह्मणाः कर्मनिपुणाः प्रमोदवनवासिनः ।  
 गत्वा तेषां यज्ञवाटं बालकाः रामचोदिताः ॥२६॥  
 अन्नमभ्यर्थयाऽच्चक्रुः स्वयं च क्षुधिता भूशम् ।  
 नोत्तरं ते ददुस्तेभ्यो यज्ञकाण्डक्रियाकुलाः ॥२७॥

१. प्रलापतां—अयो०, रीवां ।

न वा ते नेति चैवोचुब्राह्मणा जातमन्यवः ।  
 ततो निराशा भूत्वा ते रामस्य सविधे गताः ॥२८॥  
 न नो ददति विप्रास्ते याचिता अपि भोजनम् ।  
 रामः स्मित्वाऽभवत्तृष्णीं तावत्तेषां द्विजन्मनाम् ॥२९॥  
 पत्यो बह्वन्नमादाय रामसंदर्शनोत्सुकाः ।  
 आययुः परमाह्लादाद् वार्यमाणा अपि प्रियैः ॥३०॥  
 तासां रामो दृष्टिसुखं महद्विश्लेषतापहम् ।  
 कालेन चात्मसायुज्यं सम्बन्धात् प्रेयसामपि ॥३१॥  
 कदाचित् कानने रामो ज्वलन्तं दावपावकम् ।  
 ययौ संरक्षणार्थाय स्वानां व्रजजनौकसाम् ॥३२॥  
 कदाचिद् गोपतिं रामो माङ्गल्यायाः पर्ति विभुः ।  
 नोतं यमेन संस्नेहादानयत् सकलेश्वरः ॥३३॥  
 यमस्तं पूजयामास तुष्टाव विविधैस्तवैः ।  
 गृहीत्वा गोकुलेन्द्रं तं रामो गोकुलमाविशत् ॥३४॥  
 एवं स लोकपालानामैश्वर्याभिर्मतिं हरन् ।  
 विजहे भूरिविभवः प्रमोदविपिनान्तरे ॥३५॥  
 तत्प्रमोदवनं रेजे सर्वतुंसुखसंयुतम् ।  
 रामप्रभावतो नित्यं साक्षाल्लक्ष्मीनिकेतनम् ॥३६॥  
 तत्रत्या गोपनार्यस्ता रामप्रेमपरायणाः ।  
 आसन्निरुद्धृदया वश्यमन्त्रावृता इव ॥३७॥  
  
 रामस्य सौन्दर्यमनङ्गंकोटिभि-  
                   दुरुरापमाभीरवधूमनःसुखम् ।  
 विलोक्य रामास्त्रिषु लोकेषु मुग्धा  
                   बभूवुरुच्चैर्विरहाकुलान्तराः ॥३८॥  
 आभीरवनिताः सर्वा रामदर्शनविह्वलाः ।  
 तमेव चैवं गायन्त्यो बभूवः कामपीडिताः ॥३९॥  
 काश्चित्तु विलपन्त्योऽन्या धावन्त्यः काममोहिताः ।  
 पश्यन्त्यो विहसन्त्योऽन्या बभूवुर्मत्तमत्तवत् ॥४०॥

तासां विरहदुःखं तन्निवर्तयितुमुत्सुकः ।  
 रामसंप्राप्तिसिद्धयर्थं दुर्वासामन्त्रमादिशत् ॥४१॥  
 मन्मथादिं राममन्त्रमात्रेयात् प्राप्य गोपिकाः ।  
 साधयामासु रत्युग्रवतबन्धेन पीडिताः ॥४२॥  
 शीतवातातपक्लेशं सहमाना व्रजाङ्गनाः ।  
 मन्त्रमाराधयाज्ञक्रुः प्रियसंप्राप्तिहेतवे ॥४३॥  
 व्रतदुःखं विलोक्यासां फलरूपो रघूद्वहः ।  
 स्नातानां सरयूतीरे वरदानार्थमाययौ ॥४४॥  
 ता मन्त्रसाधनरतास्तपस्नानादिकर्षिताः ।  
 उवाच रघुशार्दूलः स्मरवाणैर्विमोहयन् ॥४५॥

### श्रीराम उवाच

किमर्थं दुश्चरं घोरं तपः कुरुथ कन्यकाः ।  
 नोचितं कोमलाङ्गीनां भवतीनां सुमध्यमाः ॥४६॥  
 एषा वृत्तिर्मुनीनां हि कार्मिकाणां द्विजन्मनाम् ।  
 भवन्त्यः कमलातुल्याः किमिच्छथ मृगेक्षणाः ॥४७॥  
 यत् त्रैलोक्ये स्थितं वस्तु तदहं दातुमागतः ।  
 भवतीनां ततः कष्टं दृष्ट्वा प्रक्षुभितान्तरः ॥४८॥

### गोपकन्या ऊचुः

त्वं नः परं प्रार्थनीयः कोटिकन्दर्पसुन्दरः ।  
 स्मितमाधुर्यमात्रेण मोहयन् हृदयानि नः ॥४९॥  
 त्वत्तोधिकं फलं राम त्रैलोक्येऽपि न दृश्यते ।  
 त्वमेव सर्वकल्याणमूलभूतो रघूद्वहः ॥५०॥  
 दासीनां किञ्च्चरीणां नः पूरयस्व मनोरथम् ।  
 त्वमेव वरदश्चैव वरश्चैव प्रियोत्तम ॥५१॥

### रामोवाच

भवतीनां न सुखाय वरोऽयं प्रतिभाति मे ।  
 नाहमन्याङ्गनासक्तः प्रतिज्ञा विदिता मम ॥५२॥

श्वात्मानन्दैकनिरतः सर्वस्याहं सुदुर्लभः ।  
 मदञ्जसज्जिनी या श्रीः सा मां जानाति नित्यशः ॥५३॥  
 तस्याः संराधनं कृत्वा भास्माप्स्यथ कालतः ।  
 इत्युक्त्वा जानकीमन्त्रं तासामाचष्ट राघवः ॥५४॥  
 दुर्वासिसं सुतं लब्ध्वाऽराधयाञ्चक्रुरञ्जनाः ।  
 त्वरितं सा ततः सीता प्रसादमकरोन्निजम् ॥५५॥  
 निजस्येष्ट वरं रामं ताभ्योऽद्वाद् व्रततोषिता ।  
 एवमाराध्य सीताया वरं लब्ध्वा व्रजाञ्जनाः ॥५६॥  
 सीतावेशधराः सर्वा राममासाद्य निर्वृताः ।  
 ताभिः सह ततो रामश्चक्रे केलौ मनोहराम् ॥५७॥  
 निजप्रियाया<sup>१</sup> वशगः सर्वासां प्रीतिमावहत् ।  
 एकोऽपि बहुधा कृत्वा रूपाणि रसपोषकः ॥५८॥  
 प्रमोदकानने रेमे कामीव प्रणयाकुलः<sup>२</sup> ॥५९॥  
 इति श्रीमद्विरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे गोपी-  
 वरदानं नाम त्रयोर्विंशोऽध्यायः ॥२३॥



### चतुर्विंशोऽध्यायः

#### ब्रह्मोवाच

पराद्वस्मरलावण्यं बिन्नत् सुन्दरविग्रहः ।  
 कामिनीनां कामरसं पोषयन् राघवो बभौ ॥ १ ॥  
 सीताद्वाञ्जसंगिन्या सह केलिरसं दधत् ।  
 ज्योत्सन्या चन्द्रवद्रामो रेजे नक्षत्रमण्डले ॥ २ ॥

श्वात्मानन्दैकनिरतः पूर्वमस्माभिर्बडोदास्थं पुस्तकं नोपलब्धमासीदत एतावत्यर्यन्तं तत्रस्थं पाठान्तरादि परिशिष्टे द्वास्थते, अतः परं तु दीयते । — सम्पादकः ।

१. प्रियासंवशगः—रीवौ ।      २. प्रणयात्कलाः—अयो० ।

मुग्धानां गोकुलस्त्रीणां जानक्याविष्टचेतसाम् ।  
 समूहं रसयन् रामो बभाराकृतिसौष्ठवम् ॥ ३ ॥  
 यन्नेति नेतीति वदन्ति वेदाः  
                   ब्रह्मादयो यन्न लेभुस्तपोभिः ।  
 तत्त्वं परं तच्छ्रुतिसूर्घ्यमृग्यं  
                   व्रजाङ्गनाभिः करयोर्गृहीतम् ॥ ४ ॥  
 गुञ्जाहारं दधदुरसिलसच्छीर्षमायूरचन्द्रो  
                   वेणुं विम्बोष्ठदलकलितं बिभ्रदापूर्णनादम् ।  
 स्तिरधा च श्रीनंट इव लसद्वेशैसौन्दर्यसारो  
                   बिभ्रद्रामः प्रमुदविपिनं वल्लवीर्मोदयानः ॥ ५ ॥  
 द्विपरार्द्धविसानेऽपि नित्यं क्रीडति राघवः ।  
 नान्तोऽस्य नित्यलीलानां स्वानन्दरसरूपिणः ॥ ६ ॥  
 राघवो मोहयन् गोपीस्ता एव सपरिच्छदा: ।  
 एवं योगी<sup>३</sup> वै रमते रामो रमयतां वरः ॥ ७ ॥  
 निर्विकारो ब्रह्मणोऽपि प्रतिष्ठा परमास्पदम् ।  
 नास्य कामेन कोपेन लोभेन च महात्मनः ॥ ८ ॥  
 मनोविकारः समभूद्यथा संसिद्धियोगिनः ।  
 इत्येवं रामदेवस्य बाललीलां शृणोति यः ॥ ९ ॥  
 स याति रामसायुज्यं परमानन्दनिर्वृतिः ( तिम् ? ) ।  
 अथाहमभिधास्यामि रामरासं मनोहरम् ॥ १० ॥  
 अदृश्यं यत् सुरेन्द्राद्यैश्चकार रघुपुञ्जवः ।  
 कोटिकन्दर्पलावण्यविजयी रघुपुञ्जवः ॥ ११ ॥  
 रामकण्टकरूपांश्च महादैत्यानजीहनत् ।  
 तेषां वधेषु संविघ्नं सहसा विनिवारयन् ।  
 महावीरो रामचन्द्रैश्चकारातीव विक्रमम् ॥ १२ ॥

१. चाशीर्—अयो०, वंशी—रीवाँ । २. वेग°—अयो०, रीवाँ, मथु० ।

३. योगी “नित्यसंबन्धी” टिं०—बड़ो० । ४. रामभ्रदश्—बड़ो० ।

रमणमनुदिनं यो रामचन्द्रस्य पूर्ण  
प्रणतमतिरधीते मानवो रामभक्तः ।  
स भवति शिवतुल्यो रामभक्त्या प्रपूर्णः  
परमसुखनिमग्नश्चिन्मयानन्दरूपः ॥१३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे [ केलिवर्णनं नाम ]  
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

◎

पञ्चविंशोऽध्यायः

भुशुण्ड उवाच<sup>१</sup>

श्रुत्वेदं रामचन्द्रस्य कौमारचरितं मम ।  
मनः शीतलतामेति यद्वत् पीयूषधारया ॥ १ ॥  
दत्त्वा वरं गोपिकानां नित्यमात्मप्रदं विधे ।  
यच्चकार रघुश्रेष्ठस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ २ ॥  
चीर्णक्रतानां विप्राणां दण्डकारण्यवासिनाम् ।  
यथा वरं ददौ रामस्तथा मे वह विस्तरात् ॥ ३ ॥  
द्विपरार्थान्तेऽपि नित्यं सहजानन्दलोकगः<sup>२</sup> ।  
रासं चकार रामाभिः परमैश्वर्यभावितः ॥ ४ ॥  
तत्रापि दिव्यरासे तु यानि यानि शुभानि च ।  
चक्रे रासचरित्राणि तानि मे कथय प्रभो ॥ ५ ॥  
एकपत्नीव्रते स्थित्वा सत्यं लोपितवान्न च ।  
बहुकान्तार्तिं दृष्ट्वा तथा न द्वेष्टि जानकी ॥ ६ ॥  
तदेतत् कथयास्माकं रामचारित्रमद्भुतम् ।  
शृण्वतो मे महान् हर्षो रोमभेदश्च जायते ॥ ७ ॥

१. “वाल्मीक्यादिनिरूपिता (०पण-बड़ो०) दप्यत्यद्भुतं क्वचिद्विरुद्धं भूरि-फलदं च श्रुत्वा चकितचमत्कृतमनाः श्रीभुशुण्डो वैष्णवाग्रणीः पुनर्भूयश्चरितश्रवणाय प्रशनयतीति चित्सुखाचार्याः” टिं०—मथु०, बड़ो० ।

२. लोकगः = प्रमोदवनस्थः टिं०—बड़ो०,

गद्गदश्च तथा कण्ठे चित्तस्थैव च निर्वृतिः ।  
 अहो धन्या अमी देवा मदञ्जविनिवासिनः<sup>१</sup> ॥८॥  
 ये पिबन्ति शुभं नित्यं रामचन्द्रकथामृतम् ।  
 धन्योऽहं कृतकृत्यश्च तिर्यग्योनिगतोऽपि सन् ॥९॥  
 यत्पिबाम्यमृतं ब्रह्मन् भवद्वदनविच्छुतम् ।

### ब्रह्मोवाच

अहो परिणता बुद्धिस्तव सम्यग्विभाति मे ॥१०॥  
 पुनः पुनः प्रश्नयसि यद्राराघवपतेः कथाम् ।  
 वक्षाम्यहं तु वक्तव्यमवक्तव्यं कदाचन ॥११॥  
 गोपनीयं शुकेनापि यद् योगीन्द्रेण धीमता ।  
 कथामृतैककुण्डस्य चत्वारो रक्षका वयम् ॥१२॥  
 अहं शुकश्च शेषश्च तथा देवी तु जानकी ।  
 न ब्रूमः सकलं तत्तु गोपनीयं प्रयत्नतः ॥१३॥  
 वाचकान् धातयिष्यामि मातृजारप्रसञ्जवत् ।  
 अधिकारिण<sup>२</sup>मालोक्य कथंचित् कथयामहे ॥१४॥  
 पञ्चाधिकारिणोऽप्यत्र षष्ठो नैवोपलभ्यते ।  
 त्वमण्डजौत्तरेयश्च धरणी च पतिक्रता ॥१५॥  
 सौमित्रेयश्चोर्ध्वरेता तथा मारुतनन्दनः ।  
 तुभ्यं मया समाख्याता कल्पे-कल्पे युगे-युगे ॥१६॥  
 राममायाप्रभावेण पुर्वाविस्मृतवानसि ।  
 शुकेन चौत्तरेयाय रामचारित्रमीर्यते ॥१७॥

१. °वासिताः—बड़ो० ।

“तत्तदिन्द्रियाधिष्ठात्र्यो देवताः, यद्वा अतिरहस्यं श्रीरामचरितं देवान् श्रावयति भगवान् विरच्चरिति केचिदभक्तिमन्तो देवाः श्री भुशुण्डस्य तनावाविश्य कथामृतपानं कुर्वन्तीति भावः, इति चित्सुखाचार्याः” टि०—मथु०, बड़ो० ।

२. “तेनास्य रामचरितस्य निर्विषयत्वं नास्तीति चित्सुखाचार्याः” टि०—मथु०, बड़ो० ।

इहैव<sup>१</sup> शुद्धसत्त्वाय गोलोके<sup>२</sup> प्रेमभागिने ।  
 पुनश्च भगवान् शेषो व्याचष्टे धरणीं प्रति ॥१८॥  
 लक्ष्मणाय तथा देवी जानकी प्रत्युवाच ह ।  
 तच्छ्रुत्वा सकलं प्रोक्तं लक्ष्मणेन हनूमते ॥१९॥  
 पञ्चेमाः संहितास्तत्र संक्षेपेण शृणु द्विज ।  
 भौशुण्डी परमेयं षट्क्रिशत्साहस्रमीरिता ॥२०॥  
 चत्वारिंशत्सहस्रं तु लक्ष्मात्रमुदीरितम् ।  
 हनुमत्संहितालक्षं वायुलोके विराजते ॥२१॥  
 समुच्चयस्तु पञ्चानां मयोक्ता ब्रह्मसंहिता<sup>३</sup> ।  
 इत्येवं रामचरितं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥२२॥  
 प्रतिकल्पं प्रतियुगं अन्यदन्यद् विभाव्यताम् ।  
 नान्तस्तस्य चरित्राणां कल्पकोटिशतैरपि ॥२३॥  
 किञ्चित् समाधावालोक्य शृणु पुन्र निगद्यते ।  
 यत्पृष्ठं तु त्वया गोपीरामयोः क्रीडनं परम् ॥२४॥  
 तत्सुगोप्यं कथं वाच्यं वक्तास्यान्नारकी ध्रुवम् ।  
 अथापि शुद्धसत्त्वाय भवताय विमलात्मने ॥२५॥  
 वाच्यमाचार्यवर्यस्तु तच्छ्रुत्वा<sup>४</sup> तत्परो भवेत् ।  
 सत्यं सत्यं मया नित्यं चिन्त्यते मूलमन्त्रवत् ॥२६॥  
 तद्ध्यानामृतयोगेन तिष्ठाम्याकल्पमण्डज ।  
 तपस्तप्तं मया पूर्वं तीव्रात्तीव्रतरं द्विज ॥२७॥  
 तेन प्रसन्नः सीतेशः सदा मां दर्शनं ददौ ।  
 स्वलोकं दर्शयामास गोलोकात् परतस्तु यत् ॥२८॥

१. “इहेति श्रीभागवते कृष्णचरितं श्रुत्वा प्राप्नाधिकाराय ततो व्यापि-  
वैकुण्ठसाक्षात्कारवते, तत्रैवोन्तरप्रत्युत्तरादिरूपेण प्रादुर्भूता भूलोकेऽप्यागता  
शुकद्वारेणैवेति, । इति चित्सुखा०” टि०—बड़ो०, मथु०, । २. “गोलोके शुकसंहिता ।  
सपादलक्ष्माख्यातं पाद्मे पातालमण्डले, तथा सीतापुराणं तु “शुकसंहिताताव-  
देव पाद्मादिरन्यथाऽप्रसिद्धिरेव स्यादिति चित्सु०” इति टि०—मथु० । ३. “पञ्चलक्ष्म-  
परिमिता ब्रह्मसंहिता, यत्र भुशुण्डीयादीनां संग्रहः” इति टि०—मथु०, बड़ो० ।  
४. यच्छ्रुत्वा—मथु०, °यैः स्वयं श्रुत्वा—बड़ो० ।

तत्र रासविलासादि दृष्टवानहमद्भुतम् ।  
 प्रमोदविपिने पूर्वं रामश्चक्रे सुक्रीडनम् ॥२९॥  
 तस्याप्यनुकृतिं कृष्णश्चक्रे वृन्दावने वने ।  
 श्रीरामो भनवान् पूर्णः कलाभिः पुरुषोत्तमः ॥३०॥  
 कोटिलक्ष्मीसहस्राणामंशिनी जनकात्मजा ।  
 एतयोरेव दिव्यांशौ राधाकृष्णात्मकौ व्रजे ॥३१॥  
 काले-काले समुद्भूय कुरुतः शाश्वतीं रतिम् ।  
 रामांशो भगवान् कृष्णः सीतांशो राधिकेश्वरी ॥३२॥  
 अन्याश्च सकला गोप्यस्तदंशांशा उदीरिताः ।  
 द्वारिकायां रुक्मणीयं महालक्ष्मी महेश्वरी ॥३३॥  
 अन्याश्च सत्यभामाद्यास्तदंशाः सहजात्मिकाः ।  
 कवचिदावेशरूपेण कवचिदंशस्वरूपतः ॥३४॥  
 कवचित् साक्षात् स्वयं सीता रमते प्रभुणा सह ।  
 सैव रासेश्वरी तेन रमते रासमण्डले ॥३५॥  
 एकधा शतधा चैव कृत्वा रूपाणि सन्ततम् ।  
 तच्चरित्रं महागोप्यं मया ज्ञातुं न शक्यते ॥३६॥  
 कुरु कल्पशतं तीव्रां तपश्चर्यां स्वशोधिकाम् ।  
 तदा ते तादृशो भवितर्भविष्यत्यनपायिनी ॥३७॥  
 तदा श्रीरामचारित्रं<sup>१</sup> श्रोतुमर्हस्यशेषतः ।  
 नोचेन्मामेव शप्स्यन्ति योगीन्द्रास्ते शुकादयः ॥३८॥  
 अनधिकारिणे मा ब्रूयादित्युक्तं प्रभुणापि मे ।  
 इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा भुशुण्डो नाम वै द्विजः ॥३९॥  
 महतीमार्त्तिमन्वाच्छ्रुत् प्राणान्तेऽपि गरीयसीम् ।  
 आकाशवाक् समुद्भूता तदा संशृण्वतोस्तयोः ॥४०॥  
 ब्रूहि ब्रह्मन्नशेषण मम चारित्रमद्भुतम् ।  
 रासलीलाविनोदाख्यं भवतायाण्डजरूपिणे ॥४१॥

---

१ °चरितं—अयो० ।

अयं हि सुमहान् योगी ममैकान्तरतिप्रियः ।  
 शान्तो दान्तस्तितिक्षश्च कोटिकल्पकृतश्रमः ॥४२॥  
 मद्भक्तो मत्परः शान्तो मर्दर्थत्यक्तसंस्मृतिः ।  
 एकान्तचारी विनयी भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः ॥४३॥  
 ज्ञापयास्मै विशेषेण रामचारित्रमद्भुतम् ।  
 पीत्वा पीयूषवत् सर्वं नान्यस्मै कथयिष्यति ॥४४॥  
 इति दैवीं गिरं श्रुत्वा ब्रह्मा संजातसंभ्रमः ।  
 संपूज्य द्विजमाचष्टे रामलीलां मनोहराम् ॥४५॥  
 एतामैकान्तिकां लीलां यो ब्रूयादनधिकारिणे ।  
 स पच्येत महाघोरे नरके दैवचोदितः ॥४६॥  
 (यः) कृष्णैकान्ततरो भक्तो रामभक्तिविवर्जितः ।  
 तस्मै न कथयेदेतां लीलां विश्वस्य पावनीम् ॥४७॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 रामरासो नाम<sup>१</sup> पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

## षड्विंशोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

शृणु द्विज प्रमाणज्ञ	रामलीलां मनोहराम् ।
दिव्यराससमायुक्तां	सीताकौतुकवर्द्धनीम् ॥ १ ॥
सर्वेऽप्यग्निकुमारास्ते	षष्ठिसाहस्रसंख्यकाः ।
रामलीलारसाभिज्ञाः	प्रापुनिजतपःफलम् <sup>२</sup> ॥ २ ॥
कल्पं सारस्वतं प्राप्य	दण्डकारण्यवासिनः ।
श्रुतयश्चैव संजाता	गोपीरूपेण गोकुले ॥ ३ ॥

१. रामरासे—अयो०, मथु०, रीव०, बड़ो० । २. अयं श्लोको नास्ति—रीव० ।

रामरूपमनुप्रापुः सरव्वास्तटयोर्द्योः ।  
 प्रमोदवनवासिन्यो जानवयाश्च<sup>१</sup> महाप्रियाः ॥ ४ ॥  
 रामतत्त्वमनुप्राप्य मुमुक्षुः कामभाविताः ।  
 अन्याश्च दिव्यललना दिव्यरूपसमन्विताः ॥ ५ ॥  
 कृत्वा तपो, वरं लब्ध्वा दिव्यमापुर्मनोरथम् ।  
 ततो निजवरं सत्यं कर्तुं रामो महामनाः<sup>२</sup> ॥ ६ ॥  
 कामतत्त्वेन ताः सर्वा रमयामास गोपिकाः ।  
 अथ प्रादुरभूत् कामः सहजानन्दलक्षणः ॥ ७ ॥  
 जानकीं वेपयामास सहजानन्दरूपिणीम् ।  
 सा वेपिता कामशारैः प्रादुर्भूय रघूद्वहत् ॥ ८ ॥  
 दिव्यवेशधरा भूत्वा क्षोभयामास राघवम् ।  
 संक्षुब्धः कामबाणेन तामालिङ्गितुमीयिवान् ॥ ९ ॥  
 तमायान्तं समालोक्य स्वयमन्तबंभूव सा ।  
 अथ खिन्नो राजसूनुर्विरहेण मृगीदृशः ॥ १० ॥  
 इतस्ततो भ्राम्यमाणो दिशः शून्या विलोक्यन् ।  
 पाण्डुक्षामवपुः साश्रुस्तब्धः पुलकपूरितः ॥ ११ ॥  
 दिने दिने व्यथापूर्णः प्रलीनसकलेन्द्रियः ।  
 पद्मपत्रविशालाक्षीं तामेव निजवल्लभाम् ॥ १२ ॥  
 ध्यायमानोऽन्तरा दृष्ट्वा बहिः शून्याखिलक्रियः ।  
 अशुष्यद्राजतनयो दीर्घमाणः स्ववक्षसि<sup>३</sup> ॥ १३ ॥  
 कवचिच्छन्द्रमुपालेभे पूर्णबिस्बं सुधामयम् ।  
 कवचित् पद्मवनं दृष्ट्वा हुःखी नेत्रे न्यमीलयत् ॥ १४ ॥  
 कवचित् कैरविणीं वीक्ष्य बभूव च पराङ्मुखः<sup>४</sup> ।  
 कवचिद् रम्भावनं दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा प्राद्रवदातुरः ॥ १५ ॥  
 कवचित् कुञ्जलतां दृष्ट्वा वक्तुं समुपचक्रमे ।  
 कवचिद् वसन्तमालोक्य मेने दावानलं विभुः ॥ १६ ॥

१. जनिकाश्च—अयो०, बड़ो० । २. महात्मना—मथु०, रीवॉ० । ३. स्तु—मथु० ।  
 ४. °मुखी—अयो०, 'मथु०, रीवॉ० ।

ववचिदेकान्तसदने तामुपालभत् प्रियाम् ।  
 अये ! कठोरहृदये दृमे जनकनन्दिनि ॥१७॥  
 व्यथमानहृदं दृष्ट्वा नाद्यापि करुणा तव ।  
 सकृन्मे दर्शनं दत्त्वा महाविरहवर्धनम् ॥१८॥  
 अन्तर्हिता<sup>१</sup> त्वं किं क्रूमः<sup>२</sup> प्रेमशून्यकठोरताम्<sup>३</sup> ।  
 ववचिदाकाशभालिङ्ग्य प्रियाबुद्ध्या मुमोद सः ॥१९॥  
 ववचिन्नवदलं दृष्ट्वा चक्रे चुम्बनगां धियम् ।  
 ववचित् खिन्नमनाः श्रान्तो शय्यामालिङ्ग्य संश्रितः ॥२०॥  
 ववचिद्धसन् ववचिद्धावन् ववचित् क्रोडारसं दधत् ।  
 ववचिद्दुन्मत्तवज्जल्पन् ववचित् कुर्वन् मनोरथान् ॥२१॥  
 नैव लेभे रत्ति कवापि प्रियाध्यानपरायणः ।  
 सरयूघोष<sup>४</sup> वासिन्यो “दिव्याश्च ललनागणाः ॥२२॥  
 रामनाथकमालोक्य बभूवुः कामपीडिताः ।  
 काश्चित्तद्गुणभाकर्ण्य<sup>५</sup> बभूवुः काममोहिताः ॥२३॥  
 काश्चित् साक्षादभुं दृष्ट्वा निषेतुर्भृशमूर्छिताः ।  
 काश्चिच्चित्रगतं दृष्ट्वा जाताः कामशारादिताः ॥२४॥  
 काश्चित्<sup>६</sup> स्वप्ने समालोक्य पीडामापुः सुदुःसहाम् ।  
 एवं रामगुणाकृष्टाः समस्ता वामलोचनाः ॥२५॥  
 विरहात्ताः श्रितैकान्ता दूतीभिः संन्यवेदयन् ।  
 तासां दूत्यो राममेत्य प्रोचुर्विरहजां व्यथाम् ॥२६॥

दूत्य ऊचुः<sup>७</sup>

अयि सुन्दर राघवोत्तम त्वमसि प्रेमभरैकभाजनम् ।  
 वनिताः स्मरबाणवेपिताः सदय<sup>८</sup>त्वं परिपालय प्रभो ॥२७॥  
 तव रूपविमोहिताः स्त्रियः कलिताः कामकरे कृताशयाः ।  
 कुलशीलविलज्जयातुराः पथि रुद्धाः सरितो यथाभवन् ॥२८॥

- 
१. अन्तर्हित्वा—मथु०, रीव॑० ।      २. किमभूः—अयो०, मथु०, बड़ो० ।  
 ३. °कठोरकृत्—बड़ो० । ४. °देश°—मथु०, रीव॑० । ५—५. इयानंशो नास्ति—  
 अयो०, रीव॑० । ६. ववचित्—मथु० । ७. दूत्युवाच—अयो०, मथु०, बड़ो० ।  
 ८. सदय—मथु० रीव॑०, बड़ो० ।

अयि राजकुमार संप्रति व्यथितप्राणविमोचनोद्धुरा: ।  
 न निभालयसे किमीदृशीः करुणावारिनिधिः स्वयं भवान् ॥२९॥  
 अथ ते कठिनं यदा मनो व्रजरामाननवीक्षणाक्षमम् ।  
 मरणं तदिमा मृगीदृशः कलयिष्यन्ति विर्गहितं भुवि ॥३०॥  
 अयि कामपरार्द्धसुन्दर त्रिजगन्मोहनमञ्जुलाकृते ।  
 मृत एष मृगीदृशीगणः प्रणयश्रीपरिपालकः स्तव ॥३१॥  
 अयि मन्मथमोहनाकृते किमियं ते प्रकृतिर्दुरत्यया ।  
 यद्मूर्ललना निजाधरामृतपानेन न जीवयस्युत ॥३२॥  
 वनितावधपातकोद्भवं भयमास्ते भवतोऽथवा न वा ।  
 रघुवंशविभूषणो भवान् कथमत्युग्रमधर्ममाश्रितः ॥३३॥  
 चरणाम्बुजनिर्गलन्मधुद्रवधारासुखितान्तराश्रयाः ।  
 मुनयोऽपि भवद्गुणामृतं ननु गायन्ति रजस्तमोलयाः ॥३४॥  
 अयि राघवर्यधुर्य ते चरणाम्भोजपरागकाङ्क्षिणीः ।  
 अबला मदनेन धातयन् हृदि चिन्तां महतीमवाप्यसि ॥३५॥  
 शिशुनैव विमोहितान्तरा वनितास्ता व्रतबन्धकर्षिताः ।  
 भवता वरदाननिर्वृता वचनेनैव न वज्जिताः किमु ॥३६॥  
 इदमीदृशबालभाषितं धरणौ संप्रति विश्वसेत कः ।  
 अथ विश्वसनीयभाषितो दयितो यद्यसि तत् प्रसीद भोः ॥३७॥  
 निजशैशवकर्मविस्मरन् वरदानं यदि विस्मृतोऽसि भोः ।  
 तदिमा युवराज संप्रति प्रणयेनैव सुनिर्वृताः कुरु ॥३८॥  
 यदिच्चेच्छरणागता अमूः परिपातुं क्षमते न ते मनः ।  
 भवतः सुचिरस्थिरं व्रतं गतमेव प्रतिभाति मेऽधुना ॥३९॥  
 शरणागतपालनव्रतं यदि ते सुस्थिरमस्ति राघव ।  
 तदिमा रघुराजः कन्यका विरहाम्भोनिधितः समुद्धरः ॥४०॥  
 प्रभुणा करुणावता त्वया न विलम्बः करणीय एव चेत् ।  
 परिपालय घोषसुन्दरीनिजनाथाः स्मरबाणपीडिताः ॥४१॥

१. °परिपाकतः—मथु०, बड़००, । “प्रणयः स्नेहस्तस्य श्रीस्तस्याः परिपाकात् स्नेहाधिक्यात् दृढतरस्नेहात्” इति टि०—मथु०, बड़०० । २. वहु राजकन्यका—बड़०० । ३. °द्धरेः—बड़०० ।

रघुनाथ भवान् भवार्णवे प्रकटोऽभूनिजसौख्यहेतवे ।  
 स कथं निजनाथसुन्दरीनिवहं संव्यथयन् न लज्जते<sup>१</sup> ॥४२॥  
 इति शुश्रुम देवकार्यकृत् कृतवेशः पुरुषोत्तमो भवान् ।  
 तदिमाः सुरलोकसुन्दरीः विरहार्ताः परिपालय प्रभो ॥४३॥  
 परिपालय नाथ सेवकान् निजलावण्यसुधैकसंश्रयात् ।  
 इति ते विरुद्धावली यथा न विशीर्णेत् करुणारसाम्बुधे ॥४४॥  
 स्मरसुन्दर कापि मूर्च्छिता प्रभदं कापि तनोति मन्त्रवित् ।  
 मुहुरेव च कापि धावति त्रपया कापि निरोधिताभवत् ॥४५॥  
 प्रलपत्यपि कापि भूरिशः करुणां कापि निभालते तनुम् ।  
 जडवत् प्रणयेन काप्यभूद् बहुशः खिद्यति राम काचन ॥४६॥  
 पुलकानि विर्भर्ति काचन स्वरभञ्जं कुरुते च काचन ।  
 प्रणयेन च कापि कम्पते मलिनाङ्गी खलु राम काप्यभूत् ॥४७॥  
 अथ कापि करोति रोदनं पृथुमुक्ताफललोचनाश्रुभिः ।  
 प्रिय कापि विलीनवृत्तिका भुवनं शून्यमिवैव वीक्ष्यते ॥४८॥  
 इति नित्यमुपस्थितं महत् कदनं घोषपुरीमृगोदृशाम् ।  
 कृपया क्षपयातिकोमलप्रकृते राम धनुर्धरागणीः ॥४९॥  
 अयि राम धनुर्धरागणीः प्रसभं राजकुमार पालय<sup>२</sup> ।  
 नहि चेन्निहनिष्यते स्मरो निजनाथाः खलु घोषसुन्दरीः ॥५०॥  
 महतीं श्रियमाप्तवानसि स्मरसि त्वं किमु धेनुधोरणीः ।  
 अधुनापि तवैव गोपते हृदि वाञ्छन्ति गवेन्द्रतां प्रभो ॥५१॥  
 सततोत्सवभूरिभाग्यवानसि साकेतपुरीपते: सुतः ।  
 न भवन्तमिह त्यजन्त्यमी स्वसखायः खलु गोपपुत्रकाः ॥५२॥  
 महती खलु राम वर्तते भवतः श्रीर्गुरुगोपवेशमसु ।  
 न तथा हृदयं धिनोत्यसौ नृप संपत्तिरपारकुञ्जरा ॥५३॥  
 पितृतो<sup>३</sup> भवते प्रदर्शिता कमला कोटिगतौधसेविता ।  
 किमु विस्मरणे भविष्यति प्रणयावद्वगवेन्द्रवेशमनः ॥५४॥

१. लज्जसे—रीवाँ । २. पालक—रीवाँ । ३. पितृणा—अयो०, बड़ो० ।

जननी तव गोपसुन्दरी रघुवर्यं त्वयि पुत्रवत्सला ।  
 त्वमपि स्फुटराज्यसंपदं प्रणयेनैव विधूय संस्थितः ॥५५॥  
 इति राम विगर्हणं<sup>१</sup> तव प्रकटं प्रेमवशेन कथ्यते ।  
 नृपपुत्र न चेत् त्वमीश्वरः किमु लोके सुलभो<sup>२</sup> इसि मृग्यताम् ॥५६॥  
 नवनीतसमूहतस्करो व्रजरामापरिरम्भपेशलः ।  
 सुलभोऽप्यसि घोषभूषण स्वकलीलारसमात्रकौतुकी ॥५७॥  
 इति दूत्यपरायणाशयैर्वजदूतीनिवहैरुदीरितम् ।  
 वचनं सुनिशम्य राघवः प्रहसन् प्राह<sup>३</sup> मनोज्ञया गिरा ॥५८॥

### श्रीराम उवाच

सात्यन्तं मे प्रिया सीता हृदगता बहिरुद्गता ।  
 मोहयित्वा सहृदयं<sup>४</sup> हाहा कुत्र गता जवात् ॥५९॥  
 न तां विना क्षणं स्थास्याम्यहमीशोऽपि संपदाम् ।  
 सा मे विगर्हणं कुर्याद्यदि क्रीडेयमन्यतः ॥६०॥  
 तद्भ्रूविजृम्भवशगो विभेमि व्रजदूतिकाः ।  
 तत्स्वीकृतिमहं कृत्वा श्रोद्ध्याम्यन्याभिवाङ्गितम् ॥६१॥  
 जनकस्य गृहे जाता सा मे स्वप्नगताऽब्रवीत् ।  
 तां त्यक्त्वा कथमन्यासु कुर्वीय प्रणयोत्सवम् ॥६२॥  
 सा मे यदि प्रकुप्येत तदा किं मे भवेदिति ।  
 मुहुः संचिन्त्य नान्यासां प्रणयं पालितुं<sup>५</sup> क्षमः ॥६३॥  
 तद् द्रूत भद्रचस्तत्र गत्वा यूयं सुदूतिकाः ।  
 आश्वासयत ताः कान्ता भूयो मद्विरहातुराः ॥६४॥  
 भवतीभ्यो वरं दक्षं स्मरामि व्रजयोषितः ।  
 तत्र कालं प्रतीक्षध्वं यावत् सीतासमागमः ॥६५॥  
 तथाहं विधिवत् कृत्वा भूयः परिणयोत्सवम् ।  
 तस्यै महापदं दत्त्वा महिषीत्वेन भावितम् ॥६६॥

१. “अवज्ञां” टिं०—बड़ो० । २. “सुलभो नैवासि सर्वेश्वरत्वात्, इत्यर्थः”  
 टिं०—मथु०, बड़ो० । ३. प्राज्ञ<sup>०</sup>—रीवाँ । ४. सा हृदयं—अयो०, मथु०, रीवाँ ।  
 ५. पातितुं—मथु०, रीवाँ ।

भवतीभिस्ततः संगं करिष्यामि व्रजाङ्गनाः ।  
 इत्येवं भाषमाणे तु तस्मिन् राघवपुङ्गवे ॥६७॥  
 आययुर्मुनयः सर्वे द्रूतीनां पुरतः स्थिताः ।  
 स्थूलाक्षः शर्कराक्षश्च कस्युर्मेधातिथिः शुकः ॥६८॥  
 नारदः पर्वतश्चैव सुधर्मा चैकलो द्विजः ।  
 मित्रभवनोऽप्यथो धौम्यः<sup>१</sup> शतानन्दो विशारदः ॥६९॥  
 जमदग्निस्तथा रामो वशिष्ठो वामदेवकः ।  
 अन्ये चैव तपोवीराः प्रादुरासुर्मुनीश्वराः ॥७०॥  
 जाबालिः पिप्पलादश्च शाण्डिल्यो लोहितस्तथा ।  
 उद्धालको देवलश्च लोमशश्च महामुनिः ।  
 ते तत्र बोधयामासुर्धर्मजं रघुपुङ्गवम् ॥७१॥

मुनय ऊचुः

शृणु राम महाबाहो नैव वक्तुमिहार्हसि ।  
 त्वदङ्गसञ्ज्ञिनी सीता नोद्वाहं समुपेक्षते<sup>२</sup> ॥७२॥  
 शैशवे शिशुरूपा सा तारण्ये तरुणाकृतिः ।  
 तिरोभावे तिरोभूताविभवि प्रकटाकृतिः ॥७३॥  
 चन्द्रेण चन्द्रिकेवासौ त्वयैव सह वर्तते ।  
 गच्छ राम मनोज्ञं तत् प्रमोदवनमुत्तमम् ॥७४॥  
 तत्रस्था व्रजदेवीश्च रमयस्व चिरं प्रभो ।  
 ता एव प्रथमं तस्याः करिष्यन्ति विकैतवम्<sup>३</sup> ॥७५॥  
 द्रूत्यं तया भवत्सङ्गं कारयिष्यन्ति योषितः ।  
 तास्वाविष्टा ततः सीता रंस्यते भवता समम् ॥७६॥  
 स्वयं च रंस्यते साक्षात् सीता सहजसुन्दरी ।  
 नात्र त्वया ववचित् कार्यो विकल्पो रघुनन्दन ॥७७॥  
 तासामेव हितार्थाय भक्तानां व्रजयोषिताम् ।  
 त्वत्तः प्रादुरभूदेषा भेदेन दर्शनं गता ॥७८॥

१. “भवनोऽथ धौम्यश्च—बड़ो० । २. “त्वां न उपेक्षते” टि०—बड़ो० ।  
 ३. “कपटशून्यं” टि०—मथु०, बड़ो० ।

पुनश्चान्तर्हिता भूत्वा प्रमोदवनमागता ।  
 तत्र सा शोभते नित्यं सरयूतीरवासिनी ॥७९॥  
 प्रमोदवनमध्यस्था तद्वेषीभिश्च पूजिता<sup>१</sup> ।  
 तासां मध्येऽनिश्चं भाति प्रमोदवनदेवता ॥८०॥  
 रक्ताशोकलताकुञ्जं<sup>२</sup> सीतासौ तत्र कानने ।  
 त्वं तात गच्छ तत्रैव पूरयस्व मनोरथान् ॥८१॥  
 नेत्रोत्सवं तथास्माकं देहि राघवपुञ्जव ।  
 ब्रैलोक्ये च महामोदं वद्धयस्व महामते ॥८२॥  
 नातो विलम्बनं कार्यं वयं दूत्यमुपागताः ।  
 तत्रैव सीतया साद्दं शोभन्ते व्रजयोषितः ॥८३॥  
 श्रुतिरूपा नित्यसिद्धा अग्निपुत्राश्च योगिनः ।  
 अन्ये च दिव्यमुनयो वाञ्छन्ति भवदागमम् ॥८४॥  
 योषिद्रूपं विधायैते कामेन क्षुभिताशयाः ।  
 त्वामेव नित्यं वाञ्छन्ति तत्र गच्छाधुना प्रभो ॥८५॥  
 इति तेषां वचः श्रुत्वा रामः प्रहसिताननः ।  
 महान्तमुत्सवं कृत्वा सर्वास्तान् विसर्ज ह ॥८६॥  
 ओमित्युक्त्वा दूतिकाश्च विसर्ज नृपात्मजः ।  
 दूत्योऽपि तेन वारवन्धं कृत्वा प्रमुदिताशयाः ॥८७॥  
 आयाति भवतीनां वै नाथः संजातकौतुकः ।  
 इति ताभ्यो व्रजस्त्रीभ्यः पृथक् सत्यं न्यवेदयन्<sup>३</sup> ॥८८॥  
  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे राम-  
 रासो<sup>४</sup> नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥



१. पूरिता—अयो०, मथु० । २. <sup>०</sup>कुञ्जे—बड़ो० । ३. निवेदयत्—मथु०,  
 वी०, बड़ो० । ४. रामरासे—मथु०, रीवी० ।

## सप्तविंशोऽध्यायः

अथागमच्छरत्कालः प्रमोदवनमध्यतः ।  
 उत्कुल्लपद्मजवनः परागोद्धूलिताम्बरः ॥ १ ॥  
 सप्तच्छदोग्रं<sup>१</sup> सौगन्ध्यसमूहोन्मत्तदिग्गजः ।  
 मृदुचन्द्रकरस्पर्शसहजोत्कुल्लकैरवः ॥ २ ॥  
 उत्कुल्लमल्लिकावल्लीकुसुमस्तवकान्वितः ।  
 खेलत्वञ्जनदाम्पत्यसंब्रमोद्भूतमन्मथः ॥ ३ ॥  
 चकोरीवदनान्तःस्थ<sup>२</sup> निशाकरकरामृतः ।  
 हंसकारण्डवाक्रीडसलिलोद्धरणोद्धुरः<sup>३</sup> ॥ ४ ॥  
 कञ्जकिञ्जल्कपुञ्जान्तर्लीनप्रचुरषट्पदः ।  
 काशपुष्पप्रतीकाशचमरीपुच्छमण्डलः ॥ ५ ॥  
 प्रमोदवनसंकुल्लमालतीसौरभान्वितः ।  
 संततस्वच्छसरयूसलिलाचितबालुकः ॥ ६ ॥  
 गोपगोपीहुदुत्साहवर्द्धनः पुष्टिकारकः ।  
 दृष्टवेदृशं तु समयं रामो रमणकोविदः ॥ ७ ॥  
 गोधोरणी<sup>४</sup> पुरस्कृत्य प्रमोदवनमागमत् ।  
 तत्र गत्वा कृताकल्पः सहजोत्सवसुन्दरः ॥ ८ ॥  
 अञ्जलावण्णसन्दोहप्रकाशितदिग्नतरः ।  
 गोपानुवाच सकलान् भ्रातृंश्च लक्ष्मणादिकान् ॥ ९ ॥  
 हे लक्ष्मण गवां गोष्ठं रच्यतां परितोऽत्र वै ।  
 गोपैः साद्दं शाद्वलानि चार्यतां मम धेनवः ॥ १० ॥  
 अहमत्र करिष्यामि प्रमोदविपिनान्तरे ।  
 पूजां कामेश्वरस्याञ्जु देवदेवस्य संततम् ॥ ११ ॥

---

१. °छन्दोत्थ°—अयो० मथु०, रीव॑० । २. °वदनाचांत—अयो० बड़ो० ।  
 ३. सलिलाण्डवरोद्धुरः—अयो०, बड़ो० । ४. गोधोरणी—अयो० ।

भरतेन च शत्रुघ्न साध्यं त्वं गाश्च चारय ।  
 अत्र स्यात् कोऽपि चेद्विघ्नः प्रतीकार्यस्तथैव सः ॥१२॥  
 प्रमोदवनकुञ्जेषु करिष्यामि मनोरथम् ।  
 ओमित्युक्तवन्तमयो विसृज्य लक्ष्मणं च तान् ॥१३॥  
 अन्तःप्रमोदविपिनमिथाय रघुनन्दनः ।  
 तत्र गत्वा शशिज्योत्स्ना<sup>३</sup> विसतन्तुपटोज्जवलाः ॥१४॥  
 सुधामयीः शरत्पूर्णा रजनीराजुहाव सः ।  
 द्विपराधर्न्तेऽपि नित्यास्तास्तस्य पुरतोऽभवन् ॥१५॥  
 तासु क्रीडनमारेभे दिव्यकेलीविशारदः ।  
 तत्र स्थित्वा महाकुञ्जे जुगुज्ज कलवेणुना ॥१६॥  
 तत्र वेणुरवे गानमकरोदिदमादरात् ।  
 इत्येहि जनकनन्दिनि मदन्तःसंतापहरणचन्द्रिकावतारविग्रहे  
 मदञ्जसंजातप्रमोदवनलहरीलीलायितगते सहजचिदानन्दमयतारुण्य-  
 विलासवैभवाधिवासिते ॥१७॥

चिल्लोकस्वामिनि कामिनीजनगर्वापहारमकरध्वजपताके वेदिमध्ये  
 महामत्समातञ्जगामिनि राकेशप्रभावलेपनिर्वहणवदनकान्ते कैशोर-  
 लीलामतिलङ्घ्यवर्तमाने ॥१८॥

प्रमोदवन - वृन्दावन - मन्दारवन - कदम्बवन - पारिजातवनेश्वरि  
 कुञ्जभुवनेश्वरि रक्ताशोकलतामण्डपमध्यस्थे स्मरमन्त्र-महाविद्ये श्रीमन्त्र-  
 विद्ये महामन्त्रविद्ये महाश्रीयन्त्रनायिके महाचक्रनायिके मातञ्जकुलपूजनीय-  
 चिन्तामणिचरणनखचन्द्रिके ॥१९॥

चञ्चलापाञ्जसंक्षोभितकोटिकन्दर्पकामिनीहृदये कोटिब्रह्माण्डकमला-  
 समुच्चयरूपविग्रहे मन्दस्मितमात्रनिरस्तविरहशोके हा भामिनि हा चण्ड हा-  
 त्यन्तकोपनेहातिशयदुराराध्यशीले भूलीलादिविविधाकारावान्तरावताराति<sup>३</sup>-  
 निमग्नमानसे क्वासि क्वासीति ॐ ॐ ॐ ॐ आनन्दवल्लिके क्वासि  
 क्वासीति जगौ ॥२०॥

१. “हरितरूपभूमौ गोचारणं कर्त्तव्यं” इति टि०-मथु० । २. शिशुज्यो०  
 —अयो० । ३. “भूलीलादिरूपा विविधाकारा ये अवान्तरा अवतारा:” टि०-मथु० ।

ततस्तदाकर्ण्य सुवेणुनिःस्वनं प्रियोदितं मन्मथवेग<sup>१</sup>वर्द्धनम् ।  
 स्मरोन्मदग्रोद्गतमानसा बहिर्हृदन्तरादाविरभून्तिस्मिन्नी ॥२१॥<sup>२</sup>  
 अशोकवल्लीवनमण्डपान्तराद् विनिःसरन्ती सहजारुणांशुका ।  
 घटस्तनी सन्मणिहारभूषणा स्फुरत्पदन्यासविरज्जितावनिः ॥२२॥  
 मरालगत्यज्जितमज्जुविग्रहा नितम्बभारोद्वहनाक्षमा रमा ।  
 मृदुस्मितदचोतविभासितानना मनोहरापाङ्गविभूषितेक्षणा ॥२३॥  
 अनर्थ्यकाञ्चीगुणनादिघण्ठिका मनोज्ञकेयूरविलस्मिन्दोर्लंता ।  
 त्रपानिमग्ना कलितावगुण्ठना सुवृत्तदीव्यज्जघनप्रभास्वरा ॥२४॥  
 सुकण्ठकण्ठी शुभसूत्रशोभिता सभागसौभाग्यसमूहसंगता ।  
 समानशीलैः प्रचुरैः सखीजनैः सनाथपर्यन्तपुरस्थलस्थिता ॥२५॥  
 परिस्फुरच्चारुकपोलमण्डनप्रतिष्ठाटङ्गमणिप्रभाभरा ।  
 प्रसूनचित्रीकृतचारुवेणिका सुनासिकाशोभिमहामणित्रया ॥२६॥  
 सुमज्जुसिन्दूरसमूहसुन्दरप्रसर्पिसोमन्तिरत्तनपट्टिका ।  
 ललाटपर्यन्तविराजिभूषणप्रभासमूहैः परिवेपितानना ॥२७॥  
 सा राघवेन्द्रस्य जवेन सन्निधौ समेत्य कण्ठे भणिभालिकामधात् ।  
 तयोर्विनिर्वृत्य विवाहमङ्गलं सखीजनैः कुञ्जगृहे विधानवित् ॥२८॥  
 प्रवर्तयामास मिथो रतिक्रियां नवीनसङ्गोद्यदनङ्गकौतुकाम्<sup>३</sup> ।  
 ततस्तयोस्तत्र दिने दिनेऽभवन्महोत्सवः पूर्णसखीमनोरथः ॥२९॥  
 शृङ्गारयामास रघूद्वहः प्रियां प्रियापि तं दिव्ययुवानभादरात् ।  
 एवं तदन्योन्यमभूत् कुत्तहलं दाम्पत्यभावप्रणयेन संचितम् ॥३०॥  
 परस्परालापनिरीक्षणादिषु प्रवृद्ध उच्चैः प्रणयस्य वारिधिः ।  
 अभूदमर्यादितरः समन्ततो यथान्यवार्ता धरणीं समाक्रमत्<sup>४</sup> ॥३१॥

साकेतनगरद्वारा      रासभूः<sup>५</sup>      सहवेशमसु ।  
 सरयूतटकुञ्जेषु      रत्नपर्वतसानुषु ॥३२॥  
 क्रीडास्थानेषु दिव्येषु      महासाम्राज्यभूतिषु ।  
 वाटिकातटवापीषु      प्रसोदवनमध्यतः ॥३३॥

१. वेणु—बड़ो० । २. अयं इलोको नास्ति-अयो० । ३. “उद्यत् = प्रादुर्भवत्”  
 दि०—बड़ो० । ४. “लोकवत्” दि०—बड़ो० । ५. “ऽस्त्रामभूः”—मथु०, बड़ो० ।

दधौ केलिरसं रामो रामया सह संततम् ।  
 कवचिद् गुज्जाविभूषाढ्यो वनमालाविभूषणः ॥३३॥  
 मयूरचन्द्रिकोत्तंसी वितेने नयनोत्सवम् ।  
 कवचिच्छन्दनकाश्मीरमकरीपत्रचित्रितः ॥३५॥  
 रत्नाकल्पमनोहारी चकारातीव संपदम्' ।  
 कवचिच्छ कनकोषणीषरत्नस्तवकशोभितः ॥३६॥  
 हेमकञ्चुकलिप्ताङ्गो रेजे राजोत्तमो यथा ।  
 कवचित् पीताम्बरधरः शुभ्रधौत्रविराजितः ॥३७॥  
 आबद्धचूडाचिकुरश्चकार प्रियया मुदम् ।  
 कवचिच्छ मल्लकच्छाढ्यः सुवर्णधृतकुण्डलः ॥३८॥  
 करस्थवलयोल्लासी रराज रघुनन्दनः ।  
 कवचिन्नासामणिभ्राजी श्रोमदाननमण्डलः ॥३९॥  
 प्रियाकलिपतपुवेशो रेजे श्रीरामचन्द्रमाः ।  
 कवचित् किरातवेशेन सन्नद्धललनासखः ॥  
 मृगयाभिरतिर्वीरो व्यरोचत वनान्तरे ॥४०॥

एवं विचित्ररचनान्वितकेलिकारः

कन्दर्पकोटिकमनीयकलाकलापः ।

दासीजनप्रतिविभूषितदिव्यरामा—

तारुण्यमोदमदिरारसपानमस्तः ॥४१॥

अन्योन्यमुज्ज्वलरसोदधिहावभावः—

रिङ्गत्तरङ्गशतसान्द्रतरार्द्धमूर्तिः ।

चक्रे विलासरसिको विविधान् विलासान्

श्रीमत्रमोदवनकुञ्जगृहे सुरम्ये ॥४२॥

इत्थं विहरतस्तस्य रामया सीतया सह ।

द्विपराद्वन्तिमभवद् ब्रह्मणो रजनी हि सा ॥४३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे

रामरासोऽनाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

१. “शोभाम्” टिं०-बड़ो० । २. हानभाव०-अयो० । ३. रामरासे-अयो०,  
 मथु०, रीबॅ, बड़ो० ।

## अष्टाविंशोऽध्यायः

ततः प्रवर्तते घोरं तमो भावपिधायकम् ।  
 रवेरस्तमभूतेजः शशुभे ज्योतिषां गणः ॥ १ ॥  
 तारकौघाः प्रादुरासन्तुलूकाः<sup>१</sup> संप्रपेदिरे ।  
 पद्मकोशान्तरे बद्धाः जुगुज्जुर्न मधुव्रताः ॥ २ ॥  
 मधुरोल्लाससंशोभि बभौ कैरविणीवनम् ।  
 विटपेषु च निद्राणाः पतञ्जा न च भाषिरे ।  
 संवीक्ष्य तामसीं वेलां रामः प्रोवाच जानकीम् ॥ ३ ॥  
 जनकनन्दिनि संप्रति वर्तते रजनिरुत्सुककोकणातिदा ।  
 स्फुरदुलूककदम्बकमोदकृत्तिमिरधोरपटावृतकानना ॥ ४ ॥  
 कटु रटन्ति च संप्रति फेरवाः सुकलहंसरवश्च तिरोहितः ।  
 श्रवणयोः कुरुते कटुतामसौ किमपि घूकवधू<sup>२</sup>निवहारवः ॥ ५ ॥  
 न खलु संप्रति वज्जुलकाननं<sup>३</sup> विकसितं वितनोति दृगुत्सवम् ।  
 कुमुदिनी प्रबिभृति विकासितां वितथसौरभसंपदुपेक्षिता ॥ ६ ॥  
 किमपि गायति च भ्रमरावली विकटकुञ्जलतावनवेशमसु ।  
 दधति रत्नगिरेस्तटभूम्यस्तिमिरसंघकृतं स्वपराभवम् ॥ ७ ॥  
 इति निशम्य निशागमवर्णनं जनकजा समभाषत वल्लभम् ।  
 इयमहो रजनी न निवर्तते प्रलय एष विधेरपि नाशकः<sup>४</sup> ॥ ८ ॥  
 भजति भूतगणः प्रकृतिं परां प्रकृतिरेति परे पुरुषे लयम् ।  
 पुरुष एति भवन्तममुं परं निजविलासरतं पुरुषोत्तमम् ॥ ९ ॥  
 त्वमधुनापि रत्ने निवर्तसे सहजचित्सुखकेलिकलानिधिः ।  
 यदपि नाथ गता लयमीदृशाः शतश एव विरज्जिहरीश्वराः ॥ १० ॥  
 त्वमवधिः परमं पुरुषोत्तमः सततकालकलाकलनात्मकः ।  
 प्रिय भवन्तमुपेत्य गतोऽप्यसावगत<sup>५</sup> एव विवात्यत इत्यहो ॥ ११ ॥

१. प्रादुरासुरु—बड़ो० । २. चक्रवधू—रीवाँ० । “उलूकवधूसमूहशब्दः”  
 दि०—मथु० । ३. पंकजका०—बड़ो० । ४. नाशकः—अयो, मथु०, रीवाँ० । ५. “असौ  
 कालः” दि०—बड़ो० ।

अहमपि प्रभुणा भवता सह प्रमुदकाननकुञ्जविलासिनो ।  
 न कलये प्रणयेन च संभवं न विर्ति सुखकेलिभौत्सवे ॥१२॥  
 अथ यदि स्वपनस्पृहया प्रभो किमपि ते नयनेऽलसपक्षमणी ।  
 तदहमप्यधुना स्वपिमि क्षणं भवदुदारभुजान्तरवर्त्तनो ॥१३॥  
 भवदुरोनयनानननासिकाहृदयपाणिपदावयवाश्रिता ।  
 विरचयामि सुषुप्तिरिवोङ्गवस॑ न्निगमशब्दमयों विर्ति न किम् ॥१४॥  
 निधुवनान्तमिता इलथविग्रहा स्वपिमि नाथ कदा भवता समम् ।  
 स्वदयितस्य सुषुप्तिदशाजुषस्तव मुखेन्दुनिरीक्षणं॒ मक्षमा ॥१५॥  
 नहि निमीलितलोचनपञ्चजोऽप्यथ भवानपि मां परिमुञ्चसि ।  
 ३ सुखसुयन्त्रितदोःपरिरम्भणप्रणयकेलिकलाकुलविग्रहः ॥१६॥  
 अलसलोचन एष सखीजनोऽप्यलभिह स्वपितीति विभाव्यते ।  
 इह न सोऽपि जनोऽस्ति य एत्य नो॑ दिशति नागलतादलवीटिकाम् ॥१७॥  
 कथयतो रतिवल्लभयोर्मिथः सपदि कापि सखी सुसमाययौ ।  
 न युवयोरधुनापि दिनात्यये भवति सुप्तिरतीवविलासिनोः ॥१८॥  
 नवनिकुञ्जलतावनमण्डये कुसुमवलृप्ततले॑ कुरुथो न किम् ।  
 निधुवनक्रियया सहजं सुखं स्मरविलासकलाकुशलौ युवाम् ॥१९॥  
 निधुवनश्रमसंगतनिद्रयो॑ इचरणवाहनमेत्य करोति या ।  
 किमु न साप्यहमद्भुतदासिका रहसि दम्पतिसुप्तिरहस्यगा ॥२०॥  
 इत्थं॑ सखीगिरं श्रुत्वा स्मृत्वा सीतारघूह्वहौ ।  
 शय्यामन्दिरमत्युच्चरैराजगमतुरनुत्तमम् ॥२१॥  
 चन्दनागुरुधूपाढचं कर्पूरोज्जवलदीपकम् ।  
 शय्यान्तावनिविन्यस्त॑ दिव्यास्तरणगेन्दुकम् ॥२२॥  
 नानारङ्गसृतानेक॑ दिव्यचित्रविचित्रितम् ।  
 कुञ्जवल्लीवनान्तःस्थमन्दारद्रुममूलगम् ॥२३॥

१. उल्लसन्—बड़ो० । २. “कर्तुमितिशेषः” टि०—बड़ो० । ३. सुहृदयं॑—बड़ो० । ४. परात्परो—अयो०, मथु०, रीवॉ० । ५. क्षुम॑—अयो०, मथु०, रीवॉ० । ६. संगतिनिष्ठयोः—अयो०, मथु०, रीवॉ० । ७. इति—अयो०, मथु०, बड़ो० । ८. °बुन्यस्त—रीवॉ० । ९. °गतानेक॑—बड़ो० ।

रक्तपीतप्रभाशोभिरत्नवेदयुपरि	स्थितम् ।
सुवर्णसंपुटन्यस्ताम्बूलोदलवोटिकम् <sup>१</sup>	॥२४॥
कल्पद्रुमप्रसूनस्वर्गवासोलङ्घारभूषितम्	।
संभोगमल्लयुद्धान्ते <sup>२</sup> सुखदव्यजनाजिचतम् <sup>३</sup>	॥२५॥
सुगन्धिमिष्टमधुरपवान्नादिसमायुतम्	।
प्रोङ्गुसिरत्नचषकोपेतमैरेयभाजनम्	॥२६॥
द्यूतकेलिक्रियोपायचतुष्पद्मादि <sup>४</sup> संयुतम्	।
हेमरत्नचतुष्कस्थपानीयकलशीयुतम्	॥२७॥
रत्नज्योतिसमुद्धूसिपृथुदर्पणमण्डलम् <sup>५</sup>	।
वेशमाभ्यन्तरवेशमान्तज्वलत्सुस्थिरदीपकम्	।
सखीजनकृतान्वीक्षा <sup>६</sup> गवाक्षशतसंकुलम्	॥२८॥
तत्र गत्वा निजालीभिः कृताकल्पां निजां श्रियम् ।	
रमयामास	रामेन्दुर्नवस्मररतोत्सवे ॥२९॥
सख्यो जाम्बूनदीं मालां दत्त्वा सीताकराम्बुजे ।	
रामस्य रोपयामासुः कण्ठे पुलकसुन्दरे ॥३०॥	
तस्याः काञ्चीगुणग्रन्थिस्पर्शोत्कम्पिकरे प्रिये ।	
सख्यस्तूर्णं विनिर्याताः शय्यामन्दिरतो बहिः ॥३१॥	
तत्रैतयोः काकुवचःशताकुलं प्रभूतकन्दर्पशरोद्धुरं रतम् ॥	
बभूव भूयो न न नेति कान्तया निवार्यमाणोद्धुरकान्तवेलितम् ॥३२॥	
प्रियः परीरभ्य मनोरमां प्रियां स्तनद्वयामर्दनजातसंभ्रमाम् ।	
चुचुम्ब बिम्बोफलकोमलेऽधरे रद्वणारोपणजातवेदनाम् ॥३३॥	
बलेन सा तस्य सुबाहुयन्त्रणां <sup>७</sup> निवार्य नीवीं प्रददौ करं हि सा ।	
द्वितीयकेन प्रसभं च पाणिना सुदूरयामास युवानमद्भुतम् ॥३४॥	
बली स तस्याश्चरणद्वयं ज्वान्निजांसमारोप्य मुखेन्दुमण्डलम् ।	
चुचुम्ब सुस्तिनग्धकपोलभास्वरं वृतालकालीभ्रमरीशताकुलम् ॥३५॥	

१. °वीटिकाम्—अयो०, बडो० । २. “संभोगे मल्लयुद्धं तस्यान्तेऽवसाने सुखदव्यजनं तेन युक्तं” टि०—मथु० । ३. °ङ्गितं—अयो०, मथु० । ४. “चतुष्पदी = चौपड़” टि०—मथु० । ५. मंडले—अयो०, मथु०, रीवाँ० । ६. °न्वीक्ष्य°—अयो०, मथु०, रीवाँ० । ७. यंत्रणं—बडो० ।

हठात् समाकृष्य पदद्वयेन सा विव्याध वक्षस्थलमस्य कामिनः ।  
ततोऽभवन्नपुरकिञ्चिणीरवः प्रसुप्तहंसौघवितीर्णसंभ्रमः ॥३६॥

रामश्च तन्नपुरयुग्मशिजितैः मनःप्रभूतद्विगुणस्मरादितः ।  
रद्दैर्विनिष्पिष्य रदच्छदं पुनः संरम्भतस्तपरिरम्भमाचरत् ॥३७॥

सा रामचन्द्रस्य भुजद्वयान्तरस्थितार्दिता वक्षसि तेन वक्षसा ।  
चचाल नालिङ्गनसंगमोद्भवप्रभोदसंबन्धनिमीलितेक्षणा ॥३८॥

चुचुम्ब तस्याः स्फुटकोरकाकृतीदृशोः [शौ?] सकामी वदनं निभालयन् ।  
तस्थौ पुनर्नीविगुणं पिधाय सा करद्वयेनोत्पुलकावलीतनुः ॥३९॥

स तत्करो पञ्चजकोरकाकृती हठात् समुत्क्षिप्य बभज्जनीविकाम् ।  
तावत्तु सा चोरुयुगं सुवेष्टितं कृत्वा कराभ्यां च वराङ्गमप्यथात् ॥४०॥

स तन्नितम्बद्वितयं मनोरमं लिलेख<sup>१</sup> सूक्ष्मैः करजैः स्मरोद्धतः ।  
समालभच्च स्तनकुड्मलद्वयं स्ववक्षसा दीर्घदुदारकञ्चुकम् ॥४१॥

विदीर्यमाणा कुचकञ्चुकी च सा चकार तत्र द्विगुणं श्रियं रतेः ।  
स्तनौ सुवेशेन यथा विरासत्तुः प्रमत्तचक्राविव पद्मिनीदलात् ॥४२॥

उदीर्णभासोः स तयोरुरोजयोर्नखावलीं संनिचखान नायकः ।  
स्फुटेन्द्रगोपापयवैः समाचितौ यथा लतायास्तवकौ विरेजतुः ॥४३॥

साप्यस्य वक्षस्थलमुद्भूतैर्नखैः पस्पर्शं किंचित्स्मयद्वुर्मदेक्षणा ।  
आवर्जयामास च दुर्लभत्वतः स्मरातुरस्यास्य हठेन वेगिताम् ॥४४॥

स उत्पत्तन्मन्मथवाणवेपितो मदोद्धतो बाहुबलेन यन्त्रयन् ।  
चकार बालां मधुरांशुकच्युतां विस्पष्टदीव्यजज्जघन<sup>२</sup>द्वयप्रभाम् ॥४५॥

विलोड्यमाना सुरते प्रियेण सा बभूव सुस्वेदकणान्तविग्रहा ।  
तथाप्यमुज्जचत्रपया न कर्हिचिन्नितान्तसंशोभिमुखावकुण्ठनम् ॥४६॥

पिधाय योर्नि करपद्मसंपुटे परस्परासक्तिसुसंगतोरुकाः<sup>३</sup> ।  
अधःस्थिताप्युच्छलतिस्म तस्य सा समानलज्जामदनद्वयाकुला ॥४७॥

तां केनचिद्वन्धबलेन कामुको निबद्धच निर्भुच्य तदोरुबन्धनम् ।  
आरोपयामास निजोरुयुग्मके वराङ्गसौलभ्यसुनिर्वृतेन्द्रियः ॥४८॥

१. लिखत्सु०—अयो०, मथु०, रीवॅ० । २. °दिव्य°—अयो०, रीवॅ० ।

३. °त्सुका—अयो०, रीवॅ० ।

निजोरुसंस्थामबलां सुयन्त्रितां ततो निबन्धाच्चलितुं च नो क्षमाम् ।  
ददर्श वक्त्रे परिचुम्बिताधरे पराङ्मुखी तावदभूज्जवेन सा ॥४९॥  
तस्याः सुदीर्घाभिलकावलीं करे निगृह्य<sup>१</sup> तां संमुखमन्वकूलयन् ।  
ततोऽपि सा संमुखवर्त्तिनी प्रिया निसोलिताक्षी न बभाण किञ्चन ॥५०॥  
सामर्षसङ्क्रोधसहर्षसत्रपसहाससोन्मादनसाश्रुलोचना ।  
बभूव तूष्णीमवशा सुयन्त्रिता कृताधरस्पन्दलवानुभेयगोः ॥५१॥  
ततोऽस्य वक्त्रं शनकैः प्रपश्यती बभाण बाला भृदुवलगुभाषिता ।  
अलं जवेन प्रिय मुञ्च मुञ्च मां न नेति संमर्द्वविलोलविग्रहा ॥५२॥  
स भाष्यमाणोऽपि जवेन योनि बभज्ज तस्याः खलु दीनयाच्चितम् ।  
हाहेति वक्त्रे करकुड्मलद्वयं प्रकुर्वती काकुशताकुला च सा ॥५३॥  
हठेन तेन व्यथितेव कामिना ररज्ज शय्यापि यथाद्र्दयावकैः ।  
कृतोद्धतां निर्दयसौरतक्रियां तत्याज भूचर्छायितविग्रहां तु ताम् ॥५४॥  
सखोजनस्तां प्रथमे रतोत्सवे बालां कथंचित्प्रतिलब्धचेतनाम् ।  
संस्नापयामास<sup>२</sup> सुमङ्गलोदकैः विधानविद्विनिगमैः प्रबोधिताम् ॥५५॥  
इत्थं निशायामतिलङ्घ्य चेतनां चकार रामः प्रियया रतोत्सवान्<sup>३</sup> ।  
यावत्स शेते पुरुषो महोदधौ भुजङ्गराजे शयने सुषुप्तिभाक् ॥५६॥  
गावश्च तस्य प्रसरन्ति सर्वतो निश्वासरूपा भुजगेन्द्रपालिताः ।  
तौ कामिनौ निर्भरकामकेलिभिः संश्रान्तचित्तौ दधतुः स्वलीलाम् ॥५७॥  
तदोल्वणा<sup>४</sup> नाम जवेन राक्षसा उत्पेतुरुग्रा बलवत्सर्हिताः ॥५८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामरासो नाम<sup>५</sup>  
अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥



१. प्रगृह्य—बड़ो० । २. संस्थापया०—अयो०, मथु०, रीव० । ३. रतोत्सवम्—  
रीव० । ४. ततो०—रीव० । ५. रामरासे—अयो०, मथु०, रीव०, बड़ो० ।

## एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अथोत्पेतुः परितः प्रमोदवनमुल्वणा नाम राक्षसाः । सोदरकाः सायुधाः सकवचाः सुतीक्रमतयो मदोद्धतास्तामसा॑ स्तामसीन्त्रपराक्रमा उल्मुकहस्ता अभज्जलास्तालकातसमुच्छ्रायवपुषो दुर्दर्शनाः प्रज्वलद्वद्वा-गिनदृशो गिरिगण्डसमानांसाः॒ पृथुतरनासाविनिःसरच्छ्राससमुत्कम्पित-द्रुमान् समुन्मूलयन्तः पादविन्यासप्रचालितधरणीभागाः सरागाननाः करालजटालकेशाः कृत्तिवाससो गणा इव विकटाटोपताण्डवप्रचण्डाः ॥१॥

तान् लक्ष्मणोऽभिवीक्ष्य॑ श्रीरामाज्ञापरायणस्तदाखिलकार्यप्रसाधन-चतुरोऽक्षरब्रह्माकृतिः पुरुषोत्तमस्य द्वितीया मूर्त्तिश्चतुर्मूर्त्तोर्भगवतःसज्जी-कृतधनुः सुतीक्ष्णविशिखधारासारैनिवारितवांस्ते दृष्ट्वा शाह्वले चरन्तं रामधेनुकं संक्षोभयाञ्चक्रुस्ततोवीरः सधेनुकं प्रमोदवनाभ्यन्तरे प्रवेश्य तानापततः प्रचण्डैः काण्डैर्विव्याध॑ ॥२॥

ते विद्वा द्विगुणसंजातरूपो लक्ष्मणं विषभमुशलसमूहैरवाकिरन् । स निजकाण्डवर्षेण मुशलान् द्विधाकरोत् । तेन द्विधाकृता॑ मुशला दूरादेव परावृत्ताः बभूवुः । कथंचन रविरिव पांसुप्रचयावकीर्णमास्ताण्डव-रान्मुशलदुर्दिनात् स्वरूपं प्रकाशयामास । ते पुनरपि तं राजकुमार-माच्छादयन् शक्तिवृन्दैः, संछिन्नः शक्तिवर्षेण मूर्छितो धरण्यां निपपात ॥३॥

ततो हाहाकृतं दिवि देवसैन्यं बभ्रामोवाच चाहो प्रभो लक्ष्मण कथं निविराज [ण ?] इवासि संवृत्ताः । संप्रति खलु त्वमेव गोधोरणीनायको नान्यमुपलभामहे । प्रभुस्तु योगनिद्रावशंबदोऽधुना शेते क्षीरोदार्णवे प्राणप्रद-स्त्वमेवास्य सहजकेलीनां लीलोपधानीकृतसमुद्रतनयैकबाहोः सान्द्रतरा-इलेषजपरस्परसुखानुभवरसिकस्य आदेशोऽसौ त्वां प्रमोदवनरक्षायै गवां पालनाय च महाविक्रमोर्जितमेकवीरं स्वानन्दविलाससाधनोपायम् ॥४॥

सखलु त्वं सैवं कार्षीः । भरतवानुष्टुपायपि संप्रति कवगताविति न प्रतीमो

१. ‘तामसा’ नास्ति—अयो०, मथु०, रीव० । २. °समानाः—अयो० ।

३. °णो वीक्ष्य—अयो०, मथु०, रीव० । ४. विवाध्यते—अयो०, मथु०, रीव० ।

५. द्विधास्ततो—बड़ो० ।

यतस्त्वमेकाकी महोत्वणैरभीभिर्द्वयसे । संस्मर संस्मर स्वात्मानं समुत्तिष्ठ सज्जीकृतधनुः कोटिराक्षसकुलहन्यवे सौमित्रेयेति ॥५॥

लक्ष्मणस्तत्क्षणे प्रविधूयाङ्गव्यथां निजमहिमसंस्मृतिसुधाधाराभिस्तूर्णमुत्थाय घोरतरनाराचधाराभिर्दुर्दिनैः समाच्छादितवान् राक्षसमहोदरान् । ते च प्रबलतरभुजगेन्द्रभोगोपमभुजदण्डकुण्डलीकृतकोदण्डनिर्गलत्काण्डाग्रसंछिन्नशिरसो निपेतुः परितः प्रमोदवनम् । तेषां पततां शरीराणि धरणीं कामयामासुस्समभूच्चारवोवज्ञनिर्धातिघोरः । केचिच्च ललायमानाः क्षमां समाकम्पयन्, तेषां पलायमानानां चरणविन्याससंरम्भेण व्यशीर्यन्त भूमिभागाः । एवं निर्दलिताखिलविपक्षसैन्यो महावीरो धनुः प्रतिसंहृत्य गवां धोरणीमपाल्यत् । तावत् सुखं शेते जानकीकण्ठपाणिः सकललोकेश्वरः श्रीरामः ॥६॥

अथ यामाधार्वाविशिष्टायां रजन्यां प्रभोः प्रबोधनाय वैतालिकवरवेशधारिणो वेदा विद्याधरीवेशधारिण्यश्च महोपनिषद उत्थानकमगायन् ॥७॥

**वेदा ऊचुः**

जय जय निजजनकरुणां कुरु कञ्जदलनयन<sup>१</sup> स्वयमेवोजजूमभमाणा<sup>२</sup>खिलसौभाग्यसदन जड़जीवात्मनां परिणममानस्य तेन तदीयर्धर्मैः संबन्धः सपदि तदात्मनैव दृश्योऽसि ॥८॥

वयुनं<sup>३</sup> नामैव ते येन परमहंसोऽपि त्वामखिलगुणातीतमहिमानं वेद स्वे महिमनि प्रतिष्ठिततमम् ॥९॥

न खलु त्वमाधेयो<sup>४</sup> क्षेत्रिकृत्तेस्तवैतत्परं पदं यत् सूरयो धिया पश्यन्ति, यत्र काञ्चनी रत्नोपलघटिता भूर्यत्रैरम्मदीयं नाम सरो यत्र स्वानन्दं संविदेव वापी यत्र स्वात्मानन्दप्रसाद एव प्रासादः सबहुविध<sup>५</sup>-भोगसमुचितशिखराग्रनिषणसत्त्वात्मकचित्तसमाक्रान्तो यत्र त्वमेवाधिराजो विजयसे ॥१०॥

१०. करुणांकुर [ रु—अयो०, रीव॑ ] कन्ददलसनयन—अयो०, मथु०, रीव॑ ।  
 २. °बोपजृम्भ०—अयो०, रीव॑ । ३. “त्वं दृश्यः एतदेव त्वद्विषयकं वयुनं ज्ञानं नाम येन ज्ञानेन” टि०—मथु० । ४. समाधेयो—बड़ो० । क्षेत्रिकृत्तार्थाध्यायं यावत् ( ६०-१०१ पत्राणि ) खण्डतोऽशः मथुरा पुस्तके । ५. °विधि०—अयो० ।

अथ दुस्तर्ककलितकलुषीकृतान्तःकरणानामेष लोको दुर्विभावनोऽन्तःसाधनशतं प्रयुज्जानैरेव ते भवितव्यं मनोमयः प्राणवपुः प्रभारूपः सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः स एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्योऽयं तव लोकः सच्चिदानन्दघनो बाह्याभ्यन्तरो न तं कश्चन वेद तव चरण-परागपूतात्मानमृते ॥११॥

जय जय सदेकस्वरूप कलात्मक कालकलनातिग चिदेकप्रतिष्ठित-निखिलप्रपञ्चरचनैकाश्रय वाङ्मनसागोचर स्वानन्दसिन्धुलहरीगणसंनिमग्नं निजान्तरानन्दिनीसहजालक्ष्मीपराम्बासंवलित नित्यनिकेतन निरवधि-क्रीडायं विकल्पमानमिदं विश्वं तद्विशेषमेव विकृतिरपि त्वत्प्रकृतिरेवेति भेदेनापि मनोवाक् त्वामेवावलम्बते<sup>३</sup> यथा नद्याः स्यन्दमानाः<sup>४</sup> समुद्रमेवा-भिसंविशन्ति<sup>५</sup> तथैतानि नामानि सर्वाणि पुरुषं त्वामभिसंविशन्ति ॥१२॥

अथेमे विद्वांसः कायवाक् चित्तमलनिर्वर्णीत्वत्कथामृतधारान्तः-कृतावभृथाः कायबलेशकराणि तपांसि समापयन्ति । ये पुनः सतत एव सुखानुभवनिकेतनं त्वत्पदद्वयं भजमानाः शुद्धात्मस्वरूपस्फुरणेनान्तःकरणं कालप्रभावं सत्वादीश्च निर्जितवन्तः कुतः बलेशकर्माण्यवरज्येयुः<sup>६</sup> ॥१३॥

यदेतदानन्दमयं यदेतदभ्यमयादि च तस्यापि पुच्छप्रतिष्ठा च त्वं तव पृथिवी शरीरमात्मा शरीरमव्यक्तं शरीरमक्षरं शरीरं त्वं सर्वान्तरात्मा-पहुतपाप्मा दिव्यो देव एको रामचन्द्रः ॥१४॥

अथेमे शार्कराक्षा मणिपूरकस्थं ब्रह्मोपासते । सदेकशतनाडीस्थानं ते तद्वेतनैव<sup>७</sup> वर्त्मना त्वामेत्य न पुनर्दुःखालयमभिसंविशन्ति सोऽसि त्वमेको देवः सर्वभूतेषु स्थानेषु गूढः ॥१५॥

अथामूष्ठभिव्यक्तिस्थानेषु संश्चकास्ति सोऽसि त्वं प्रतिहतरजस्-तमोविसरः शुद्धसत्त्वैकवपुः स्वकर्माण्याजितनानापुरेशः कार्यकारणासंवृत्त-निखिलांशाखिलशक्तिपरिवृद्धः कपीनां नैगमोक्तीनामावपनमसि<sup>८</sup> ॥१६॥

१. सर्वरस एवोऽणु—अयो०, रीवौ० । २. °गणनिमग्न°—बड़ो० । ३. विल-म्बते—रीवौ०, बड़ो० । ४. नदी स्यन्दमाना—रीवौ०, बड़ो० । ५. संविशति—बड़ो० । ६. °कर्मावरेजुः—रीवौ० । °कर्माचरेयुः—बड़ो० । ७. तदेतेनैव—बड़ो० । ८. आवपनं = ‘उत्पत्तिस्थानं’ टिं—बड़ो० ।

अथातिदुर्लभतरस्वतत्त्वप्रकाशनैकान्ततनौ विचित्रलीलारसामृता-  
कूपारे त्वयि मग्ना मत्तासो जनासः किमिति मुक्तिं लवणोदरसदनेश-  
तुल्यां स्पृहयेयुर्यत इमे पारमहंस्यव्रते स्थिताः पदपञ्चजपरागविचित्रित-  
वपुषस्तन्निर्गलन्मकरन्दधारास्वादनिर्वृताः सततमेव विजयन्ते ॥१७॥

अथात्स्मस्त्वत्सेवौपयिके कुलाये परमात्मैकसखायो वत ये न भजन्ति  
त उरुतरभीतिमहावर्ते भवे भ्रमन्त एव तिष्ठन्ति ॥१८॥

अथ ये मनोऽक्षगणं<sup>१</sup> संयम्य दृढभूमिना योगेन हृदि निरुद्ध्य परं तत्त्वं  
समुपासते त्वद्भावमचिरेणापि यन्ति द्विषन्तोऽपि ते चरणयोः सायुज्य-  
मीयुः प्रमेयबलमदः कतमः स्तोतुं क्षमो भवति ॥१९॥

अथ भगवन् को नु त्वां जानीयादर्वाक् समस्तदैवतप्रसरं यतो साधु-  
धियामखिलजगदादिभूतभृषिमनुजज्ञिरे आध्यात्मिका आधिदैविकाशच ।२०।

अथ त्वय्यखिलसाम्राज्यसुखाधिकसुखे रसात्मकविग्रहे समधिगते  
किममीभिः पुत्रापत्यकलत्रादिभिः कुतक्षेः सुदुर्भगैरिति व्यवस्थ प्राचीना  
महाश्लोका महाश्रोत्रा महाशीलाः सर्वं परिहृतवन्तस्त्वयि च र्ति कृतवन्त-  
स्त एवेदं भवात्मकं व्यसनं तीर्णवन्तः ॥२१॥

अथेदं विश्वं सदेव सदुपादानकत्वादिति हेत्पन्यासहतधियां  
द्वहनादिभ्य उत्पन्ना प्रभापि दाहिका किं न भवेदिति रघुकुलोत्तांसस्त्वमेव  
सत्त्वमेव सदिति मन्महे ॥२२॥

अथ यथा भुजगः स्वगतमपि कञ्चुकं गुणबुद्ध्या नाभिमन्यते तथा  
त्वमजां नहि निरन्तराह्लादिसंवित्कामधेनुवृन्दपतेरजया तव किंचित्  
कृत्यमस्ति प्रभोः ॥२३॥

अथ यदि भवान् स्वलिङ्गमुपसंहृत्य कार्यं प्रति दृष्टि मील्यति  
तदानुशायिनां ज्ञानसाधनं नास्ति न वा स्थूलं न सूक्ष्म न चोभयम् ॥२४॥

अथास्यासतः प्रपञ्चस्य न जन्म घटते सतो वा दुःखादेन नाश  
आत्मनि भिदावकल्पते कर्म च न संभवति सेयं च नाम तव दृष्टिस्त्वय्येव  
बोधैकस्वभावे योऽयमबोधनिबन्धनो जीवः सोऽपि भिदया नैव वक्तुमर्हत्  
सद्विषयत्वाश्रयत्वयोरभावात्वयि ॥२५॥

१. अक्षगणं = 'इन्द्रियसमुदायं' द्विंशो—बडो० ।

अथत्वय्यवर्तमानमपि मनो वर्त [ मान ? ] मिव भातु ये तु त्वद्वेदितारस्ते इदमशेषं त्वद्रूपतयेवाभिमृष्टन्ति नहि कनकमात्रदृशां कुण्डलादिकमवभासते ॥२६॥

अथ त्वं स्वत एव व्यावृत्तकार्यकारणाद्युपाधिः सकलकारकशक्त्युपेतः<sup>१</sup> स्वरूपशक्त्यैव राजसे मायया सह तदधीनैरपीड्यमानः ॥२७॥

अथ यदि नित्यलोलस्य ते मायया सह विकृतिर्भवेत् ततः स्थावरा जङ्गमाश्च नानाकृतयो जीवा भवेयुः । सेयमीक्षैव तव परमकारुणिकस्य व्योम्न इव स्वपरभिदा शून्यस्य ॥२८॥

अथ त्वं व्यापको नियन्ता सेव्य एवामी त्वण्वो<sup>२</sup> व्याप्या नियम्याः सेवका एव त्वदुपलब्धाखिलवैभवभाजो नान्यथा प्रतिपत्तव्या क्षुद्रविस्फुलिङ्गा इव नागिनकूटस्य तुलामधिरोहसि ॥२९॥

अथ प्रकृतिपुरुषयोरुभयोरप्यजत्वान्न संबन्धो घटनामेति येनाध्यात्मिकरूपाः सोपाधयो जीवा जायन्ते ततः प्रकृतिविकारप्रलयेन सुप्तवासनत्वाच्छु<sup>३</sup>द्वास्ताः परमात्मनि जीवाख्या शक्तयः सृष्टिसमये विकारिणीं प्रकृतिमासज्य क्षुभितवासनाः सत्यः सोपाधिकावस्थां प्राप्नुवन्त्येत्युच्चरन्ति सोऽयमचिन्त्यस्तवैव महिमा विजयतेतरां रघुवरशार्दूलस्य । ३०।

अथासौ हेतिरपि त्वद्भ्रूभङ्गमात्रनियुक्तः सर्वाण्येव वशयितुं शक्तो विहाय त्वद्भ्रूजनामृतधाराशीतलमनसो भक्ताख्यान् परमहंसान् ॥३१॥

अथ कोटिसमीररोधव्यग्रात्मानो न मनो रोद्धुं शक्ताः बहुभिः प्रत्यूहैर्हन्यन्त एव विना भवच्चरणनिदेशकदेविकम् ॥ ३२ ॥

इत्यभिष्टूयोपरतेषु वेदपुरुषेषु स्तम्भस्वेदादिविविधभावाकुलिताः स्वलद्गिरः सगद्गदाः पुलकविसरकदम्बायिततनवो बहुतरप्रेमाधौतकुचकुम्भकुड्कुमाः खिद्यमाना इव भूयसा विप्रलम्भेन महोपनिषदो निर्भरसु रत्नशमशयानयोर्दम्पत्योर्युगलमस्तौषुः ॥३३॥

१. कारकपाद्यस्त्वुपेतः—रीवाँ, पाद्यस्त्वुपेतः—बड़ो० । २. त्वया—रीवाँ, बड़ो० । ३. सत्यवासन<sup>०</sup>—बड़ो० ।

महोपनिषद् ऊचुः

जय जय कान्तकेलीरसनिमग्नमनसोः कोटिरतिकन्दर्परूपलावण्य-  
मुखयोः स्वाराज्यसुखसाम्राज्यसंपदाविष्करणवतो<sup>१</sup> रवहेलितवृन्दावने-  
श्वरीश्रीमद्भूषभानुजाश्रीमद्वजेन्द्रनन्दनरसयोर्गोलोकादुपरितनसहजचिङ्गोक-  
विलासस्वामिनोः स्वरूपशक्तिमात्राविर्भावितसखिसखीदूतदूतविट-  
चेटकादिसहायबललब्धकोककला<sup>२</sup> लावण्ययोः श्रीमज्जनकनन्दनीरघुकुल-  
योर्युगलाय नमः ॥३४॥

अथ युवाभ्यां दम्पतीभ्यां क्षन्तव्यो नो वैयात्यमदो यत् सुरतान्त—<sup>३</sup>  
विवसनयोः पुरुषायितविपर्यस्तभूषणवसननयनाज्जनादिविविधाकल्पयोः  
परस्परकण्ठाश्लेषप्रभूतद्विगुणितसंक्षुब्धमनोभूपरवशयोः परस्परोन्मर्द-  
क्षुभितवक्षसोः पुलकाञ्चितयोरधरबिम्बस्य सुधापानपरायणयोरीदृशनिस्त्र-  
पयोर्युवयोः समीपं भजामहे नर्मसख्य इव निकुञ्जकेलीभवनद्वारोद्घाटन-  
लब्धानन्दकदम्बाः ॥३५॥

अहो क्व वयं<sup>४</sup> बहुतरकर्मठकुलवज्ज्वतचित्ता अनेकयोगिज्ञानिगुरुजन-  
कृतप्रत्यूहाः कुलाङ्गना इव गुरुलज्जावरुद्धप्रियदर्शनस्पर्शनमुखामृत-  
विधुरा<sup>५</sup> लज्जयैव व्यतीततारुण्याः क्व च तव चेदं महोच्छृङ्खलममेय-  
दिव्यरूपलावण्यवारिधिप्रसरणं सतत<sup>६</sup>प्रियाभ्यामेव समासादिता प्रेमणः  
पुरुषस्येव सीमा ॥३६॥

अहो अलौकिकत्वं केलीनां यद्विरज्ज्ववसाकस्य प्रावीण्यमतिवर्तन्ते ॥३७॥

अहो विचित्रता शोभातिशयस्य यन्निर्भरजनीरङ्गरसिकाभ्यां  
पूर्णीकृत्य निपीतोऽप्यनुक्षणं वर्धमान एवाविर्भविष्णुः ॥३८॥

अहो युवाभ्यामेव पूजितः परस्परालापपरिरम्भन्तुस्वननखरददान-  
मन्दस्मितोन्मर्दनादिभिर्मन्दारकलपद्रुमकुसुमसमूहैः केलीमनोरथकामतरुः  
कामदेवः । वत वत कथमप्यसुलभाय मनोमोहैककन्दाय सहजानन्दाय  
नमो युवयोः सुरताय ॥३९॥

१. संपदादिकरण०—बड़ो० । २. कोककलाप०—अयो०, रीवॉ० । ३. सुदीम-  
विवसनयोः—बड़ो० । ४. क्वहन्त—अयो०, बड़ो० । ५. °दर्शनरसा ननु स्वामृत-  
विधुरा—बड़ो० । ६. प्रसरण हन्त—अयो०, प्रसररसत°—बड़ो० ।

अहो वयं त्रिगुणप्रवाहमार्गपतिताः किं प्राप्स्याम इमां गुणातीतां सच्चिदानन्दकरसमयों सहजानन्दिनीरघूतमयोः केलिकलामवलोकितुमपि किं नाधिक्रियामहे दैववज्जिताः ॥४०॥

अथ यद्यमुयोश्चिल्लोकस्वामिनोः सच्चिदानन्दरसदम्पत्योस्तल्पान्तभूमिकाभाजोः बहुकोटिजन्मार्जितसुकृतोद्भूतभाग्या एव वयं<sup>१</sup> तर्हि नातिचिरादेवाभ्यां नित्यनिजविहारस्य भाजनतां प्राप्स्यामहे श्यामा रामा ललिता विशाखा<sup>२</sup> रङ्गविद्या पूर्णमासी चम्पकलता दया नित्यसिद्धा इव वयमपि कोटिजन्मसाधनसिद्धाः ॥४१॥

इत्यभिलाषपूर्वकमभिलष्य ताः सर्वमहोपनिषदोऽतिशयितगुणवर्णन-प्राप्तजडिमानस्तूष्णीं बभूवुः ॥४२॥

अथाविरासोच्च निकुञ्जमन्दिरे  
जालान्तरप्राप्तनिजावकाशः ।

सूर्यशुद्धण्डप्रकरोऽतिकोमलः  
प्रोत्फुल्लशोणाम्बुजगर्भबन्धुः ॥४२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंबादे रामरासोनाम<sup>३</sup>  
एकोनर्त्रिशोऽध्यायः ॥२९॥



## त्रिंशोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

प्रातरौत्थानिकं गीतमिदमाकर्ण्य दम्पती ।  
प्रबोधमीयतुस्तूर्णं सुरतोत्थश्रमालसौ ॥ १ ॥  
ताम्बूलवीटिकास्वादरज्जिताधरसुन्दरौ ।  
ववचित्कवचिन्नखाङ्कालिलिखितोल्लासिविग्रहौ ॥ २ ॥

१. एषपर्व—बड़ो० । २. विषमा—बड़ो० । ३. रामरासे—अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

निर्भरस्मरसंमर्दमृदितावयवोद्धुरौ ।  
 लम्बमानालकस्तोमभ्रमरीमुखपञ्चजौ ॥ ३ ॥  
 निद्राव॑ शेषसंबोतपत्पक्षमणलोचनौ ।  
 रजनीसुखसंस्मारस्मयमानमुखाम्बुजौ ॥ ४ ॥  
 परार्द्धरतिकन्दर्पशोभानिर्मन्थनोचितौ ।  
 अन्योन्यगण्डफलकप्रतिबिम्बायताननौ ॥ ५ ॥  
 प्रातरारक्तसूर्याशुभेदसंकुचदीक्षणौ<sup>२</sup> ।  
 अन्योन्यविस्फुरद्भूषाङ्कितकण्ठादिविग्रहौ ॥ ६ ॥  
 स्मरसंमर्दसंक्षेभविपर्यस्तधृताम्बरौ ।  
 अन्योन्यप्रतिबिम्बाङ्कस्फुरद्वर्पणमन्दिरौ ॥ ७ ॥  
 कामपूजालब्धरसप्रभादप्रसराविव ।  
 सहजानन्दिनीसीताश्रीमद्भुवराभिधौ ॥ ८ ॥  
 ततो विधाय माङ्गल्यमारात्रिकमनुत्तमम् ।  
 सखीभिः कृतसंस्कारौ रेजतुर्दम्पती मिथः ॥ ९ ॥  
 प्रातराशादिकानेकसपर्यासाधनोत्सुकौ ।  
 सखीगणैः सेव्यमानौ सीतारामौ विरेजतुः ॥ १० ॥  
 एवं विहरतोः कोटिकल्पान् प्राप्य क्षणानिव<sup>३</sup> ।  
 बलकृष्णादयस्तत्रावताराः कोटिशो ययुः ॥ ११ ॥  
 एकदा सुखमासीनौ सीतारामौ कृतोत्सवौ ।  
 ता एव दूतिका एत्य प्रोचुर्वचनमादरात् ॥ १२ ॥

दूस्य ऊचुः

अहो प्रियौ वां स्वसुखैकनिर्वृत्तौ  
 कच्चित्<sup>४</sup> परस्यापि सुखानि जानथः ।  
 योऽयं जनः किलश्यति कोटिकल्पतो  
 धृतव्रतो वा कृत आतुरान्तरः ॥ १३ ॥

१. निद्रया—रीवाँ, बड़ो० । २. °दक्षिणौ—बड़ो० । ३. च—बड़ो० ।  
 ४. क्वचित्—बड़ो० ।

उदारपाणिस्तु स एव गप्यते  
 योऽन्यस्य दत्ते स्वयमापदं दधत् ।  
 अथो विभज्यैव वनक्ति यो' जनो  
 न सोऽपि मर्त्यः कृपणान्तरात्मवत् ॥१४॥

इमां समासाद्य निजार्थकोविदां  
 कथं नु जातो रघुसत्तमाधुना ।  
 सर्वं पुर्वाविस्मृतवानसि प्रभो  
 कमाश्रयिष्यन्त्यबलाजनास्तव ॥१५॥

अद्य स्मरस्यद्भुतदानमात्मनः  
 प्रभोदवल्लोविपिने वर्तितुं यत् ।  
 तर्ह कृतस्त्रीनिवहोऽयमीदृशो<sup>३</sup>  
 विपत्तिमासादयतोति गर्हितः ॥१६॥

इयं तु सद्वंशभवा भवन्मुखे  
 लग्नेति लोकस्य महोत्सवोऽभवत् ।  
 अथान्तराछिन्न<sup>३</sup>गणे विलोक्य स  
 व्यमुञ्चदासां निजसौख्यहैतवे ॥१७॥

तथापि ते राघवर्वयं नोचितं  
 मनो निजानां विषये यदीदृशम् ।  
 समस्य सर्वोद्धरणक्षमस्य च  
 प्रपत्तिमात्रेण वरोद्धुरस्य ते ॥१८॥

तासां वताभीरभृगीदृशां कृते  
 कियन्न पूर्वं विनिवेदितोऽसि भोः ।  
 तथापि किं ते करणीयमस्ति तन्न  
 विद्यहे स्वैरगतं रघूद्वह ॥१९॥

अमूः समाराध्य भृशं सहस्रशः  
 सदैवताग्न्यं भवतोर्युगं प्रियौ ।  
 अद्यापि न प्राप्तमनोरथाः कथं  
 पुरा चिरं दत्तवरा वराङ्गनाः ॥२०॥

१. भुवमक्रियो—अयो० । २. ईदृशीं-बडो० । ३. °छिद्य°—अयो० ।

इति तासां वदन्तीनां दूतिकानां पुरःस्थिता<sup>१</sup> ।  
 शनैः श्रीरामरमणो तत्रैवान्तरधीयत ॥२१॥  
 अयं खलु मदन्यासु संसक्तो धूर्तपुञ्जवः ।  
 यासां दूत्यमुपानिन्युः सहस्रं दूतिकाजनाः ॥२२॥  
 इति मानापदेशेन तासामाराधनक्रियाम् ।  
 जानकी सफलोकत्तुं भक्तिरूपा व्यर्वत्त ॥२३॥  
 यदि मर्यादिया रामो भक्तानुद्धर्तुमिच्छति ।  
 ज्ञानभक्तिस्वरूपेण तदा सीता विवर्धते ॥२४॥  
 यदा संत्यज्य मर्यादां स भक्तानुद्धिधीर्षति ।  
 प्रेमभक्तिस्वरूपेण तदा सीतापि दृश्यते ॥२५॥  
 अन्यदेवमतं ज्ञानमन्यच्च प्रेमलक्षणम् ।  
 द्वयोरैक्यमिहैवास्ति श्रीरामे फलरूपिणि ॥२६॥  
 साड़ख्यस्य योगतपसोज्ञानविज्ञानयोस्तथा ।  
 परेण ब्रह्मणा कोऽपि संबन्धो घटते नहि ॥२७॥  
 अयमेव च संबन्धो यः प्रेमाख्य उदाहृतः ।  
 स एव भक्तिशब्दार्थोऽन्यः स्यादौपचारिकः ॥२८॥  
 भजन्ते यन्निमित्तेन लक्ष्मीनां कोटयः प्रियम् ।  
 सा सीता किं भवेल्लक्ष्मीर्नित्यश्रीविग्रहात्मिका ॥२९॥  
 नित्या तदंशरूपैव राधा वृन्दावनेश्वरी ।  
 नो चेत् कथं श्रीकृष्णस्य लुठेच्चरणपद्मयोः ॥३०॥  
 एवं भक्तिस्वरूपेयं सीता राधादिरूपिणी ।  
 श्रीस्तदाराधनायुक्ता कथं तत्त्वेन गम्यताम् ॥३१॥  
 प्रिया सत्त्वेऽन्यसत्त्वे च नित्यं सा सुस्थिता प्रभौ ।  
 ऐकान्तिकी सा विज्ञेया छायेवावयवाश्रया ॥३२॥  
 न तां विना कवचिद्रामो दृश्यते भक्तिसंयुतैः ।  
 दृश्यते चेत् स एवैषा सा सुरोभावहारिता<sup>२</sup> ॥३३॥

१. वरस्थिता—रीवाँ, बड़ो० । २. °हारितः—अयो० ।

अथवा विप्रलम्भस्य रसस्यातिभवाय सः ।  
तादृशो भाव्यते भक्तैः स्वेच्छाकृतवियोजनः ॥३४॥

अधुना तु व्रजस्त्रीणामाराधनफलात्मिका ।  
तास्वाविश्य प्रसन्नात्मा रस्यते स्वामिना सह ॥३५॥

आविश्य च तथा स्वामिन्यानन्दमयविग्रहम् ।  
रस्यते व्रजवामाभिर्भूत्वा श्रीरामविग्रहा ॥३६॥

द्वार्तिशच्च सहस्राणि मुख्या व्रजमृगोदृशः ।  
तासां षोडशसाहस्रं स्त्रियो मुख्यतराः स्मृताः ॥३७॥

षोडशैव स्युराभीर्यो यासां वै मुख्यसंज्ञिताः ।  
दश तासां मुख्यतराः यथावदवधारय ॥३८॥

रासचन्द्रा प्रभा श्यामा कला चन्द्रकला तथा ।  
रञ्जितिविद्या चम्पलता चपला माधवी रमा ॥३९॥

तासां मध्ये मुख्यतमं द्वितयं<sup>२</sup> परिकीर्तितम् ।  
यत्राविश्य स्वयं सीता मोदिनीशक्तिरीर्यते ॥४०॥

वृन्दावने ययोरंशौ राधाकृष्णेतिकीर्तितौ ।  
अभूदथान्तराविष्टा सहजानन्दिनी प्रिया ॥४१॥

ततो द्विगुणया कान्त्या रेजे श्रीरामचन्द्रमाः ।  
अन्तर्हितायां सीतायां द्विगुणो द्योतवानपि ॥४२॥

तां कामयानोऽतिशयाद्वभूव स्मरपीडितः ।  
स्मरमार्गणजां पीडां बिभ्रद् दूतोरुवाच सः ॥४३॥

व्रजत स्वामिनीः स्वाः स्वाः संपन्नो वो मनोरथः ।  
ता आनयत रात्रीषु ज्योत्स्नोपेतासु<sup>३</sup> दूतिकाः ॥४४॥

रस्यामि ताभिः कान्ताभिः समेताभिः सहस्रशः ।  
मत्तः कश्चिच्चन्न भविता तासां वै विफलोचकः ॥४५॥

१. °रामाभिर्—बड़ो० । २. द्वितीयं—अयो०, ३. ज्योत्स्नीभूतासु—अयो० ।

सहजानन्दिनीं शक्ति तास्वारोप्य रमाम्यहम् ।  
इत्युक्त्वा भगवान् रामः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥४६॥  
द्वौर्तीर्विसर्जयामास सर्वाः प्राप्तमनोरथाः ॥४७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
त्रिशोऽध्यायः ॥३०॥

•

### एकत्रिंशोऽध्यायः

रामो हि वीक्ष्य शरदागमफुल्लमल्ली-  
वल्लीवनावृतमहीरुह॑ शोभिकुञ्जाः ।  
ता यामिनीः समदकामिजनावकीर्णा  
रन्तुं चिदेकरमणो हि मनश्चकार ॥ १ ॥  
स्वां योगशक्तिमवलम्ब्य कृतप्रयत्न-  
स्तत्तत्पदार्थविभवं सफलं चिकीर्षुः ।  
सच्चित्सुखानुभवरूपरसात्मकोऽपि  
चिल्लोकवासिसुखदोऽनुचकार लीलाः ॥ २ ॥  
पूर्णस्तदा परिदृढोऽभ्युदगादुडूनां  
नाथः स तन्मनस इत्यवदंश्च वेदाः ।  
प्राचीदिशो मुखविलिप्तसकुड़कुमश्री-  
दीर्घाः शुचोऽपि विमृजन् भुवि वर्षणीनाम्<sup>१</sup> ॥ ३ ॥  
दृष्ट्वा प्रभुः कुमुदबन्धुमखण्डबिम्बं  
लक्ष्मीमुखाकृतिधरं नवकुड़कुमात्कम् ।  
भूयः प्रमोदवनमस्य कलानुरक्तं  
रामो जगौ कलपदं सुदृशां मनोज्ञम् ॥ ४ ॥

१. °वनामृतमहीरिह—अयो०, रीवाँ । २. चर्षणीनां—अयो०, रीवाँ ।

आकर्ष्य तन्मुरलिकानुरवं मनोऽभूत्  
 प्रोत्साहवद्धनकरं व्रजवामनेत्राः ।  
 श्रीरामचन्द्रकरमुष्टिनिबद्धचित्ता-  
 दोयुः<sup>१</sup> प्रमोदवनमस्ति स यत्र कामो ॥ ५ ॥  
 कामोद्धता जवविलोलकबर्युदार-  
 केयूरहारमणिकुण्डलमास्यभूषाः ।  
 नद्यो यथा बलविदारितदोर्धशैला-  
 स्ता लोकवेदपथलङ्घनपूरिताशाः ॥ ६ ॥  
 काश्चिद् दुहन्त्य उदिताः<sup>२</sup> परिमुक्तदोहाः  
 काश्चित् पचन्त्य इनतोऽनवतीर्य पाकम् ।  
 काश्चित् पतिप्रियसुतान् परिवेषयन्त्यः  
 काश्चिच्छिशूनथ मुदा परिपालयन्त्यः ॥ ७ ॥  
 शुश्रूषयन्त्य इतरा पतिनामभाजोऽ-  
 इनन्त्यश्च काश्चन जवेन विहाय तत्तत् ।  
 काश्चित्तनौ घुसृणलेपनमाचरन्त्यः  
 काश्चिन्मृजन्त्य इतरा दृशमञ्जयन्त्यः ॥ ८ ॥  
 व्यत्यस्तवलूपसवसनाभरणाश्च काश्चिद्-  
 रामान्तिकं ययुरनङ्गशरौघविद्धाः ।  
 ता वार्यमाणवपुषः पतिभिः सुहङ्कृ-  
 मित्रैः सहोदरजनैः खलु बन्धुभिश्च ॥ ९ ॥  
 श्रीरामवेणुनिनदापहृतान्तरास्ताः  
 प्रेमैकमोहिहृदया नितरां निवृत्ताः ।  
 काश्चिद् गृहान्तरगता अनवाप्न्याना  
 रामं निदध्युरुरभावनिमीलिताक्षाः ॥ १० ॥  
 भूयः सुदुःसहवियोगजतापतमा  
 ध्यानाववलूपपरिरम्भसुखाब्धिमग्नाः ।

१. दीप्र०—बड़ो० । २. कवचिद्...उदितौ—अयो० ।

साक्षात् तमेव परमात्मसुखानुभूति  
 जारेतिभावनजुषोऽपि निवृत्तबन्धाः ॥११॥  
 हित्वा गुणव्यतिकरात्मकमर्त्यदेहं  
 प्रापुः प्रमेयबलतो यतिनामलभ्यम् ।  
 ताः कामिनीनिशि वने विजने समीप-  
 मभ्यागताः स्मरशरात्तहृदोऽपि वीक्ष्यः ॥१२॥  
 ईशः पराशयविदप्यमलेन वाचां  
 वृन्देन मोहमतुलं जनयन्नुवाच ॥

### श्रीराम उवाच

सुस्वागतं व इह दारशिरोमणीनां  
 मत्तः किमोप्सितमिति व्रुवतानुरक्ताः ॥१३॥  
 कश्चिद्द्रव्येषु पशुपालनिकेतनेषु  
 वर्वत्ति वार्त्तमभितो सदुपाश्रयेषु ।  
 तद्वृत यद्विसमये यदिहाभ्युपेता  
 मत्सन्निधौ कुलबधूजनशङ्कनीये ॥१४॥  
 सौन्दर्यवांश्च तरुणश्च सुविग्रहोऽहं<sup>१</sup>  
 किं वः प्रभूतवनविश्वसनक्रियाहं ।  
 एषा निशा भयकरा भयदातिसंख्य-  
 सत्त्वाङ्कृता शशिकरौविशदीकृतात्मा ॥१५॥  
 गोष्ठं प्रति व्रजत नेह च वर्तितव्यं  
 स्त्रीभिः परिस्फुरदुरोजभरालसामिः ।  
 युष्माकमामसुहृदाः पितृमातृपुत्र—  
 भ्रातृप्रियप्रमुखबन्धुगणा विमृग्याः ॥१६॥  
 अप्राप्य वश्च कुलिता<sup>२</sup> भवितार एव  
 तन्मा कुरुध्वमियतीमतिवृत्तिमुच्चैः ।  
 दृष्टं प्रमोदवनमृत्वधिराजजुष्टं  
 पूर्णं निशाकरकरप्रकरावकीर्णम् ॥१७॥

१. °विग्रहश्चसोहं—अयो०, रीवाँ, बड़ो० । २. तामकलिता—अयो० ।

नित्योत्तरङ्गसरयूसलिलानिलौघ-

व्यालोलकुञ्जतरुपल्लवराजिशोभि ।

तस्माद् व्रजं व्रजत मा चिरमत्र साध्व्यः

शुश्रूषत प्रियतमान् बहुमानपूर्णम् ॥१८॥

क्रन्दन्ति वत्सनिवहाः शिशवश्च वस्तान्<sup>१</sup>

स्तन्यान्निदध्वमनुदुह्यत धेनुकानि ।

मत्स्नेहपाशविनिबद्धहृदो भवत्यः

प्राप्नास्तदेतदुपपन्नतरं समन्तात् ॥१९॥

प्रीयन्त एवमपि केऽपि जना विशेषा

येषामहं स्वजनबन्धुधनादिभूमा ।

यद्भूत्त्वं सेवनमकैतवतः<sup>२</sup> स्वधर्मः<sup>३</sup>

स्त्रीणामिति प्रसभमाह च वैदिकोर्गोः ॥२०॥

तर्त्कि प्रबोध्यमितराननुवृत्तिसाध्यं

युष्मासु साहजिकधर्मधिया सतीषु ।

शीलोर्ज्जितोऽपि भगलेशविर्जितोऽपि

बृद्धोऽपि जातजडिमोऽपि सदामयोऽपि ॥२१॥

श्रीनिर्गतोऽपि पतिरेव परायणं स्यात्

स्त्रीणामिति प्रकथनं भवतीषु किं स्यात् ।

स्वर्गापिवर्गकुशलप्रतिकूलभूतं

पूर्वप्रभूतयशसोऽपि विलोपकं च ॥२२॥

दुःसाध्यमस्थिरमतीव भयावहं च

निन्दचं च जारसुरतं कुलकामिनीनाम् ।

भावो मयि श्रवणकीर्तनचिन्तनाद्यै-

रन्यत्र दर्शनमपि प्रकटं भवेत्तः ॥२३॥

किं सन्निकर्षमितरे भुवने लभेयुः

पूर्वाजितैः सुकृतकोटिभिरभ्युपेताः ।

१. वत्सान्—अयो० । २. °ताः स्वधर्मः—अयो० । ३. °तुः स्वधर्मः—रीवॉ ।

तद्यूपमक्षिभिरिदं मम रूपमुच्चै-  
 दृष्ट्वार्पितप्रणयपर्वतभारखिन्नाः ॥२४॥

मोहात् प्रयात् मदनुस्मरणेन तृप्ता-  
 स्तत्रैव वः सुफलमेष्यति गेहधर्मः ।

इत्यप्रियं निजमनोरथविघ्नभूत-  
 माकर्ण्य भूपतिकुमारवचोऽप्रमेयम् ॥२५॥

खिन्नप्रभावमनसोऽतिवियोगतमा-  
 शिचन्तामवापुरुपजातं महार्त्तमोहाः ।

वक्त्राण्यवाञ्च बहुदुःखभरानुविद्ध-  
 इवासानुशुद्धदधराणि विधाय बध्वः ॥२६॥

अड्गुष्टसाग्रचरणेन भुवं लिखन्त्यो  
 वाष्पैः सकञ्जलकणौः कुचलेपमार्गाः ।

तूष्णीं बभूवरथ तन्नयने विमृज्य  
 भूयिठरोचनभरोपहते मृगाक्षः ॥२७॥

रामं तदर्थविनिवर्त्तितलोकवेदाः  
 प्रोचुः सगद्गदगिरः प्रसभं प्रवीणाः ।

### गोप्य ऊचुः

नैवं प्रियो वदति कश्चन सुन्दरेन्द्रो  
 त्वं यद्व्रवीषि वचनं त्वभिलाषशून्यम् ॥२८॥

जानीमहे ननु कथापि सपत्नभावा-  
 दस्मद्द्विषद्वृदयया परिशिक्षितोऽसि ।

क्रूरं वचः कथयता भवता हरिण्यो  
 व्याधोत्तमेन च यथा किममूर्नं विद्वाः ॥२९॥

किं कुर्महे वयमनन्यगतिं प्रपन्ना-  
 स्तत्त्वं न चार्हसि नृशंसतयेति वक्तुम् ।

श्रीरामचन्द्रं चरणाम्बुजमूलमामान्  
 भक्तान् भजस्यविरतं कृपया समेतः ॥३०॥

१०. °रूपज्ञाति—°रीवाँ, बड़ो० ।

त्वं नस्तितिक्षसि तदेतदतीव नाहं  
 देवोत्तमस्य भवतः पुरुषोत्तमस्य ।  
 प्रेयांस्त्वमेव जगतां निजबन्धुरूपः  
 स्वात्मा परायणमतः प्रणयं विदध्मः ॥३१॥

किं पत्यपत्यसुतबन्धुमुहूर्द्धरन्यै-  
 स्त्वय्यात्मनि प्रणयिनि प्रियतास्पदैस्तैः ।  
 किं देहगेहविभवैः परमार्तिभूतै-  
 स्त्वां ये विना निरयशोकभरं जुषन्ति ॥३२॥

त्वं चेत् समग्रमभवः सुखवारिराशोः  
 सर्वस्वमेव यदिदं नखतः शिखाग्रम् ।  
 पूर्वं जहार हृदयं हरिणेक्षणानां  
 हासावलोकनसुधारसलेशदानैः ॥३३॥

श्रीपूर्णचन्द्ररचनावचनैरिदानीं  
 यन्नो निवारयसि तत्तव नैव युक्तम् ।  
 बिस्बाधराश्रयसुधारससेचनेन  
 नो जीवयस्यतनुतापभरेण तृप्ताः ॥४३॥

अस्मान् निजाङ्गिरसरसीरुहमध्ययाना  
 भूयोऽप्यनन्यगतिकाः कतिचिन्मृगाक्षीः ।  
 नो चेद्वयं विरहपावकमध्यभूरि-  
 ज्वालावलीवलितविग्रहभस्मभूताः ॥४५॥

ध्यानेन ते चरणयोः प्रतिविष्टचित्ता  
 भूयास्म योगिन इवात्मनि संविलीनाः ।  
 सीतापते यदि भवन्तमृतेऽन्यसङ्गं  
 स्वप्नेऽपि वाञ्छिति मनोजवशं मनो नः ॥४६॥

तर्हि त्वदङ्गिरितलमब्धिसुतासमेतं  
 सद्यः स्पृहाम निजसत्त्वविशेषधनाय ।  
 यत्ते प्रमोदवननाथ वृतं तुलस्या  
 योगोन्द्रमानसविभूषितराजहंसम् ॥४७॥

तन्नस्त्रिलोकशरणं चरणारविन्दं  
 तापत्रयार्त्तिहरणार्थमुपार्थयामः ॥  
 तस्माद्वयं जनकजारमण त्वयाद्य  
 कार्या अनन्यगतयस्तु निजानुचर्यः ।  
 त्याज्या न कहिंचिदनङ्गखलावसन्ना-  
 स्त्वादृक्कथं न शरणं शरणागतानाम् ॥३८॥  
 एतत्त्वास्यमलकभ्रमरालिजुष्टं  
 मध्यस्फुरन्मकरकुण्डलगण्डशोभम् ।  
 बिस्बाधरं हसितवलगु विलोकयन्त्यः  
 कृष्टाःस्म कामकरमुष्टिनिविष्टचित्ताः ॥३९॥  
 सीताकठोरकुचकुस्भविलिमभूयः  
 काश्मीरकल्करचिरञ्जनमज्जु वक्षः ।  
 भूयो भुजौ च भुजगाधिपभोगभाजौ  
 बिभ्राण एव हृदयं मदयस्यमन्दम् ॥४०॥  
 आकर्णं ते भुवनभूषण वेणुनादं  
 नित्यावरुद्धमकरध्वजमूलमन्त्रम् ।  
 का स्त्री विहाय कठिनानि कुलन्रतानि  
 दासीभविष्णुहृदया न चलेत् त्रिलोक्याम् ॥४१॥  
 गावो मृगाश्च विहगाश्च महीरहाश्च  
 वल्लीवनानि च निर्जन्यनैर्निरीक्ष्य ।  
 स्पृष्ट्वा च तावकवपुर्भुवनाद्वितीयं  
 हर्षोत्करेण विसरत्पुलका बभूवः ॥४२॥  
 त्वं सर्वतस्त्रभुवनार्त्तिसमूहहारी  
 जातोऽसि संप्रति महापुरुषाङ्गुष्टः ।  
 तन्मो निजैकशरणाः करुणां विहाय  
 विक्रीय मन्मथकरे किमु निर्वृतोऽसि ॥४३॥  
 इत्याकलय्य करुणानि वचांसि तासां  
 योगेश्वरेश्वरकिरीटनिघृष्टपादः ।

रामः प्रहृष्य सकलाः व्रजवामनेत्राः  
 स्वात्माश्रयोऽपि निभृतं रमयाज्चकार । ४४॥

ताभिर्युतः स भगवान् कमनीयमूर्तिः  
 पारेपराद्वशतपञ्चशरावतारी ।

रेजे परस्परितकान्तिविशेषजुष्टो  
 मध्ये तमाल इव काञ्चनवल्लरीणाम् ॥४५॥

रामः शरत्समयचन्द्रमसं तदंशु-  
 व्याप्तान्तरं कुमुदकाननमध्यमस्थम् ।

तां कौमुदीं च स जगौ ललनाजनस्तु  
 श्रीरामनाम विविधस्वरयुक्तमेकम् ॥४६॥

गोपीजनैः स्वरभृतैरुपगीयमान  
 उद्गायमान उदितस्वरभृत्स्वयं च ।

गोपाङ्गनाशतकयूथपतिः सजा च  
 श्रीवैजयन्त्यभिधया परिशोभमानः ॥४७॥

श्रीमत्प्रमोदवनमण्डलयोग्यलक्ष्मी-  
 कान्तो व्यरोचत चिरं विचरन् समन्तात् ॥४८॥

ज्योत्स्नामृतप्रविशदं पुलिनं सरवा  
 आविद्य गोकुलनिकेतवराङ्गनाभिः ।

अक्षुब्धधीररमणप्रवराभिकः स  
 निःशेषकोकजकलाकुशलो रमेशः ॥४९॥

उत्सङ्गसङ्गपरिरम्भणचुम्बनास्य-  
 हासावलोकननिर्घण्ठणमर्शनाद्यैः ।

नर्मप्रहाससविलासविकर्षणाभिः  
 संस्तभ्य दीर्घभवला रमयाज्चकार ॥५०॥

ववचित् कुञ्जे शाय्याशतमव'करोद्भूग्रकृतये  
 ववचिद् भूमौ विश्वाधिकरमणमासैककलयन् ।

कवचित् कुञ्जावासा झणलसितकौशल्यकलितो

मनोजस्योत्साहं यदि रुचददौ राघववरः ॥५१॥

एवं तास्तेन लोकोत्तरमदनचमत्कारभूम्ना सुखेन  
रामेण क्रीडयमाना व्रजहरिणदृशो भूरिलीलामनोज्ञाः ॥  
अन्योन्यं लब्धमानाः कलितरतिकला दर्शयन्त्यः स्वकीयं  
प्रावीण्यं भूरि चक्रः किमपि रघुपतौ कामुके दर्पभावम् ॥५२॥  
काचिन्माने रघुर्पति पातयामास पादयोः ।  
काचित्प्रणामयामास मुखमध्यकृताज्जलिम् ॥५३॥  
काचित्संस्कारयामास दासीवन्निजविग्रहम् ।  
काचिदुद्वर्त्यामास लेपयामास काचन ॥५४॥  
काचित्प्रसादयामास केशान् कङ्कतिकाकरा ।  
काचिच्च विततां वेणीं ग्रन्थयामास राघवम् ॥५५॥  
काचिच्च गुरुफयामास कटिभूषणमालिकाम् ।  
काचिन्नियोजयामास प्रसूनावच्ये प्रियम् ॥५६॥  
काचिद्दूषणसंदोहं देहेष्वर्पयितुं हरिम् ।  
काचिच्च कथयामास भां नयस्व वनाद्वनम् ॥५७॥  
सर्वासां वचनं चक्रे जानकीव रघूद्वहः ।  
ताश्च सर्वा ववृतिरे जानकीवत् प्रियोत्तमे ॥५८॥  
अन्योन्यं सुदृढः प्रेमा ववृधे प्रतिवासरम् ।  
ततस्ता मेनिरे दृप्ताः स्वात्मानमधिकं प्रियाः ॥५९॥  
कदाचिद्वाम एकान्ते सीताया रमणेच्छया ।  
तासां संजातदर्पणां भद्ये चान्तरधीयत ॥६०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
रामरासो नाम<sup>१</sup> एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥



## द्वाच्रिंशोऽध्यायः

अन्तर्हिते रसिकनायकशीर्षरत्ने  
 रामे रमारमणमात्ररसाभिरामे ।  
 रामाः प्रभूतविरहार्तिभरे निमग्नाः  
     स्वाङ्गानि वोढुमशकन्नहि तास्तदानीम् ॥ १ ॥  
 अन्योन्यमीक्षणपराः इवसितानिलौघ-  
     चिन्तान्तरस्थविरहानलकीलदग्धाः ।  
 नो किंचनाभिलपितुं स्मरवाणविद्वाः  
     शब्द्या बभूवुरपमृत्युभयात्त्रसन्त्यः ॥ २ ॥  
 रामस्य मन्मथकलारसिकस्य तास्ता  
     लीलाः स्मरन्त्य उरुजातवियोगतापाः ।  
 आभीरिकाः सपदि तन्मयतामवापु-  
     येन प्रियोऽहमिति चेतसि मेनिरेऽमूः ॥ ३ ॥  
 याश्चावलोकहसितेक्षणभाषणादि-  
     ष्वैकात्म्यमेत्य रघुवंशविभूषणेन ।  
 उन्मत्तावत् प्रतिदिनं वनिता विचेषः  
     प्रेमोदयेन विपिनाद्विपिनं विशन्त्यः ॥ ४ ॥  
 कवचिद्वसन्त्यो गायन्त्यो धावन्त्यः क्वापि संहताः ।  
 कवचिदाकाशमालिङ्ग्य भवन्त्यः प्रेमविह्वलाः ॥ ५ ॥  
 कवचिदुच्चैः क्रीडमानाः अन्योन्याबद्धबाहवः ।  
 केचित्परस्परोन्मदैविशन्त्यः कुञ्जमन्दिरम् ॥ ६ ॥  
 इत्येवं सुफलारम्भैर्भ्रमन्त्यो विरहातुराः ।  
 प्रमोदविपिनान्तःस्थान्<sup>३</sup> प्रपच्छुस्ता वनस्पतीन् ॥ ७ ॥  
 भो अश्वत्थ महाबाहो वनस्पतिपते त्वया ।  
 कवचिद् दृष्टो रघुपतिरस्माकं चिरातस्करः ॥ ८ ॥

---

१. °मन्दिरे—अयो०, रीवाँ० । २. °न्तस्थाः—बड़ो० ।

कवचिद्वटतरो देव बहुपादविराजित ।  
 कवचिद् दृष्टो न वा रामो हृत्वा नो हृदयं न्रजन् ॥ ९ ॥  
 भो भो अशोकविटपिन् बहुभद्रकारिन्  
     किंस्वद्वचलोकि भवता रसिकोत्तमः सः ।  
 यस्याङ्गिष्ठाणिमधुराधरकोमलानि  
     जानाति संप्रति परं तव पल्लवानि ॥ १० ॥  
 भो चम्पकद्रुम किमप्यथ पृच्छमान-  
     स्त्वं किं धुनोषि करपल्लवसंघमेव ।  
 पुष्पाणि ते रसिकराधवपुञ्जवस्य  
     पीताम्बरेण सदृशानि विलोकयामः ॥ ११ ॥  
 भो नागकेशर महीरहनागभूत  
     पुन्नाग किन्नु युवयोर्विदितो न वाभूत ।  
 त्रीडा मनांसि खलु नः प्रणयेन रामो  
     विक्षीतवान् मनसिजस्य खलस्य हस्ते ॥ १२ ॥  
 आन्रातक त्वमपि रक्तदलोऽसि नूनं  
     मन्ये कवचिद् रघुवरेण करे गृहोतः ।  
 कच्चित् परोपकरणेऽपि विच्छिन्णोऽसि  
     यन्नाम ते कुरवकेति भुवि प्रसिद्धम् ॥ १३ ॥  
 योऽन्तःप्रभोदवनवासिनि सेवकानां  
     कल्याणकारिणि तुलस्यमरेन्द्रवन्द्ये ।  
 अस्मान्निहृत्य तव देवि पतिः स रामो  
     यातः कवचिन्न विदितो विपिनान्तरेऽस्मिन् ॥ १४ ॥  
 हे आलि मालति महासखि मलिलकेऽस्म-  
     च्चित्प्रसादनपरे नवजातिवलिल ।  
 अस्मानिव प्रियतरो वत राघवेन्द्रो  
     युष्मानपि व्यथितवान् विरहं प्रदाय ॥ १५ ॥  
 भो भो तमालविटपिन् बहुधासि दृष्टः  
     किं पृच्छनीयमसकृद्गवते वतेदम् ।

यद्राघवेन्द्रजलदोत्तमसंगमेन

जातोऽसि मेचकवपुः कपटैः प्रवृद्धः<sup>१</sup> ॥१६॥

पनसद्रुम कस्मात्त्वमस्थाने फलितोऽसि भोः ।

जानीमहे राघवेन्द्रसंगात् संजातसंभ्रमः ॥१७॥

रसाल भवतो रम्या मज्जरीः शिरसा दधत् ।

कौशल्यानन्दनः कान्तः क्व यातस्तद्वदस्व नः ॥१८॥

पीलुप्रियालमधुकासननागरञ्ज-

श्रीरामपूर्णतरुतालकदम्बसालाः ।

कच्चिद्वनेऽत्र विचरन् जनकात्मजेशो

दृष्टो न वा हृदयहारकतस्करो नः ॥१९॥

धन्ये प्रमोदवनसंततशोभमाने

हे नर्मदे सरथु हे सखि सूर्यकन्ये ।

कामोद्धतस्तव तटान्तनिरीक्षणोत्कः

श्रीरामचन्द्ररसिकोऽत्र किमभ्युपेतः ॥२०॥

मातः प्रमोदवनशोभिनिकुञ्जभूमे

किनु त्वदीयसुकृतं वयमीरयामः ।

रोमाञ्जिवतासि नवशाद्वलकैतवेन

रामाञ्जसञ्जसुखिता प्रणयोत्करेण ॥२१॥

हे कृष्णसार ललना न भवादृशीना-

मस्मत्सखी<sup>२</sup>समुचिता ननु वृत्तिरेषा ।

एकान्ततो<sup>३</sup>यदसकृद्धिपुलैः कटाक्षैः

कान्तं प्रपश्यथ वधूजनवज्जिचशीलम् ॥२२॥

सख्यो लता न भवतोषु कृतः स्वबुद्धया

शाखाशार्तैर्विटपिभिः परिरम्भ एषः ।

उद्वीक्ष्य किनु विकसत्कुसुमाक्षिरन्धैः

कान्ताकुचग्रहपरं रसिकेन्द्ररत्नम् ॥२३॥

१.०. सनद्धः—रीवाँ, सवृद्धः—बड़ो० । २. सुखी<sup>१</sup>—रीवाँ, बड़ो० । ३. यदि—रीवाँ, बड़ो० ।

जानोमहे बहुलसौरभसारिलिङ्गा-  
 देतास्युपाय॑ पदवीं खलु राघवेन्द्रे॒ ।

तस्य प्रियाकुचविलिप्तसचन्द्रसार-  
 कालागुरुद्रवगुणैरिह भाति वायुः ॥२४॥

एताः३ प्रभोदवनवल्लय एव धन्या  
 या दूतिकाभिरलिनीभिरुपात्तमन्त्राः ।

श्रीराघवेन्द्रविलसत्तनुसज्जिनीभि-  
 वाञ्छन्ति भोगमतुलं वयमेव यद्वत् ॥२५॥

रे भूरुहाः कथयत व्व गतः स चौरः  
 श्यामः सुतीक्षणनयनेषुधिपूर्णबाणः ।

प्राप्येत चेत्प्रणयरज्जुशतेन बद्धवा  
 स्थाप्योऽधुना निजनिकेतन मध्य एव ॥२६॥

एवं प्रियं विचिन्वन्त्यो गोप्यो विश्लेषभीरवः ।

अपश्यन् भूरिशः पत्युः पदानि विपिनान्तरे ॥२७॥

ता रेखयोर्धर्वगामिन्या उच्चैर्वज्राङ्कुशादिभिः ।

विज्ञाय वल्लभस्यैव प्रोचुर्वचनमादरात् ॥२८॥

तस्यैव तस्करेन्द्रस्य पदान्येतानि कानने ।

शङ्खचक्राम्बुजाद्यङ्कैरङ्कितानि प्रपश्यत ॥२९॥

दक्षिणस्य पदोऽङ्गुष्ठमूले चक्रं विराजते ।

अस्मादृशीनां नम्राणामङ्गोच्छेदनैहेतवे ॥३०॥

मध्यमाङ्गुलिमूले॒ तु भाति कमललाज्जनम् ।

अस्मच्चित्तद्विरेफाणां लोभनायातिशोभनम् ॥३१॥

पद्मस्याधो ध्वजं भाति सर्वानिर्थजयध्वजम् ।

कनिष्ठामूलतो वज्रं भाति पापाद्रिभेदनम् ॥३२॥

पाण्डितमध्येऽङ्कुशो भक्तचित्तेभवशकारकः ।

भोगसंपन्नयं६ धत्ते यवमङ्गुष्ठपर्वणि ॥३३॥

१. देत्तामिपाप०—अयो० । २. राघवेन्द्रः—अयो० । ३. एषा—रीवौ० । ४. नः  
 प्राणां षट् वगौक्षिति०—अयो०, न प्राणां षड्गोक्षेदनै॒-रीवौ० । ५. मूलं—अयो०, रीवौ० ।  
 ६. संपन्नयं—अयो०, रीवौ० ।

अथ वामपदाङ्गुष्ठमूलभवतोन्मुखं दरम् ।  
 सर्वविद्याप्रकाशाय दधाति भगवानसौ ॥३४॥

पद्मादीन्यपि चिह्नानि दृश्यन्ते दक्षपादवत् ।  
 'एतत्पदानुसारेण गवेष्यो रघुनन्दनः ॥३५॥

अत्रैव कानने कवापि प्रियथा सह वर्तते ।  
 इत्युक्त्वा<sup>१</sup> गोपवद्धवस्तास्तत्पदानुसृतिं क्रमात् ॥३६॥

अन्वयुः सान्द्रविधिने समस्ता विरहातुराः ।  
 प्रियापदैः सुपृक्तानि तत्रैक्षन्त व्रजाञ्जनाः ॥३७॥

मध्य एवाविरभवत् कासौ धन्यतमा वधूः ।  
 अंसे विन्यस्य दोर्वल्लीं सह गच्छति यामुना ॥३८॥

इयं हि सहजानन्दकेलीनिर्वृतमानसा ।  
 अस्मान् हित्वा यदासक्तः क्रीडते व्रजवल्लभः ॥३९॥

सहजानन्दनी नाम शक्तिरेष्व कामिनी ।  
 सा वल्लभमनाश्रान्तं रमयत्यनुरागिणी ॥४०॥

परस्परासक्तबाहुदण्डाभ्यां विधिपूर्वकम् ।  
 अत्र विक्रीडितं ताभ्यां भ्रमणाक्रीडनाभिधम् ॥४०॥

अत्र भूषासमारोपः प्रियायाः प्रेयसा कृतः ।  
 परस्परं संमुखस्थौ दृश्येते ललितैः पदैः ॥४२॥

अत्राभ्यां रचिता केलिः पुष्पावचयनाभिधा ।  
 विना पार्षिणतलन्यासं पदान्येतानि पश्यत ॥४३॥

अत्र स्थित्वा कृतास्ताभ्यां विचित्राः कुसुमस्रजः ।  
 स्वं स्वं चातुर्यविभवं दर्शयद्दूचां परस्परम् ॥४४॥

अत्र प्रियेण प्रेयस्याश्चक्षुषो रञ्जनं कृतम् ।  
 स्पष्टं<sup>२</sup> पञ्चेरहां पत्रं<sup>३</sup> प्रोज्जनैर्मलिनीकृतम् ॥४५॥

अत्र प्रियः स्वप्रियायै प्रादात्ताम्बूलवीटिकाम् ।  
 चूर्णं<sup>४</sup> खदिरसारं च दृश्यतां पतितं भुवि ॥४६॥

१. अथवा यत्पदा—अयो० । २. इत्युक्ता—अयो०, रीव॑० । ३. पृष्टं—रोव॑० । ४. यत्र—बड़ो० । ५. चूर्ण—अयो०, रीव॑० ।

अत्राभ्यां रचितं सौख्यं मन्मथोत्सवदायकम् ।  
 पद्मपत्रमयी शश्या व्यत्यस्ता दृश्यते स्त्रियः ॥४७॥  
 अत्र प्रियाभिरुच्यैव प्रेयस्या पुरुषायितम् ।  
 दृश्यतेऽन्तः प्रियवपुः परितः प्रेयसीपदे ॥४८॥  
 स्त्रस्तानि नवपुष्पाणि विग्रन्थिकबरान्तरात् ।  
 अहो हारलता भग्ना विकीर्णा मणयोऽमलाः ॥४९॥  
 तां कोमलाऽधिकमलाभिह खिद्यमाना-  
 मंसे निधाय दयिताभिह नीतवान् सः ।  
 नातः परं परिलसन्ति पदानि यस्याः  
 स्वाधीनतागुणवशीकृतवल्लभायाः ॥५०॥  
 धन्याः परं युवतयो रघुनन्दनस्य  
 भर्तुः पदाम्बुरहसंभवरेणवोऽमी ।  
 यां पद्मयोनिरघहन्यव ईश्वरश्च  
 सूर्द्धना दधाति कमला च नितान्तभक्ता ॥५१॥  
 यां कामुको रसितवानितरां विहाय  
 भूयो वियोगभरकालदवाग्नितप्ताः ।  
 सात्मान॑ सभ्यधिकमानममंस्त सम्यक्  
 स्त्रीणां निजायनजुषां प्रमदेतरासाम् ॥५२॥  
 भूयोऽन्नवीच्च खलु सा प्रिय पारयामि  
 नो गन्तुमध्वनि निकुञ्जविशीर्णपर्णे ।  
 आरोप्य संप्रति निजांसमितो नयेत्वचे-  
 त्युक्तः प्रियश्च सहसा विदधौ तथैव ॥५३॥  
 ततोऽन्तरितवान् रामः सहजानन्दविग्रहः ।  
 तस्यै निजवियोगोत्थां वेदनामनुभावयन् ॥५४॥  
 ततस्तु ताः पद्मदृशः समस्ता यावद्रहस्यं दयितस्य मत्वा ।  
 नामे प्रवृत्ताश्चलितुं साऽपि तावत् प्रियोत्तमाभिर्दृशे प्रेयसीभिः ॥५५॥

प्रियस्य विश्लेषभरेण खिन्ना शून्यादिशशक्तिं वीक्ष्यमाणा ।  
 पुनः पुनः स्वल्पदुरात्मभावं दर्पं च संचिन्त्य विलज्जमाना ॥५६॥  
 हा नाथ हे रमण सुन्दरवर्यधर्य ! प्रेष्ठ प्रिय प्रियतम् प्रणयाभृताव्ये ।  
 दासीं विहाय ननु मां निविडे निकुञ्जे क्वासीति दीनवचनैरनुनाथमाना ॥५७॥  
 सा तान् व्रजाभीरवधूसमूहानापृच्छमानान् स्वपतेरुदन्तम् ।  
 सर्वस्वहेतुं कथयाऽचकार श्रीः स्वस्य सानं च तथावमानम् ॥५८॥

तयोक्तमाकर्ष्य मृगीदृशस्ता जरमुः परं विस्मयमात्रहासाः ।  
 तया समेताइच पुनस्तथैव वियोगभारव्यथिता बभूवुः ॥५९॥  
 उन्मत्तवत्तत्र वनाद्वनान्तरं गवेषयन्त्यो रघुनन्दनं प्रियम् ।  
 तद्ध्यानतस्तन्मयतामवाप्य तास्तस्यैव लीलां व्यदधुः परात्मनः ॥६०॥

कस्याश्चिद्राक्षसीयन्त्या रामायन्त्यपिबत्स्तनम् ।  
 खट्द्वायन्तीं परामन्या तोकायित्वा पदाहनत् ॥६१॥  
 दैत्यायन्ती परा काचित् कृत्वारामार्भभावनाम् ।  
 जहार जानुसंमर्देरिङ्गन्तीं नूपुरस्वनैः ॥६२॥  
 रामायन्ती बभूवान्या गोपायन्त्यइच्च काश्चन ।  
 सर्पायन्तीं खगायन्ती जघान निजविक्रमैः ॥६३॥  
 वेणुं कवणन्तीमन्या तु काचिच्चानुजगौ स्वरैः ।  
 रामायन्त्याजुहावान्या नाम्नान्यां धेनुकायतीम् ॥६४॥  
 तत्रैका लक्ष्मणायन्ती भरतायन्ती तथा परा ।  
 शत्रुघ्नायन्त्यथो काचिद्रामेन्दुं परिवृते ॥६५॥  
 अन्या माङ्गल्यकायन्ती गवेन्द्रायन्त्यथोऽपराः ।  
 रामायन्त्यभिशुशुभे व्रजे तं मातरौ यथा ॥६६॥  
 मार्भेसुरिन्द्रकोपेन त्राताहं ननु राघवः ।  
 वर्षतुः प्रलयासारा इत्युक्त्वा निवधेऽम्बरम् ॥६७॥  
 शुचौ पश्यत गोपाला दावाग्निं विश्वतोमुखम् ।  
 चक्षुंष्यपि दधध्वं चेत् क्षेममाप्तुमिहेच्छथ ॥६८॥

इत्युक्त्वा राममात्मानं मत्वा कोरकितानना  
पपौ निमेषमात्रेण सर्वानाइवास्य पावकम् ॥६९॥

काचिद् भुजङ्गमायन्त्याः कस्याश्चिन्मस्तकेऽनट्ट ।  
समुद्रं गच्छ दुष्टाहे भाषमाणा रुषारुणा' ॥७०॥

काचिद्दाम्ना बबन्धान्यां द्रुमायन्त्याइच मूलतः ।  
सा च तां पातयामास स्तुवन्तं विविधैः स्तवैः ॥७१॥

एवं तन्मयतामेत्य तल्लीला व्यदधुः क्रमात् ।  
गवेषयन्त्यो विषिनाद्विषिनान्तरभाययुः ॥७२॥

यावद्वन्नलताकुञ्जे चन्द्रज्योत्स्ना न दृश्यते ।  
ततोऽन्धकारगहनं वनं वीक्ष्यातिगह्यरम् ॥

सर्वा निवृतुस्तस्मात्पृच्छत्यमाना लताद्रुमान् ॥७३॥

तमेव कान्तं मनसि स्मरन्त्यस्तमालपन्त्यइच बहिः समक्षम् ।  
तस्यैव चेष्टा विदधन्त्य उच्चैस्तदात्मिका नात्मगृहाणि सस्मरः ॥७४॥

पुनर्निवृत्ताः पुलिने सरव्वा यत्र प्रियेणाभिरता पुराभूः ।  
समेत्य सर्वाः स्वरमूर्च्छनाभिर्जगुर्यथा किञ्चरवर्यवधवः ॥७५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
रामरासो नामैद्वार्तिशोऽध्यायः ॥३२॥



## त्रयख्निशोऽध्यायः

### गोप्य ऊचुः

जयति प्रिय जन्मभूता भवता सरयूतटभूमिरुदञ्चशुभा ।  
त्वदुदारमुखेन्दुविलोकनजं परिदीव्यति यत्र मुदां प्रसरः ॥ १ ॥  
अथ चेद्बहुलार्तिरहास्ति पते भवदेकपरास्वबलासु भृशम् ।  
रघुनन्दन सापि परं भवता परिहार्यतमा स्मितपूर्वदृशा ॥ २ ॥

१. हसारुणा—रीवाँ, बड़ो० । २. रामरासे—अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

अथ याध्वसहस्रं वियोगभवा प्रिय नार्त्तरसौ हियते भवता ।  
 तदिहैष्यति संततमुज्ज्वलतः करुणारस एव कठोरतरम् ॥ ३ ॥  
 प्रलयाभ्रगणाद्द्वववह्निभरात् पवनप्रचयाद्विविधारिभयात् ।  
 परिरक्षितवानसि नः प्रणयिन् विरहार्त्तमहाभयभोगकृतः ॥ ४ ॥  
 अपि पद्मभवादिभिरर्थित इत्युदयत्वमितोऽसि ककुत्स्थकुले ।  
 धरणीभरसंहरणाय तथा निजभक्तजनामितदुःखकृते ॥ ५ ॥  
 तदिदं स्वजनाभयदानदृढं सकलेप्सितपूरणकल्पतरुम् ।  
 निजपाणिमिमं पुरुषोत्तम नः शिरसि प्रणयेन निधेहितमाम् ॥ ६ ॥  
 अयि वीरवर व्रजवल्लभ हे रघुवंशविभूषण चारुमते ।  
 निजदास्यकरीर्भज सुन्दर नः प्रियदर्शनचारुमुखाम्बुरुहम् ॥ ७ ॥  
 भुवनत्रयसंततापहरं जनपापहरं कमलासदनम् ।  
 चरणाब्जयुगं कुरु वक्षसि नः शमय स्मरदुर्जयवाणरुजम् ॥ ८ ॥  
 तव दर्शनसंगमसंस्पृहिता सुमहार्त्तकरा विरहादधुना ।  
 हृदि संमयिताः रघुनन्दन नः कृपयाधरसिन्धुसुधाभिन्दवैः ॥ ९ ॥  
 रुचिरस्मरण प्रिय संप्रति नस्तव दिव्यकथामृतमेव गतिः ।  
 विबुधेश न चेद्विरहाण्नभरो भसितोत्तरकं कलयेन्न किमु ॥ १० ॥  
 रघुनाथ भवत्परिरम्भभुवः प्रभुदः स्मृतिमात्रमिता अधुना ।  
 व्यथयन्तितमां हृदयानि न नः प्रतिकूलतया खलु चित्रमिदम् ॥ ११ ॥  
 मृदुलेन पदाब्जयुगेन भवान् यदि नाथ निकुञ्जवनेष्वटसि ।  
 तदिहेहि कठोरतृणाड्कुरकैर्भृशमर्द्यत एव मनः खलु नः ॥ १२ ॥  
 विलुलत्<sup>१</sup> कुटिलालकजालवृतं अमरीणसेवितमब्जमिव ।  
 स्मृतिमेति यथा तव नाथ मुखं भवतीव तथा व्यथितं हृदयम् ॥ १३ ॥  
 कमलाकरसेवनभाजनकं तव चारु पदाब्जयुगं जयति ।  
 स्तनकोरकयोः कृतमात्रमथो खलु यत् स्मरदुःखहरं भवति ॥ १४ ॥  
 विरहज्वरसंभवतापहरं विषमेषुभवव्यथनाशमनम् ।  
 अधरामृतसीधुरसं रुचिरं रघुदेव वितीर्य सुखं वितर ॥ १५ ॥

यदुदारमनर्थ्यभवद्वदनं प्रविलोक्य रसोढतमो निमिषः ।  
 अधुना तदनेकदिनान्तरितं स्तवगम्य धिगस्तु दृशौ सुदृशौ ॥१६॥  
 पतिपुत्रसहोदरबन्धुसुखं स्वजनं परिहृत्य जवात् स्वमितः ।  
 अबलाः प्रबलात्मभुवा ग्रथिताः क उदार जहातु भवन्तमृते ॥१७॥  
 तदनेकरहस्यकथावसरे परिरस्भरसाकुलमात्ममुरः<sup>१</sup> ।  
 तव कान्त तमालसमप्रतिमं स्मरतीः किमु मूर्छ्यसे वत नः ॥१८॥  
 मृदुलोपलवत् कठिमानमिमं कुत एव भवानसि शिक्षितवान् ।  
 यदिमाः स्वगतीरिह नाक्षिकलाकलनादवसि न्रजवामदृशः ॥१९॥  
 भवतो वपुरञ्जशिरीषमृदुस्पृहया कठिनेषु कुचेषु यथा ।  
 कलयाम तथा भयमेति मनः पुलकाङ्गकुरकण्ठरुगञ्चतु मा ॥२०॥  
 स भवान् विजने विषिने निशि नः प्रविधाय खलु स्मरहस्तगताः ।  
 अवधि गतवानसि किं नितरामितरां भजमान उदारमनाः ॥२१॥  
 अथ धन्यतमा खलु सा रमणी रमणीनिवहादपकृष्य वने ।  
 विजनेऽत्र भवन्तमतिप्रणयं प्रिय नीतवती बहुसाहसिका ॥२२॥  
 अयि धूर्त्तधुरन्धर धीरमते विलपन्तमिमं रमणीनिवहम् ।  
 नयनेन निभालयसे न कथं कलयम्पि सन्तमघे रमणम् ॥२३॥  
 प्रणयेन पुरा खलु यामनयो विलपत्यति सापि सहैव चिरम् ।  
 प्रणयिन्यबलेयमितोप्यपरा प्रिय कास्ति भवत्सविधे रमणी ॥२४॥  
 नहि तत्र भवान् विजनेऽस्ति परं स्वयमेव नरेन्द्रकुमारमणे ।  
 न खलु क्षणमप्यसि केलिकलारहितोऽखिलकोककलैकपटुः<sup>२</sup> ॥२५॥  
 अथ या भवदञ्जसुसञ्जकरी त्वितरैव विभाति रमा खलु सा ।  
 नहि नाथ तया रहितोऽस्ति भवान् नहि सा सहते विरहं क्वचन ॥२६॥  
 वयमीशा तथा तव संगमने प्रिय विघ्नलवं कलयाम कदा ।  
 युगलं खलु तद्वतोः सुचिरं व्यतिभातु विशेषविलासकरम् ॥२७॥  
 तनुकान्तिरिव प्रथिता भवतः प्रियसञ्जम एव सदा वसतु ।  
 इत एव भवत्वनिशं भवते ह्यबलाजनदुःखभरो विदितः ॥२८॥

१. प्राप्तमुरः—रीवाँ, पातमुरः—अयो० । २. °रुतैकपटुः—रीवाँ ।

अपि नोदय तं सृहणीयुगणे भवती परिवेतु दशां खलु नः ।  
 अथवा विदितेदृशद्वःखदशा किम् वेत्स्यति नित्यविलासपरा ॥२९॥  
 स्वजनेषु तथापि परां करुणां परिपालय लोकपतेर्महिषी ।  
 निजनित्यविलासयुतं दयितं परिदर्शय नो नयनोत्सवदम् ॥३०॥  
 जनकस्य जगत्प्रणयैकजुषः करुणारसकोमलितात्महृदः ।  
 तनया भवतीति मनांसि च नः खलु विश्वसितं भवति त्वधुना ॥३१॥  
 इह वां सुरतान्तधृतश्रमयोर्मनुवारिकणाञ्जितविग्रहयोः ।  
 सुखदायि पटुः परिरम्भकरः परिवाति मरुद्धुभाग्यभृतः ॥३२॥  
 असकौ ननु सौरभसारभरः परिवाति मुहुर्मरुताकलितः ।  
 यदिहोदयते कलकलपलतायुतमल्पतरोरधिकः पटिमा ॥३३॥  
 अयि वामविधे व्रजवामदृशां कलयिष्यति भूरि कदा नु भवान् ।  
 सहजं सहजेन मनोत्सवदं युगलं खलु दम्पतिभावयुतम् ॥३४॥  
 रघुनन्दन दर्शनदानकृते मुनयेऽत्रिसुताय नमोऽस्तु च नः ।  
 पुनरेव नमोऽस्तु रघूद्वह ते वरदाय निजात्मवरोत्तम हे ॥३५॥  
 पुनरेव नमोऽस्तु वधूमणये निभिवंशमहोत्सवदायिदृशे ।  
 इतराभ्य इदं खलु दत्तवती प्रणयेन धनं स्वरहस्यमपि ॥३६॥  
 त्रिजगल्ललनौघशिखामणये पुनरेव नमोऽस्तु नमोस्तु च नः ।  
 सहजात्मसुखाकृतये सहजासहजात्मचिदाकृतये हृतये' ॥३७॥  
 सहजाभिषीरतिरात्मसुखा प्रभदा पुरुषां जगेदकजनिः ।  
 अथ चिल्लतिकापि च चिन्निधिरित्यवगच्छ नवात्मकनाम मनः ॥३८॥

श्रीमार्या मदना सरस्वतिपरा तारात्रया पद्मजा  
 त्रैलोक्येश्वरवृहिताङ्कसदनस्था सच्चिदानन्दिनी ।  
 पञ्चात्मा निखिलप्रपञ्चरचनाचातुर्यगा तुर्यगा  
 तुर्यातीतकला परावरतरा सीता सिता चासिता ॥३९॥

इतिबहुविकलवातुरहृदो व्रजवामदृशः  
 प्रसभतरं विलप्य करुणास्मरवाणरुजा ।

वत वत संभ्रमेण बहुवीक्षितशून्यदृशः ।  
सुभगतरस्वरेण रुदुर्विजने विपिने ॥४०॥

इति श्रीमद्भाद्रिमायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामरासो  
नाम<sup>१</sup> त्रयस्त्रिशोऽध्यायः ॥३३॥



## चतुर्थिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तत आविरभूद्रामस्तासां विरहकातरः ।  
वामभागसमासक्तसीतालिङ्गितविग्रहः ॥ १ ॥  
मधुराननसंशोभिकोटिचन्द्रोज्जवलस्मितः ।  
तडिकान्तिचमत्कारिपीताम्बरसमावृतः ॥ २ ॥  
नवीनपुष्पग्रथितां पञ्चवर्णस्त्रजं दधत् ।  
अनेकरत्नसंजुष्टहेमचन्द्रावतंसकः ॥ ३ ॥  
संभ्रान्तपञ्चहस्ताभिस्तडिदुज्जवलकान्तिभिः ।  
सम्पन्ननिष्ककण्ठीभिः इयामाभिः शुभदृष्टिभिः ॥ ४ ॥  
रत्नाकल्पमनोज्ञाभिः कान्तपीयूषवृष्टिभिः ।  
सहस्राधिकरामाभिः संसेवितकुभाननाम् ॥ ५ ॥  
कल्याणकारिणीं दिव्यां दिव्यकेलिविभूषिताम् ।  
निजवामांससंसक्तां सहजानन्दलिपिणीम् ॥ ६ ॥  
वामभागे प्रियां रामो जुषमाणः सुलोचनः ।  
कस्तूरीतिलकोपेतपूर्णभालस्थलप्रभः ॥ ७ ॥  
प्रेमासवरसास्वादपूर्णमानहुन्मदः ।  
वामाक्षिहृदयोल्लासकारिवीक्षणकारकः ॥ ८ ॥  
महामारकतोद्योतिमयूराकृतिकुण्डलः ।  
दिव्यचूडासमावद्धमल्लीमाल्यमनोहरः ॥ ९ ॥

१. रामरासे—अयो०, रीव०, बड० ।

रत्नकेयूरसुभगबाहुद्वयविराजितः ।  
 रत्नहारमनोहारिविशालसदुरस्थलः ॥१०॥  
 रत्नकाञ्चीगुणाबद्धकटिवस्त्रविभूषितः ।  
 निम्ननाभिहृदोदग्रवलित्रयविराजितः ॥११॥  
 वामपादसमाक्रान्तदक्षपादप्रियाकृतिः ।  
 त्रिभङ्गीललिताश्यामवामकामदविग्रहः ॥१२॥  
 लसन्नपुरमज्जीरकिञ्चिणीपादपञ्चजः ।  
 नासाग्रमिहितोत्तुञ्जनवमौक्तिकमञ्जुलः ॥१३॥  
 ताम्बूलीदलसंस्तिरधरजिताधरपल्लवः ।  
 पुरुषायितकामिन्या क्रीडोचितलसद्वपुः ॥१४॥  
 अदमश्रुचिबुकोन्नद्वतिलविन्दुविराजितः ।  
 महिलाजनदृग्भङ्गीयमानमुखासवः<sup>१</sup> ॥१५॥  
 भूयः षोडशवर्षेण वयोभाधुर्यमंजिभा ।  
 नित्यलीलाचमत्कारि<sup>२</sup> श्रीविग्रहविराजितः ॥१६॥  
 तं वीक्ष्य गतिमात्मानं प्रणयोल्लासिलोचनाः ।  
 सर्वास्ताः सहसा तत्र समुत्तस्थुर्मृगीदृशः ॥१७॥  
 देवतास्तत्त्वरूपिण्यो यथापूर्वमचेतनाः ।  
 चैतन्यमुपलभ्याथ प्रविष्टे तु परात्मनि ॥१८॥  
 काचित् तदीयकरपञ्चजमञ्जुलस्थे  
     कृत्वा सुखेन निदधाति निजे कपोले ।  
 काचिच्च यंगमयते नयनद्वयेन  
     काचिच्च वक्षसि च नाभिहृदे च काचित् ॥१९॥  
 काचिच्च तस्य भुजदण्डमहीन्द्रभोग-  
     श्रीखण्डवृक्षविटप्रतिमं गृहीत्वा ।  
 असे दधाति च कापि च मूर्द्धिन कापि  
     काचित् सहर्षमुपगृह्य<sup>३</sup> जहाति पापम् ॥२०॥

१. °सुखासवः—मथु०, बड़० ।

२. चमत्कारी—रीवॉ, बड़० ।

३. °गृह्य—अयो० ।

ताम्बूलचर्चावितकमज्जलिना च काचिद्  
 गृह्णाति तन्निपतदर्ढपथे<sup>१</sup> निरुद्ध ।  
 काचित् तदडंग्रिकमलं विरहज्वरेण  
 संतापिनि स्तनयुगे निरुद्धाति तन्वी ॥२१॥  
 अन्या च काचन<sup>२</sup> निमेषविवर्जिताभ्यां  
 दृभ्यां प्रियस्य वदनाम्बुरुहं पिबन्ती ।  
 नैवाद्य तृमिमबला सुखसिन्धुमरना  
 चित्रार्पितेव विटपाश्रयिणी बभूव ॥२२॥  
 काचित् तमीक्षणपथेन हृदि प्रविश्य  
 नेत्रे निमील्य पुलकौघविसंस्थुलाङ्गी ।  
 दोभ्यां दृढं समवगृह्य निबद्धमौना  
 योगीव चित्सुखमहोदधिनिर्वृतास्ते ॥२३॥  
 काचिन्मनोजधनुषा भृकुटिद्वयेन  
 संयोज्य तीक्षणविशिखान् कुटिलान् कटाक्षान् ।  
 दृष्ट्वा रुषेव दशनैर्दशनच्छदं स्व-  
 मैक्षिष्ट कान्तमतुलप्रणया छन्तीव<sup>३</sup> ॥२४॥  
 अन्ये सुवर्णलतिकेव रुचा स्फुरन्त्यौ  
 तस्यांसयुगमवलम्ब्य विरोचमाने ।  
 तत्र प्रमोदवनदिव्यतमालकान्ति-  
 मत्यद्भुतां पुपुषतुः प्रभयानुरूपे ॥२५॥  
 काचित् तदोयममलं<sup>४</sup> मुकुरायमानं  
 स्वच्छं कपोलतलमुत्प्रणया चुचुम्ब ।  
 अन्या तदक्षियुगलं रदनच्छदाभ्यां  
 ताम्बूलिकादलरसैरनुरज्यमानम् ॥२६॥  
 एका तदोयमधरं भधुरं सुधायाः  
 संस्थानमन्दिरमिवापिबदाननेन ।

१. °पतदूर्ध्वं—अयो, रीत्रौ । २. का क्षण°—अयो० । ३. ब्रतीव—अयो० ।

४. °मतनोर्—अयो०, अचलोन्—बड़ो० ।

अन्या मदेन परिरभ्य निवृत्तलज्जा  
 स्वानन्दसिन्धुरसवीचिषु निर्ममज्ज ॥२७॥  
 इत्थं रमण्यस्ताः सर्वाः प्रियदर्शननिर्वृताः ।  
 संतापं विजहुर्यद्वृतप्राप्यानन्दमयं जनाः ॥२८॥  
 भूयस्तदञ्ज्ञसज्जिन्यै सच्चिदानन्दशक्तये ।  
 पश्यन्त्यस्तदभेदेन नाभ्यसूयन् मृगीदृशः ॥२९॥  
 एषास्य सहजानन्दशक्तिर्लोलाविनोदिनो ।  
 नानारसासवावासा प्रमोदविपिनेश्वरी ॥३०॥  
 एषा श्रीः सततं चास्य पुरुषस्य महात्मनः ।  
 यामाद्यां सहजां शक्तिं मुनयः संप्रचक्षते ॥३१॥  
 प्राप्स्यामो भूरिदौर्भाग्यमनया रहिता वयम् ।  
 प्रियोऽपि नास्मत्सविधे संस्थास्यत्यनया विना ॥३२॥  
 अहो चन्द्रमसः सेयं चन्द्रिकेव विराजिता ।  
 कोर्थोऽनया विनास्माकं दासीनां प्रभुतुल्यया ॥३३॥  
 वयमेनां समाराध्य कामदां कामयामहे<sup>१</sup> ।  
 पुत्रीं जनकराजस्य प्रमोदविपिनेश्वरीम् ॥३४॥  
 जय देवि<sup>२</sup> महाराजि यासि त्वन्नः परानिधिः ।  
 नित्यं परिचरिष्यामस्त्वां वयं दासिका इव ॥३५॥  
 ततोऽनयाभ्यनुज्ञाताः समस्तास्ता मृगीदृशः ।  
 व्यरुचन् परितस्तस्य चन्द्रस्योडुगणा इव ॥३६॥  
 सोऽपि ताभिर्विनिर्धूतविरहामलकान्तिभिः ।  
 स्वशक्तिभिः समग्राभिः शुशुभे पुरुषोत्तमः ॥३७॥  
 यूथव्यूहं समादाय वासदक्षिणयोविभुः ।  
 सरय्वाः पुलिनं रामः प्राविशत् केलिकाम्यया ॥३८॥  
 नित्यं विकसितानन्तदिव्यानेकसुरद्रुमम् ।  
 गुज्जद्भ्रमरसंघृष्टनिकुञ्जललिताङ्गणम् ॥३९॥

१. सह—अयो० । २ देवमहा०—अयो० ।

वीचीभुजसमास्तीर्णकोमलस्वच्छवालुकम्	।
उपर्यस्तीर्णवनितावेषचन्द्राच्छचन्द्रिकम्	॥४०॥
मन्दारविपिनान्दोलसुरभ्यनिलसेवितम्	।
रत्नवेदीसमुत्थांशुसंव्याप्तिगगनान्तरम्	॥४१॥
उद्गचत्पञ्चमालापविकस्वरपिकस्वरम्	।
राजहंसवधूवृन्दानुकृतप्रभदागणम्	॥४२॥
नानारतिरहस्योत्थशब्दचाटुशुकीरवम्	।
उद्गतानन्दकन्दर्पसपर्यथोग्यसंविधम्	॥४३॥
प्रियेण तास्तत्र समेत्य निर्वृतास्तदाननालोकसुधात्तभोजनाः <sup>३</sup> ।	
विधूतविश्लेषरुजो मृगीदृशो निकाममापुः सकलान् मनोरथान् ॥४४॥	
निजोत्तरीयैः कुचकुम्भलेपितश्रीखण्डचन्द्रागुरुकुड्कुमाङ्कितैः ।	
अरीरचन्द्रभुत <sup>३</sup> लीलनोत्सुका प्राणेश्वरायातिमहार्हमासनम् ॥४५॥	
तत्रास्थितोऽसौ शुशुभे रघूद्रहः प्राणेश्वरो लोचनलास्यलालितः ।	
पारे परार्द्धस्मररूपर्दर्पहा गोपाङ्गनामण्डलमण्डनाकृतिः ॥४६॥	
परस्परालापनिरोक्षणस्मितभ्रूविभ्रमाश्लेषकरग्रहादिभिः ।	
संपूज्य संस्तुत्य तथात्मनः प्रियं प्रियाः समेताः किमपीदमूच्चिरे ॥४७॥	

### गोप्य ऊचुः

ये सेवमाना ननु सेवमाना असेवमानानपि सेवमानाः ।  
 ये सेवमानान् परितो सेवमाना न सेवमानास्त इमे के वदस्व ॥४८॥  
 मातः पितृन् स्तिरधत्तमानपत्यभ्रात्रादिकान् सुहृदश्चात्मबन्धून् ।  
 हित्वा च पादाब्जतलं प्रपद्य त्वं सेवमानान् परिपासि कच्चित् ॥४९॥  
 किंवा भवैकान्तरतानभव्यान् निन्दापरान् लम्पटान् नीचसत्त्वान् ।  
 कन्दर्पनुध्यानपथे<sup>४</sup> प्रवृत्तांस्त्वसेव्यमानान् भजसे नाथ कच्चित् ॥५०॥  
 किंवोभयभ्रष्टहृदः शिलामयान् कुयोगिनो नासि पापेषु निष्ठान् ।  
 ईदृग्विधान् मानुषाख्यान् पश्चास्त्वं प्रपूर्णरङ्गं भजसे नाथ कच्चित् ॥५१॥

१. संप्राप्त—अयो०, बड़ो० । २. सुधोत्तमा जनाः—रीवाँ, बड़ो० ।  
 ३. अचिकलृपन्नदभुत—अयो०, अरीरचन्द्रन्दत—बड़ो० । ४. कदाप्यनुध्यान—  
 अयो० ।

इत्येवमुक्तो भृशमाभीरदारैः परात्परो भगवान् रामचन्द्रः ।  
श्रियायुतः कोटिकन्दर्पकान्तिः स्मित्वा रेभे प्रतिवक्तुं महात्मा ॥५२॥

### श्रीराम उवाच

विहाय संसारमपारसान्तरं<sup>१</sup> भवादृशान् भजतः प्राकृतौघान् ।  
भजामि नित्यं निजवामाङ्गभागं रमामपि प्रेयसीं संविहाय ॥५३॥

संसारिणो विषयैकान्तलुब्धान् न मां परं भजतो नो भजामि ।  
कामानुरूपां गतिमेषां ददामि कुर्वे सुरानासुरीष्वेव भूषु ॥५४॥

नान्यानहं सेवमानान् भजामि जनान् प्रसिद्धोभयधर्महीनान् ।  
प्रपद्यन्ते ये यथा मां मनुष्याः प्रपद्येऽहं तांस्तथा भावयुक्तः ॥५५॥

न वस्तुतोऽहं<sup>२</sup> भजतो भजामि कुतश्चैवाभजतो भूमिजन्तून् ।  
आत्मारामः सन्निजैकान्तकेलिलैकातीतः क्रीडमानश्च नित्यम् ॥५६॥

भजाम्यहं क्वापि भजतोऽपि जन्तून् कृपावशस्तत्कृतमीक्ष्यमाणः ।  
स्नेहातुरान् दैवदृष्टश्चावराथनि<sup>३</sup> तथातुरान्<sup>४</sup> मानहीनानशक्तान्<sup>५</sup> ॥५७॥

यत्संगता<sup>६</sup> मद्वपुषोऽशवः प्रिया यथेयं श्रीर्भाति वामाङ्गसंस्था ।  
इतोपि<sup>७</sup> सख्योऽभ्यधिका रासकाले<sup>८</sup> यदेवमन्तर्मयिमानसं<sup>९</sup> वः ॥५८॥

मदङ्गसंगोपचिता शिखावद्<sup>१०</sup> यूयं प्राणेभ्योऽपि मे प्रेयसीः स्थः ।  
नपार्येऽहं भवतीप्रेमबन्धं निष्कारणं मित्रभावं जुषाणाः ॥५९॥

भवतीनां वै विप्रलम्भानुभूत्यै तिरोहितो भवती<sup>११</sup> स्थो भयात्मा ।  
आविर्भावं प्रापितस्तत्क्षणेन<sup>१२</sup> मा मा हिंसोज्जातवेदाः स्मरोत्थः ॥६०॥

तन्मेऽसूया नैव कार्या कदाचित् प्रेम्णौदार्यं वीक्ष्यमाणाय शश्वत् ।  
लोके प्रेमणः पदवीं शिक्षयाणः किं किं चित्रं नैव कुर्वे रमण्यः ॥६१॥

लीलावैचित्रयात् सहजानन्दरूपाध्यन्तदर्ढानिं यावदेषा जगाम ।  
नैवामुष्यां मद्वियोगः कदाचिद् दृष्टो भूतः स्वप्नभावे सुखमौ ॥६२॥

१. °सागरं—अयो० । २. नैवस्तुतो—अयो०, नमः स्तुतो—बड़ो० । ३. वराकान्—अयो० । ४. चिन्तातुरान्—अयो० । ५. असक्तान्—रीवाँ, बड़ो० । ६. यूयं गता—अयो० । ७. अतोऽपि—बड़ो० । ८. क्वापिकाले—अयो० । ९. यदेयमन्तर्दधते—मदन्तः—अयो० । १०. शिखोवला—अयो०, शिखांवला—बड़ो० । ११. भवदन्ति—कस्थो—अयो० । १२. °र्भावो प्रेमबन्धस्तत्—रीवाँ, बड़ो० ।

संपूर्णः शरदो<sup>१</sup> भजमानाः प्रियं मां धन्या धन्या धन्यधन्याद्वच धन्याः ।  
 प्राप्तं मनागीदृशं प्रेम दिव्यं युष्मास्वेवं प्रियमेकान्तवत्यः<sup>२</sup> ॥६३॥  
 संसेवनोयः किमुतान्यैर्मर्यापि पुण्यस्तीर्थो भवतीपादरेणुः<sup>३</sup> ।  
 स्त्रियो भूत्वा पौरुषं दिव्यमेवं यूयं प्राप्ताः शङ्कराद्यैरलभ्यम् ॥६४॥  
 प्रेमणामलेनान्तरात्मप्रसादात् प्रीतः क्रीतो भवतीभिः सदाहम् ।  
 अविप्रयुक्तः सततं चैव रस्ये वश्यां वृत्तिं दर्शयानः समग्राम् ॥६५॥  
 नित्ये धाम्नि दिव्यसाकेतसंज्ञे सरयुपुलिने परे नित्यरस्ये ।  
 सीतालोके भूरि प्रमुदवने<sup>४</sup> यत्र क्रीडेऽहं तत्र तत्र स्थ यूयम् ॥६६॥  
 यूयं नित्याः कीर्तिता वेदमूर्धन्, नित्यानन्दा नित्यगा नित्यसिद्धाः ।  
 लोकोऽयं वो नित्यसञ्चितसुखात्मा किञ्चिज्ज्ञात्वा कामितो ब्रह्मविद्धिः ॥६७॥  
 तेऽमी स्थिताः पुरतोऽन्नेः कुमारा ब्रह्म विन्दन्तः षष्ठिसाहस्रसंख्याः ।  
 तद्वत् स्थिताः<sup>५</sup> श्रुतयोऽमूः पुरो<sup>६</sup> वो ब्रह्म विन्दन्तीः सततं कामयानाः ॥६८॥  
 अन्ये च सिद्धा ऋषयो ब्रह्मनिष्ठाः ब्रह्मर्षयो वन्दिता नारदादच्यैः ।  
 नेमे लोकं प्राप्तुमर्हन्ति सख्यो यद्यप्येते कामतत्त्वेन विद्धाः ॥६९॥  
 सर्वस्योर्ध्वं भाति वैकुण्ठधाम ऊर्ध्वं वैकुण्ठाद्या[दा]दिवैकुण्ठधाम ।  
 राधालोकं तस्य चोर्ध्वं विभाति सीतालोकस्तस्यचाप्यूर्ध्वं एषः ॥७०॥  
 नातः परं लोकसंस्थागमेषु दृष्ट्वा ववचित् सरहस्येषु तेषु ।  
 चिल्लोकोऽयं मामकीनो मदात्मा पूर्णः सदा पूर्णपूर्णः सुपूर्णः ॥७१॥  
 आनन्दात्मा स्वे महिम्नि प्रतिष्ठः सत्याकारः सत्यधर्मा<sup>७</sup> सुसत्यः ।  
 चिद्रूपोऽयं चित्प्रतिष्ठाप्रतिष्ठः कालातीतो मायथा चाप्यधृष्यः ॥७२॥  
 यस्माज्जातः पूरुषः कोऽपि कालः श्रीमान् विष्णुर्लोकलोकेशनाथः ।  
 जिष्णुविष्णुः कृष्ण इत्याद्यनेकैर्नाम्नां वृन्दैः कीर्तितः सोऽपि चांशः ॥७३॥  
 यल्लोकोऽसौ कीर्तितो रामलोकः सीतालोकस्तत्र चानन्दलोकः ।  
 ईदृक्प्रेमणा तमिमं प्राप्य यूयं जाताः सख्यः कृतकृत्या<sup>८</sup> पुरैव ॥७४॥

१. यूयंप्रिया—अयो० । २. युष्माववेशं प्रिया मे करोति—अयो० । ३. किमु-  
 तान्यैर्मर्या विधृतः शीर्षमध्ये दिव्यतीर्थो भवतीनां पादरेणुः—रीवाँ, बड़ो० ।  
 ४. प्रमोदवने—बड़ो० । ५. तदास्थिता—रीवाँ । ६. नूपुरो—रीवाँ, बड़ो० । ७. सत्य-  
 धर्मा—रीवाँ, बड़ो० । ८. प्रेमसत्या—रीवाँ, बड़ो० ।

न यत्र दुःखं न जरा न मृत्युर्न कालबाधा प्रकृतेन प्रभावः ।  
 नित्ये सत्ये तत्र यूयं रमधवं रसेन संयुग्विप्रयोगात्मकेन<sup>१</sup> ॥७५॥  
 संयोगाद्विप्रयोगो मे प्रियो नित्याभिभाषितः ।  
 रामात्मनाहं संयोगी रामात्मा विप्रयोगवान् ॥७६॥  
 संयोगरसभोगाय रामोऽहं वै वसे वने<sup>२</sup> ।  
 विप्रयोगानुभूत्यै तु रामः साकेतपत्तने ॥७७॥  
 रसनामा तु रामोऽहं रामोहं रासनायकः ।  
 उभयोर्नित्यभोगाय प्रमोदवनमास्थितः ॥७८॥  
 गावो गोपास्तथा गोप्यो नित्यलीलापरिच्छदा:  
 राजन्ति स्वस्वभावेन प्रमोदविषिणे मम ॥७९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डिसंवादे रामरासो नाम  
 चतुर्स्त्रिशोऽध्यायः ॥३४॥

◎

### पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

#### ब्रह्मोवाच

एवं श्रुत्वा रसिकेन्द्रस्य दिव्यरसात्मनो राघवेन्द्रस्य वाचः ।  
 गोपाङ्गनास्तुष्टुवुस्ताः<sup>३</sup> समस्तास्त्यक्त्वा वियोगप्रसवं चित्ततापम् ॥ १ ॥  
 अथेप्सितानां व्रजसुन्दरीणां परस्पराबद्धकराम्बुजानाम् ।  
 मध्ये स्थितो रामचन्द्रो विरेजे तत्कण्ठयोर्विलसद्वाहुपुरमः ॥ २ ॥

इत्थं शतं सहस्रं च मूर्तीः<sup>४</sup> कृत्वा निजात्मनः ।  
 रेमे रामो रमोन्मादचलच्चरणतालदृक् ॥ ३ ॥

तासां प्रेयो नाभिमध्योदरान्तर्लोलान्योन्याबद्धहस्ताम्बुजानाम् ।  
 एको हस्तः खे चलन् भावरीत्या कामाम्भोजे भ्राजिनालो विरेजे ॥ ४ ॥

ताः प्रेयसो<sup>५</sup> नूपुरकिङ्किणीनां नादैः स्वाड्प्रिस्थायिनां नूपुराणाम् ।  
 नादान् भुहुमेलयित्वा तटन्त्यः स्वारस्यमापुर्लितं सामरस्यम् ॥ ५ ॥

१. रामात्माविप्र०—रीवाँ, बड़ो० । २. वै वनेस्म्यहं—अयो०, संविशन् वने—बड़ो० । ३. स्तथुस्ताः—रीवाँ, बड़ो० । ४. मूर्ति—रीवाँ, बड़ो० । ५. प्रेयसी—रीवाँ, बड़ो० ।

तस्मैश्च रासे तालशङ्का<sup>१</sup> मृदङ्गाः सज्जर्जरा पटहाः झल्लरीश्च<sup>२</sup> ।  
भेरीवीणावेणुवाद्यप्रभेदाः संमूर्तिकाश्चिन्मयाः प्रादुरासुः ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा रासोत्सुकं रामं प्रेयसीश्चापि तस्य ताः ।  
वाद्यवादनकारिष्यः प्रादुरासुर्वरस्त्रियः ॥ ७ ॥

ततानां विततानां च छादितानां समन्ततः ।  
घनानां सुषिराणां च प्रादुरासीन्महान् ध्वनिः ॥ ८ ॥

तं ध्वानमनुकृत्याभूद्विदुन्दुभिजो ध्वनिः ।  
अवाकिरंश्च मन्दारमाल्यानि त्रिदिवौकसः ॥ ९ ॥

चलच्चरणनूपुर्लितकिञ्चिणीनां गणै-  
रनेकवल्लयैस्तथा विधुत<sup>३</sup>बाहुवल्लोस्थितैः ।  
अभूत् सततकाहलः किमपि तत्र कोलाहलः  
सुवर्णमणिभूषणप्रकरसिज्जितैर्मिश्रितः<sup>३</sup> ॥ १० ॥

प्रेयसीरनुचकार वल्लभो वल्लभं च ललना अनुचक्रुः ।  
ते परस्परविधेयचातुरीवेधसः शुशुभिरे रसरासे ॥ ११ ॥

प्रेयसीमधुरकण्ठसुस्वरैः प्रेयसो जयति कण्ठसुस्वरः ।  
यत्प्रमोदवनवासिकोकिला मौनमापुरनुसर्तुमक्षमाः<sup>४</sup> ॥ १२ ॥

मध्ये मध्ये कनकलतिकाजातमालैस्तमालै-  
मध्ये मध्ये विलुलितडिन्मोदमानैः<sup>५</sup> पयोदैः ।  
मध्ये मध्ये कनकमणिभासंगशीलैश्च नीलैः  
प्राप्तुं शक्या नखलु रमणं राममासां विलासाः ॥ १३ ॥

एवं स ताभिः शुशुभे रमाभिः कामप्यपूर्वा परमां दधानः ।  
वेणुं कवणन्मध्यगतो दामिनीनां मध्ये तडित्वानिव जातगर्जः ॥ १४ ॥

मुग्धाड्घ्रीणां विलासै रणरणकरणत्किङ्णीनूपुरादयै-  
दोर्वल्लीनामुहुच्छ्रुलयकलकलैः सस्मितैर्भ्रूविजृम्भैः ।

१. शालरीः—रीवाँ, बड़ो० । २. विद्युतत्—रीवाँ, बड़ो० । ३. मिश्रितैः—रीवाँ० । ४. °मक्षणः—अयो० बड़ो० । ५. °मोदैः—अयो० । ६. °मणिना—रीवाँ, बड़ो० । ७. रामरासं—रीवाँ, बड़ो० । ८. मनसां—अयो० । ९. सुस्मितैः—अयो० ।

सानडगैर्मध्यभड्गैः कुचपटचलनैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।  
 काञ्चीवेणीकलापैः इलथलसदलकग्रन्थिभिस्ता विरेजुः ॥१५॥  
 स्वेदाज्जितानि वदनानि विभावतीनाम्  
 स्वेदाज्जितानि च वपूंषि विलासलासैः ।  
 रासोन्मदप्रणयपाणिविकर्षितानां  
 रेजुनितान्तसुरतान्तगतानि यद्वत् ॥१६॥  
 सीता शीतांशुसीता॑ च सुधा श्रीः कमला कला ।  
 कामिनी कामदा कामा कमनीया कलावती ॥१७॥  
 राधा कृष्णानुराधा च सुधाधारा मणीरमा॒ ।  
 ललनाकोटियूथेषु षोडशैव सुमध्यमाः ॥१८॥  
 एता मुख्यतमाः प्रोक्ता यथा कान्तस्तथैव ताः ।  
 स्वामिनीशब्दभाजश्च दामिनीतुल्यकान्तयः ॥१९॥  
 रामेण सह नृत्यन्त्यो रेजिरे रासमण्डले ।  
 स्वस्वमण्डलमुख्यश्च प्रेयसा प्रतिलालिताः ॥२०॥  
 जगुरुच्चैः स्वरेणैताः प्रियकण्ठस्वरोजिताः ।  
 शुद्धमिश्रप्रभेदाश्च स्वरजातीः सलक्षणाः<sup>३</sup> ॥  
 प्रियेण सह गायन्त्यः पुपुषुः परमां श्रियम् ॥२१॥  
 काश्चित् परं वेणुरवानुभोहिता॑ प्रमत्तपुँस्कोकिलकण्ठजित्वरैः ।  
 स्वरैरगायन् वनिता वनान्तरे प्रियेण साकं बहुजातसंभ्रमाः ॥२२॥  
 काश्चित्स्वयूथमवलम्ब्य सह प्रियेण  
     गायन्त्य उच्चतरकण्ठरवाप्नमानाः ।  
 अन्याः सुनृत्यकलया दधतीः पटुत्व-  
     मौत्सुक्यसंगतहृदो नदयाम्बभूवुः ॥२३॥  
 कदाचिद् वनिता एव सर्वाः संजगुरुच्चकैः ।  
 अनृत्यत् प्रिय एकाकी कलाचातुर्यदर्शनैः ॥२४॥

१. सीता सुसीता—रीवाँ, बड़ौ० । २. °मिणो°—अयो०, रीवाँ । ३. स-  
लक्षणाः—अयो०, रीवाँ, बड़ौ० । ४. °मोदिताः—अयो० ।

कदाचिद् गायतोऽत्युच्चैः प्रेयसस्तुष्टिहेतवे ।  
 अनृत्यन् वनिताः सर्वाश्चातुर्याज्जितविग्रहाः ॥२५॥  
 काचिच्च रामपरिवर्तनजश्मेण  
 श्रान्ता<sup>१</sup> गुरुस्तननितम्बभरालसाङ्गी ।  
 स्विद्यन्मुखो इलथलसद्रसना<sup>२</sup> प्रियांसे  
 प्रादाद् भुजं तरलकूजितकड्कणाढ्या<sup>३</sup> ॥२६॥  
 काचिद् भुजौ दृढतरस्मरपाणिपाशौ  
 कण्ठे निधाय दयितस्य च लम्बमाना ।  
 शंपामयी ऋगिव मेचकमेघैलग्ना  
 रेजेतरां तरुणिरग्रिमघर्षकान्तिः ॥२७॥  
 काचिन्मुखेन रमणस्य निजाङ्गुसंस्थं<sup>४</sup>  
 काश्मीरचन्दनकुरञ्जमदानुलिप्तम् ।  
 आद्राय जातपुलका प्रणयोत्करेण  
 गोपी सुगुप्तगतिरेव मुहुश्चुचुम्ब ॥२८॥  
 कस्यैचिदाकलितरासविलासनृत्य-  
 विक्षिप्तकुण्डलमणीगणमण्डिते स्वे ।  
 गण्डे स्वगण्डफलकं शमतो दधत्यै  
 प्रादात् प्रियो हि लतिकादलचर्चितं स्वम् ॥२९॥  
 अन्या च रासरसितैर्वलयैनदन्ती<sup>५</sup>  
 कूजन्महार्हमणिनूपुरमेखलाद्या ।  
 पार्वतिस्थितस्य रुचिरं रमणस्य हस्तं  
 श्रान्ता स्तनोपरि निधाय सुखान्यवाप ॥३०॥  
 काचिज्जवेन दयितं परिरभ्य तुड्ग-  
 वक्षोजविक्षुभितमसि<sup>६</sup> चुचुम्ब तस्य ।

१. श्रान्त उह०—रीवाँ, बड़ो० । २. सूनथसप्रसना—रीवाँ, बड़ो० । ३.  
 °कंकणाद्या—अयो०, बड़ो० । ४. शृङ्ग०—रीवाँ, बड़ो० । ५. °संस्था—रीवाँ, बड़ो० ।  
 ६. °रसिका—अयो०, °रचितैः—बड़ो० । ७. नटन्ती—अयो० । ८. विक्षोभित०—  
 रीवाँ०, बड़ो० ।

इष्टं पृथक् पृथगनड्गरसं निगूढ-  
 रासान्तरे पुपुषुरद्भुतकेलिदक्षाः ॥३१॥  
 गोपाड्गना रुचिरराजकुमारवर्य-  
 हस्तद्वयाकलितगाढगृहीतकण्ठयः ।  
 रासक्रियाललितमण्डितमण्डलीषु  
 स्वच्छन्दमेव बहुधा विदधुर्विहारम् ॥३२॥  
 कदाचिद् गोपतरुणीमण्डलान्तरमण्डनः ।  
 रामः सीतासमं रेजे क्वणद्वेणुयुताधरः ॥३३॥  
 कदाचित् स्वाड्गकान्त्यैव<sup>१</sup> प्रियामन्तर्हितां दधत् ।  
 चकार कौतुकं स्त्रीणां क्व गता महिषीत्यहो ॥३४॥  
 तासु संभ्रान्तचित्तासु स्थित्वा मण्डलमध्यतः ।  
 दर्शयन् सहजां लक्ष्मीं जयेति मुहुरीडितः ॥३५॥  
 साखिलन्नजकान्ताभिर्दीपाभिरपि मण्डले ।  
 अप्रधृष्यैव शुशुभे लोकसौन्दर्यजीवनी ॥३६॥  
 कदाचित्तस्या हस्तेन हस्तमादाय वल्लभः ।  
 जगाम कुञ्जभवने दासीवत्तास्तु तस्थिरे ॥३७॥  
 आज्ञापयिष्यति प्रभ्वी प्रभुर्वा किं न दूत्यमूः ।  
 सावधानतया तस्थुः कुञ्जद्वारलसद्दृशाः ॥३८॥  
 कुञ्जालयं सुखं गम्य कृत्वा पूर्णं मनोरथम् ।  
 एताभ्यां पुनरेताभ्यां जयेत्युच्चैस्तरां जगुः ॥३९॥  
 संभुक्तिपानपरिधानविभूणानि  
 लेपाञ्जनालभनमार्जनव्यञ्जनाद्यैः ।  
 तौ ता विशेषधिषणा<sup>२</sup> परिचेषुरुच्चै-  
 दासीवदप्यनुपदं कलितावधानाः ॥४०॥  
 कान्तेन भूरितरकेलिषु कोविदेन  
 ताः संसदि प्रतिपदं बहुदत्तमानाः ।

१. काड्ग्न्यैव—बड़ो० । २. विशेषैः परि०—रीवाँ, बड़ो० ।

नैतां<sup>१</sup> प्रियां समनुलङ्घ्नितुभीशिरेऽपि  
पूर्वं विसोढविरहस्मृतिकातराक्ष्यः ॥४१॥

नैवापि तासु वनितासु कुमारकेण  
साद्दं प्रभूतरमणोत्सवसंभ्रमेषु ।

प्रत्यूहलेशमकरोद्यदमुष्य साक्षा-  
न्नित्याङ्गसङ्गमवतो सहजैव लक्ष्मीः ॥४२॥

अश्रान्तरासरसिको रमणः स इत्थं  
गुप्तस्फुटं प्रकट<sup>२</sup>केलिविधानदक्षः ।

रेमे रमैकरमितो रमणो रमाभि-  
राभीरराजकुलभूषणसुन्दरीभिः ॥४३॥

कदाचिन्नृत्यमानानां वनितानां प्रियैः सह ।

भ्रमरालिरभूद्वीणा कोकिलामुरजध्वनिः ॥४४॥

रामरासरसं वीक्ष्य देवा ब्रह्मशिवादयः ।

विचिन्त्यमाना मनसि बभूवुः प्रेमघूणिताः ॥४५॥

अस्तमाममरनागनगीनां रूपसारभरजोऽप्यभिमानः ।

किञ्चुरीवदिह दर्शनमापुर्दूरतो रसिकरासरसेषु ॥४६॥

<sup>३</sup>आदित्या विश्वेदेवाश्च वसवस्तुषितास्तथा ।

भास्कराश्चानिलाश्चैव महाराजिकसाध्यकाः ॥४७॥

रुद्राः समुद्रा गिरयो नदा नद्योऽप्सरोगणाः ।

विद्याधराश्च यक्षाश्च गन्धर्वाश्चैव किन्नराः ॥४८॥

ग्रहनक्षत्रताराद्याः प्रह्लादश्च विभीषणः ।

ब्रह्मर्षयो वसिष्ठाद्यास्तथा देवर्षयोऽखिलाः ॥४९॥

लक्ष्मीनारायणौ चैव पार्वतीशंकरौ तथा ।

गायत्री चापि सावित्री सरस्वत्यप्सरः शची ॥५०॥

१. नैताः—बड़ो० । २. प्रकट०—बड़ो० । ३. अयं श्लोको नास्ति—रीवाँ, बड़ो० ।

सर्वे देवगणाश्चैव हर्षिताः स्वस्वचेतसि ।  
 योषारूपं समास्थाय रामरासे समाययुः ॥५१॥  
 तेषां विमानसंदोहैरभवत् संकुलं नभः ।  
 रामो नवघनश्यामो महारत्नविभूषितः ॥५२॥  
 लक्ष्मीं दधद् गोपिकाभिः संस्थितो रासमण्डले ।  
 स्वस्वभावानुसारेण सर्वेषां दर्शनं ददौ ॥५३॥  
 गोपीं गोपीमन्तरा रामचन्द्रो रामं रामं चान्तरा गोपनार्यः ।  
 इत्थं जाते मण्डले मञ्जुलाभो रेमे रामो रामया राजमानः ॥५४॥  
 श्रीहस्ताब्जबद्धसम्बद्धकण्ठयोरन्योन्यं वा बद्धबाह्वौर्युवत्यः ।  
 वामं हस्तं चोद्धयित्वानयोश्च मध्ये रेमे रामचन्द्रःकदाचित् ॥५५॥  
 इत्थं द्वेधा मण्डलं कल्पयित्वा पर्यायेण क्रीडमानो वधूभिः ।  
 योगाधीशस्तत्र योगीव रामो रेमे स्वानां संमुदं वर्धयानः ॥५६॥  
 रासक्रीडावेषविस्त्रस्तबन्धैर्धम्मिलैः स्वैर्मलिलकाः संवमन्त्यः ।  
 विद्युद्वल्लोजैत्रविद्योतिताङ्ग्यो गोप्यो रासे नाटकं चक्रुरुच्चैः ॥५७॥  
 रासे समुद्भूतरभाविलासे श्रीरामचन्द्रेण समं नटन्त्यः ।  
 धम्मिलवल्लयुभनितम्बभारं वोदुं न शक्ता वनिता बभूवुः ॥५८॥  
 नितम्बौ स्त्रस्तकाङ्चीकौ कुचौ विगतकञ्चुकौ ।  
 धम्मिलान् बन्धनोन्मुक्तान् वहन्त्यो रेजिरे स्त्रियः ॥५९॥  
 खेचरौधाः सह स्त्रीभिष्वचन्द्रश्चोडुगणैः सह ।  
 रामरासं समालोक्य विस्मितोऽभूम्निरन्तरम् ॥६०॥  
 यावद्विजहार भगवान् तावत्कालं रजनीशः संस्थितोऽभूत् ।  
 चन्द्रेण स्वस्यां गतौ विस्मृतायां स्वस्वस्थाने खेचराश्चापि तस्थुः ॥६१॥  
 यावन्तस्ता मण्डले गोपनार्यस्तावद्रूपो राघवेन्द्रो बभूव ।  
 अन्योन्यं चालक्ष्य लीलाविनोदं रेमे ताभिर्भूरि दाक्षिण्यशाली ॥६२॥  
 तासां प्रभूतश्रमर्कषितगोपिकानां  
 वक्त्राणि वारिकणसंवलितालककानि ।  
 हस्ताम्बुजेन स मर्मर्षतरां ततोऽमूः  
 पीयूषपातसुखिता इव संबभूवुः ॥६३॥

इत्थं हरेभंगवतः पुरुषोत्तमस्य  
रामस्य राघवकुलामलकीर्तनस्य ।  
यः संशृणोति रत्तिरासविलासलीलां  
स रामसंपदमुपैति विमुक्तकामः ॥६४॥  
इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
रामरासो नाम<sup>१</sup> पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥



### षट्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रामस्य रासं नयनैर्निपीय ते दण्डकारण्यजुषोऽग्निपुत्राः ।  
कामेन संक्षुब्धहृदः समन्तात्तन्मडलं तुष्टुवुः कल्पिताशाः ॥१॥

मुनय ऊचुः

प्रावृट्समुन्नतनवीनघनाभिरामं  
योषासमूहपरिकल्पितमण्डलस्थम् ।  
पीताम्बरद्युतितडित्रकराभिरामं  
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ २ ॥  
श्रीमत्प्रमोदवनमज्जुलकुञ्जवीथी-  
विद्योतमानपरिपूर्णकलाहिमांशुम् ।  
सामस्वरक्वणितवेणुसनाथपार्णि-  
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ३ ॥  
रत्नावलीयुतसुवर्णसुदिव्यमौलि-  
मुक्तास्त्रगदभुतसुलक्ष्यविशालवक्षः ।  
श्रीवत्सलक्ष्मसुभगोत्तमदिव्यगात्रं  
रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ४ ॥  
उद्यद्विशालमणिमज्जुलतुञ्जनासं  
गण्डस्थलप्रतिफलत्कलकुण्डलाग्रम् ।

१. रामरासे—अयो०, रीवाँ, बडो० । २. तपनैर्—रीवाँ, बडो० ।

कस्तूरिकातिलकभूषितभालदेशं  
 रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ५ ॥

केयूरलम्बनललामभुजद्वयाग्र -  
 बन्धोदगृहीततरकौस्तुभशोभि कण्ठम् ।

पादाम्बुजकवणितनूपुरकिङ्कणीकं  
 रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ६ ॥

एकद्वयत्रिचतुरादिभूतक्रमात्-  
 तालप्रबन्धरचनानयनाभिरामम् ।

सङ्गीतशास्त्रवितताछलकाँगुरुं तं  
 रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ७ ॥

नृत्यन्तमद्भुतकलानिकरप्रवीण-  
 मानापलापरचनैकविधानदक्षम् ।

वंशीधरं नटवरं वरदोत्तमाङ्गं  
 रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ८ ॥

अङ्गोन्मिलन्मलयजद्रवजातभर्त्ति  
 रङ्गत्रिभङ्गकलितातिललामकामम् ।

कैशोरवेशमतिवर्त्यं परिस्फुटन्तं  
 रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ९ ॥

मन्दारमूलमधिगम्य विराजमानं  
 गोपाङ्गनाविरचितोत्तममण्डलास्यम्<sup>३</sup> ।

पीतांशुकच्छविनिबद्धकटिप्रदेशं  
 रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ १० ॥

मन्दस्मिताधरसुधारसरज्जितोष्ठं  
 लोलालकावलितमुग्धकपोलदेशम् ।

पादाम्बुजप्रथिततालविधाननृत्यं  
 रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥ ११ ॥

१. छलकं—वडो० । २. गोपांगनाभी रचितोत्तममण्डलाग्र्यम्—अयो० ।

<sup>१</sup> ताम्बूलिकादलसुचर्वणचारुराग-  
संवर्धगोपरमणीक्षणचुम्बनोग्रम् ।  
तत्तुञ्जवक्षसिजमर्दनलग्नहस्तं

रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥१२॥

सीतानिरन्तरविभूषितवामभागं

मध्यस्थलच्छविविनिर्जिर्तासहमध्यम् ।  
मन्दस्मितप्रसर<sup>२</sup>मण्डितमण्डलास्यं

रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥१३॥

श्रीरत्नवेदिविपुलीकृतमण्डलान्तः-

कोटिप्रकारपरिक्लृप्तनिजप्रकाशम् ।  
वामाञ्जसञ्ज्ञिसहजास्पृहणीयकेलिं

रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥१४॥

श्रीमत्प्रभोदवनकल्पितमण्डलाब्ज-

सत्कर्णिकार्पितरमारमणैक<sup>३</sup>मूर्तिम् ।  
स्वस्वामिनीसमनुवाङ्छितदिव्यरासं

रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥१५॥

ब्रह्मेन्द्रशङ्करमुखत्रिदिवालयौध-

हस्ताम्बुजच्युतसुरद्रुमपुष्पवृष्टिम् ।  
कोटीन्दुजित्वरकिरीटमणिप्रभाद्यं

रासस्थितं रघुपतिं सततं भजामः ॥१६॥

जय जय जय सहजानन्दरसनिर्भरनिजविलासमोहितब्रह्मादि-  
सुरसंस्तूयमान कुटिल<sup>४</sup>गोपाञ्जनाजनकटाक्षसमुद्भूतनकन्दर्पशार-  
लक्ष्योकृतचित्त कुन्दवनेश्वरिमनोरथपूर्तिप्रभावप्रेमपरिपालक सच्च-  
दानन्दमयपरब्रह्म रस स्वानन्दैककन्द सहजकल्याणगुणनिधान नमस्ते  
नमस्ते ॥१७॥

१. अयं इलोको नास्ति—अयो० । २. °स्वविर°—रीवाँ, अयो० ।  
३. रमारनैक—अयो०, बडो० । ४. कुटित—रीवाँ ।

किं त्वामशेषमतिसाक्षिणमर्थयामो  
 जानासि सर्वमपि नः स्पृहणीयमर्थम् ।  
 अस्यैव तावकविलासरसस्य नित्यं  
 पात्राणि किं नहि भवाम वयं स्मरात्ताः ॥१८॥

कि वा सहस्र जनुर्जितकोटिपुण्य-  
 नैष्कर्म्यसिद्धिसुहितेन ननु त्वयैव<sup>१</sup> ।  
 दत्तामलभ्यवरभाजनतामुपेत्य  
 नित्यं भजाम निजवाञ्छितलाभतृप्ताः ॥१९॥

नो चेद् वयं विरहपावकदग्धदेहाः  
 स्नेहानुबन्धमहिमोद्धृतमोक्षसौख्याः ।  
 त्वत्पादपद्मपदवीं समुपेत्य भूयो  
 जन्मान्तरेऽपि कलयाम न किञ्चिदिष्टम् ॥२०॥

इति तेषां द्विजेन्द्राणां दण्डकारण्यवासिनाम्  
 श्रुत्वा विकलवितं रामः प्रहसन्निदमुक्तवान् ॥२१॥

### श्रीराम उवाच

सुविहिततपसो मुनीन्द्रवर्या दहनसुताः खलु हुर्लभोऽयमर्थः ।  
 श्रुतिभिरपि मदेककामुकीभिः शतशतकल्पजनुस्तपस्विनीभिः ॥२२॥

तदपि मयि निवेद्य वाञ्छितार्थं यदि न भवन्त उपेतवाञ्छिताः स्युः ।  
 इदमपि न ददेत तद्वद्वद्वच्चो दुरधिगमोऽपि मयोपकल्पितोऽर्थः ॥२३॥

कृष्णावताररूपेण समनुक्रीडता मया  
 आगामिनि भवे यूयं कृतकृत्या भविष्यथ ॥२४॥

कृष्णो नाम ममैवांशो जनिता नन्दगोकुले ।  
 तद्वारा मां समासाद्य फलितार्था भविष्यथ ॥२५॥

इयं च सहजाशक्तिः सचिच्चदानन्दलक्षणा ।  
 तत्रैवांशेन भविता राधानाम्नी मम प्रिया ॥२६॥

१. °सुहितो नुदयन्स्त्वयैव—रीवाँ, बड़ो० ।

तथाविष्टासु सर्वासु सुन्दरीषु रत्ति भजन् ।  
 विहरिष्याम्यहं तत्र दिव्ये वृन्दावने वने ॥२७॥  
 सीता लोकस्य सामग्री समस्ता खलु तत्र माम् ।  
 उपस्थाप्यति विप्रेन्द्राः स्वस्वांशेन विनोदकृत् ॥२८॥  
 तावद्यूयं जातवेदःकुमाराः शुद्धप्रेमाणः सततं मां भजध्वम् ।  
 ईदृग् लीलाकारमीदृक् स्वरूपमीदृग्भावं प्राप्यथोच्चैः प्रसादात् ॥२९॥  
 इति तस्माद्वरं लब्ध्वा दण्डकारप्यवासिनः ।  
 मुनयस्तत्र सिद्धार्थस्तस्थुध्यनिपरायणाः ॥३०॥  
 एवं स रसिकेन्द्रस्य विलासो राससंज्ञितः ।  
 त्रैलोक्यं शोभयामास कामतत्त्वेन जूम्भितः ॥३१॥  
 नद्यः<sup>१</sup> स्तब्धतया तस्थुर्लंतावृक्षाश्चकम्पिरे ।  
 दद्रुवुश्चैव पाषाणाः साध्यसत्त्वानि तत्यजुः ॥३२॥  
 जहौ शम्भुः समाधिं च विश्वकृद्विश्वकल्पनाम् ।  
 भ्रमणं शिशुमारान्तस्तत्याज ग्रहमण्डलम् ॥३३॥  
 सर्वे बभूवः सहसा परमानन्दनिर्वृताः ।  
 रामरासरसोन्मादवासिताखिलवृत्तयः ॥३४॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 रामरासो नाम<sup>२</sup> षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

०

### सप्तत्रिंशोऽध्यायः

#### ब्रह्मोवाच

ततः सनृत्यश्मजातभूयः स्वेदाम्बुलग्नाङ्गुकूल<sup>३</sup> ईशः ।  
 निषेव्य शीतं सुरभिं सभीरं लीलावगाहाय सरो जगाम ॥ १ ॥  
 तत्पृष्ठतः पञ्चजलोचनानां तडित्त्विषां स्वेदकणात्मुतीनाम्<sup>४</sup> ।  
 जगाम पञ्चक्तिः खलु कामिनीनां संचारिणीनामिव वल्लरीणाम् ॥ २ ॥

१. तदा—बड़ो० । २. रामरासे—अयो०, रीवॅ, बड़ो० । ३. जातांग—  
 बड़ो० । ४. स्वेदकणात्मुतीनां—अयो० ।

तासामनु व्रजन्तीनां किङ्किणीन् पुरध्वनिः ।  
 उद्बुद्धराजहंसौघश्चक्रे कोलाहलं निशि ॥ ३ ॥  
 स्वच्छाय<sup>१</sup> कुञ्जवनवृक्षलतातलेषु  
     तासां तनुद्युतिभरेण महोद्धतेन ।  
 आच्छादय ताः समजनि<sup>२</sup> प्रकटं निगृढ-  
     शृङ्गारकेलिसरसीगमनाध्वमध्ये ॥ ४ ॥  
 धन्मिलकूटकुचकुम्भनितम्बविम्ब-  
     भूयो भरोद्वहनजश्चमखिन्नगात्राः ।  
 एणीदृशो रसिकराजनिपीतसाराः  
     कष्टेन केलिसरसीषु प्रजगमुरेताः ॥ ५ ॥  
 हेमत्विषां पुलिनभूमिषु संस्थितानां  
     तासां मुखेन्दुनिवहेन पयोगतेन ।  
 सा रामकेलिसरसी सहस्रैव रेजे  
     संपूर्णकोटिविधुमण्डलमण्डितेव ॥ ६ ॥  
 दिव्यावतं समणिदीधितिवासिताभिः  
     श्रीरामचन्द्रचरणाब्जनखप्रभाभिः ।  
 तद्विव्यकेलिसरसीसरसीरुहाणि  
     तत्कालस्वेव सविलासविकासमापुः ॥ ७ ॥  
 तासां मुखेन्दुशतशारदचन्द्रिकाभिः  
     प्रोद्धासितानि किल कैरविणां कुलानि ।  
 मञ्जीरमञ्जुलनिनादभरेण भूयो  
     निद्रायिता बुबुधिरेऽखिलराजहंसाः ॥ ८ ॥  
 उत्तार्य भूषणभरं वसनानि चामूः  
     स्नानक्रियासमुच्चितां तनुमुद्धहन्त्यः ।  
 कान्त्यैव संशुशुभिरे व्रजवामनेत्रा  
     हैम्यो लता इव विधूतदला वसन्ते<sup>३</sup> ॥ ९ ॥

---

१. स्वच्छाय—रीवाँ, बड़ो० । २. अछायद्यूतामजनि—रीवाँ, अछायधूत-  
 मजनि—बड़ो० । ३. वसन्ते—बड़ो० ।

निश्रेणिका पथज्ञणझणितातिमञ्जु-  
मञ्जीरशिज्जितविमोहितराजहंसाः ।

तास्तत्र केलिसरसीमवगाहनाय  
श्रीराघवेन्द्र रसिकेन सहावतेरुः ॥१०॥

गम्भीरनाभिषु डुमडुमितानुनाद-  
लोलाविधायितजलोर्मिषु लोलमानाः ।

सदयोभवाः श्रिय इवाम्बुनिधौ लसन्त्य  
उक्षाम्बूरभूरभितो रघुवंशरत्नम् ॥११॥

रामोऽपि ताः करसरोरुपत्रबद्ध-  
वारांभरैः सरसिजानुनिपातधारैः ।

अभ्युक्ष्यतिस्म रतिकेलिनितान्ततान्ति-  
श्रान्तान्मनः कमलवृन्दपरागगर्भैः ॥१२॥

गोपाङ्गनाकुचतटीपरिलिमभूरि-  
काश्मीरचन्दनकुरञ्जमदप्रवाहैः ।

व्यामिश्रितं सपदि सारवमम्बुतत्-  
त्रिवेणोप्रवाहपदवीमवहत् तदानीम् ॥१३॥

वक्रत्विषा सरसिजानि दृशा द्विरेफान्  
गत्या मरालकुलमूर्मिकुलं त्रिवल्या ।

शैवालिकाः स्फुरदनुत्तमरोभपड़क्त्या  
प्रापुः पराभवमनः स्खलनं सुसाम्यम् ॥१४॥

आलोडितं रघुवरेण सरो विलोल-  
वीचीविचालितसरोजपरागपूर्णम् ।

रेजे तमालकलिकानुकृते निजाङ्गे  
पीताम्बररघुतिमवाप तदञ्जसैव ॥१५॥

नीचैरतुल्यमधरीयमथोत्तरोय-  
मुच्चैः कुचेषु च सकञ्चुकभावमञ्चत् ।

आन्दोलितं प्रियकरैर्वंजकामिनोनां  
 केलीसरोजलमनेकरुचा विरेजे ॥१६॥  
 गोपी नितान्तमवगाह्य सरोजलेऽस्मिन्  
 रामाङ्गसञ्जमवशादमृतादपोडये ।  
 संभोगसञ्जमसमुद्धवमञ्जसञ्जं  
 व्याप्य स्थितं श्रमभरं मुमुचुः सलीलम् ॥१७॥  
 मन्दानिलप्रचलतीरमहीरुहेभ्यः  
 संपातिनी विविधसौरभिपुष्पवृष्टिः ।  
 स्नान्तीषु गोपतरुणीषु चिरं बभासे  
 संसूच्यमानपुरुषायितविक्रमेव ॥१८॥  
 सर्वाः समं प्रियतमं करयन्त्रिकाभि-  
 राबध्य वारिपटलं परिषेच्यन्त्यः ।  
 अम्भोधरं स्वकिरणैरभितः किरन्त्य-  
 स्तारा इव द्युतिभूतो गगने विरेजुः ॥१९॥  
 कान्तोऽपि तासु बहुधा करयन्त्रबन्ध-  
 धारायितानि सलिलानि नितान्तमुक्षन् ।  
 प्रावृद्धपयोद इव काञ्चनवल्लरीषु  
 धाराजलानि कलयन् नितरां रराज ॥२०॥  
 काश्चित्परस्परमुदीर्णरसाः<sup>१</sup> सयुथं  
 चक्रुः करोत्करबल्लर्जलकेलियुद्धम् ।  
 याश्चैव विभ्रति पराभवमत्र तासां  
 पक्षे स्वयं भवति राघवसार्वभौमः ॥२१॥  
 बिष्वाधरामृतनिपापरिरम्भचुम्ब-  
 मुख्यैः करैर्विरचिताम्बुनियुद्ध खेलः ।  
 निजित्य ताः सरसि संकुचतीर्मृगाक्षी-  
 र्जग्राह धावनकरी रसिकेन्द्र उच्चैः ॥२२॥

ता एकसार्थमिलिता वनिता विजित्य  
 शैवालिकानलिननालगुणैनिबद्धय ।  
 रामं त्रिलोकजनकं नयनाभिरामं  
 चुम्बन्ति लान्ति बहुशः परिरम्भयन्ति ॥२३॥  
 इत्थं परस्परमनेकविधां जलान्तः-  
 केलीं विधाय वनिताः सह वल्लभेन ।  
 पद्मैरनेकविधवर्णविराजिपत्रै-  
 भूषाविधानमतुलं रचयाम्बभूवुः ॥२४॥  
 श्रुत्योर्विभूषणमकुर्वत कर्णिकाभिः  
 पद्मच्छदैर्विरचयन्<sup>१</sup> कुचकञ्चुकानि<sup>२</sup> ।  
 केयूरहारवलयादिमृणालिकाभिः  
 स्वच्छन्दमेव विदधुर्वनिताः प्रवीणाः ॥२५॥  
 प्रत्यङ्गमेवमभिभूष्य सरोजहस्ता  
 उत्तेररम्बुजदृशाः सरसीजलेभ्यः ।  
 कान्तं निषेवितुमिताः पुरुषोत्तमं तं  
 नेत्रोत्सवाः प्रियसुखाः<sup>३</sup> मितरूपसाराः ॥२६॥  
 तासां पुरः कमलहारधरः समंतात्  
 किञ्जल्ककलिपतमनोहरमालिकाद्यः ।  
 रामो मृणाललतिकारसनाभिरामो  
 रेजे मतङ्गज इवानुसृतो गजीभिः ॥२७॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 जलविहारवर्णनं नाम सप्तत्रिशोऽध्यायः ॥२७॥



१. अरचयन्—अयो० । २. °कुम्कुमानि—रीवाँ० । ३. प्रियझवामृत०—अयो० ।

## अष्टत्रिंशोऽध्यायः

**ब्रह्मोवाच**

एवं कृत्वा जलक्रीडा रामो रमणपण्डितः ।  
 वनक्रीडां समारेभे सह व्रजवधूजनैः ॥ १ ॥  
 पुष्पस्तवकरम्येषु लताविटपवेशमसु ।  
 उच्चावचेषु गुलमेषु भूरहेषु च भूरिषु ॥ २ ॥  
 काचिद्विघुपतेरंसमवलम्ब्य व्रजाङ्गना ।  
 पुष्पाप्यवचिनोतिस्म तुञ्जवृक्षगतान्यपि ॥ ३ ॥  
 एकाधिमालतीकुञ्जेऽहसत् केनापि हेतुना ।  
 अपराञ्जलिमुन्नीय तस्थौ पुष्पावलिप्सया ॥ ४ ॥  
 चन्द्रिकानिच्यस्थानैर्वजस्त्रीणां मुखेन्दुभिः ।  
 दधुः सुमनसां केलि भूरि व्याकोशपुष्पताम् ॥ ५ ॥  
 चम्पकानामभूद् ग्लानिस्तासां भूरितनुत्विषाम् ।  
 द्वूरात्प्रमत्तमधुपस्तोमैराद्रियमाणया ॥ ६ ॥  
 कण्टकप्रकराकीर्णस्वर्णकेतककाननम् ।  
 विहाय तासामङ्गानि भेजे भ्रमरमण्डली ॥ ७ ॥  
 कर्णेषु रोचयामासुः कार्तस्वरगणानतः ।  
 अलयो व्रजकान्तानामङ्गसौरभ्यनिर्वृताः ॥ ८ ॥  
 भूषयामासुरङ्गेषु रसालतस्मञ्जरीः ।  
 ताः सौरभ्यविशेषेण बभूवुः पूरितान्तराः ॥ ९ ॥  
 स्थूलैः फलैः सवक्षोजा व्याकोशकुसुमान्विताः ।  
 स्त्रीभिः समाबभुः काश्चित्प्रमोदवनवल्लयः ॥ १० ॥  
 अवलम्ब्य प्रियस्यांसं चिन्वन्त्यः पुष्पधोरणीम् ।  
 विजिग्युर्लंतिकाः कान्ता विटपान्तरसंगताः ॥ ११ ॥  
 नानाविधानि पुष्पाणि स्मरचापशराकृतीः ।  
 अवचिक्युर्भूर्हेभ्यो लताभ्यक्ष्व व्रजस्त्रियः ॥ १२ ॥

१ मासुर्कार स्वरगानतः —अयो० ।

कदम्बगोलकग्राममवचीय व्रजस्त्रियः ।  
 वेणोर्विभूषयामासुः प्रान्तस्तवकशालिनीः ॥१३॥  
 सन्नाह॑ मञ्जुलाकारा वञ्जुलद्रुममञ्जरीः ।  
 गण्डयोर्मण्डयामासु निबध्यालकरज्जुभिः ॥१४॥  
 रसालमञ्जरीरन्यालकपाशैनिवध्य च ।  
 चक्रे कपोलयोर्भूषां स्मरदर्पणदीप्तयोः ॥१५॥  
 अन्याश्च कर्णिकारौघैश्चक्रुः कर्णेषु कर्णिकाः ।  
 मोहनं प्रियचित्तस्य तदुन्मानैव सेहिरे ॥१६॥  
 अतसीकुसुमैः॒ काश्चिच्छुगुफुः कटिमेखलाः ।  
 गजमुक्ताफलस्थूलकिञ्च्छणोजालशालिनीः ॥१७॥  
 काञ्चीः प्रकल्पयामासुः काश्चिद्वकुलदामभिः ।  
 वलयानि प्रकोष्ठेषु भुजयोरङ्गदानि च ॥१८॥  
 अन्याश्च गुम्फनाभिज्ञाः कान्तस्वान्तनिवेशिनः ।  
 आकल्पान्कल्पयामासुः नागपुन्नागकेसरैः ॥१९॥  
 काश्चित्प्रियड्गुकलिकाः कदम्बकुसुमैः सह ।  
 संमेल्य॑ मालिकां चक्रस्तुञ्जवक्षोजयोः स्त्रजः ॥२०॥  
 ४क्रीडापराजिताः काश्चिच्छाम्पेयकुसुमैः सह॑ ।  
 संमेल्य मालिकां चक्रुः प्रियप्रेमविर्द्धनीम् ॥२१॥  
 मालतीकुसुमैरेव काश्चद्भूषागणान्यथुः ।  
 काश्चिज्जपाभिरेवान्याश्चम्पकैरेव केवलम् ॥२२॥  
 काश्चिदाकल्पमातेनुः पञ्चवर्णैः॒ प्रसूनकैः ।  
 प्रेयांसं मोहयामासुरिन्द्रचापलता इव ॥२३॥  
 तासामाकल्पसामग्रीकल्पनाय समन्ततः ।  
 प्रमोदविपिने तत्राविरासीत् कुसुमाकरः ॥२४॥  
 अनेकवर्णकुसुमजातिभिः समलङ्घृतः ।  
 कूजत्कोकिलभृञ्जैघहुत्कण्ठाविरद्धनः ॥२५॥

१. संत्रोद्ध्य—अयो० । २. अतीश०—अयो०, रीवै०, बड़ो० । ३. संमिल्य—  
 रीवै०, बड़ो० । ४—४. नास्ति—अयो० । ६. °पर्णै—रीवै० ।

साद्य [सद्यः ?] संफुल्लविविधपद्मजातिसुखप्रदः ।  
 मधूकपल्लवस्तोमरञ्जिताष्टदिग्न्तरः ॥२६॥  
 स्मरप्रतापसंकाशश्चलाञ्कशुकराजिकः ।  
 निशातकरपत्राभविस्फुरत्केतकच्छदः ॥२७॥  
 सुवर्णमालतीजालसंचरन्मतष्टपदः ।  
 केतकीकाननोद्भूतपरागापूरिताम्बरः ॥२८॥  
 रक्ताशोकलतासद्म॑ संगीतशुकसारिकः ।  
 प्रियालमञ्जरीधूलीधूसरीकृतदिक्तटः ॥२९॥  
 समन्ततः संप्रवृत्ते वनान्तः कुसुमाकरे ।  
 आस्फालयामास धनुरुन्मदो मनसः सुतः ॥३०॥  
 रामारामा हृताकल्या रामेण सह संगताः ।  
 वसन्ते रेमिरे रम्यं रतिरङ्गरसात्मकम् ॥३१॥  
 रसालमञ्जरीवृन्दकल्पितोत्तंसुन्दरः ।  
 रेमे चात्म॑ विहारेण रामो रमयतांवरः ॥३२॥  
 वनराजीः परिस्पृष्टा॑ नीतमन्दसुगन्धयः ।  
 अलिङ्गङ्कारभवनाः पवनास्तं सिषेविरे ॥३३॥  
 प्रमोदवनकुञ्जेषु कुसुमाकल्पमालिनीः ।  
 लता इव सिषेवेऽसौ कामिनीः कान्तभूरुहः ॥३४॥  
 सान्धकारेषु कुञ्जेषु दृढनिमीलनलीलया ।  
 चौरो भूत्वा स्वयं रेमे रामो रामासुखप्रदः ॥३५॥  
 कदाचित्कामिनीवृन्दैर्दृढनिमीलनकृ॑त्प्रियः ।  
 अन्योन्यं रमयामास रमणीः॒ कृतकौतुकाः ॥३६॥  
 इत्थं जलस्थलवनेषु विहारशाली  
 व्यालीढकोटिललनासमुदायचित्तः ।

१. °संघ०—रीबाँ, बड़ो० । २. बत—अयो० । ३. परिस्पृष्ट्वा०—अयो० ।

४. वृन्दैर्दृग्मर्मीलनकृत—अयो० । वृन्दैर्दृनिमीलनकृत—बड़ो० । ५. रमणी—  
अयो०, रीबाँ ।

क्रीडां चकार रघुवंशविभूषणोऽसौ  
 श्रीमान् प्रभोदवनकुञ्जलतातलेषु ॥३७॥

इत्येतद्वज्रमणीगणेन सार्थं  
 यो विक्रीडितमनिशं शृणोति मर्त्यः ।

पूतात्मा स निजजन्मि कृतार्थयित्वा  
 चिल्लोके वसति सदा समुपैति रामभक्तिम् ॥३८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 वनविहारो नाम॑ अष्टत्रिशोऽध्यायः ॥३८॥



### एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

#### ब्रह्मोवाच

इत्थं प्रियेण प्रतिलाल्यमाना व्रजस्त्रियस्ताः प्रणयेनैव बद्धाः ।  
 अलौकिकं भोगमवाप्य निर्वृता न किञ्चिदप्राप्मितो मेनिरे ताः ॥ १ ॥

त्रैलोक्यमध्येऽथाऽधिक्यं यर्त्किंचिद्द्वौगवस्तु प्राप्यमथाप्यवाप्यम् ।

तत्प्राप्तं रामरामाभिरङ्गे यावत्तत्रोदेति चित्तस्य वाज्ञा ॥ २ ॥

प्रतिक्षणं पाल्यमानाः प्रियेण क्रीतेनैव तेन पुंसांवरेण ।

आत्मानं लोकाधिकं मन्यमानाः समाचकाङ्क्षुःसह जायाः पदं याः ॥ ३ ॥

तद्वित्रिवेदीशिरसां रहस्यं चिल्लोकस्थं परमैश्वर्यपात्रम् ।

रूपं पूर्णं ब्रह्मणस्तत्परं यन्निर्णीयते नेतिनेतीतिविद्धिः ॥ ४ ॥

ता एकदा प्रमुदकाननमध्यदीव्यत्-  
 सौवर्णसौधशिखरेऽमलरत्नदीपे ।

अन्वासितं सहजयैव तया रमण्यः  
 प्रेयांसमेव ददृशुः खलु शुक्लवर्णम् ॥ ५ ॥

१. वनविहारे—अयो०, रीव०, बड़ो० । २. °प्या°—रीव०, बड़ो० ।

एभिश्चतुर्भिरपि शङ्खगदादिभिस्तै-  
 रथान्तमायुधवरैः समुपास्यमानम् ।  
 मूर्तैः स्फुरद्धिरणिमादिकं 'सिद्धिसङ्घै'-  
 स्तद्वद्धूर्गैश्च सकलैरनुमृथमानम् ॥ ६ ॥  
 त्रैलोक्यरचनातीतैः पदार्थैः सकलैर्युतम् ।  
 तावन्मात्रे सौधतले कोटियोजनविस्तरे ॥ ७ ॥  
 तदप्यस्यैव सामर्थ्याद् दृश्यमानं चिदात्मकम् ।  
 यद्रामपरमं स्थानं धिया पश्यन्ति सूरयः ॥ ८ ॥  
 दृष्टं तु सर्वगोपीभिस्तमसः परमद्भुतम् ।  
 शुद्धसत्त्वाव्यवहितं यद्रूपं ब्रह्मणः परम् ॥ ९ ॥  
 तत्रैकदेशो ददृशुः साकेतपुरकल्पनाम् ।  
 मधुरां द्वारकां चैव श्रीमद्वृन्दावनं तथा ॥ १० ॥  
 तस्मिन् सौधतले दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययुः ।  
 साकेतनगरे तत्र नृपं दशरथं तथा ॥ ११ ॥  
 चतुरस्तस्य रामादीन् कुमारान् दीप्तवर्चसः ।  
 ज्येष्ठस्य च कुमारस्य रावणाद्यसुरद्विषः<sup>३</sup> ॥ १२ ॥  
 स्वप्रेयसो रामनाम्नः सविधे स्वात्मसंस्थितः ।  
 प्रमोदवनसंयुक्तं दृष्ट्वाइचर्यं परं ययुः ॥ १३ ॥  
 मथुरायां च कंसार्हं केशवं लोकसुन्दरम् ।  
 अंशं श्रीरामचन्द्रस्य वीक्ष्य विस्मयमागताः ॥ १४ ॥  
 श्रीमद्वृन्दावने दिव्ये प्रमोदवनस्यांशके<sup>४</sup> ।  
 ईदृग्विधाभिर्लोलाभिः खेलन्तं नन्दनन्दनम् ॥ १५ ॥  
 ईदृग्रूपगुणकारं ईदृग्भूषाविभूषितम् ।  
 ईदृक्षेष्टावयोऽवस्थासन्निवेशविशेषितम् ॥ १६ ॥

१. °द्विनिंगमाधिक°—रीवाँ, °दिक°—बड़ो० ।      २. °साध्यैः—रीवाँ,  
 °सर्वैः—बड़ो० । ३. °णाच्या ( °च्याः—बड़ो० ) सुर°—अयो०, रीवाँ । ४. °वनगौ-  
 शके—रीवाँ, °गांशके—बड़ो० ।

ईदृक् परिकरोपेतं वीक्ष्य ता विस्मयं ययुः ।

अहो अयं स्वप्न उतेशमाया किंवास्मदीयो मतिविभ्रमः स्यात् ।

किंवा कैश्चित्कृत्रिमं संप्रयुक्तं येनास्मदीयं भ्रमतीवेक्ष्य चित्तम् ॥१७॥

अथो अयं [सुं ?] त्रिगुणातीतलोकं

चिल्लोकाख्यं<sup>१</sup> तस्य भर्तुः प्रासादात्<sup>२</sup> ।

सच्चिद्सुखैकनिधिमग्नगण्यं वरेण्यं

वयं प्रपन्नाः शरणं तस्य तेन<sup>३</sup> ॥१८॥

एतत्साकेतनगरे पूर्वसिद्धे नवांशकम् ॥

तर्त्किनु पश्याम एवं साकेताख्यं मथुरायां

किं वा विमृष्यामो मथुरां साकेतधाम्नि ।

किं जानोमो द्वारकायामयोध्या-

मयोध्यायां द्वारकां वापि किस्त्वत् ॥१९॥

वृन्दावने किं प्रमोदारण्यमेतत्

प्रमोदारण्ये किनु वृन्दावनं तत् ।

चित्रं हि सौधस्य विशालतेयं

यत्रानन्तो भात्यसौ कोऽपि देशः ॥२०॥

अयं प्रमोदविफिने किं विभाति

किं वैतस्मिन् प्रभुद्वनं चकास्ति ।

दिव्यं स्वानन्दौघं चिन्मयमप्रतर्कर्यं

सत्त्वातीतं शुद्धसत्त्वात्मकं च ॥२१॥

अस्माकं वै पुरत इदं चकास्ति

किं वै स्फीतं धाम विष्वक्रप्रवाहम् ।

पश्यामोऽत्र प्रेयसा सार्धमेतत्

स्वीयानां वै वृन्दभानन्दयुक्तम् ॥२२॥

पश्यन्त्यस्ता इत्थमग्ने चलित्वा

इयामं रामं ददूशुः पूर्ववच्च ।

१. °लोकाख्यात्—रीवाँ, बड़ो० । २. प्रसादात्—अयो० रीवाँ, बड़ो० । ३. स्म  
इत्येव विद्वः—अयो० ।

तत्राप्येनं परिकरमात्मना समेतं

गोप्यो वीक्षाञ्चक्रिरे साभ्यसूयम् ॥२३॥

सहजा [जे ?] यं तथा स्वामी रूपान्तरविधानतः ।

प्रेयसोऽत्यन्तवैषम्यं दृष्ट्वा गोप्योऽवदन्निति ॥२४॥

दृष्टं कवचिदहो आल्यः<sup>१</sup> प्रेयसोऽस्य छलात्मनः ।

अतिधूर्तस्य मूर्तस्य कैतवस्यैव कैतवम् ॥२५॥

तथास्त्ययमसावत्र कृत्वा रूपान्तरग्रहम् ।

प्रेयसीं रमयत्येनां विजातीयसुखात्मना ॥२६॥

प्रियो विश्वसनीयोऽसौ नैव सख्यः कथंचन ।

गुणक्रियायां व्यक्तौ वा यत्प्रामाण्यं न विद्यते ॥२७॥

आराध्योऽसौ पुनर्वृत्ते सहजानन्दलब्धये ।

नो चेत्प्राणपरित्यागं कुरुध्वं मानवाजिताः ॥२८॥

को विशेषो मतस्त्वस्यामस्मत्सौभाग्यधर्षणः<sup>२</sup> ।

यद्वशीभावितो धूतो रमत्येकान्तसंगतः ॥२९॥

इत्यन्योन्यं समामन्त्र्य दुरात्मानो दृढवत्ताः<sup>३</sup> ।

प्रमोदवनवीथीषु देहान् सन्त्यज्य गोपिकाः ॥३०॥

सहजामाविशन् सर्वाः सत्वांशेन मृगीदृशः ।

प्रियेणकान्तभोगाय चक्रिरे कर्म दुष्करम् ॥३१॥

तावत्तासां शरीराणि कालशक्तिर्जुगोप च ।

न म्लानिर्न च विकलेदो बभूव तत्प्रसादतः ॥३२॥

ततः स सहजानन्दशक्त्या रेमे च पूर्ववत् ।

संभोगविप्रलभ्यां स्वस्वकालोचितक्रियः ॥३३॥

साप्याचकाङ्क्षे कान्तस्य स्वरूपानन्दलब्धये ।

ततः साप्यविशद्रामं तद्रूपानन्दलब्धिहृत् ॥३४॥

परमानन्दपाथोधिस्वभावचिद्वपुर्दर्शम् ।

स्वरूपमात्रनिरतं विरतं विषयग्रहात् ॥३५॥

१. अल्पाः—रीवौ, बड़ो० । २. °वर्धन—अयो० । ३. °श्रिताः—अयो० ।

सममित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबान्धवम् ।  
 तं प्राप्य सहजालक्ष्मीः परब्रह्मस्वरूपिणम् ॥३६॥  
 न प्रापातिशयानन्दं प्राप्ता न रतिजां मुदम् ।  
 यत्र सर्वे महानन्दा एकीभूता भवन्ति वै ॥३७॥  
 परस्परा न लक्ष्यन्ते गुणाः स्वार्थविवर्जिताः ।  
 मोक्षेति नास्ना विख्याताः केवलं शून्यरूपिणः ॥३८॥  
 तामवस्थां गतो रामः केवलं ब्रह्मशब्दभाक् ।  
 संयोगं नैव जानाति केवलानन्दरूपधृक् ॥३९॥  
 स्मृत्वा पूर्वविलासौघं विप्रलभ्मरसोऽभवत् ।  
 तदा प्राणप्रियां स्मृत्वा जजागार<sup>१</sup> महारुजः ॥४०॥  
 कव याता मे प्रिया सीता चन्द्रवक्त्रा चकोरदृक् ।  
 अहो प्राणप्रिया सा मे हाहा प्राणप्रिया मम ॥४१॥  
 कव गता कव गता देवी वज्चयित्वेव मामपि ।  
 स्वरूपं विस्मृतं भाति तां विना मृगलोचनाम् ॥४२॥  
 ततो हृदयदेशात्तु रामस्यानन्दरूपिणः ।  
 एकद्वृती समुद्भूता या पुरा दृष्टविग्रहा ॥४३॥  
 विलपन्तं तदा दृष्ट्वा प्राह सत्वरमेव सा ।

### दृत्युवाच

सर्वास्ता व्रजसुन्दर्यों सीतामर्षवशंगताः ॥४४॥  
 अस्याः सुखं परिप्राप्तुं लिल्युरस्यां<sup>२</sup> चिदाकृतौ  
 इयं त्वयि विलीनाभूत्तस्वं किमनुशोचसि ॥४५॥  
 शृङ्गारस्यैव संहारकालोऽयं समुपस्थितः ।  
 एतासु लीनरूपासु शून्यं विश्वं विभाति मे ॥४६॥  
 शून्यं प्रमोदविपिनं शून्यं साकेतपत्तनम् ।  
 शून्यं ब्रह्मसुखं चैव त्वं शून्यमिव लक्ष्यसे ॥४७॥  
 तस्मात्त्वमधुना राम प्रादुर्भाविय भामिनीम् ।  
 यदा शृङ्गाररूपस्य जन्म जायेत पूर्ववत् ॥४८॥

१. जागार स—अयो० । २. लिप्सुरस्यन्—बडो० ।

ततो रामो रक्ति कर्तुमिच्छां चक्रे सनातनीम् ।  
 इच्छां चक्रे स्वरूपं च सच्चिदानन्दविग्रहे ॥४९॥  
 एकोऽहं बहुरूपेण रस्ये स्वानन्दशक्तिभिः ।  
 ततः प्राणप्रिया सीता श्रीमज्जनकनन्दिनी ॥५०॥  
 हृदेशात् रामचन्द्रस्य प्रादुरासीत् सुलोचना ।  
 प्रकाशयन्ती हरितः स्वरूचा दीप्यमानया ॥५१॥  
 साक्षीत्तु पर्ति प्रेस्णा प्रणयालोकतत्परा ।  
 अहो त्वयि विलीनापि विरहं लब्धवत्यहम् ॥५२॥  
 क्वायं तव भुखाम्भोजदर्शनप्रोद्भूवो रसः ।  
 क्व च स्वरूपानन्दान्तर्लयजाः परमा भुदः ॥५३॥  
 उत्कृष्टोऽपि ममात्यन्तं ब्रह्मानन्दो न रोचते ।  
 यथा त्वद्भूजनानन्दो नित्यमास्वादिमद्रसः ॥५४॥  
 विप्रलम्भो मया जातस्त्वयि कान्त विलीनया ।  
 मयि लीनास्तु ताःसर्वाः किं जानासि व्रजाङ्गनाः ॥५५॥  
 मय्यमर्षपरा भूत्वा मत्पदं संगतास्तु ताः ।  
 इत्युक्त्वा निजहृदेशात् प्रादुर्भावितवत्यसौ ॥५६॥  
 ततः समस्तास्ता गोप्यो यथापूर्वं बभाषिरे ।  
 स्वानि स्वानि शरीराणि जगृहुः पूर्ववत्तु ताः ॥५७॥  
 प्रणम्य कान्तं कान्तां च इदं वचनमब्रुवन् ।  
 वयं त्वया स्पर्द्धमाना गतास्त्वत्पदवीं सखि ॥५८॥  
 त्वदीयानन्दभोगाय किमर्थं त्वं लयं गता ।  
 पृथग्भूततया स्थित्वा संभोगं नाच्चरः कुतः ॥५९॥

### सीतोवाच

प्रियस्वरूपावाप्त्यै च लीना प्रागभवं प्रियाः ।  
 ततः शून्यतयातिष्ठं नान्वभूवं किमप्यहम् ॥६०॥  
 ततो विकलविता भूत्वा प्रादुर्भूता पृथक्तया ।  
 युष्माभिर्मयि लीनाभिः किं कृतं वामलोचनाः ॥६१॥

युज्माकमेव भोगार्थमहं जाता पृथक् प्रभोः ।  
 नानेनैक्येऽपि वर्तेयं स्वरूपानन्दरूपिणी ॥६२॥  
 अतः परं तु आं यूयं नानुसूयितुमर्हथ ।  
 संहारः स्यात्तदा सख्यः शृङ्गारस्य रसेशितुः ॥६३॥  
 तस्मात्स्वस्वात्ममर्यादां न विलम्बितुमर्हथ ।  
 अहं प्रिया भवत्यश्च सततं शर्म बिभ्रतु ॥६४॥  
 अशक्यं न प्रभोरस्य सर्वासां भोगभोजने ।  
 यथा चन्द्रस्य सर्वेषां कुमुदानां प्रकाशने ॥६५॥  
 एनं हि सर्वभावेन सर्वा एव भजन्ति ।  
 ओमित्युक्त्वा तु ताः सर्वाः पूर्ववन्सुदमान्पुवन् ॥६६॥  
 नित्यरासविलासादीश्चक्रुः स्वप्रेयसा सह ।  
 एवं विहरतस्तस्य प्रमोदविपिनान्तरे ॥६७॥  
 बहु संवत्सरा जगमुदिव्यतारुण्यशालिनः ।  
 प्रमोदविपिनद्वारे कदाचिल्लक्षणादिभिः ॥६८॥  
 आतृभिः सह संजातः संग्रामोऽसुरयूथपैः ।  
 तेषां प्रयुद्धचतां तत्र उद्दतिष्ठन्महान् ध्वनिः ॥६९॥  
 तं श्रुत्वा रघुशार्दूलो गोपिकाः प्रत्युवाच ह ।  
 कोऽसौ ध्वनिः श्रूयतेऽद्य प्रमोदविपिनाद्वहिः ॥७०॥  
 प्रायो मे आतरः केनाप्याक्रान्ता सुरवैरिणा ।  
 नियुद्धस्येव संरावः श्रूयते व्रजयोषितः ॥७१॥  
 तत्र गछाम्यहं शीघ्रं पुनरेष्यामि वोऽन्तिकम् ।  
 ततस्ताभिरनुज्ञातो लक्षणस्यान्तिकं ययौ ॥७२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे राच्चरितवर्णनं  
 नाम<sup>१</sup> एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥



१. रामचरिते—अयो०, बड़ो०, नास्ति—रीवाँ ।

## चत्वारिंशोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

तत्र गत्वा दर्दशासौ युद्धचन्तं लक्ष्मणं परि ।  
 भरतं चैव शत्रुघ्नं दानवैर्बलसंवृतैः ॥ १ ॥  
 आगतं राममालोक्य अभियुक्ताः परस्तु ते ।  
 लक्ष्मणो भरतोऽरिघ्नो हर्षभापुरनुत्तमम् ॥ २ ॥  
 ततो रामसहायास्ते परान् जिग्युश्च तत्क्षणात् ।  
 स्वस्था भूत्वा ततो ज्येष्ठभूचिरे वचनं त्विदम् ॥ ३ ॥

### लक्ष्मण उवाच

स्वागतं ते गुणाधीश<sup>१</sup> कार्यं संपादितं प्रभो ।  
 सेवनात् कामराजस्य कच्चित् संपूरिता स्पृहा ॥ ४ ॥  
 त्वदाज्ञातत्पराः सर्वे वयं गोपगणैः सह ।  
 धेनुरक्षापरा नानातीतवन्तः स्म वासरान् ॥ ५ ॥  
 प्रत्यूहाश्चेह सज्जाता बहवोऽप्यसुरैः कृताः ।  
 तेऽपि नीताः क्षयं राम त्वत्प्रसादजुषा मया<sup>२</sup> ॥ ६ ॥  
 एतौ च भ्रातरौ सम्यगवर्तेतां त्वदाज्ञया ।  
 अधुना यत्तु कर्तव्यं तदपि श्रूयतां परम् ॥ ७ ॥  
 राजा दशरथेन त्वमस्माभिः सेवकैः सह ।  
 आकारितोऽसि नीतिज्ञ विवाहार्थं वयोयुतः ॥ ८ ॥  
 धात्रीगृहे वयं सर्वे जाताः स्म धृतपुष्टयः ।  
 अधुना पितुरादेशादयोध्यां याम राघव ॥ ९ ॥  
 गजाश्वरथसन्दोहः पित्रा नः प्रेषितोऽनघ<sup>३</sup> ।  
 गजा ध्वजपरिप्रौढाः<sup>४</sup> स्वर्णालङ्कारशालिनः ॥ १० ॥  
 हेमपल्याणिनश्चैव रथाश्वाः सपरिच्छदाः ।  
 सेवकाश्चापि बहवो नीता दिग्देशभूमिपाः ॥ ११ ॥

१. गुणागाध—बड़ो० । २. °मपि—रीवाँ । ३. ऽधुना—अयो० । ४. गज°—  
अयो०, रीवाँ, °पौष्ठाः—बड़ो० ।

अस्मदानयनार्थाय प्रेषिताः सर्वभूभृता<sup>१</sup> ।  
 श्रीमहशरथेनास्मत्तातेन प्रवयोजुषा ॥१२॥  
 आर्यं त्वां च कृतोद्वाहं राज्यकार्ये नियोज्य सः ।  
 प्रियोऽस्माकं पितृवृत्तिं वानप्रस्थं श्रियिष्यति ॥१३॥  
 तद्वार्यं तत्र संगम्य पितरौ नन्दयामहे<sup>२</sup> ।  
 धात्रीगृहे निवसतां बहवो वत्सरा यथुः ॥१४॥  
 इदानीं पितृगैरस्य कुर्मोऽलङ्कृरणं वयम् ।  
 किं तैः सुतैर्ये न कुर्युः पितृसंतोषणक्रियाम् ॥१५॥  
 जीवतो गेहसंतोषो मृते वा पारलौकिकः ।  
 एवमुक्तस्तु तै राम ओमित्यूचे वचः प्रभुः ॥१६॥  
 अयोध्यां प्रतिगच्छामो नन्दयामः पितनथ ।  
 ततस्ते कृतसंकल्पाः प्रयाणाय पितुर्गृहे ॥१७॥  
 सुखिताख्येन गोपेन गवेन्द्रेणेदमीरिताः ॥

हे राम हे लक्ष्मण भूरिकर्मन् हे शत्रुहन् भरत पितुर्गृहं प्रति ।  
 किं प्रस्थिता यूयमितोऽधुना व्रजे कः पालयिष्यत्यखिला अमूर्गाः ॥१८॥  
 एताः खलु प्रेमभरेण युष्मत्संपालिताः कंचन विश्वसन्ति न ।  
 अहो धर्मजा तत्क्षणादेव चामूर्विनाशमेष्यन्ति च त्वद्वियोगात् ॥१९॥  
 अस्माकं वा कागतिस्तात युष्मत्प्रेमामृतैकाश्रयिणां गोपकानाम् ।  
 अयं व्रजो वा मुखदर्शने ववचित्पलार्द्धमप्यन्तरायं न सोढा ॥२०॥  
 क्रीतः प्रेमणा राजपुत्रैर्भवद्भूर्लोकोऽन्नत्यः कां गति लभ्यतेऽसौ ।  
 कव युष्माकं मन्दिरे नः प्रवेशो भूमेरेकहृष्ट्रछायास्पदानाम् ॥२१॥  
 यूयं तदेवं कर्तुर्महन्ति नैव धर्मज्ञातारः सत्कृपासिन्धुचित्ताः ।  
 अनन्यभाजां खलु नो यूयमेव चित्रं वित्तं चेह चामुक्रपूर्णम् ॥२२॥  
 नान्यं भजामो न च संस्मरामो न चाश्रयामो न च वीक्षयामः ।  
 भवत्पदाम्भोरुहमत्र नः परं परं शरणं शरणागतानाम् ॥२३॥

१ °स्तैन भू°—अयो० । २. नन्दयामहि—अयो० ।

## माङ्गल्योवाच

वत्स राम भवतः प्रणयेन प्रायशो व्रजजनोऽस्ति निबद्धः ।  
 अद्य का गतिरमुष्य भवित्री प्रेषिते त्वयि चिरात्कृतसञ्जे ॥२४॥  
 जीवतां<sup>१</sup> खलु जनो भवतासौ चापदां समुदयानपनीय ।  
 अद्य किं स न मरिष्यति युष्मद्वक्त्रपूर्णविधुदर्शनहीनः ॥२५॥  
 यः खलु प्रतिदिनं त्वया विना वर्तितुं क्षणमपि क्षमते न ।  
 स त्वदाननविलोकनं विना कीदृशीं गतिमवाप्स्यति लोकः ॥२६॥  
 तत्पुरीं प्रति न याहि सांप्रतं रामचन्द्र पितराविहैव ते ।  
 आगमिष्यत इदं वचनं नः पालयस्व वरदेशवरेशवर ॥२७॥  
 एष गोपनृपतिस्त्वया परं पुत्रितां समुपगम्य निर्वृतः ।  
 वत्स राम तदमुष्य वियोगं दातुमर्हति भवान्न कदापि ॥२८॥

## गोपा ऊचुः

अयि मित्राणि निबोधत रामसुमित्रातनयभरतशत्रुघ्नाः युष्मद्विरह-  
 भयार्तिः कदाचिदपि नानुभूतपूर्वा नः । संप्रति भवतां नगरे प्रस्थानं  
 श्रूयतेऽस्माभिः दीर्घमजनिष्ट दुःखं प्राणान्तादप्यतीव गरीयः ॥२९॥

अथ भविता किमतोऽग्ने मित्रवियोगेन मरणमस्माक-  
 मथवा पूर्वं मरणं तदनु वियोगो भवतु भवाय ॥३०॥

साद्वंतदस्माभिरा बाल्याद्वहुलं सुखं लसितम् ।

तेषां क्षणवियोगेऽपि कथं स्थास्यामहे वयम् ॥३१॥

एषां विलोकनेऽस्माभिर्निमेषोऽपि विर्गहितः ।

वहन्तो विरहं तेषां कथं स्थास्यामहे वयम् ॥३२॥

पानभोजनशय्यादौ यैविना न च संस्थिताः ।

विप्रयोगे चिरं तेषां कथं स्थास्यामहेऽधुना ॥३३॥

एषां राजकुमाराणां तिष्ठतां रत्नवेशमसु ।

दौवारिकैर्वयं रुद्धा प्राप्स्यामः किं प्रवेशनम् ॥३४॥

यौवराज्ये स्थितो रामः किंत्वस्मान् संस्मरिष्यसि [ति ?] ।

इन्द्रादिदिविषद्वन्दचो वन्दनीयपदाम्बुजः ॥३५॥

१. तावती—रीवाँ, तावत्तान्—बड़ो०

एवमालपतां तेषां वचांस्याकर्ण्य गोपिकाः ।  
 अमी वदन्ति किं तावदिति प्रोचुः परस्परम् ॥३६॥  
 तत्रैकापि च लोकेभ्यो रामयानं विजानती ।  
 प्रोवाच गाढधैर्येण नस्फुटद्धृदया सती ॥३७॥  
 अयि गोपा अहो आल्यः सर्वेऽपि नगरं प्रति ।  
 प्रस्थानं रामचन्द्रस्य समाचक्षत आर्तिदम् ॥३८॥  
 अयं खलु पितृभ्यां वै धात्रीगेहे चिरोषितः ।  
 यौवराज्याभिषेकार्थमाहूत इति शुश्रुमः ॥३९॥  
 एते खलु नरेन्द्रस्य कुमारा अर्निवर्चसः ।  
 राक्षसानां भयेनात्र गोपगेहे निवेशिताः ॥४०॥  
 इह तिष्ठद्विरेतैस्तु कति दैत्या विनाशिताः ।  
 राक्षसाः पूतनाद्यास्तु विकटाद्याश्च<sup>१</sup> राक्षसाः ॥४१॥  
 रामेण क्रीडता सख्यः सदय एव विनाशिताः ॥  
 त्रिलोकमध्ये नरदैत्यदैवतात् कुतोऽप्यमीषां हि भयं न विद्यते ।  
 एते खलु क्षमातलसाधुपालकाः कृतावताराः पुरुषोत्तमाः स्वयम् ॥४२॥  
 यथा राम<sup>२</sup>स्तथा लक्ष्मा<sup>३</sup> यथा स भरतस्तथा ।  
 यथैव भरतो वीरः तथा शत्रुघ्न उच्चकैः ॥४३॥  
 एते स्वयं रुचा पूर्णा भगवन्तो नरोत्तमाः ।  
 पितृभ्यामिति विज्ञाय समाहूताः स्वपत्तने ॥४४॥  
 जीवने चापि संदेहः किंत्वस्माकमतः परम् ।  
 येषां क्षणेऽपि विच्छेदो नानुभूतः कदाचन ॥४५॥  
 तेऽमी प्रयाताः स्वपुरं द्रष्टव्याः कथमक्षिभिः ।  
 इति श्रुत्वा सखीवाक्यं सर्वास्ता व्रजयोषितः ॥४६॥  
 मूर्छिताः सहसा तत्र निपेतुर्धरणीतले ।  
 पतितास्वासु धरणौ महान् कोलाहलोऽभवत् ॥४७॥

१. विद्यधार्चैव—अयो०, रीवौ० । २. श्रीरामः—बड़ो० । ३. लक्ष्मणः—  
 अयो०, रीवौ० ।

ता एवोपचरन्तीनां गच्छन्तीनामितस्ततः ।  
 दूतीनां च सखीनां च सदय एव व्रजाङ्गणे ॥४८॥  
 तालवृन्तानि कुरुत नाडी पश्यत पश्यत ।  
 मुखेषु सलिलं दत्त किञ्चित्पृच्छत पृच्छत ॥४९॥  
 अहो हि निमिषत्येषा इवसित्येषा तु किञ्चन ।  
 अहो किञ्चिद्विद्येषा 'ईषद्विस्फुरिताधरा ॥५०॥  
 इत्येवं वदतां तत्र जनानां च परस्परम् ॥

ततश्चिराय प्रतिलब्धचेतना गवेन्द्रघोषस्य' कुरञ्जलोचनाः ।  
 प्रिय प्रयाणश्रवणेन कातरा परं वचः प्रोचुरिदं परस्परम् ॥५१॥  
 अहो वयस्याः प्रतिकूलदेवाः कवचित्समाकर्णितमीदृशं वचः ।  
 अयं खलु श्वो नगरं प्रयाताहृतः पितृभ्यां युवराजयोग्यः ॥५२॥  
 ततः कथं जीवनमाप्नुयामः कदाप्यनभ्यस्तवियोगवेदनाः ।  
 गतिस्मिताप्रेक्षणभाषणादिभिः सख्योऽमुनाकृष्टवशीकृतान्तरा: ॥५३॥  
 ईदृग्विपत् क्वापि कदापि जन्मनि प्राप्ता नवास्मासु यतः सुसंशयः ।  
 अहोऽमुना वर्षदवानलादिना प्राणान्तकेभ्यः किमु रक्षिता वयम् ॥५४॥  
 इत्युक्त्वा सहसा गोप्यो गलत्कज्जलकैश्चलैः ।  
 कदम्बकुसुमस्थूलैर्बहुलैरश्रुविन्दुभिः ॥५५॥  
 ममृजुः कुचकाशमीरं दीर्घनिःश्वासकस्मिताः ।  
 यथा कथंचिद्वैर्येण प्राणान् संरुध्य तस्थिरे ॥५६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामप्रयाणो नाम<sup>१</sup>  
 चत्वार्थाद्यायः ॥४०॥



१-१. नास्ति—बड़ो० । २. रामप्रयाणे—अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

## एकचत्वारिंशोऽध्यायः

तो रामेति विश्लेषकातरं सुखिताभिधम् ।  
 गवेन्द्रं चैव माङ्गल्यां पुत्रविश्लेषकातराम् ॥ १ ॥  
 गोपान् सुदर्शनानन्दसुनन्दादीन् महात्मनः ।  
 गोपीश्च शृण्वतीः सर्वाः सदय एवेदमूचिवान् ॥ २ ॥  
 अयि तात गवेन्द्र त्वं मातर्माङ्गल्यके शृणु ।  
 सुदर्शनाद्याश्च गोपाः शृणुतेदं वचो मम ॥ ३ ॥  
 कच्चत्क्षणं न सोढव्यो भवतां विरहो मया ।  
 मद्वियोगप्रभूतार्तिः युष्माकं किंतु बाधते ॥ ४ ॥  
 भवद्वियोगजैवार्तिर्मम तावत्तोऽधिका ।  
 तथापि न क्वचित्तात संजाता संजनिष्यते ॥ ५ ॥  
 नाहं वसामि वैकुण्ठे न वै गोलोकसंजके ।  
 मथुरायां द्वारकायां इवेतद्वीपालये न वा ॥ ६ ॥  
 अहं वसामि सततं सुखितस्यैव मन्दिरे ।  
 माङ्गल्यकाकरानीतं मृदु हैयङ्गवीनकम् ॥ ७ ॥  
 अशानो ध्रातृभिः सार्धं नान्यथा तृप्तिरस्ति मे ।  
 एवं विज्ञाय वै नित्यं मम चारित्र्यमद्भुतम् ॥ ८ ॥  
 युवाभ्यां शोचितव्यं न कदाचित्कवच्छिदप्युत ।  
 न चैव मन्मनः क्वापि प्रमोदविषिणं विना ॥ ९ ॥  
 रमते बहुधा कलृपत्रैलोक्यश्रीभरेष्वपि ।  
 'रासाख्यलीलया मह्यमन्या लीला न रोचते ॥ १० ॥  
 गोपालबालकेभ्योऽन्यो न मे प्रणयभाजनम् ।  
 इयं हि मे नित्यलीला भवतां सदनेषु या ॥ ११ ॥  
 अन्यावतारसमये भवन्नैमित्तिकी हि सा ।  
 नित्यं वसामि युष्माकं सदने सरयूतटे ।  
 रासाख्यलीलाभिन्नित्यं विहरामि सखीगणैः ॥ १२ ॥  
 कदाचिन्मत्स्यरूपेण लोके प्रादुर्भवाम्यहम् ।

वेदोद्भुरार्थमुदधौ कुर्वञ्चरितमद्भुतम् ॥१३॥  
 कदाचित्कूर्मरूपेण प्रादुर्भूय करोम्यहम् ।  
 देवासुरेषु श्रान्तेषु मन्दराचलधारणम् ॥१४॥  
 कदाचिद्दैत्यराजे तु धरणीनाशनोद्यते ।  
 दिव्यवाराहरूपेण तदा प्रादुर्भंवाभ्यहम् ॥१५॥  
 कदाचिद्दूरकराजस्य प्रह्लादस्य सुखाकृते ।  
 नारसिंहस्वरूपेण दैत्यराजं निहन्म्यहम् ॥१६॥  
 कदाचित्सर्वदेवानां स्थानेषु स्थापनाकृता ।  
 दिव्यवामनरूपेण दैत्येन्द्रं छलयाम्यहम् ॥१७॥  
 कदाचित् परशुं धृत्वा धर्मस्य प्रतिपालकः ।  
 दुष्टक्षत्रविनाशाय भुवि प्रादुर्भवाम्यहम् ॥१८॥  
 कदाचिद्राघवे वंशे प्रादुर्भूय स्वविक्रमैः ।  
 धर्मं संस्थाप्य धरणीभारं बहु हराम्यहम् ॥१९॥  
 कदाचिन्मांशकलया कृष्णो वै संभविष्यति ।  
 द्वापरान्ते यदुकुले देववर्यां वसुदेवतः ॥२०॥  
 कदाचिन्मृत्युदुःखेन यज्ञजन्तून् विशोचतः ।  
 अनुग्रहामि संजातो बुद्धरूपेण भूतले ॥२१॥  
 कदाचिन्म्लेछवृन्देषु धर्मविप्लवकारिषु ।  
 नीलं हयं समारूप्य कलिकः प्रादुर्भवाम्यहम् ॥२२॥  
 अन्यैरपि स्वरूपैश्च तत्र तत्र स्फुटोभवन् ।  
 अधर्मं नाशयित्वाहं स्वधर्मं स्थापयाम्यहम् ॥२३॥  
 एवं यदा यदा धर्मः क्षीयते सर्वभूतजः ।  
 स्वात्मानं कल्पयित्वा तु तदा प्रादुर्भवाम्यहम् ॥२४॥  
 नित्यं वसामि भवतां सदने दिव्यगोकुले ।  
 माणिक्यरत्नसन्नद्मुक्तामणिविभूषितः ।  
 माङ्गल्यायाः करानीतं नवनीतमशन्नथ ॥२५॥  
 मद्वियोगजदुःखं तु भवतां नैव बाधते ।  
 यदि बाधेत सैषा तु मन्मायैव रसात्मिका ॥२६॥

संयोगो विप्रयोगश्च रसस्तु द्विविधः स्मृतः ।  
 आद्योऽनुभूत एवान्तो द्वितीयस्तु भविष्यति ॥२७॥  
 पित्रोः संतोषणं कृत्वा कृत्वोद्घाहं च तत्सुखम् ।  
 राज्यकार्यं विधायाथ पुनरेष्यामि वो गृहे ॥२८॥  
 न कार्यो भवता शोकस्तात मद्विरहोद्भवः ।  
 एष तु स्वप्नवद्भूत्वा क्षणाद्यास्यति दुःखदः ॥२९॥  
 अहं निजप्रियान् गोपान् नीत्वा यास्यामि तां पुरोम् ।  
 एतैविना क्षणं स्थातुं हेतात क्वापि नोत्सहे ॥३०॥  
 त्वं च तावद् गवां तात पालनं कारय प्रभो ।  
 अस्मिन् प्रमोदविषये नव्यनव्यैस्तृणाङ्कुरैः ॥३१॥  
 माङ्गल्यके मातरिह मा शुचो मद्वियोगतः ।  
 न त्वां विना क्षणमपि स्थातुं भो सुखसंयुतः ॥३२॥  
 गोपा यूयं सखायो मे आयान्तु मम सार्थगाः ।  
 प्रमोदवनविश्लेषो गतो वो मुखदर्शनात् ॥३३॥  
 भवद्भ्नः सहितः सर्वं राज्यकार्यं विधाय च ।  
 हत्वा चासुरसंदोहानेष्यामि पुनरत्र वै ॥३४॥  
 अन्ये च मत्प्रेमपराः<sup>१</sup> सकलव्रजवासिनः ।  
 न शोकेनाभितप्यध्वं मद्वियोगैकजन्मना ॥३५॥  
 एष वः स्वप्नवद्भूत्वा क्षणाद्यास्यति निश्चयः ।  
 इति तेषां समस्तानां प्रमोदवनवासिनाम् ॥३६॥  
 व्रजौकसां सदाराणां कृत्वा सान्त्वनमच्युतः ।  
 प्रियासुः<sup>२</sup> पितुरागारं तां रात्रि तत्र चावसत् ॥३७॥  
 तमीयुः सकला गोप्यः प्रियविश्लेषकातराः ।  
 रुदन्त्यो भूरिशोकेन प्रवासभयविह्वलाः ॥३८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामप्रवासो नाम<sup>३</sup>  
 एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

१. ये मत्परा :—रीवाँ, बड़ो० । १. प्रियालुः—रीवाँ, बड़ो० । २. रामप्रवासे  
 —अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

## द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

**गोप्य ऊचुः**

पित्राहूतः स्वनगरं राज्यकार्यविगुप्तये ।  
 प्रभात एव स्वैः साकं यास्यसीत्यनुशुश्रुम ॥१॥  
 नैवं त्वं कर्तुमहोऽसि हत्वा नो हरिणीरिच ।  
 निजदृष्टिशराविद्वाः प्रेमस्वरविभोहिताः ॥ २ ॥  
 त्वं तु विस्मृतवान् प्रायः प्रमोदवनखेलनम् ।  
 विस्मर्तव्यं न चास्माभिस्तत्सुखं क्षणमप्यहो ॥ ३ ॥  
 ता याभिन्यस्तद्रहस्यं केलयस्ताश्च वेलयः ।  
 ते ते रासविलासाद्याः स्मर्यमाणा हरन्ति नः ॥ ४ ॥  
 प्रमोदवनपर्यन्तं भूरिकुञ्जनिकुञ्जभूः ।  
 प्रमोदे स्थापयत्यन्तः स्मरन्तीनां पुनः पुनः ॥ ५ ॥  
 कदाचिद्द्रवता साकं रामसंपूर्णचन्द्रमाः ।  
 खेलन्तीनां वनेऽस्माकं संध्याभूत्कृष्णपक्षगा ॥ ६ ॥  
 ततः प्रवदृते ध्वान्तं गाढं नवधनोपमम् ।  
 यस्मिन्प्रत्येकसादाय भुक्तवान् नो रघूद्वह ॥ ७ ॥  
 कदाचित्पुष्पावच्ये याताः प्रमुदकानने ।  
 संध्यायामभवद्घोषो घनसंघट्जोऽम्बरे ॥ ८ ॥  
 तदा प्रवदृते दिव्या कामकेलिर्मनोहरा ।  
 यां विलोक्य मुदं भव्यां प्रापुर्गीर्विशिखा अपि ॥ ९ ॥  
 कदाचित्सरयूवारिगम्भीरावर्तदुर्धरम् ।  
 वयं च दधि विक्रेतुं यातुकामाः पुरं प्रति ॥ १० ॥  
 तदा त्वं कामसौन्दर्यगम्भीरेऽस्मन्नदीजले ।  
 सौवर्णीं नावमारोप्य क्रमात्तरितवानसि ॥ ११ ॥  
 कदाचिद् घटूरक्षायै नियुक्ते गोपभूभृता ।  
 गच्छतीर्दधिविक्रेतुं मध्ये मार्गं निरुद्धवान् ॥ १२ ॥  
 कदाचिद्वथमारोप्य सौवर्णमणिकिञ्चिणीम् ।  
 वनाद्वनान्तरं नोत्वा शोभां दर्शितवानसि ॥ १३ ॥

कदाचिन्माधवे मासि कुसुमाकरशोभिनि ।  
 दिवानिशमविज्ञाय नित्यं विहृतवानसि ॥१४॥  
 कदाचिन्निष्ठुरे ग्रीष्ममासे दिव्ये तु पाथसि ।  
 जलकेलीः सहास्माभिः कृतवानसि सुन्दर॑ ॥१५॥  
 कदाचिद् भूरिवर्षायां रत्नाद्रेरधिकन्दरम् ।  
 वार्भृतो जवनीकृत्य॒ रत्वान् श्रीगणैः सह ॥१६॥  
 कदाचिद्द्वैमने काले कुञ्जाभ्यन्तरवेशमसु ।  
 हसन्तीसाम्यमानेतुं॓ तूलैः सेवितवानसि ॥१७॥  
 कदाचिच्छैशिरे काले लतिका इव पुष्पिणीः ।  
 मरुत्वानिव धीरस्त्वं प्रिय कम्पितवाँश्च नः ॥१८॥  
 इत्यं तत्तकालदेशैः तत्तत्तारुण्यवेशिता ।  
 तत्तद्वल्ली वीथीॄ पथःॅ पीत्वा प्रेमामृतं रसम् ॥१९॥  
 तत्तत् कामक्रीडा यस्य संचितस्वर्णविडाकारः ।  
 श्रीरामेन्द्रोजितवानसि कन्दर्पणां किमपि परार्धम् ॥२०॥  
 एवं त्वं रमयास्मान् स्वानन्दरससागरे ।  
 प्रत्येकं बहुलीकृत्य रामेन्द्रो रत्वानसि ॥२१॥  
 अधुना तानि तानोह सुखानि विमुखे त्वयि ।  
 पर्णवत्कण्टकानीव भेत्स्यन्ति हृदयानि नः ॥२२॥  
 मैवं कार्षीः कदापि त्वं वनितावधपातकम् ।  
 विक्रमी पुँस्वभावत्वादयि त्वं निष्ठुरोऽप्यसि ॥२३॥  
 प्रमोदवनचन्द्रस्य तव प्रिय चकोरिकाः ।  
 न खेदय मनाङ् मानिन् मनोज्ञाचरितो भव ॥२४॥  
 विस्मृत्य निखिलां चेष्टां महामाधुर्यवार्णिधिम् ।  
 शुष्ककाष्ठस्वभावं च कथमुत्सोढवानसि ॥२५॥  
 कोऽयं क्रमो रसिकपुञ्जव सार्वभौम  
 यद्भूरिशः सुखसुधोदधिनिर्वृतानाम्ॉ ।

- 
१. अधिशंवर—अयो० । २. जयमी०—बड़ो० । ३. हसन्तीषु समानेषु—  
 अयो० । ४. तत्रतद्वल्लीथी—रीवाँ, बड़ो० । ५. तत्तत्तकाले तत्तदेश—अयो० ।  
 ६. पाथः—अयो० । ७. निर्मितानाम्—रीवाँ ।

आर्तिप्रवेकमनुभावयसि स्वभावात्  
 स्वानन्दसारसमुदायमयोऽपि सन् नः ॥२६॥  
 ईशोऽपि सर्वभुवनस्य निजे वशोऽसि  
 प्रेमैकवश्यहृदयोऽसि सुसाधनोऽसि ।  
 निर्वाञ्छनोऽसि स कथं रघुनन्दन त्वं  
 कर्मातिघोरमिह कर्तुमथोद्यतोऽसि ॥२७॥  
 मैवं काषीः प्रभो तस्मात् प्रमोदवनदुःसहम् ।  
 विरहं कर्तुमर्हेऽसि<sup>१</sup> रसिकेन्दुमहामणे ॥२८॥  
 अथ चेत्त्वमिमं नाथ संकल्पं कृतवानसि ।  
 तदा नः प्राणनिर्वृत्त्याद्युपायं<sup>२</sup> शिक्षयाधिहन् ॥२९॥  
 असमक्षे त्वयि स्वामिन् किं कायं सेवकैः जनैः ।  
 स्वर्भोगं वापि सन्यासमरण्यं वा विरक्तिः ॥३०॥  
 यैः कालदिङ्ग्निमिषभित्तिपदान्तरेऽपि  
 सोढः कदाचिदपि नैव भवद्वियोगः ।  
 ते जीवनं समधिगम्य कथं सहन्तां  
 श्रीमन् महाविरहदावजपापकीर्तिम् ॥३१॥  
 तस्मात्त्वयि दृशोद्धृद्वादृद्वरं याते प्रियोत्तम ।  
 किं कायं भक्तवर्गेण<sup>३</sup> तदस्मास्वनुशिक्षय ॥३२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रानाम<sup>४</sup>  
 द्विचत्वारिंशोध्यायः ॥४२॥




---

१. मर्हेसि किं—रोवाँ, बड़ो० । २. निर्वृत्तमु०—रीवाँ, बड़ो० । ३. भक्तिवर्णेण—रीषाँ, बड़ो० । ४. रामयात्रायां—अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

## त्रिवत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोपास

इति तासां वचः श्रुत्वा रामः कारुणिकोत्तमः ।  
ददौ प्रतिवचस्तासां स्मित्वा संमोहयन्निव ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

अहो प्रिया मत्स्वरूपा मत्केति सुखसंश्रयाः ।  
नैवं विलपितुं योग्या भवन्त्यो नित्यसंगताः ॥ २ ॥  
व्यापिवैकुण्ठलोकेऽस्मिन् प्रमोदविधिनाभिधे ।  
मदीये चिन्मये दिव्ये भवन्त्यो ह्यपि देवताः ॥ ३ ॥  
श्रीमती जानकी सीता मदीया परमप्रिया ।  
तदंशाः सकला यूयं नित्यं सञ्चिहिता मयि ॥ ४ ॥  
चन्द्रस्य चन्द्रिका यद्वत्तपनस्य प्रभा यथा ।  
पृथिव्या इव संबन्धो घटस्येव घटत्वकम् ॥ ५ ॥  
असाधारणमेवैषा मदीयं लक्षणं प्रिया ।  
तदंशत्वाद्भवत्योऽपि मदीयं लक्षणं परम् ॥ ६ ॥  
विश्लेषो न कदाप्यस्ति भवतीभिः समं मम ।  
नाभूत्त भविता वापि चिन्मयेऽस्मिन् महापुरे ॥ ७ ॥  
यथाहं सच्चिदानन्दरूपः श्रीविग्रहं दधत् ।  
तथैव मत्प्रिया यूयं सच्चिदानन्दविग्रहाः ॥ ८ ॥  
लीलेक्षया यथैवाहं निर्गुणोऽपि गुणात्मकः ।  
तथा प्रिया भवन्त्योपि नानुशोचितुमर्हथ ॥ ९ ॥  
लीला गुणमयी ह्येषा मदीया निर्गुणापि च ।  
नैते गुणाः प्राकृतत्वं कदाचित् कलयन्ति च ॥ १० ॥  
प्रमोदवनकुञ्जाश्च प्रमोदवनमेदिनी' ।  
प्रमोदवनगावश्च प्रमोदवनभूरियम् ॥ ११ ॥

## १. °मोहिनी—रीवाँ, बड़ो० ।

माङ्गल्या च गवेन्द्रश्च गोपा गोप्यः खगा मृगाः ।  
 सर्वं ब्रह्मयं नित्यं<sup>१</sup> सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥१२॥  
 अपि स्मरथ यद्दृष्टं दिव्ये<sup>२</sup> प्रासादवेशमनि ।  
 द्वारकां मथुरां चैव श्रीमद्वृन्दावनं तथा ॥१३॥  
 प्रमोदविपिनस्थेऽस्मिन् प्रमोदवनमुत्तमम् ।  
 तत्र मां नित्यलीलास्थं स्वात्मनि चैव सुन्नताः ॥१४॥  
 रुक्मिणीं जानकीं चैव सहजां प्रियमीश्वरीम् ।  
 अपरा मे प्रिया भक्ता भक्तिरूपा तथापरा ॥१५॥  
 मत्तोऽपि मम भक्तानां मम भक्तिर्विशिष्यते ।  
 यथाहं वश्यतां यामि सा मत्तोऽप्यधिकं व हि ॥१६॥  
 प्रेमनेत्रा भावमुखी रसगात्री रतिस्तनी ।  
 रागाधारा महाभावहृदया मे प्रिया परा ॥१७॥  
 सैषा मद्वामतनुगा कुन्दरी मधुरस्मिता ।  
 सीतेतिसाधिकेत्याख्या सहजेति च कीर्तिता ॥१८॥  
 मोदिनीति सदाख्याता मन्मनोमोददायिनी ।  
 शश्यासनाटनस्थाने यां भवन्त्योऽभ्यसूयथ ॥१९॥  
 इयं हि सर्वलीलानामेकैवास्ति प्रवर्त्तिका ।  
 नानया रहितः क्वापि भविष्यामि मृगेक्षणाः ॥२०॥  
 यूयं तदंशभूतत्वान्नित्यं संनिहिता मयि ।  
 मद्गात्रकिरणाकाराः किमर्थमनुशोचथ ॥२१॥

## गोप्य ऊचुः

एवं चेत्तर्हि श्रीराम प्रवादः कोऽयमुत्थितः ।  
 अयोध्यां यास्यति श्रीमान् पित्रोराज्ञावशंवदः<sup>३</sup> ॥२२॥  
 तच्छ्रुत्वा सहजो लोके<sup>४</sup> महान् खेदोऽभ्यजायत ।  
 अकाण्डताण्डवप्रायं किमिदं रघुपुञ्जव ॥२३॥

१. वित्त—अयो० । २. दिव्य—बड़ो० । ३. पित्रोराज्ञोवशं०—रीवॉ,  
 बड़ो० । ४. तच्छ्रुत्वा सहगोलोकं—रीवॉ, बड़ो० ।

लोकः किं वितर्थं व्रूते त्वं वा किं वज्चयस्युत ।  
निर्हेतुको न चैवायमुदितः सुमहान् ज्वरः ॥२४॥  
एवं नः संशयं छिन्धि सत्यं व्रूहि च राघव ।  
नानृतं हि वदेल्लोको भवतीत्यास्तिकं<sup>१</sup> वचः ॥२५॥

### श्रीभगवानुवाच

न लोको वितर्थं व्रूते मल्लीलादर्शको हृसौ ।  
किंत्वस्मिन् विषये यूयं नानुशोचितुमर्हथ ॥२६॥  
पुरा खलु भवे यूयं देवं पशुपतिं प्रभुम् ।  
कोपयित्वा लब्धशापाः किंचिद् दुःखमवाप्स्यथ ॥२७॥  
ददौ स भगवान् शापं युज्मन्यं मद्वियोजनम् ।  
तेनेदं रूपमन्तर्धाः किंचित्कालं भविष्यति ॥२८॥  
तत्तद्देहांशरूपेण तदा यूयं भविष्यथ ।  
अन्तरङ्गतया सर्वा लीलामनुभविष्यथ ॥२९॥  
लोके वियोग<sup>२</sup> इत्याख्या तस्यैव च भविष्यति ।  
भविष्यति तु योजन्तर्धिः साक्षाददर्शीतु<sup>३</sup> किंचन ॥३०॥  
तत्राप्यनवर्धिं तावदानन्दं समवाप्स्यथ ।  
मद्भूयत्वान्मदंशानां नैवं यूयं भिदायुजः<sup>४</sup> ॥३१॥

### गोप्य ऊनुः

कदा स भगवान् रुद्रः शशापास्मान् भवतिप्रयाः ।  
किंवा तत्कारणं राम कुत्र देशोऽथवा प्रभो ॥३२॥

### श्रीभगवानुवाच

एकदा चैव विषये श्रीप्रमोदवनान्तरे<sup>५</sup> ।  
भवन्त्यः सहजायुक्तारूचक्रुः क्रीडां मया सह ॥३३॥  
ततश्च<sup>६</sup> सुरतश्चान्ता<sup>७</sup> उपेक्ष्य भवतीरहम् ।  
मध्ये निकुञ्जभवनं रतवान् रमया सह ॥३४॥

१. भवान्नैवास्तिकं—अयो० । २. मद्वियोग—रीवाँ, बड़ो० । ३. दर्शस्य—  
अयो० । ४. भिदा पुनः—रीवाँ, बड़ो० । ५. श्रीमत्रमुद०—अयो० । ६. क्रीडायां—  
अयो० । ७. सुरतस्यान्ते—बड़ो० ।

यूर्यं निकुञ्जभवनस्याङ्गणे<sup>१</sup> बद्धमण्डलाः ।  
 मद्गुणानेव गायन्त्यस्तस्थुः सुस्थिरमानसाः ॥३५॥  
 तत्राजगाम भगवान् रुद्रः पशुपतिः प्रभुः ।  
 कृत्वा वन्दनमेताभ्यः कव राम इति सोऽव्रवीत् ॥३६॥  
 नोचुस्ताः संप्रगायन्त्यो रामचारित्रमद्भुतम् ।  
 पुलकैः समुपेताङ्ग्यः कलिताश्रुविलोचनाः ॥३७॥  
 रुद्रः प्रतिवचोऽश्रुत्वा कृतावज्ञा उवाच ताः ।  
 भवत्यो रामविश्लेषं लभन्तामचिरात्स्त्रियः ॥३८॥  
 इत्युक्त्वा प्रययौ रामकुञ्जाभिमुखमीश्वरः ।  
 दृष्ट्वा तु समुपायान्तं मुदतिष्ठमहं प्रियाः ॥३९॥  
 ईषद्विवसनीभूतवपुषा रमया सह ।  
 आदिद्विये तमीशानं समस्तैरुपचारकैः ॥४०॥  
 अपृच्छं चैव कैलाशाद् भव्यागमनकारणम् ।

## रुद्र उवाच

तव लीलादर्शनार्थं कैलाशादहमागमम् ॥४१॥  
 अहो रसमयो लीला श्रेयोगुणमयो तव ।  
 सच्चिदानन्दैकमपि न वाङ्मनसगोचरा ॥४२॥  
 मुक्ता अभिभजन्ते यां दिव्यमास्थाय विग्रहम् ।  
 निर्गुणापि भवातीतर्गुणैः सत्त्वादिभिर्भिर्युता ॥४३॥  
 तदर्शनार्थं संक्षुभ्य तपो विस्मृतवानहम् ।  
 दिव्यवेणुरुवं श्रुत्वा स्थानं त्यक्तवेह संगतः<sup>३</sup> ॥४४॥  
 वाञ्छामि त्वन्मुखाम्भोजदर्शनामृतपानकम् ।  
 अहो धन्ये दृशौ मत्के याभ्यां दृष्टोऽसि राघव ॥४५॥  
 लीलापरिकरोपेतः स्निग्धश्यामलविग्रहः ।  
 सहजाशक्तिसहितः सहजानन्दनन्दितः ॥४६॥

१. भवने स्वगणे—रीवाँ, बड़ो० । २. तूमयायान्त—अयो० । ३. मागतः—बड़ो० ।

नमस्तेस्तु नमस्तेस्तु नमस्तेस्तु रघूद्वह ।  
 नमस्ते नित्यलीलायै नमस्ते केलिसंपदे ॥४७॥  
 नमः प्रमोदकुञ्जाय नमोऽस्यै रत्नभूमये ।  
 नमः साकेतदुर्गाय नमः सरयुरोधसे ॥४८॥  
 नमस्ते गोपिगोपेभ्यो धेनुकाय नमोनमः ।  
 गवेन्द्राय नमो नित्यं सुखिताय नमोनमः ॥४९॥  
 नमो गवेन्द्रसुन्दर्यै माङ्गल्यायै नमोनमः ।  
 नमो गवेन्द्रघोषाय सर्वसंपदमीयुषे ॥५०॥  
 नमः प्रमुदवनस्थाय<sup>१</sup> रामाय परमात्मने ।  
 सदानन्दाय रामाय सदा संतारमाजुषे ॥५१॥  
 पीताम्बराय नवनीरदनीलभाय  
 वंशीविशालरसिने मधुराधराय ।  
 गोगोपगोपरमणीकमनोयभासे  
 भाषान्विताय च नमोऽस्तु रघूत्तमाय ॥५२॥  
 राम त्वदीयमुखपङ्कजमक्षिभृङ्गैः  
 पीत्वा त्वदन्यविषयग्रहसंनिवृत्तैः ।  
 संसत्कृतार्थमिव संप्रति मन्यमानो  
 भ्रास्यामि भूतलमशेषपदार्थसिद्धः ॥५३॥  
 सरयूसरसं शशवच्चुलुकीकृत्य निर्वृतः ।  
 कदा रासविलासादि पश्येयं स्वाधिकारतः ॥५४॥  
 नित्यलीलापरिकरे कदा मे गणना भवेत्<sup>२</sup> ।  
 कदा वीक्षेय रामेन्दो भवद्वदनचन्द्रिकाम् ॥५५॥  
 साक्षात्कृतिस्ते लीलाया एष मेऽनुग्रहः प्रभो ।  
 शमशानचारिणोऽत्यर्थमभद्रपथसेविनः ॥५६॥  
 अहो मे रामचन्द्रस्य दर्शनार्थमिहागमः ।  
 तेन पृष्ठा इमा देव्यो न मे प्रतिवचो ददुः ॥५७॥  
 तमोरूपप्रकाशार्थमिह क्रोधान्धता मम ।  
 नोचेदिह गुणातीते स्थाने क्रोधः कथं भवेत् ॥५८॥

१. नमो मोदवन—अयो० । २. <sup>१</sup>भवत्—अयो०, बड़ो० ।

अघं<sup>१</sup> ममैतत् क्षन्तव्यमपराधनमीश्वर ।  
 यत्त्वत्परिकरस्यापि शापो दत्तो मया प्रभो ॥५९॥  
 तदाहमुक्तवान् रुद्रं भगवन्नेवमेव तत् ।  
 तथापि मे चिकीषायाः साधनायैव कल्पताम् ॥६०॥  
 गवेन्द्रस्य महाधाम्नि नित्यं निवसतो मम ।  
 अवतारार्थसंसिद्धचै शापोऽयं ते भविष्यति ॥६१॥  
 कौशल्यायास्तदा मातुः पितुर्दशरथस्य च ।  
 संतोषणं तथा ज्ञातिस्वजनानां सुखोद्भवः ॥६२॥  
 वधश्च रावणादीनां समुद्भारस्तथा शिव ।  
 पशुपक्ष्यन्त्यजादीनां कष्मलाक्रान्तचेतसाम् ॥६३॥  
 अवतारकृत्यमेतावत्करिष्यामि महेश्वर ।  
 तदर्थं तव शापोऽयमुद्भूतोऽस्त्यत्र<sup>२</sup> मा शुचः ॥६४॥  
 मच्चिकीषानुकूलत्वान्न ते शापो रुषावहः ।  
 स्वैरं विहर<sup>३</sup> संसिद्धो मद्भूत्कान् मृडयन् प्रभो ॥६५॥  
 एवमुक्तो मया शम्भुरभिवन्द्य पुनः पुनः ।  
 निर्जगाम निजं स्थानं कैलासाख्यं मनोहरम् ॥६६॥  
 युष्माकमेवं संजातो रुद्रशापोऽतिदुर्धरः ।  
 यूयं तस्य प्रभावेण मद्वियोगमवाप्यथ ॥६७॥  
 मद्भूत्कातिक्रमो<sup>४</sup> ह्येष मद्भूतैर्दुरतिक्रमः ।  
 परंत्वत्रापि विश्लेषे सन्निलीय मदं शृणु (?) ॥६८॥  
 मत्सायुज्यं परिप्राप्य मत्तादात्म्यमवाप्यथ ।  
 मदानन्दोदधौ मग्नाः क्षणवद्यापयिष्यथ ॥६९॥  
 मद्वियोगं सुदुर्धर्षं नैव ज्ञास्यथ मतिप्रयाः ।  
 तावत्कृत्वावतारार्थमागमिष्यामि वः पुनः ॥७०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां पुरप्रवेशो-  
 नाम<sup>५</sup> रामगीतायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

१. इदं—बड़ो० । २. °तः पुत्र—रीवाँ० । ३. विहार—अयो०, बड़ो० ।  
 ४. मद्भूता मृदवः—रीवाँ०, अयो० । ५. पुरप्रवेशे—अयो०, रीवाँ०, बड़ो० ।

## चतुर्थत्वारिंशोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

एवं प्रबोधिता गोप्यो रुद्रशापस्य कारणम् ।  
विश्वस्य दुःखभूयिष्ठाः समवोचन् रघूद्वहम् ॥ १ ॥

### गोप्य उत्तुः

स्वामिन् भाविपदार्थानां प्रतीकारो न विद्यते ।  
तथापि त्वां प्रपन्नानां नार्तिः स्यात् कर्हचित् प्रभो ॥ २ ॥  
अयमेव प्रतीकारो भवदुःखनिवर्हणे ।  
यत्त्वच्चरणपाथोजतरणिद्वन्द्वसेवनम् ॥ ३ ॥  
निवृत्ताखिलतर्षास्ते हंसाः परमभावुकाः ।  
पारञ्जता भवाम्भोधेः स्थितास्त्वत्समुपाश्रयात् ॥ ४ ॥  
कथं भक्ताः प्रपद्यन्ते केन भावेन राघव ।  
तदस्मानुपदेशेन बोधयस्व कृपावशात्<sup>१</sup> ॥ ५ ॥  
त्वद्वियोगभवा<sup>२</sup> प्रायः परमार्त्तर्भविष्यति ।  
कथं नु तां तरिष्यामो नित्यं त्वत्सञ्ज्ञसंश्रयाः ॥ ६ ॥  
कथं त्वद्विरहे काले<sup>३</sup> व्यूहो लीनो भविष्यति ।  
व्रजस्त्रीणां समूहोऽसौ भवल्लीलैकसंश्रयः ॥ ७ ॥

### राम उवाच

यथा भक्ताः प्रपद्यन्ते येन भावेन वा प्रियाः ।  
तद्वः समुपदेशेन बोधयामि विशेषतः ॥ ८ ॥  
एकान्ते विमले क्षेत्रे योगक्षेमं विधाय च ।  
मन्त्रिष्ठां भावनां कुर्याद् यथा शीघ्रं भवं तरेत् ॥ ९ ॥  
वैदिकैस्तान्त्रिकैः कर्मव्यूहैः सुविमले हृदि ।  
प्रवृत्तौ भावनां यातां तां<sup>४</sup> कुर्यान्मदुपाश्रयाम्<sup>५</sup> ॥ १० ॥  
हृत्पुण्डरीकमध्ये तु साकेतं भावयेन्मुहुः ।  
तत्र मां<sup>६</sup> भावयेत् पूर्णं लोलाभिः पुरुषं परम् ॥ ११ ॥

१. °कृताद्—अयो० । २. एव—रीवाँ, बड़ो० । ३. त्वदेहविरसे—अयो० ।  
४. त्वां—रीवाँ, बड़ो० । ५. मद्भुताश्रयां—अयो० । ६. स—बड़ो० ।

यद्धि किंचिद्वस्तुजातं भावयेत्तमदात्मकम् ।  
 मत्तः परं नैव किंचिन्मयीदं सर्वमेव तु ॥१२॥  
 भूर्जलं पावको वायुः खं मनोमण्डलं दिशः ।  
 प्रकृतिः पुरुषो ब्रह्म ज्ञेयं सर्वं मदात्मकम् ॥१३॥  
 मत्तः प्रवर्तते सर्वं प्रपञ्चोऽयं मदात्मकः ।  
 मत्कार्यः संततो नित्यं मय्येव व्यपदिश्यते ॥१४॥  
 मय्यात्मरतिमायाते लोयन्ते भशिता यथा ।  
 स्वरूपानवं बोधश्च मनो देहेन्द्रियादिषु ॥१५॥  
 स्वतादात्म्यां वभासश्च सा विद्या परिकीर्तिता ।  
 व्योमवद्वचापकं ब्रह्म किंचिन्मायांशचेष्टितम् ॥१६॥  
 सर्वतः पाणिपादं च सर्वतोदृक् शिरोमुखम् ।  
 सर्वतो नासिकाश्रोत्रे सर्वमाविद्य तिष्ठति ॥१७॥  
 अनन्ता मूर्त्यस्तस्य भिन्नाभिन्नस्वरूपिणः ।  
 एकोऽहं बहु भवेयेतीच्छा॑ तस्याभवत् कदा ॥१८॥  
 ततोऽवर्तत लोकोऽसौ जडजीवान्तरात्मभिः ।  
 सन्मात्रं भाति सर्वत्र न भाति च चिदन्तरा ॥१९॥  
 'सन्मात्रं जडवर्गोऽयं चिन्मात्रो जीव ईरितः ।  
 सच्चिदानन्दरूपो वाप्यन्तरात्मा महेश्वरः ॥२०॥  
 जडः स्फुरति जाग्रत्सु स्वप्ने भाति चिदन्तरा ।  
 सुषुप्तौ सच्चिदानन्दो ह्यन्तरात्मा॑ प्रकाशते ॥२१॥  
 यल्लीना अवतिष्ठन्ते स्वरूपानन्दभोगिनः ।  
 आनन्दमय आनन्दभुग्म॑ त्युपनिषत्सु सः ॥२२॥  
 तुरीयस्त्वहमेतेभ्यः समः सर्वत्र सर्वगः ।  
 विद्यया तु यदा विद्या नश्यति ध्वान्तवद्वचा ॥२३॥

१. मयोक्तं—अयो०, रीवॉ० । २. स्वसाररव—रीवॉ० । ३. °ज्ञानात्मा°—रीवॉ०,  
 बड़ो० । ४. °विष्टितं—रीवॉ०, बड़ो० । ५. जायेत तीछा—अयो० । ६...६. अयमंशो  
 नास्ति—रीवॉ०, बड़ो० । ७. पञ्जरात्मा—रीवॉ०, ह्यजरात्मा—बड़ो० । ८. °भागि०  
 —बड़ो० ।

तदा स परमानन्दः प्रकाशात्मा प्रकाशते ।  
 सर्वाध्यासनिवृत्तौ तु शुद्धा देहेन्द्रियादयः ॥२४॥  
 मल्लोकानन्दभोगार्हा जायन्ते ते मदात्मकाः ।  
 नित्यलीलां तदा पश्येन्मद्भूत्को मत्स्वरूपिणीम् ॥२५॥  
 न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्न मदादयः ।  
 तमदीयं परं स्थानं मद्भूत्कः संप्रपद्यते<sup>१</sup> ॥२६॥  
 यस्मान्न पुनरावृत्तिः सर्गादावपि जायते ॥२७॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामगीतायां  
 चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥



## पञ्चत्वारिंशोऽध्यायः

### श्रीभगवानुवाच

नवधा भक्तिरुद्दिष्टा श्रुतिसंकीर्तनादिभिः ।  
 कर्मज्ञानोपासनाभिः प्रत्येकं त्रिविधैव सा ॥ १ ॥  
 समविंशतिधा भिन्ना गुणैः सत्त्वादिभिः पुनः ।  
 एकाशीतिप्रकारेण भक्तियोगः प्रकीर्तिः ॥ २ ॥  
 निर्गुणा त्वेकरूपैव मन्त्रिष्ठा मत्फलोदया ।  
 मत्स्वरूपात्मिका नित्यं भूयो मत्प्रेमलक्षणा ॥ ३ ॥  
 न तां ददामि कर्मभ्यो न ज्ञानिभ्यः कदाचन ।  
 नोपासकेभ्यो नाज्ञेभ्यो नचान्त्येभ्यो मृगेक्षणाः ॥ ४ ॥  
 मन्त्रिष्ठेभ्यो ददाम्येनां यथा युज्मभ्यमङ्गनाः ।  
 कर्माणि ज्ञानयोगाश्च संन्यासाश्च पृथग्विधाः ॥ ५ ॥  
 ते मत्स्वरूपनिष्ठायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।  
 तस्मात् स्वरूपनिष्ठो यः स सर्वेभ्यो विशिष्यते ॥ ६ ॥

कर्मोपास्तस्तथा ज्ञानं विहितादितरत्र तु ।  
 मत्स्वरूपैकनिष्ठस्य सर्वं प्रेमैकलक्षणम् ॥ ७ ॥  
 अहमेव फलं येषां न स्वर्गादि कथंचन ।  
 स्वर्गादिफलकं काम्यं केवलं ह्याधिभौतिकम् ॥ ८ ॥  
 आध्यात्मिकं चित्तशुद्धच्चा ज्ञानैकफलकं प्रियाः ।  
 केवलं कर्म मन्त्रिष्ठमाधिदैविकमुत्तमम् ॥ ९ ॥  
 अथाधिभौतिकं ज्ञानं जीवप्रत्यक्षसाधनम् ।  
 अक्षरं<sup>१</sup> ब्रह्म साक्षात्त्वहेतुराध्यात्मिकं स्मृतम् ॥ १० ॥  
 परब्रह्मानन्दपददायकं ह्याधिदैविकम्<sup>२</sup> ।  
 मत्स्वरूपानन्दभोगहेतुस्तुर्यं तदुच्यते ॥ ११ ॥  
 उपासनापि त्रिविधा पूर्ववत्समुदीरिता ।  
 जीवब्रह्मपरब्रह्मसाक्षात्कारविधायिनी ॥ १२ ॥  
 अहमेव फलं यस्याः सा तुर्या परिकीर्तिता ।  
 निर्गुणं भावमापन्ना सर्वतोऽपि विशिष्यते ॥ १३ ॥

## गोप्य ऊँचुः

सर्वैरपि ब्रह्मविद्विस्त्वं लभ्योऽसि नरोत्तम ।  
 उत कश्चिद्विशेषोऽस्ति तन्नो ब्रूहि रघूत्तम ॥ १४ ॥  
 केचित्तु वामदेवादच्चाः संलीनास्त्वयि केवलम् ।  
 केचित्पुनर्महाभागास्त्वया भोगान्नु<sup>३</sup> भुजते ॥ १५ ॥  
 वरिष्टाः केऽभवन् तेषां तत्र वेदस्य वा भताः ।  
 एतद्वेदितुमिच्छामस्त्वत्तः कमललोचन ॥ १६ ॥

## श्रीभगवानुवाच

अक्षरं कथ्यते ब्रह्म सर्ववेदान्तगोचरम् ।  
 पुच्छभूतं प्रतिष्ठा मे तद्गेयं योगवित्तमैः ॥ १७ ॥  
 ममैव संप्रकाशोऽसावुदयोत इव भास्वतः ।  
 पुरुषाकृतेम् देहोऽसौ गृहिष्यश्च गृहं सम ॥ १८ ॥

१. अथाक्षरं—रीवाँ । २. त्वाधि०—रीवाँ । ३. भोगान्नु० रीवाँ ।

भास्वतश्च प्रभा दिव्या यथावदवधार्यताम् ।  
 स एव चिन्मयो लोको यद्गत्वा न निवर्तते ॥१६॥  
 तस्य विज्ञानमात्रेण तन्मयो जायते नरः ।  
 तत्रैवाप्येति यत्रास्य भेददृष्टिनिवर्तते ॥२०॥  
 जन्तोर्मदिच्छुया चेत्तु भक्तिः समुपजायते ।  
 तदा मया सर्वकामभोगान् प्राप्नोति मत्परः ॥२१॥  
 अन्यथा त्वक्षरे धास्ति लीनस्तिष्ठेदकम्पनः ।  
 किं त्वस्यापि भवेद्द्वावि भक्तिः स्वरूपयोग्यता ॥२२॥  
 न ह्यब्रह्मज्ञे कदापि भक्तिः<sup>१</sup> समुपजायते ।  
 मयि सद्वारणा<sup>२</sup> हेतुर्यदाह श्रुतिरूजिता ॥२३॥  
 भक्तिं वैधीमुपाश्रित्य मन्त्रिष्ठो मयि लीयते ।  
 प्रेममात्रस्फुरद्वावो भुड्क्ते भोगान् मया सह ॥२४॥  
 प्रमोदवनकुञ्जस्थो नित्यलीलानुभावकः ।  
 सख्यवात्सल्यदास्यादिमहाभावैविभावितः ॥२५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 रामगीतायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥



### षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः

किंस्वरूपो मतो जीवः सम्बन्धो ब्रह्मणा च कः ।  
 कीदृढ़मतं परं ब्रह्म अक्षरं वापि कीदृशम् ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

सावयवो ह्यसौ जीवः<sup>३</sup> स्वचैतन्यगुणेन तु ।  
 सर्वं पुरैमभिव्याप्य वर्तते दीपवद् गृहे ॥ २ ॥

१—१. अयमंशो नास्ति—रीवाँ, बड़ो० । २. मद्वरण—अयो०, बड़ो० ।  
 ३. अत्रयावदेव मथु० पुस्तकस्य खण्डतोऽशः । ३. स्वाविद्यवोह्यसौ—अयो०, सावय-  
 वोसौ स्व°—रीवाँ, सावयवोऽस्त्यसौ—बड़ो० । ४. परम—रीवाँ ।

योगेन मत्प्रसादाद्वा तत्स्वरूपं प्रकाशते ।  
 निर्धूमानलसंकाशं निरञ्चितविद्युसन्निभम् ॥ ३ ॥  
 तदा ब्रह्माण्डकोटीनामाश्रयत्वमिथादयम् ।  
 अंशयंशभावः<sup>१</sup> संबन्धो ब्रह्मणा सह तस्य तु ॥ ४ ॥  
 अग्निना महता यद्वद्विस्फुलिङ्गस्य कीर्तिः ।  
 नहि ज्ञाते विस्फुलिङ्गे वह्निर्न ज्ञायते महान्<sup>२</sup> ॥ ५ ॥  
 प्रेमात्म्यश्चैव संबन्धो येन प्राप्नोति मानवः<sup>३</sup> ।  
 अक्रिये कर्मसंबन्धो न घटेत कदाचन ॥ ६ ॥  
 अज्ञेये ज्ञानसंबन्धो न भवेच्च कथंचन ।  
 प्रेमात्म्यस्तु महान् योगो नित्यं मम रसाभिधः ॥ ७ ॥  
 जीवनिष्ठोऽपि स परब्रह्मेव तु संभवेत् ।  
 संख्यापदार्था द्वित्वाद्याः संयोगश्च यथा प्रियाः ॥ ८ ॥  
 व्यासज्यैव तु<sup>४</sup> वर्तन्ते यथा प्रेमापि बुध्यताम् ।  
 सर्वाधिकश्च सुदृढो विषयेभ्यः पराङ्मुखः ॥ ९ ॥  
 माहात्म्यज्ञानसंस्कारो<sup>५</sup> विनिर्धूतरजस्तमः ।  
 परमानन्दपाठोधिः प्रेमा निरतिशायितः<sup>६</sup> ॥ १० ॥  
 तेनापि जीवनिष्ठेन ब्रह्म संबध्यते परम् ।  
 येनैव द्वारभूतेन नित्येन तदवाप्नुयात् ॥ ११ ॥  
 तत्साधनमहं पूर्णो निरुपाधिः कृपाश्रयः ।  
 कृपयामि परं<sup>७</sup> यस्मै तस्मै प्रेम परं ददे ॥ १२ ॥

## गोप्य ऊचुः

त्वं सर्वेषां समः प्रेयान् सर्वेषां साधनः प्रभो ।  
 कस्मै ददासि नो कस्मै वेत्तुमिच्छामहे त्वदः ॥ ३१ ॥

१. अंशांशभावः—बड़ो० । २. “अग्निकणे ज्ञाते महानग्निर्न ज्ञायते इति न किंतु ज्ञायतेऽव” टि०—मथु० । ३. प्राप्नेत मानवैः—मथु०, बड़ो० । ४. संवृत्तो वस्तु—रीवौ॑ । ५. °संपृक्तो—मथु०, बड़ो० । ६. °शायितः—मथु०, बड़ो० । ७. कृपया कृपया—रीवौ॑ ।

सर्वेषां मुक्तिरेव स्यात् सर्वे स्युः प्रेमभागिनः ।  
साधारण्यात्तव श्रीमन् प्रेमदत्य प्रियस्य च ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

अनेकजन्मसंसिद्धकर्मज्ञानादिभागिने ।  
ददामि परमं प्रेम परितुष्टो मुहुः प्रियाः ॥१५॥  
न सर्वस्मै ददाम्येतत् परमानन्दलक्षणम् ।  
कर्मभिश्चित्तसंशुद्धो ज्ञानेन चिछन्नसंशयः ॥१६॥  
श्रवणादिमुहुर्भवित्साधनैः साधिताकृतिः ।  
जनो यो मां प्रपद्येत ज्ञात्वा परमपूरुषम् ॥१७॥  
तस्मै ददामि तां भक्तिं प्रेमाख्यां मदुपाश्रयाम् ।  
तां लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते न जगत्त्रये ॥१८॥  
श्रद्धावान् ब्रह्मनिष्ठश्च परब्रह्मरसोत्सुकः ।  
वीतरागो विषयतो मत्प्रेम लभते नरः ॥१९॥  
नित्यलीलारसाभिज्ञः श्रुतमत्प्रेमलक्षणः ।  
ज्ञात 'पारमहंस्यश्च' मत्प्रेम लभते नरः ॥२०॥  
कवचिन्नृत्येत् कवचिद्गायेत् कवचिद्वावेत मत्तवत् ।  
कवचिद्वसेत् कवचिज्जलपेत् कवचित्क्रीडेत् कवचिद्वदेत् ॥२१॥  
मत्प्रेममदिरामत्तस्तृणवन्मन्यते जगत् ।  
मत्प्रेमभागिनो दृष्ट्वा प्रहृष्येत् प्राप्तबन्धुवत् ॥२२॥  
रमते तैः समं नित्यं सर्वस्वैरिव बन्धुभिः ।  
भक्तैः परमहंसैश्च आतरस्तस्य ते जनाः ॥२३॥  
सखायः सुहृदश्चैव प्रियाश्च हितकारिणः ।  
तेषामर्थं यतेन्नित्यं प्राणांस्त्यक्त्वापि दुस्त्यजान् ॥२४॥  
ते ह्यस्य परलोकस्य संगिनः सुहृदो जनाः ।  
एष भावः समुद्दिष्टो येनाऽसौ मां प्रपद्यते ॥२५॥  
तेषामहं स्वस्वरूपं दर्शयिष्यामि वै मुहुः ।  
तत्सन्निधौ सदा स्थास्याम्यहम् भुतभाववान् ॥२६॥

१. ज्ञातं—अयो०, ज्ञातः—रीव॑० । २. °हंसश्च—अयो०, हंसस्य च—रीव॑० ।

भावितो भावसंदोहैर्भविष्यामि च तद्वशे ।  
 स्वस्वरूपं दुलंभमप्येभ्यो दास्यास्यहं प्रियाः ॥२७॥  
 मद्वियोगभवं दुःखं यथा तेषां निवर्त्तते ।  
 तथा वो बोधयिष्यामि विशिष्टं शृणुत प्रियाः ॥२८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामगीतारहस्यो-  
 पाख्यानं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥



### सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अलाभे मत्स्वरूपस्य मद्वियोगभवा रुजः ।  
 विनेया मत्प्रतिकृतिः समाराधनतत्परैः ॥ १ ॥  
 काञ्चनी रूप्यजा ताम्री शैली दारुमयी तथा ।  
 मदीया प्रतिमा कार्या यथारुच्चितविग्रहा ॥ २ ॥  
 साङ्गोपाङ्गां सायुधां च परिवारगणैर्युताम्<sup>१</sup> ।  
 नित्यं परिचरेद्भक्त्या प्रांतरारभ्य साधकः ॥ ३ ॥  
 पाद्याद्याचिमनैर्भूयो मधुपकैर्मनोहरैः<sup>२</sup> ।  
 स्नानैर्विलेपनैर्गन्धैर्धूपैर्दीपैर्विभूषणैः ॥ ४ ॥  
 वस्त्रालङ्करणैः पुष्पगीतवादित्रतोरणैः ।  
 पानीयभोजनैर्भूरि संविधाभिः प्रमार्जनैः ॥ ५ ॥  
 नानोपायनसंदोहैर्यथाभिलषितरपि ।  
 आरार्तिकैः<sup>३</sup> पुष्पवर्षैः स्तौत्रैश्चापि परिक्रमैः ॥ ६ ॥  
 नमनैर्नवनैर्दास्यकरणैर्गृहधावनैः ।  
 आत्मार्पणैर्नामगणैर्गृणन्तैः प्रोणनैरपि ॥ ७ ॥

१. °गुणैर—रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २. “दधिसिताघृतमधुभिर्मिलितैर्मधुपर्कः”  
 ठि०—मथु० । ३. आरार्तिकैः—रीवाँ ।

नानाभावपरीरम्भैर्नाना चोत्सवं कल्पनैः ।  
 अवन्ध्यं तद्विनं कुर्यात् कीर्तनश्वरणादिभिः ॥ ८ ॥  
 शृणुयात् सततं सख्यो रामायणमनन्यधीः ।  
 वेदवत्तद्विजानीयाद्यत्रास्ति चरितं मम ॥ ९ ॥  
 वाल्मीकं चैव वासिष्ठं शैवं पाराशारं तथा ।  
 भौशुण्डं पञ्चमं<sup>३</sup> षष्ठ्यं<sup>३</sup> काप्यं<sup>४</sup> रामायणं स्मृतम् ॥ १० ॥  
 अन्येष्वपि पुराणेषु यत्रापि चरितं<sup>५</sup> मम ।  
 तं तं भागमपेक्षेत विशेषेण मदाश्रयः ॥ ११ ॥  
 राम रामाय नम इति मम मन्त्रं षडक्षरम् ।  
 अशेषकामनापात्रं<sup>६</sup> गृह्णीयात् सद्गुरोर्मुखात् ॥ १२ ॥  
 वैदिकस्तान्त्रिकैर्वापि प्रकारैः परिसाधयेत् ।  
 ततस्तु चित्तसंशुद्ध्या जातः प्रेमविघूर्णितः ॥ १३ ॥  
 भजेन्मदविशेषेण मन्मूर्ति प्रागुदाहृताम् ।  
 सच्चिदानन्दरूपां तां भावयेत विचक्षणः ॥ १४ ॥  
 जानक्या प्रियया युक्तं रात्रौ संजातजागरम् ।  
 ईषन्मदविघूर्णक्षं प्रभाते मां प्रबोधयेत् ॥ १५ ॥  
 मङ्गलारात्रिकं कुर्यात् सिंहासनगते मयि ।  
 ततो माङ्गल्यकैर्भविः शिवये हिन्दोलयेत्तराम् ॥ १६ ॥  
 तत्र मां भोजयेद् दिव्यं नवनीतं सितोपलैः<sup>७</sup> ।  
 ततोऽवतार्य सौगन्ध्यतैलेन परिलेपयेत् ॥ १७ ॥  
 उद्वर्तयेत् प्रेमभावात् स्नापयेत्तदनन्तरम् ।  
 प्रोऽच्छच्छ<sup>८</sup> शृङ्गारयेद्भूक्त्या नखादा शिखमद्भुतम् ॥ १८ ॥  
 नूपुरौ पादयोः कुर्यान्मध्ये च क्षुद्रघण्टिकाम् ।  
 अङ्गदौ बाहुयुगले नसि<sup>९</sup> मुक्ताफलं न्यसेत् ॥ १९ ॥

१. नानार्चोत्सव—अयो० । २. पश्चिम—अयो० । ३. चान्यद्—रीवौ० ।
४. काप्य—“हनुमद्रामायणं” दि०—मथु०, बडो० । ५. यत्राभिः—अयो० ।
६. °पाय—अयो०, °प्रातं—रीवौ० । ७. “सिताभिः सहितं” दि०—मथु० ।
८. प्रोच्छा—अयो०, रीवौ० । ९. नासे—अयो०, रस°—रीवौ० ।

पश्चाद्भागे न्यसेद्वेणीं ताटच्छौ श्रवणद्वये ।  
 पुंभूषणैः सत्रीभूषाभिः प्रियं शृङ्गारयेच्च माम् ॥२०॥  
 ततो मां भोजयित्वा तु कुर्यादारात्रिकं सुधीः ।  
 ततो गोपिजनैश्चापि भोज्यमानं विभावयेत् ॥२१॥  
 ततो गोचारणाथर्थ्य युक्तं गोपालबालकैः ।  
 तात्कालिकरसाविष्टं वने यान्तं<sup>१</sup> विभावयेत् ॥२२॥  
 तत्र शाद्वलसंदोहस्थलीमुक्त्त सुगोधनम् ।  
 प्रमोदवनकुञ्जान्तर्भुञ्जानं मां विभावयेत् ॥२३॥  
 ततः क्वापि महाकुञ्जे प्रियया केलिसंयुतम् ।  
 अत्यर्थं सुखविश्रान्तं शयानं मां विभावयेत् ॥२४॥  
 ततः प्रहरमात्रावशेषे तु दिवसेइवरे ।  
 गौडमालवरागेण गायन्तं कलितोत्सवम् ॥२५॥  
 नयन्तं दिनशेषं तु धेनुसंदोहरक्षणैः ।  
 पीताम्बरं समान्दोल्याह्वयन्तं दूरगाश्च गाः ॥२६॥  
 सुखितस्य गवेन्द्रस्य गृहाभिमुखतः स्थितम् ।  
 धेनुयूथं पुरस्कृत्य वर्तमानं सुहृद्गणैः ॥२७॥  
 तत्रैव भोजयेद्भूक्त्या यथासंपन्नभोजनैः ।  
 गवेन्द्रव्रजगोष्टस्य सन्निधौ सदनोत्सुकम् ॥२८॥  
 गोष्टे विशन्तं गोपोनां समूहैः परिवेष्टितम् ।  
 कलितारात्रिकं भूयो रामचन्द्रं च मां स्मरेत् ॥२९॥  
 आगतं सदने स्वस्य माङ्गल्याकलितोत्सवम् ।  
 लाल्यमानं चुम्ब्यमानं सन्ध्यायां मां विभावयेत् ॥३०॥  
 तेषु तेष्वथ<sup>२</sup> गोष्टेषु गोदोहनमिषेण माम् ।  
 मिलन्तं भवतीभिश्च हसन्तं मां विभावयेत् ॥३१॥  
 गोदोहस्यावसाने तु माङ्गल्यासदने स्थितम् ।  
 कुर्वाणं भोजनं दिव्यं सुखितेन सह स्मरेत् ॥३२॥

१. यातं—रीवौ । २. च—मथु०, बड़० ।

भोजनान्ते च माङ्गल्याकलितारात्रिकोत्सवम् ।  
 शयानं शयने गोष्ठे रामया सह मां स्मरेत् ॥३३॥  
 एवं प्रभातमारभ्य रात्रिपर्यन्तमादरात् ।  
 तैस्तै भावेभावियानो भजेन्मां राजरूपिण्यम् ॥३४॥  
 गोपा गोप्यश्च नो विज्ञाः स्वभावेनाज्ञबुद्ध्यः ।  
 तेष्वेवाहं<sup>१</sup> सदा तुष्टो न प्राज्ञेषु कथंचन ॥३५॥  
 अज्ञाः स्नेहरसाक्रान्ता मदर्थे त्यक्तजीविताः ।  
 वेदवादविधेमुक्ता मामेवैकं विजानते ॥३६॥  
 एवं प्रमोदवने स्वां लीलां प्रकट्यन् सदा ।  
 विहरामि वने वासं करोमि प्रकटः स्वयम् ॥३७॥  
 प्रमोदमण्डलं दिव्यं तथा साकेतमण्डलम् ।  
 मण्डले मत्प्रियतमे मणिमद्धरणीतले ॥३८॥  
 नित्या वै परमा लीला मयैव<sup>२</sup> प्रकटीकृता ।  
 तथामुक्तमविश्रान्तं<sup>३</sup> भावयेन्मामनन्यधीः ॥३९॥  
 रात्रौ च गोपिकावृन्दरासकेलिरसावृतम् ।  
 क्रीडमानं च नृत्यन्तं गायन्तं चैव मां स्मरेत् ॥४०॥  
 एवं प्रभजतो<sup>४</sup> नित्यं भावसंदोहभावितः ।  
 वृश्चाम्यहं विरहजां<sup>५</sup> परमार्त्तमुदारधीः ॥४१॥  
 स्वस्वरूपस्य साक्षात्त्वमचिरेणैव दुर्लभम् ।  
 ददामि तस्मै भक्ताय नित्यलीलाप्रवेशिने ॥४२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुषुणसंवादे रामगीतारहस्यो-  
 पाख्याने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥



१. तेष्वहं च—रीवाँ । २. °त्रमया—मथु०, बड़ो० । ३. सुविश्रान्तं—रीवाँ ।  
 ४. °केली०—मथु०, बड़ो० । ५. प्रभावतो—रीवाँ । ६. वृश्चाम्यहं विरहं तासां—रीवाँ ।

## अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

**श्रीभगवानुवाच**

कदाचिद् भूरिविश्लेषभावितात्मानमात्मना ।  
 एक्यं संचिन्तयन् स्वस्य रश्मिवृन्दे प्रवेशये ॥ १ ॥  
 मदङ्गरश्मिसंलीनाः परमानन्दनिर्वृत्ताः ।  
 जरामृत्युभयं त्यक्त्वा विहरन्ति सुखेन ते ॥ २ ॥  
 वात्सल्येन भजन्ते ये तदा विरहकातराः ।  
 तानहं मुखचन्द्रांशुसंदोहेषु विलापये ॥ ३ ॥  
 तत्र ते भूरिमाङ्गल्याकौशल्याभावभाविताः ।  
 परमानन्दसंदोहमग्नास्तिष्ठन्ति सेवकाः ॥ ४ ॥  
 सख्येन ये भजन्ते मां वदन्तः स्नेहजां रुजम् ।  
 तानहं बाहुयुग्मांसकिरणेषु विलापये ॥ ५ ॥  
 दास्येन तु भजन्ते मां याता विरहजां रुजम् ।  
 विलापयामि तानड्ग्रिकिरणेषु सुनिर्वृतान् ॥ ६ ॥  
 माधुर्येण भजन्ते ये गोपीभावेन भाविताः ।  
 वक्षःस्थलांशुसन्दोहे तानेवाहं विलापये ॥ ७ ॥  
 ये च शान्ताः सुनिर्विणाः परां शान्तिमुपागताः ।  
 विलापयामि तान् रक्तान् निजायतनरश्मिषु ॥ ८ ॥  
 वैदिकस्तान्त्रिकर्वापि विधिभिर्वीतकलमषाः ।  
 भजन्ते ये जनास्ते तु लीयन्ते मद्विभूतिषु ॥ ९ ॥  
 कर्ममार्गेण ये भक्ता भजन्ते भूरिनिष्टुया ।  
 ते वैधसं लोकमेत्य मुच्यन्ते तद्विमोक्षणे ॥ १० ॥  
 ज्ञानमार्गेण ये चापि भजन्ते मां समाहिताः ।  
 तेऽक्षरं ब्रह्म संप्राप्य मामेव प्राप्नुवन्ति हि ॥ ११ ॥  
 तत्तद्वेषोपासकानां वासनावासितात्मनाम् ।  
 तत्र देवेषु विलयो भवेदिति हि मे मतिः ॥ १२ ॥

गोप्य ऊचुः

अयमंशुक्रमो राम देहेन सह किं भवेत् ।  
किंवा देहं परित्यज्य लीयेतात्मैव केवलम् ॥१३॥

श्रीभगवानुवाच

द्विधेवांशुलयः सख्यो भावभेदेन भाव्यताम् ।  
सदेहानां भवेदेकः परः केवलमात्मनाम् ॥१४॥  
भावो द्विधा भवेदेको भृङ्गीकीटवदीरितः ।  
मणिस्पशादियः स्वर्णवद्वा तादात्म्यभाविताः<sup>१</sup> ॥१५॥  
चक्षुरादित्यवच्चापि भावोऽन्यः समुदाहृतः ।  
आद्यः सुदुर्लभो लोके मत्कृपातिशयं विना ॥१६॥  
परोऽपि दुर्लभः किन्तु ज्ञानिनामपि जायते ।  
कीटो भृङ्गीभयात्तेन<sup>२</sup> वपुषा तन्मयो भवेत् ॥१७॥  
अयस्तेनैव रूपेण स्वर्णतां प्रतिपदच्यते ।  
चक्षुस्तु<sup>३</sup> गोलकं त्यक्त्वा सूर्यतां प्रतिपदच्यते ॥१८॥  
एवं स्वेनैव वपुषा मद्भूत्कोऽभूत्मदात्मकः ।  
ज्ञानी स्वं वपुरुत्सृज्य सर्वथा मन्मयो भवेत् ॥१९॥  
एतद्वः कथितं सर्वं मामपृच्छन् यदङ्गनाः ।  
भूयः शृणुत मत्प्राप्नेरुपायान्तरमुच्यते ॥२०॥  
अष्टोत्तरशतं नाम्नां मत्प्रियायाः प्रकीर्तयेत् ।  
संतुष्टा तेन सहजा मामेव भावयेत् प्रियाः ॥२१॥  
सहजा जानकी सीता मोदिनी राधिका रमा ।  
आनन्दिनी परालीला ललना लास्यकारिणी ॥२२॥  
सीरध्वजसुता साध्वी गान्धर्वी पद्मगन्धिनी ।  
गोपराजसुता गोपी गोपिता नन्दनात्मजा ॥२३॥  
सुखितोत्साहिनी सौम्या रत्नाचलविलासिनी ।  
प्रमोदवनमध्यस्था कुञ्जस्था कुञ्जगेहिनी ॥२४॥

१. °भावितः—रीवाँ । २. भयस्तेन—रीवाँ । ३. चक्षुःस्व°—मथु०, बड़० ।

राघवेन्द्रप्रिया रामा लोलुपा<sup>१</sup> जारसंगिनी<sup>२</sup> ।  
 रत्नाचलदरीस्थाना भाविनी भावभूषिता ॥२५॥  
 रामप्रिया रामरता रामकाम्या कृपावली ।  
 किशोरी कन्दुकक्रीडा चित्रकूटकृतालया<sup>३</sup> ॥२६॥  
 रासकेलीरतिः स्त्रिग्ना मन्दारवनवासिनी ।  
 अशोकवनगावली हृल्लासकविधायिनी ॥२७॥  
 गोपवंशध्वजपटी रघुवंशविलासिनी ।  
 विनोदिनी चिरवधूर्वावहूका वराङ्गना ॥२८॥  
 अक्षक्रीडाहृतजया<sup>४</sup> जयदा जयवर्धिनी ।  
 उच्चैःस्वररता वीणा दिव्यगानमनोहरा ॥२९॥  
 देवीजन<sup>५</sup>कृतस्तोत्रा स्तुता सामग्सेविता ।  
 सावित्री शेवधिः सेव्या भक्तिः प्रेमस्वरूपिणी ॥३०॥  
 प्रेमदा प्रेमघूणक्षी लावण्यवनवाटिका ।  
 साकेतपुरलक्ष्मीइच महामण्डपमध्यगा ॥३१॥  
 खण्डिता विप्रलब्धा च स्वाधीनपतिका<sup>६</sup> प्रिया ।  
 कलहान्तरिता चैव तथा वासकसज्जिका<sup>७</sup> ॥३२॥  
 अभिसारी<sup>८</sup> प्रोषितोक्ता राघवी चाष्टनायका ।  
 सुदती सुमुखी सुभ्रूः सुनासा सुकपोलिनी ॥३३॥  
 दूती दूतोजनप्रीता रक्तम्बरधरालिनो ।  
 लोलाक्षी लास्यललिता वने यौवनशालिनी ॥३४॥  
 सुधावर्षी सुधाधारा सुधाकरमुखी सुधा ।  
 गर्विणी दुर्जया दुर्गा सप्तनीगर्वहारिता ॥३५॥

१. लोलुपा = “चञ्चला” टि०—मथु० । २. ‘जारयति लिंगशरीरं ध्वंसयतीति जारो रामः, तत्संगिनी’ टि०—मथु० । ३. °क्रयालय—अयो० । ४. °हृदयजा—रीषाँ० ।  
 ५. “दिव्यस्त्रीजन०” टि०—मथु० । ६. “यस्या रतिगुणाकृष्टः पतिः पाश्वं न मुंचति । विचित्रविभ्रमासक्ता स्वाधीनपतिका मता” टि०—मथु० । ७. “निश्चित्य वासरं भर्तुं भूषणाणि करोति या । भवेद्वासकसज्जासौ द्वारं पश्यति सादरा ।” टि०—मथु० । ८. “निर्भया सती प्रियं प्रति याति सा अभिसारिका” टि०—मथु० ।

कोमलालापिनी काम्या कुमारी रामवल्लभा ।  
 इत्येतत्कथितं सीता नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥३६॥  
 सायं प्रातः कीर्तयेद्यो रामस्तस्मै प्रसीदति ।  
 स्वं लोकं दर्शयित्वा सा प्रदद्याद्रामसन्निधिम् ॥३७॥  
 यद्यत् कामयते चित्ते तत्तत् फलमवाप्नुयात् ।  
 भावयेत् सततं देवीं रत्नसिंहासनस्थिताम् ॥३८॥  
 रमणीरामणीभ्यां तु सखीभ्यां परिपाश्वयोः ।  
 दिव्यचामरयुग्मेन वीज्यमानां मनस्त्वनीम् ॥३९॥  
 अशोकलतिकादिव्यमण्डपान्तरचारिणीम् ।  
 सुवर्णसंशोभिशीर्षं रक्ताम्बरवराकृताम् ॥४०॥  
 क्वचिन्निलीय कुञ्जान्तर्दृष्टं (ष्टां ?) सपुलकं<sup>१</sup> (कां ?) मया ।  
 ईषच्छैशवतारुण्यकेलीभिः परिशालिताम्<sup>२</sup> ॥४१॥  
 सहजां नन्दिनीं दिव्यां राघवेन्द्रप्रियां च ताम् ।  
 विविधैर्भाविनिवैर्भावितात्मातिभक्तिमान् ॥४२॥  
 सरथ्वा अपरे पारे नन्दनो नाम धेनुपः ।  
 तत्प्रिया राजनीनाम तस्यां जाता नु जानकी ॥४३॥  
 सहजा नाम सा प्रोक्ता कुशलेन विवाहिता ।  
 गोपेन मम भक्तेन सा महां विनिवेदिता ॥४४॥  
 प्रमोदवनवीथीषु मयैव रसिता मुहुः ।  
 दिव्यवेणुरवाहूता दिव्याशोकवनाश्रया ॥४५॥  
 तस्यां कुर्यात् सदा भक्ति नित्यं मत्प्रेम चार्थयेत् ।  
 हे देवि सहजे नित्ये गोपिके नन्दनात्मजे ॥४६॥  
 रामे यथा तव प्रेम तथा महां प्रदेहि भोः ।  
 यथा त्वयि रतः स्वामी तथा मर्यपि चास्तु सः ॥४७॥  
 इत्येवं प्रार्थिता देवी ददात्येव र्ति पराम् ।  
 यथा तुष्टो राघवोऽहं हृदि सद्यः प्रकाशये ॥४८॥

१. “कदाचिन्मयाऽस्याः सपुलकरोमवृन्दं दृष्टमतस्तन्नाम दृष्टसपुलका”  
 टि०—मथु० । २, °शीलितां—रीवाँ ।

अयमेव महोपायो मद्वशीकरणे प्रियाः ।

नान्य ईदृग्विधः कश्चिदुपायोऽस्ति मदाप्निकृत् ॥४९॥

तां सेवमानाय सदाहमेवं सद्यः प्रसीदामि सुरैरलभ्यः ।

स्वात्मानमप्यमुमेवार्पयित्वा स्वां नित्यलीलां प्रददामि नित्यम् ॥५०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामगीता-  
महोपाख्याने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

●

### एकोनपञ्चाशतमोऽध्यायः

गोप्य ऊङ्गः

केषु केषु च भावेषु भाव्योऽसि त्वं रघूद्वह ।

केन केन स्वरूपेण स्थितोऽसि च' निजेच्छया ॥ १ ॥

त्वमेव साक्षात्पुरुषोत्तमोऽसि<sup>२</sup> विश्वं समुद्धर्तुमुरुप्रयत्नः ।

जातोऽसि सद्वृत्तककुत्स्थवंशो जातोऽधुनात्वत्कृतया दिव्यदृष्ट्या ॥ २ ॥

विभाव्यं यत्र यत्रास्ति त्वत्स्वरूपं सुखावहम् ।

तत्तन्न आचक्षव पते बोधनाय निजाकृतेः ॥ ३ ॥

श्रीराम उवाच

अन्तरङ्गं स्वरूपं मे बहिरङ्गं तथैव च ।

अप्राकृतं ह्यन्तरंगं प्राकृतं बहिरङ्गकम् ॥ ४ ॥

मद्वपुश्चैव मल्लोको<sup>३</sup> नित्यः परिकरो मम ।

मद्गुणा मम कार्याणि मद्रूपाश्चायुधादयः<sup>४</sup> ॥ ५ ॥

मद्गृहं मम पीठं च मच्छत्रं चामरं मम ।

चिदानन्दमयं सर्वं मदात्मकमिदं स्मरेत् ॥ ६ ॥

प्राकृतेष्वपि चार्थेषु यत् सद्रूपं ममैव तत् ।

भूतानां चैव सर्वेषामधिदेवोऽस्मि सर्वगः ॥ ७ ॥

१. स्थितश्चार्चास—अयो०, रीवाँ । २. ममेति—अयो०, रीवाँ । ३. मल्लोके—  
रीवाँ । ४. च युष्मादृशः—रीवाँ ।

सृष्टिस्थित्यन्तकृच्चास्मि जगतां पापदाहकः ।  
 कर्मणां फलरूपोऽस्मि लोके सदसदात्मनाम् ॥ ८ ॥  
 अव्याकृतगुणानामस्यहमव्याकृतः<sup>१</sup> स्वराट् ।  
 धर्मिणां त्रिषु लोकेषु स्वाभाविकगुणोऽस्यहम्<sup>२</sup> ॥ ९ ॥  
 कार्याणां सूत्ररूपोऽस्मि जीवोऽणुनां सनातनः ।  
 वेदानां ब्रह्मरूपोऽस्मि बीजानां त्रिवृदस्यहम् ॥ १० ॥  
 त्रिपदा छन्दसामस्मि सुराणां सुरराङ्गहम् ।  
 वसूनामग्निनामास्मि विष्णुश्चापि विवस्वताम् ॥ ११ ॥  
 नीललोहितनामास्मि रुद्राणां पिङ्गलोचनः ।  
 ब्रह्मर्षीणां भृगुश्चास्मि राजर्षीणां मनुस्तथा ॥ १२ ॥  
 देवर्षीणां नारदोऽस्मि कामधेनुश्च गोष्वहम् ।  
 प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां सोमश्चौषधिवीरुधाम् ॥ १३ ॥  
 शेषो भुजङ्गराजानां पाथसां वरुणालयः ।  
 प्रतापिनां दिनकरो जनानां च जनाधिपः ॥ १४ ॥  
 ज्ञानिनां वाक्पतिश्चास्मि समुद्रः सरितामहम् ।  
 केसरी<sup>३</sup> दंष्ट्रिणास्मि हयानां च वृहच्छ्रवा<sup>४</sup> ॥ १५ ॥  
 वर्णनामस्मि विप्रोऽहं संन्यासश्चाश्रमस्थितौ ।  
 तीर्थानां कोटितीर्थोऽस्मि घर्घरसरयूसंगमः<sup>५</sup> ॥ १६ ॥  
 वीराणामस्त्रविद्यास्मि शंभुश्चाप्यस्त्रिणामहम् ।  
 स्थानानां मेरुरूपोऽस्मि गिरीणां च हिमाचलः ॥ १७ ॥  
 यज्ञानां ज्ञानयज्ञोऽस्मि ज्ञानिनां<sup>६</sup> ज्ञानमस्यहम् ।  
 ध्यानानां धारणा चास्मि सोमपीथश्च कर्मिणाम् ॥ १८ ॥  
 अहिंसास्मि च धर्मणामश्वत्थश्चास्मि भूरुहाम् ।  
 अन्नानां पायसश्चास्मि पवित्राणामहं कुशः ॥ १९ ॥

१. च व्याकृतः—अयो०, रीवाँ । “अविकृतस्वभावः” टि०—मथु० ।
२. “लोकत्रये उत्तमगुणो धर्मः सो यस्यास्ति स धर्मी, तस्मिन् स्वाभाविको गुणः अहम्” टि०—मथु० ।
३. ब्रह्मवेदो—अयो०, सामरूपो—रीवाँ ।
४. केशरी—रीवाँ ।
५. मघवद्यः—मथु०, बड়ো० ।
६. परसंगमः—बড়ো० ।
७. ज्ञानानां—मथु०, बড়ো० ।

योगानां भक्तियोगोऽस्मि शतरूपास्मि योषिताम् ।  
 भाषाणां शेषुषी चास्मि बुद्धीनां चाप्यभेददृक्<sup>१</sup> ॥२०॥  
 उपांशुश्चास्मि गुह्यानां युगानां कृतमस्म्यहम् ।  
 संवत्सरो प्रमादाना<sup>२</sup> मृत्युनामस्म्यहं मधुः ॥२१॥  
 अभिजिच्छास्मि ताराणां मासानामाग्रहायणः ।  
 वेदव्याख्यानकर्तृणां कृष्णद्वैपायनोऽस्म्यहम् ॥२२॥  
 विवेकिनामहं शुक्रो भार्गवाणां श्रीधरोऽस्म्यहम् ।  
 कृष्णश्चाप्यवताराणां वैष्णवेषु च नारदः ॥२३॥  
 पूर्णानां रामचन्द्रोऽस्मि वंशानां च रघोः कुलम् ।  
 राजीवश्चास्मि पुष्पाणां ह्रविःष्वाज्यमहं पुनः ॥२४॥  
 द्रव्याणां संपदश्चास्मि मणीनामस्मि कौस्तुभः ।  
 इन्द्रनीलश्च रत्नानां वीराणां वज्रमस्म्यहम् ॥२५॥  
 द्यूतानां छलरूपोऽस्मि त्यगो वैराग्यशर्मणाम् ।  
 ऊर्जस्वलानामोजोऽस्मि लिङ्गं भूतिमतामहम् ॥२६॥  
 अम्बूनां रसरूपोऽस्मि शब्दानामस्म्यहं च गाः ।  
 धर्मस्थानां वलिरहं वीराणामस्मि कार्तिकः ॥२७॥  
 इन्द्रियाणां मनश्चास्मि प्राणिनामस्मि चेतना ।  
 भूतानां नभ एवास्मि कर्तृणां प्रकृतिः परा ॥२८॥  
 योगिनां कपिलश्चास्मि<sup>४</sup> सांशिनां<sup>५</sup> जानकीपतिः ।  
 जम्बुद्वीपोऽस्मि द्वीपानां पुरीणां कोशला<sup>६</sup> स्म्यहम् ॥२९॥  
 नरो नारायणश्चास्मि पुण्यसेतुस्तपस्विनाम् ।  
 अयं मे बहिरङ्गात्मा विभूतीनां प्रविस्तरः ॥३०॥  
 आग्रह्यभुवनव्याप्तकार्ये वाङ्मनसाकृतिः ।  
 ज्ञानवैराग्यधर्मश्च<sup>७</sup> तद्विरुद्धं च मद्वपुः ॥३१॥

- 
१. “चिज्जडशरीरी भगवानेक एवेति ज्ञानमभेदज्ञानन्” टि०—मथु० । २.  
 “कालात्मकः कल्यतां” टि० पाठः—मथु० । ३. “श्रीधरः परशुरामः” टि०—मथु० ।  
 ४. कपिलोस्म्यंशी—अयो०, बडोममांशः—मथु०, बडो० । ५. सोहं श्री०—  
 मथु० बडो० । ६. “साकेतं कोशलायोध्या—इति कोशात्” टि०—मथु० ।  
 ७. धर्मैश्वर्य—अयो०, श्रीवाँ० ।

न यत्र वाङ् नैव मनः प्रवृत्तिर्न यत्र साक्षी न च साक्षिभास्यहम् ।  
नित्यशिद्वानन्दमयश्च लोकः<sup>१</sup> स मे सर्गः शाश्वतश्चान्तरङ्गः ॥३२॥

यत्रास्ति साकेतपुरो सुधन्या  
पुण्या नदी सरयूरुत्तरङ्गा ।

श्रीरत्नाद्विर्गोपराजस्य गोष्ठं  
प्रमोदकान्तारभुवः सुपेशलाः ॥३३॥

यत्राप्यशोकलतिकावनकुञ्जबीथी  
रम्या कुटी रमे यत्र रामः किशोरः ।

सोऽहं प्रिया दशरथस्य सुतः सुपूर्ण-  
स्वानन्दसिन्धुरसकूद्धवतीश्च नन्दन् ॥३४॥

सोऽहं सर्वगतश्चास्मि पुरुषश्चाक्षरः परः ।  
कदाचिन्नैव लीला मे प्राकृतत्वाय कल्पते ॥३५॥

न नाशाय न दृष्ट्यै च न विकृत्यै चिदाकृतीः ।  
एष मे शाश्वतो धर्मो रमणं शक्तिभिः सह ॥३६॥

स्वानन्दरसरूपाभिः पूर्णाभिः पूर्णशक्तिभिः ।  
एषा मे सहजा लक्ष्मीः सर्वलीलाधिदेवता ॥३७॥

मां भूषयति संगच्छत्युन्मार्जयति राति च ।  
तथैव निर्मितो लोकः स्वशक्त्या मत्स्वरूपया ॥३८॥

तथाहं नित्यसंयुक्तो रमामि कुशलैर्गुणैः ।  
तदंशाः सकला यूयं नित्यं सन्निहिता मयि ॥३९॥

न कदाचिद्वियोगार्हाः स्वरूपं पश्यत प्रियाः ।

यूयं चिदानन्दमयाः सनातनाः स शक्तिभिर्निर्जितभूर्भुवःस्वः ।  
पश्यन्तु दिव्येन दृशोदयेन न लब्धध्वं क्लेशलेशं कदापि ॥४०॥

मां सेवयन् यो भवतीरुपासते मद्भूक्तिरूपाः सहजाभावरूपाः ।  
तेनापि विश्लेषमहं न कुर्वे कथं स तावद्धवतीनां करिष्ये ॥४१॥

दास्यामि वो दिव्यदृष्टिं प्रियाणां  
यथा युक्ता द्रक्षथ स्वं स्वरूपम् ।

१. “प्रमोदवन्” टिं—मथु० ।

सच्चिद्रूपं

सच्चिदानन्दरूपे

मयि ब्रह्मण्यादिदेवे तु प्रतिष्ठम् ॥४२॥

इत्युक्त्वा श्रीपतिस्ताभ्यो दिव्यं चक्षुरदात् प्रभुः ।

ततस्ता ददृशुः कृत्स्नं रूपं स्वं विश्वतो हरिः ॥४३॥

यत्रास्ति धाम विपुलं मणिजुष्टहेम-

प्राकारगोपुरगृहापणसौधगन्धम् ।

आरामपुष्पितलतातरुसौरभादचं

गुज्जद्विरेफमदराव॑पिकीसमूहम् ॥४४॥

यत्रावसन्ति पुरुषाः शतपत्रनेत्राः

श्यामावदातवपुषः सुपिशङ्गवस्त्राः ।

सर्वे चतुर्भुजविराजितशङ्खचक्र-

कौमोदकीकमलशङ्खधराः सवेषाः ॥४५॥

माया न यत्र गुणकर्मकलाविलासा

यद्वासिनो हरितनोनितरामभिन्नाः ।

श्रीमद्रमारमणजुष्टतुलस्यमोघ-

सौरभ्यसंग्रहसमुद्भवभूरिमत्ताः ॥४६॥

यत्राङ्गणं विविधरत्नविनिर्मितं यन्-

मन्दारमूलमणिभूत् क्रमिकालवालम्<sup>२</sup> ।

दिव्याङ्गनागतिविमोहितराजहंस-

पेपीयमानपरिपूर्णसुधावसेकम् ॥४७॥

चाम्पेयकुन्दवकुलोत्पलनागताल-

हिन्तालकेसरकदम्बतमालजुष्टैः ।

यत्राद्भुतैरुपवनैः कमलेक्षणानां

चेतो न याति विकृतिं भगवत्पराणाम् ॥४८॥

यस्मिन् रमारमणसौधमहार्हतुङ्ग-

द्वारोभयस्थलनिषण्णसुवेत्रहस्तौ ।

१. °दर्पि°—रीबाँ । २. मणिभूतकनिकाल०—मथु०, बड़० ।

दिव्यौ जयश्च विजयश्च सुरेश्वरादीन्  
 काले प्रवेशयति (तः ?) द्वूरनमत्करीटान् ॥४९॥

यस्मिन् विभाति विपुलाश्च विमानकोटचो  
 वैदूर्यरत्नकनकोत्तमनिर्मिताङ्गाः ।

तत्र स्थिता हरिमयाः पुरुषाः स्फुरन्ति  
 रामैकलीनमनसोऽभुतकेलिमन्त्राः ॥५०॥

यत्र प्रयान्ति विधिभिर्विपुलैर्यजन्तो  
 ये वा विचित्रविषयोऽद्भुतसौख्यमत्ताः ।

यत्कोटिशास्त्रवचनैर्विनिरूपितं किं  
 त्वद्यापि वाङ्मनसगोचरतां न यातम् ॥५१॥

तत्रास्थिताः<sup>१</sup> स्वरूपं मे प्रत्येकं ददृशुः स्वयम् ।

श्रीराम[रमा?]<sup>२</sup>रमणस्यान्तं<sup>३</sup>नारायणवराङ्गकम् ॥५२॥

नारायणः सत्त्वनिधिः सतांपतिः सहस्रनामा श्रुतिवागगोचरः ।

त्रयीमयः शेषमये शयानो भुजङ्गतल्पे चिछ्रनो ब्रह्मपूर्णः ॥५३॥

तस्याङ्गसंस्थं ददृशुः स्वरूपं स चापि रामः सहजास्ताः स्वयं च ।

निःशोकनिर्व्याकुलपूर्णरूपः सच्चित्सुखामभोनिधिसद्यमनाः<sup>३</sup> ॥५४॥

एवं ताश्चिन्मये लोके रामेण श्रीचिदात्मना ।

साकं भोगांश्च भुज्जानाः सहजारूपमभ्ययुः ॥५५॥

स्वप्नवत्तदवस्थातः समुत्थाय विचित्रिताः ।

ददृशुः स्वपुरे रामं स्वात्मानं तत्पुरोगतम् ॥५६॥

तामवस्थां संस्मरन्त्यः श्रीराममहिषीपदम् ।

सद्यश्च मिलिताः सर्वा इदमूचुः सुविस्मिताः ॥५७॥

अहो अयं कान्त किमेतदन्तराचक्षमहि<sup>४</sup> ब्रह्म सुखातिगं यत् ।

सुखं परं वीतविश्वप्रवाहं रजस्तमःसत्त्वगुणातिगं च ॥५८॥

अहो लोकस्य माधुर्यं अहो विपुलतापि च ।

अहो प्रासादसौधादिरचनाश्रयभूः परा ॥५९॥

१. यत्रा<sup>०</sup>—रीवाँ । २. रमणास्थानं—रीवाँ । ३. °सेव्यमानाः—अयो०, रीवाँ ।

४. °दन्तरं विचक्षमहि—अयो०, रीवाँ ।

अहो ईशा तवामुष्य प्रभावः इयामसुन्दर ।  
 अहो वर्यं धन्यतमा महिष्यस्त्वन्महाङ्कगाः ॥६०॥  
 सर्वाश्च सहजारूपाः सच्चिदानन्दविग्रहाः ।  
 न कुतश्चित् क्वापि चोनाः साम्राज्यपदवीजुषः<sup>१</sup> ॥६१॥  
 तदेव दर्शयास्माकं स्वं धाम प्रकृतेः परम् ।  
 न यत्र तव विश्लेषो क्षणमप्यस्ति राघव ॥६२॥

### श्रीराम उवाच

स एवैष महालोकश्चित्तलोकोऽयं<sup>२</sup> प्रपश्यथ ।  
 यत्र प्रमोदवनभूचेतो मोदयते भूशम् ॥६३॥  
 ततोऽस्य नैव भेदोऽस्ति गोपवध्वो मनागपि ।  
 पुनः पश्यत सद्दृष्ट्या<sup>३</sup> लोकदृष्टिं व्यपोह्य च ॥६४॥  
 मत्स्वरूपमिदं सर्वं कोटिब्रह्मण्डमूर्धगम् ।  
 ममांशैश्च कलाभिश्च बहुरूपेण संततम् ॥६५॥  
 तत्र तत्र भवत्योऽपि महिषीपदमागताः ।  
 यत्र यत्रास्मि श्रीरामो मम धाम चिदात्मकम् ॥६६॥  
 सर्वाः संमिलिता यूयं प्रमोदविषये मया ।  
 सर्वेऽप्यंशा मम पुनरिहैव मयि संगताः ॥६७॥  
 इत्येवं भावयित्वा स्वं रूपं सदसतः परम् ।  
 मया नित्यं सुसंबद्धं नैव शोचितुमर्हथ ॥६८॥  
 वैकुण्ठे चिन्मये लोके इवेतद्वीपे मनोहरे ।  
 सूर्यमण्डलमध्ये च भ्रुवोरन्तश्च योगिनाम् ॥६९॥  
 व्यापिवैकुण्ठमध्ये च यूयं सर्वत्र संगताः ।  
 भवतीभिर्विना क्वापि नाहं तिष्ठामि निर्वृताः ॥७०॥  
 अंशरूपा कलारूपा युष्माकं सकलाः श्रियः ।  
 सर्वासामंशिनी श्रीणां सहजा सहजाकृतिः ॥७१॥

१. कुतश्चित्क्वापि च नः साम्राज्यपदवीजयः—अयो०, रीव॑० । २. “साकेतः”  
 टि०—मथु० । ३. तदूह०—रीव॑० ।

एवं विज्ञाय चात्मानं स्वरूपं च व्रजाङ्गनाः ।  
 रमध्वं मयका साकं परमानन्दनिर्वृत्ताः ॥७२॥  
 अवतारार्थमेतं नु करिष्यामि धृतन्नताः ।  
 न तत्र शोचितुं योग्या भवत्यः प्रकृतेः परः ॥७३॥  
 एतद्वो दर्शितं रूपं मोहव्यपगमाय च ।  
 विश्लेषार्त्तभवायासव्यवच्छेदाय च प्रियाः ॥७४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां रामगीता-  
 महोपाख्याने एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

६

### पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

पुनश्च वो दिव्यदृशं ददामि व्रजयोषितः ।  
 तेन द्रक्ष्यथ मद्रूपमिहैव प्रकृतेः परम् ॥ १ ॥  
 इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वं रूपं रामचन्द्रमाः ।  
 कोटिब्रह्मण्डसंस्थानामाश्रमं दिव्यविग्रहम् ॥ २ ॥  
 सहस्रमूर्द्धनिनकर्णचक्षुर्नासौषुगण्डादिकपाणिपादम् ।  
 सहस्ररोचिःप्रकरप्रकाशप्रत्यस्तदिभूमिनभस्तमिश्रम् ॥ ३ ॥  
 सहस्रदिव्याभरणप्रकाशं सहस्रदिव्यायुधतेजसां निधिम् ।  
 सहस्रबाहूदरनाभिवक्षः सहस्रदिव्यं मणिकुण्डलश्रियम् ॥ ४ ॥  
 यत्राश्विनौ वसवश्चैव साध्या विश्वेदेवाः सूर्यगणाश्चैव रुद्राः ।  
 एकोनपञ्चाशदपि प्रभञ्जनाश्चतुर्दशेन्द्रा लोकपालाश्च सर्वे ॥ ५ ॥  
 गन्धर्वविद्याधरसिद्धकिन्नरा नागा नगाश्चैव नदाश्च नदयः ।  
 समुद्र आपः प्रदिशो दिशो भूर्दीपाः पुरग्रामवनाद्रिसंघाः ॥ ६ ॥  
 एकैकस्मिन् रोम्णि रामस्य<sup>१</sup> कोटिब्रह्मण्डसंस्थां ददृशुर्गोपवध्वः ।

१. °कस्मिन् श्रीरामस्य—मथु०, बड़० ।

जम्बूद्वीपं तत्र साकेतसंस्थां<sup>१</sup> प्रमोदकान्तारमथात्र रामम् ॥ ७ ॥  
 तत्सन्निधौ स्वस्वरूपं च गोप्यो नित्योल्लसद्रामविलासपुष्टम् ।  
 दृष्ट्वा विचित्राश्च विचेतसस्ताः संतुष्टुवुः प्राज्जलयो गृणन्त्यः ॥ ८ ॥

गोप्य ऊचुः

सत्यं त्वमूचेऽहमनादिरव्ययः प्रकाशमानः पुरुषः पुराणः ।  
 त्वद्वर्णनात् साधु सम्यक् प्रतीतं परावराणां परमस्त्वं महेशः ॥ ९ ॥  
 त्वामेव गायन्ति समस्त वेदास्त्वामेव पश्यन्ति सुयोगदृष्टचा ।  
 त्वामेव भावन्त इमे प्रपन्नाः कालत्रासात् पाहि पाहीति राम ॥ १० ॥  
 त्वमादिसृष्टौ भगवान् विरज्जिर्भूत्वा त्रयीमध्यगीष्टाः<sup>२</sup> स्वभासा ।  
 त्वमेव विश्वस्य निधानमुत्तमं त्वमेव वीजं स्थिरजङ्गमानाम् ॥ ११ ॥  
 अमी लोका लोकपालाश्च सर्वे त्वयेव सूत्रे मणिवत्संप्रयुक्ता ।  
 त्वं कालशक्त्या निजया विश्वमेतत् सृजस्यवस्यत्स च भूरिवीर्य ॥ १२ ॥  
 न च त्वदीयं महिमानमेते जानन्ति लोकास्त्वयि नित्यप्रतिष्ठाः ।  
 अहो अनन्तस्य तवेदृशं परं मरुत्वमुज्जासितवाङ्मनः पदम् ॥ १३ ॥  
 न ते वीर्यं वेत्तुममी समर्थाः सब्रह्मलोकाश्च सलोकपाला ।  
 स्वानुग्रहेणैव वेद्योऽसि किञ्चिन्नमोस्तु ते ब्रह्मणेऽस्मै परस्मै ॥ १४ ॥  
 दृष्ट्वा तवेदं वपुरुग्रवीर्यं स्वलङ्घकृतं भूरि विष्वकूप्रकाशम् ।  
 कोटीन्दुसूर्यनिलबिम्बनेत्रं वित्रस्तचित्ताः स्म वयं स्त्रियः प्रभो ॥ १५ ॥  
 ग्राम्यस्वभावाः कव वयं व्रजस्था कव ते रूपं दुर्वितव्यं सुराणाम् ।  
 ज्वालासहस्रप्रकरैर्दुर्निरीक्ष्यं तदेवासमान् दर्शय स्वरवरूपम् ॥ १६ ॥  
 अस्मिन् स्वरूपे तव रामचन्द्र स्वात्मानमप्येवमुदीक्षयामः ।  
 त्वां चैव साकेतपुरीसमीपप्रमोदकान्तारनिकुञ्जसंस्थम् ॥ १७ ॥  
 तथापि नो हृदयं वेपतेऽद्य दृष्टवेदमुग्रं तव नामरूपम् ।  
 कालोऽसि वा कालकालोऽसि वा त्वं रुद्रोऽसि वा कोऽपि कालाग्निरुद्रः ॥ १८ ॥  
 इदं रूपं द्रष्टुमर्हा वयं नः स्वतेजसा व्याप्तदिग्म्बरावनि ।  
 तदेव नो दर्शय रूपमाधिहन् कन्दर्पकोटिद्युतिहारि हृदयम् ॥ १९ ॥

१. °संस्थं—अयो० । २. °गोप्यः—रोवाँ ।

नमोस्तु तुभ्यं पुरुषाय शाश्वते पूर्णात्मने कारुणिकाय वेधसे ।  
 स्वरूपशक्त्या सकलं च विभ्रते परावराणां परमाय राघव ॥२०॥

प्रमोदवनमध्यस्थकुञ्जान्तरविलासिने ।  
 नित्यलीलाभ्युपेताय रामचन्द्राय ते नमः ॥२१॥

साकेतनगरोपान्ते अशोकवनवासिने ।  
 सहजाशक्तियुक्ताय रघुवर्याय ते नमः ॥२२॥

नमो मुक्ताविभूषाय नमोरत्नावतंसिने ।  
 नटाय<sup>१</sup> दिव्यवेशाय राघवाय च ते नमः ॥२३॥

कञ्जकिञ्जलकवस्त्राय नीलसुन्दरकान्तये ।  
 अरविन्दनिभेक्षाय नमो नृपतिसूनवे ॥२४॥

यद्दृष्टमेतद्भूवतः स्वरूपं सहस्रमार्तण्डकरालरोचिः ।  
 आद्यस्तदेवाद्य वरेण्य नाथ स्वविग्रहं दर्शय दोद्ययेन ॥२५॥

नारायणस्तवैवांशः सहजांशस्तथा रमा ।  
 स त्वं राम वरः<sup>२</sup> साक्षाद्वयं चापि रमात्मिकाः ॥२६॥

तथाप्यनेनैव सुखग्रहेण सदात्वमस्मान् रमयाधिहन्तः ।  
 किं वा वियोगानलबिभ्यतीर्नः<sup>३</sup> प्रवेशय स्वांशसमूह एव ॥२७॥

यत्र प्रमोदवनमञ्जलमाधुरीयं  
 यत्रोत्तरञ्जसर्युपुलिनद्वयश्रीः ।  
 यत्राप्यशोकवनमद्भुतवल्लिङ्गुष्टं<sup>४</sup>  
 देशः स<sup>५</sup> एव हृदि नः सततं चकास्तु ॥२८॥

श्रीरामचन्द्र वरदेशवर नित्यलील  
 श्रीमन् प्रभो कलय नः करुणाद्रृष्ट्या ।

येन त्वदड्ग्रिसरसीरहसौरभान्त-  
 भृड़गीवद्वन्मदहृदः सततं वसामः ॥२९॥

इत्याभाष्याखिला गोप्यः प्रेमविह्वलिताशयाः ।  
 निषेतुश्चरणम्भोजे स्वात्मार्पणधिया प्रभोः ॥३०॥

१. नराय—बड़ो० । २. रामावदः—अयो०, रीवाँ० । रामवदः—मथु०, बड़ो० ।

३. विभ्रतीर्—बड़ो० । ४. °पुष्टं—रीवाँ० । ५. “स कोशल” दि०—रीवाँ०, मथु० ।

## श्रीराम उवाच

अहो धन्यतमा यूथमहं याभिर्वशीकृतः ।  
 मल्लीलामाधुरीं नित्यं पश्यन्त्यः सुखमासताम् ॥३१॥  
 युज्माकं भोहनाशाय स्वरूपं दर्शितं मया ।  
 माभूद्वःक्लेशनाशोऽपि संगतानां मयि प्रियाः ॥३२॥  
 मदीया कालशक्तिश्च नैव<sup>१</sup> स्पृक्ष्यति वः प्रियाः ।  
 कालमायातिगे लोके<sup>२</sup> सुखमेधध्वमङ्गनाः ॥३३॥

नित्यः संगो भवतीभिर्मायं  
 चन्द्रस्थेवाहर्निशं चन्द्रिकाभिः ।  
 इत्थं जात्वा नानुतप्यध्वमन्त-  
 दृष्ट्वाप्यन्यं सेऽवतारस्य कार्यम् ॥३४॥

अत्र नित्यस्थितश्चाहं स्वांशेन नृपतेर्गृहे ।  
 अवतीर्य करिष्यामि धर्मरक्षां सनातनोम् ॥३५॥  
 दैत्यांश्चैव हनिष्यामि रावणादेन् सुरद्रुहः ।  
 जानकीमुद्घहिष्यामि सहजांशत्वधारिणीम् ॥३६॥

भक्तान् समुद्घरिष्यामि पशुपक्ष्यन्त्य<sup>३</sup>जानपि ।  
 धर्मं संस्थापयिष्यामि तोषयिष्यामि निर्जरान् ॥३७॥  
 रघुवंशं करिष्यामि यशोभिः सुरभिर्मुहुः ।  
 साधूंश्च मानयिष्यामि मान्यान् देवद्विजादिकान् ॥३८॥

करिष्यामि महायज्ञानश्वमेधादिकानहम् ।  
 लीलाः संतानयिष्यामि क्रियाशक्त्या स्वकीयया ॥३९॥  
 कृत्वावतारकार्याणि ब्रह्मनि विपुलानि च ।  
 प्रमोदवनमेष्यामि भवतीसौख्यहेतवे ॥४०॥

तावद्यूपं मया साकं प्रमोदवनवीथिषु ।  
 अंशुरूपं समासाद्य मदभेदेन रंस्यथ ॥४१॥

१. न च—अयो०, न—मथु०, बड़ो० । २. “प्रमोदवने” टि०—मथु० ।

३. <sup>०</sup>प्रक्ष्यंतिजानपि—मथु०, बड़ो० ।

अत्रस्तोऽप्यहमीशानशापपालनकाम्यया ।  
 अन्तर्हितो भविष्यामि मदंशून् यूथमेष्यथ ॥४२॥  
 यदा सुमहती पीडा देहे वाधिष्यते च वः ।  
 तदा यूथं वियोगेन मत्तादात्म्यमवाप्त्यथ ॥४३॥  
 इत्येतत् कथितं गोप्यो रहस्यं मम यत् स्थितम् ।  
 भूयःकिमिच्छथ श्रोतुं तद्वो गोप्यतमं ब्रुवे ॥४४॥

इति श्रीमद्वादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां  
 रामगीतामहोपाख्यानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

६

### एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः<sup>३</sup>

कति रूपाणि भवतो ध्येयानि शुभमिच्छुभिः ।  
 शृङ्गारवीररौद्रादिभेदात्तन्नो वद प्रभो ॥ १ ॥  
 यस्य रूपस्य ध्यानेन यत्कलं समवाप्यते ।  
 तन्नः कथय श्रीराम साधकाभीष्टहेतवे ॥ २ ॥

श्रीराम उवाच

निर्गुणोऽप्यहमाश्चर्यैरप्राकृततमैर्गुणैः ।  
 नृणां पृथगिवाभातुं योग्योऽस्मि मदुपासिनाम् ॥ ३ ॥  
 शुद्धमप्राकृतं सत्त्वं रजश्चैव तमस्तथा ।  
 मत्संस्थं तद्विजानीत कल्याणगुणमन्दिरम् ॥ ४ ॥  
 तैस्तर्गुणैः पृथगभावमाश्रित्य<sup>३</sup> शुभहेतवे ।  
 भक्तानां दर्शयाम्यद्वा स्वरूपं सुमनोहरम् ॥ ५ ॥  
 रत्नपीठसमासीनमास्थितं योगमुद्दया ।  
 अङ्गन्यस्तसमुत्तानकरपङ्कजभूषितम् ॥ ६ ॥

१. अयं श्लोको नास्ति—अयो० । २. नास्ति—अयो०, रीवाँ । ३. °श्रितैः—रीवाँ ।

नासाग्रन्थस्तनयनं मुद्रितास्यं च सुस्थिरम् ।  
 विष्टब्धवक्षसं दिव्ययोगध्यानपरायणम् ॥ ७ ॥  
 याज्ञवल्क्यादियोगीन्द्रैरूपासितसुविग्रहम् ।  
 सरयूपुलिनाश्वत्थमूलमास्थाय संस्थितम् ॥ ८ ॥  
 सततं<sup>१</sup> मां स्मरेदेतत् सात्त्विकं ध्यानमीरितम् ।  
 वामोरुन्धस्तचरणं रत्नसिंहासनस्थितम् ॥ ९ ॥  
 वामे करे तत्त्वमुद्रां दक्षे व्याख्यां च निर्वृताम् ।  
 योगीन्द्रेष्वात्मतत्त्वार्थं व्याचक्षाणं स्मिताननम् ॥ १० ॥  
 वेदवादसमुज्जादमुखरीकृतदिक्तटम् ।  
 सिद्धान्तज्ञापनानन्दनमन्मुनि<sup>२</sup>गणार्चितम् ॥ ११ ॥  
 ध्यायेन्मां सततं ध्यानमेतत्सात्त्विकराजसम् ।  
 वीरासनसमासीनं स्वपक्षस्थापनोद्धुरम् ॥ १२ ॥  
 परपक्षं निरस्यन्तं क्रुद्ध्यन्तं वा सुरेष्वपि ।  
 ध्यायेद्रघुवरं ध्यानमेतत्सात्त्विकतामसम् ॥ १३ ॥  
 प्रपञ्चभक्तसंदोहकरुणाकुललोचनम् ।  
 उद्भूताश्रुकलाकीर्णं सोचयन्तं भवार्तितः ॥ १४ ॥  
 ध्यायेन्मां सुमुखं<sup>३</sup> ध्यानमेतत्सात्त्विकतामसम् ।  
 हैर्मसिंहासनासीनं कौस्तुभेन विभूषितम् ॥ १५ ॥  
 दक्षे लक्ष्मणसंयुक्तं वामे जनकजायुतम् ।  
 अग्रे हनुमता भक्तिनिबद्धाऽजलिना युतम् ॥ १६ ॥  
 सौमित्रिभरताभ्यां च दिव्यचामरवीजितम् ।  
 मात्रा कौशल्यया स्नेहान्नीराजितशिखानखम् ॥ १७ ॥  
 स्तवनोद्घोषिताष्टांशैः स्तूयमानं सुर्खिभिः ।  
 इन्द्रादिदिविषद्वन्दमुक्तकल्पलतासुमम् ॥ १८ ॥  
 भेरीपटहनिःस्वानमृदङ्गस्वरैनादितम् ।  
 दिव्यप्रासादभवने शोभमानं मुदान्वितम् ॥ १९ ॥

१. सततो—अयो० । २. °श्रीमन्मुनि०—अयो० । ३. स्वमुखं—रीवॉ० ।  
 ४. °रव°—मथु०, बड़० ।

समस्तराजराजेन्द्रं दिव्यायुधविराजितम् ।  
 धनुर्बाणधरं ध्यायेद् ध्यानमेतत्तु राजसम् ॥२०॥  
 शाम्भवं धनुरादाय त्रोटयन्तं तृणादिवत् ।  
 ईषत्संरंभसाटोपं ध्यायेद्राजसतामसम् ॥२१॥  
 क्रुद्ध्यन्तं राक्षसानीकमथनोन्मुखसायकम् ।  
 कबन्धीकृतवीरौघसंकुले रणमण्डले<sup>१</sup> ॥२२॥  
 मृगेन्द्रमिव खेलन्तं दुराधर्षं निजौजसा ।  
 ताम्रारुणेक्षणं वीरं दोर्दण्डद्वयविक्रमैः ॥२३॥  
 कुण्डलीकृतकोदण्डं प्रचण्डं मां हृदि<sup>२</sup> स्मरेत् ।  
 तामसं ध्यानमुद्दिष्टं शुभदं राघवस्य मे ॥२४॥  
 सिन्धुतीरप्रतिष्ठब्धवानरानीकसंकुलम् ।  
 क्रियाविधातसंभूतरोषसंहितसायकम् ॥२५॥  
 तज्जाग्निदह्यमानाबिधव्याकुलाशेषयादसम् ।  
 कोपान्नियमिताम्भोधिकृतपादाभिवन्दनम् ॥२६॥  
 संरंभेण व्रुवाणं च मार्गं देहीति सिन्धवे ।  
 ईषद्भ्रूमङ्गसंभिन्नललाटविकटाकृतिम् ॥२७॥  
 सीताविरहनिर्जूजटामुकुटमण्डितम् ।  
 ईदूशं भावयेन्मां तद्व्यानं राजसतामसम् ॥२८॥  
 अथ वक्ष्ये गुणातीतं भवीयं ध्यानमुत्तमम् ।  
 प्रमोदवनकुञ्जान्तर्दिव्यकल्पलतागृहे ॥२९॥  
 सहजानन्दया शक्त्या युक्तं वामाङ्गसंस्थया ।  
 दिव्यशृङ्गारवेशाढ्यं सुक्ताहारविभूषितम् ॥३०॥  
 हरिचन्दनलिप्ताङ्गं मणिवर्यवितंसकम् ।  
 किशोरं कञ्जपत्राक्षं रासरूप<sup>३</sup>मनोहरम् ॥३१॥  
 गोपालतरुणीतीक्षणकटाक्षतरलीकृतम् ।  
 फुल्लारविन्दसंयुक्तं नालभ्रमरकारिणम् ॥३२॥

१. मण्डले स्थिरं—रीवौ । २. हृदा—मथु०, बड़० । ३. राजरूप<sup>०</sup>—बड़० ।

मकराकृतिमाणिक्यकुण्डलश्रवणद्वयम् ।  
 नवमौक्तिकसंशोभिनासाग्रमधुराकृतिम् ॥३३॥  
 उन्नद्वचारुचिबुकं पक्वबिम्बारुणाधरम् ।  
 दशनज्योतिरालोकप्रकाशितदिग्न्तरम् ॥३४॥  
 नीलालकालिलावर्षललिताननपञ्चजम् ।  
 श्रीमच्छूडामणि॑ द्योतिमूर्धनं वेणिकान्वितम् ॥३५॥  
 मुरलीमज्जु॑ माधुर्यसंमुग्धमधुराधरम् ।  
 रत्नाङ्गुलीयकद्योतविचित्रमुरलीकरम् ॥३६॥  
 रत्नकेयूरसंभ्रान्तहोर्दण्डद्वयमणितम् ।  
 रत्नाम्भोजदलाकारचारुपाणितलद्वयम् ॥३७॥  
 रत्नपूर्णकटीबन्धरणत्कवणित॑ विग्रहम् ।  
 पीताम्बरपरीधानं निम्ननाभिवलित्रयम् ॥३८॥  
 वामाङ्गिकृतदक्षाङ्गिसर्वाङ्गललिताकृतिम् ।  
 मन्दहाससुधासिक्ताभीरोहृदयभूरुहम् ॥३९॥  
 परार्द्धकामसौन्दर्यगर्वहरिदृगञ्चलम् ।  
 कटाक्षक्षोभिताशेषगोपस्त्रीचित्तलोचनम् ॥४०॥  
 नवीननीलपाथोजपटलीमसृणाशिखम् ।  
 इन्द्रनीलमणिप्रख्यमतसीकान्तिस्करम् ॥४१॥  
 कण्ठादुभयपार्श्वस्थलोलत॑ पीतपटच्छविम् ।  
 माणिक्यमुकुटभ्राजिमुक्ताहारविभूषणम् ॥४२॥  
 पञ्चवर्णप्रसूनाढयं वनमालाविभूषितम् ।  
 भज्जीरमज्जुलाकारं चरणाम्भोजपल्लवम् ॥  
 राजराजसुतं रामं रमणं मां विभावयेत् ॥४३॥  
 एतद्वचानमनुत्तमं खलु गुणातीतं मुहुर्भावितम्  
 श्रीमन्नन्दननन्दनीनयनयोरानन्दरत्नाकरम् ।  
 कृत्वा यः कुरुते जपार्चनविधिं न्यासादिरूपाः क्रिया-  
 स्तस्मै श्रीसहजापतिः प्रणतये सद्यः प्रसीदत्यहो ॥४४॥

१. °दिग्म्बरम्—रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २. रामचूडामणि॑—रीवाँ । ३. °मन्द°—अयो० । ४. °पूर्णित॑—रीवाँ । ५. लोल॑—रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

अन्यान्यपि तु रामस्य ध्यानानि मम सन्ति वै ।  
 वजे विहरतः श्रीमद्गवेन्द्रसुखितालये ॥४५॥  
 अवाङ्मनसरूपाणि निगुणान्येव तान्यपि ।  
 कवचिद् द्विहायनं बालं खेलन्तं शिशुभिः सह ॥४६॥  
 नवनीतकरामभोजं रिङ्गन्तं गोपिकाङ्गणे ।  
 ज्ञानाङ्गणत्कटितटीकिङ्गणेनूपुरद्वयम् ॥४७॥  
 कोटिचन्द्रमुखं श्रीमत्पञ्चजायतलोचनम् ।  
 जडितद्वीपिनखरस्वर्णखण्डविभूषितम् ॥४८॥  
 अव्यक्तमधुरालापं मातृणां सुखदायकम् ।  
 भजेन्मां सर्वमाङ्गल्यहेतवे भक्तिमान्नरः ॥४९॥  
 बहूनि बाललीलायां घौवनेऽपि बहून्यपि ।  
 रूपाणि मम भाव्यानि भक्त्या भक्तिधनैर्जनैः ॥५०॥  
 तेषां सुखं श्रियं पुरुषं तुष्टि नैःश्रेयसीं मुदम् ।  
 ददामि सर्वमाङ्गल्यमैहिकं पारलौकिकम् ॥५१॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां  
 श्रीरामगीतामहोपाख्यानं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

०

### द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

शक्तिहस्तं स्मरेन्नित्यं रणे जयमवाप्नुयात् ।  
 धनुर्बाणधरं स्मृत्वा रणे जयमवाप्नुयात् ॥ १ ॥  
 खङ्गचर्मधरं यो मां स्मरेन्नित्यमखण्डितः ।  
 तस्याहं संकटे बाधां सर्वा हन्तुं दृढवतः ॥ २ ॥  
 गदाहस्तं स्मरेन्नित्यं द्यूते जयमवाप्नुयात् ।  
 नौकारुद्धं स्मरेद्यो मां जलभीर्ति तरत्यसौ ॥ ३ ॥

१. वृत्सं—रीवॉ ।

भिल्लवेशधरं क्रूरं गुज्जाकल्पतभूषणम् ।  
 स्मरन्नुच्चाटयेच्छत्रून् संग्रामे संकटेऽपि वा ॥ ४ ॥  
 दिव्यकुञ्जधरं स्मृत्वा मोहयेज्जगतीतलम् ।  
 मुक्ताहारधरं दिव्यमुक्ताफलविभूषितम् ॥ ५ ॥  
 रक्तपुष्पस्त्रजं स्मृत्वा तत्क्षणान्मारयेद्विपून् ।  
 शुक्लाकल्पं शुक्लवस्त्रं शुक्लमाल्यानुलेपनम् ॥ ६ ॥  
 शुक्लवर्णं राघवं मां शान्तिके कर्मणि स्मरेत् ।  
 पीतं पीताम्बराकल्पं स्मरेन्मां वशयेज्जगत् ॥ ७ ॥  
 गजारूढं स्मरेन्नित्यं हेमच्छत्रविभूषितम् ।  
 परितो रोचिषा भान्तं विभूतिं प्राप्नुयान्नरः ॥ ८ ॥  
 लसत्तुलसिकादामराजमानसुवक्षसम् ।  
 स्मरेन्मां तत्क्षणादेव दृढवैराग्यमाप्नुयात् ॥ ९ ॥  
 चिन्मुद्रया दक्षकरे वामे पुस्तकभूषितम् ।  
 मां सदा स्मरतः पुंसः सद्यो ज्ञानोदयो भवेत् ॥ १० ॥  
 ताम्बूलरागदिघौष्ठं स्मयमानमुखाम्बुजम् ।  
 स्मरन्मां मुच्यते जनुदर्दिद्रच्यभवशोकतः ॥ ११ ॥  
 रत्नाकल्पं रत्नहारभूषितं रत्नकञ्चुणम् ।  
 स्मरन्मां जानकीजानिं त्रैलोक्ये विजयी भवेत् ॥ १२ ॥  
 रथारूढं स्मरेन्नित्यं त्रैलोक्यं भ्रामयेज्जनः ।  
 प्रासादशिखरासीनं स्मरन्नुत्कर्षमाप्नुयात् ॥ १३ ॥  
 व्रजस्त्रीगणमध्यस्थं हसन्तं नर्मकेलिभिः ।  
 कुञ्जहारहरं स्मृत्वा त्रैलोक्यसुभगो भवेत् ॥ १४ ॥  
 विपञ्चीं वादयन्तं च मूर्छनास्वरभक्तिभिः ।  
 स्मरेन्मां सततं भर्त्यः सर्ववागीश्वरो भवेत् ॥ १५ ॥  
 मञ्जुलालापसुभगं प्रियथा सीतया सह ।  
 स्मरेद्रघुवरं यो मां सत्कविर्जयिते नरः ॥ १६ ॥

१. अतः परं “गजारूढं स्मरेन्मां यः सर्वं स वशयेज्जगत्” इत्यधिकः पाठः—  
अयो०, रीव० ।

छत्रायितेन्दुसंदोहस्त्रवत्पीयूषनिर्जरैः ।  
 सिच्यमानं स्मरन् रामं मामारोग्यमवाप्नुयात् ॥१७॥  
 दक्षे दरवरं बिभ्रद्वामे मुर्णि दृढां दधत् ।  
 स्मर्यमाणो रामवीरं सद्यः स्तम्भयते द्विषः ॥१८॥  
 चक्रपाणिः स्वयं रामः सद्यो नाशयते परान् ।  
 गदापाणिः स्वयं रामः सद्यो नाशयते गदान् ॥१९॥  
 कुण्डलोकृतकोदण्डमुक्तैः शिततमैः शरैः ।  
 ताडकां मारयन् रामः परकृत्यानिवारकः ॥२०॥  
 शितिभल्लनिकृत्विग्रहां रुदतीं शूर्पणखां सुविस्मयन् ।  
 स्मरणीयतमोऽस्मि डाकिनीभयशान्त्यै व्रजवामलोचनाः ॥२१॥  
 अश्वारूढं स्मरद्रामं संप्राप्ते धर्मसंकटे ।  
 दक्षे प्रसूनकलिका वामे जनकजाकरम् ॥२२॥  
 बिभ्रत्सर्वथिसंसिध्यै ध्येयोऽस्मि रघुनन्दनः ।  
 धनुर्वाणधरो रामः सर्वकार्यं प्रसाधयेत् ॥२३॥  
 एवं ममातिरुचिराणि सुखावहानि  
 रूपाणि वाङ्मनसलोचनमङ्गलानि ।  
 ध्यायन्नरोऽथ लभते कुशलानि भूयो  
 धर्मार्थकामगणमुक्तिसुखावहानि ॥२४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां रामगीता-  
 महोपाख्याने द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥



## त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

**गोप्य उच्चुः**

सुखितः किंतपोऽतप्यन्माङ्गल्या च यशस्विनी ।  
 यथोर्नेत्रहृदानन्दचन्द्रमास्त्वमवातरः ॥ १ ॥  
 नन्दनः किंतपोऽकार्षीद् गोपेन्द्रो वैश्यसत्तमः ।  
 तत्पत्नी राजिनी चैव महाभागा शुचिस्मिता ॥ २ ॥  
 यथोरपत्यतां याता सहजानन्दिनी स्वयम् ।  
 एषा हि सच्चिदानन्दपरब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ३ ॥  
 एतत् कथय नो देव रघुवंशदिवाकर ।  
 अस्माकं सुकृतानां च माहात्म्यं वद राघव ॥ ४ ॥  
 याभिः संवीक्षितो दृग्भ्यां पूर्णब्रह्म परं भवान् ।

**श्रीभगवानुवाच**

मद्रूपशिचद्धनानन्दो गवेन्द्रः सुखितो ह्यसौ ।  
 तथैव माता माङ्गल्या मद्रूपा सच्चिदात्मिका ॥ ५ ॥  
 नन्दनो राजिनी चैव सहजानन्दिनीप्रसूः ।  
 तथापि तेषाम् उत्पर्ति कथयामि युगे युगे ॥ ६ ॥  
 यदा यदानुजायेऽहं ज्ञानं सत्त्वाद्यनावृतम् ।  
 आविर्भूय मदंशैश्च मम लोलासुखावहः ॥ ८ ॥  
 अयं हि पूर्वकल्पेऽभूत् कर्दमाख्यः प्रजापतिः ।  
 देवहृतिश्च माङ्गल्या तेजोरूपौ तपोनिधी ॥ ९ ॥  
 दम्पती समकुर्वतां सहस्रं शरदां तपः ।  
 जिताहारौ मिताहारौ प्रत्यहं व्रतकर्षितौ ॥ १० ॥  
 नैव किञ्चिद्दयाचेतां मत्स्वरूपैकनिर्वृतौ  
 तस्मिन् भवे मत्कृपया तत्त्वज्ञानमवापत्तुः ॥ ११ ॥  
 समनस्कौ निर्मनस्कौ शुद्धबुद्धौ चिदात्मकौ ।  
 कापिलेन स्वरूपेण शुद्धब्रह्मणि योजितौ ॥ १२ ॥

अतृप्यतां नैव तथापि तद्रसात्तौ दम्पती सच्चदानन्दरूपिणौ ।  
विशुद्धभक्त्या पुरुषोत्तमं मां<sup>१</sup> प्रसाधयन्तौ सहजेन शर्मणा ॥१३॥

यावत्त्रेतायुगं तावद्<sup>२</sup> ब्रह्मकैरस<sup>३</sup>निर्वृतौ ।  
ततः स्वरूपनिष्ठौ तौ माङ्गल्यासुखिताविह ॥१४॥  
बभूवतुर्महोदारौ महावंशौ महाधनौ ।  
शुद्धया परया भक्त्या मत्सान्निध्यमवापतुः ॥१५॥  
तयोर्हृदयसंतुष्ट्यै प्रादुरासमहं प्रियाः ।  
श्रीमत्परिकरोपेतो नित्यसिद्धाभिरन्वितः ॥१६॥  
तथासाधनसिद्धाभिरन्वितो भक्तवत्सलः ।  
श्रुतयस्ता ब्रह्मलोके मद्गुणग्रामगायिकाः ॥१७॥  
इदानीमृषयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः ।  
भक्त्या स्वरूपसंसिद्धा यास्थन्ति मम सन्निधिम् ॥१८॥  
कृष्णावतारे लीलायां मम तादात्म्यवत्यहो<sup>४</sup> ।  
नित्यसिद्धास्तथैवैता भविष्यन्ति प्रिया अपि ॥१९॥  
भविता वसु<sup>५</sup>मुख्यश्च द्रोणोऽसौ सुखितेश्वरः ।  
तत्प्रियां च धरां तत्र माङ्गल्या तु प्रवेक्ष्यति ॥२०॥  
माङ्गल्या सुखितश्चैव मद्रूपौ मद्रसात्मकौ ।  
आविश्य तत्र तत्रैतौ लीला वर्धयतो मम ॥२१॥  
एवं प्रभाभानुरूपौ राजिनीनन्दनावपि ।  
तौ पूर्वस्मिन् भवे मत्तो भक्त्या सुषुप्रसाधितात् ॥२२॥  
मत्स्वरूपवरं लब्ध्वा संगताविह जन्मनि ।  
एकोऽहं सन् द्विधा जातः सहजा राम एव च ॥२३॥  
प्रभाभान्वोः प्रमोदार्थं शृङ्गाररसविग्रहः ।  
अनेन रसवर्येण मत्सेवात्पराविमौ ॥२४॥  
अयं च रसवर्योऽस्ति मद्रूपो नीलसुन्दरः ।  
यो यां यां भावनां धत्ते तस्य तां तां बिभर्म्यहम् ॥२५॥

१. परं—मथु०, बड़ो० । २. सम्यक्—मथु०, बड़ो० । ३. ब्रह्मरस—  
मथु०, बड़ो० । ४. °भागिनः—रीवाँ । ५. गोप°—रीवाँ, येसु°—मथु०, बड़ो० ।

प्रभा च चित्रभानुश्च मम सेवापरायणौ ।  
 दिव्यवर्षसहस्राणि तपोनिष्ठौ बभूतुः ॥२६॥  
 तयोः स्वरूपनिष्ठां तां तपश्चोग्रं सुदुष्करम् ।  
 वीक्ष्य प्रसन्नोऽहमासं पुरो भूयः स्थितोऽभवम् ॥२७॥  
 दिव्यमाणिक्यमुकुटो वनभालाविभूषितः ।  
 दिव्यशृङ्गारवेशाद्यो वामाङ्गे सहजायुतः ॥२८॥  
 रत्नाकलपमनोज्ञाङ्गः कौस्तुभेन विभूषितः ।  
 प्रावृषेष्य<sup>१</sup>घनाकारनीलसुन्दरविग्रहः ॥२९॥  
 स्मितमाधुर्यमुग्धास्यो हरिचन्दनलेपवान् ।  
 पीताम्बरपरीधानो महामञ्जुलविग्रहः<sup>२</sup> ॥३०॥  
 मूर्तिमान्मन्मथदचैव लावण्यामृतसागरः ।  
 एवंविधं मां दृष्ट्वा तावभूतां मोहितान्तरौ ॥३१॥  
 नैव किञ्चिदवृण्वातां मत्स्वरूपैकनिर्वृतौ ।  
 मनः संकल्पमतुलमकुर्वतां सुदुर्गमम् ॥३२॥  
 एवं विधाय जामात्रे कन्या चैवंविधा भवेत् ।  
 तयोराशयविच्चाह<sup>३</sup>मद्रुवं मञ्जुलं वचः ॥३३॥  
 ज्ञातो वां समभिप्रायः तथैवैतद्विष्यति ।  
 संकलिपतं युवाभ्यां यत्तत्थैव भविष्यति ॥३४॥  
 ततस्तौ संचितवरावारेभाते स्तुतिं मम ।  
<sup>४</sup>यादृशेन स्वरूपेण दृष्टस्तादृशभावनौ<sup>५</sup> ॥३५॥

## भानुरुचाच

नमस्ते विश्वात्मन् सततसहजानन्दनिधये  
 मुनीनामप्यन्तर्विरच्चितनिजानन्तरतये ।  
 अगम्याया<sup>६</sup>चित्त्यप्रकृतिरमणीयाय युवयो-  
 र्युगायास्मै कस्मैचिदपि परिपूर्णाय महसे ॥३६॥

१. प्रावृष्मेघ—रीवाँ । २. अयं इलोको नास्ति—अयो० । ३. विज्ञाय—  
 रीवाँ । ४—४. नास्ति—अयो०, रीवाँ । ५. अगम्याया<sup>७</sup>—मथु०, बड़ो० ।

घनस्तोमश्यामं विलसति महामञ्जुलतरं  
 तडित्स्वर्णं वर्णाधिकसुकमनीयं च किमिदम् ।  
 अभूष्य श्रीरेषा परमपुरुषस्योत्तमपते<sup>१</sup>-  
 गुणातीता काचित् परिलसतु सा चेतसि मम ॥३६॥  
 अहो अदृष्टपूर्वाभ्यां रुचिराभ्यां स्वभावतः ।  
 पूर्णाभ्यां स्फुटमेताभ्यां दम्पतीभ्यां नमोनमः ॥३७॥  
 अहो हृदयमेताभ्यां आलिङ्गनरसोत्सुकम् ।  
 अलौकिकमहो दृष्ट्वा सद्यः किन्तु बिभेति नः ॥३८॥  
 अहो लावण्यविस्फारमूर्तिमन्तौ मनोरथौ ।  
 कुत्र वां परमो लोकस्तत्रावां नयतां न किम् ॥३९॥  
 अहो लोकोत्तरं तेजो माधुर्यं श्रीश्च सौभगम् ।  
 चिरं नयनभाग्यैर्नस्तिष्ठतामिह मन्दिरे ॥४०॥  
 नूनमेष पुरुषोत्तमोत्तमो यः परावरकजन्मनां परः<sup>३</sup> ।  
 तस्य नित्यसुविलाससंगिनी श्रीरसौ मधुरकोमलाकृतिः ॥४१॥  
 अहो तपोभिरस्माकं फलितं यद् दृशंगतौ ।  
 एतौ परमकल्याणविग्रहौ लोकमङ्गलौ ॥४२॥  
 अहो युवाभ्यां पुरुषोत्तमाभ्यां श्रीराघवाभ्यां मधुराकृतिभ्याम् ।  
 अपूर्वलावण्यनिकेतनाभ्यां लोकोत्तराभ्यां सततं नमोनमः ॥४३॥  
 अस्मत्पोविवुधवृक्षमहाफलाभ्यां  
 श्रीमत्स्मताधरसुधाहृतलोचनाभ्याम् ।  
 शशवत्स्वभावरमणीयसुविग्रहाभ्यां  
 नित्यं नमोस्तु श्रीजानकीरामचन्द्राभ्याम् ॥४४॥  
 युवामज्ञानगतिकावज्ञातविभवाकृती ।  
 सृष्टिस्थित्यन्तमेतस्य विश्वस्य कुरुतो भृशम् ॥४५॥  
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिगुणाः सुरसत्तमाः ।  
 कटाक्षमात्रनिष्पन्ना युवयोरेव सेवकाः ॥४६॥

१. °त्तमस्य ते—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. रामो—मथु०, बड़ो० ।  
 ३. परावरे यः परजन्मनः परः—रीवाँ ।

युवां कैवल्यनिर्वाणपरमोत्सवदायकौ ।  
 स्वरूपानन्दशक्तयैव वृंहमाणौ गुणाद्भुतौ ॥४७॥  
 यत्तद्ब्रह्म परं पूर्णं स्वरूपानन्दनिर्वृत्तम् ।  
 तत्तु वामेव महतोस्तेजो भद्रामरोत्तमौ<sup>१</sup> ॥४८॥  
 अहो अत्यद्भुतं भाग्यमस्माकं वचनातिगम् ।  
 येन वामद्भुतौ दृष्टौ ब्रह्मपूर्णौ सनातनौ ॥४९॥  
 यावदारोप्यते युष्मास्वगुणेषु गुणोत्करः ।  
 तावत्स्ववाचश्चापल्यं यूर्यं पुनरनुत्तमौ ॥५०॥

## प्रभोवाच

इयन्ते सहजानाम चारुरूपा शुचिस्मिता ।  
 कल्याणिनी महाभागा गौरी हरिणलोचना ॥५१॥  
 असौ ममैवानन्दाय भूयात् स्वानन्दनन्दिनी ।  
<sup>२</sup>भवे भवति भव्यायां नित्यं परिचरन्ति ये ॥५२॥  
 अस्याः स्वरूपलावण्यवशीकृतमनाः भवान्<sup>३</sup> ।  
 अनन्यप्रेमगो भूत्वा रंस्यसे नित्यकेलिभिः ॥५३॥  
 युवाभ्यां नित्यमाधुर्यभूमिकाभ्यां नमोनमः ।  
 एवमेव सदा कार्यो मल्लोचनमहोत्सवः ॥५४॥  
 नमोस्तु दम्पतीभ्यां मे शृङ्गाररसमूर्तये ।  
 घनविद्युनिभाकारनीलसुन्दरतेजसे ॥५५॥  
 अद्य नस्तपसां राशिः फलरूपः सुरद्रुमः ।  
 यदेतद्दृष्टिविषये याति दम्पतियुग्मकम् ॥५६॥  
 अहो कोऽपि चमत्कारो जातो नयनयोर्मम ।  
 स एव सर्वदा तिष्ठत्ववलम्बनमात्मनः ॥५७॥  
 ईदृशो मम जामाता ईदृशी मम कन्यका ।  
 जायेतां नयनानन्दहेतवे सौख्यसिन्धुवत् ॥५८॥

१. महत्तेजो भवत्यमरोत्तमौ—अयो०, मथु०, बड़ो० । २—२.—नास्ति  
 अयो०, रीवाँ ।

इष्टं हुतं दत्तमथापि कृत्यं तपश्च<sup>१</sup> यत्तत्फलितं नैव वेद्धि ।

अनुग्रहः किंतु कृपासमुद्रयोः फलत्यसौ सहजारामयोर्वा ॥६०॥

कोटिभिः साधनानां यन्नैव सद्यः<sup>२</sup> प्रसीदति ।

परब्रह्म तदेतन्नो नयनानन्दहेतवे ॥६१॥

अहो भाग्यमहो भाग्यमस्माकं किन्तु वर्णते ।

यद्दृशोः गोचरं ज्ञानं परब्रह्माभिधं महः ॥६२॥

अहो उत्कण्ठया लोलं हृदयं वाञ्छतीव मे<sup>३</sup> ।

सद्यः परिष्वजाम्येतौ परमानन्दसुन्दरौ ॥६३॥

दृष्ट्वा त्वलौकिकं धाम मनो मे परिवेपते ।

चन्द्रसूर्यर्याग्निधामभ्यः परं धामेदमद्भुतम् ॥६४॥

तपन्निव स्वन्निव ज्वलन्निवैष रोचते<sup>४</sup>

महोभरः प्रभाकरः प्रभासुरः सुखोत्तरः<sup>५</sup> ।

अयं हि सर्वदेवतामयस्त्रयीमयोऽक्षरः

नरोत्तमः प्रियायुतो<sup>६</sup> रमापतिः सतांगति ॥६५॥

नमस्ते नमस्ते सदा राम प्रसीद प्रसीदेश लक्ष्मीनिवास ।

अनेनैव रूपेण नित्यं दृशोर्नः प्रपन्नार्तहन् गोचरत्वं प्रयाहि ॥६६॥

श्रीरामसहजाभ्यां मे पूर्णाभ्यां निजतेजसा ।

अखण्डानन्दबोधाभ्यां पराभ्यां संततं नमः ॥६७॥

इत्येवं विविधैःस्तोत्रैर्भूयस्तुष्टुवतुश्च माम् ।

संतोष्याहं कामवरं रहोवनमगां ततः ॥६८॥

ततो निमेषार्धमितं कालेन प्रतिगच्छता ।

अभूतां साकेतदेशो राजिनीनन्दनश्च तौ ॥६९॥

एतत्सर्वं परिप्रोक्तं यत्पृष्ठमपि वः प्रियाः ।

मन्नित्यलीलाविस्तारे सर्वं जानीत संगतम् ॥७०॥

१. तपं कृतश्च—मथु० बड़ो० । २. साधनैनैव सद्यः पूर्व—रीवाँ । ३. वांछं जीवसे—बड़ो० । ४. तवान्निर्वस्थवचैव निर्गोचर न रोचते—रीवाँ । ५. महोभरः प्रभाकारः प्रभाशूरः सुखोत्तरः—रीवाँ । ६. °युक्तो—अयो०, रीवाँ, बड़ो० ।

नित्यो ह्यायं परिकरो नित्यं मोदवनं त्विदम् ।  
 नित्या गावश्च गोपाश्च नित्यः श्रीसुखितेश्वरः ॥७१॥  
 माता नित्यैव माङ्गल्या नित्यं श्रीनन्दनस्तथा ।  
 नित्यैव राजिनी साक्षान्नित्या श्रीसहजा मम ॥७२॥  
 तं तं भक्तं समाविश्य क्रीडति च युगे युगे ।  
 आविश्य तत्र तत्रैव यत्र साक्षाद्भूवाम्यहम् ॥७३॥  
 साधनैरेव सिद्धयन्ति मद्भक्ताः शुद्धभक्तिः ।  
 तत्र चैते समाविश्यावतरन्ति भवे भवे ॥७४॥  
 मद्देये लोकसंसिद्धे स्वस्वरूपेण तेऽखिलाः ।  
 वर्तन्ते सच्चिदानन्दविग्रहाः सत्पदं गताः ॥७५॥  
 कदाचिच्छ्रीपरिकरो भक्तानां दिव्यविग्रहः ।  
 चिल्लोकवत्स्वरूपेणावतीर्थे प्रवर्तये' ॥७६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां  
 रामगीतामहोपाख्याने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥



### चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः

नित्यसिद्धा वद ब्रह्मन् ब्रूहि साधनसिद्धिगाः ।  
 ऋग् रूपा<sup>३</sup> ऋषिरूपाश्च तासां मध्ये वयं च काः ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

प्रमोदविषिने नित्ये चिन्मये ब्रह्मसंज्ञिते ।  
 मद्रूपा नित्यसिद्धास्ता भवत्यः पश्यत प्रियाः ॥ २ ॥  
 इत्युक्त्वा स्वाङ्गरश्मिभ्यः प्रादुर्भावितवान् प्रभुः ।  
 ताः षोडशसहस्राणि प्रादुरासुः समंततः ॥ ३ ॥

१. प्रवर्तते -अयो० । २. चतुःपञ्चा०—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० । अतः परं  
 चतुर्ष्वेव मातृकासु अध्याय संख्याङ्कने भ्रान्तिः [—संपा०] । ३. अजरूपा—रीवाँ ।

एतास्ता नित्यसिद्धा ये शशिमुख्यः सुलोचनाः ।  
 प्रियाः षोडशसाहस्रं नित्यलीलाधिदेवताः ॥ ४ ॥  
 तासां मध्ये षोडशैव मुख्याः स्युर्वामिलोचनाः ।  
 रामाश्यामाचन्द्रकलामज्जुलाललितालताः ॥ ५ ॥  
 लासिनी भासिनी भासा सुदीमिः सुरचिः प्रभा ।  
 चञ्चला कनका काम्या कामिनीति निरूपिताः ॥ ६ ॥  
 स्वस्वमण्डलमुख्याश्च रामाः सर्वासु नायिकाः ।  
 सहजानन्दिनी सैव श्रीसीता जानकीत्यपि ॥ ७ ॥  
 एतस्या अंशरूपास्तु सर्वा एताः शुचिस्मिताः ।  
 भवतीनां प्रमोदादय प्रादुर्भाव्य प्रदर्शिताः ॥ ८ ॥  
 नित्या एताः प्रमुदविपिने मत्स्वरूपादभिन्नाः  
 श्रीसाकेतश्चिय इह भवे वावतीर्णश्च साक्षात् ।  
 आसां पादाम्बुरुहरजसः प्राप्तये ब्रह्ममुख्या  
 गीर्वाणेन्द्राः पुलकवपुषः सर्वतः कामयन्ते ॥ ९ ॥  
 भवतीनाममर्षःस्यात्तदर्थे तु तिरोहिताः ।  
 मयि नित्यं सन्निहिताः संततानन्दहेतवः ॥ १० ॥  
 मद्वदेताः परिज्ञायेदानीं संस्तूयत प्रियाः ।  
 इत्युक्ताः प्रभुणा तास्तु स्तोतुं समुपचक्रमुः ॥ ११ ॥

## गोप्य ऊँचुः

नमो वो नित्यसिद्धाभ्यः प्रियाभ्यो राघवेशितुः ।  
 स्वरूपानन्दरूपाभ्यो युवतीभ्यः समंततः ॥ १२ ॥  
 यत्सौन्दर्यं क्वापि लोकेऽस्ति किंचित्-  
 तद्युष्माकं कान्तिसारस्य लेशः ।  
 नोचेदस्मिन् पञ्चभूतात्मकाङ्गे<sup>१</sup>  
 क्वोत्कर्षःस्याच्छोकभूमावभव्ये<sup>२</sup> ॥ १३ ॥

१. °लोके—रीवाँ । २. °भाव्ये—अयो०, मथु०, बड़ो० । कोत्रोत्कर्षः  
 शोकभू०—रीवाँ ।

अस्मास्वपि प्रभालेशो भवतीनां विजृम्भते ।  
 नोचेच्छीराघवेन्द्रस्य भवेमहि कथं प्रियाः ॥१४॥  
 प्रमोदवनमेतद्वि भवतीनां निकेतनम् ।  
 प्रियेण नित्यसंबद्धाः खेलनं कुरुथ प्रियाः ॥१५॥  
 यस्मै बिभर्थ कारुण्यं तस्मै भक्ताय साधवे ।  
 नित्यं विहरथ प्रीत्या नित्यलोलाप्रवेशनम् ॥१६॥  
 अतः परं सदास्मासु कृपालेशो विधीयताम् ।  
 येन युष्मत्संगमेत्य' पत्या मोदामहेऽमुना ॥१७॥  
 ब्रह्माद्या अपि देवेन्द्राः श्रीमच्चरणरेणुषु ।  
 लुठन्ति ब्रह्माद्या स्नात्वा धन्यंमन्या दृढ़न्रताः ॥१८॥  
 भवतीनामहो भाग्यं वर्णयामः कथं वयम् ।  
 याभिर्वशीकृतो रामः पूर्णं ब्रह्म निजैर्गुणैः ॥१९॥  
 नमो नमोस्तु युष्मभ्यं ब्रह्मरूपाभ्य उत्तमाः ।  
 श्रीराघवेन्द्ररामाभ्यः प्रेयसीभ्यो नमोनमः ॥२०॥  
 अस्माकं भवतीष्वस्तु नाभ्यसूया कदाचन ।  
 यूयं खलु महिष्योऽस्य वयं दास्यः सदैव वः ॥२१॥  
 करिष्यति प्रियो दृष्टिं भवतीनामनुग्रहात् ।  
 करुणाद्र्दीया शोकं तरिष्यामो वियोगजम् ॥२२॥  
 अस्मास्वन्तर्हितिस्तावन्नोचिता दासिकासु हि ।  
 भवतीनामाश्रयेण करिष्यामः प्रियं वशे ॥२३॥  
 यूयं तावन्नित्यसिद्धाः सदानन्दनिकेतने ।  
 रमथ श्रीराघवेन्द्रे कोऽर्थो वः शिष्यतेतराम् ॥२४॥  
 एतावत्खलु कर्तव्यमस्मासु महिषोवराः ।  
 यत्सदा रामचन्द्रस्य कृपादृष्टिं लभामहे ॥२५॥  
 भवद्वर्णनजं क्षेमं भविष्यति नचान्यथा ।  
 नित्यपार्थकतां याति सज्जनानां समागमः ॥२६॥

श्रीराम उवाच

एताश्चिल्लोकस्वामिन्यः सेवनीयाः प्रयत्नतः ।  
 यदि वाञ्छेन्मम प्रेमपरमानन्दमन्दिरम् ॥२७॥  
 एतासां हि प्रसादेन विधिकेशवशङ्कराः ।  
 मद्भूक्तिपात्रतां याता विपुलक्षेमराशयः ॥२८॥  
 लक्षवर्षसहस्राणि एभिस्तम् तपः पुरा ।  
 आसां भृत्यदराजीनां पादरेणूपलब्धये ॥२९॥  
 तथापि नैव तैः प्राप्नास्तासां चरणरेणवः ।  
 ततो विशुद्धया भक्त्या प्रणताः शरणं ययुः ॥३०॥  
 न स्त्रियः सन्ति खल्वेताः ब्रह्मरूपाः सनातनाः ।  
 ब्रह्मा शिवश्च शेषश्च श्रीश्च ताभिः समा नहि ॥३१॥  
 प्राकृते प्रलये प्राप्ने व्यक्तेऽव्यक्तं गते पुरा ।  
 शिष्टे ब्रह्मणि चिन्मात्रे कालमायातिगेऽक्षरे ॥३२॥  
 ब्रह्मानन्दमयो लोको व्यापिवैकुण्ठसंज्ञकः ।  
 निर्गुणोऽनाद्यनन्तश्च वर्तते केवलेऽक्षरे ॥३३॥  
 अक्षरं ब्रह्म परमं वेदानां स्थानमुत्तमम् ।  
 तल्लोकवासी तत्रस्थैः स्तुतोऽहं वेदराशिभिः ॥३४॥  
 चिरं स्तुत्या ततस्तुष्टः परोक्षं प्राह तान् गिरम् ।  
 तुष्टोऽस्मि वृत्त भोः प्राज्ञा वरं यन्मनसि स्थितम् ॥३५॥

श्रुतय ऊचुः

नारायणादिरूपाणि ज्ञातान्यस्माभिरच्युत ।  
 सगुणं ब्रह्म सर्वेशः<sup>२</sup> वस्तुबुद्धिर्न तेषु नः ॥३६॥  
 ब्रह्मेति पठ्यतेऽस्माभिर्यद्रूपं निर्गुणं परम् ।  
 वाङ्मनोगोचरातीतं ततो न ज्ञायते तु तत् ॥३७॥  
 आनन्दमात्रमितियद्वदन्तीह पुराविदः ।  
 तद्रूपं दर्शयास्माकं यदि देयो वरो हि नः<sup>३</sup> ॥३८॥

१. चिरं प्रमोदवनवासीयान् परोक्षमिह—रीवाँ । २. सर्वेदं—मथु०, बड़०० ।

३. हितः—मथु०, बड़०० ।

श्रुत्वाहं दर्शयामास स्वलोकं प्रकृतेः परम् ।  
 केवलानुभवानन्दमात्रमक्षरमध्यगम् ॥३९॥

यत्प्रमोदवनं नाम वनं कामदुर्घैर्द्रुमैः ।  
 मनोहरनिकुञ्जाढचं सर्वत्र सुखसंयुतम् ॥४०॥

यत्र रत्नगिरिर्नामि सुनिञ्चरदरोयुतः ।  
 रत्नधातुमयः श्रीमान् द्विजालिगण<sup>१</sup>संकुलः ॥४१॥

यत्र निर्मलपानीया सरयूः सरितां वरा ।  
 रत्नबद्धोभयतटी हंसपक्ष्यादिसंकुला ॥४२॥

नानारासरसोन्मत्तं यत्र गोपीकदम्बकम् ।  
 तत्कदम्बकमध्यस्थः किशोराकृतिरित्यहम् ॥४३॥

दर्शयित्वेति च प्राह व्रत किं करवाणि वः ।  
 दृष्टो<sup>२</sup> मदीयो लोकोऽयं ततो नास्ति परं वरम् ॥४४॥

## श्रुतय ऊरुः

कन्दर्पकोटिलावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसि नः ।  
 कामिनीभावमासाद्य स्मरक्षुबधान्यसंशयम् ॥४५॥

यथा त्वल्लोकवासिन्यः कामतत्त्वेन गोपिकाः ।  
 भजन्ति रमणं मत्वा चिकीषाजनि नस्तथा ॥४६॥

## श्रीभगवानुवाच

दुर्लभो दुर्घटश्चैव युष्माकं सुमनोरथः ।  
 मयानुमोदितं सम्यक् सत्यो भवितुमर्हति ॥४७॥

आगामिनि विरच्छौ तु जाते सृष्टचर्थमुद्यते ।  
 कल्पं सारस्वतं प्राप्य व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥४८॥

साकेते सारवे क्षेत्रे अयोध्यामण्डले मम ।  
 प्रमुद्रुने<sup>३</sup> भविष्यामि प्रेयान्वो रासमण्डले ॥४९॥

जारधर्मेण सुस्नेहं सुदृढं सर्वतोऽधिकम् ।  
 मयि संप्राप्य सर्वस्वं कृतकृत्या भविष्यथ ॥५०॥

१. सुपक्षिगण—मथु०, बडो० । २. दृश्यो—अयो०, रीवॉ० । ३. प्रमोदवने—  
 मथु०, बडो० । “अक्षराधिक्यमार्ष” टिं०—मथु० ।

श्रुत्वैतच्चन्तयन्त्यस्ता रूपं मम मनोहरम् ।  
 उक्तं कालं समासाद्य गोप्यो भूत्वाद्य मां गताः ॥५१॥  
 इत्येवं श्रुतिरूपाणां माहात्म्यं कथितं मया ।  
 इदानीं मुनिरूपाणां माहात्म्यं शृणुत प्रियाः ॥५२॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां  
 रामगीतामहोपाख्याने चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥



## पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

एते षष्ठिसहस्राणि दण्डकारण्यवासिनः ।  
 मुनयो दीर्घतपसो भावयन्तः शुचिक्रताः ॥ १ ॥  
 दिव्येन भक्तियोगेन प्राप्ना मां हि परात्परम् ।  
 रासमण्डलमध्यस्थं प्राप्य स्नेहरसाकुलाः ॥ २ ॥  
 अधुनापि त एवेह संगताः सन्ति संनिधौ ।  
 दिव्यदृष्ट्या निरीक्षध्वं भवत्यस्तान् मुनीश्वरान् ॥ ३ ॥  
 इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वपाश्वस्थान् द्विजोत्तमान् ।  
 गोपिकारूपमासाद्य क्रीडमानान् दिवानिशम् ॥ ४ ॥  
 दृष्ट्वा तु ताः शशिमुखाः<sup>१</sup> सुनेत्रा हेमद्विषश्चपलापाङ्गवक्त्राः ।  
 श्रीरामचन्द्रं धयतीः स्वदृग्भिः स्तोतुं भक्त्या चक्रमुः संमुखस्थाः ॥५॥  
 नमो वः स्त्रियो राघवेन्द्रप्रियाभ्यस्तपोराशिसंजातभक्त्युद्भवाभ्यः ।  
 मुनीन्द्रस्वरूपाभ्य उच्चर्गतिभ्यो सदानन्दकेली<sup>२</sup>रसान्तःस्थिताभ्यः ॥६॥  
 यूयं<sup>३</sup> हि भूरितपसः परमर्षिमुख्याः  
 भक्त्या वशीकृतवतीः सततं प्रियं स्वम् ।  
 श्रीमत्प्रमोदवनमञ्जुलमाधुरीषु-  
 संख्यातिगानि कुरुथ क्रमतः सुखानि ॥ ७ ॥

१. शशिवक्त्राः—मथु०, बड़ो । २. रसानन्दकेली—रीवाँ । ३. पूर्व—रीवाँ ।

वयं युष्मतपदं लब्धुं सततं कामयामहे ।  
 विना भवत्कृपादृष्टं कथं प्राप्नुमहि प्रियम् ॥ ८ ॥  
 युष्माकमङ्गिसरसीरुहरेणुकेभ्यो  
 भूयो लुठन्ति विधिरुद्रमुखाः सुरेशाः ।  
 नित्यानुरक्तमनसः परमोत्सवेन  
 श्रीनित्यकेलिपरिदर्शनजातकामाः ॥ ९ ॥

अहो भवद्वाग्यमहोदधिर्महान् किं वर्णनीयो विबुधैरगम्यः ।  
 यद्रामचन्द्रं नयनाभिरामं नित्यं वशीकृत्य सुखं वहन्ति ॥ १० ॥  
 अहो गोप्यो मुनिरूपाः समन्तात् प्रभौ यथा भवतीनां नित्यलीलाः ।  
 तस्यास्माकं जायतामेष कामः पूर्णो भूयाद्वदीक्षाबलेन ॥ ११ ॥

### श्रीराम उवाच

दृष्ट्वा कच्चिन्मुनिरूपा युवत्यो विशालभाला भाग्यवत्यः सुतृप्राः ।  
 आसां सद्यो दर्शनादेवतानां माङ्गल्यं भवतितरां भवेऽत्र ॥ १२ ॥

एषा गृहीतजलजा जलजेव मनोहरा ।  
 मनो मोदयते भूयो जवनाख्यो मुनिर्हृसौ ॥ १३ ॥  
 अग्निपुत्रो मामुपास्य दिव्यो मत्पदवीं गतः ।  
 सहस्रं गोपिका नित्यं याः समन्तादुपासते ॥ १४ ॥  
 अयं त्रिष्वणो नाम मुनिरग्नेः कुमारकः ।  
 येयं रक्तांशुकवृता यूथमुख्या विराजते ॥ १५ ॥  
 अयं यायावरो नाम मुनीन्द्रः संशितव्रतः ।  
 येयं पीतदुकूलाढचा निजयूथेश्वरी पुरः ॥ १६ ॥  
 अयं च कोषणो नाम मुनिस्तापससत्तमः ।  
 येयं वीणाकरा नित्यमुपवीणयतेऽद्य माम् ॥ १७ ॥  
 वीणाकरासु गोपीषु यूथेशी मत्परेक्षणा ।  
 अयं मेधातिथिर्नाम मुनिः पावकवर्चसः ॥ १८ ॥  
 येयं कनकदण्डाढचा मदोयाच्छत्रधारिणी ।  
 नित्यं मां सुखयत्येषा छायेव सुखभूरुहा ॥ १९ ॥  
 अयं निकषणो नाम वह्निपुत्रो मुनीश्वरः ।  
 अयं च सुमतिर्नाम तथैव मुनिसत्तमः ॥ २० ॥

यौ तौ चामरयुग्मेन नित्यं वीजयतोऽद्य माम् ।  
 अयं किर्मीरणो नाम मुनिः परमभावभूत् ॥२१॥  
 या दिव्यतालवृत्तेन सेवते नित्यमेव माम् ।  
 अयं सुवचनो नाम परमोदारहृन्मुनिः ॥२२॥  
 येयं नागदलैर्वीटों मह्यमर्पयति प्रिया ।  
 अयं मदनको नाम मुनिवर्यः सुपेशालः ॥२३॥  
 येयं सुवर्णवलया नीलशाटीवृत्ता प्रिया ।  
 अयं च निकृतिर्नामि मुनिः परमधार्मिकः ॥२४॥  
 येयं संगीतविद्यानामाचार्या दृश्यतेऽभितः ।  
 अयं सुखेषणो नाम मुनिर्भक्तिमतां वरः ॥२५॥  
 या दिव्यपटहीवाद्यकुशला व्रजसुन्दरी ।  
 अयं च बर्हिणोनाम मुनिः सेवकसत्तमः ॥२६॥  
 येयं मार्द्दिङ्गिको भूत्वा नित्यं मोदयतेऽद्य माम् ।  
 अयं शतपथो<sup>१</sup>नाम मुनिः पूजितसद्गुणः ॥२७॥  
 तालदानक्रियामध्ये येयं पटुतरा पुरः ।  
 अयं च सुकथो नाम मुनिः सुन्दरविग्रहः ॥२८॥  
 येयं स्वरालापकरी कोकिलाकण्ठजित्वरी ।  
 अयं प्रवहणो नाम मुनिस्तापससत्तमः ॥२९॥  
 येयं रत्नच्छटाहस्ता चित्तचौर्यकरी प्रिया ।  
 अयं विभावसुर्नामि मुनिर्मतिमतां वरः ॥३०॥  
 येयं कमलमालान्या पुरतो गोपसुन्दरी ।  
 अयं कुवलयो नाम शंसनीयो मुनिर्महान् ॥३१॥  
 यस्याः करं भूषयति शारिका हेमपञ्जरी ।  
 अयं शोलपतिर्नामि माननीयो मुनिर्वजे ॥३२॥  
 अरुणाः शङ्खवलयाः यस्याः करसरोजयोः ।  
 अयं कृततनुर्नामि मुनिर्मान्यतमो नृणाम् ॥३३॥  
 येयं सुवर्णवसना रत्नमालाविभूषिता ।  
 अयं सुखाशनो नाम मुनिः सुखदकीर्तनः ॥३४॥

माणिक्यहारिणी येयं स्वनोन्नयनकारिणी ।  
 अयं कौपीनसो नाम मुनिर्भक्तिपरायणः ॥३५॥  
 यस्याः शिरसि शोभन्ते चम्पकैर्ग्रथिताः कचाः ।  
 अयं सून्मथनो नाम मुनिः कौशलवारिधिः ॥३६॥  
 यस्या वकुलपुष्पैस्तु<sup>१</sup> कलिपता कटिसेखला ।  
 अयं मधुवनो नाम मुनोन्द्रः कोविदाग्रणीः ॥३७॥  
 यस्याः कपोलयोर्भाति रत्नकुण्डलयोर्युगम् ।  
 अयं च निहृतिर्नाम मुनिः परमकीर्तिमान् ॥३८॥  
 ज्योत्स्नेव विशदा यस्याः शोभते तनुशाटिका ।  
 एवं तैस्तैः शुभैः चिह्नैः चिह्निता गोपसुन्दरीः ॥३९॥  
 रामः प्रदर्शयामास ऋषिरूपास्तु ताः किल ।  
 तासां सौन्दर्यभञ्जीभिर्भूवर्णजिताश्च ताः ॥४०॥  
 तासां कदम्बके रामो नित्यक्रीडाविशारदः ।  
 अशोभतापूर्वमेव तासां दृक्सौख्यहेतवे ॥४१॥  
 क्रीडमानो नृत्यमानो मोदमानो दिवानिशम् ।  
 रममाणो रामचन्द्रस्तासां मध्ये व्यरोचत ॥४२॥  
 तास्तासां व्रजनारीणां वीक्ष्य क्षेलितकं<sup>२</sup> मुहुः ।  
 आत्मानं रज्जयाञ्चक्रुरपूर्वमिव विस्मिताः ॥४३॥

### गोप्य ऊचुः

अहो युवां नित्यकेलिनित्यं दृग्गोचरास्तु नः ।  
 न भवत्सदृशः क्वापि दाम्पत्यप्रभवा<sup>२</sup> मुदः ॥४४॥  
 नमस्ते भक्तलोकानां कल्पवृक्षाय शाश्वते ।  
 पूर्णब्रह्मस्वरूपाय अवाङ्मनसवृत्तये ॥४५॥  
 नमस्ते नित्यकान्ताभ्यः प्रमोदवनमाधुरोम् ।  
 नित्यमेव धयन्तीभ्यो निभूतैर्लोचनाञ्चलैः ॥४६॥

१. वहुकलापुष्पै—रीवाँ । २. वीक्ष्य त्वतिलकं—रीवाँ । ३. “अन्यपुरुषस्त्री-संबंधजाः” टिं०—मथु० ।

### ऋषिरूपा ऊचुः

अनेन प्रभुणा साकं नित्यं क्रीडामहे वथम् ।  
 अवतारात् पूर्वमेव संगता ह्यस्य संनिधौ ॥४७॥  
 भवत्यश्चावतारस्य समयेऽमुष्य संगिनीः ।  
 अतः परं भविष्यन्ति ह्यस्मद्द्वित्यसंगताः ॥४८॥  
 अयं प्रभुर्हि भक्तानामाश्रितानां सुखप्रदः ।  
 यथा पूर्येत तत्कामस्तथैव कुरुते भृशम् ॥४९॥  
 वशीकृतात्मा तैरेव त्रिषु लोकेषु सोऽधुना ।  
 आत्मानमप्येष ददात्येभ्यः परमदुर्लभम् ॥५०॥  
 कवचिच्च पुत्रतां प्राप्य भक्तानामनुकम्पया ।  
 कुरुते बालकेलीस्ता याः श्रुत्वा मुक्तिभागभवेत् ॥५१॥  
 कवचित् सुहृद्बन्धुरूपो भक्तान् मोदयते भृशम् ।  
 कवचिन्माधुर्यरूपेण रमयत्येष कामिनीः ॥५२॥  
 सदा रासविलासादीन् कुरुते सुमनोहरान् ।  
 सर्वभाग्येन सेव्योऽसौ श्रीमान् राघवचन्द्रमाः ॥५३॥  
 इत्युक्त्वा ऋषिरूपास्तास्तिरोधानं यथुस्तदा ।  
 आभिः परिवृतो राम एकाकी समपद्यत ॥५४॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुण्डसंवादे रामयात्रायां रामगीता-  
 महोपाख्याने पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥



### षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

#### श्रीराम उवाच

अतः परं तु युज्माकं पूर्वजन्म वदास्यहम् ।  
 कृतं हुतं तपस्तप्तं तत्सर्वमवधार्यताम् ॥ १ ॥  
 ... ... ... ... ... ... स्मरसुन्दरम्<sup>१</sup> ।  
 विलोक्य मां विमुमुहुः स्नेहनिर्व्यूढमानसाः ॥ २ ॥

१—१. नास्ति—अयो०, रीवाँ० । २. नास्ति—अयो० रीवाँ० । हरितालेन  
लेपितः पाठः—मथु० ।

कृष्णावतारिणं कान्तं श्रीवृन्दावनगोचरम् ।  
 आबाल्यतो मां निरीक्ष्य बभूर्मद्वशीकृतः ॥ ३ ॥  
 मन्मनस्का मदालापा भद्रात्मानो मदन्तराः ।  
 बभूर्विप्रयोगेन मोहिताः स्मरपीडिताः ॥ ४ ॥  
 ततो मत्प्राप्तये चक्रः कात्याथन्यर्चनव्रतम् ।  
 हेमन्ते यमुनावारिष्ठाप्लुत्य शुचिमानसाः ॥ ५ ॥  
 स्थाणुं संपूज्य तत्पाश्वे देवीं च प्रत्यपूजयन् ।  
 नन्दनन्दनमेवैकं वाञ्छन्त्यः पतिमात्मनः ॥ ६ ॥  
 ततः प्रसन्ना सा देवी साक्षाद्भूतान्नवीद्वचः ।  
 एष देवः परं ब्रह्म पतित्वे वाञ्छितं हि वः ॥ ७ ॥  
 ब्रह्मादीनामपि परं दुर्लभोऽयं मनोरथः ।  
 तेनैव पूरितुं योग्यो ब्रह्मणा नरमूर्तिना ॥ ८ ॥  
 ततोऽन्येद्युर्वतार्थाय जले तस्थुर्निमज्जय ताः ।  
 कृष्णो विवसना ज्ञात्वा शनैः पर्यहरत् पटान् ॥ ९ ॥  
 नगनास्ताः सूर्यंजातोयात् समुत्थाय सुमध्यमाः ।  
 पाणिभ्यामपिधायाङ्गान्यूचुर्मा शशिलोचनाः ॥ १० ॥  
 कृष्ण कृष्ण महाबाहो देहि वासांसि नः प्रभो ।  
 जलमध्येऽतिशीतार्ता वयं वेदामहेऽधुना ॥ ११ ॥  
 ततो नमस्कारयित्वा कराभ्यां शिरसा सह ।  
 दत्तवानहमेतासां वसनानि मृगोदृशाम् ॥ १२ ॥  
 तासां ततो व्रतसमाप्तिचिकिर्षयाहं ,  
                   कृष्णावतारसमये वरमध्यदां च ।  
 एताः क्षपाः<sup>१</sup> प्रकृतिकालगुणाद्यतीता ,  
                   यूयं भया सह रमध्वमपेतकृत्याः ॥ १३ ॥  
 ततः कृष्णावतारेऽहं तासां वाञ्छितपूर्तये ।  
 स्वलोकमध्यदां पूर्णं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ १४ ॥  
 यत्र वृन्दावनं नाम वनं दिव्यमनुत्तमम् ।  
 यदेवं पश्यथ प्रेष्ठाः प्रमोदवनमुत्तमम् ॥ १५ ॥

१. परा—रीवाँ ।

यत्रोत्तरज्ज्ञसलिला यमुना सरितांवरा ।  
 येयं श्रोसरयूर्यत्र राजहंसनिषेविता ॥१६॥  
 उच्चैः कटाहनिर्भेत्री कोटिब्रह्माण्डभेदिनी ।  
 हरिविष्णुब्रह्ममयो भक्तानां हितकारिणी ॥१७॥  
 प्रेमपूर्णप्रवाहाढ्या भावरूपतरज्ज्ञिणी ।  
 शृङ्गारसारसलिला रतिरज्ज्ञतटद्वया ॥१८॥  
 यत्र गोवर्धनोनाम गिरिः कोटिमणिप्रभः ।  
 योऽयं रत्नगिरिर्भाति भवतीनां पुरः प्रियाः ॥१९॥  
 यत्र श्रीर्मथुरानाभ नगरी रत्ननिर्मिता ।  
 येयं साकेतनगरी भासते भवनैः शुभैः ॥२०॥  
 यत्र नन्दव्रजः श्रीभान् गोपगोपीभिरन्वितः ।  
 सर्वतुंसुखशोभाढ्यो देवानामपि कामितः ॥२१॥  
 योऽयं सुखितराजस्य गोपवर्यस्य वै व्रजः ।  
 मत्क्रीडास्थानभूतत्वात् सर्वसौख्यविहारदः ॥२२॥  
 यत्र प्रियतमा गोप्यो मम लीलापरायणाः ।  
 मद्गुणानेव गायन्त्यो बाल्यात् कैशोरकावधि ॥२३॥  
 ता यूयमेव सकला जानीतात्मानमञ्जनाः ।  
 यं ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यथ मत्समाः ॥२४॥  
 अहं कृष्णश्च रामश्च वृन्दावनविहारवान् ।  
 प्रमोदवनसारज्ज्ञोऽप्यशोकवनसारवित् ॥२५॥  
 यत्र मे रमणी राधा वृषभानुसुता स्वयम् ।  
 मत्स्वरूपैकनिरता सदा मद्रूपसंगिनो ॥२६॥  
 भक्तिरूपा भावरूपा रतिरूपा रतिप्रिया ।  
 अनञ्जकेलिनी लास्यकारिणी मदमुप्रिया ॥२७॥  
 सेयं श्रीः सहजानन्दा प्रेमालयपताकिका ।  
 नानया सदृशी लक्ष्मी नै शोषो न विधिः शिवः ॥२८॥  
 अनया वाशिता लक्ष्मी मञ्जुषायत्वमुपागता ।  
 नानया रहितां तां च कामये किमुतेतराम् ॥२९॥

भवतीष्वियमाविश्य राधिका सहजात्मिका ।  
 भुड़क्ते भोगान् मया साकं भवतीनां प्रसादकृत् ॥३०॥  
 नानया रहिता यूथमंशिन्या स्वांशविग्रहाः ।  
 एकेयं बहुरूपेण क्रीडति व्रजवीथिषु ॥३१॥  
 यूयं हि पूर्वजनिषु ब्रह्माणो वासवाः शिवाः ।  
 आदित्या वसवो विश्वे भास्करा अनिलादयः ॥३२॥  
 शुद्धभक्ता मामुपास्य मत्सान्निध्यमुपागताः ।  
 या या तु भावना यस्य तस्य तां तां बिभर्म्यहम् ॥३३॥  
 कदाचिद्विधिराराद्वु श्वेतद्वीपर्पति प्रभुम् ।  
 यातः क्षोरसमुद्रान्तं यत्र देवो हरिः स्वयम् ॥३४॥  
 तत्र याताः सुराः सर्वे लोकपालाः सवासवाः ।  
 आदित्या वसवो रुद्रा ये चान्येऽग्नियमादयः ॥३५॥  
 सर्वेषां प्रवरो ब्रह्मा स्तौति नित्यं प्रभुं च तम् ।  
 स्तोत्रैर्त्र्यग्यजुषैः सामाथर्वंभिः सूक्तिभिस्तथा ॥३६॥

नमस्ते श्वेतद्वीपाधिपतये पूर्णब्रह्मस्वरूपाय परमात्मने सकल-  
 जगदानन्दनिदानसद्वर्ममूर्तये अक्षररूपाय कलाविलासनित्यदीक्षिताय  
 प्रपञ्जनकल्पतरवे श्रीमतेऽनिरुद्धाय ॥ ३७ ॥

योऽयं धर्मस्त्रयीवाग्निभूतनिगदितो ब्रह्मणः सा क्रियाख्या  
 शक्तिस्ते तत्स्वरूपं भुवनसुखकरं नित्यमिष्टं च पूतम् ।  
 रक्षायै तस्य नित्यं त्वमिह विजयसे क्षीरसिन्धोस्तटान्ते  
 श्वेतद्वीपे मनोज्ञे स्वयमथ भगवानादिनाराघणाख्यः ॥३८॥  
 तस्मै नमस्ते गरुडध्वजाय रमाकलत्राय सुरारहन्त्रे ।  
 सशङ्खचक्राब्जगदाधराय निषङ्गिणे शार्ङ्गधनुर्धराय ॥३९॥  
 यो वासुदेवः सत्त्वमूर्जस्वलं यत् संकर्षणो यो भगवान् कालमूर्तिः ।  
 यः प्रद्युम्नो वेदवेदाङ्गरूपः स त्वं साक्षादनिरुद्धोऽसि धर्मः ॥४०॥  
 यदि त्वमनया मूर्त्या प्रकटो न भवेः प्रभो ।  
 तदा विष्लवमागच्छेद् धर्मसेतुः सनातनः ॥४१॥  
 साधूनां रक्षणार्थाय धर्मस्य स्थापनाय च ।  
 दुष्टानां दमनाय त्वं प्रसिद्धो भगवान् स्वयम् ॥४२॥

नित्यं कृपय देवेश भक्तेभ्यो नः सदा प्रभो ।  
 यथास्मान् कमलाकान्त त्वद्भूक्तिरनपायिनी ॥४३॥  
 एवं ब्रह्मादयो देवाः स्तुवन्ति परमेश्वरम् ।  
 स्तुत्वा नत्वोपास्य नित्यमायान्ति स्वस्वविष्टपान् ॥४४॥  
 कदाचिद्भूगवान् श्रीमान् अनिरुद्धश्चतुर्भुजः ।  
 पश्यतां सर्वदेवानां बभूव प्रेमसंप्लुतः ॥४५॥  
 अक्षणोरश्रुकलापूर्णः पुलकाङ्गः<sup>१</sup> सुनिर्वृतः<sup>२</sup> ।  
 स्तब्धः खिन्नः सकम्पश्च भावयुक्तः पदे पदे ॥४६॥  
 तद्दद्भूत्वा रूपमीशस्य ब्रह्मा प्रोवाच साद्भूतः ।  
 अहो श्रीदेवदेवेश त्वं साक्षाद्भूगवान् परः ॥४७॥  
 कस्यानुस्मरणात्पूर्णप्रेमयुक्तोऽद्य लक्ष्यसे ।  
 किंवा स्वात्मानन्दवृत्तो नित्यं प्रेममयाकृतिः ॥४८॥  
 तवापि ध्येयतां याति तर्तिकर्त्त्वं परं पदम् ।  
 कर्ताविता वा संहर्ता जगतोऽस्य त्वमेव हि ॥४९॥

### अनिरुद्ध उवाच

सर्वे भवन्तो गच्छन्तु प्रमोदवनमेव हि ।  
 तत्र दिव्ये रामकुण्डे स्नानं कुरुत देवताः ॥५०॥  
 तदा श्रीरामलीलायाः साक्षात्कारो भविष्यति ।  
 तद्रूपं मे परं ध्येयं गेयं प्राप्य च सर्वदा ॥५१॥  
 तस्यानुस्मरणादेव प्रेमपूर्णोऽस्मि संप्रति ।  
 अस्मुविन्दुपरीताक्षः पुलकाञ्चितविग्रहः ॥५२॥  
 श्रुत्वेदमनिरुद्धस्य वाक्यं प्रमोदवनं वै ।  
 यथौ ब्रह्मा सुरैः साकं स्वाधिकारानुर्वर्त्तिभिः ॥५३॥  
 स गत्वा रामकुण्डान्तर्निमज्य विबुधैः सह ।  
 बभूव दिव्यस्त्रीवेशी देवाः स्त्रीरूपधारिणः ॥५४॥  
 बभूवुस्तत्क्षणादेव रामकुण्डप्रभावतः ।  
 विसस्मरुश्च स्वात्मानं ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥५५॥

१. पुलकांतः—अयो० । २. सुनिर्वृतः—रीव॑ ।

ववाहं कुतः समायातः किं करिष्यामि स्वल्वहम् ।  
 इति व्याभुग्धचित्तास्ते न मनोनिर्वृत्तिं ययुः ॥५६॥  
 तस्मिन् क्षणे रामकुण्डतीरभूमौ सुरेश्वराः ।  
 मृदञ्जध्वनिमाकर्णं बभूर्दिव्यदृष्टयः ॥५७॥  
 स मृदञ्जो रामरासे गोपीहस्तप्रणोदितः ।  
 वाद्यति प्रसभं तुञ्जधुकारध्वनिसुन्दरः ॥५८॥  
 तदा श्रीमाधुरीकुञ्जात् रामकुण्डं प्रगच्छती ।  
 तैर्दृष्टा दिव्यमाल्यानि ब्रिन्नती गोपिका करे ॥५९॥  
 सा पृष्ठा तैः शशिमुखी रामकुञ्जानुयायिनी ।  
 का त्वं सखि वव यासीति सा नोवाच जवाद्ययौ ॥६०॥  
 तेऽपि तत्पृष्ठसंलग्ना यथुर्ब्रह्मादयः सुराः ।  
 सा च कुञ्जं विवेशाग्रे ते प्रतीहारवासिताः ॥६१॥  
 शिवः पञ्चमुखः साक्षात् प्रतीहारोऽत्र संस्थितः  
 तान् विषष्णहृदो दृष्ट्वा शिक्षयन्नवदच्छिवः ॥६२॥  
 रे नार्यः किं विषादेन तप्यध्वं परमं तपः ।  
 रामं विशुद्धया भक्त्या सेवध्वं यदि वाञ्छथ ॥६३॥  
 रामकुञ्जे प्रवेशाय भूरिभाग्याभिरन्विते ।  
 इत्युक्तास्ते तदा देवास्तपस्तेपुः सुदुश्चरम् ॥६४॥  
 स्नात्वा सरयूजले वै लक्षवर्षमजायत ।  
 तेन पुण्यप्रभावेण संजाताः सरयूकुले' ॥६५॥  
 नित्यं रामं प्रेमपरा जारधर्मेऽनुवर्त्तिताः ।  
 सोऽहं रामः स्वयं ब्रह्मावतीर्णोऽस्मि पुनर्वृजे ॥६६॥  
 सुखितेश्वरगेहे तु प्रमोदवनमध्यगे ।  
 तं मामनुव्रता यूथमवतीर्णा इह प्रियाः ॥६७॥  
 ता एव व्रजसुन्दर्यो याः स्थिताः सरयूतटे ॥६८॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां राम-  
 गीतामहोपाख्याने षट्पञ्चाशतमोऽध्यायः ॥५६॥

## सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

**श्रीभगवानुवाच**

एष ब्रह्मा स्वयं भाति या रक्तांशुकधारिणी ।  
 गोपी चन्द्रप्रभानाम् दृक्चकोरसुखावहा ॥ १ ॥

एष शक्रो या तु भाति पीतकौशेयधारिणी ।  
 गोपी चन्द्रकलानाम् नवयौवनशालिनी ॥ २ ॥

एते ते वसवो देवा या गोप्यो नीलशाटिकाः ।  
 इयामा भामा रमा कामा कामिनी कामिकाभिधा ॥ ३ ॥

दामिनी यामिनीत्येता नामभिः परिकीर्तिताः ।  
 एष रुद्रगणो यास्तु गोप्यो हेमपदान्विताः ॥ ४ ॥

किशोरी कुशला कुल्या सुधा चान्द्री बुधा वधूः ।  
 भव्या नव्याभिनव्याङ्गा नामभिः परिकीर्तिताः ॥ ५ ॥

अमीदेवास्त आदित्या याः सूक्ष्मासितशाटिकाः ।  
 रमणी रामणी रम्यरञ्जना रससारसा ॥ ६ ॥

रुचिरा रोचिनी रुच्या रङ्गिणी रक्तिरङ्गजे<sup>१</sup> ।  
 एता द्वादश पञ्चाक्ष्यः स्वैः स्वैर्नामभिरन्विताः ॥ ७ ॥

विश्वेदेवा अमी यासां नवमौक्तिकनिर्मिताः ।  
 नवद्वार्दलश्यामाः केयूराः करनालयोः<sup>२</sup> ॥ ८ ॥

लवङ्गी ललिता लीला शीला शाला शिलाभिधाः।  
 अमी ते भास्वरा यास्ता नवमौक्तिकनिर्मिताः ॥ ९ ॥

सुवर्णबलयाभ्यासे शोभन्ते कङ्कणोत्तमाः ।  
 सुभगा सुरुचिः सत्या सुमुखो रङ्गदेवता ॥ १० ॥

दीप्तिः प्रतीतिः संज्ञप्तिः प्रकाशा काशिनी कशा ।  
 कला चारुमतिश्चञ्च चचला चपला चरुः ॥ ११ ॥

१. <sup>०</sup>रङ्गते—अयो० । २. करणालयाः—अयो०, रीव॑ ।

चारिणी चरिता चान्द्री चन्द्रा चन्द्रकला निशा ।  
 सेवा सेवारतिः सेव्या सुसेवा सेविनी शिवा ॥१२॥  
 शिवदा शुभदा शुभ्रा शम्भुजा शम्भला<sup>१</sup> शमा ।  
 शचो रुचीका रचिता<sup>२</sup> चित्रा चित्रध्वजा धुनो ॥१३॥  
 धरिणी धारिणी धारा सुखिनी सुखदा सुखा ।  
 सुश्रोः सुसेना सुतरा वज्जुला चाबला बला ॥१४॥  
 बालका बालवी वल्ली वल्गुनी वल्गुभाषिणी ।  
 वल्लवी वल्लभा विद्या वन्दिनी वितता नता ॥१५॥  
 लज्जावती चतुःषष्ठि नाम्नैव परिकीर्तिताः ।  
 अमी वायुगुणा गोप्यो याः स्वकण्ठेषु बिभ्रति ॥१६॥  
 नीलाम्बुजमयीं मालां मुखचन्द्रविकासिनीम् ।  
 विकस्वरा विकसिता पुष्पापुष्पा च पुष्पिणी ॥१७॥  
 करिणी कारिणी मित्रा सुमित्रा सुमिला सुमी ।  
 सुषमा कुसुमा केलिकेलिनी कमला कला ॥१८॥  
 कलिनी कलिका कल्या कल्पणी कुलिता कृतिः ।  
 सुकृतिः सुप्रतीका च कोशिनो कुशिका कुला ॥१९॥  
 कलावती कलापा च कुलजा कोमला कलिः<sup>३</sup> ।  
 मानिनी दामिनी दान्ता कान्ता कामा कृपावती ॥२०॥  
 अरुणा करुणा क्रोडा केकरी कोरकाकरा ।  
 ललिता वलिता वामा वामाङ्गीति सनामभिः ॥२१॥  
 उनपञ्चाशदेवैताः कीर्तिता व्रजमण्डले ।  
 अमी साध्यगणा गोप्यो यासां कटिषु मेखलाः ॥२२॥  
 पद्मरागमयो वलृप्ता भान्ति सायं रवित्विषः ।  
 सूतिः स्यूतिः सिता सीता शीता शातोदरी दया ॥२३॥  
 दयावती च दयिता दशा दामोदरी द्युतिः ।  
 एता द्वादश संख्याभिराख्याभिः परिसूचिताः ॥ २४ ॥  
 महाराजिकसंघोऽयं यासां मृगदृशां हृदि ।  
 नवमाणिक्यघटिता मङ्गलाल्य इव स्रजः ॥ २५ ॥

१. शंभुला—रीवाँ । २. रुचिर्वारिचित्ता—रीवाँ । ३. °कुलिः—रीवाँ ।

इन्दिरा सुन्दरी सुन्दा सुगमा सुमतिः समा ।  
 तुलिता निस्तुला तुल्या तलिपनी तुलनी तुला ॥२६॥  
 राविणी द्राविणी द्रव्या भव्या भाव्या भवाभवा ।  
 मनोरमा रमा रामा नामभिः परिकीर्तिताः ॥२७॥  
 आर्यतुषितनामानो देवा मृगदृशस्तु याः ।  
 श्वेतपद्मयैर्हर्मूषिताः कण्ठभूमिषु ॥२८॥  
 केतकी कनका कान्तिः कान्ता कुञ्जाकुतोभया ।  
 कुतूहला कौतुकी च कुतुका कुतुकाञ्चला ॥२९॥  
 कल्याणिनी भञ्जला च कुमुदा कुमुदावली ।  
 पद्मा पद्मावती पूर्णा पूर्णिमा पूर्णयौवना ॥३०॥  
 सुस्तनी सुकुचा सौम्या सीमा सन्ध्या सुसाधना ।  
 साध्वी सभ्या समासाभा॑ शुभिता शोभिता शुभा ॥३१॥  
 ऋमरी कबरी कूर्मा कूर्मजेत्येव नामभिः ।  
 परस्परालापकेलिशालिन्यो या मृगीदृशः ॥३२॥  
 एतेऽग्नयः स्वयं भान्ति रक्तपञ्चजमालिनीः ।  
 हेमा हेमप्रभा हैमी नामभिर्गोपिका इमाः ॥३३॥  
 अयं स शमनो देवो या मत्तनुसमद्युतिः ।  
 दामिनीनां गणे भाति नवनीलघनोपमा ॥३४॥  
 सारङ्गी नाम या गोपी नामतः परिकीर्तिता ।  
 अयं स निर्कृतिर्नाम या गोपी मणिभिः सितैः ॥३५॥  
 हृदि कल्पितहारौघा भाति द्यौरिव चोडुभिः ।  
 नाम्ना सुवदना नाम मदनानलदीपिनी ॥३६॥  
 अयं स वरुणो नाम या गोपी शोणितप्रभा ।  
 मणिभिः क्लृप्तवलया नाम्ना च कनकप्रभा ॥३७॥  
 अयं यक्षाधिपो नाम नाम्ना या रत्नमञ्जरी ।  
 मोक्षितकैरेव सर्वाङ्गे दिव्यभूषणधारिणी ॥३८॥

इत्येवं कोटिब्रह्माण्डाधिकारिप्रवराः सुराः ।  
 शुद्धेन भवितयोगेन गोपिकारूपमाश्रिताः ॥३६॥  
 मम रासविलासादिक्रीडानर्तनकारिकाः ।  
 एकैका पाटवनिधिः कलाकोटिविभूषिताः ॥४०॥  
 रूपलवच्छ्यतारुण्यमाधुर्यगुणवारिधिः ।  
 एताश्च गोपिकामुख्या यज्ञपत्न्यस्तु या पुरा ॥४१॥  
 मत्पराः पूर्णया भक्त्या मम साधर्म्यमागताः ।  
 एतासां पतयश्चैव ब्राह्मणाः सन्ति गोकुले ॥४२॥  
 गोपरूपधराः सर्वे ममैव हितकारिणः ।  
 एवं हि देवताः सर्वा अलङ्कृत्वन्ति गोकुलम् ॥४३॥  
 गोपगोपीवेशधराः खेलन्ति ते मया सह ।  
 नैतेषां कालजा वाधा नायि प्रकृतिसंभवा ॥४४॥  
 न वा गुणः क्षोभकृतः कदाचित् प्रभविष्यति ।  
 मृत्योर्भूर्धनं पदं दत्त्वा ते क्रीडन्ति मया सह ॥४५॥  
 प्रेमानन्दमयैर्भोगैर्ब्रह्मानन्दाधिकोत्तरैः ।  
 एतेषां दर्शनादेव महामङ्गलवान् भवेत् ॥४६॥  
 मम भवितपरो भूत्वा मम साम्यमवाप्नुयात् ।  
 मत्तोऽप्यसी समधिका मम लीलाविशारदाः ॥४७॥  
 नित्याः परिकरा एते नित्यानन्दमयास्तथा ।  
 अद्यापि ब्रह्मरुद्राद्या देवा दिव्याधिकारिणः<sup>१</sup> ॥४८॥  
 अमीषां पादरजसः कामेनावतरन्ति ते ।  
 अयोध्यापुरपर्यन्तनिकुञ्जव्रजभूमिषु ॥४९॥  
 प्रमोदवनमध्ये च ब्रह्माद्याः सन्ति देवताः ।  
 व्रजभक्तपदाम्भोजाङ्कितरेणूपलब्धये ॥५०॥  
 अन्येऽपि देवर्षिवरास्तथा ब्रह्मर्षयो वराः ।  
 इहैव निवसन्त्येवं नित्यलीलादृशीच्छया ॥५१॥

१. °धिकारगाः—बड़ो० ।

स्तुवन्ति विविधैः स्तोत्रैर्मा मत्परिकरं तथा ।  
 एवं भवत्यः स्वं रूपं ज्ञात्वा व्रजमृगीदृशः ॥५२॥  
 नित्यानन्देन रम्यध्वं मा कुरुध्वं शुचोलवम् ॥५३॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां राम-  
 गीतामहोपाख्याने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥



### अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीगोप्य ऊचुः

यदेतद् भवताख्यातं पूर्वजन्मकथानकम् ।  
 तस्य श्रवणमात्रेण मोहो नः प्रगतः प्रभो ॥ १ ॥  
 वैष्णवैर्यच्च कर्तव्यं कायेन मनसा गिरा ।  
 आवश्यकं तदाख्याहि सुखितेश्वरनन्दन ॥ २ ॥

श्रीराम उवाच

तीर्थयात्राभिगमनं मम मन्दिरमार्जनम् ।  
 स्नानं दानं वैष्णवेभ्यः तपः कायिकमोरितम् ॥ ३ ॥  
 तीर्थनामुत्तमं तीर्थं सरयू नाम या नदी ।  
 तत्र संस्नानमात्रेण प्रेमभक्तिमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥  
 व्रजनारीगणस्नानच्युतचन्दनपञ्चिलाम् ।  
 सरयूमवगाहन्ते ब्रह्माद्या अपि संततम् ॥ ५ ॥  
 तत्र स्नात्वा रत्नगिरेः कुर्यान्नित्यं प्रदक्षिणम् ।  
 मम मन्दिरमेतद्द्वि दरीनिर्झरसंकुलम् ॥ ६ ॥  
 रत्नाचलरजःस्पर्शात् कुष्ठी मुच्येत कुष्ठतः ।  
 यन्नित्यमेव मत्पादपद्मचन्दनचर्चितम् ॥ ७ ॥  
 साकेतपुरपर्यन्तं यात्रां कुर्याद्विचक्षणः ।  
 यत्र द्वादश दिव्यानि वनानि निवसन्ति हि ॥ ८ ॥  
 प्रथमं मञ्जुलवनं वनानामुत्तमं हि यत् ।

यत्र श्रीः सहजानन्दा नित्यमेव प्रतिष्ठिता ॥ ९ ॥  
 कामिकावनमुद्दिष्टं द्वितीयं वनमुत्तमम् ।  
 यत्र श्रीः सहजादेवी कामं निर्मितवत्यहो ॥ १० ॥  
 हरनेत्रानलप्लुष्टं कटाक्षक्षेपमात्रतः ।  
 तृतीयं तु प्रेमवनं यत्राभूद् व्रजयोषिताम् ॥ ११ ॥  
 प्रेमावतारसरणिर्मन्मुखेन्दुविलोकनात् ।  
 तुर्यं रसाल<sup>१</sup>विपिनं सुधास्वादुफलान्वितम् ॥ १२ ॥  
 यत्र गोचारणामध्ये क्षुधितान् गोपबालकान् ।  
 दृष्ट्वाहं कल्पयामास फलैः पीयूषपारणम् ॥ १३ ॥  
 पञ्चमं मन्दारवनं मन्दारद्रुमसंकुलम् ।  
 कूजत्कोकिलभृङ्गौघजुष्टं पुष्टं वनश्रिया ॥ १४ ॥  
 पारिजातवनं षष्ठं कुञ्जपुञ्जमनोहरम् ।  
 खेलद्गोपालललनामञ्जीरधवनिमञ्जुलम् ॥ १५ ॥  
 सप्तमं कन्दलवनं परमानन्दकन्दलम् ।  
 यत्रावर्तत सुन्दर्या दानलीला मनोरमा ॥ १६ ॥  
 अष्टमं संमदवनं मनःसंमदवर्धनम् ।  
 यत्रावर्तत सहजया मानलीलाविधिः शुभः ॥ १७ ॥  
 नवमं केसरवनं<sup>२</sup> यत्र व्रजमृगीदृशः ।  
 अलङ्कुर्वन्ति कुसुमैः स्वात्मानं रामकेलिषु ॥ १८ ॥  
 दशमं माणिक्यवनं महामाधुर्यमन्दिरम् ।  
 विस्फुरद्रव्यरत्नांशुमञ्जरीशतसंकुलम् ॥ १९ ॥  
 एकादशं पद्मवनं गुञ्जद्रूमरसंकुलम् ।  
 यत्र शय्यागृहं भाति मदीयं सुखवर्धनम् ॥ २० ॥  
 द्वादशं सौरभवनं सुरभीकृतदिक्कृतम् ।  
 दिव्यभूरुहपुष्पौघमरविन्दरसशीतलम् ॥ २१ ॥  
 द्वादशैव बिभान्त्येवं तेषामुपवनान्यपि ।

१. रसदू—रीवाँ ।

२. केशरवण—अयो०, रीवाँ ।

माधुरीकुञ्जमाद्यं स्यान्मल्लीकुञ्जं द्वितीयकम् ॥२२॥  
 तृतीयं मालतीकुञ्जं यूथीकुञ्जं चतुर्थकम् ।  
 पञ्चमं लवलीकुञ्जं कालीकुञ्जं च षष्ठकम् ॥२३॥  
 सप्तमं लवज्जी कुञ्जं केतकीकुञ्जमष्टमम् ।  
 नवमं मलिलकाकुञ्जं रत्नकुञ्जं ततः परम् ॥२४॥  
 एकादशं केकिकुञ्जं द्वादशं केलिकुञ्जकम् ।  
 एतेषु गमनादेव मनःशुद्धिः प्रजायते ॥२५॥  
 नित्यलीलाविभावश्च परप्रेमोदयस्तथा ।  
 स्नानाद्वानात्तथा ध्यानान्मम सायुज्यमानुयात् ॥२६॥  
 सरयूपरितो भान्ति महावैकुण्ठभूमयः ।  
 एकैककुञ्जरूपेण महानन्दैककन्दराः ॥२७॥  
 तेषां दर्शनमात्रेण परप्रेमोदयो भवेत् ।  
 तत्रापि शुद्धया भक्त्या समाराध्य सीतापतिम् ॥२८॥  
 इहामुष्मिकभोगाय समर्थो भवति ध्रुवम् ।  
 अयोध्यापरितः क्षेत्रे ये तिष्ठन्ति च भूरहाः ॥२९॥  
 ते ब्रह्मविष्णुरुद्रादिरूपाः साक्षात्सुरेश्वराः ।  
 ये वसन्ति जनास्तत्र ते साक्षान्मम विग्रहाः ॥३०॥  
 धनुर्वीणा [वर्ण ?] धराः सर्वे द्विभुजाः श्यामविग्रहाः ॥  
 येषामज्जशरीरसंस्पर्शतो भाग्योदयो जायते  
 येन स्यात्सहजापतिः प्रियतमो विद्योतमानो रुचा ।  
 तल्लीलारसपाततो रसिकता वर्वति सर्वोपरि  
 प्रेमानन्दविचूर्णमानमनसा तृप्तिः पराविर्भवेत् ॥३१॥  
 एतस्मिन्निवसन् देशे मम नामपरो भवेत् ।  
 येऽन्तरायाः कोटिशो वै सन्ति भूयः सुशोभयोः ॥३२॥  
 सहसा ते प्रणश्यन्ति मम नामप्रभावतः ।  
 प्रमोदवनवासश्च रामनामग्रहस्तथा ॥३३॥  
 तुलसीवनसेवा च कार्यमेतन्मुमुक्षुभिः ।  
 प्रमोदवनमध्ये तु तुलसीवनमुत्तमम् ॥३४॥

तन्मञ्जरीरजस्पर्शाद्विद्यदृष्टिर्भवेन्नरः ॥  
 तत्सौरभैर्ग्राणपथप्रयातैरन्तः परप्रेमरसं प्रबोध्य ।  
 मद्रूपसाक्षात्कृतियोग्यताविधिः क्रियेत पूर्णा परमाद्यवस्था ॥३५॥  
 मनसा स्मरणीयोऽहं नित्यकेलिसमन्वितः ।  
 प्रमोदवनमध्यस्थो मानसं परमं तपः ॥३६॥  
 प्रेमगद्गदकण्ठत्वं दृशोरस्तुकलोदयः ।  
 स्तम्भस्वेदौ पुलकिता भावरूपं परं तपः ॥३७॥  
 भवितः श्रद्धा मतिर्धर्यं विवेको विनयार्जवम् ।  
 क्षमा सत्यं दया बुद्धिमानिसं परमं तपः ॥३८॥  
 भावोऽपि मानसो धर्मो स कथं शब्दगोचरः ।  
 भावोदयो न यावत्स्थात्तावन्नो मानसं तपः ॥३९॥  
 ममाङ्गभूषा विन्यासो मम भोजनसंविधा ।  
 मदर्थं कर्मकरणं स्वप्रियस्य निवेदनम् ॥४०॥  
 एष स्यान्मत्परो भावः सर्वमन्यदनर्थकम् ।  
 एतद्वैष्णवलोकानां कर्तव्यं भूरिभावतः ॥४१॥  
 सेव्यसेवकभावश्च स्मृतिरात्मनिवेदनम् ।  
 मत्सुखे सुखभावश्च मदोयहितभोजनम् ॥४२॥  
 मत्कीर्तनं मद्भूत्केषु सूनृतालापकारिता ।  
 संप्रश्नः प्रश्रयः सख्यं वाचिकं तप उत्तमम् ॥४३॥  
 उत्सवाश्च प्रकर्तव्या ये मे संवत्सरोद्भवाः ।  
 मज्जन्मदिवसोत्साहो मद्यात्रापूजनोत्सवः ॥४४॥  
 मत्पवित्राऽरोपणं च तथा मम रथोत्सवः ।  
 दोलोत्सवश्च हिन्दोलोत्सवो दीपोत्सवस्तथा ॥४५॥  
 अन्नकूटोत्सवश्चैव वसन्तोत्सव एव च ।  
 एते चैव महोत्साहा कार्या मच्चित्ततुष्टये ॥४६॥  
 वैदिकैस्तान्त्रिकैदिव्यैः पौराणैर्विधिभिर्यजेत् ।  
 पूर्णज्ञानानन्दरूपं देवं मां पुरुषोत्तमम् ॥४७॥

१. मद्वक्षाऽ—अयो०, रीव० ।

कर्म कार्यं भत्परमं ज्ञानं यत्तन्मदाश्रयः ।  
 भक्तिर्मदविधिः साक्षात् प्रेमानन्दमयी परा ॥४८॥  
 एवं त्रेधापि मार्गोऽयं भत्परत्वाय कल्पते ।  
 येनानुष्टितमात्रेण भवेन्मल्लक्षणं फलम् ॥४९॥  
 यल्लब्ध्वा नापरो भावो विद्यते भुवनत्रये ।  
 भावः सत्सङ्घविभवैर्वैष्णवैरेव लभ्यते ॥५०॥

इति श्रीमद्बादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां रामगीता-  
 महोपाख्याने अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

◎

## एकोनषष्टितमोऽध्यायः

### श्रीभगवानुवाच

अस्मिन् ब्रह्मपुरे दिव्ये नवद्वारे महापथे ।  
 दहराख्यं पुण्डरीकवेशम्<sup>१</sup>नित्यं विराजते ॥ १ ॥  
 यस्मिन् प्राणः पञ्चविधो यस्मिन् कामाः समाहिताः ।  
 अस्ति यत्किंचिदिह यन्नास्ति वस्तु जगत्त्रये ॥ २ ॥  
 तत्सर्वं भाति यत्रैव यदन्विष्य परं गताः ।  
 तद्वेशमनि परं भाव्यं भद्रायतनमुत्तमम् ॥ ३ ॥  
 कोटिसूर्यप्रतीकाशं कोटिचन्द्रसुशीतलम् ।  
 कोटिविद्युद्वित्तिसमं जाग्रद्रूपं जडेतरम् ॥ ४ ॥  
 ज्योतिरूपं ब्रह्मरूपमूर्जस्वलभनुत्तमम् ।  
 कलासहस्रकलितं निष्कलं कालवर्जितम् ॥ ५ ॥  
 सत्यं विज्ञानमानन्दसंततं विततं वृहत् ।  
 सर्वतः सैन्धवघनं निराकुलमनन्तरम् ॥ ६ ॥  
 चिन्मयं परमं व्योम नित्याकारं सुरज्जनम् ।  
 सरयूपुलिने रस्ये प्रतिष्ठिततमं महत् ॥ ७ ॥

१. भवान्तसंभवैर्दिव्यो—मथु०, बड़ो० । २. ब्र-ह्य- रीवाँ ।

चिदानन्दवनं<sup>१</sup>यत्र हेमरत्नमयी मही ।  
 सत्यं स्वच्छं सरो यत्र सुधासलिलसंभूतम् ॥ ८ ॥  
 प्रकारः पूरितो यत्र कालरूपी दुरासदः ।  
 स्वातन्त्र्यतृप्तिसार्वज्ञं<sup>२</sup> बोधरूपो यदापणः ॥ ९ ॥  
 यद्वासिनो महोदारा हंसाः प्रकृतिकोमलाः ।  
 ब्रह्मनिर्वाणलोकस्थ राजानः सकला अपि ॥ १० ॥  
 अहं यत्र प्रभुः साक्षात् परब्रह्म परात्परः ।  
 ज्योतिरङ्गणवद्यत्र ज्योतिःकणविभूषिताः ॥ ११ ॥  
 रमन्ति मुक्ताः पुरुषाः परमे धाम्नि कोटिशः ।  
 तत्परिवृतं पुराणं मां पुरुषं भावयेत् सदा ॥ १२ ॥  
 सकलं निष्कलं<sup>३</sup>वापि पूर्णं सकलनिष्कलम् ।  
 नित्यश्रीविग्रहोपेतं श्रीलालितपदाम्बुजम् ॥ १३ ॥  
 प्रेमणा सहजभावेन समुपेतः सदा शुचिः ।  
 स्नायात् सुविमले तीर्थे ब्रह्मादिसुरसेविते ॥ १४ ॥  
 सुपूर्णे त्रिपथातीरे ललाटे वैन्दवे सरे ।  
 सहस्रदलमध्यस्थचन्द्रमण्डलविस्तुतैः ॥ १५ ॥  
 सुधारसैर्भूतं पूर्णं वैन्दवं विशदं सरः ।  
 तत्र संस्नानमात्रेण नरः पूतः प्रजायते ॥ १६ ॥  
 भावनाधिकारयोग्यश्च भाव्यमर्थमवाप्नुयात् ।  
 दिव्येन तपसा युक्तः समाधिफलमाप्नुयात् ॥ १७ ॥  
 समाधौ संपरिणते ध्यानं फलति तत्त्वतः ।  
 फलिते ध्यानयोगे तु ध्येयं साक्षात्कृतं भवेत् ॥ १८ ॥  
 ध्येयमस्मि परं ब्रह्म यत्पूर्णममृतं विदुः ।  
 सत्यज्ञानानन्दरूपे मयि जीवं समर्पयेत् ॥ १९ ॥  
 अकर्ता जायते सद्यो निलेपश्चैव निर्गुणः ।  
 कर्ता च करणं कार्यं यावदेतावती भिदा ॥ २० ॥  
 तावत् संसारवृक्षस्य कर्तनं च कथं भवेत् ।  
 कर्ता कृतिश्च नियतं द्रष्टा च दृशिरेव च ॥ २१ ॥

१. °वने—रीवाँ ।    २. °सर्वज्ञ°—रीवाँ ।    ३. निश्चलं—रीवाँ ।

महतश्चरमो भावः सोऽहङ्कारविजृम्भितः ।  
 तच्छन्द्यादात्मनो मोहं तमोरूपं निरर्थकम् ॥२२॥  
 ज्ञानविज्ञानपूर्णत्मा प्रेमाङ्गुरमनोरमः ।  
 समैहिकामुज्जिमकश्च साधुसंस्कृतमानसः ॥२३॥  
 मत्स्वरूपाश्रयो विद्वान् कृतकृत्यः प्रजायते ।  
 न तस्य त्रिषु लोकेषु कर्तव्यमवशिष्यते ॥२४॥  
 मामुपेतस्य पूर्णस्य ब्रह्मिष्ठस्य महात्मनः ।  
 एवंभूतो भवेत् साधुर्भवतीनां कृपावशात् ॥२५॥  
 नित्यलीलाधिकारी च प्रमोदवनमध्यगः ।  
 एवं प्रियाः स्वस्वरूपं साक्षाद् दिव्यं परात्परम् ।  
 मल्लीलां मोहिकीं दृष्ट्वा नानुतप्यध्वमञ्जसा ॥२६॥

## गोप्य ऊचुः

कतरा मोहिकी लीला तात्त्विकी कतरा च ते ।  
 एवं नः संशयं छिन्धि रघुवंशदिवामणे ॥२७॥

## श्रीभगवानुवाच

लीलाविहरणं<sup>१</sup> नित्यं नित्यश्रीविग्रहस्य मे ।  
 पलायनं कवचिद्दैत्याङ्ग्यं चिन्ता च दुःखिता ॥२८॥  
 ब्रजभक्तेषु विरहो विनाशो ब्रजवस्तुनः ।  
 इत्यादिमोहिकी लीला सात्त्विकी सकलैव तु ॥२९॥  
 नित्या चिदानन्दमयी स्वरूपानतिरेकिणी ।  
 गुणाकारशरोराद्या स्वरूपानतिरेकिणी ॥३०॥  
 नित्या मे सकला लीला नित्यः परिकरोऽखिलः ।  
 इति ज्ञात्वा न मोहाय मनो वः कल्पतां प्रियाः ॥३१॥  
 एतद्वः कथितं सर्वं गोतोपाख्यानमद्भुतम् ।  
 यः पठेच्छृणुयाद्वापि लभते भक्तिसंपदम् ॥३२॥  
 दिव्यज्ञानसुसंपन्नो दिव्यचक्षुस्तथा भवेत् ।  
 मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता ब्रह्मणा नारदाय च ॥३३॥

१. मोहिनी—अयो० । २. बाललीला विहरणं—मथु०, कालं जित्वा विहरणं—बड़ो० ।

प्रोवाच नारदः सम्यगम्बरीषाय साधवे ।  
 रहस्यं परमं चैतत् सहजायै सर्वपितम् ॥३४॥  
 सहजाचित्तसर्वस्वं शास्त्रमेतत्सुधोपमम् ।  
 सरहस्यं सुदुर्बोधं त्रयीसारं सनातनम् ॥३५॥  
 शब्दतोऽपि परिज्ञातं शुभं सुष्टु प्रयच्छति ।  
 अर्थतश्च परिज्ञातं मोक्षमेव प्रयच्छति ॥३६॥  
 शब्दार्थमयमेतद्द्वि कृतकल्पफलं लभेत् ।  
 गुरुणा विदुषा दत्तं सद्यो वाञ्छितदायकम्<sup>१</sup> ॥३७॥  
 धारयेत् सततं मूर्धन्मुक्ति सायुज्यभागभवेत् ।  
 रामभक्ताय दातव्यं<sup>२</sup> नान्यस्मै तु कथंचन ॥३८॥  
 रामभक्ताय मुनये रामलीलाविनोदिने ।  
 पवित्रवपुषे वाच्यं मेधाविने द्विजन्मने ॥३९॥  
 मृत्युञ्जयकरो विद्या रामगीता मनोरमा ।  
 सेवनीया प्रयत्नेन नित्या सिद्धा<sup>३</sup> सनातनी ॥४०॥  
 श्रीरामसहजानन्द पुराणपुरुषोत्तम ।  
 प्रपन्नपारिजातेश पाहि मामित्युदीरयेत् ॥४१॥  
 श्रीरामः शरणं ममेति परमो मन्त्रोऽयमष्टाक्षरः  
 स्मर्तव्यः सततं निवेद्य सहसा स्वात्मानमस्मै मुहुः ।  
 श्रीरामः सहजापतिः सकलमित्याभाषमाणो गिरा  
 त्यक्त्वा कृत्यमकृत्यमेतदखिलं चिन्मात्रसंस्थो भवेत् ॥४२॥  
 गीतामिमां यः पठति प्रयत्नात् सत्संहितां मामकीं मामको यः ।  
 प्रेमावत्या भाषया भाषमाणो जनः स्वयं जन्म कृतार्थयेत् सः ॥४३॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयात्रायां  
 रामगीतामहोपाख्याने एकोनषष्ठितमोऽध्यायः ॥५९॥  
 ॥४४॥ समाप्ता चेयं रामगीतोपनिषत्संहिता४ ॥

१. अयंश्लोको नास्ति-अयो० । २. रामभक्ते प्रकर्तव्यं-मथु०, बड़ो० ।  
 ३. साध्य०—रीवाँ । ४-४. नास्ति-रीवाँ ।

## षष्ठितमोऽध्यायः

**ब्रह्मोवाच**

इत्येवं गोपकन्याभ्यः स्वकान्ताभ्यः कृपावशः ।  
 दिव्यगीतामृतं नाम पायथित्वा रघूद्वहः ॥ १ ॥  
 तां रात्रि तत्र चैताभिः सुन्दरीभिर्मदात्मना ।  
 चकार विविधां केलौं विविधालापभूषिताम् ॥ २ ॥  
 सुखिताय गवेन्द्राय माङ्गल्यायै महात्मने ।  
 अन्येभ्यश्चैव गोपेभ्यो गोपोभ्यश्च स्वयंप्रभुः ॥ ३ ॥  
 साक्षान्निदर्शयामास स्वं लोकं प्रकृतेः परम् ।  
 यत्र सच्चित्सुखाकारो राजते करुणानिधिः ॥ ४ ॥  
 सत्यज्ञानानन्तमयं यद्धि ब्रह्म सनातनम् ।  
 गुणात्यये प्रपश्यन्ति यद्रूपं मुनिसत्तमाः ॥ ५ ॥  
 ब्रह्मरुद्रे सारवाख्ये ब्रह्मतीर्थे सुधोपमे ।  
 मज्जयित्वा व्रजं सर्वं निजं लोकमदर्शयत् ॥ ६ ॥  
 चिदानन्दमयं साक्षात् ब्रह्मरूपं सनातनम् ।  
 नित्येच्छावैभवानन्दावयवोपेतवस्तु यत् ॥ ७ ॥  
 तस्मिन् लोके स्वरूपं च स्तूयमानं सुरर्षिभिः ।  
 छन्दोभिर्मूर्तिमद्भूश्च समुपासितविग्रहम् ॥ ८ ॥  
 सहजानन्दिनौं सोतां कोटिलक्ष्म्याद्युपासिताम् ।  
 साकेतनगरीं चैव प्रमोदवनमुत्तमम् ॥ ९ ॥  
 स्वात्मानं चैव ते गोपाः समपश्यन् पृथक् पृथक् ।  
 नित्यं व्रजस्थैलोलाभिः समुपेतं च राघवम् ॥ १० ॥  
 तद् दृष्ट्वा सकलं गोपो गवेन्द्रः स्तुतिमाचरत् ।

**सुखित उवाच**

नमस्ते राघवानन्त नित्यश्रीविग्रहाकृते ।  
 न त्वां जानन्ति वेदाश्च किमुतान्ये वराककाः ॥ ११ ॥

१. मदामम - अयो० । २. ब्रजस्था—अयो०, रीवाँ ।

न ते लीलां विदुर्ब्रह्मन् पुरुषोत्तम सत्यते ।  
 न ते रूपं विदुर्देवा ब्रह्माद्या अपि संततम् ॥१२॥  
 साकेतनगरे चैव<sup>१</sup> कोशलाख्ये पुरोत्तमे ।  
 श्रीसरयूवने<sup>२</sup> चैव प्रमोदविपिने तथा ॥१३॥  
 एकस्त्वमेव नित्याभिर्लोलभिः परिशोभसे ।  
 लीलायाश्च न ते हेतुर्निगमैरपि बुध्यते ॥१४॥  
 नित्या चिदानन्दमयी यथासि त्वं तथैव सा ।  
 सवितुस्तद्वरेण्यं त्वं भर्गः स्वभगवत्तया<sup>३</sup> ॥१५॥  
 देवस्य धीमहीक्षां<sup>४</sup> ते धियो यो नः प्रचोदयात् ।  
 श्रीरामं सच्चिदानन्दं भक्तोद्भूतिकृतिक्षमम् ॥१६॥  
 स्वरूपानन्ददानायेदृशं संसेवयेऽनिशम् ।  
 राधवस्य गुणोत्कर्षः सर्वावतरणेषु यः ॥१७॥  
 अधुना स प्रविज्ञातः स्वरूपानन्ददर्शनात् ।  
 स्वरूपजनितानन्दरमणोत्कर्षहेतुकम् ॥१८॥  
 रामेति भवतो नाम नान्यावतरणेऽभवत् ।  
 येऽन्ये हृयानननृसिंहमुखाः परस्य  
     पूर्णस्य राम पुरुषोत्तम तेऽवताराः ।  
 तेषामयं परिवृढः<sup>५</sup> खलु रामनामा  
     भाते<sup>६</sup> स्वयं स भगवान् रघुनन्दनस्त्वम् ॥१९॥  
 तत्ते चिदानन्दमयं सनातनं धामोद्भुरं<sup>७</sup> वेदविदामगम्यम् ।  
 प्रकाशते यत्सहजं मुनीनां हृदन्तराले वशिते योगभक्त्या ॥२०॥  
 तद्वावयामि भवतो विदितं त्रिवेद्यां  
     ब्रह्मात्मकं चरणमेकमखण्डवीर्यम् ।

१. °नगरोमध्ये—रीवाँ । २. वने=‘जले’ टि०—मथु०, बड़ो० । ३. “स्वस्य  
 भगवत्त्वेन यत् सवितुः सूर्यस्य वरेण्यं तेजस्तत् ध्येयं भर्गः” टि०—मथु० । ४. “ईक्षां  
 दर्शनं ध्यायेमः” टि०—मथु० । ५. मदंशेवनसे—रीवाँ । ६. परिवृढः—अयो०,  
 परिवृतः—रीवाँ । ७. भाति—रीवाँ । ८. “उद्धुरं धाम खरूपं” टि०—मथु० ।

भूतानि यस्य सकलानि स एकपादः

किंच त्रिपादमृतमूर्ध्वमुदै द्विरिष्ठम् ॥२१॥

श्रीराघवेन्द्र भवतश्चरितं तुरोयं<sup>२</sup>

तुर्यात्मनां प्रकृतिपूरुषयोः परं यत् ।

तद्वासते भुवनभूषणभूतमात्र-

प्रोद्वार<sup>३</sup>साधनमशेषगिरां पदं तत् ॥२२॥

### गोपा ऊचुः

नमो नः साधवे सख्ये श्रीरामाय महात्मने<sup>४</sup> ।

यस्य भरतशत्रुघ्नलक्ष्मणा भ्रातरो मताः ॥२३॥

भवांश्चतुर्व्युहतनुः पुराणः श्रीमान् परः पूरुष एव कश्चित् ।

चत्वार<sup>५</sup> एतेऽवयवाः स्फुरन्ति श्रीवासुदेवादय एव यस्य ॥२४॥

आद्यःस देवोऽसि विशिष्ट्य<sup>६</sup> मुक्तानन्दप्रदः सन्मय एव पूर्णः ।

यस्यान्तरं नो न बहिर्न मध्यं श्रीरामचन्द्रः सकलं तदेतत् ॥२५॥

त्वं स द्वितीयः पुरुषोऽसि भामन्<sup>७</sup> कालात्मकः शिष्यते यः स शेषः ।

वैदात्मकः शब्दमयः स पूरुषो यत्राखिलो निहतो भाति धर्मः ॥२६॥

कामोऽसि लोकस्य भवान् स्मरो यः प्रवर्तको लोकचक्रस्य नित्यम् ।

तं त्वां परं पूरुषमादिसर्गे प्रभुं प्रपत्नोऽस्मि विशिष्टभक्त्या ॥२७॥

त्वमेव देवोऽस्यनिरुद्धनामा धर्मात्मकः सर्वधर्मकरक्षी ।

यस्यानिशं भाति परं स्वरूपं क्षीरोदसिन्धोः पुलिनैः प्रकाशम् ॥२८॥

त्वं पञ्चमः संप्रथितोऽसि तेषां धर्मो कलाभिः समताभिराढ्यः ।

प्रमुद्धने यो ललनासहस्रलीलागणैः सेवित एव नित्यम् ॥२९॥

### गोप्य ऊचुः

नमो राघववर्याय रामाय रमणात्मने ।

रमासहस्रसेव्याय रामाय श्रीपरात्मने<sup>८</sup> ॥३०॥

१. °पदं—रीवाँ । २. यतीनां—रीवाँ । ३. °मात्रनिष्कार°—रीवाँ । ४. श्रीराम-  
परमात्मने—रीवाँ । ५. चत्वारि—रीवाँ, मथु०, बड़ो० । ६. विशिष्ट°—अयो०,  
रीवाँ । ७. भक्तः—रीवाँ । ८. श्रीराघवे—अयो०, श्रीशविष्णवे—मथु०, बड़ो० ।

यो नः पतिः प्रमुदकाननकुञ्जभूमौ  
 पाणिग्रहेण विधिना विधिवद्गृहोतः ।  
 स त्वं रमारमण एव विशेषतोऽद्य  
 विज्ञात एव परमः पुरुषोत्तमो यः ॥३१॥  
 स्त्रीणां नः परमैव त्वं गतिर्भव जगत्पते ।  
 पञ्चेषुरुपलावष्यं हरन् सौन्दर्यभूषितः ॥३२॥  
 मोहिका मन्मथस्यापि या ते लीला स्मरोद्धता ।  
 सा नो विषयतां याता धत्ते जगति मण्डलम् ॥३३॥  
 यस्त्वं चिदानन्दमयो रामो रमणकोविदः ।  
 स एव वल्लभोऽस्माकं पूर्णः श्रीपुरुषोत्तमः ॥३४॥  
 नित्यं रमाम भवता सह कामलीला-  
 विस्तारणैकचतुरेण नरोत्तमेन ।  
 उत्कण्ठिता इति वयं रघुराज युष्म-  
 त्पादारविन्दयुगलाश्रयणैकदास्यः ॥३५॥  
 इत्येवं भाषमाणेषु व्रजवासिषु साधुषु ।  
 भक्तचा प्रसीदद्वृदयः समवोचत् स्मिताननः ॥३६॥

## श्रीराम उवाच

व्रजवासिजना यूर्यं धन्याः स्थ बहुमङ्गलाः ।  
 यन्मम प्रियतां याता मृत्योर्मूर्धिन समाप्तते ॥३७॥  
 न कालो न मायापि युष्मासु शक्तो मम क्रोडितानन्दपात्रेषु सत्सु ।  
 यथा मत्स्वरूपं तथा यूर्यमद्वा परे व्यापिवैकुण्ठधामानुपेताः ॥३८॥  
 इत्येवं सरयूक्षेत्रे प्रभाते मज्जतां नृणाम् ।  
 अनुभाव्य स्वयं रामः स्वं लोकं प्रकृतेः परम् ॥३९॥  
 सुखितस्य गृहाद्गन्तुमयोध्यामुपचक्रमे ।  
 कृतस्वस्त्ययनो रामो भ्रातृभिः सहितो युवा ॥४०॥  
 प्रयाणे रथमारोदु<sup>१</sup>मिच्छुस्तातं समब्रवीत् ।  
 हे तात सुखित श्रीमन् गवेन्द्र व्रजनायक ॥४१॥

१. मंगलम्—मथु०, बडो० । २. °मारुढ°—अयो०, रीवाँ ।

दाशरथीं पुरीं गन्तुमनुजानोहि मां प्रभो ।  
 युष्माकं सदनेष्वद्वा<sup>१</sup> चिरमध्युषितं मया ॥४२॥  
<sup>२</sup>दधि दुर्घं च मिष्टान्मशनता प्रोणतानुजैः<sup>३</sup> ।  
 स्थित्वा शुभेषु भवतीसदनेषु<sup>४</sup> नित्यं  
     यत्क्रीडितान्यहमकारिषमात्तवेदः<sup>५</sup> ।  
 गास्यन्ति तानि मुनयोऽपि पराद्वयारे<sup>६</sup>  
     संख्यापितानि निगमैः कुशलान्वितानि ॥४३॥  
 भवतां चापि नामानि कतिदोषहराण्यतः ।  
 कीर्तयिष्यन्ति मनुजास्त्रिषु लोकेषु तत्त्वतः ॥४४॥  
 मातर्माङ्गल्यके यत्वं पालयामास नः सुतान् ।  
 तद्वयं बलिनो जाता जेष्यामो भुवनद्विषः ॥४५॥  
 अनुजानोहि मां भद्रे साकेतपुरगन्तवे ।  
 पराजिष्ये रिपून् सर्वान् भवतां कीर्तिवर्द्धनः ॥४६॥  
 ताःश्रोष्यथ मम क्रीडाविषयान् पुरि<sup>७</sup> तिष्ठतः ।  
 यानुद्गाय परांप्रीतिं ममेष्यथ वनौकसः ॥४७॥  
 युष्माभिर्नच बोध्योऽहं विशिलष्टो जनकानने ।  
 नित्यं हि निवसाम्यत्र प्रमोदवनमध्यतः ॥४८॥  
 इत्याभाष्य मिथो बन्धून् परिरभ्य पुनः पुनः ।  
 परिरब्धश्च तै रामो रथोपस्थमुपाविशत् ॥४९॥  
 आतरः परितो रामं तस्थिरे रथभूमिषु ।  
 शङ्खभेरीमृदञ्जाश्च समवाद्यन्त भूरिशः ॥५०॥

श्रीरामः सुखितगवेन्द्रघोषमध्यात् साकेतं व्रजति निदेशतः पितृभ्याम् ।  
 आकण्येत्यमरवधूकदम्बकेन प्रेक्षार्थं सपदि जवेन तत्र जग्मे<sup>९</sup> ॥५१॥

विमानावलिभिर्योम्      समंतात्परिवारितम् ।  
 रामेन्दुं वीक्ष्यमाणानां देवानां चैव वर्ष्मभिः ॥५२॥

१. शुद्धा—अयो०, रीवाँ । २—२. नास्ति—अयो० । ३. °निलयेषु—मथु० बडो० । ४. “अंगीकृतलीलारहस्य इति चित्सुखा०” टिं—मथु० । ५. °पारा-- रीवाँ । ६. °याजपि—रीवाँ । ७. श्रुत्वा—रीवाँ ।

अजायत महानेव संन्ध्रमो व्योम्निं च क्षितौ ।  
 गच्छतां रामगोपानां साकेतनगरीं पथि ॥५३॥  
 गोपान् निजसखोन् रामः सरामोऽप्यपृथक् पृथक् ।  
 स्यन्दनेषु सुवर्णेषु जगाम रघुपुञ्जवः ॥५४॥  
 असज्जन्त ध्वजगजाः स्वर्णं पल्याणिनो हयाः ।  
 पत्तयः समकादन्त<sup>२</sup> रथाश्च विपुला ययुः ॥५५॥  
 मन्त्री दशरथेन्द्रस्य महत्या सेनया वृतः ।  
 अनुराजकुमारं तं यथौ सुखितपूजितः ॥५६॥  
 रथधूलिरजोरेखा यावत् संदृश्यते दिवि ।  
 तावद् गोपालनार्थ्यस्ताः सौधाग्रेष्वलमासत ॥५७॥  
 रथे दूरं गते पत्युरवतेरुर्वजाङ्गनाः ।  
 श्रीरामविरहक्लेशदुःप्रेक्ष्ये दूरतोऽबलाः ॥५८॥  
 तद्गुणानेव गायन्त्यो विवृद्धस्नेहवार्धयः ।  
 कुञ्जे कुञ्जे रटन्त्यस्ता नात्मगेहानि सस्मृः ॥५९॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 रामयात्रायां षष्ठितमोऽध्यायः ॥६०॥



### एकषष्ठितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

गृहप्रवेशविधिना कुमारं समवेशयत् ।  
 राजा दशरथः प्रीतः कुमाराननदर्शनात् ॥ १ ॥  
 दृष्ट्वा स चतुरः पुत्रान् प्रीतोऽभवदरिन्दमः ।  
 अमन्य<sup>३</sup>तैष मे बालो रावणादीन् हनिष्यति ॥ २ ॥  
 अहो अत्यद्भुतं तेजो रामचन्द्रस्य शोभते ।  
 अनेन नो गृहं स्पृष्टं त्विषा वितिमिरोकृतम् ॥ ३ ॥

- 
१. असज्जंत गजाः स्वर्णकक्षाः—रीवाँ, २. यत्र यः शिविकादंत<sup>०</sup>—रीवाँ ।  
 ३. “तदानीमेवालौकिकतेजोदर्शनेन माहात्म्यज्ञानं जातमिति भावः । अग्रे वात्सत्यनिर्वाहस्तु भगवल्लीलयैवेति चित्सुखीः” टिं—मथु०, बड़० ।

अहो सुजनुषा<sup>१</sup>मेषां रक्षायै सुखितालये ।  
 अकारिषं स्थितिमहं पुनरेते कुतोभयाः ॥ ४ ॥  
 कालस्थायिनियन्ता यः<sup>२</sup> पुरुषः प्रकतेः परः ।  
 स एव रामदेवोऽयं कथं साधारणो भवेत् ॥ ५ ॥  
 अनेन नः कुलं सौरं विशेषाद्विमतीकृतम् ।  
 तेजसामपि तेजो यत् स रामः पुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥  
 नायं जनो नापि सुरो न यक्षो नापि लौकिकः ।  
 अलौकिकं महः पूर्णं रामशब्देन कथ्यते ॥ ७ ॥  
 दृष्ट्वास्य वदनाम्भोजं चिरं नयनयोर्मम ।  
 संजाता परमा प्रीतिः किमेतावद् गतं जनुः ॥ ८ ॥  
 अहो सुखितगोपस्य भाग्यं पारमुपागतम् ।  
 यच्छैशवैऽस्य वदनं प्रीत्या परिचुचुम्ब सः ॥ ९ ॥  
 अहो माङ्गल्यया नित्यं लुण्ठितः सुखवारिधिः ।  
 यदस्य भुखचन्द्रस्य पपौ पीयूषमादरात् ॥ १० ॥  
 सुकुमारममुं बालं राक्षसो धर्षयेदिति ।  
 न्यस्तवान् सुखितागरे श्रीराममकुतोभयम् ॥ ११ ॥  
<sup>३</sup>भीषास्मान् मारुतो वाति भीषेदिति दिवाकरः ।  
 भीषेन्द्रश्चैव वह्निश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ १२ ॥  
 अयं कालस्थापि कालो दैवतस्थापि दैवतः ।  
 जानेऽहं सकला गायन्त्यमुमेव श्रुतेर्गिरः ॥ १३ ॥  
 एष साक्षात् स्वयं रामो जातः प्रीत्या मदालये<sup>४</sup> ।  
 वासुदेवादिभिः स्वांशैः पूरितः शर्मकृन्नृणाम् ॥ १४ ॥  
 नमो<sup>५</sup>स्त्वमुष्मे पुरुषाय मूर्तये कलाविलासप्रकरैकमूर्तये ।  
 लोकाभिरामाय विलासिने नमो रामाय श्यामाय नमोऽस्तु संततम् ॥ १५ ॥

१. स्वजनुषा—रीवौ । २. अयं—रीवौ । ३. “ब्रह्मस्वरूपं ज्ञात्वा श्रुत्यर्थतयो-पवर्णयतीति चित्सु०” टि०—मथु० । ४. “अवतारात्पूर्वमपि मूलचरित्रकारित्वा-नित्यमेव रामेतिनामेति चित्सु०” टि०—मथु० । ५. अहो अमु०—मथु०, बड़ो० ।

यस्य या सहजा शक्तिः सा श्रीः सर्वाङ्गसङ्गनी ।  
 अयं च भगवान् पूर्णो दत्तं दृग्वलम्बनम् ॥१६॥  
 यौवराज्यस्य बालस्य नाहं सर्वद्विमानपि ।  
 शक्नोमि भवितुं राजा प्रभामण्डलधर्षितः ॥१७॥  
 तस्मादेनमिहाभिषिद्य सुखदं साकेतराज्ये चिरं  
 पूर्वे पालितधर्मसेतुसदृशे सद्धर्मशमालिये ।  
 अस्यैव प्रणयप्रकाशवपुषो<sup>१</sup> ध्यानात्परब्रह्मणो<sup>२</sup>  
 वानप्रस्थ्यमहाश्रमं सफलयास्यस्मिन् रघूणां कुले ॥१८॥

अथवा पुरुषोत्तमस्य साक्षाद्रघुनाथस्य परावरेश्वरस्य ।  
 तनयेतिधियैव साधयानि प्रभुतः स्वात्मसुखं पराद्वर्चसंख्यम् ॥१९॥  
 अयमद्भुतरूपसौख्यराशिः फलितः संकलितश्च मे दृशाद्य ।  
 तत एव परां श्रियं भविष्ये यदिहामुष्मिकवस्तुसारभूतम् ॥२०॥

यथाय<sup>३</sup> पुरुषो जातः पुत्ररूपेण मद्गृहे ।  
 आज्ञापयिष्यति तथा करिष्यामि न संशयः ॥२१॥  
 कोऽहं कर्ता बराकः सन् प्रभुरेव करिष्यति ।  
 इत्येवं ज्ञाततत्त्वार्थः प्राकृतं स राघवः ॥२२॥  
 एकतः कर्षति स्नेहो माहात्म्यज्ञानमेकतः ।  
 उभयोरन्तरे राजा रज्जयामास मानसम् ॥२३॥  
 कौशल्यापि स्वसदनगतं रामचन्द्रं कुमारं  
 नीराज्यार्तिः सुभगरुचिभिर्दीपिकाभिः प्रकामम् ।  
 आरोप्याद्वै मदनमदहृदूपलावण्यलोलम्  
 स्तिंगधोद्भूतं प्रणयहृदया हृष्टरोमा चुचुम्ब ॥२४॥  
 एवं भरतशत्रुघ्नलक्षणानपि मातरः ।  
 नीराज्य निर्मज्जयामासुर्भणिमुक्तादिकं धनम् ॥२५॥  
 रामे निर्मज्जिताः सदयः पितृभ्यां रत्नराज्यः ।  
 नभोगतानि तान्येव नक्षत्राण्यरुचन्न वा ॥२६॥

१. °वपुषे—मथु०, वडो० । २. °ब्रह्मणे—मथु०, वडो० । ३. यथाहं—अयो०,  
 मथु०, वडो० ।

तत्राशिषः प्रयुज्जानाः कुमाराणां चतुष्टये ।  
 प्रादुर्बभूवुस्त्रिदशास्तर्थैव च महर्षयः ॥२७॥  
 समवादचन्त पटहा भेर्यो दुन्दुभयस्तथा ।  
 रामचन्द्रसुखालोके प्रजानां प्रीतिवर्धने ॥२८॥  
 कृतपुण्याहवचनाशक्त्वारो राजनन्दनाः ।  
 व्यरोचन्त सभामध्ये मूर्तिमन्तो मनोरथाः ॥२९॥  
 कृतकुण्डलविन्यासा वलयानद्व बाहवः ।  
 केयूरोल्लासदोर्दण्डाश्चित्रोष्णीषकिरीटिनः ॥३०॥  
 हेमकञ्चुकलिप्माङ्गा निषङ्गोग्रा धृतासयः<sup>१</sup> ।  
 अङ्गारितधनुज्यास्ते कलितोत्साहवृद्धयः ॥३१॥  
 व्यरुचन् रघुशार्दूलाः पितुः सन्निधिसेविनः ।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे अयोध्यागमनं नाम  
 एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥



## द्विषष्टितमोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

यौवराज्ये स्थितो रामः शोभयामास भूतलम् ।  
 चक्षुषि रञ्जयामास मनुजानां च पश्यताम् ॥ १ ॥  
 राजा दशरथः प्रीत्या संप्राप्य सुतदर्शनम् ।  
 अपूर्वपदलावण्यं दर्शनाद्विस्मितोऽभवत् ॥ २ ॥  
 दिने दिने स्नेहमानः स्नेहो जनकभूभुजः ।  
 अलौकिके चिदानन्दे पुरुषे सफलोऽभवत् ॥ ३ ॥  
 उद्दूवेज्ज्ञानमाहात्म्यं शंखचक्रादिदर्शनात् ।  
 तनयत्वेन मेने स रामं नित्यशुभाकृतिम् ॥ ४ ॥

१. निषङ्गः धृतसायकाः—रीवाँ । २. °लावण्यलाभ°—रीवाँ ।

तथापि जनतानन्दसंदोहाभिनवाङ्कुरे ।  
 नान्यसाधारणो रामे बभूव स्नेहसागरः ॥ ५ ॥  
 कदाचिन्नृपतिः कृत्वा हरिनन्दातिथिव्रतम् ।  
 कलाद्वं द्वादशीं ज्ञात्वा निराशः कृतजागरः ॥ ६ ॥  
 अनुललङ्घच्छासुरीं वेलां सरयूतीर्थमध्यगात् ।  
 स्नातुं प्रविष्टं तं तीर्थेऽहरद्भूत्यः प्रचेतसः ॥ ७ ॥  
 अदृष्ट्वा नृपतिं भृत्याश्चक्रुः कोलाहलं मिथः ।  
 हा हा कुत्र गतो राजा पश्यतां नः सविग्रहः ॥ ८ ॥  
 कौशल्यानन्दनो ज्ञात्वा जनकं यादसा हृतम् ।  
 तत्सन्निधिमगात् पूर्णं प्रविश्याम्बुनि सारवे ॥ ९ ॥

तं दिव्यरत्नमणिहेमकिरीटजुष्टमूर्धानिमुल्लसितपद्मदलायताक्षम् ।  
 मुक्तागणत्वजमुदारमुरोवहन्तं इयामं ददर्श वरुणः सहस्रैव रामम् ॥ १० ॥

प्रामं तमीशमखिलस्य भवस्य भव्यं  
 राजीवलोचनमसावधिगम्य रामम् ।  
 देवाधिदेव इति राममुदा सपर्या  
 चक्रे स दिव्यमणिमौक्तिकरत्नपुञ्जैः ॥ ११ ॥

## वरुण उवाच

अद्य मे पावितं वेशम चरणाम्भोजरेणुभिः ।  
 तस्य स्पर्शाच्छिरश्चैव गाङ्गं पावनहेतुभिः ॥ १२ ॥  
 अद्यैव सफलं वर्षम चक्षूषि सफलानि नः ।  
 समन्ताद्वीक्ष्यमाणानां इयामं सुन्दरविग्रहम् ॥ १३ ॥  
 अवितव्योऽसि पूर्णोऽसि स्वयंज्योतिरसि प्रभो ।  
 तथाप्यवतरन्नणां तनुषे सगुणां धियम् ॥ १४ ॥  
 ते गुणानां न संगोऽस्ति ब्रह्मणः परमात्मनः ।  
 तथापि कृपया देव दृश्योऽसि जगतो दृशः ॥ १५ ॥  
 त्वत्संगिनी दृशिरसौ रघुवंशकेतो  
 चेतोगतिः समतिवर्त्य जयन्ति शश्वत् ।

इच्छावशात्तव कृपामृतसागरस्य

भूयो जवेन जनतां भृशमुद्दीर्षोः ॥१६॥

न तेऽस्ति भाता न पिता कुतस्ते सहोदरा बन्धवोऽव्यक्तमूर्तेः ।  
तथापि लीलामधिगम्य रम्यां सर्वस्वरूपो भवसीश सद्यः ॥१७॥

त्वमेव सुखितो गोपो माङ्गल्या च त्वमेव हि ।

त्वमेव गोप्यो गोपाश्च त्वं प्रभोदवनं हरे ॥१८॥

त्वमयोध्यापुरो विष्णो त्वं वै दशरथो नृपः ।

त्वं कौशल्या च सा भाता लीलामानुषविग्रहः ॥१९॥

वैकुण्ठवासी देवेश तवैवांशो रमापतिः ।

यः क्षीरसागरे शेते निगमैः समभिष्टुतः ॥२०॥

यद्यच वेदमयो देवो भगवानक्षरात्मकः ।

स्वराट् सहस्रवदनः सा ते भूर्तिर्गिरात्मिका ॥२१॥

नमस्ते रामचन्द्राय कल्याणगुणसिन्धवे ।

परमानन्दकन्दाय परमज्योतिरात्मने ॥२२॥

भूर्भुवःस्वःस्वरूपाय विराजपुरुषाय ते ।

महते विश्वरूपाय परस्मै प्रकृतेर्नमः ॥२३॥

इत्यभिष्टूय सर्वज्ञो रामचन्द्रं रघूद्वहम् ।

प्रचेताः सहसात्मानं पातयामास पादयोः ॥२४॥

उत्थापयामास समार्त्तबन्धुः प्रचेतसं राघवसार्वभौमः ।

तमुत्थितः पाशधरो ददर्श धनुर्धरं कञ्जविशालनेत्रम् ॥२५॥

रामचन्द्र इति ज्ञात्वा नत्वा चैव पुनः पुनः ।

नृपं दशरथं नत्वा समर्प्य प्रभवे ततः ॥२६॥

विसर्जयामास पुराद्रामं त्रिभुवनेश्वरः ।

राजा सहोन्ममऽज्जासौ पश्यतां सरयूजले ॥२७॥

प्रत्यङ्गं भूषितो रत्नैर्वरुणेनोपदोक्ततैः ।

आनन्दमज्जनांस्तत्र आनीय पितरं जवात् ॥२८॥

१. °मसि भावबंधुः—रीवाँ ।

तदा जयेति निर्घोषोऽभवत् साकेतपत्तने ।  
 पुत्रप्रभावेणानीतो राजा दशरथः पुनः ॥२९॥  
 अहो रामस्य सामर्थ्यं निव्ये मां वरुणालयात् ।  
 इति चित्रान्वितो राजा बभूव भृशहर्षितः ॥३०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुग्गुण्डसंवादे दशरथानयनं नाम  
 द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥



### त्रिषष्टितमोऽध्यायः

#### ब्रह्मोवाच

अथागमन्मधुर्दिव्यमाधवीमधुगन्धभृत् ।  
 मधूकप्रसवामोदगुजज्ञद्भ्रमरसंभवः ॥ १ ॥  
 कूजत्कोकिलकादम्बशिखण्डगणनादितः ।  
 मन्दैर्मलयज्जैः पा(वा ?)तैराकाम्पितलतागृहः ॥ २ ॥  
 फुल्लत्कशुककान्तारः शुकास्यकुसमाकरः ।  
 रसालमञ्जरीपुञ्जमञ्जुलीकृतकाननः<sup>१</sup> ॥ ३ ॥  
 पुंस्कोकिलरवाकीर्णदिग्न्तकुटिकागणः ।  
 किंचिद्विमसमुद्भूदे<sup>२</sup> विकस्वरदिवाकरः ॥ ४ ॥  
 फुल्लनीरजसौरभ्यसंभारसुरभीकृतः ।  
 गङ्गातरङ्गशिशिरमस्तलहरिसौख्यदः ॥ ५ ॥  
 पुरनारीजनाक्रान्तदोलोत्सवविशारदः ।  
 अमुमेवंविधं दृष्ट्वा नृपतिः कुसुमाकरम् ॥ ६ ॥  
 श्रीरामं रमयामास आरामेषु रमासखम् ।  
 कर्पूरचूर्णसंदोहैः कस्तूरीरजसां चयैः ॥ ७ ॥  
 सिन्दूररेणुसंत्रातैर्दिव्यभुवनपयोधराः ।  
 रक्तैः केलिरजोभिश्च क्रीडा जाता परस्परम् ॥ ८ ॥

१. °कामलः—रीवाँ । २. “किंचित्पुष्पसमुद्भेदं” इत्यधिकः पाठः—रीवाँ ।

सरथवाः पुलिने दिव्ये मुक्ताकुञ्जे मनोहरे ।  
 अभूत् केलिसमारम्भो रामस्य सखिभिः सह ॥९॥  
 तेषामुद्गीयमानानां संक्रीडारजसां भरेः ।  
 नभश्छन्नमभूद् भूयो रक्तैरम्बुधरैरिव ॥१०॥  
 भुञ्जाना विविधान् भोगान् खेलमानाः परस्परम् ।  
 अभिरामस्य रामस्य सखायो रेमिरे मिथः ॥११॥  
 पल्लवैः कुसुमैः स्तोमैः कन्दुकैः कोमलैः फलैः ।  
 केलीं संवर्धयामासुश्चत्वारो रघुपुञ्जवाः ॥१२॥  
 स्वयं दशरथो राजा गन्धर्वैरुपवीणितः ।  
 रेमे वसन्तसमये कौतुकी तनयैः सह ॥१३॥  
 वसन्तोत्सवमालोक्य रामस्य कुतुकान्वितम् ।  
 ब्रह्माद्या मुमुहुर्देवा नन्दिताश्चाभवन् मुदा ॥१४॥  
 तस्मिन् दिव्योत्सवे राममासीनं भूभूता सह ।  
 उपवीण्यमानं गन्धर्वैः प्रामङ्गलायामयोऽसुरः ॥१५॥  
 संकिरंस्तामसीं छायां छादयामास तां सभाम् ।  
 यत्रासते ते भरतरामलक्ष्मणशत्रुघ्नाः ॥१६॥  
 तस्यासुरस्य छायाभिर्मूर्छिता अभवस्तदा ।  
 एकं राममृते सर्वे सभास्तारा' मधूतसवे ॥१७॥  
 रामो विज्ञाय तां मायामसुरस्य दुरात्मनः ।  
 चुक्रोधं तद्वधं कत्तु' प्रभुस्त्रिभूवनेश्वरः ॥१८॥  
 शरासने शरं घोरं संयोज्य रिपुदर्पहा ।  
 तं राक्षसं मर्मदेशो जघान नृपनन्दनः ॥१९॥  
 स हतस्तस्य वाणेन पृथक् छायामयीं तनुम् ।  
 अपतद्वर्णयन् घोरं दुर्दर्शं विपुलं वपुः ॥२०॥  
 पुनस्तमेकेन शरेण हत्वा प्रक्षेपयामास बलाद्धूद्धृहः ।  
 यथा स उद्दीय पपात सिन्धौ समुच्छलल्लोलतरङ्गमाले ॥२१॥

तस्य कण्ठोद्गतं तेजो रामस्य चरणाम्बुजे ।  
 प्रविवेश पतत्तारातेजःपुज्जः प्रभासुरः ॥२२॥  
 तच्चित्रमिव संजातं विमानस्थदिवौकसाम् ।  
 क्षणाललब्धप्रबोधानां तत्रस्थानां तथा नृणाम् ॥२३॥  
 लक्ष्मणो भरतश्चैव शत्रुघ्नश्च निरीक्ष्य तत् ।  
 भूयो जयेत्यभिदधौ श्रीरामस्य पृथक् पृथक् ॥२४॥  
 न तत्रान्यस्य सामर्थ्यं यच्छायासुरभारणम् ।  
 विना रामं धनश्यामं महावीरं धनुर्धरम् ॥२५॥  
 अयं छायासुरो नाम राक्षसस्तामसीसुतः ।  
 देवान् रणे पराभूय त्रैलोक्यं बुभुजे पुरा ॥२६॥  
 नार्को नेन्द्रो न वा ब्रह्मा न शिवो नेतरः सुरः ।  
 अमुं नाशयितुं शक्तो मायाच्छायामयं रिपुम् ॥२७॥  
 अविद्या जगतो ह्येषा व्यूढं छायामयं तमः ।  
 अमारयद्वोररूपं रामभद्रः स्वतेजसा ॥२८॥  
 इत्युच्चकैः समभिधाय सुराः सहर्षाः  
     श्रीरामभूर्धनं सुरपादपुष्पवृष्टिम् ।  
 चक्रुः स्तवं त इममेव गिरां समूहैः  
     सत्संब्रमेण दिवि दुन्दुभिनादपूर्वम् ॥२९॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे छायासुरवर्णनं नाम  
     त्रिषष्ठितमोऽध्यायः ॥६३॥

## चतुष्णितपीड्यायः

**ब्रह्मोवाच**

कुसुभाकरमुत्फुलं द्रष्टुकामो रघूद्वहः ।  
 कुञ्जाभ्यन्तरकुञ्जेषु गत्वरेषु विवेश ह ॥ १ ॥  
 सेव्यमानं सुखस्पर्शं वर्तैर्मलयगन्धिभिः ।  
 ददर्श कौतुकी रामो वसन्तवनजां श्रियम् ॥ २ ॥  
 सहकारतरुन् दृष्ट्वा भूरिमज्जरितान् प्रभुः ।  
 मैने विषशर्युत्तमधिज्यं म (मा ?)न्मथं धनुः ॥ ३ ॥  
 हेमकेतकिपुष्पौ घैर्धूरिपूरैः समंततः ।  
 तमोऽन्धकारितं वीक्ष्य मैने स्मरचमूद्वितम् ॥ ४ ॥  
 उत्फुलपञ्चजामोदभ्रमद्भ्रमरसंकुले ।  
 कुञ्जवीथीपथे रामश्चलितुं नाशकज्जवात् ॥ ५ ॥  
 लताषु वृक्षेषु तथा क्षुपेषु<sup>१</sup> गुलमेषु पुष्पप्रचयाकुलेषु ।  
 इतस्ततो दृष्टिसुखं विचिन्वन् सस्मार रामः सहजां स्वचित्ते ॥ ६ ॥  
 स्मराशुगौर्विद्वमना रघूद्वहो युवा सरोजच्छदनायतेक्षणः ।  
 तत्याज सामान्यजनान् स्वसंगिनस्तमेव तस्थुः सविधे सखायः ॥ ७ ॥  
 ये भुक्तिपानपविधानविहारलीला-  
 नर्मक्कियादिषु सदा सविधे वसन्ति ।  
 शुद्धान्वयप्रवरराजकुमारवर्या  
 आज्ञाकराः प्रणयिनं सहसोपचेरः ॥ ८ ॥  
 नानादेशाधिनाथानां ये वै राजकुमारकाः ।  
 तेषां प्रसादपात्राणि मित्राणि द्वित्रिसंख्यकाः ॥ ९ ॥  
 पीठमर्दा विटाइचेटा नर्मदाश्च विदूषकाः ।  
 इत्येवं गोदुहां बालास्त आसन् रामपाश्वर्गाः ॥ १० ॥

१. “हस्तशाखाशिफः क्षुपः” टिं—मथ०, बड़ो० ।

केचिन्नवदलैः श्रव्यां रचयामासुरद्भुताम् ।  
 केचिच्च कल्पयामासुभूषालीभिरुक्तजः ॥११॥  
 केचित् कमलपत्रैस्ते परिवनुः पटैरिव ।  
 प्रसूनमकरन्दाद्यैः शीतलैः केचिदाकिरन् ॥१२॥  
 केचिच्छायासु सान्द्रासु वीजयामासुरोक्तरम् ।  
 केचिदातपरोधार्थमातपत्रं दधुः प्रभोः ॥१३॥  
 सहजानन्दिनीकान्ताविश्लेषव्यथितान्तरम् ।  
 पटु क्षामं च ते रामं दृष्ट्वा वचनमनुवन् ॥१४॥

कुमारा ऊचुः

राम राम महाबाहो कोऽयमाधिस्तवान्तरे ।  
 प्रत्यञ्जलुणतामेष सत्स्वस्मासु महाप्रभो ॥१५॥  
 त्वदाज्ञावशगानां नो नालभ्यं भुवनत्रये ।  
 तदाज्ञापय राजेन्द्रकुमारास्मान् स्वसेवकान् ॥१६॥  
 पाताले वा भुवि स्वर्गे यद्विरिष्टतमं<sup>१</sup> तव ।  
 वयं तदाहरामोऽद्य राघवेन्द्र निवेशय ॥१७॥  
 मौनमेव भजन्नेवं कालं क्षिपसि से सखे ।  
 तापेनाञ्जानि शुष्यन्ति जीर्यन्ति विगलन्ति च ॥१८॥  
 कदाचित् स्विद्यसे राम स्तब्धो भवसि च ववचित् ।  
 कदाचित् पुलकोद्भेदैः कदम्बकुसुमायसे ॥१९॥  
 कदाचित् स्वरभञ्जेन मौनमेवावलम्बसे ।  
 कदाचित् कम्पसे गात्रे कदाप्यस्त्रं विमुच्चसि ॥२०॥  
 धत्से म्लानां मुखच्छायां कदाचिच्छुष्कदच्छदः ।  
 कदाचिदिन्द्रियाण्युच्चैः विलापयसि चेतसि ॥२१॥  
 इत्येताभिरवस्थाभिर्हृदि रागोऽनुमीयते ।  
 सहजानन्दिनीकान्तामानयामो निदेशय ॥२२॥  
 किं वाशोकलताकुञ्जमण्डपं याहि तं प्रभो ।  
 यत्र गोप्यो विषीदन्ति भवद्वर्णलालसाः ॥२३॥

१. यद्युदिष्टतमं—अयो० ।

विसर्वत्वयतसं नैव प्रमोदवनमच्युत ।  
भवतो दर्शनं यत्र काङ्क्षन्ति व्रजबालिकाः ॥२४॥  
व्यापकः परमात्मा चेत् सर्वत्रैवास्थखण्डधीः ।  
तथाप्यस्मद्विनोदार्थं प्रकटो भव तत्र वै ॥२५॥

राम उवाच

शृण्वन्तु सकला गोपा अयोध्यावासिनो मम ।  
प्रमोदवनपद्माया विरहो बाधतेरराम् ॥२६॥  
आनेतुं सा कथं शक्या भवद्भूः शुद्धवंशजा ।  
नहि यावत् कुलस्त्रीणां कौलव्रतमुदस्यते ॥२७॥  
अन्याश्च सकला गोप्यो मद्विश्लेषाद्विता अपि ।  
अथ मां च समेष्यन्ति तीर्त्वा कुलव्रताम्बुधिम्<sup>१</sup> ॥२८॥  
तस्माद्विरूपे हृदये महाविरहकातरः ।  
आभीरललनारत्नप्रवरानवलोकनात् ॥२९॥  
अवशिष्टां<sup>२</sup> क्रियां तस्मात् समाप्य सहजासखः ।  
व्रजे गच्छेय तच्छीघ्रं युष्माभिः सह गोपकाः ॥३०॥  
अयमेवाभ्युपायोऽस्ति तासां वै मिलने मम ।  
तावद्यूयं व्रजे गत्वा ता आश्वासयत प्रियाः ॥३१॥  
वियोगजां ममावस्थां तासां निर्वर्ण्य मित्रकाः ।  
तद्वस्थानममाप्येत्य निर्वर्ण्यत सादरम् ॥३२॥  
सुन्दरं नन्दनं लीलां ललामं चैव गोदुहम् ।  
प्रेषयामास चतुरो नर्मज्जान् सुखितव्रजे ॥३३॥  
शीघ्रमेष्यति रामोऽत्र भवदर्शनलालसः ।  
चिन्ता न कार्या युष्माभिः प्राणेभ्योऽपि प्रिया यतः ॥३४॥  
विसर्ज्य राजपुत्रांस्तान् सुखितस्य व्रजं प्रति ।  
किंचिद्वनलतावेशमण्डपं प्रविवेश सः ॥३५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वसन्तोत्सवं नाम  
चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

१. वधूं—अयो० । २. अवशिष्टाह०—मथु०, बड़० ।

## पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः

**श्रीमगवानुवाच**

रामो लतामण्डपमेत्य तस्य छायाभधिसृत्य सुखेन तस्थौ ।  
 गन्धर्ववर्यैरुपवर्ण्यमानो ग्रामोल्लसन्मूर्छितः मूर्छनाभिः ॥ १ ॥  
 यदा विशेषाद्विरहोत्करस्य स्थानुं न तत्रैव शशाक कामी ।  
 तदा निषिध्यारुचिरान् समस्तान् द्वित्रिसहस्थाद्रघुवंशवीरः ॥ २ ॥  
 असाविहावर्तविवर्तनाभिः सुष्वाप धैर्येण विनैव निद्राम् ।  
 कदाचिद्गुत्थाय धृतोपधानस्तस्थौ भृशालस्यपरीतगात्रः ॥ ३ ॥  
 ददर्श कंचिद्गुचिरं विहङ्गमं विचित्रपक्षद्युतिरोचमानम् ।  
 लोकातिगं पाण्डवमुद्धहन्तं विराजपुच्छाग्रकलाललामम् ॥ ४ ॥  
 न राजहंसं न शुकं न कोकं न कोकिलं केकि न वा कपोतम् ।  
 प्रपञ्चसर्गातिगनव्यसर्वं भान्तं तिरस्कृत्य विरज्जिदाक्षयम् ॥ ५ ॥  
 ईदृग्विधो नैव दृष्टः श्रुतो वा विहङ्गमः केनचित् क्वापि लोके ।  
 इत्यादरेण प्रभुलक्षणाभ्यां मुहुर्मुहुः संदृशो विहङ्गमः ॥ ६ ॥  
 उत्पत्य तेन सुरुचा विहगोत्तमेन  
 रत्नोत्तमद्युतिविचित्रसुविग्रहेण ।  
 रामस्य रूपरसराशिजलाशयस्य  
 सद्यः करोऽधिरुहे कमलञ्चसात्किम् ? ॥ ७ ॥  
 तच्चित्रवेशधरमेकविहङ्गमक्षिः  
 संपश्यतो रघुवरस्य न तृप्तिमाप ।  
 अङ्गं तथाप्यतिमृदुस्पृशतोऽस्य पाणिः  
 संशृण्वतोऽतिमधुरं क्वणितं च कर्णः ॥ ८ ॥

१. ग्रामो लसन्—अयो०, रीवाँ, “ग्रामैः उल्लसन्त्यः मूर्छिताः वृद्धिमिताः याः मूर्छनास्ताभिः” टिं०—मथु० । २. °हीरः—मथु०, बड़ो० ।

तं राधवेद्न्नतनयो रुचिरं कवणन्त<sup>१</sup>—

माकर्ण्य तं च परिपृच्छति यावदेव ।

तावत् सदक्षिणचरो विहगेश्वरस्त-

मुच्चैरुवाच वचनोच्चयचुञ्चुचञ्चुः ॥ ९ ॥

### विहग उवाच

सामन्तभूपशतवर्यकुमारकं<sup>२</sup> त्वां

वेद<sup>३</sup> त्रिलोकजनतानयनाभिरामम् ।

मां च प्रमोदवनकुञ्जनिकेतनस्य

लीलाविशेषरसिकं खगमेव विद्धि ॥ १० ॥

मां गोपिकानिवहै हासविलासरास-

लावण्यसागरसुधारसमापिबन्तम् ।

राम त्वया सह वने मणितारवस्थ<sup>४</sup>

शिक्षैकभाजनमवेहि मनोजबन्धुम् ॥ ११ ॥

राम प्रियासु तव मानवतीषु सद्यो

भूरुभुजाग्रमधिरुह्य विमुक्तकण्ठम् ।

धीरैः स्वरैर्मनसिजप्रतिबोधनेन

धैर्य हरन्तभिह किं स्मरसि प्रभो माम् ॥ १२ ॥

अथ त्वमेवं शशिमानमद्वा पाण्डुत्वमङ्गेषु किमाबभार ।

प्रायेण<sup>५</sup> तस्मात् सुखितस्य गेहाद् विश्लिष्ट उद्विग्न इवासि दृष्टः ॥ १३ ॥

मैव प्रभो त्वं त्रिजगतप्रतिष्ठा<sup>६</sup>—

भूतत्वमेत्य विरहानुगमेन चित्ते ।

खिद्य श्वयं कमपि दासमिहादिशस्व

स स्वर्गतं करगतं कथयिष्यतीष्टम्<sup>७</sup> ॥ १४ ॥

१. रुचिरकवणानाम्—मथु०, बड़०० । २. कुमारक—सथु०, बड़०० । ३. वन्दै-  
मथु०, बड़०० । ४. निबद्ध—अयो०, रीव० । ५. “मणिं रतिकूजितम्” टि०—  
मथु० । ६. प्रायोद्य—मथु०, बड़०० । ७. मैव प्रभो त्वमखिलजगतप्रतिष्ठा—मथु०,  
बड़०० । ८. °तीश०—मथु०, बड़०० ।

ताश्च प्रमोदवनमण्डपकुञ्जसंस्थाः  
 सीदन्ति नाथ भवतो विरहेण गोप्यः ।  
 भूयः समाश्वसिहि ताः स्वकरे गृहीताः  
 श्रीरामचन्द्र शरणाथिमहाशरण्य ॥१५॥

त्रैलोक्यपावनपुराणजनार्चितस्व'-  
 पादारविन्दपरिणद्ध॑परागराजीम् ।  
 सौरभ्यसंपदमवाप्नवतीमपूर्वा-  
 मासेव्य राम कृतकृत्यमिदं जगत् स्यात् ॥१६॥  
 अन्यास्तु गोपललना विरहागमार्ताः  
 सन्त्येव कोटिश इह व्रजभूस्थलेषु ।  
 श्रीराम तत्र॑ सहजा तु न दृश्यतेऽपि  
 यत्रास्त्यशोकलतिका वनमण्डप॑श्रीः ॥१७॥

संकेतदेशमतनुज्वरहारिशीलं  
 तं संविहाय खलु सा क्वगता न जाने ।  
 भूयस्तवैव हृदये किमियं गता वा  
 गेहं गता त्रिजगतां च गर्ति गता वा ॥१८॥  
 शून्यामशोकवनमण्डपिकां विलोक्य  
 न ज्ञायते दशदिगन्तदूशि [शा ?]र्मयापि ।  
 तद्रामचन्द्र पुरुषोत्तम तान् विलासान्  
 भूयोऽपि तत्र कुरु लोकसुखैककन्दान् ॥१९॥

## श्रीराम उवाच

नाहं प्रमोदवनतः खग निर्गतोऽस्मि  
 नित्यं वसामि तदशोकलतानिकुञ्जे ।  
 किंत्वेष लौकिकदृशां विषयोऽस्मि नाहं  
 ये भावुकाः सुरसिका विषयोऽस्मि तेषाम् ॥२०॥

१. °त्वत्—मथु०, बड़ो० । २. °परिणिद्धि०—मथु०, बड़ो० । ३. किंतु—  
 रीवाँ । ४. °मण्डल०—रीवाँ ।

अवतारचरित्राणि कर्तुं भूमितलेष्वहम् ।  
 अवतीर्णोऽस्मि पूर्णोऽपि स्वांशेन द्युमणेरधः ॥२१॥  
 अयोध्यामागतोऽस्म्येष सहजानन्दिनी च सा ।  
 अयोनिजा निमेवंशे स्वांशेनावततार ह ॥२२॥  
 बुधाः तत्रैव पश्यन्ति क्रीडमानां मया सह ।  
 रक्ताशोकलतामज्जुमण्डपान्तरचारिणीम् ॥२३॥  
 नित्यः स खलु सर्वोऽपि लीलापरिकरो मम ।  
 सर्गदौ जायते नैव प्रलये न विनश्यति ॥२४॥  
 अपरं च द्विजश्रेष्ठ भवता वचनान्मम ।  
 नैम्यस्य मिथिलेन्द्रस्य गन्तव्यं त्वरितं गृहे ॥२५॥  
 तत्र त्वमेऽयै ?] त्य सच्चित्रं लिखितं रङ्गविद्यया ।  
 देयं जीवातयेऽमुष्याः सहजायाः कराम्बुजे ॥२६॥  
 तस्याः पुनः प्रतिकृतिः पतगेन्द्र मह्यां  
 संजीवनौषधविशेषतया प्रदेया ।  
 वाच्यं च सन्निहितमेव करिष्यतेऽसौ  
 पाणिग्रहं सपदि ते जनकेन्द्रपुत्रि ॥२७॥  
 शंभोर्धनुः कठिनमित्यधि॑ गम्य बाले  
 चित्रायितव्यमपि दाशरथौ न बाले ।  
 एतद्रहस्यतरमेव विधाय कार्यं  
 त्वंजीव दैवतमते शरदां सहस्रम् ॥२८॥  
 इत्याज्ञाप्य द्विजं रामस्तूष्णीमास ततो द्विजः ।  
 गत्वा जनकराजस्य मन्दिरं मिथिलां प्रति ॥२९॥  
 तत्र क्षितेः सप्तमभूरिभागे प्रासादवर्यस्य तले निषण्णाम् ।  
 आकर्णयन्तीं विपुलान् वयस्यामुखाम्बुजेभ्यः स्वपतेर्गुणौघान् ॥३०॥  
 पुनः पुनः प्रश्नयन्ती श्रुतानपि गुणोत्करान् ।  
 [प्रीतिभरान् प्रियस्य हि॒ ।] ।  
 अस्य योग्या न वास्मोति खिद्यमानां सुहर्मुहुः ॥३१॥

१. °तामधि०—मथु, बडो० २. अगमंशोऽधिकः प्रतिभाति ।

जघनन्यस्तदोर्दण्डतले संस्थाप्य चाननम् ।  
 क्षणे क्षणे सरोमाज्ज्वां कम्पमानां क्षणे क्षणे ॥३२॥  
 क्षणे क्षणे धृतस्तम्भां रम्भास्तम्भवदम्भसा ।  
 स्विद्यमानां क्षणोष्णेन साक्षुनेत्रां क्षणे क्षणे ॥३३॥  
 ददर्श पक्षी मिथिलेन्द्रनन्दिनीं भित्वापराञ्चस्मरसुन्दरीमदम् ।  
 विराजमानां मणिनिर्मिताङ्गणे सहस्रमूर्तिप्रतिबिम्बकैतवान् ॥३४॥  
 नमस्कृत्य तां मैथिलीं रामकान्तां पराञ्देन्दिरा॑ रूपगर्वान् हरन्तीम् ।  
 नमस्कृत्य चञ्चूपुटा॑ चित्रपत्रीमभुञ्चतदग्रे पुरस्तात्सखीनाम्॑ ॥३५॥  
 तदादाय चित्रं नरेन्द्रस्य कन्याप्रपञ्चातिगं पूरुषं तत्र मत्वा ।  
 कुतः पत्रिकेयं मुहस्तर्कयित्वा विचित्रायमाना समंतादपश्यत् ॥३६॥

गृहगोपानसीसंस्थं दृष्ट्वा पक्षिणमद्भुतम् ।  
 मणितुण्डं स्वर्णपक्षं हरिन्मणिपदप्रभम् ॥३७॥  
 तं गृहीतुमनाः सीता बहु प्रयत्नेस्म॑ सा ।  
 उत्प्लुत्योत्प्लुत्य स च तां निन्ये मध्ये रहो वनम् ॥३८॥  
 तत्रापि च तदग्रे स कूजमानः पुनः पुनः ।  
 न यावत्करयोरेति स्मित्वा तावद्वचोऽव्रवीत् ॥३९॥  
 मैथिलि त्वामहं वन्दे राघवेन्द्रप्रियासि भोः ।  
 योऽसौ चित्रगतः साक्षालिलखितो रङ्गविदयथा ॥४०॥  
 अचिरादेव ते तन्वि पाणिं रामो गृहीष्यति ।  
 तावज्जीवातवे तस्य चित्रमर्पय तावकम् ॥४१॥  
 इतिवृवाणं तं साधु प्रत्यपूजत् सपर्यथा ।  
 भवान् प्राणेशदाता मे विधिना मेलितोऽसि॑ भोः ॥४२॥  
 त्वत्प्रसादात् प्रियो मेऽद्य मिलितः प्राप्त एव हि ।  
 चिरं जीव चिरं जीव चिरं जीव सखे सदा ॥४३॥

१. पराञ्देन मिशा—अयो० । “पराञ्चमपरिमितकालं स्थिता इन्दिरा तद्रूपं”  
 टि०—मथु० । २. °युगा० अयो०, रीवाँ । ३. °पक्षी—रीवाँ । ४. पुरतस्तसखीनां—  
 रीवाँ । ५. प्रपद्यतेस्म—अयो०, रीवाँ । ६. लिखितोऽसि—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

दापरित्वा सखीहस्ताच्चित्रं स्वीयं नृपात्मजा ।  
 मार्गे त्वं कुशली याहीत्युक्त्वा कृच्छ्राद्वचसर्जयत् ॥४४॥  
 स राजधानीं संगम्य राज्ञो दशरथस्य ताम् ।  
 यथौ तत्र वनोद्देशे युवराजोऽस्ति यत्र वै ॥४५॥  
 सीताचित्रमदात्तस्मै तदवस्थां निवेद्य च ।  
 संतोषितः श्रीपतिना तद्विसृष्टः खगो यथौ ॥४६॥  
 तच्चित्रं तस्य जीवातुर्बभूव श्रीरमापतेः ।  
 भूयः सहजया साद्धं यावत्पाणिग्रहो भवेत् ॥४७॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे सीताचित्रागमनं  
 नाम<sup>१</sup> पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥६५॥



### षट्षष्ठितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सुन्दरो नन्दनो लीलो ललामैश्चैव ये पुरा ।  
 गता राजकुमारास्ते व्रजं प्रापुः सुखाकरम् ॥ १ ॥  
 निकुञ्जकुञ्जशोभादचं कूजतप्रमदकोकिलम् ।  
 सर्वतुंसुखदं रम्यं छायाभूरुहमण्डितम् ॥ २ ॥  
 श्रीरामरसिकोत्तंसगुणगानपरायणैः ।  
 समन्ताद् गोदुहां हारैः संकीर्णच्छायपादपम् ॥ ३ ॥  
 गवां हुँभारवैर्भूयः समाकलितमङ्गलम् ।  
 दधिमन्थभवोद्घोषहेमभाण्डविराजितम् ॥ ४ ॥  
 इतस्ततः कूर्दमानैस्तर्णकैर्भूरिशो गवाम् ।  
 शोभमानं सलक्ष्मीकं श्रीरामस्य निजालयम् ॥ ५ ॥  
 तुलसीकुसुमामोदैः संपूरितदिग्न्तरम् ।  
 सरयूतीरकल्लोलशीतलानिलसेवितम् ॥ ६ ॥

१. चित्रागमने—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २. सुन्दरीनन्दनो लीला-  
 ललामश्चैव—अयो०, रीवाँ ।

विलोक्य राजन्यकुमारकास्ते मनोहरं गोपराजस्य घोषम् ।  
वैकुण्ठलोकोत्तमनिर्विशेषं<sup>१</sup> विदाञ्चक्रुर्भूरिसानन्दचित्ताः ॥ ७ ॥

राजकुमारा ऊचुः

अहो अस्य गवेन्द्रस्य भाग्यं वक्तुं न शक्यते ।  
षट् पञ्चाशत् कोटिसंख्यं राजते यस्य गोधनम् ॥ ८ ॥  
अहो अत्र व्रजस्थाने रामणोयकमद्भुतम् ।  
कदम्बकुसुमामोदसंपूरितदिग्न्तरम् ॥ ९ ॥

अहो अमी पादपाः सारवाम्भस्तरञ्ज्ञसञ्जादनिशं पवित्राः ।  
गायन्ति नित्यं वयसां निनादैर्लोकाभिरामं ननु रामचन्द्रम् ॥ १० ॥  
अमी गृणन्ति<sup>२</sup> प्रसभं द्विरेफाः श्रीरामदेवस्य सुधासवर्णम् ।  
कीर्ति त्रिभिर्निर्गमैर्गीयमानां गञ्जाम्बुवत्पावनीं पापराशेः ॥ ११ ॥  
नमः सरथ्यै व्रजभूमि पुनर्न्यै शुभोत्तरैर्लभिरद्भुतायै ।  
संगादमुष्या<sup>३</sup> सुरसिन्धु[धो ?]रासीद्विशेषतः कोटितीर्थस्पदत्वम्<sup>४</sup> ॥ १२ ॥  
यस्यास्तटे रासविलासलीलां चक्रे रमाया रमणः स रामः ।  
समुच्छलद्विव्यतरञ्जुष्टं नमाम तां सरयूं ब्रह्मपुत्रोम् ॥ १३ ॥  
या सप्तकल्पान्तजलेऽतिभीमे सप्तार्णवैकाम्बुकरालसंभ्रमे ।  
महानलञ्चालवदुज्ज्वलाङ्गी विराजते तां सरयूं नमामः<sup>५</sup> ॥ १४ ॥  
नमामहे सिन्धुजलप्रभेदिनीं साकेतपर्यन्तविराजिविग्रहाम् ।  
गवेन्द्रघोषप्रमदाकुचस्थलश्रीखण्डलेपोज्ज्वलवीचिमालिनीम् ॥ १५ ॥  
प्रभावतीं विन्दुमतीं कलावतीं कृपावतीं भक्तिमतीं सुधावतीम् ।  
पयस्त्विनीं पुण्यगवीं मनस्त्विनीं तरस्त्विनीं श्रीसरयूं नमामताम् ॥ १६ ॥  
मातः कृपावति तरञ्जिणि रञ्जकारि ज्ञाङ्कारिणि<sup>६</sup> त्रिभुवनाधविदारणोग्रे ।  
श्रीरामचन्द्रचरणाब्जरतिप्रकाशसंवर्द्धिके सरयु संप्रतिपालयास्मान् ॥ १७ ॥

१. °कात्तनुनिर्विं—अयो०, मथु०, बड़ो० । “अतिसुन्दरं” टि०—मथु०,  
बड़ो० । २. एवान्ति—अयो०, रीवाँ । ३. अमुष्मात्—अयो०, रीवाँ । ४. °स्पदत्वात्—  
मथु०, बड़ो० । ५. नमामि—मथु०, बड़ो० । ६. ज्ञाङ्कारिणि—अयो० रीवाँ ।

व्रजिनहरणदक्षा      रामभक्तिप्रकाशा  
 कमलभवनिषेव्या      वैष्णवत्वप्रदात्री ।  
 तुलसिवनविशेषा      मोदितीरान्तदेशा  
 प्रभवतु      सरयूनः      सर्वकल्याणकर्त्री ॥१८॥

हे मातः सरयु त्रिलोकजननि क्षेमैकवारांनिधे  
 धाराभूषितभूतलेऽमलसुधाकासारिणि श्रीपतेः ।  
 मज्जन्मानुषमुक्तिदे त्रिजगतीसौभाग्यसंपत्प्रदे  
 सन्नीरे सरयु प्रसीद भवती गम्भीरधीरद्रब्दे ॥१९॥  
 इत्यष्टकं यः प्रपठेत् सरयवाः प्रभातकालेऽवभूथप्रसङ्गे ।  
 सपापराशीन् समतीत्य सर्वान् कैवल्यनिर्वाणपदं प्रयाति ॥२०॥  
 इत्यभिष्टूय सरयूं राजपुत्राः शुभाशयाः ।  
 निमज्य सलिले तस्याः नित्यं च समवर्तयन् ॥२१॥  
 अन्यतस्तत्तटे देशे अपश्यन् रत्नपर्वतम् ।  
 अनेकरत्नकिरणमज्जरीमज्जुलाकृतिम्<sup>१</sup> ॥२२॥  
 अनेकसरसीवर्यसंफुल्लनवपञ्चजम् ।  
 सौगन्धिकरजोवृन्दपटलाच्छादिताम्बरम् ॥२३॥  
 हंसकारणडवाकीर्णसुनिर्झरनदीशतम् ।  
 कादम्बबकुलाक्रान्तरत्नवापोसहस्रकम् ॥२४॥  
 सरोजलान्तःसंभिन्नरत्नाङ्कुरमयूखकम् ।  
 गन्धर्वललनागीतसमुन्नादितदिवतटम् ॥२५॥  
 तं वोक्ष्य रामक्रीडाद्विं कोटिरत्नप्रभामयम् ।  
 मेनिरे ते गवेन्द्रस्य राजधानीं महाश्रियम् ॥२६॥  
 कथं न लक्ष्मीः कृपयेदिहैव यत्रास्ति रामस्य विहारभूमिः ।  
 विशालगोपीकमलासहस्रपादाब्जमज्जीररवानुघुष्टम् ॥२७॥  
 अस्मिन् गवेन्द्रः सुखिताभिधानः करोति राज्यं खलु घोषराजः ।  
 अयं स देशो रघुपुञ्जवस्य प्राणप्रियः सौरभमाधुरीचयः ॥२८॥  
 इति व्रुवाणास्ते क्षिप्रं प्रमोदवनमाययुः ।  
 फुल्लाशोकलताकुञ्जविस्फुरन्माधुरीमयम् ॥२९॥

१. °मंजलीमंजलीकृतम्—रीवाँ ।

इतस्ततः कदम्बौघप्रसूनसुरभीकृतम् ।  
 प्रमत्तवर्हिणारावमुखरीकृतदिक्तटम् ॥३०॥  
 स्नेहप्रमत्तगोपालबालिका<sup>१</sup>केलिवर्द्धनम् ।  
 अत्यर्थविरहावेशसाक्षात्कृतनिजप्रियैः ॥३१॥  
 श्रीरामस्य कलत्रैस्तैः सेवितं कान्तमन्दिरम् ।  
 तुलसीपवनामोदैः पावयन्तं दिशो दश ॥३२॥  
 भक्ति रससुरेन्द्रादिसेव्यमानरजोभरम् ।  
 अलौकिकामोदमाद्यन्मधुपारावपूरितम् ॥३३॥  
 श्रीराममुरलीनादविह्वलीकृतवर्हिणम् ।  
 संगीतकर्णपीयूषरोचमानजनश्रुतिः ॥३४॥  
 प्रमोदकानने गत्वा सुखितस्य गृहं प्रति ।  
 जगमुर्नृपकुमारास्ते विशालध्वजलक्षितम् ॥३५॥  
 तत्र गत्वा रथेऽभ्यस्ते व्यवतेरुः समन्ततः ।  
 ददृशुः सुखितं गोपं श्रीरामस्मृतितत्परम् ॥३६॥  
 तेभ्यः प्रणतमौलिभ्यो गोपः कृत्वा शुभाशिष्ठः ।  
 परिरेखे रामधिया रामचन्द्रस्य मित्रकान् ॥३७॥

### सुखित उवाच

सुखं राघवर्वर्यस्य रामस्य प्राणदस्यैनः ।  
 कच्चित् कुशलिनो बालाश्चत्वारः सौख्यदा मम ॥३८॥  
 तेष्वेव लोकसारेषु बालकेषु मनो मम ।  
 शून्य एव दिशाः सर्वाः पश्यतो व्रजमण्डले ॥३९॥  
 लोकोत्तराः सुजनिमान इमे कुमाराः  
 श्रीराचन्द्रतनयप्रमुखाः सरूपाः ।  
 अप्यात्मनो नयनवृत्तिहरा जयन्तु  
 नित्यं यथा प्रमुदसेव परां लभामः ॥४०॥

### माङ्गल्यकोवाच

अहो राजकुमाराणां युष्माकं मुखचन्द्रता<sup>३</sup> ।  
 पीत्वा कुशलपीयूषं रामस्यानन्दिता वयम् ॥४१॥

१. °लतिका—रीवाँ । २. प्रणयस्य—रीवाँ । ३. रथचन्द्रतः—रीवाँ ।

अहो भाग्यमहो भाग्यं या पश्यति मुखाम्बुजम् ।  
रामस्य लोकरामस्य कामदस्य जगत्त्रये ॥४२॥  
साकेतपत्तननृणां खलु भाग्यवल्ली  
साफल्यमेति रघुनाथमुखेन्दुं दृष्ट्वा ।  
वैकुण्ठमेव सुखमेतदथो समग्रम्  
अत्रैव पूर्णपुरुषोऽस्ति दयार्द्धवृत्त्या<sup>१</sup> ॥४३॥  
अधुनापि तथैवाहो तान्येव दिवसानि नः ।  
वियोगेऽपि परावेशाद्राममेव प्रपश्यताम् ॥४४॥  
कदा खलु व्रजे राम आगमिष्यति नो गृहान् ।  
इतिवार्तोदयेनैव विरहो व्रजवासिनाम् ॥४५॥

### राजपुत्रा ऊङ्गुः

कुशली रामभद्रोऽस्ति कूजन् कुशलवारिधिः ।  
प्रीणयन् शयने पित्रोर्जनतानन्दवर्धनः ॥४६॥  
मातर्जननि माङ्गल्ये श्रीरामपरिपोषिके ।  
पारे भाग्यसमुद्रस्य प्राप्तासि किमु वर्णताम् ॥४७॥  
प्राप्तो राजश्रियं रामो न विस्मरति नित्यशः ।  
मातस्तव करनीतं नवनीतस्य पारणम् ॥४८॥  
व्रजदुर्गधदधिक्षीरनवनीतादिभोजनम् ।  
नित्यप्रियं राघवस्य पुण्णाति भवतां भगम् ॥४९॥  
अहो घोषस्य वो लक्ष्मीः पारे वाड्मनसः स्थिता ।  
वशीचकार या रामं निःश्रेयसरसेश्वरम् ॥५०॥  
इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे व्रजे दूतप्रेषणो  
नाम षट्‌षितमोऽध्यायः ॥६६॥

१. पुरुषो दयार्द्धवृत्त्या—मथु०, बछो० ।

## सप्तषष्ठितमोऽध्यायः

**ब्रह्मोवाच**

श्रीरामसुहृदस्तान् वै कुमारान् दीप्तवर्चसः ।  
 सुखितः प्रीणयामास दधिदुर्घौदनादिभिः ॥ १ ॥  
 माङ्गल्यकाकरानीतैः पवर्वैरन्नैः सुपेशलैः ।  
 आत्मानं रोचयामासुः सखायो राधवस्य ते ॥ २ ॥  
 वार्तालापैः शुभोदन्तैः प्रश्नैः श्रीरामसंगतैः ।  
 सुखितं नन्दयामासुर्घोषराजं महाशयम् ॥ ३ ॥  
 भोजयित्वा व्रजे हृद्यै रत्नैर्दधिघृतादिभिः ।  
 सारवं सलिलं पीत्वा स्थितान् ताम्बूलिकामदात् ॥ ४ ॥  
 सुखितः सर्वगोपानां सभायां सुसभाजितान् ।  
 सखीन् रामस्य तान् हृद्यानर्चयामास माल्यकैः ॥ ५ ॥  
 सुगन्धैस्तोषयामास रञ्जयामास सुस्वरैः ।  
 भूषयामास वै सूक्ष्मवासोऽलङ्कारमौक्तिकैः ॥ ६ ॥  
 दिव्ये महार्हशयने सुखेन सुषुपुश्च ते ।  
 वीजयामास माङ्गल्या रामबुद्धैव तत्सखीन् ॥ ७ ॥

ततश्च तेऽन्येद्युरशोककुञ्जं विलोकितुं कामयानाः<sup>१</sup> कुमाराः ।  
 ययुः शनैः सारवतोयविन्दुप्रवर्षिमन्दानिलवीजिताङ्गाः ॥ ८ ॥  
 ते रामभद्रस्य पदानि तत्र तत्र स्थले प्रियमाणाः स्वचित्ते ।  
 आनन्दशोभासहितान्यपश्यन् लीलाविशेषप्रकराङ्कितानि ॥ ९ ॥  
 रघूत्तमो येषु येष्वादरेण व्रजाङ्गनानां स्मरचित्तचौरः ।  
 चकार चमत्कार करान् विहारानपारसौहर्षसुधारसार्द्रम् ॥ १० ॥  
 येषु क्षणं तस्थुषां मानवानां गङ्गासहस्राधिकतीर्थपुण्यम् ।  
 स्नानाद्वानात्पिण्डनिवापितः स्यान्निर्णीतं यद्विबुधानां मुखेभ्यः ॥ ११ ॥

---

१. रामयानाः—अयो० ।

सरथ्वाः पुलिनद्वन्द्वे प्रमोदवनमुत्तमम् ।  
 तत्र श्यामवनं नाम रामस्य सुखवर्धनम् ॥१२॥  
 अधित्यकायां रत्नाद्रेः सरथ्वाः पुलिने तथा ।  
 अशोकवनमाधुर्य किञ्चिदुक्तं न शक्यते ॥१३॥  
 तत्र रामः स्वयं साक्षादाभीरोजनवल्लभः ।  
 क्रीडशास्ते परब्रह्म लोलामानुषतां गतः ॥१४॥  
 तत्राशोकलताकुञ्जे यथुस्ते राममित्रकाः ।  
 व्रजवासिजनोद्दिष्टमार्गेणादृतपूर्वकाः ॥१५॥  
 तत्र कुञ्जालये दिव्ये पारिजाततरोस्तटे ।  
 अपश्यन् सहजारामचरणाम्भोजयुग्मकम् ॥१६॥  
 भक्त्या प्रणम्य सहजारमणाङ्गिपद्मं<sup>१</sup>  
     पूताशया<sup>२</sup>स्तुलसिकादलसौरभेण ।  
 ते पारिजाततरमूलमवाप्य दृष्ट्वा  
     प्रापञ्चिकीं विषयगमतितेरुराशाम् ॥१७॥  
 तत्रैव ता राघवेन्द्रोः परिचर्यः शुभाननाः ।  
 आभीरकन्यका एत्य परिवन्नुः कुमारकान् ॥१८॥  
 ते रामस्य नर्मसखास्तासां रामे मनोरतिम् ।  
 दृष्ट्वा चात्मानमत्यर्थं निनिन्दुभर्विकोविदाः ॥१९॥  
 सौकुमार्यं च लावण्यं रूपं लावण्यमेव च ।  
 तासां दृष्ट्वा कुमारास्ते मेनिरे रहितं जगत् ॥२०॥  
 श्रुतवन्तो यथा पूर्वं गुणान् गुणनिवेदितान् ।  
 सहस्रगुणितास्तस्मादपश्यन् रामपार्श्वगाः ॥२१॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे व्रजदूत-  
     प्रेषणो नाम<sup>३</sup> सप्तष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

---

१. पदद्वयं—अयो० । २. पूताशया—अयो०, रीवाँ० । ३. °प्रेषणे—अयो०,  
 मथु०, रीवाँ० ।

## अष्टष्ठितमोऽध्यायः

**ब्रह्मोवाच**

सुन्दरं नाम राजन्यकुमारं रामसुन्दरम् ।  
 वीक्ष्य तास्तुष्टुवुः सर्वा गोप्यो विरहविह्वलाः ॥ १ ॥  
 तस्यालापपटोः साक्षाद्वामभक्तस्य वर्जणा ।  
 स्तिरधश्यामावदातेन गोप्यो रामं सुसस्मृः ॥ २ ॥  
 तं संदेशहरं ज्ञात्वा रामरामाः शुचिस्मिताः<sup>१</sup> ।  
 रामं विषयमालक्ष्य प्रोचुर्वचनमादरात् ॥ ३ ॥

**गोप्य ऊचुः**

कुवलयवनबन्धो निर्गतं संमतं ते  
 कृतवधमबलानां चोचितं तारकेश ।  
 प्रतिदिनविकलङ्घं प्रीतये संप्रविश्या<sup>२</sup>-  
 च्चरमदिशि ततायां<sup>३</sup> दुष्टतां नाभ्युपैषि ॥ ४ ॥  
 अनुलवमसहत्वं मार्दवं नः शरीरे  
 तद्बुभ्यमपि<sup>४</sup> युष्मन्मानसे राम नास्ति ।  
 प्रणतिरपि विहन्त्री प्रीतिसंप्राणनस्य  
 प्रियमुखपरिदर्शोऽप्यस्ति नो तद्विशेषः ॥ ५ ॥  
 निगम इति वचस्ते श्रव्यमाचस्य कान्त  
 श्रवणकसुपुटाभ्यां तथ्यपथ्यं सुधाक्तम् ।  
 तदपि यदि विषं स्यात् साधुवादस्य देशे  
 किमु पतितमरिष्टं नैव तिष्ठेत्वया तत्<sup>५</sup> ॥ ६ ॥

१. सुविस्मिताः—रीवाँ । २. विस्यसंसत्—रीवाँ । “विश्वसेत्, अस्माकं विश्वासो नास्ति तर्हि प्राचीदिक् कथं विश्वासं करिष्यति” टि०—मथु० । ३. नतायां—बड়ো০ । ४. “उभयं मार्दवमसहत्वं च तव न वयं तु मृदुस्वभावा तव-प्रयाणमसहमाना” टि०—मथु० । ५. “यः स्नेहेन जीवति तस्य तु नमस्कारप्रिय-मुखाबलोकनेऽपि न प्रयोजनसाधकेऽतो नास्ति कश्चन विशेषः इत्येवाह—वेदप्रमाणकं तव वचनं अतः श्राव्यं तदपि विषमिव, भवति तदा तु साधुवादैऽरिष्टं पतितं स्यात् त्वयि तत्र संभवति । तव स्मृत्यादेस्तन्नाशकत्वादिति” टि०—मथु० ।

स्मृतिपरिचरणाभ्यां ध्यानसंकीर्तनाभ्यां  
 श्रवणनिगमनाभ्यां भक्तिसंसेवनाभ्याम् ।  
 परिणमसि बहूनां क्षिप्रमेव प्रस्तु  
 क्षिपसि च दुरदृष्टं कालरूपं च विघ्नम् ॥ ७ ॥  
 वयमिह कुमुदिन्यस्त्वं कलानां निधिरुचेद्  
 वमसि कथमकस्मात् कालहालाहलौघम् ।  
 त्रिभुवनजनताया मंक्षु' संजीविनो सा  
 क्व नु खलु निहताङ्ग स्वात्मनः क्वापि वृत्तिः ॥ ८ ॥  
 अथ यदि दुरदृष्टं जायते नोऽन्तरायो  
 वरद किमु न नाश्यं तत्त्वयाधोक्षजेन ।  
 अघतते पशुपक्षिप्राणिनस्तांस्तिरश्चो  
 विरचयसि विमुक्तिप्राज्यभाजः प्रभुस्त्वम् ॥ ९ ॥  
 रघुकुलजलधीशः पूर्ण एवासि नित्यं  
 प्रकटयसि किमस्मास्वङ्ग वैकल्यमेवम् ।  
 स्थिरचरजनतायाः प्राणिनः साधु भूत्वा-  
 प्यवकिरसि तमित्यं मोहमूर्छादिमिश्रम् ॥ १० ॥  
 कुहकमिदमपूर्वं राघवेन्द्र त्वयोत्थं  
 स्थगयति सकलं ते सान्तरं साधुवादम् ।  
 सरसमधुपरागोत्सौरभं केतकाङ्गे  
 परित इव विलग्नः कण्टकौषः कठोरः ॥ ११ ॥  
 त्वयि किमु वचनीयं<sup>३</sup> लोचनानन्दहेतौ  
 दिशि ननु चरमायाभस्ति नोऽमर्षं एव ।  
 अमुमनुपमकीर्ति स्वान्तराले दधाति,  
 द्रुतमखिलजनानां भूय आच्छिद्य दृग्भ्यः ॥ १२ ॥  
 तव चरणसरोजैकाश्रयान् नित्यमस्मान्  
 लपयसि विरहाग्निज्वालनैः किं हिमांशोः ।

१. °तायामक्षिसं°—रीवाँ, °मक्षसं°—अयो०। “मंक्षु ईषत्” दि०—मथु०।

२. अपतन°—अयो०, रीवाँ, अवतत—बडो०। ३. “वचनीयम्—उपालम्भम्” दि०—मथु०।

प्रकृतिरपि तवासौ कच्चिदन्तर्द्धमागात्  
 कलयसि किमु कच्चित् कौतुकीवृत्तिमुग्राम् ॥१३॥  
 तुहिनकर तवोग्रा विश्लिषिः किंनु वाच्या  
 वद दहनसदृक्षा<sup>१</sup> स्माकमक्षद्रुमाणाम् ।  
 किरति यदि भवानेवामृतं रूपसारं  
 परिगिलति तदा सा प्लोषिका शोषिका वा<sup>२</sup> ॥१४॥  
 यदि तव करुणाद्रा चित्तवृत्तिः सखेऽस्ति  
 द्रुतमवयवदाहं तत् सुनिर्वाप्य त्वम् ।  
 अथ यदि सुतरा चेन्निर्दयोऽपि प्रकाशं  
 किमु भवसि प्रच्छण्डोऽस्मासु यद्वत्कृतान्तः ॥१५॥  
 सुत इह सुखितस्य त्वं च माङ्गल्यकाया  
 दशरथमुपगं<sup>३</sup> चेद्यासि कौशल्यकां च ।  
 अनुभवसि पृथिव्यां भूरिसाम्राज्यसौख्यं  
 पशुरपि न सहेत् कः स्वप्रियस्य प्रभावम् ॥१६॥  
 त्रिभुवनमनुभावैः प्रीणयन् भासि शशवद्  
 विहर न कथमस्मानेव दुःखाकरोषि ।  
 यदसि शिशिरशोचिस्तत्कुले वासि<sup>४</sup> जातः  
 प्रभुद्वनविधोस्ते किं न<sup>५</sup> नित्यः स्वभावः ॥१७॥  
 इह मुदयति नोपालम्भनं त्वय्यनन्ते  
 प्रभवति जगदीशो किंतु विज्ञापनं नः ।  
 तदखिलमवधार्यागम्यतां रामचन्द्र  
 वनभुवमुरुदुःखद्रावितां सानुकम्प ॥१८॥  
 इत्युदीर्यं वचो गोप्यस्तूष्णीमासन् विलोचनैः ।  
 उदम्बुभिज्ञपियन्त्यो वियोगस्योद्भवं हृदि ॥१९॥  
 तासां विरहसंतापशान्त्यर्थं राजपुत्रकाः ।  
 सखायो रामचन्द्रस्य प्रोचुस्तत्वार्थवित्तराः ॥२०॥

१. किंतु—मथु०, बडो० । २. <sup>०</sup>सुवृक्षा—अयो० । ३. प्लोषिका  
 सारसारम्—रीवाँ । ४. नृपराजं—अयो०, रीवाँ । ५. खरोस्त्रोऽसि—अयो०,  
 मथु०, बडो० । ६. विधो किं ते न—रीवाँ ।

भवतीमहिमानं वै अवाङ्मनसगोचरम् ।  
 भवन्त एव जानन्ति यूयं कान्ताप्रियद्वच सः ॥२१॥  
 साक्षात्पद्मालया यूयं रामो नारायणः स्वयम् ।  
 प्रभुणा कोऽपि संदेश उदितो वो व्रजाङ्गनाः ॥२२॥  
 तच्छृण्वन्तु भवन्त्यो वै पीयूषशिशिराक्षरम् ।  
 मा वेद धर्मरक्षार्थमवतीर्ण स्वलोकतः ॥२३॥  
 प्रभोदाख्याद्विजानीत तत्करिष्यामि वै द्रुतम् ।  
 हनिष्याम्यसुरस्तोमं स्थित्वा राज्यपदस्थितौ ॥२४॥  
 ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रान् वैष्णवान् स्वस्वभावतः ।  
 समुद्धरिष्ये सहसा कार्यमेतन्ममैव हि ॥२५॥  
 ततोऽहमागमिष्यामि व्रजभूमि मनोहराम् ।  
 भवतीनां हरिष्यामि वियोगजनितां रुजम् ॥२६॥  
 तावन्मदंशसंलीना यूयं स्थास्यथ गोपिकाः ।  
 इत्युवाच व्रजेशो वः कान्ताविश्लेषविह्वलः<sup>१</sup> ॥२७॥  
 तद्यापयत तद्वचानात् कानिचिद्विवसान्यलम् ।  
 ध्यानेनापि प्रभुर्हृषे साक्षाद्दूवति सेविनाम् ॥  
 परमात्मा व्यापकात्मा प्रत्यग्ज्योतिः सनातनः ॥२८॥  
 इति श्रीमद्विरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे चन्द्रिकास्तवो  
 नाम<sup>३</sup> अष्टषष्ठितमोऽध्यायः ॥६८॥



## एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इति सान्त्वनवाचाभिः सुन्दर्यः कृतसान्त्वनाः ।  
 न यथुर्विरहस्यान्तं तरण्य इव वारिधेः ॥ १ ॥  
 प्रवदन्त्यो दृग्गङ्गूणि कथं कथमपि स्त्रियः ।  
 संस्तभ्य धर्यलज्जाभ्यां प्रोचुः सप्रणयं वचः ॥ २ ॥

१. °क्षितौ—अयो०, रीवाँ । २. कान्ता विश्लेषविह्वलः—मथु०, बडो० ।  
 °चिह्नितः—अयो० । ३. चन्द्रिकास्तवे—अयो०, रीवाँ, मथु०, बडो० ।

गोप्य ऊचुः

सिता संभक्षिता येन लोलुपेन सुजन्मना ।  
 तं सितानां कथामात्रात् कस्तर्पयितुमहर्हति ॥ ३ ॥  
 अमृतं येन निःपीतं भुक्त्वा देवत्वमात्मनः ।  
 तस्यामृतकथामात्रात् कः खल्वर्हति तर्पणम् ॥ ४ ॥  
 तादृशो दयितोऽस्माभिर्भुक्तः कन्दर्पकेलिषु ।  
 तस्य विश्लेषयोगोऽद्य किं भविष्यति जीवनम् ॥ ५ ॥  
 ब्रह्मानन्दरसोऽस्माकं हरते नैव मानसम् ।  
 प्रेमानन्दरसाभ्योधौ मरनानां प्रियसन्धिधौ ॥ ६ ॥  
 पूर्णो रामः स्वयं ब्रह्म परमात्मा सनातनः ।  
 जानीमहे ध्रुवं किंतु निर्वृतिं नैति नो मनः ॥ ७ ॥  
 प्रमोदवनकुञ्जान्तर्माधुरीमण्डपस्थितः ।  
 आनन्दयति चेद्रामो मनो निर्वृतिमेष्यति ॥ ८ ॥  
 एवं नो मोहयित्वासौ यातः साकेतपत्तने ।  
 कथं करिष्यते राज्यमन्यायार्थसमाकुलः ॥ ९ ॥  
 अयमेव मतोऽन्यायस्त्यक्त्वा यदबला हि नः ।  
 सुखं शेते पितुर्गेहे नैतद् युक्तं महात्मनः ॥ १० ॥  
 अशेषनीतिविषयः साम्राज्यपदभाजने ।  
 रामः सर्वगुणारामः कथमेवं करिष्यति ॥ ११ ॥  
 इत्युपालभ्य बहुशो रामं गोषालबालिकाः ।  
 तेषामातिथ्यमाचेरुर्थथासंपन्नभोजनैः ॥ १२ ॥  
 गोपदारैः कृतातिथ्याः श्रीरामप्रेमभाजनैः ।  
 राजपुत्रास्तत्क्षणेन तादृग्भावमुपाययुः ॥ १३ ॥  
 तासां चरणधूलीभिः शिरांसि लिलियुश्च ते ।  
 उद्घनुनयना भूत्वा रवज्जस्ते कुमारकाः ॥ १४ ॥  
 अहो धन्या अमी देवयः संन्यासव्रतधारिकाः ।  
 सर्वं न्यस्य चिदानन्दे रामचन्द्रे कृताशयाः ॥ १५ ॥

अहो आसां शुभं जन्म कालपाशविनिर्गतम् ।  
 अजरामरसाम्राज्ये स्नेहनिर्जितराघवम् ॥१६॥  
 राघवः श्रीहरिः साक्षाद्वामदेवः सनातनः ।  
 तस्य प्रियतमा एतास्तेन प्रतिनिधीकृताः ॥१७॥  
 मुक्तिसाम्राज्यश्रीदाता सत्पथां प्रभुरात्मना ।  
 तथैवैताः स्वयं गोप्यो मुक्तिसाम्राज्यदायिकाः ॥१८॥  
 भक्तानां भक्तिवर्धन्यः स्वर्धुनोसलिलैः समैः ।  
 यशोभिर्भूषिता गोप्यः कथं सामान्यतामियुः ॥१९॥  
 इत्येवं ता अभिष्टूय कृत्वा भूयोऽभिवादनम् ।  
 चरणाम्बुरजोमूर्धन् धृत्वा तेजोभरोजिताः ॥२०॥  
 रामस्नेहप्रमत्तान्तःकरणा<sup>१</sup> मुक्तबन्धनाः ।  
 गोपीदासा वैष्णवाग्रा<sup>२</sup> ज्ञाततत्त्वाः सुपेशलाः ॥२१॥  
 गोपीगोरूपदेशोभ्यो वर्णिष्णुः प्रेमसंपदः ।  
 आययू रामसविधे कृतार्थास्ते कुमारकाः ॥२२॥  
 तान् दृष्ट्वा रघुशार्दूलपादानतशिरोधरान् ।  
 स्वागतोक्त्याग्रहीद्रामः करुणापूर्णलोचनः ॥२३॥  
 निनायैकान्तविषये प्रियाणां हरिणीदृशाम् ।  
 पर्यपृच्छत्ततोऽवस्थां सदा तद्वावसानसः ॥२४॥

### श्रीभगवानुवाच

कच्चित् सुखं व्रजभुवि कच्चिच्छ्रीसुखितः सुखी ।  
 कच्चिच्चन्माता च माङ्गल्या धन्यास्ते सुखसंपदा ॥२५॥  
 कच्चिच्चन्दनराजिन्योः सहजायाश्च संततम् ।  
 कच्चिच्चन्मे धेनवो नव्या साक्षात्कामदुघाश्च ताः ॥२६॥  
 तृणोदकादिसौख्येन निर्वृताः सुखमासते ।  
 कच्चित् सा सरयू शान्ता वनं कच्चिच्चन्निरामयम् ॥२७॥  
 कच्चित् कुशलिनो गोप्यो गावश्च सुखमासते ।  
 आभीरकन्यका महां त्यक्तलौकिकवैदिकाः ॥२८॥

१. °करुणा—अयो०, रीव० । २. वैष्णवाः प्राक्—अयो०, रीव० ।

कुमारा<sup>१</sup> ऊचुः

सुखमास्ते व्रजभुवो यद्राजासुखितः सुखो ।  
 माङ्गल्या सुखिनी धन्या कोटिशो गोधनेश्वरी ॥२९॥  
 यस्या त्वमेव तनयस्त्रैलोक्यप्रीतिवर्द्धनः ।  
 सुखं नन्दनराजिन्योः सहजायाश्च नित्यशः ॥३०॥  
 यासां त्वमेव सर्वस्वं पूर्णब्रह्म स्वरूपतः ।  
 सुखिनो लोकाः कामदुधाः शान्तोदा सरथू शुभा ॥३१॥  
 निरामयं वनं सर्वं गोपाः कुशलिनस्तव ।  
 आभीरकन्यकावृत्तं राम भा पृच्छ केवलम् ॥३२॥  
 अथ पृच्छसि चेद् वृत्तं तत्प्रतीकारमाचर ।  
 अत्यर्थं दर्शनीयं चेद् वृणुयात् को नु मानुषः ॥३३॥  
 तां तामवस्थाविषये सर्वं जानासि राघव ।  
 पटान्तरेऽपि विश्लेषं सोहुं याभिर्न शक्यते ॥३४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे व्रजाद्राजपुत्रागमो  
 नाम<sup>२</sup> एकोनसप्ततितमोध्यायः ॥ ६९ ॥



## सप्ततितमोऽध्यायः

राजकुमारका ऊचुः

धन्यो व्रजस्य महिमा सुखितेन्द्रघोष-  
 लक्ष्मीविलासभवनस्य विशेषदृष्टः ।  
 यत्र स्वयं विहरसि त्वमनन्तवीर्योः  
 गोपाङ्गना<sup>३</sup>भिरभितो रसलोलुपाभिः ॥ १ ॥  
 श्रीराम तावकमतीव वलक्ष्मीषत्-  
 सानन्दहासवदनाः<sup>४</sup> सुयशो गृणन्ति ।

१. कुमारका—मथु०, बडो० । २. °पुत्रागमे—अयो०, रीवाँ, मथु०, बडो० ।  
 ३. गोपालनाभि—मथु०, बडो० । ४. वलस्यलक्ष्यः यत्सानुरागवदन्त—अयो०,  
 रीवाँ । “वलक्षो धवलोऽर्जुनः” टिं०—मथु० ।

गोप्यः स्फुरत्पुलकराजिकपोलपालि  
संप्रेक्ष्य पाण्डममनोजविकारभाजः ॥ २ ॥

किं वर्णयाम तव राम रसप्रसक्ति-  
भाभीरराजतनयाविषये विशिष्टाम् ।

यस्यास्तु कोटिकमलासुविलासभावाः  
अंशांशिभावमुपयान्ति सुखप्रकर्षत् ॥ ३ ॥

धन्यैव ते रसिकता पुरुषोत्तमस्य  
पूर्णस्य राम परमात्मन ईशितुश्च ।

इत्युहिधीर्षसि जडानपि मोहशीलान्  
गोगोपगोकुलवधूपशुपक्षिकीटान् ॥ ४ ॥

इच्छा स्वतन्त्रविषया भवतोऽच्युतस्य  
जीवोद्गृह्णतौ किमपि राम सपक्षपाता ।

यद्ब्राह्मणेषु निगमत्रयवित्सु दूरं  
लोलाथसे पशुसरीसृपैबालकेलिः ॥ ५ ॥

हैयज्ञवीनमपि ते प्रियसस्ति राम  
कित्वस्ति तत्रैव विषये सुमहानुपाधिः ।

यद्गोकुलवज्जवधूवदनारविन्द-  
बिम्बाधरामृतरसैः स्मरतापहानिः ॥ ६ ॥

शृङ्गारसीकररसावयवोऽसि रामो  
जानीमहे द्रवजवधूचरणप्रसादात् ।

ब्रह्मैव पूर्णमचलं परमंचिदेक-  
मानन्दमात्रमिदमेव चकास्ति तावत् ॥ ७ ॥

नान्यत्परं किमपि कोऽपि चकास्तिभाव-  
स्तत्त्वं च सद्विषयसेकमदोऽस्ति नान्यत् ।

यद्राम सुन्दर भवच्चरणारविन्द-  
द्वन्द्वै सदा परमहंसमनःप्रकाशम् ॥ ८ ॥

रामेतिराम भवतो दुरितौघहारि  
किवर्ण्यते सुलभहेतुकृते जनानाम् ।

१. पशुपसंसारिं—मथु०, बडो० । २. किं त्वत्रयत्तं—रीवाँ ।

धमार्थकामित<sup>१</sup> चतुर्थफलप्रदान-  
 लीलासमर्थितनिजांशसुर<sup>२</sup> व्रजस्य ॥ ९ ॥

एतत्त्वदोयमहिमाकलनं जनानां  
 स्वस्यैवमुद्भृतय एव रमेश नो चेत् ।

न त्वां विदन्ति विबुधा अपि वासवाद्या  
 ब्रह्मातपत्र<sup>३</sup> धरणादिभिरुद्धृताज्ञाः ॥ १० ॥

ज्ञातोऽसि राम परमः पुरुषोत्तमोऽसि  
 इत्यागमैरपि भवान् परमार्थवेद्यः ।

नैवासि चिन्मयघनाकृतिरप्रमेयः  
 पादारविन्दरजसस्तु विना प्रसादात् ॥ ११ ॥

जानीमहे तदधुना विषकल्पमेवं<sup>४</sup>  
 संसारमेनमधमात्रफलप्रसूतिम् ।

युज्मत्कृपैकविषयव्रजभक्तगोपी—  
 पादारविन्दरजसैव विधूतपापाः ॥ १२ ॥

याचामहे तदधुना प्रभुगामनुजां  
 स्वच्छेषु पुण्यसरयूविषयाश्रमेषु ।

नित्यं च राम भवतश्च जपाम नाम  
 स्वात्मावबोधगतिस्वात्मविमुक्तिहायि ॥ १३ ॥

धिक् संसृतिं विषयतुच्छसुखप्रधानां  
 त्वत्पादपद्मविमुखत्वगतिप्रदात्रोम् ।

तद् याम तामथ विहाय विषद्गुमाभां  
 रामेतिनामभजनैककुठारहस्ताः ॥ १४ ॥

इत्युक्त्वा राजपुत्रास्ते जगृहस्तपदद्वयम् ।

लसत्तुलसिकामोदं जङ्गारिमुनिषट्पदम् ॥ १५ ॥

## राम उवाच

किमर्थं संसृतिं घोरां तितिक्षथ कुमारकाः ।  
 यावत्तां कुण्ठितप्रायां कृत्वा स्थापयत प्रियाः ॥ १६ ॥

१. °कामिक—अयो०. रीवाँ । २. °सुरा०—मथु०, बड़ो० । ३. ब्रह्मातपत्र—  
 अयो०, रीवाँ । ४. जानेऽधुना विषयकल्पमिमं दुरुहं—अयो०, रीवाँ ।

## राजपुत्रा ऊचुः

कथं वा कुण्ठितप्रायः संसार उपजायते ।  
भुजङ्ग इव मन्त्रेण तन्नो वद रघूद्वह ॥१७॥

## श्रीराम उवाच

प्रवक्ष्याम्यत्र वो दिव्यमाख्यानं भरतस्य यत्<sup>१</sup> ।  
स वै अनुपगम्यैव कर्मन्दीभावमुद्घातः<sup>२</sup> ॥१८॥  
तमेवसृष्टिशार्दूलः शाण्डिल्यो नाम वै मुनिः ।  
तत्त्वार्थं बोधयामास प्रजानां हितकाम्यया ॥१९॥

## शाण्डिल्य उवाच

किमर्थं भरत श्रेष्ठां राजलक्ष्मीं जिहाससि ।  
पितृपैतामहीं तात तव तत्त्वाविरोधिनीम् ॥२०॥

## भरत उवाच

मदावहा रोज्यलक्ष्मीः कथं तत्त्वाविरोधिनी ।  
<sup>३</sup>एतन्ममाचक्षव मुने किंवा वज्चयसि ध्रुवम् ॥२१॥

## शाण्डिल्य उवाच

हृदयं पुण्डरीकं यत्तस्यान्तर्वेशम् तत्परम्<sup>३</sup> ।  
ब्रह्मणस्तु पदं दिव्यं शाश्वतं ध्रुवमच्युतम् ॥२२॥  
तद्भावयस्व राजेन्द्र धिया बोधविशुद्धया ।  
तस्मिन् साक्षात्कृते स्थाने मार्गणीयं ततः परम् ॥२३॥  
पूर्णं चिदानन्दधनं विशुद्धं समंततो<sup>४</sup> रामवनं पुराणम् ।  
साकेतकुन्दवनपारिजातप्रमोदसीतावननामधेयम्<sup>५</sup> ॥२४॥  
तत्र स्थितं वै पुरुषं पुराणं<sup>६</sup> श्रीरामरामेति<sup>७</sup> शुभाभिधानम्<sup>८</sup> ।  
अहनिंशं भावयतो जनस्य संसार एवामृतकल्प एषः ॥२५॥

१. वः—मथु०, बड़० २. सवै अनुवगम्यैव कर्मदोषं...दृथतः—रीवौ ।  
३—३. अयमंशो नास्ति—अयो०, रीवौ० । ४. च समंततः । इत्युक्त्वानुष्टुप्छन्द-  
सेयमद्वाली—बड़० । ५. “नामपञ्चकं रामवनं” टि०—मथु० । ६. स्थितं पुरुषं  
परम—मथु०, बड़० । ७. रामादि—अयो०, मथु०, बड़० । ८. ऋत्रिधानः—बड़० ।

महत्परब्रह्म<sup>१</sup> पयोदनीलं श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ।

इत्यात्मनः शरणापत्तिभावं विभावयन्<sup>२</sup> राज्यलक्ष्मीं च भुड़क्षव ॥२६॥

श्रीराजबाल<sup>३</sup> समलोकपाल<sup>४</sup> हैयज्ञवीनाद्यकरं रघूद्वहम् ।

अहर्निशं भरत विभावयान्तरे न संसृतिः किमपि करिष्यते तव ॥२७॥

भावनेऽप्यसमर्थश्चेन्नामजापपरो भव ।

रामेतिद्वयक्षरं नाम त्रिविधाघविदारकम् ॥२८॥

उद्दीपवह्निसंकाशं पापपुञ्जविदाहने ।

अहर्निशं रटन् मर्त्यः संसारार्बंध<sup>५</sup> तरिष्यति ॥२९॥

द्वादश्यां पौर्णमास्यां च अन्नकूटोत्सवे तथा ।

रामप्रसादं भुज्जानो भवार्बंध संतरिष्यति ॥३०॥

किं<sup>६</sup> करिष्यति यमस्तस्य सर्वभूतोग्रदण्डनः ।

संजीर्यति च यत् कुक्षौ प्रसादो रामसिकथकः ॥३१॥

रामसिकथान्नसिकयेन त्रायते पुरुषत्रयम् ।

तद्वेवा अपि वाञ्छन्ति रामभुक्तोदनादिकम् ॥३२॥

शुना काकेन वाप्यन्नं भक्षितं रामभक्षितम् ।

चतुर्भुजत्वं कुरुते सद्य एव न संशयः ॥३३॥

अन्नादि रामाय निवेद्य भूयो भजेदनन्यो भगवत्प्रसादम् ।

पुण्यस्य संख्यास्य न वर्तते यद् गङ्गानुसंस्पर्शनतोऽपि धन्यम् ॥३४॥

तुलसीभूषितगलो राममुद्राधरः कुथः ।

रामप्रसादं भुज्जानः कथं शोचति मानुषः ॥३५॥

न तस्य कार्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चिद् यो रामचन्द्रस्य विभर्ति मुद्राम् ।

मृत्योः परं मूर्धनं पदं निधाय विमोक्षसाग्राज्यमुपैति मर्त्यः ॥३६॥

एवं ज्ञात्वा पूर्वतर्सुनोन्द्रैःश्रितं गृहं धर्ममोक्षाविरोधि ।

त्याज्यं न कर्हिचिद्भूरतोग्रबुद्धे निषेवणीयं पद्मपत्राम्बुरोत्या ॥३७॥

१. महः परब्रह्म—मथु०, बडो० । २. विभावयस्व—अयो०, मथु०, बडो० ।

३. °रामबाल—अयो० । ४. शरणापत्रपाल—मथु०, बडो० । ...पाल—अयो० । ५.

संसार च—अयो०, रीवाँ । ६. किंवा—रीवाँ ।

इति शाणिडल्यवावयेन नृपः संप्राप्तचेतनः ।  
 बभूव सुप्रसन्नात्मा स्थिते राज्ये प्रमादिनि ॥३८॥  
 एवं वः कथयास्यद्वा ज्ञानं राजकुमारकाः ।  
 धर्ममोक्षाविरोधित्वाद् गृहं न त्यक्तुमर्हथ ॥३९॥  
 अथ चेद् गृहमुन्मुच्य वनं यास्यथ मित्रकाः ।  
 मनस्तु चञ्चलं भयो गृह एव निवेशयेत् ॥४०॥  
 मनश्चेन्निर्जितं तर्हि गृहं किं नु करिष्यति ।  
 गृह एव जितं तैस्तु यैः सत्येन मनो जितम् ॥४१॥  
 फुल्लेन्दीवरलोचनं सुललितं श्यामावदाताङ्गकम्  
 रामं मां हृदयारविन्दसदने संविष्टमाध्यायथ ।  
 तस्मिन्नेव निवेद्य सर्वविषयान् स्वात्मानमप्यज्जसा  
 संसाराब्धिमिमं तरिष्यथ तदा हेराजपुत्रा भृशम् ॥४२॥  
 इति रामनिदेशेन प्राप्तज्ञानाः कुमारकाः ।  
 तस्युः श्रीरामसविधे सुहृदो नर्मवित्तमाः ॥४३॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे राजकुमारकोपदेशो  
 नाम<sup>१</sup>सप्ततितमोऽध्यायः ॥४०॥

●

### एकसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

विहङ्गमसमानीतप्रियाचित्रावलोकनैः ।  
 कृच्छ्रुं राघवशार्दूलो दिवसानत्यवाहयत् ॥ १ ॥  
 रक्ताशोकलताकुञ्जदेवता सवयमीश्वरी ।  
 जानकी जनकाख्यस्य राजो गेहेऽप्यजीजनत् ॥ २ ॥

१. °कुमारकोपदेशे—अयो०, रीव०, मथु०, बडो० ।

सा मे कदा दृष्टिपर्थं प्रयास्यति प्रिया रमा कोटिमनोजविग्रहा ।  
व्रजस्त्रियोऽपि प्रियमङ्गमस्या आविश्य भोक्ष्यन्ति स्या रसाम्बुधिम् ॥ ३ ॥  
इमाः समाविश्य यथा रमा वरान् विशेषभोगान् बुझुजे पुरा बहून् ।  
अमुं समाविश्य तथा व्रजस्त्रियो भोक्ष्यन्ति भोगान् राज्यलक्ष्मीसमेतान् ॥४॥

इत्येवं वाच्छति श्रीशे सीतापरिणयोत्सवम् ।  
विधिरप्यनुकूलोऽभूद्विधेयः परमात्मनः ॥ ५ ॥  
अथैकदा गाधिपुत्रो विश्वामित्र इति श्रुतः ।  
ऋषिः साकेतनगरमगमत् सह शिष्यकैः ॥ ६ ॥  
तमागतमृषिं वीक्ष्य समुत्तस्यौ वरासनात् ।  
प्रणम्य चैव साष्टाङ्गं भानाहं विधिवन्तृपः ॥ ७ ॥  
आलिङ्गच चोपवेश्यामुमपृच्छत् कुशलं मुहुः ।  
कृताखिलशुभः प्रश्नः स ऋषिः कलितार्हणः ॥ ८ ॥  
पादोपसेवनाद्याभिः क्रियाभिः प्रीतमानसः ।  
उवाच राघवश्रेष्ठं वीरं बहुपराक्रमम् ॥ ९ ॥

### ऋषिरुच

चिराद् दृष्टोऽसि राजेन्द्र साकेतनगरीपते ।  
पुरा दृष्टस्त्वं सुराणां रणे साहाय्यमाचरन् ॥१०॥  
अहो तव बलावेशो मया वक्तुं न शक्यते ।  
एकादशसहस्राणि रक्षसां यदयोधयत् ॥११॥  
सहायमुपलभ्य त्वां रणे शक्रादयोऽमराः ।  
अजयन् राक्षसानोकं दुर्धर्षं च वरोर्जितम् ॥१२॥  
अहो दशसहस्राणि वर्षपूर्गानि तेऽगमन्<sup>१</sup> ।  
युध्यतो दानवैः साद्वं देवानां च जयार्थिभिः ॥१३॥  
अहो धनुज्यर्किणबन्ध एष प्रकोष्ठयोस्ते समलङ्घशोति ।  
वीरत्वहेम्नः कषणोपलाभं स्वरूपयोर्धर्षं इवातिशुद्धः ॥१४॥

१. निर्गमन्—अयो० ।

अहो त्वदीयं विमलं कुलं यत् केतुस्तपत्येष दिवामणिः स्वयम् ।  
 स्वरूपतस्त्वं बलदक्ष एव श्रीकान्तपादार्पितचित्तवृत्तिः ॥१५॥

अगाधपुण्यपात्राणामग्रणीस्त्वं जगत्पते ।  
 इन्द्रोऽपि भवतः साम्यं प्राप्तं नैवाशक्त् प्रभो ॥१६॥

अधुना तु विशेषेण भागधेयनिधिर्भवान् ।  
 संजातो यद्भवद्गेहे पूर्णोऽसौ पुरुषोत्तमः ॥१७॥

श्रीरामो राघवेन्द्रो वै रसिकेन्द्रशिरोमणिः ।  
 एष वै देवकार्याय प्रादुर्भवति नित्यशः ॥१८॥

बलकृष्णादिरूपेण जगत्कल्याणकारकः ।  
 इदानीं पूर्णरूपेण भवद्गेहेऽप्यवातरत् ॥१९॥

एष एव श्रिया<sup>१</sup> साकं शेते प्रमुदकानने ।  
 अस्यैवांशः स पुरुषो यः सहस्राननेक्षणः ॥२०॥

वासुदेवादयोऽप्येवं ब्रह्मादिसुरपूजिताः ।  
 चतुर्युगेषु कालेषु राम एवायमीरितः ॥२१॥

रमाया रमणः साक्षात्तेन रामेतिकीर्तितः ।  
 स ते तनयतां प्राप्तः पूर्णब्रह्म सनातनः ॥२२॥

यस्याहुरागमाः सर्वे सुपुण्यं विमलं यशः ।  
 एकान्तेन स्थितो ह्येष प्रमुद्धनविहारवान् ॥२३॥

प्रादुर्भवात् पूर्वमणि रामसत्ता सनातनी ।  
 प्रमोदविपिनस्यान्तरशोकलतिकावने ॥२४॥

यः पूज्यते सुरेन्द्राद्यैः स रामस्तनयस्तव ।  
 धर्मद्रुहां राक्षसानां संहारार्थमवातरत् ॥२५॥

यज्ञविध्वंसकर्त्तणि रक्षांसि प्रहरिष्यति ।  
 राजन् मर्माश्रमोद्देशो यज्ञः पूर्वप्रवर्तितः ॥२६॥

स राक्षसैः महाघोरैः प्रत्यूहृत<sup>२</sup> इतस्ततः ।  
 सदैवाशुचयो नग्ना मलिनाः कृमिभक्षिणः ॥२७॥

अदर्शनं समास्थाय यज्ञघाते भवन्ति वै ।  
 नैतेषु मन्त्रसामर्थ्यं वरदृमेषु वै भवेत् ॥२८॥

१. रामः प्रिया—रीवाँ । २. प्रत्युद्यूत—अयो० ।

दैवैः क्षुद्रप्रतिष्ठैस्ते वर्धिता धर्मनाशकाः ।  
 विनाशयोग्यास्ते रामलक्ष्मणाभ्यां शितैः शरैः ॥२९॥  
 एवं युगे युगे धर्मः पात्यमानः प्रवर्तते ।  
 अमुना रामेणैवायं नान्यथा गतिरस्य हि ॥३०॥  
 अस्मिन् सनातनो धर्मः स्वयमेव प्रतिष्ठितः ।  
 अतश्चराचरं विश्वं शुभाय प्रतिपद्यते ॥३१॥  
 तत्त्वं विज्ञापयास्यद्वा दातारं<sup>१</sup> सर्वरक्षकम् ।  
 रामं प्रदेहि मे राजन् धर्मरक्षकमच्युतम् ॥३२॥  
 नहि काकुस्थवंशोऽस्मिन् कश्चिदर्थीं पराहतः ।  
 इत्युक्तो गाधिपुत्रेण विश्वामित्रेण पार्थिवः ॥३३॥  
 ओमित्युक्त्वा भुनेः संगे अकरोद्रामलक्ष्मणौ ।  
 तौ बद्धदिव्यतूणीरौ त्रृष्णेरनुगतौ पथि ॥३४॥  
 रुचाते श्रिया सम्यक् भास्करज्वलनोपमौ ।  
 अधिज्यधनुरुन्मुक्तैस्त्रासयन्तौ शरैररीन् ॥३५॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे विश्वामित्र-  
 समागमो नाम<sup>२</sup> एकसमितमोऽध्यायः ॥७१॥

●

## द्विसप्तितमोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

पथि प्रगच्छतो रामसौमित्रेयकुमारयोः ।  
 अभवद्रोधको मध्ये बलिष्ठो गर्दभासुरः ॥ १ ॥  
 तमायान्तं हरिर्वीक्ष्य शरेणोरस्यताङ्गयत् ।  
 स चाविगणयित्वैव रामं पद्मचामताङ्गयत् ॥ २ ॥

१. °पयामासं धातारं—अयो० । २. °समागमे—अयो०, रीव०, मथु०, बड़० ।

वक्रेण चादशद्वक्षः स तं दोभ्यामिताडयत् ।  
 ताडितस्तस्य हस्तेन पपात स धरातले ॥ ३ ॥  
 पुनर्निश्वस्य वै पश्चात्पादाभ्यां समताडयत् ।  
 द्वूरे स्थित्वा ततो रामस्तं विव्याध शितैः शरैः ॥ ४ ॥  
 नेत्रयोश्च मुखे चैवं सोऽवमद्विधिरं ततः ।  
 अन्धीकृतस्ततस्तेन दुधाव स्वशिरो दृशः ॥ ५ ॥  
 गर्जयन् हरितः सर्वाश्चुक्रोध बहुशोऽपि सः ।  
 पुनर्गर्जन् पुनर्धावन् पुनः संताडयन् खरः ॥ ६ ॥  
 चकार संमृधं घोरं रामेण सह राक्षसः ।  
 ततो रामः स्वबीर्येण तं पश्चात्पादयोर्बलात् ॥ ७ ॥  
 गृहोत्वा शैलशृङ्गाग्रे ताडयामास राघवः ।  
 एकवारं द्विवारं च त्रिवारं च पुनः पुनः ॥ ८ ॥  
 यावत् स व्यसुतां याति कामरूपोऽपि राक्षसः ।  
 ततस्तत्परिवारोऽपि युयुधे हरिणा सह ॥ ९ ॥  
 स ताभ्यां रघुपुत्राभ्यां क्षयं नीतो बलोद्धतः ।  
 मुमचुश्च तयोर्मूर्धिन् पुष्पवृष्टि दिवौकसः ॥ १० ॥  
 शेषास्तत्परिवारस्था राक्षसा सिन्धुमध्यगाम् ।  
 लङ्घापुरीं ययुः सर्वे शरणं राक्षसेश्वरम् ॥ ११ ॥  
 अग्रे पथि ततः काचित्ताडका नाम राक्षसी ।  
 मध्येऽग्रहीद्रामचन्द्रं विश्वामित्रानुयायिनम् ॥ १२ ॥  
 प्रभुस्तस्याः सुतौ पूर्वं हृतवानिति सा जवात् ।  
 क्रोधेन राक्षसी तत्राभ्यगद्रामजिधांसया ॥ १३ ॥  
 कपालहारिणी घोरा शवान्त्रस्तोममालिनो ।  
 कपालकुण्डलधरा क्षुत्क्षामा निम्नतोदरी ॥ १४ ॥  
 व्याघ्रचर्मपरीधाना दंष्ट्रादन्तुरिताम्बरा<sup>१</sup> ।  
 भीषयामास सा रामं कालस्यापि च भीषणम् ॥ १५ ॥  
 निश्वसन्तो विषश्वासैः प्लोषयामास पादपान् ।

१. दंष्ट्रान्तग्रसिताम्बरा—रीवाँ ।

क्षणेन तद्वनतृणं प्राज्वलद्विषमारुतैः ॥१६॥  
 रामो विव्याध मार्गेण<sup>१</sup> ताडकामथ वक्षसि ।  
 साभ्येत्य दृढमुष्टचैनं गाढं वक्षस्यताडयत् ॥१७॥  
 रामस्य निशितैर्वाणैस्ताडकायाश्च मुष्टिभिः ।  
 अभूद्धोरतरं युद्धं देवविस्मयकारकम् ॥१८॥  
 ततो राघवशार्दूलो वाणं धनुषि संदधे ।  
 तस्याः प्राणहरं धोरं उक्षितं विषपाथसा ॥१९॥  
 सा ताडिता तेन शरेण ताडका विषोल्वणेनासुहरेण तेजसा ।  
 पपात भूमौ सहसात्मकुल्यैः साकं विहीर्णास्यभयानकाकृतिः ॥२०॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे खरताडका-  
 प्राणहरणो नाम द्विसप्तिमोध्यायः ॥७२॥



## त्रिसप्तितमोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

गाधेयः स्वगृहं नीत्वा रामं त्रैलोक्यपावनम् ।  
 यज्ञं प्रवर्तयामास तस्य भूतिहरेशितुः ॥ १ ॥  
 अग्निष्ठोमं मखवरमत्यग्निष्ठोममेव च ।  
 उक्थ्यं षोडशिनं चैव वाजपेयं तथैव च ॥ २ ॥  
 अतिरात्रमासोर्यामं संस्थाभिः सप्ततन्तुकम् ।  
 प्रातःसवन एवाथ राक्षसाः पुण्यकृन्तनाः ॥ ३ ॥  
 आययुर्गाधिसूनोस्तं मखं मखविनाशकाः ।  
 तान् रामो विशिखैस्तीक्ष्णैरग्रहीदरिवारणः ॥ ४ ॥  
 मारोचाद्या महाघोराः सुबाहुप्रमुखाश्च ते ।  
 ताडकावधसामर्षा निषेतु राघवं प्रति ॥ ५ ॥

१. “मार्गेण = मार्गेन” द्विं—मथु० ।

स तानापततो वाणैः सर्वान् पर्यग्रहीद्वलो ।  
 यथा पराक्रमी सिंहः कुञ्जरान् काननद्रुहः ॥ ७ ॥  
 यूपं प्रभज्जयिष्यामः<sup>१</sup> पत्नीशालां च पूर्ववत् ।  
 आसन्दीं<sup>२</sup> चैव सोमस्य पातयिष्याम उच्चकैः ॥ ८ ॥  
 स्तुकस्तुवौ त्रोटयिष्यामः इडां क्षेष्यमहे पुनः ।  
 चमसान् विकिरिष्यामो ग्रसिष्यामश्च यज्वकम् ॥ ९ ॥  
 वेदं विधंसयिष्यामो वेदों यास्याम लङ्घनात् ।  
 प्राशिनं नाशयिष्यामो यज्ञाङ्गान्याखिलान्यपि ॥ १० ॥  
 अस्माकं भागधेयाय देवानां वर्जनाय च ।  
 इति निश्चित्य ते घोराः पूर्ववत्समुपागताः ॥ ११ ॥  
 आयुः सहसा रामवाणानलपतञ्जताम् ।  
 मारीचस्ताडितो वाणैः पलायत रणान्तरात् ॥ १२ ॥  
 सुबाहुर्विशिखैर्घोरैर्भूशमेव निपीडितः ।  
 जूम्भको नाम वै नीतो राक्षसो यमसादनम् ॥ १३ ॥  
 दुःसहश्च शरैर्घोरैर्नीतो यमनिकेतनम् ।  
 एवं नैऋतवर्येषु म्रियमाणेषु सर्वतः ॥ १४ ॥  
 राघन्वेद्रशरौघेण शेषा लङ्घापुरों ययुः ।  
 तत्र तान् भग्नगात्रौघान् पश्यतो राक्षसान्निजान् ॥ १५ ॥  
 लङ्घेशितुश्च हृदये निखातं वीर्यमात्मनः ।  
 रामवाणप्रभावेण विद्रुता राक्षसेश्वराः ॥ १६ ॥  
 रावणं शरणं जग्मुर्लङ्घायां मृत्युकातराः ।  
 अद्भुतं विक्रमं दृष्ट्वा लक्षणो राममूचिवान् ॥ १७ ॥

### श्रीलक्ष्मण उवाच

अहो आर्यस्य चरितमद्भुतं पश्यतो मम ।  
 हृदयं हरते राम त्रिदशानां तु का कथा ॥ १८ ॥

१—°यिष्यामि—रीवाँ ।  
 दि०—मथु० ।

२. “आसन्दीं = सोमवल्लीस्थापनशकटीम्”

स्थिताः सुपर्वाण इमे विमानेष्वार्यस्य दिव्यं चरितं निरोक्ष्य ।  
 अद्याप्यविभ्रन्त दृशोर्निमेषं विचित्रदृष्टिस्तिमिताक्षमीनाः ॥१९॥  
 जाने भवानद्भुत एव कश्चित् पूर्णः परः पूरुषपुञ्जवोऽस्ति ।  
 जगत्समुद्धर्तुमिहावतीर्णः खगान् मृगान् राक्षसान् दुःखभावान् ॥२०॥  
 अत्यर्थमेतत्कदनं त्वयाद्य सुरद्भुहां पश्यतो मे कृतं यत् ।  
 तेन त्वदीयं रघुवर्य वीर्यं विज्ञातमज्ञानदृशं प्रमार्ज्य ॥२१॥  
 आर्यं प्रभो पश्यतां मानुषाणां बालोऽसि कल्जच्छदकोमलाञ्जः ।  
 दैतेयरक्षोदनुजप्रमाथे वज्राधिकं सारमुरीकरोषि ॥२२॥  
 अमी धरण्यां खलु शेरते भृशं भवच्छराग्निस्पृशिदरधविग्रहाः ।  
 शैलेन्द्रकूटप्रतिमांसबाहवो भयानका योजनविशकायतः ॥२३॥  
 उत्क्षेपिता हरिदन्तेषु वाणैः कुलाद्रिकल्पा रासक्षाः शेरते स्म ।  
 पराङ्मुखे त्वय्यजवंशकेतौ पराक्रमयान्ति वैफल्यमेव ॥२४॥

### श्रीराम उवाच

नैते मया हता भ्रातस्त्वया खलु निपातिताः ।  
 इच्छाभावेण सौमित्रे स्मर तात निजं बलम् ॥२५॥  
 अथ चेदहमेतानि रक्षांसि समनाशयम् ।  
 तथापि नात्मना किन्तु त्वदावेशेन लक्ष्मण ॥२६॥  
 संकर्षणोऽसि कालग्निः तवैतत्कर्म लक्ष्मण ।  
 प्रमोदवनकुजान्तःकुटीषु रमणं मम ॥२७॥  
 नाहमेतेन कलेशेन युज्जेय ववापि लक्ष्मण ।  
 गवेन्द्रमन्दिरे दिव्ये नवनीतस्य भक्षकः ॥२८॥  
 किं कष्टं मम दैतेयैः किं सुखं च सुपर्वभिः ।  
 निलेपस्य निरीहस्य निर्विकारस्य सर्वदा ॥२९॥  
 एतत्तदोचितं कर्म कालस्याव्ययरूपिणः ।  
 सृजस्यवसि भूतानि क्षेपयस्यनिश्चां प्रभुः ॥३०॥  
 देवे सुरे नरे नागे तापसे व्रतवर्जिते ।  
 समदृष्टिरहं तात न मे कार्यमिह कवचित् ॥३१॥

रामेण रक्षिता यज्ञा विश्वामित्रस्य धीमतः ।  
 प्रावर्त्तताहर्निशं वै वत्सरान् विघ्नवर्जिताः ॥३२॥  
 तत्रैवोवास रक्षार्थं तावद्रामः सलक्षणः ।  
 क्षपयन् राक्षसानीकान् भौमदिव्यन्तरिक्षगान् ॥३३॥  
 रामस्य निशितवार्णभिद्यमानास्तु राक्षसाः ।  
 प्रवेशं लेभिरे नैव अमन्तः परितो मखम् ॥३४॥  
 शरवर्षेण वै रामो नीरन्धं पञ्जरं व्यथात् ।  
 न यत्र प्रविशेद्रक्षो मन्त्रै रक्षोघ्नरूपिभिः ॥३५॥  
 प्रातर्माध्यन्दिने सायं सवनेषु त्रिषु स्थिरः ।  
 अधिज्यो धनुरादाय रक्ष राघवो मखम् ॥३६॥  
 एवं यावत्समाप्तिः स्याद् दीर्घसत्रविधेमुनेः ।  
 तावद्रामः सहातिष्ठल्लक्षणेन सहायवान् ॥३७॥  
 सत्रे समाप्ते गाधेयो ज्ञात्वामुं पुरुषं परम् ।  
 अवर्द्धयच्छुभाशीर्भस्तुष्टाव च शुभैस्तवैः ॥३८॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे विश्वामित्र-  
 यज्ञरक्षणो नाम' त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥



## चतुर्सप्ततितमोऽध्यायः

### विश्वामित्र उवाच

त्वं मत्स्यकूर्मादिनिजावतारेष्वेकाकिनैवावतरस्यात्मनेशः ।  
 रामावतोर्णोऽस्यधुनातु पीठच्छत्रायुधस्त्रकृशयनादिभिः सह<sup>३</sup> ॥ १ ॥  
 इदं ते परमं पीठमक्षरं ब्रह्म यत्परम् ।  
 छत्रं ते विमलं सत्त्वं रजसस्तमसः परम् ॥ २ ॥

१. °रक्षणे-अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २. °रत्न°-रीवाँ० । ३. खल-रीवाँ० ।

आयुधानि च श्रीराम धनुर्वाणासिर्चर्म च ।  
 धर्मार्थकाममोक्षाणां चतस्रोऽप्यधिदेवताः ॥ ३ ॥

स्त्रग्वैजयन्ती भवतः पञ्चवर्णप्रसूनजा ।  
 आपादपद्मप्रणता यशःसौरभसंभृता ॥ ४ ॥

शयनं ते शेषनागो वेदात्माक्षरविग्रहः ।  
 कालात्मा पुरुषः पूर्णो यमनन्तं प्रचक्षते ॥ ५ ॥

तेऽमी भवत्सन्निधिवर्तमानाः प्राप्तैकभावाः प्रकृतेः परस्मात्<sup>१</sup> ।  
 स्थाने स्थिता वासुदेवादिरूपा रमेश ते पूर्णतां द्योतयन्ति ॥ ६ ॥

त्वमेव छण्डसां राशिस्त्वं वर्हिर्यज्ञसाधनम् ।  
 त्वमाज्यं हविराधारं चातुर्होत्रस्त्वमेव च ॥ ७ ॥

त्वं सुक्ल्युवौ च चमसास्त्वमिडा त्वं ग्रहास्तथा ।  
 त्वं प्रासित्रं त्वमेवाद्यभिन्नहोत्रं निर्दीशतम् ॥ ८ ॥

त्वं दीक्षणीया देवेश त्वमेवोपज्ञदास्त्रयः<sup>२</sup> ।  
 त्वं प्रायणीयोदयणीये प्रवर्ग्यस्त्वमेव हि<sup>३</sup> ॥ ९ ॥

अत्यग्निमण्डपस्त्वं च त्वं यागः षोडशी तथा ।  
 वाजपेयोऽतिरात्रस्त्वं आपोर्यामस्त्वमेव च ॥ १० ॥

द्वादशाहादिसत्राणि त्वमेव त्वं क्रतुस्तथा ।  
 त्वं यज्ञस्त्वं तथैवेष्टिस्त्वं स्वर्गस्तत्फलं प्रभो ॥ ११ ॥

वैराग्ययुक्तं कर्म त्वं सत्त्वशुद्धिस्त्वमेव च<sup>४</sup> ।  
 त्वं भक्तिस्त्वमात्मजयश्चत्रस्थैर्यं त्वमेव च ॥ १२ ॥

तेनानुभवितं ज्ञानं त्वमेव जगदीश्वरः ।  
 निर्विघ्नता त्वं कार्याणां त्वमेवाखिलमङ्गलम् ॥ १३ ॥

ज्ञानानि यज्ञाद्य तपांसि कर्मण्यलं प्रपूर्यन्त इतः प्रसन्नात्<sup>५</sup> ।  
 त्वय्यप्रसन्ने हि किमात्मवर्त्तिभिः किंकर्मभिः किंतपसा किंच भव्यैः ॥ १४ ॥

कृतोपकारोऽसि मयि प्रसादात् प्रभो तव प्रत्युपकारमप्यहम् ।

१. °तेर्यकस्मात्—अयो०, रीवाँ । २. °श्रयः—अयो० । ३. त्वष्टमेव च—रीवाँ । ४. त्वमात्मजा—रीवाँ । ५. प्रसन्ने—रीवाँ ।

वाज्छामि कर्तुं यदि भो मया सह समेष्यसि त्वं मिथिलेन्द्रमन्दिरम् ॥१५॥  
 तस्यात्मजा [तत्र]किमप्ययोनिजा साक्षाद्रमा कोटिविधुप्रकाशा ।  
 तवोचिता श्रीः पुरुषोत्तमस्य मन्दस्मिता भूषितवक्त्रचन्द्रा ॥१६॥  
 राजापि स ब्रह्मविदां वरिष्ठः श्रीमैथिलेन्द्रो जनको वीतरागः ।  
 जामातरं त्वामुपलभ्य रामं गार्हस्थ्यमासादयिता फलाढ्यम् ॥१७॥  
 अत्यद्भुतं गाधिसूनोर्वचस्तदाकर्ण्य रामस्त्रपया बद्धमौनः ।  
 विलोक्यतां लक्षणं वत्स संप्रति व्योमावदातातपमित्यवादेत् ॥१८॥  
 अर्थान्तराक्षिप्तहृदं स रामं विज्ञाय शीलेन विबद्धमौनः ।  
 नैस्यस्य तामनयद्राजधानीं नाम्ना शुभां मिथिलेतिप्रसिद्धाम् ॥१९॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे मिथिलागमनोद्यमो  
 नाम<sup>१</sup> चतुसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥



## पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

स गत्वा मिथिलापुर्याः सविधे सहराघवः ।  
 मुनिमध्याह्लिकीं सन्ध्यां विधिना निरवर्तयत् ॥ १ ॥  
 तावद्राजकुमारौ तौ आरामधियमीक्षितुम् ।  
 मिथिलोपवने तत्र सुखं विविशतुर्मुद्दा ॥ २ ॥  
 तौ रामणीयकमवेक्ष्य वनस्य फुल्ल-  
 वासन्तिकापरिमलभ्रमितालिजुष्टम्<sup>२</sup> ।  
 प्राप्तो वसन्त इति तावधिजग्मतुःप्रा-  
 गागामिभिः<sup>३</sup> मर्लयशैलसमीरणौघैः ॥ ३ ॥

१. गमनोद्यमे—अयो०, रीवाँ, मथु०, बडो० । २. °थान्त—मथु०, बडो० ।  
 ३. °तुवैप्रागामिभिः—अयो०, मथु०, बडो० ।

तत्रागमच्च मिथिलेन्द्रकुमारिका सा  
सीता स्वयं नमितुमालयमस्त्रिकायाः ।  
तां वीक्ष्य भूय उद्दितस्मरवाणताप-  
संभ्रान्तचित्त इव तत्क्षणमास रामः ॥ ४ ॥

## श्रीराम उवाच

एषा विमानादवरुह्य याति विद्याधरी चापि सुरी नरी वा ।  
सौदामिनी वा रत्निकामिनी वा शची रमा वा हिमशैलजा वा ॥ ५ ॥  
न मे प्रयात्येव मनोरथान्तर्वर्धिष्णुभिर्निःप्रतिभैर्महोभिः ।  
जाने ममानञ्जजतापहारिणी पीयूषधारेयमहो भविष्यति ॥ ६ ॥  
अहो अमुष्या मिलने वनेऽस्मिन् वसन्तकालोदय एष जातः ।  
लोकोत्तरं धाम चकास्ति तावत् समंततो रत्नसमूहचित्रम् ॥ ७ ॥  
अहो अपूर्वैव विभाति सृष्टिर्मन्ये न सामान्यविरजित्तलेखा ।  
अयोनिजां यां मुनिराह सेयं स्वभावसौन्दर्यमयीव लक्ष्मीः ॥ ८ ॥  
अहो इदं चायतनं शिवायास्तार्मचितुं तावदसाविहागमत् ।  
तत्प्रार्थयेऽहं प्रथमं महेशीमस्या स्वयंवरविधौ मणिमलिलकायैँ ॥ ९ ॥

धन्येयं मिथिला नाम नगरीणां शिरोमणिः ।  
यस्यामियं दृश्यते वै युवतीनां शिरोमणिः ॥ १० ॥  
रक्ताशोकलताकुञ्जे इयमेव रता मया ।  
इदानीं नाभिजानाति मोहिता मम मायया ॥ ११ ॥  
आद्वीपात् क्षीरसिन्धोश्च भूपालाः संगता अमी ।  
महावीरा महेष्वासा महाबलपराक्रमाः ॥ १२ ॥  
तेषां मध्ये तु मत्तोऽन्यः कोऽस्याः पाणिं ग्रहीष्यति ।  
इति निश्चित्य मनसा धीरोऽस्मिन्नस्मि<sup>३</sup> राघवः ॥ १३ ॥

<sup>३</sup> इत्यागतां तामवलोक्य रामः<sup>३</sup> शिवालये कोटितडित्प्रकाशाम् ।  
मुमूर्च्छं वैवेति कर्थंचिदुन्मनाः संस्मृत्य गाधेयमृषिं न्यवर्तत<sup>४</sup> ॥ १४ ॥

१. °काद्यैः—मथु०, बड़ो० । २. °नतु—अयो०, बड़ो० । ३—३. नास्ति  
—अयो०, रीवाँ० । ४. “संस्मृत्यगाधेयमृषिं ततः शीघ्रं न्यवर्तत” इत्यनुष्टुभेन—  
अयो० रीवाँ० ।

कृतमाध्यन्दिनविर्धि मुर्नि कृत्वा पुरःसरम् ।

धनुर्धरावाविशतां कुमारौ मिथिलां पुरीम् ॥१५॥

तौ पश्यतां पौरजनेक्षणानां पीयूषवृष्टिः समभूत्क्षणेन ।

शृङ्गारसारावयवौ मनोज्ञौ पारेपरार्द्धस्मरसन्निवेशौ ॥१६॥

तौ तत्र संमर्द्दमयो नृपाणामपश्यतामष्टदिग्भ्यो युतानाम् ।

सीतापणीभूतगिरीशचापपराहृताव्याहृतदुर्बलानाम् ॥१७॥

कन्यां निरीक्ष्यामितहर्षभाजो धनुर्विलोक्यामितदुःखनिःसहाः ।

आजगमुरावेगमतीव भूमिपा दैवी तथेच्छा तु परं सुदुर्घटा ॥१८॥

तुङ्गेषु मञ्चेषु नृपालयाङ्गणे स्वां स्वां दिशं प्राप्य परिस्थिता नृपाः ।

संशोभयामासुरुदाररोचिषा समन्ततस्ते मिथिलेन्द्रपत्तनम् ॥१९॥

नानादिगन्तदेशेभ्यो नानानामान एव ते ।

सीतास्वयंवरोत्साहे संगता अभवन्तृपाः ॥२०॥

तेषां संचरतां मत्तगजानां रत्नमालिनाम् ।

घण्टारावेण पिहिता दिशोऽष्टौ मिथिलापुरी ॥२१॥

सीतास्वयंवरजहर्षवशंवदोऽसौ रामः सरोजदलकोमलविग्रहत्वात् ।

गाधेयचेतसि धनुर्विषये पुरारेरीषच्च संशयपदं व्यतनोन्मुनीशः ॥२२॥

त्रिंशत्या वाहनानां यद् धार्य<sup>१</sup> हरधनुः क्व तत् ।

सिरोषप्रसवागर्भकोमलः क्व च राघवः ॥२३॥

इतिसंततसंदेहोलायितमनोगतिः ।

मिथिलेन्द्रगृहद्वारमगमद् गाधिनन्दनः ॥२४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे मिथिलागमनो

नाम<sup>२</sup> पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

१. दधीचास्थिमयं सारं त्विदं—रीवाँ । २. मिथिलागमने—अयो० रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

## षट्सप्ततितमोऽध्यायः

इतः सा कौशिकी नाम शुद्धनीरा तरञ्जिणी ।  
 विश्वामित्रस्य क्षत्रस्य ब्रह्मतेजःप्रभेव या<sup>१</sup> ॥ १ ॥  
 इतो घोषवतीनाम पुण्यतोया महानदी ।  
 द्वयोर्मध्ये पुरी श्रेष्ठा मिथिला नाम सा पुरी ॥ २ ॥  
 यस्यां निमिकुलोत्तंसो जनको नाम भूपतिः ।  
 जन्मज्ञानी जन्मशुद्धो महायोगी सदाश्रयः<sup>३</sup> ॥ ३ ॥  
<sup>३</sup> तस्य सा परमा कन्या सीता नाम्नी त्वयोनिजा ।  
 यज्ञवेद्यां समुद्भूता पश्यतां महसां पुरा ॥ ४ ॥  
 रुक्मिणी<sup>३</sup> सत्यभामाद्या यस्यांशाः सकला अपि ।  
 भूलीलाराधिकेत्यादि नामपर्याययोगिनी ॥ ५ ॥  
 चाम्पेयगर्भमृदुला दामिनीशतविग्रहा ।  
 प्रेमभक्तिस्वरूपेण अवतीर्णा भवेत् स्वयम् ॥ ६ ॥  
 अस्याः संस्मरणादेव प्रेमभक्तिः प्रवर्द्धते ।  
 तथा संतुष्यते रामो वशोभवति नान्यथा ॥ ७ ॥  
 मतिश्चापि रतिश्चैव द्वे प्रिये जगदीशितुः ।  
 रामस्य दुर्भगा त्वाद्या सुभगा त्वितरैव हि ॥ ८ ॥  
 सेयं सीतेति सहजा नाम्ना ख्यातागमत्रये<sup>४</sup> ।  
 एनामेव प्रगायन्ति नेतिनेतीति चागमाः ॥ ९ ॥  
 सा नित्या संगता रामे तत्स्वयम्बर ईर्यते ।  
 ब्रह्मादयोऽपि यत्रासन् महाकौतुकनिर्वृत्ताः ॥ १० ॥  
 अथ मिथिला नाम्नी सा नगरी वृहद्गोपुरविराजितकनककपटा  
 संकलितसुवर्णशृङ्गाटका देवगिरिप्रतिमप्राकारपर्यन्तप्रविन्यस्तागाधपरिखा-  
 जला महामञ्जलप्रसंगविस्तीर्णनगरद्वारा मणिहेममयतोरणा विशाल-

१. विश्वामित्रब्रह्मतेजःप्रभेव या विराजते—रीवाँ । २. अयं श्लोको नास्ति—  
 अयो०, जन्मवैराम्यशेवधिः—मथु०, बड়ো० । ३-३. नास्ति—अयो०, रीवाँ ।  
 ४. जगत्त्रये—अयो० ।

पुराद्वालस्फाटिकभित्तिप्रतिफलितरविरशिभसंदोहचकच्चकायमाना नाना-  
मणिप्रभावलीभिः पुरन्दरधनुर्लतायमाननगरगोपानसोका विततापण-  
प्रसार्यमाणसुवर्णमणिरत्नप्रचुरा विशालस्वरमूर्छायितान्तरिक्षपथैर्गन्धर्व-  
राजैरुपगायद्विरासादितगोष्ठीमनोरमा पवनान्दोलितदीर्घध्वजपटसनाथ-  
प्रासादशिखरोपात्तघूर्णयमानप्रमत्तकपोतकुलमन्दध्वनिमनोहरा अनवरत-  
हुताज्यगन्धिश्रोत्रियागारोपरिभ्रमदधूमलेखानुक्षणधावद्बुभुक्षुद्विजकुला निर-  
न्तरप्रवृत्तदीर्घदीक्षाकाधवरसमामन्त्रितपुरन्दरादिवेगणा चतुर्वर्णचतुरा-  
शमाचारप्रवर्त्तनमूलकरणभूता ॥ ११ ॥

तस्यां नगर्या दीर्घध्वजपताकातूर्यत्रिकनादानुलक्षितं जनकभूभुजः  
पुण्यतम् भवनम् । यत्र भगवांस्त्रिकालपरामर्शविदितवेद्यो ब्रह्मविद्विरष्टो  
याज्ञवल्क्यो नाम योगीन्द्रोऽमुष्मै एव परब्रह्मविद्यामुपदिशन् प्रीतिपणित इव  
निरन्तरमास्ते ॥ १२ ॥

अन्ये च शुकवामदेवप्रमुखास्तादृशा एव निर्गन्ध्याः समुत्तीर्णशब्दब्रह्म-  
विषयाः परमनयोः कथानकं ब्रह्मोद्यं जायमानं शृण्वन्ति । तत्र  
तमायान्तं गाधिनन्दनमुपश्रुत्यासममक्षान्तमभिवन्द्य गृहेऽप्रवेश-  
यज्जनकराजः ॥ १३ ॥

तत्र स्थितं याज्ञवल्क्यं ववन्दे गाधिनन्दनः ।

स च तं वर्द्धयामास शुभाक्षीर्भिः सुतोपमम् ॥ १४ ॥

कृतार्हणं तेजसोऽप्नं ब्रह्मक्षत्रं महामुनिम् ।

उवाच नृपतिश्रेष्ठो जनको ब्रह्मवित्तमः ॥ १५ ॥

### राजोवाच

स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ चिराद् दृष्टोऽसि भाग्यतः ।

भवादृशा हि धरणौ नृणां गच्छन्ति शर्मणे ॥ १६ ॥

कुशलं त्वयि योगेन्द्र प्रष्टव्यं सेवकैर्जनैः ।

अन्येभ्यः कुशलं दत्से त्वयि कस्तस्य संशयः ॥ १७ ॥

### ऋषिरुवाच

राजन् निमिकुलोत्तंस किमाश्चर्यं भवादृशाः ।

स्वभावमधुराचारा विशेषाद् गृहमागताः ॥ १८ ॥

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यस्य योगद्विरुत्तमा ।  
 ब्रह्मविद्वर वन्द्योऽसि योगीन्द्र जनकेश्वर ॥१९॥  
 धन्येयं मिथिला यत्र भूमिपालो भवादृशः ।  
 ज्ञानविज्ञानसंपन्नो दर्शनात् पड़क्तिपावनः ॥२०॥

### राजोवाच

इमौ कौ भवतः संगे कुमारौ दीप्तवर्चसौ ।  
 ललितैः श्यामलैरञ्जैर्दृक्पीयूषप्रवर्षिणौ ॥२१॥  
 धनुर्वर्णधरौ तुल्यवेशौ निजपराक्रमौ ।  
 अहो अत्यद्भुतावेतौ सानन्दं कुरुतोऽद्य माम् ॥२२॥

### ऋषिरुचा

अस्ति रविवंशकेतुर्महामना महाधार्मिको महातेजस्वी दितिजदनुज-  
 रक्षोवधसंतोषितपुरन्दरादिसुपर्वगणोद्गीतविपुलकीर्तिः साकेतपुरीपालो  
 राजा दशरथो नाम ॥२३॥

तस्येमे शृण्यशृङ्खभागधेयपुञ्जा इव चत्वारो रघुकुलपुण्यपरिपाक-  
 परिप्राप्तोपचयवद्विग्रहाः पुत्रा रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नेत्याख्याभिः  
 प्रसिद्धाः ॥२४॥

त्रिभुवनेऽपि ईशौ तौ रामलक्ष्मणौ यौ दूमानेकराक्षसकुलवधेन  
 मदोयमहायज्ञदीक्षानिर्वर्हणादीक्षितेन धनुषा सनाथीकृतकरतलौ भरत-  
 शत्रुघ्नौ पुनर्दशरथस्य दृशमानन्दयन्तौ साकेत एवाभिनन्दयतः ॥२५॥

अमी ते सीतापुरोगानां चतसृणां द्रुहितणां विधिनैव निरूपिता  
 अनुरूपवयोवेशर्द्धकुलसंपन्ना वराः । लोकोऽपि संपन्नमनोरथ एव प्रायशो  
 भविता यः श्रीरामेण वरेण वरस्वयंवरसमाप्तौ ॥२६॥

इति श्रुत्वा स भूपालो विश्वामित्रोदितं वचः ।  
 सस्मार शाङ्करं धन्वं महावज्रशिलादृढम् ॥२७॥

### राजोवाच

अहो दशरथो राजा पुण्मात्मा पुण्यकीर्तनः ।  
 तस्येमौ तनुजौ वीरौ भाग्याद् दृष्टिपथं गतौ ॥२८॥

परं त्वेकः पणो घोरः कन्यावितरणे मम ।  
 आरोपयेद् य ऐशं तद्धनुस्तस्मै प्रदीयते ॥२९॥  
 इत्युक्तः स मुनी राजा जनकेन मनस्त्विना ।  
 राममालोक्य प्रोवाच सस्मितं मधुरं वचः ॥३०॥  
 संबध्यतां परिकरो हरकार्मुकरोपणे ।  
 वत्स राम त्वमियति समस्ते वीरमण्डले ॥३१॥  
 कुर्वपूर्वतरं कर्म यत्र वै वाणरावणौ ।  
 अभूतां बलसंदोहनैरर्थक्यपराहृतौ ॥३२॥  
 इत्युक्तो भगवान् रामः स्वयं साक्षाद्रमापतिः ।  
 दृष्ट्वा हरधनुः सद्यो लोलयैव समाददे ॥३३॥  
 यस्य वाणानलोद्गारे त्रिपुरोऽभूत् पतञ्जलत् ।  
 हिमालयं धनुर्यस्य ज्या शेषो भुजगेश्वरः ॥३४॥  
 शरः स भगवान् विष्णुस्त्रयीमूर्तिः सनातनः ।  
 तमादायैकहस्तेन कोदण्डं कृत्तिवाससः ॥३५॥  
 ज्यां समारोपयामास समालम्ब्य बभज्ज च ।  
 धनुर्भञ्जोऽद्भवः शब्दो गगनं क्षमामपूरयत् ॥३६॥  
 चचाल धरणी सर्वा पर्वताश्च चकम्पिरे ।  
 तत्रास वासुकिकुलं विभ्युँदेवगणा दिवि ॥३७॥  
 महाशब्देन जातेन<sup>३</sup> सागराश्च विसुम्मुवुः ।  
 गिरीणां कन्दरास्वन्तर्धनोभूतो महाध्वनिः ॥३८॥  
 हर्यक्षान् क्षोभयामास प्रलयाधातदुःसहः ।  
 तदा रामधनुर्भञ्जात् सीता पूर्णमनोरथा ॥३९॥  
 स्वयंवरस्त्रजं पत्युः कण्ठे सप्रणयं न्यधात् ।  
 रामस्य कण्ठे पतति स्वयंवरसरे तदा ॥४०॥  
 दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जनकस्य पुरे तथा ।  
 जनकस्तुष्टहृदयो जामातरि महागुणे ॥४१॥

१. आकलय्य—रीवाँ । २. तत्रसुर्मनुजा भूमौ तथादैव°—रीवाँ । ३. °शब्द-  
 प्रणादैन—रीवाँ ।

राजा तमाह्यामास साकेतनगराधिपम् ।  
 विवाहं कारयामास ब्रह्मणैर्विधिकोविदैः ॥४२॥  
 सोताराघवयोर्यत्र ब्रह्मादच्चा आययुः सुराः ।  
 राघवः सोतया साकं कृत्वा सप्तपदीविधिम् ॥४३॥  
 लाजाहोमविधि कृत्वा रराज सुषमाज्जितः ।  
 अश्मनि स्थापिता देवी शुशुभे तत्र जानकी ॥४४॥  
 अदच्यापि मूर्धगा मृत्यो रामोत्सङ्गे स्थिरैव सा ।  
 हरिद्राग्रन्थिकलितं पीतसूत्रं करे दधत् ॥४५॥  
 सोतया शुशुभे रामो गृहलक्ष्म्या गृहाधिपः ।  
 लक्ष्मणोऽपि वधूं प्राप्य उमिलां जनकात्मजाम् ॥४६॥  
 रामवत्सोतया साद्वं तथा साद्वं मुमोद सः ।  
 एवं भरतशत्रुघ्नौ कुमारौ रामसुन्दरौ ॥४७॥  
 माण्डविश्रुतकीर्तिभ्यां वधूभ्यां जग्मतुर्मुदम् ।  
 चतत्स्त्रोऽमुष्य ताः कन्याश्चतुर्भ्यां दिव्यविग्रहाः ॥  
 वरेभ्यः सहसा दत्ताः प्रजानां दृक्सुखं ददुः ॥४८॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे हरधनुर्भंज्ञो नाम<sup>१</sup>  
 षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

०

### सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

#### ब्रह्मोवाच

भञ्जे हरधनुःशब्दो भार्गवस्य तपस्यतः ।  
 श्रवणे छादयामास दुःखकोपविवर्द्धनः ॥ १ ॥  
 साटोपं राम उत्थाय पर्शुमादाय सत्वरः ।  
 निजाश्रमपदं त्यत्क्वा यावदायाति भार्गवः ॥ २ ॥  
 तावज्जनकभूपस्य बोधनार्थं महात्मनः ।

१. हरधनुर्भग विवाहोत्सवं नाम—अयो० । हरधनुर्भगे—रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

स्वशिष्यं प्रेषयामास रामो भार्गवसत्तमः ॥ ३ ॥  
 भार्गवेण श्रुतः पूर्वं जनकस्य धनुःपणः ।  
 तच्छ्रुत्वा चुक्रुधे भूयः कोपनः कालदुर्धरः ॥ ४ ॥  
 त्रिःसप्तकृत्वो भूपालान् मारयित्वा स्वपर्शुना ।  
 स्थमन्तपञ्चकेऽकार्षीच्छोणितौधान् महाहान् ॥ ५ ॥  
 स रामो दुर्मनीभूत्वा कस्य कल्याणमिच्छति ।  
 सुरासुरमनुष्येषु तस्मात्तं न प्रकोपयेत् ॥ ६ ॥  
 कथितो भृगुशार्दूलः सर्वस्वं नाशयेत् क्षणात् ।  
 इति जानाति राजापि जनकः सत्यभाषणः ॥ ७ ॥  
 जामातुश्च बलेनैव तीर्णवान् भृगुपावकम् ।  
 रामेण प्रेषितो दूतः शिष्यो जनकसन्निधौ ॥  
 समागत्य सभामध्ये इदं वचनमन्वयोत् ॥ ८ ॥

### ब्राह्मण उवाच

राजन् नैम्य नृपाधीश कस्मैचिन्नृपसूनवे ।  
 कन्या प्रदीयतां मा वा वृथा हरधनुःपणः ॥ ९ ॥  
 एतच्छास्मभवमूर्जस्वि त्रिपुरानलवारिदम् ।  
 धनुः शैलेन्द्रसारं यत् दुराधर्षं जगत्त्रये ॥ १० ॥  
 देव त्वदीयभवने विन्यस्तं जनक प्रभो ।  
 त्वया न स्थाप्यतां कश्चित्पणीकृत्य सुबुद्धिना ॥ ११ ॥  
 इदं हि स्वायुषो दारि यशस्तेजस्तपोनुदम् ।  
 यद्विव्यवस्तुविषये लौकिको मतिराहिता ॥ १२ ॥  
 एतद्विबुद्ध्यतां राजन् विशेषेणाधुना मुहुः ।  
 यदीशधनुरुत्सूज्य पणीकार्यं धनान्तरम् ॥ १३ ॥  
 एतत् प्रोवाच ते राजन् भार्गवः क्षत्रियान्तकः ।  
 रामो दुर्दर्शनो धाम्ना कुठारक्रीडनोद्धरः ॥ १४ ॥  
 तदाकर्ण्य यथायोग्यं क्रियतां निमिभूपते ।  
 नो चेत् स जामदग्न्यो वै वीरेन्द्रो दुर्मनायते ॥ १५ ॥

दुराराद्धयः स कोपेन सहस्रार्जुनसूदनः ।  
 साक्षात् क्रोधी हरेरंशो भगवान् भार्गवोत्तमः ॥१६॥  
 जामातुः स्वस्य भोग्येन सोऽनुकूलो विधीयताम् ।  
 अन्यथा न भवेत्क्षेमं कुपिते जमदग्निजे ॥१७॥  
 ब्रह्मक्षत्रमयं तेजो दुराधर्षतमं हि तत् ।  
 बलाद्वन्द्यतमं लोके क्षत्रियाणां विशेषतः ॥१८॥  
 एतत्ते कथितं भूप यामि रामस्य सज्जिधौ ।  
 इत्युक्त्वा यावदचलद्विप्रो जनकसज्जिधौ ॥१९॥  
 तावद्वरधनुर्भञ्जकाह्लः समभूतराम् ।  
 घोरो ब्रह्माण्डसंभेदी जगत्त्रयविकम्पनः ॥२०॥  
 प्रलयान्तसमुन्नादि समुद्र इव दुःसहः ।  
 कल्पान्तधनसंघटुघटाटोपभयञ्चकरः ॥२१॥  
 इन्द्रायुधत्रुट्टपक्षः<sup>१</sup> पर्वतारावसन्निभः ।  
 दार्यमाणगिरिग्रावसमो<sup>२</sup> गम्भीरनिस्वनः ॥२२॥  
 वज्रनिर्धोष उदधौ रावणश्रुतिभेदनः ।  
 अहो अनर्थः कुपितो रामः क्षत्रकुलान्तकः ॥२३॥  
 इतिवृवस्त्रिंगाम दृतो रामस्य स द्विजः ।  
 क्रोधान्धो राम आधावच्छ्रुत्वा स धनुषो रवम् ॥२४॥  
 अहो समुत्थितः कोऽयमकस्माद्गौषणो ध्वनिः ।  
 न वा पर्वतनिर्दर्शो वज्रपातो न कश्चन ॥२५॥  
 नाबिधनिर्मन्थनो घोषो नकल्पान्तभवो ध्वनिः ।  
 न भूमिकम्पनोद्घोषो न कल्पान्तमरुद्धवनिः ॥२६॥  
 कोऽयं शब्दमयोत्पातो भविष्यति धरा न वा ।  
 कुलाचलसुसंघर्षे निर्वृतो वा परस्परम् ॥२७॥  
 इति भूयः संदिहानो रामो निश्चित्य तत्क्षणात् ।  
 भज्यमानमहादेवधनुषः संभवो ध्वनिः ॥२८॥

१. नुदत्पक्ष—रीबाँ । २. °साम°—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

धावन् स परशूहस्तो भार्गवः क्रोधपावकः ।  
हरिद्राकङ्कणं रामं मार्गे प्रत्यग्रहीत् पुनः ॥२९॥

**भार्गव उवाच**

अहो अरे क्षत्रियपोतकस्त्वमीदृक् पापं कर्म<sup>१</sup> कस्मादकार्षीत् ।  
केनेदं ते शिक्षितं शत्रुभावाद्<sup>२</sup> भव्यासहं मत्कुठाराचलाग्नौ ॥३०॥  
अहो अभाग्यं जनकस्य दुर्मतेजामितृक्षाकुशलैकघातिनः ।  
पणीकृतं येन धनुः पिनाकिनो दुर्बुद्धिना वार्धकनष्टचेतसा ॥३१॥

ईशस्तु भगवान् साक्षात् करुणा रसवारिधिः ।

शान्तात्मा तपसां राशिः कस्तस्मात् संबिभेति वै ॥३२॥

तत्पुत्रस्तारकस्यारिस्तादृग् दैत्यचमूपतेः ।

स्कन्दोऽपि विस्मितो<sup>३</sup> येन तस्य शंन भविष्यति ॥३३॥

स्कन्दोऽपि यदि नेदानीं भूतानां भयकारकः<sup>४</sup> ।

अहं त्वनादृतः कस्मात् कुठारकठिनाशयः ॥३४॥

धिक् क्षत्रवंशो करुणामिदं यस्याः फलं खलु ।

अतः कृपालुना भाव्यं नातः परमिहान्वये ॥३५॥

इतिवृवाणं भूगुवंशकेतुं कोपेन संत्रामितसत्कुठारम् ।

सौमित्रिरभ्येत्य जवादवादीत् संरम्भसाटोपगिरा गभीरः ॥३६॥

अहो तवोपवीतश्रीरहो मौज्जीकटिस्थिता ।

अहो कमण्डलुः पाणौ जटा मूर्धन मृगाजिनम् ॥३७॥

अहो तापस केनासि विकारमिममाश्रितः ।

एतद् दृष्टिविरुद्धं ते न च कार्यं त्वया रणम् ॥३८॥

**भार्गव उवाच**

अहो क्षत्रियपोतस्य विवक्तुमिव<sup>५</sup> दुर्वचः ।

दुनोति हृदयं तावत्तन्मसैव कृपाफलम् ॥३९॥

१. गुर्ब०—मथु०, बड़ो० । २. शत्रुणा वा—अयो० रीवौ० । ३. “रुद्रस्तु निवर्त्तः अति प्रतापी स्कन्दोऽपि येन रामेण विस्मृतश्चेत् तस्य रामस्य कल्याणं न” टि०—मथु० । ४. “नभयकारकः शान्तश्चेत् कठिनकुठारवतो ममानादरः किमर्थम्” टि०—मथु० । ५. °मिति—रीवौ० ।

कथं रे क्षत्रबन्धो ते पूर्वजाः किञ्च मारिताः ।  
 कुठारेण ममानेन दुर्धर्षेणोरुतेजसा ॥४०॥  
 इति स्वगतमेवाह यावद्गार्गवसत्तमः ।  
 तावत् ताण्डचायनः शिष्यः शतानन्दस्य योगिनः ॥४१॥  
 उपगम्य भूगुर्थेषु सादरं प्रणनाम ह ।

## भार्गव उवाच

भो आयुष्मान्<sup>१</sup> भवान् भूयात् त्ताण्डचायन तपोनिधे ॥४२॥  
 विप्रारर्य त्वदुपाध्याययजमानस्य भूभुजः ।  
 रुद्रचापारोपणश्रद्धा निवृत्ता नाथवा मुने ॥४३॥

## ताण्डचायन उवाच

निवृत्ता भगवन् किंतु सहैव हरधन्वना ।

## भार्गव उवाच

किमात्थ रे किमात्थ त्वं सहैव हरधन्वना ॥४४॥  
 स्फुटं तावन्मम ब्रूहि यथा वृत्तं<sup>२</sup> प्रबुद्धचते ।

## ताण्डचायन उवाच

सुबाहुमारीचमुखा कौशिकाध्वरघातिनः ॥४५॥  
 यद्वाणानलनिर्दग्धाः क्षणात्प्रायुः पराभवम् ।  
 ऋष्यशृङ्गऋषे<sup>३</sup> भागभुवो ये राजसूनवः ॥  
 तेषां यः प्रथमो रामस्तेन भग्नं शरासनम् ॥४६॥

## भार्गव उवाच

यस्मिन् वक्रे<sup>४</sup> पुरस्तिक्ष दग्धा अग्नौ पतञ्जलित् ।  
 तदद्यदा शिशुना तेन राघवेण पराहतम् ॥४७॥  
 हरस्य दैवतं चापं तदा मन्ये रघोः कुलम् ।  
 मत्कुठारजले मग्नं मग्नमेव न संशयः ॥४८॥

१. आयुष्मन्—बड़ो । २. ह्लास—रीवाँ । ३. °भर्खे—रीवाँ । ४. चाग्रे—रीवाँ ।

## ब्रह्मोवाच

ताण्डचायनः ससंरम्भं ज्ञात्वा भार्गवसत्तमम् ।  
 उपाध्यायाय तद्वात्ता वक्तुं शोष्रं विनिर्गतः ॥४९॥  
 जामदग्न्यः पुनर्नव्यविवाहमङ्गलाङ्कितम् ।  
 रामं निश्चत्य सहसा सहानुजमवर्णयत् ॥५०॥

## भार्गव उवाच

पारेपराद्वकन्दर्पसुन्दरः क्षत्रबालकः ।  
 गाम्भीर्यं पुनरेतस्य हरस्येवातितेजसः ॥५१॥  
 माधुर्यं पुनरानन्दि राकाहिमरुचेरिव ।  
 शृङ्गारवीरादभुतकैः किमेष घटितो रसैः ॥५२॥  
 ततः समुपसार्थमिं वोरौ तौ रामलक्ष्मणौ ।  
 निर्वर्ण्य बहुधा चित्ते कृताश्चर्यौ बभूवतुः ॥५३॥

## लक्ष्मणोवाच

क्वेयज्ञ धनुषो मौर्वीं क्वेयं मौज्जी च मध्यतः ।  
 क्वेमे सिताग्रविशिखाः क्व च वैतादृशाः कुशाः ॥५४॥  
 धारोज्जवलः क्व परशुः क्व च दिव्यकमण्डलुः ।  
 वीरशान्तरसावेतौ संगतौ किं परस्परम् ॥५५॥  
 आर्यब्रह्मक्षत्रमयं किमिदं चित्रवत् पुरः ।

## श्रीराम उवाच

वत्सैवं किंतु जानासि भगवान् भार्गवो ह्ययम् ॥५६॥  
 क्रौञ्चाचलस्य शिखरं विद्धं येन शितैः शरैः ।  
 त्रिःसप्तकृत्वा विप्रेभ्यो जित्वा दत्तं महीतलम् ॥५७॥  
 पुरा येनैव संग्रामे जितस्तारकसूदनः ।  
 कुठाराज्वलधाराभिः हैहयेन्द्रस्य दोर्बलम् ।  
 पुरा निराकृतो येन सोऽयं वीरस्तपोनिधिः ॥५८॥

## लक्ष्मण उवाच

तर्हि साश्चर्यशीलोऽयं भगवान् भृगुनन्दनः ।  
 यः सुमेरुयुतां भूर्मि स्वर्णशृङ्गीमिवैष गाम् ॥५९॥  
 कश्यपायर्षये दत्त्वा नात्मानं इलाघतेतराम् ।  
 स्कन्दशक्तिक्षतं क्रौञ्चगिरिं वार्णैर्बिभेद यः ॥६०॥

इति श्रीमदादि रामायणे ब्रह्म-भुशुण्डसंवादे रामभार्गव-  
 संग्रामो नाम<sup>१</sup> सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

●

## आष्टसप्ततितमोऽध्यायः

## ब्रह्मोवाच

अथ रामोऽर्जालिं बध्दवा सानुजः प्रणनाम तम् ।

## भार्गव उवाच

संग्रामविषयी<sup>२</sup> भूया<sup>३</sup> इत्याशिषमवोचत ॥ १ ॥

## राम उवाच

भगवन् भार्गवश्रेष्ठ करुणागाधवारिधे ।  
 अहं त्वनुगृहीतोऽस्मि तपसांनिधिना त्वया ॥ २ ॥  
 भार्गवः स्वगतं प्राह अस्याहो विनयः शिशोः ।  
 अतिमात्रं प्रकृप्यात्र किंस्याच्चन्द्रसुशीतले ॥ ३ ॥  
 ततो विमृश्य सस्मार भग्नं यच्छास्मभवं धनुः ।  
 बालायाश्चैव जानक्या वैषम्यं<sup>४</sup> स्यान्निजास्त्रतः ॥ ४ ॥  
 अयोग्यतममेतद्वि जमदग्निसुतस्य मे ।  
 आः शान्तः परशुर्घोरो रेणुका<sup>५</sup> कण्ठकृत्तनः ॥ ५ ॥

१. संग्रामे—अयो०, रीवॉ, मथु०, बड़ो० । २. विजयी—मथु०, बड़ो० ।

३. भूयादि<sup>६</sup>—अयो०, मथु०, बड़ो० । ४. वैधव्यं—मथु०, बड़ो० । ५. वैरिणं—रीवॉ ।

ततः प्रकाशमाहैष रामं दाशरथिं मुनिः ।  
चण्डीश्वरधनुर्भज्जप्रभवोद्गर्वभाविनोः' ॥ ६ ॥  
वाह्वोस्तव्वै स्थिररधुना मधुना समैः ।  
भूय आसाधयिष्यामि कुण्ठारं कुण्ठितं मम ॥ ७ ॥

### श्रीराम उवाच

भगवन्नधुना कर्तुं निग्रहानुग्रहौ मयि ।  
स्वतन्त्रोऽस्ति भवान् किन्तु कोपबोजं न बुध्यते ॥ ८ ॥

### भार्गव उवाच

अहो दर्पाढ्यता नाम बलमेतद् यदात्मना ।  
अस्माभिः कथितं चापि न विजानाति दुर्नयम् ॥ ९ ॥  
ननु रे तद् गुरोर्भग्नं चापं न<sup>२</sup> शिशुना त्वया ।  
येन शिक्षितमद्यापि पुरस्त्रीविरहव्रजम् ॥ १० ॥

### श्रीराम उवाच

भगवन्नित्यलोकेन लोकवादेन भूयसा ।  
अनघे मयि संजातो मुधा कोपः कलंकितः<sup>३</sup> ॥ ११ ॥

### भार्गव उवाच

तर्त्क गिरीशचापस्य स्वस्त्यस्ति क्षत्रडिम्भक ।

### श्रीराम उवाच

किञ्चित्स्पृष्टं न वा स्पृष्टं धनुस्तत् पुरवैरिणः ॥ १२ ॥  
तद्वै चिरेण जीर्णत्वादभज्यत करोमि किम् ।

### भार्गव उवाच

अहो चन्दनदग्धेन शरेण हृदिगामिना ॥ १३ ॥  
मामयं शोतलयते ज्वलता कोपवह्निना ।  
तदयं कठिनो घोरः कुठारो विशताद् गलेः ॥ १४ ॥

१. प्रभवामर्षयागिरा—रीवाँ । २. नन्वेतच्चगुरोर्धन्वा भग्नं न—अयो० ।  
.....भग्नं धन्व—मथु०, बडो० । .....यद्गुरो—रीवाँ । ३. स्वधांको निःकलं-  
कितः—रीवाँ । ४. विशतां जले—अयो०, रीवाँ ।

अमुख्य क्षत्रपोतस्य सीतावैषम्यं कारणम् ।  
 त्रिपुरारिधनुर्भञ्जपातकक्षालनं तथा ॥१५॥  
 तत्प्रवीरो भव रणे राम दाशरथी शिशो ।  
 उपस्थितोऽयं संग्रामो भार्गवेण मया सह ॥१६॥

## श्रीराम उवाच

कुठारो विशतात् कण्ठे मा वा विप्रवरस्य ते ।  
 अस्तु नो दारवैषम्यं गच्छतां धर्मं सादनम् ॥१७॥  
 तथापि न वयं वीरा ब्राह्मणेषु कदाप्यहो ।

## भार्गव उवाच

अहो प्रणतिं मात्रेण जानासि भृगुनन्दनम् ॥१८॥  
 वत्स ब्राह्मणमात्रेण दुष्टक्षत्रनिषूदनम् ।  
 सोऽहं परशुरामोऽस्मि यः स्कन्दमजयं पुरा ॥१९॥  
 क्षत्रजात्या गर्वितस्त्वं मां तृणाय न मन्यसे ।  
 तद्ब्रह्मक्षत्रयोस्तावदिदानीं का गरीयसी ॥२०॥  
 इतिसङ्ग्राममात्रेण भविष्यत्यद्य निर्णयः ।

## राम उवाच

न ब्रह्मन् भवता साद्धैरु रणवार्ता घटेत नः ॥२१॥  
 क्षत्रं हीनबलं तावद् ब्रह्मैव बलवत्तरम् ।  
 ऊर्जस्वलं च परमं विप्राणां ब्रह्मवर्चसम् ॥२१॥  
 दुराधर्षतमं तेज उपवीतस्य शाश्वतम् ।  
 जात्यैव गुरवो विप्राः कथं नेयाः शुभेच्छुभिः ॥२२॥

## लक्ष्मण उवाच

धनुरेकगुणं धत्ते बलमस्माकमूर्जितम् ।  
 उपवीतं नवगुणं विशिष्टं भवतां बलम् ॥२३॥

१. वैधव्यौ । २. °वैधव्य—मथु०, बडो० । ३. यम°—मथु०, बडो०। )  
 ४. तापस°—रीवाँ । ५. कलहागमः—रीवाँ । ६. न ब्रह्मणेन भवता—रीवाँ ।  
 ७. °मात्मानं—अयो०, मान्यं च—मथु०, बडो० । ८. इदमेकगुणं धन्व—अयो०,  
 मथु०, बडो० । ९. °वीतेन—रीवाँ ।

**राम उवाच**

वत्सैवमेव किं त्वस्मिन् माननोयतमे मुनौ ।  
अलं दुर्विनयाचारैर्यतोऽसौ दुर्मनायते ॥२४॥

**भार्गव उवाच**

अस्य को वा शिशोर्दोषः कुठारस्यैव दूषणम् ।  
यदस्य नावधीत् पूर्वं पितृपैतामहं कुलम् ॥  
धिक् क्षत्रगोत्रे करुणां यत्फलं दुर्वचस्त्वदम् ॥२५॥

**राम उवाच**

अलमस्मिन् क्षीरकण्ठे कोपेन भृगुवल्लभ ।  
तत् क्षम्यतां मुनीशान् पादयोस्ते नता वयम् ॥२६॥

**भार्गव उवाच**

किमुच्यते क्षीरकण्ठो विषकण्ठोऽस्ति खल्वसौ ।

**लक्ष्मण उवाच**

विषकण्ठस्य शिष्येण क्षन्तव्यो भवतास्मि भोः ॥२७॥

**भार्गव उवाच**

विषकण्ठत्वसाम्येन तर्तिक त्वमपि मे गुरुः ।

**लक्ष्मण उवाच**

भगवन्नन्यतात्पर्यन्मयोक्तं क्षन्तुमर्हसि ॥२८॥  
किरीटमधिरूढेऽपि बाले शिशिररोचिषि ।  
शितिकण्ठस्य नो चित्ते धत्ते कोपाङ्ग्कुरः पदम् ॥२९॥

**भार्गव उवाच**

अहो क्षत्रवटोरस्य वाक् पाठव॑ मिहाद्भुतम् ।  
क्षान्तमेव यथा तावदयन्तु क्षमते न हि ॥३०॥  
अशेषक्षत्रियवधे दीक्षितोऽयं परश्वधः ।  
कीलालकोकसकचैः क्षत्रियाणां समन्ततः ॥३१॥

१. विषोक्तण्ठो — मथु०, बडो० । २. चापल्यं—रीवाँ ।

त्रिवर्णा पृथिवीप्येषा कृता क्षत्रियवर्जिता ।  
 नीरेणुकीकृता भूमिर्दुष्टक्षत्रियशोणितैः ॥३२॥  
 तथा स्वर्गवधूवृन्दस्वयंवरमहोत्सवे ।  
 पद्ममालासहवाणां रेणुव्याप्तं कृतं नभः ॥३३॥

## लक्ष्मण उवाच

भार्गव त्वत्कुठारेण कृता नीरेणुका मही ।

## भार्गव उवाच

आस्तां तावत् कथं पापो रेणुकावृत्तमुत्कटम् ॥३४॥  
 संस्मारयति मेऽनेन मर्मस्पर्शं करोत्युत ।  
 अये<sup>१</sup> क्षत्रियपोत त्वां निरावाधनिमित्तकम्<sup>२</sup> ॥३५॥  
 कठोरभाषिणं कण्ठे हनिष्यामि तवाधुना ।

## जनक उवाच

जामदग्न्य मुधा वाक्यैः किमित्येवं प्रगल्भसे ।  
 तदिदानीं भवांच्छास्ता गृह्णतां वै शरासनम् ॥३६॥

## भार्गव उवाच

किमयं जनकः शिष्यो<sup>३</sup> याज्ञवल्क्यस्य योगिनः<sup>४</sup> ।  
 शरासनेन किं तेऽद्य पद्मासनमुपाश्रय ॥३७॥  
 युष्माकं क्षत्र<sup>५</sup>विप्राणां मिथ्योत्कण्ठा रणे खलु ।  
 तेऽन्ये वीरा खड्गधाराधौतारिस्त्रीदृगञ्जनाः ॥३८॥  
 योगमेवावलम्बस्व न युद्धं भवता समम् ।  
 रहस्य<sup>६</sup>चर्चया त्वं हि याज्ञवल्क्यं मुर्मिं भज ॥३९॥  
 एतावेव पुनः क्षत्रविस्फुलिङ्गौ मदोद्धतौ ।  
 निर्वापियामि परशुधाराऽचलजलैर्मुहुः ॥४०॥

## ब्रह्मोवाच

पुनः शतानन्द ऋषिः समागम्य जगाद तम् ॥४१॥

१. अरे—रीवाँ । २. निरपराधं ( निःपरा०-मथु०, ) निहन्मि किं—अयो०,  
 मथु०, बडो० । ३. जनको वक्ति—अयो०, मथु०, बडो० । ४. °वल्क्ययोगिनः—मथु०,  
 बडो० । ५. तत्र—अयो० । ६. रणस्य—अयो०, मथु०, बडो० ।

### शतानन्द उवाच

जामदग्न्य कथं तादृक् शान्तस्य वरयोगिनः ।  
जमदग्नेः सुतोऽपि त्वं जातोऽसि शमदुर्गतः ॥४२॥

### भार्गव उवाच

कस्मात्त्वया शिक्षितेयं शान्तिरेतादृशी खलु ।  
गौतमाद्वा भगवतः शक्राद्वा मातृजारतः ॥४३॥

### शतानन्द उवाच

आः पाप क्षत्रियापुत्र मातृकण्ठनिषूदन ।  
कुलाङ्गार तपस्तुङ्गमिदमाङ्गिरसं कुलम् ॥  
कलङ्गयसि मिथ्येव केनेदं शिक्षितं तव ॥४४॥

### भार्गव उवाच

आः पाप पांसुलापुत्र विशेषात् कुलपांसन ।  
भृगूणामग्रतः स्वीयं तपः श्रावयसेऽधुना ॥४५॥

### राम उवाच

भगवन् सर्वविख्यातं भृगूणामङ्गिरसां तथा ।  
तपः सुदुश्चरं<sup>१</sup> तत्र भृगुशिष्ये विशेषतः ॥४६॥  
अतो विज्ञापयास्येवं मुनीनामुचितं हि वः ।  
तपः शान्तं मन श्चैव स्फाटिका मणिमालिका ॥४७॥  
कुशाः कुण्डी तथा दण्ड उटजेषु च केतनम् ।  
नोग्रं वचो भ्रुभङ्गश्च न वाणधनुषी तथा ॥४८॥  
न वा परश्वधो हस्ते धर्मोऽयं च सनातनः ।  
अशुभः परशुः क्वासौ पवित्रं च वव वा कुलम् ॥४९॥  
क्वेदमुग्रं धनुर्ब्रह्मन् क्व च शीलं सुनिर्मलम् ।  
क्व शराः सुमहाघोराः पर्णशाला तथा वव वा ॥५०॥

### भार्गव उवाच

कथमन्यमुनेस्तुल्यं मन्यसे मां सुर्द्वरम् ।  
स एष जामदग्न्योऽस्मि यः क्षत्रियकुलान्तकः ॥५१॥

१. क्षमापयसे—मथु०, बड़० । २. तपःसुचरते—रीवाँ ।

रक्तधारासरित्पूरे निवृत्तोऽभिष्ठवो मम ।  
 तत्र क्षत्र॑शिरःकेशाः कुशा एवाभवन्मम ॥५२॥  
 पितृं स्तर्पयतो रक्तैरञ्जलिप्रसरोद्गतैः ।  
 तदहं हि यथा पूर्वं कृत्वा वारत्रिसप्तकम् ॥५३॥  
 कदनं पूर्वभूपानामकार्णं शोणितैर्नदीम् ।  
 तथान्यत्सप्तकृत्व॑स्त्रिकृत्वा विशसनं पुनः ॥५४॥  
 कापालीमक्षमालां तां भैरवस्थं निवेदये ।

### श्रीराम उवाच

प्रसीद रोषतो ब्रह्मन् जितं वारत्रिसप्तकम् ।  
 मा हारय यशस्तत्त्वं एकवारेण भार्गव<sup>३</sup> ॥५६॥

### भार्गव उवाच

कथं रे हारयिष्यामि यशः पूर्वं विनिर्जितम् ।  
 सर्वे भवन्तः सहिताः सहन्त॑ विशिखान् मम ॥५७॥  
 ईशत्यक्तं पुराणं तद्वलितं भवता धनुः ।  
 तेन गर्वायसे राम किमित्येवं मुहुर्मुहुः ॥५८॥  
 सोङुं न शक्तो मद्वाणान् भवतो गुरुरप्यसौ ।  
 त्यक्त्वा क्षत्रतनुं<sup>४</sup> यस्माद्ब्राह्मों वृत्तिमुपाश्रितः ॥५९॥

### श्रीराम उवाच

भगवन्तं गाधिसूनुं विश्वामित्रं जगद्गुरुम् ।  
 अधिक्षिपसि तेनैव सोढेयस्त्वं न चाधुना<sup>५</sup> ॥६०॥  
 जामदग्न्यमुने भग्नं न भग्नं वापि तद्धनुः ।  
 मग्नं मनसि ते शल्यं किभवेत्तावता पुनः ॥६१॥  
 त्रैयक्षं वैष्णवं चापि भवत्वाख्यातमन्त्र हि ।  
 युद्धं चेद्वाञ्छसि तदा वर्यं सज्जा रणाङ्गणे ॥६२॥

१. क्षत्रभर्त॑—अयो०, रीवाँ । २. कृत्वश्च—मथु०, बड़० । ३. मह्यं हारय तत्सर्वं तदा तुभ्यं ददे रणम्—रीवाँ, अतः परं—“महामर्षेण युक्तस्त्वमादरेण च भार्गव ।” इत्यधिकः पाठः—रीवाँ । ४. संहतान्—मथु०, बड़० । ५. क्षत्र धनु—अयो० । ६. नाधुना मया—रीवाँ ।

## ब्रह्मोवाच

एवं वादे निवृत्तेऽभूद्वीरकेलिः परस्परम् ।  
 ततः स भार्गवो रामं निर्वर्णं बहुधा मुनिः ॥६३॥  
 उवाच वचनं शान्तं वीतरोषस्तु तत्क्षणात् ।  
 अहो त्रैलोक्यममुना सुखितं जायतेतराम्<sup>१</sup> ॥६४॥  
 कोऽयं सौन्दर्यमाधुर्यसमुदायः सुखावहः<sup>२</sup> ।  
 बालः कुवलयश्यामो रामः कमललोचनः ॥६५॥  
 दृष्टिमानन्दयत्थेष जगतां पुरुषोत्तमः ।  
 कस्तेन समरं कुर्यान्नेत्रानन्देन स्वामिना ॥६६॥  
 स पूर्णः<sup>३</sup> पुरुषो ह्येषोऽवतीर्णो भूमिभारहृत् ।  
 ज्ञातसारो<sup>४</sup> न केनापि मनुजत्वेन मन्यते ॥६७॥  
 पूर्णं ब्रह्म चिदानन्दं मनुजाकृति दृश्यते ।  
 नानेन सदृशं वस्तु दृश्यते भुवनत्रये ॥६८॥  
 इदं तत्तेजसां तेजो ज्ञेयानां ज्ञेयमुत्तमम् ।  
 न ज्ञातं येन तज्जन्म मुधैव समभूद् भुवि ॥६९॥  
 येन ज्ञातो ह्यसौ देवः समृत्योर्मृत्युतामियात् ।  
 नमोऽस्मै पूर्णरूपाय पुरुषाय महात्मने ॥७०॥  
 योगीन्द्रहृदयागारवासिने ब्रह्मरूपिणे ।  
 अनेन तुल्यतामेति एष एव महाशयः ॥७१॥  
 अयं रामो लोकरामो रमाया वल्लभः स्वयम् ।  
 नमाम्यमुष्य चरणौ बालकस्य महात्मनः ॥७२॥  
 एष एव गवेन्द्रस्य सुखितस्यालये वसन् ।  
 जघान राक्षसानीकं स्ववीर्येण महाबलम् ॥७३॥  
 बलकृष्णादिरूपाणि अमुष्यैव महात्मनः ।  
 एष पूर्णः स्वयं रामो विश्वरूपो जनार्दनः ॥७४॥  
 नचास्य प्रभवो नान्तो न मध्यं न पुनर्भवः ।  
 पूर्णरूपः स्वयं लाभः स्वतन्त्रो निरवग्रहः ॥७५॥

१. जायतां तदा—रीवाँ । २. पुरो मम—मथु०, लड्डो० । ३. सुपूर्णः—मथु०,  
 लड्डो० । ४. ज्ञाततत्त्वो—रीवाँ ।

नास्य लीलाविधौ कश्चिद्देतुरस्ति जगत्त्रये ।  
 अयमेव स्वरूपेण चिदानन्दमयाकृतिः ॥७६॥  
 अमुष्य सहजा॑शक्तिः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।  
 अवतीर्णोऽयमधुना मम तेजोऽपहारकः ॥७७॥  
 ज्ञाततत्त्वः प्रभुः पूर्णो रणं कः कर्तुमिच्छति ।  
 क्षामयाम्यपराधं स्वमस्य पादाब्जवन्दनात् ॥७८॥  
 इत्युक्त्वा सोऽग्रहीत् पादौ रामस्य भृगुनन्दनः ।  
 एवं मा कुरु हे ब्रह्मन् वन्द्योऽसि जगतः प्रभो ॥७९॥  
 जामदग्न्य तपोराशौ त्वयि नः संततं नतिः ।  
 ततोऽज्जलिपुटे बद्ध्वा रामः पञ्चजलोचनः ॥  
 ववन्दे मुनिशार्दूलं भार्गवं वीतविग्रहम् ॥८०॥

### भार्गव उवाच

निसर्गकल्याणविधौ त्वय्याशोः पुनरुत्थिता ।  
 तथाप्याशास्महे नित्यं वयं भक्ताः प्रभुर्भवान् ॥८१॥  
 विस्तारयद्यशः शुभ्रं राघवेन्द्रकुलेऽमले ।  
 शरदां च सहस्राणि तप<sup>३</sup> त्रैलोक्यमण्डले ॥८२॥  
 हर राम भुवो भारं कृतार्थय निजान् जनान् ।  
 इत्युक्त्वा तुष्टहृदयो निर्जगाम भृगूत्तमः ॥८३॥  
 इतिश्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे भार्गव-  
 निर्जयो नाम<sup>३</sup> अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥



१. अमुष्यास्य सङ्दा०—मथु, बड़ो० । २. तपन्—रीवाँ । ३. °निर्जये—अयो०,  
 रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

## एकोनाशातितमोऽध्यायः

**ब्रह्मोवाच**

विश्वामित्रस्यानुमत्या जनकः सुमहाशयः<sup>१</sup> ।  
 उर्मिलां लक्ष्मणायादान्माण्डवीं भरताय च ॥ १ ॥  
 श्रुतकीर्ति शत्रुहन्ते विधिवत् प्रददौ नृपः ।  
 पारिवर्हमदाद् भूयः सर्वेभ्यश्च पृथक् पृथक् ॥ २ ॥  
 गजान् दशसहस्राणि हयानामयुतं नृपः ।  
 सुवर्णानि च रत्नानि रथांश्च सपरिच्छदान् ॥ ३ ॥  
 दासीः कमलपत्राक्षीः सालङ्काराः शुभाननाः ।  
 सीतायै जनकः प्रादादन्यच्च विपुलं धनम् ॥ ४ ॥  
 उर्मिलायै च माण्डव्यै श्रुतकीर्त्यै तथैव च ।  
 असंख्येयं वस्तु प्रादादुत्तरोत्तरतो वरम्<sup>२</sup> ॥ ५ ॥  
 पुरः<sup>३</sup> प्रस्थानसमये सुमहान् मङ्गलोत्सवः ।  
 अभूद्वाधववर्यस्य वरवध्वतिः<sup>४</sup> मङ्गलम् ॥ ६ ॥  
 विवाहमङ्गले पीतवस्त्रवेशादिभूषिताः ।  
 रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता रेजिरेतराम् ॥ ७ ॥  
 शङ्खदुन्दुभिभेरीभिः पणवानकगोमुखैः ।  
 अन्यैर्मङ्गलिकैर्वाद्यैः स शब्दः सुमहानभूत् ॥ ८ ॥  
 विमानावलिभिर्वर्योम देवैः कौतुकसंगतैः ।  
 सिद्धविद्याधराद्यैश्च व्याप्तमासीत् समन्ततः ॥ ९ ॥  
 मङ्गलं सुमहत्तत्र नरनारोगणेष्वभूत् ।  
 सीतारामौ शुभाशीर्भिर्ब्रह्मणाः समपोषयन् ॥ १० ॥  
 सुमहान्मङ्गलोपेतो राजा दशरथः कृती ।  
 सवधूकैः सुतैर्युक्तः साकेतपुरमागमत् ॥ ११ ॥  
 तत्र वैवाहिकं दिव्यं कौतुकं परिपश्यताम् ।  
 जनानां नयनानन्दो बभूव सुमहान् मुहुः ॥ १२ ॥

१. स महा०—मथु०, बड़ो० । २. मनोज्ञां च ततो वरं—अयो०, रीवाँ० ।  
 ३. पुरा—अयो०, मथु०, बड़ो० । ४. °वर्ज्वे सु०—रीवाँ० ।

गीतवाद्यविनोदेन महता संभ्रमेण च ।  
 वरवद्धवोः प्रवेशेणाऽप्ययोध्या शुशुभेतराम् ॥१३॥  
 चित्रध्वजपताकाद्यैर्भवनानि विरेजिरे ।  
 लाजदध्यक्षतजलैः पुराध्वानो विरेजिरे ॥१४॥  
 स्थले-स्थले<sup>१</sup> च नारोणां सुगीतं समजायत ।  
 शुभाशिषः प्रयुज्जाना ब्राह्मणा समुपाययुः ॥१५॥  
 नर्तक्यो ननृतुश्चैव गन्धर्वा जगुरुच्चकैः ।  
 जगत् प्रमुमुदे सर्वं सीतारामस्वयंवरे ॥१६॥  
 भवताः परमहंसाश्च महाभागवता नराः ।  
 दृष्ट्वा सीतायुतं रामं स्वभाग्यं<sup>२</sup> बहु मेनिरे ॥१७॥  
 तथा सूक्ष्मदृशः केचिद्वौगिनो रामसेवकाः ।  
 रामे नित्यस्थितां सीतां विशेषाद् ददृशुर्मुदा ॥१८॥  
 अमृतौघप्रवर्षी<sup>३</sup> च स कालः समभून्तृणाम् ।  
 यत्र सीतायुतं रामं ददृशुः प्राकृता अपि ॥१९॥  
 परंब्रह्म पराशक्तिः सीतारामेति कथ्यते ।  
 चिदानन्दवपुः साक्षात्कल्याणगुणचार्चितम्<sup>४</sup> ॥२०॥  
 तद्यस्य गोचरं दृष्टच्योः स वै धन्यतरो नरः ।  
 अयोध्यास्थान् जनान् सर्वान् पशुपक्ष्यन्तिजानपि ॥२१॥  
 हरभ्यामा<sup>५</sup> नन्दयामास रामः सीतावधूयुतः ।  
 यथा राकाचन्द्रिकया युतः शारदचन्द्रमाः ॥२२॥  
 सुखितस्यालये स्थित्वा गोपेन्द्रनन्दनात्मजा ।  
 या रता रघुरामेण सैवाभूजनकात्मजा ॥२३॥  
 अंशरूपेण सर्वत्र सीता सर्वस्वरूपिणी ।  
 नानया रहितो रामः क्वचित्स्थास्यति निश्चितम् ॥२४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे सीतारामसमागमनो  
 नाम एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

१. स्थाने स्थाने—रीवाँ । २. हृदभाग्य—अयो०, मथु०, बड़ो० । ३. °घस्य  
 वर्षा—रीवाँ । ४. °वर्जितम्—बड़ो० । ५. दृशोरा°—रीवाँ ।

## अशीतितमोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

इत्थं गाधिसुतो रामं नीत्वा धनुरशक्षयत् ।  
 धनुर्विद्याप्रसंगेन तेन यज्ञमरक्षयत् ॥ १ ॥  
 कृतोपकारं तं स्वस्य यज्ञप्रत्यूहनाशनात् ।  
 सीतास्वयंवरे नीत्वा तां पत्नीं समकल्पयत् ॥ २ ॥  
 वधूयुतं वरं रामं सानुजं पुनरानयत् ।  
 अयोध्यानगरीमध्ये प्रजासौख्यं वितीर्णवान् ॥ ३ ॥  
 एवं महाभाना धीरो गाधेयो मुनिसत्तमः ।  
 चक्रे मैत्रीं दशरथेन राजा धर्मेण भूभूता<sup>१</sup> ॥ ४ ॥  
 नृपं मुनिरनुज्ञाय स्वाश्रमं समग्रात्ततः ।  
 रामः स्थितो यौवराज्ये प्रजासंतोषमाचरत् ॥ ५ ॥  
 सीतां संतोषयन् भूयो रेमे<sup>२</sup> केलिकदम्बकैः ।  
 सहजानन्दिनीं रामां रतिकोटिगरीयसीम् ॥ ६ ॥  
 कृतयज्ञक्रियारक्षो हतराक्षससैनिकः ।  
 रामश्चक्रे यौवराज्यं नन्दन् दशरथं नृपम् ॥ ७ ॥  
 यौवराज्ये स्थितो रामः प्रमोदविषिने हि तत् ।  
 नित्यं गच्छति केल्यर्थं लतानां भूरिसंपदा ॥ ८ ॥

### भूशुण्ड उवाच

का इमास्तत्र विपिने लताललितसंपदः ।  
 यासु श्रीरामभोग्यत्वमाधुर्यं संततं स्थितम् ॥ ९ ॥  
 लताः स्थावररूपास्ताः कथं रामेण रेमिरे ।  
 एतन्नः संशयं छिन्धि भूयो लोकपितामह ॥ १० ॥

### ब्रह्मोवाच

इदं रहस्यं परमं चरित्रं रामस्य ते वच्चिम पुराणकल्पम् ।  
 खगेन्द्र वेदैरपि गीतपूर्वं नित्यं महाभागवतैकहृद्यम् ॥ ११ ॥

---

१. भूभुजा—आयो० । २. स्मरकेलि०—मथु०, बड़ो० । ३. दैवैरपि—अयो० ।

यौवराज्ये स्थितं राममभिरामवयोगुणम्<sup>१</sup> ।  
 उदारं रूपलावण्यं निधिं परमधार्मिकम् ॥१२॥  
 रममाणं श्रिया साकं रामया सीतया तया ।  
 पीयूषमिव वर्षन्तं नेत्रानन्दं स्ववन्धुषु ॥१३॥  
 जननीं तोषयन्तं च वात्सल्यरसरूपिणीस् ।  
 कृतनीराजनं नित्यं सायंप्रातर्दिने दिने ॥१४॥  
 मृगयाभिः खेलमानं धावन्तं घनकानने ।  
 पितुर्दशरथस्यापि पूरयन्तं मनोरथान् ॥१५॥  
 सहस्रं शरदो याताः निवसन्तं पितुर्गृहे ।  
 कदाचिदेकान्तचरं नारदः प्रत्यपद्यत ॥१६॥  
 तं दृष्ट्वा सहस्रोत्थाय ब्रह्मदूतं मुनीश्वरम् ।  
 सुस्थितं चार्हयाऽचक्रे पाद्याध्याचिमनादिभिः ॥१७॥  
 कृतातिथ्यो मुनिश्रेष्ठो नन्दथुः प्रीतमानसः ।  
 उवाच स्मयमानस्तं प्रीत्युन्नमितलोचनः ॥१८॥

### नारद उवाच

तव राम चरित्रेण नन्दितं सकलं जगत् ।  
 भक्ताः परमहंसाश्च श्रवणेन कृतार्थिताः ॥१९॥  
 गायन्ति सुरनार्यश्च<sup>२</sup> सुन्दरं विमलं यशः ।  
 गङ्गाम्बुपावनं साक्षात् पीयूषैघप्रवर्षणम् ॥२०॥  
 रामरामेति भवतो यज्ञामश्रुतिगोचरम् ।  
 तदेव शरणं लोके इदानीं निश्चितं प्रभो ॥२१॥  
 नाम्ना रूपेण बहुधा क्रीडसे पुरुषोत्तम ।  
 लीलया रमयन् विश्वं भक्तान् भागवतान् नरान् ॥२२॥  
 नहि ते पूर्णरूपस्य न्यूनता क्वापि दृश्यते ।  
 रूपमाधुर्यविक्रान्तिगुणशीलादिषु प्रभो ॥२३॥  
 पूर्णोऽसि ब्रह्मरूपोऽसि तादृशं चरितं तव ।  
 जीवनं भक्तलोकानामवाङ्मनसगोचरम् ॥२४॥

१. कल्याणगुणसागरं—रीवाँ । २. नित्यलावण्यं—रीवाँ । ३. °स्ते—मथु०,  
 बड़० ।

सर्वं जानासि विषयं कृतं कर्तव्यमेव च ।  
 नापेक्षसे नियोगं त्वं ब्रह्मणोऽपि महात्मनः ॥२५॥  
 तथापि सेवकैर्नित्यं प्रार्थनीयः प्रभुः प्रभो ।  
 स्वतन्त्रोच्छो दयासिन्धुः पूर्णात्मा भक्तशेवधिः ॥२६॥  
 इति विज्ञाय विधिना प्रेषितोऽहं त्वदन्तिके ।  
 कथयिष्यामि संदेशं शृणोतु भगवान् किल ॥२७॥  
 साकेतपुरपर्यन्ते यद्रसालवनं महत् ।  
 तत्र नार्यो लतारूपास्तव भक्ता जगत्पते ॥२८॥  
 मन्मानसभवाः पूर्वं सृष्ट्यादौ ब्रह्मणः किल ।  
 ब्रह्मकल्पे संप्रसूता<sup>१</sup> विधेभानिसतो मम ॥२९॥  
 चन्द्राननाः शुभोदर्का उदारास्तनुमध्यभाः ।  
 तडित्कोटिप्रभाः श्यामाः सुनासामृतलोचनाः ॥३०॥  
 इन्दिरा एव ताः साक्षात् सौन्दर्येण स्मरप्रियाः<sup>२</sup> ।  
 ज्योत्स्नावलक्षहसिता असितापाङ्गकेलयः ॥३१॥  
 ता वीक्ष्य मुमुहुः सर्वे देवता विधिपाश्वर्तः ।  
 संपन्नवयसो ज्ञात्वा प्रोक्तवानहमुतमम् ॥३२॥  
 सुन्दरीः सकलास्तास्तु निजमानससंभवाः ।  
 भो भो पुन्यो दिव्यरूपा भवन्त्यः स्वोचितान् जनान् ॥३३॥  
 वृणन्तु देवगन्धर्वराक्षसेषु यथास्पृहम् ।  
 नगनागमनुष्येषु पशुषु द्रुमपक्षिषु ॥३४॥  
 यथायोगं<sup>३</sup> यथाकामं लभन्तां शुभगान् वरान् ।  
 स्त्रीणां हि भर्तैव गतिर्भर्तुर्धर्मः सदागतिः ॥३५॥  
 इत्युक्त्वा विरते वाक्यं मयि<sup>४</sup> नोचुः शुचिस्मिताः ।  
 ततोऽहं लज्जिता ज्ञात्वा ब्राह्मीं विद्यामुवाच ह ॥३६॥  
 वद<sup>५</sup> त्वं पुत्रिके एता भगिनीर्मन्मनोभवाः<sup>६</sup> ।  
 वरार्थं स्पृहयन्त्वेतास्त्रैलोक्ये भूरितेजसम् ॥  
 सरस्वती तु ताः सर्वा एतत् प्रोक्तवतीं वचः ॥३७॥

१. प्रसूतामि—अयो० । २. °र्ये रतिराशयः—रीवाँ । ३. °योग्य—रीवाँ ।

४. यदि—रीवाँ । ५. यदि—रीवाँ । ६. °दया—रीवाँ ।

## सरस्वत्युवाच

अये भगिन्यः शृण्वन्तु हितं वः प्रोच्यते वचः ।  
 विधीयतां तत्तथैव ममैवाज्ञातमा चिरम् ॥३८॥  
 देवानां प्रवरः शक्रः सर्वदेवगणैर्बृतः ।  
 ततश्च द्वादशादित्या वसवोऽष्टौ च शंकराः ॥३९॥  
 एकादश च विश्वे च साध्याश्च मरुतस्तथा ।  
 अन्ये च विविधैश्वर्यभूषिता देवसत्तमाः<sup>१</sup> ॥४०॥  
 गन्धर्वाश्च तथा सिद्धा मुख्याश्चित्ररथादयः ।  
 देत्याश्च बहवः सन्ति मुख्यस्तेषां वलिर्मतः ॥४१॥  
 राक्षसाश्चैव विविधा भूतिभाजो भवे मम ।  
 तथैव दानवाः सन्ति वराद्या बलशालिनः ॥४२॥  
 मनुष्याणां नृपाः श्रेष्ठा मर्त्यलोके सहस्रशः ।  
 स्रोतसां सागरो राजा नगानां च हिमालयः ॥४३॥  
 मेरुर्वा सर्वदेवानां स्थानभूतो मनोरमः ।  
 सुपर्णो वासुकिः श्रेष्ठो हरेरंशः सनातनः ॥४४॥  
 एषां मध्ये यथाकामं वरार्थं प्रतिपद्यते ।  
 इत्यादेशो विधेः सख्यस्त्रैलोक्यपरमेष्टिनः ॥४५॥  
 विधीयतां तथा<sup>२</sup> कार्यं भवतीनां हितं हि तत् ।  
 तदाकर्ण्णविदन् वाक्यं ताः सर्वाः पद्मलोचनाः ॥४६॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वल्लरीमोक्षोपाख्यानं<sup>३</sup>  
 नाम अशीतितमोऽध्यायः ॥४०॥



१. विविधा देवा विविधैश्वर्यभूषिताः—मथु०, बड़ो० । २. यथा—रीवाँ० ।  
 ३. °ख्याने—अयो०, रीवाँ०, मथु०, बड़ो० ।

## एकाशीतितमोऽध्यायः

कन्यका<sup>१</sup> ऊचुः

सरस्वति महाप्राज्ञे कथमेवं व्रवीषि नः ।  
 तुच्छं हि जगदेवेदं आब्रहस्तम्बतोऽखिलम्<sup>२</sup> ॥ १ ॥  
 सारमेकं रामनाम विश्वे यस्य महात्मनः ।  
 रामस्य देववन्द्यस्य त्रयीतत्त्वार्थरूपिणम् [णः] ॥ २ ॥  
 कायेन मनसा वाचा तमेवाखिलरूपिणम् ।  
 प्रतिपद्यामहे नान्यं देवं गन्धर्वमेव च ॥ ३ ॥  
 अनित्यैव विधेलक्ष्मीर्वसूनां वासवस्य च ।  
 गन्धर्वाणां दानवानां दैत्यानां चैव रक्षसाम् ॥ ४ ॥  
 इति विज्ञाय गणितं तृणवत् सकलं जगत् ।  
 ततश्चुकोप सहसा तास्वहं<sup>३</sup> प्रतिकूलतः ॥ ५ ॥  
 उवाचपरुषं वाक्यं रुषा रज्जितलोचनः ।  
 भवतीनामलभ्योऽसौ स्त्रीणां रामः सुदुर्लभः ॥ ६ ॥  
 भर्तृद्वारा<sup>४</sup> गतिस्तासां युष्माकं विधिर्दर्शिता<sup>५</sup> ।  
 तच्चेन्न मन्यथ तदा स्थावरा भवति स्त्रियः ॥ ७ ॥  
 मां शक्रं च तथा देवं [व] गणं सकलमद्भुतम् ।  
 गन्धर्वाश्च तथा दिव्यानन्यांश्च मम सृष्टिजान् ॥ ८ ॥  
 यतोऽवगणयाऽचक्रुर्युं पद्मविलोचनाः ।  
 तेन दोषेण गन्धर्व्यः<sup>६</sup> स्थावरीं वृत्तिमाप्स्यथ ॥ ९ ॥  
 इत्युक्त्वा परुषं शापं<sup>७</sup> विरते मयि तत्क्षणात् ।  
 प्रोचुस्ताः सकलाः शप्ताः संतप्ता निजमानसे ॥ १० ॥

१. कन्या—अयो०, रीवाँ । २. तोषितम्—अयो० । ३. ताः सर्वाः—अयो०,  
 रीवाँ । ४. भर्ता नरो—रीवाँ । ५. दर्शितः—रीवाँ । ६. गंधर्वाः—रीवाँ । ७. परुषा  
 तत्र—रीवाँ ।

कन्या उत्तुः

कदा विधे<sup>१</sup> विभोक्ष्यामः<sup>२</sup> शापादस्माद्द्वयद्वारात् ।  
 असंशयन्नः संतप्ता एतद् व्रूहि पितामह ॥११॥  
 यथा<sup>३</sup> कुर्यात् पिता नृणां सदसद्वा तथा भवेत् ।  
 पितेव चेदशुभकृत् तर्हि शर्म करोतु कः ॥१२॥  
 तदाहमूचे निजमानसोद्द्वाः कन्याः स्थिताः पुरतः शापतप्ताः ।  
 निर्मायभूयः करुणावशंवदः तासां रूपं सार्थकं संविधत्सुः ॥१३॥  
 प्राप्ते सारस्वते कल्पे द्वार्चिशतितमे युगे ।  
 त्रेतायां सरयूतीरे त्रिशश्योजनमण्डले ॥१४॥  
 अयोध्यायां ब्रह्मपुर्या स्वयं रामो भविष्यति ।  
 भुवो भारावताराय पूर्णब्रह्म सनातनः ॥१५॥  
 राम एव स्वयं स्वामी शापं वो मोचयिष्यति ।  
 भविष्यति च भर्ता वः स एव जगदीश्वरः ॥१६॥  
 तत्पादपद्मरजसा धूतशापा भविष्यथ ।  
 तावत्तत्र लतारूपमास्थाय सरयूतटे ॥१७॥  
 तिष्ठन्तु सकला यूयं रसालविपिने शुभे ।  
 इत्युक्त्वा मयि नियति लतास्ता अभवन् भुवि ॥१८॥  
 यथानिरूपिते स्थाने पुष्पवत्यः फलानताः ।  
 रसालद्रुमस्कन्धेषु परिरब्धसुविग्रहाः ॥१९॥  
 षट्त्रिशत्कोटिगुणिताः सौरभाज्ञितविग्रहाः ।  
 वर्षावातातपहिमं सहन्त्यो व्रतकर्णिताः ॥२०॥  
 तलच्छायानिषादीनि शिवलिङ्गानि कोटिशः ।  
 पूजयन्त्यः सुपष्पौर्घ्यैः काले-काले दिवानिशम् ॥२१॥  
 एवं सारस्वतं कल्पं कष्टेन समुपाश्रिताः ।  
 तासां समुद्धृतिं राम इदानीं कर्तुमर्हसि ॥२२॥  
 अवतीर्णः सदा च त्वं परमात्मा सनातनः ।  
 समुद्धर विलम्बेन नोपेक्षस्व स्वसेवकान् ॥२३॥

१. विभो—अयो० । २. निर्मोक्ष्यामः—मथु०, बड़ो० । ३. यावत्—रीवाँ ।

अतः परं विलम्बस्तु तासां सौख्येऽन्तरायकः ।  
 एतद्विरज्जिचराह त्वां राम राघवपुञ्जव ॥२४॥

अतः परं प्रभो तावद्यथाहं कर्तुमहंसि ।  
 मया लब्धं दर्शनं ते राम पूर्णो मनोरथः ॥२५॥

विहितो धातुरादेशो भक्तोद्वारैङ्कृतेऽर्थिनः ।  
 अतः परं स्वर्गन्तुं मामनुजानासि राघव ॥२६॥

त्वद्यशो गाययिष्यामि गच्छर्वान् ललितैः स्वरैः ।  
 वीणां क्वणन् सुमधुरां सख्या तुम्बुरुणा युतः ॥२७॥

इत्युक्त्वा निर्ययौ तस्मादेवर्षिनरदाभिधः ।  
 रामेण वन्दितो भूयः सीतया चैव भक्तितः ॥२८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे विधिविज्ञापनं नाम<sup>३</sup>  
 एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥



### द्वयशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कदाचिद् भ्रातृभिः सादृं मृगयार्थं विनिर्गतः ।  
 रामः कुवलयश्यामः कौतुकी सेनया वृतः ॥ १ ॥

दन्तिनो वाजिनश्चैव स्यन्दनानि च पत्तयः ।  
 सज्जिताः पत्तयो रेजुर्नृपसूनोर्महात्मनः ॥ २ ॥

तत्र रामः स्वयं दिव्यरथोपस्थे विराजितः ।  
 शारदाभ्रोपरि भ्राजन् पूर्णचन्द्र इवाभवत् ॥ ३ ॥

आवद्धरत्नकनकेषुधिरात्तचापः  
 सन्नाहवान् कनकवज्रशिरस्त्रधारी ।

मूर्तः स वीर इव सच्चतुरङ्गिणीषु  
 रेजे महोज्जवलवपुर्नृपतेः कुमारः ॥ ४ ॥

१. भक्तिद्वार०—अयो०, रीव० । २. स्वर्गांतुमनु—रीव० । ३. विज्ञापने—  
 अयो०, रीव०, मथु०, बड़० ।

महत्या सेनया युक्तः पुरलोचनसौख्यदः ।  
 अगमत् काननं घोरं सरयूतटभूमिषु ॥ ५ ॥  
 आम्यतप्रसूतकरिणीकरभं समन्तान्मत्तेभवृहितदरीप्रतिनादभीमम् ।  
 विक्रान्तकेसरिकुलं विलुललुलायं वाराहखातवनमुस्तलसन्मयूरम् ॥ ६ ॥

घनभूरुहराजीभिः समन्ताद् दुर्गमं महत् ।  
 कूर्दमानमृगीपोतं मत्तश्वापदभीषणम् ॥ ७ ॥  
 व्यालोलूकरवाक्रान्तं शल्लीकुलदुर्गमम् ।  
 माद्यत्तरक्षुशरभं शार्दूलगणनादितम् ॥ ८ ॥  
 संभ्राम्यदुन्मदानोकदैत्यदानवराक्षसम् ।  
 लसद्वनलताकुञ्जलीनकेसरिपोतकम् ॥ ९ ॥  
 कूजत्कोकिलकीराढचं प्रमत्तत्रमरीकुलम् ।  
 करालोच्छूनभल्लूकपूर्णमानदरीविलम् ॥ १० ॥  
 प्रविष्ट एव रामस्तु धनुर्मुक्तमहेषुभिः ।  
 त्रासयामास दुर्जीवान् क्रूरान् स्वकुलधातकान् ॥ ११ ॥  
 एक एव बली रामः संजहे भीषणान् हरीन् ।  
 शार्दूलांश्च तरक्षंश्च महिषांश्चातिभीषणान् ॥ १२ ॥  
 दुष्टानि सर्वसत्त्वानि धातयामास कानने ।  
 रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्चैव शत्रुहा ॥ १३ ॥  
 मृगेषु मोचयामास मृगयासुपून् शुनः ।  
 तरक्षंश्च विमुक्ताक्षान् श्येनांश्च मृगयोत्कटान् ॥ १४ ॥  
 वृषार्क इव सरेजे प्रतापी राघवोत्तमः ।  
 तीक्ष्णैर्वर्णांशुसंदोहैः प्रतपन् सर्वतो दिशम् ॥ १५ ॥  
 वीररौद्ररसोदारो रामः संततमुज्ज्वलः ।  
 चञ्चलं हयमारुढो मृगयायां रराज सः ॥ १६ ॥  
 दैतेयान् दानवांश्चैव राक्षसान् यक्षदुर्भटान् ।  
 निजधान शरैर्घोरैरसंख्यान्<sup>१</sup> राघवोत्तमः ॥ १७ ॥

१. <sup>०</sup>संख्य—मथु०, बडो० । २. संख्यान्—मथु०, बडो० ।

दुगमं काननं चक्रे सुगमं रघुनाथकः ।  
 संजगुस्तद्यशो देव्यः<sup>१</sup> प्रसर्भं वनदेवताः ॥१८॥  
 अथ<sup>२</sup> कुर्वन् वनक्रीडां रामः कमललोचनः ।  
 सरयूतीरमभ्येत्य चक्रे विश्राममाप्लुतः ॥१९॥  
 सरयूतटकुञ्जेषु कृत्वा माध्याह्निकीं क्रियाम् ।  
 भुक्त्वा प्रत्यग्रवसनरत्नालङ्कारभूषितः ॥२०॥  
 देवगङ्गां समुत्तीर्य द्राक्षी<sup>३</sup>सरयुसंगमे ।  
 अपश्यत् स वनं रस्यं प्रमोदवनपाद्वर्तः ॥२१॥  
 रसालवनमत्यर्थं वनानामुत्तमं वनम् ।  
 कूजत्कोकिलसंघुष्टं मत्तभ्रमरनादितम् ॥२२॥  
 केकिकेकामनोज्ञं तन्मयूरीगणनादितम् ।  
 तुङ्गप्रतानिनीपुञ्जपरिरब्धमहाद्रुमम् ॥२३॥  
 लतावृक्षफलाक्रान्तं पुष्पवृक्षनिषेवितम् ।  
 सरःसु हंसचक्राह्वकलहंसकुलाकुलम् ॥२४॥  
 देवगङ्गाजलकणस्पर्शशीतलमास्तम् ।  
 द्राक्षी<sup>४</sup>तरङ्गकल्लोलशीतलानिलचालितम् ॥२५॥  
 रसालतस्त्रभिर्व्याप्तं नित्यं फलप्रसूनकैः ।  
 तत्र गत्वा मनोहारि रसालवनमद्भुतम् ॥२६॥  
 मया निरूपितं स्थानं नारदेन मनोषिणा ।  
 लतामण्डपमभ्येत्य तत्तथा संदर्शं सः ॥२७॥  
 श्रीरामचन्द्रचरणाम्बुजधूलिपुञ्ज-  
     स्पर्शान्तिवृत्तविधिशापविपाकतायाः ।

सद्यो विहाय लतिकात्वमस्मूर्मूर्गाक्षयः  
 प्रारजन्मदेहस्त्रिरूपविशेषमापुः ॥२८॥

सर्वास्ता मदिराकाराः शरज्जयोत्सनातडित्तिवषः ।  
 पूर्णन्दुवदना रेजुः साक्षात्प्राप्ता इव श्रियः ॥२९॥

१. दिव्यं—रीवाँ । २. इत्थं—मथु०, बडो० । ३. द्राक्षी<sup>०</sup>—मथु०, बडो० ।  
 २. द्राक्षी—मथु०, बडो० ।

तासां रूपविलासेन राघवश्चकितोऽभवत् ।  
 अहो अपूर्वसौन्दर्यं दुर्लभं नरजन्मनि ॥३०॥  
 एता हि देवताः काश्चित्प्रभामण्डलमण्डिताः ।  
 इति प्रपेदे वैचित्र्यं दृष्ट्वापूर्वा तनुप्रभाम् ॥३१॥

## राम उवाच

का वै भवत्यस्त्रिदशाङ्गना वा नागाङ्गनाः किंपुरुषाङ्गना वा ।  
 शच्यःश्रियो वा रतयोऽप्सरा वा रम्भावृता वा प्रमुखाः श्रियो वा ॥३२॥  
 अहो इदं रूपमपूर्वदृष्टं तडित्प्रकाशं शरदिन्दुकाम्यम् ।  
 सुधाप्रवर्षं प्रमुदां निधानं कृतार्थयिष्यन् पुरुभागधेयान् ॥३३॥  
 के वा वरा वस्तडिदाकृतीनां सुजन्मभाजो मनुजापि देवाः ।  
 यैर्चितः पूर्वभवे विरचिचस्त एव पाणिग्रहणोचिता वः ॥३४॥  
 सितासितास्बुद्ध्यसंगमे वै सरस्वतीतोयमध्ये प्रविश्य ।  
 त्यक्त्वा तनुर्वापि त एव युष्मत्पाणिग्रहाणामुचिता सुभाग्याः ॥३५॥  
 इत्युक्त्वा विरते रामे विहस्य तनुमध्यमाः ।  
 विधिमानसजाः कन्या ऊचिरे मधुरं वचः ॥३६॥

इति श्रीमद्दादिरामायणे ब्रह्मभुगुण्डसंवादे वल्लरीमोक्षो-  
 पाख्यानं नाम<sup>१</sup> द्वचशीतितमोध्यायः ॥ ८२ ॥

---

१. °पाख्याने—अयो०, रीवाँ, मथु० बडो ।

## त्र्यशीतितमोऽध्यायः

**बल्लर्य ऊचुः**

ब्रह्मणो मानसाज्जाता वयं कन्याः सुलोचनाः ।  
 षट्ट्रिशत्कोटिगुणिता असंख्याताः सहस्रशः ॥ १ ॥  
 अस्माकं रूपलावण्यश्रिया श्रीरपि निर्जिता ।  
 श्यामाः पूर्णेन्दुवदना विधिदृष्टा वरोचिता ॥ २ ॥  
 प्रत्युवाच जगत्सर्वं वरार्थं रूपयन्निदम् ।

**ब्रह्मोवाच**

अहो यूयं देवकन्याः श्यामाः कुवलयेक्षणाः ॥ ३ ॥  
 वरार्थं पश्यततरां जगत्स्थावरजङ्गमम् ।  
 स्वयं संप्रोच्य बहुशः सरस्वत्याप्यचोकथत् ॥ ४ ॥  
 ततो वयं सावर्णमुक्तवत्यः सरस्वतीम् ।  
 अलं देवि मृषाभूतजगत्संग्रहणेन नः ॥ ५ ॥  
 तथापीद्धं जगत्सर्वं तुच्छमेव विमर्शितम् ।  
 फलगुचान्ते च विरसं भूयो दुर्गतिदायकम् ॥ ६ ॥  
 तमेव देवं जगतां निदानं भजामहे राम इति प्रसिद्धम् ।  
 स्थिता अभी यस्य वशे सुरौघा इन्द्रादयो ब्रह्मणा चापि सार्द्धम् ॥७॥  
 इति श्रुत्वा विरचित्वस्तु चुक्रुधे रजसोभवः ।  
 शप्तवान् नः स्वरचनानादरात् कुपिताशयः ॥ ८ ॥  
 स्थावरत्वं व्रजत हे मुग्धाः संकोचिताशयाः ।  
 अवहेलितगीर्वाणाः स्वधियैव कृतार्थवत् ॥ ९ ॥  
 तेन शापेन सुभग लताभावं समाश्रिताः ।  
 रसालवनमध्यस्था दिवसानतिवाहिताः ॥ १० ॥  
 ब्रह्मकल्पं समारभ्य यावदद्य वयं स्थिताः ।  
 प्राप्ते सारस्वते कल्पे मुक्तशापा इहाधुना ॥ ११ ॥  
 तब श्री चरणाम्भोजरजसा तीर्णदुष्कृताः ।  
 लतारूपं परित्यंज्य वयं जाता यथास्थिताः ॥ १२ ॥

रामदर्शनावधिक उक्तः शापो विरचिता ।  
 तस्मात्त्वं राम एवासीः पूर्णः पुरुषपुञ्जवः ॥१३॥  
 त्वं भर्ता नः प्रभो पूर्वमस्माभिः परिरम्भितः ।  
 रमयिष्यसि रासेन्द्रो एतस्मिन्निर्जने वने ॥१४॥  
 अमी हि तरवः पूर्वमस्माभिः परिरम्भिताः ।  
 तेनैव परकीयात्वमस्मासु रसिकोत्तम ॥१५॥  
 यो रसो रसशास्त्रेषु पूर्वचार्यान्निरूपितः ।  
 परकीया एव तस्य श्रुतास्तत् सावलम्बनम् ॥१६॥  
 त्वं कान्तस्तरुणः शूरो वेशवान् बहुधार्मिकः ।  
 महोदारो महामानी सर्वासामुचितः प्रियः ॥१७॥  
 यथा निरूपितो धात्रा तत्थैवावलोकितः ।  
 नृणां कल्याणदः शशवद् दृशां भाग्येन नः प्रभो ॥१८॥  
 एतावज्जन्मसाफल्यं यत् त्वदाननदर्शनम् ।  
 प्रश्नसंस्पर्शभोगाद्यैः किमु वाच्यो महोत्सवः ॥१९॥  
 अहो प्रिय त्वां समवाप्य सुन्दरं वराभिलाषस्य गतैव चर्चा ।  
 नहि त्रिलोक्यां सुषमालवस्तव नखप्रभानिर्जितकोटिभास्वतः ॥२०॥  
 अहो धन्या वयं कान्त यासां कान्तस्तवमीदृशः ।  
 अपूर्वरूपलावण्यशृङ्गारैकसुरद्रुमः ॥२१॥<sup>३</sup>  
 निर्मङ्गलत्वमुपयाक्ति ननु त्वयीश  
     पारे पराद्वमपि सुन्दर पञ्चवाणाः ।  
 नीराजना भवति ते वदनारविन्दे  
     राकासुधाकरसहस्रकदम्बकस्य ॥२२॥  
 नखात् समारभ्य शिखावधीदं शृङ्गारसारं भवतः शुभाङ्गे ।  
 धैर्याणि नो लुण्ठति रामचन्द्रं स्वभावसौन्दर्यसमूहजुष्टम् ॥२३॥  
 रघुवरमभिरामं प्राप्य कान्तं भवन्तं  
     कलयति यदि लक्ष्मीः स्वस्वरूपं कृतार्थम् ।

१. भोगाद्यैः—मथु०, बड़ौ०। २. २२ इलोकानन्तरमयं इलोकः—मथु०,  
 बड़ौ०। ३. निर्मङ्गलस्य—रीवाँ। ४. “नीराजना भवति शारदपूर्णचन्द्रबिंवालवानख-  
 शिखंसुषमांचितस्य” इत्युत्तराद्वेनायमेवश्लोकः पुनरावृत्तः—बड़ौ०।

तदितरललनानां संसृतौ कास्तु वार्ता  
 बहुतरजनुषां चेद्जितं नास्ति पुण्यम् ॥२४॥  
 अन्या अपि शब्दोमुख्याः स्त्रियो या या भवद्गुणान् ।  
 अश्रुत्वैव महेन्द्रादीन् वृतवत्यः शुभेतरान् ॥२५॥  
 भवान् हि सर्वकल्याणराशिरेको जगत्त्रये ।  
 पूर्णः पुराणः पुरुषस्त्रयीगुह्यस्त्रयीमयः ॥२६॥  
 येऽपि<sup>३</sup> त्वां सनकाद्यास्ते प्रापुः शरणदं सताम् ।  
 तेनाल्पभाग्यनिलया गण्यन्ते भुवनत्रये ॥२७॥  
 इत्याभाष्य ब्रह्मणस्ता मानस्यः शुभकन्यकाः ।  
 तूष्णीं बभूवुः सहसा वर्णयन्त्यः प्रियाननम् ॥२८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वल्लरीमोक्षोपाख्यानं  
 नाम<sup>३</sup> चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥



### चतुरशीतितमोऽध्यायः

ओराम उवाच

एतत्तु नोचितं मम राघवाणां कुलेऽमले ।  
 नास्मत्कुले व्यभिचारो न कदर्यो न मद्यपः ॥ १ ॥  
 न ब्रह्महा नातिभाषी परिभिर्नच कर्हचित् ।  
 परिवेत्ता नचाप्यस्ति नाजितेन्द्रियवर्गकः ॥ २ ॥  
 नाशूरो नाभिशापो च नानुदारोऽपि कश्चन ।  
 अहमीदृग्विधं कृत्वा प्रथमं कुलपांसनः ॥ ३ ॥

१. प्रायो—मथु०, बड़ो० । २. ये ये—रीवाँ० । ३. °व्याख्याने—अयो०,  
 रीवाँ०, मथु०, बड़ो० ।

न भवेयं यतो यूयं परकीयाः सुलोचनाः ।  
 अखिलागमेन<sup>१</sup> सदृशो विधिनैवं वधिष्यति ॥ ४ ॥  
 हत्युक्त्वा विरते रामे दीर्घश्वासो धृताधराः ।  
 विवर्णवदनाः सर्वा विमनस्कास्तदाभवन् ॥ ५ ॥  
 ऊचुश्चैवं चिरेणैताः श्यामलं पद्मलोचनाः ।  
 रामं लोकाभिरामं तमधिक्षिप्य विधेः सुताः ॥ ६ ॥  
 अये अये राजकुमार राघव प्रपन्नलोकाभयदानदीक्षित ।  
 उदारता वो रघुवंशजन्मिनां न लोपिता वा रघुनाथ कर्हचित् ॥ ७ ॥  
 सा लुप्यतेऽस्मानपहाय संस्थिते भवत्यनल्पा ननु सद्गुणाश्रये ।  
 न केवलं सैव विलुप्यते पुनः प्रपन्नलोकस्य शरण्यतापि च ॥ ८ ॥  
 तस्मादस्मांश्चिराद्वित्वा स्थिताः<sup>२</sup> स्थावरजङ्गमम् ।  
 प्रपन्नाः स्वपदाम्भोजे भज राम रमापते ॥ ९ ॥  
 दुरवग्रहणेनालं देवधुर्य धुरन्धर ।  
 न ते पद्मदलाक्षस्य लिप्ते सुकृतदुष्कृते ॥ १० ॥  
 अयं हि जगतो धर्मो यद् गतिः पुण्यपापयोः ।  
 नेश्वराणां हि तत्स्पर्शः स्वतन्त्रेच्छावतां प्रभो ॥ ११ ॥  
 येषामिदं जगत्सर्वं वशे स्थावरजङ्गमम् ।  
 कस्तेषामुपरोधः स्यात् पुण्यपापादिकर्मभिः ॥ १२ ॥  
 तस्मात् सखे रमय नो<sup>३</sup> त्र रसालवन्यां<sup>४</sup>  
 नित्यप्रभूतकुसुमाकरपल्लवायाम् ।  
 यद्युद्दिधीर्षसि च नो विफलावतारा  
 व्यर्थाः प्रभूततनुरूपवयोविलासाः ॥ १३ ॥  
 राम त्वामाश्रितानां किं दैन्यं भवति किञ्चन ।  
 इति ते प्रसृतं नाम जागर्ति भुवनत्रये ॥ १४ ॥  
 न त्वां विना भविष्यामो लौकिक्या तृष्णया युताः ।  
 त्वद्वियोगात्तनुं त्यक्त्वा लप्स्यामस्त्वत्पदद्वयम् ॥ १५ ॥

१. °लागम°—मथु०, बड़० । २. तुच्छं—मथु०, बड़० । ३. त्वमवने—रीवाँ । ४. °वृण्यां—अयो० ।

वियोगानलभारेण भस्मीभूता वयं यदा ।  
 उदीर्य<sup>१</sup> राम यास्याम् स्त्वदागमपथे तदा ॥१६॥  
 एवमेव भविष्यामस्त्वया चेदवहेलितः ।  
 वियोगं न सहिष्यामो ब्रह्मकल्पान्निषेवितम् ॥१७॥  
 इत्युक्त्वा विरते तस्मिन् युवतीनां कदम्बके ।  
 रामः प्रोवाच विहसन् गिरा मधुरया पुनः ॥१८॥

### श्रीराम उवाच

अहो अनन्यभावेन भवतीनां वशीकृतः ।  
 अहं यथा व्रजे तिष्ठन् प्रेमणा गोपमृगीदृशाम् ॥१९॥

### कन्यका ऊचुः

अहो रघुकुलोत्तंस त्वं क्रीडन् व्रजवर्त्मसु ।  
 आभीरद्वारैः संयुक्तः कदाचिदिह संगतः ॥२०॥  
 तथा त्वयि व्रजस्त्रीणां प्रेमभावमलौकिकम् ।  
 दृष्ट्वा विचित्रिताः सर्वा लताभावेऽपि चेतनाः ॥२१॥  
 मनसा कृतसंकल्पास्तदा सर्वा अपि स्त्रियः ।  
 करवाम व्रजस्त्रीबदिमं कान्तं लभाम चेत् ॥२२॥  
 अहो अत्यद्भुतो ह्रेष कान्तो नवनवद्युतिः ।  
 धन्या इमा व्रजे रामा यासां प्राणधनं हृसौ ॥२३॥

### राम उवाच

अहं प्रेमणा परिक्रीतो व्रजभक्तैर्शीकृतः ।  
 साक्षीभूता भवन्त्योऽपि प्रमोदवनपाश्वर्गाः ॥२४॥  
 अधुना भवतीनामप्यहं कृत्वा करग्रहम् ।  
 क्रीडिष्याम्यद्य विपिने प्रेमैकसुलभो यतः ॥२५॥  
 ज्ञानवैराग्ययोगाद्यैर्न प्रापुर्मुनयः प्रियम् ।  
 तं मां भवत्यः प्राप्स्यन्ति स्थावरा लतिका अपि ॥२६॥  
 युष्माकं गुरवो गोप्यो याभ्यो मत्प्रेमशिक्षिताः ।  
 अतः परं भवाम्भोधेः पारं यास्यथ सुव्रताः ॥२७॥

१. उदीर्य—अयो० । उदूगीय—रीवाँ । २. पश्याम—मथु०, अयो० ।

ततस्ताः रमयोऽचक्रे रामः कमललोचनाः ।  
 षट्क्रिशत्कोटियुवतीः सेवमानो रघूतमः ॥२८॥  
 वैषम्यं नाभजत् तासु पूर्णः पुरुषपुञ्जवः ।  
 तदा प्रादुरभूद्वात्रिनित्यकेलीनिकेतनः ॥२९॥  
 सद्यः पूर्णशरच्चन्द्र उद्ययौ व्योममध्यतः ।  
 नानाविधानि पुष्पाणि रसालविपिनान्तरे ॥  
 ज्योत्स्नाज्योतिर्विकासीनि सद्यो व्याक्रोशतां दधुः ॥३०॥  
 पूर्वं वनं रज्जितमिन्दुभासा पुनश्च सद्यः स्नाइपितं कुंकुमेन ।  
 क्षणादभूच्छारदचन्द्रकान्तिश्रीखण्डपूरद्रवलिपकल्पम् ॥३१॥  
 शोतलः सुरभिर्मन्दः प्रावाह्नोरः समीरणः ।  
 सरयूनीरकल्लोलसमुच्छालनकौतुकी ॥३२॥  
 शृङ्गाररसचेष्टाभिस्तासां रामोऽपि रज्जितः ।  
 झणज्ञणितमज्जीरनूपुराणां समन्ततः ॥३३॥  
 ता एकदा रामकिशोरकस्य वरस्तजो निदधुः कण्ठदेशे ।  
 समुल्लसत्कामविकारभाजः प्रकर्षमानाः पुलकेनावकीर्णाः ॥३४॥  
 वृतासु तासु रामेण स्वामिना व्यक्तमूर्तिना ।  
 प्रभुणा रामचन्द्रेणेत्यवादीद् भुवनत्रयम् ॥३५॥  
 ब्रह्मकल्पं समारभ्य अद्यावधिपरार्थिनीः ।  
 एता रामः स्वयं वक्रे महाकारुणिकः प्रभुः ॥३६॥  
 इति ब्रह्मा प्रसन्नोऽभूत् कन्यापरिणये<sup>१</sup> कृते ।  
 प्रभुणा राघवेन्द्रेण स्वतन्त्रेच्छेन<sup>२</sup> धीमता ॥३७॥  
 तासामाभीरदाराणां तुष्टि रामः स्वयं ददौ ।  
 रसालविपिनेऽद्यापि क्रोडति प्राणजीवनः ॥३८॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वल्लरीमोक्षो-  
 पाख्याने वल्लरीणां वरणं नाम<sup>३</sup> चतुर-  
 शीतितमोऽद्यायः ॥ ८४ ॥



१. कन्यायाः प्रणये—अयो० । २. स्वतंत्रेणैव—रीवाँ । ३. वरणे—अयो०,  
 रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

## पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

६ होवाच

तत्र रासरसारम्भैत्रहृष्टद्कोत्थकेलिभिः ।  
 चान्द्रीपुष्पावचयैस्तरुस्कन्धावलम्बनैः ॥ १ ॥  
 जलकेलिविहारैश्च<sup>१</sup> नित्योत्साहैश्च मङ्गलैः ।  
 नानाभूषणविन्यासैर्नानावसनवासनैः ॥ २ ॥  
 नानानुलेपनैश्चैव नानामाल्यविनिर्मितैः ।  
 नानाधूपानुधूपैश्च नानादीपोत्सवैस्तथा ॥ ३ ॥  
 नानाभोगविलासैश्च नानासुरतबन्धनैः ।  
 नानामानविधानैश्च नानामानविमोचनैः ॥ ४ ॥  
 हवैश्च विविधैर्भावैर्विविधालापसक्तिभिः<sup>२</sup> ।  
 विविधैर्नर्महासैश्च प्रहासैश्च परस्परम् ॥ ५ ॥  
 विधिमानसजैर्दारै रतिदर्पनिरासनैः ।  
 क्रीडतो रामचन्द्रस्य सहस्रं शरदां यथुः ॥ ६ ॥  
 तावन्निमेष एवासीन्नृणां साकेतवासिनाम् ।  
 राममायाप्रभावेण नज्जुर्दिवसान् गतान् ॥ ७ ॥  
 यथैकाकी प्रविष्टोऽभूद्रसालविषिनान्तरे ।  
 तथैव चिरमत्रास भुज्जन् भोगान् मनोरथान् ॥ ८ ॥  
 नित्यं रासविलासादौ सीतासान्निध्यमाचरत् ।  
 तां<sup>३</sup> दृष्ट्वा चक्किताः सर्वा आसन्मानसकन्यकाः ॥ ९ ॥  
 सीताया रूपसौन्दर्यं दृष्ट्वा ताः सकला अपि ।  
 गतदर्पभरास्तस्थु<sup>३</sup>ज्योत्स्नायां तारका इव ॥ १० ॥  
 सीतायाश्चैव रामस्य दृष्ट्वा प्रेम परस्परम् ।  
 भूयो ननन्दुरात्मानं तादृक्प्रेमकृतस्पृहाः ॥ ११ ॥

१. °शक्तिभिः—अयो०, रीवाँ । २. तं—अयो० । ३. स्तास्तु—रीवाँ ।

अहो अत्यदभुतं रूपमनयोर्लोककान्तयोः ।  
 अहो अत्यदभुतं प्रेम दुर्लभं भुवनत्रये ॥१२॥  
 अहो ईदृगिवधो योगरचन्द्रचन्द्रिकयोरिव ।  
 नेत्रानन्दाय जगति<sup>१</sup> भाग्येनैव प्रजायते ॥१३॥  
 अहो सौन्दर्यसीमानावेतौ पूर्णमनोरथौ ।  
 अस्मदुद्धारणायैव चक्षुषोर्गोचरं गतौ ॥१४॥  
 इत्युक्त्वा स्वगतं सर्वा बहिरुचुर्नपात्मजम् ।  
 अहो राजकुमार त्वत्सङ्गे केयं शुभाकृतिः ॥१५॥  
 विद्युल्लतेव गौराङ्गी लक्ष्मीरिव मनस्त्वनी ।  
 शचीविलसितैश्वर्या साक्षाद्रतिरिवादभुता ॥१६॥  
 यदा त्वमागतो राम नेयं सङ्गे तदा स्थिता ।  
 कुतः समागता कस्मान्मध्ये रासादिकेलिषु ॥१७॥  
 नानया सदृशी काचित् त्रैलोक्ये क्वापि कामिनी ।  
 दृष्ट्वा[ष्टा] श्रुतापि चास्माभिश्चिराज्जाताभिरोश्वर ॥१८॥

## श्रीराम उवाच

एवं सैव निजानन्दशक्तिर्लोलाधिदेवता ।  
 नानया रहितः क्वापि स्थास्यामि भुवनत्रये ॥१९॥  
 रमण्यः सन्ति यावन्त्यो मम लोलाविनोदिकाः ।  
 तासामियं मुख्यतमा<sup>२</sup> रमणीनां शिरोमणिः ॥२०॥  
 नैनां विना रासलोलाविलासो मे भवेदिति ।  
 एतामाविर्भव्य पूर्वं पश्चादाविर्भवाम्यहम् ॥२१॥  
 अस्याः एव प्रसादेन शं लब्धं<sup>३</sup> व्रजदारकैः ।  
 आविवेशोयमबलास्ततोऽहं रतवानिमाः ॥२२॥  
 भवतीष्वप्यसौ पूर्वमाविष्टा स्वांशभागतः  
 अतो मया रतानां चेद्वयभिचारो भवेन्नहि ॥२३॥  
 कायेन मनसा वाचा नैनां व्यभिचराम्यहम् ।  
 एकपत्नीव्रतं यस्मात् कीर्तिं मे जगत्त्रये ॥२४॥

१. जगतो—मथु०, बडो० । २. पुण्यतमा—रीवौ । ३. संलब्धं—अयो०, रीवौ ।

राधायां चैव रुद्रिमण्यां सत्यायां च श्रियामपि ।  
 भूलीलादिषु चैवैषा स्वांशेनाविष्टविग्रहा ॥२५॥  
 सर्वत्र सर्वरूपेण मन्मनोरमणाशया ।  
 एकधानेकधा चैव दृश्यते नित्यकेलिनी ॥२६॥  
 इति श्रुत्वा<sup>१</sup> राघवेन्द्रगिरं ता विधिकन्यकाः ।  
 सहजां तुष्टुवुः सर्वा रामलीलाधिदेवताम् ॥२७॥

कन्यका ऊचुः<sup>२</sup>

नमस्ते सहजानन्दे राघवेन्द्रस्य वल्लभे ।  
 तव सौभाग्यतो देवि सौभाग्यं भुवनत्रये ॥२८॥  
 गायत्री चैव सावित्री तथा देवी सरस्वती ।  
 लक्ष्मीर्गौरी शची चैव त्वयैव सुभगाभवत् ॥२९॥  
 त्वं देवि सर्वसौभाग्यं देहि नो राघवं पतिम् ।  
 यथा तव सदाकान्तस्तथैवास्ति सदैव नः ॥३०॥  
 इति स्तुत्वा चिरं सीतां तत्प्रसादसमन्विताः ।  
 सर्वा गोप्यो<sup>३</sup> गर्ति लेभुर्दुर्लभां भुवनत्रये ॥३१॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे वल्लरीमोक्षदानं<sup>४</sup>  
 नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

१. इत्युक्त्वा—रीवाँ । २. ब्रह्मोवाच—अयो०, मथु०, बडो०, । ३. गोपी—  
 अयो०, रीवाँ । ४. °दाने—अयो०, रीवाँ, मथु०, बडो० ।

## षडशीतितमोऽयायः

**ब्रह्मोवाच**

स मोचयित्वा लतिकावनं ततः कृच्छ्रात्मकाः स्थावरभावदुःखिताः ।  
 मूहूर्तमात्रेण पुनर्निजां चमूमासाद्य वीरो नगरों समाययौ ॥ १ ॥

इत्यं स नित्यं मृगयामिषेण प्रयाति संशोभि रसालकाननम् ।  
 तत्रैव गोपीजनसंगमः सदा भवत्यमुष्य प्रणयैकवेदिनः ॥ २ ॥

रमापतिः सत्यपर्तिर्गिरांपतिर्धियांपतिलोकपतिः सतां पतिः ।  
 स कोशलापतितनयस्सदा<sup>१</sup>गतिः शृङ्खारभोगार्थमसाववातरीत् ॥ ३ ॥

न दैत्यहरणार्थाय प्रभुर्भूमाववातरत् ।  
 तद्वि तत्सेवकः कालः कुर्यादाज्ञावशंवदः ॥ ४ ॥

न भक्तोद्वारणार्थाय तद्वि कुर्यात् पदे स्थितः ।  
 नानुग्रहाय देवानामिच्छामात्रेण तत्कृतः ॥ ५ ॥

सनित्यशृङ्खाररसप्रकर्षे न भूतिमात्रार्थमिहावतारी ।  
 नवं नवं देशकालादिकलृपं भुड्क्ते रसं चिन्मयधाम्नि राजन् ॥ ६ ॥

इदं हि संततं तत्त्वं कामकेलिः सनातनी ।  
 रसराजस्वरूपस्य नीलवैदूर्यजित्त्विषः ॥ ७ ॥

कदाचिदंशरूपेण स भूतो नन्दगोकुले ।  
 क्रीडतो विविधैर्भविवैर्वर्जस्त्रीणां निषेवितैः ॥ ८ ॥

अयमेव निजांशेन गोलोके चिन्मयोत्तरे ।  
 सहजानन्दरूपेण रमते राधिकान्वितः ॥ ९ ॥

न तं वेदा विजानन्ति नबुद्धिवेदशोधिता ।  
 न योगेनैव विज्ञेयो न ज्ञानेन न चेज्यया ॥ १० ॥

तपसा नैव संसाध्यो न स्वभावेन कर्हिचित् ।  
 न कर्मणा न कालेन स्वेच्छया सुलभः प्रभुः ॥ ११ ॥

सरय्वाः पुलिने स्थाने ब्रह्मानन्दे सनातने ।  
 प्रेमानन्दमयं तत्त्वं राम इत्युच्यते बुधैः ॥ १२ ॥

१. स्त्वया—अयो०, मथु०, वडो० ।

रमां नित्यं रमयते स्वानन्दरसरूपिणीम् ।  
 इति रामस्त्रयोशब्दगोचरो रसरज्जितः ॥१३॥  
 सकृदुच्चरितः शब्दो रामनामविभूषितः ।  
 कुरुते नामवत् कार्यं स्वर्गमोक्षसुखादिकम् ॥१४॥  
 राकारेणाघसंनाशो मकारान्मुक्तिरुत्तमा ।  
 पूर्णेन वश्यतां याति रामो रामेतिशब्दितः ॥१५॥

### भुशुण्ड उवाच

यद्येवं नाममाहात्म्यं ब्रह्मन् संकीर्त्यते मुहुः ।  
 कोऽवकाशस्तदा देव प्रायश्चित्तादिसद्विधेः ॥१६॥  
 द्वादशाब्दोऽत्र भोगयानां कृच्छ्राणां कृच्छ्रकर्मणाम् ।  
 आलान्तादिविधीनां च कोऽवकाशो भवेदिह ॥१७॥  
 रामनामफलं श्रुत्वा सकृत् कीर्तनमात्रतः ।  
 को वा कृच्छ्रे प्रवर्तेत द्वादशाब्दादिकर्मणा ॥१८॥

### ब्रह्मोवाच

प्रत्यवायिनि कर्मिष्ठे जने पातकभूयसि ।  
 आविश्वासिनि दुष्प्रज्ञे कर्मकाण्डं वितन्यते ॥१९॥  
 वहुवेदिनि तत्प्राज्ञे तत्त्वज्ञे ब्रह्मवादिनि ।  
 स्वल्पेनैव कृतानल्पकर्मसूत्रं न तन्यते ॥२०॥  
 अथापि तन्यते भूयो ज्ञानं भक्तिं च वा फलम् ।  
 भक्तेन ज्ञानिना वापि स्वाधिकारानुसारतः ॥२१॥  
 क्रियन्तां भूरि कर्माणि नित्येज्यन्तां कदाचन ।  
 भक्तियुक्तः कर्मयोगः कर्मसंन्यासयोर्वरः ॥२२॥  
 इतिज्ञात्वा कर्मयोगो नित्यो वेदगणैः स्तुतः ।  
 पालनीयः शुभाचारैः भगवन्मतवेदिभिः ॥२३॥  
 एतते कीर्तिं वत्स कामतत्त्वेन संयुतः ।  
 क्रीडितं रघुनाथस्य परब्रह्मस्वरूपिणः ॥२४॥  
 य एतत् कीर्तयेत् प्रातरग्निहोत्रे त्रयीविधौ ।  
 तस्य वेदास्त्रयश्चैव भवन्ति रामभक्तिदाः ॥२५॥

रामभक्तिप्रसादेन रामो गच्छति वश्यताम् ।  
 गोपोवत् स्वां गर्ति दद्याद् भगवान् जानकीपतिः ॥२६॥  
 य एतत् पठते विप्रस्तेनाधीता त्रयी पुरा ।  
 य एतच्छ्रावयेद् भक्तान् तस्य रामः प्रसीदति ॥२७॥  
 य एतत् सर्वकालेषु प्रपठेद्रामशीलितम् ।  
 सर्वान् कामानवाप्नोति स्वर्गमोक्षादिदुर्लभान् ॥२८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामनामस्वरूपफल-  
 कीर्तनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥



## सप्तशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ रामस्य<sup>१</sup> माहात्म्यं कीर्तयामि खगेश्वर ।  
 शृणु त्वं सावधानेन मनसा रामसेवक ॥ १ ॥  
 कदाचिद् भगवान् शेषो राममाराद्धुमीश्वरम् ।  
 साकेते समगात्त्र प्रापश्यद्वान्ति तेजसा ॥ २ ॥  
 सिंहासनानि भूरोणि रत्नहेममयानि च ।  
 स्वे स्वे धिष्ठ्येऽधिष्ठितानि प्रज्वलन्तीव वर्चसा ॥ ३ ॥  
 पूर्वसिंहासनेऽपश्यद् देवं वाराहरूपिणम् ।  
 द्रष्टाकोटच्युद्धृतधरं स्तूयमानं सुरर्षिभिः ॥ ४ ॥  
 वैदेश्च मूर्तिसंयुक्तैस्त्रयीरूपं मखात्मकम् ।  
 भगवन्तं यज्ञरूपं भिन्नाऽजनवनप्रभम् ॥ ५ ॥  
 तद्वामे धरणीं देवीं स्तुवन्तीं चारुलोचनाम् ।  
 प्रसन्नवदनां कान्तां भुवं त्रैलोक्यधारिणीम् ॥ ६ ॥

१. एतद्यः—अयो० । २. अयो राममा०—बडो० ।

दर्शक्षिंहासनोदीर्णहिरण्यकशिषु' दरम् ।  
 भगवन्तं नारसिंहं प्रापश्यल्लोलजिह्वकम् ॥ ७ ॥  
 प्रह्लादेन स्तूयमानं भक्तराजेन धीमता ।  
 वामे कमलया युक्तं ज्वलद्वज्ञनखप्रभम् ॥ ८ ॥  
 कोटिराकाविधुप्रख्यं कनकाङ्गविराजितम् ।  
 स्तुवद्भ्रिनिगमैर्देवर्वग्नधर्वैः समुपासितम् ॥ ९ ॥  
 सिंहासने पश्चिमे तु वामनं खर्वमात्रकम् ।  
 भगवन्तं द्योतमानं यज्ञसूत्रधरं विभुम् ॥ १० ॥  
 अदिति मातरं पाशर्वे कश्यपं च प्रजापतिम् ।  
 एताभ्यां स्तूयमानं तं देवकार्यहितैषिणम् ॥ ११ ॥  
 सिंहासने चोत्तरगे मत्स्यनाथं चतुर्भुजम् ।  
 भगवन्तं विधुस्वच्छं प्रापश्यन्निगमैः स्तुतम् ॥ १२ ॥  
 पूर्वोत्तरदिशो कोणे कूर्मदेवस्य शार्ङ्ग्निः ।  
 सिंहासनं पर्यपश्यज्जलधिं च सविस्तरम् ॥ १३ ॥  
 पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये बुद्धरूपं जनार्दनम् ।  
 पर्यपश्यद्वेदेवं सिंहासनवरस्थितम् ॥ १४ ॥  
 यज्ञजन्तुकृपावेशं गृहीतावतरं विभुम् ।  
 प्रद्योतमानं महसा भगवन्तमधोक्षजम् ॥ १५ ॥  
 दक्षपश्चिमयोर्मध्ये रामं क्षत्रकुलान्तकम् ।  
 पर्यपश्यज्जामदग्न्यं हेमसिंहासनस्थितम् ॥ १६ ॥  
 भगवन्तं पर्शुहस्तं ज्वलन्तं ब्रह्मवर्चसा ।  
 दण्डकुण्डक्या युक्तं यज्ञसूत्रविभूषितम् ॥ १७ ॥  
 पश्चिमोत्तरयोर्मध्ये कल्किनं कमलापतिम् ।  
 नीलाश्वगं पर्यपश्यद्रत्नसिंहासनोपरि ॥ १८ ॥  
 मध्यसिंहासने कान्ते कोटिसूर्याङ्गिवर्चसम् ।  
 रघुनाथं पर्यपश्यद्वेवं जनकजापतिम् ॥ १९ ॥

१. 'कश्यपू—अयो०, बडो०, । २. °दयावेश°—रीवाँ ।

समयन्तमरविन्दाक्षं वामे स्वप्रिययान्वितम् ।  
 कोटिसूर्यनखद्योतं शृङ्गाररससागरम् ॥२०॥  
 रूपसारसुधोधादं साक्षात् कन्दर्पसुन्दरम् ।  
 परार्द्धरतिसौन्दर्या तद्वामे तस्य सुन्दरीम् ॥२१॥  
 तद्वक्षे हयमूर्धानं भगवन्तं त्रयीमयम् ।  
 पूर्णब्रह्मयाकारं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥२२॥  
 चिन्मुद्रापुस्तकधरं मालाशङ्खविभूषितम् ।  
 चन्द्रमण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासनोपरि ॥२३॥  
 रामस्य वामपाश्वं तु सिंहासनवरस्थितम् ।  
 श्रीकृष्णं गोपिकाकान्तं राधिकाप्रेयसीयुतम् ॥२४॥  
 वृन्दावनस्थितं देवं नीलतोयदसुन्दरम् ।  
 रुक्मिणीसत्यभामादिमहिषीगणसेवितम् ॥२५॥  
 अपश्यद्रत्नखचितस्वर्णलङ्कारभूषितम् ।  
 मयूरपक्षमुकुटं गुञ्जाहारविभूषितम् ॥२५॥  
 मुरलीभूषितकरं त्रिभञ्जललिताकृतिम् ।  
 स्निग्धश्यामलव्यालम्बिलोलालकयुताननम् ॥२६॥  
 पीतकौशेयवसनं वनमालाविभूषितम् ।  
 सुनसं<sup>१</sup> सुदृशं चारु मन्दहासप्रभाधरम् ॥२७॥  
 कृष्णस्य दक्षिणे पाश्वे रौहिणेयं बलोत्तरम् ।  
 हलिनं मुशलेनाढचं भगवन्तं त्रयीस्तुतम् ॥२८॥  
 नन्दं चैव यशोदां च राहिणीं गोपिकास्तथा ।  
 अपश्यद्विस्मितः शेषः सिंहासनकदम्बके ॥२९॥  
 अन्यांश्चैव तु रामस्य अवतारान् सहस्रशः ।  
 अंशरूपान् कलारूपान् साक्षादावेशिनस्तथा ॥३०॥  
 सर्वान् श्रीरामवदने दत्तदृष्टीन् गतस्मयान् ।  
 वशंवदानिवाज्ञायाः स्वतन्त्रानपि चेश्वरान् ॥३१॥

अचिन्तयत् तदाशेषः संशयाकुलमानसः ।  
 अहो एषां भगवतामीश्वराणां स्ववर्चसाम् ॥३२॥  
 कतरं च प्रथमतो वन्देयं समवर्चसाम्<sup>१</sup> ।  
 याम्ये संप्रति सर्वेषां कमहं संस्तुयां पुरा ॥३३॥  
 इति संदेहमापन्ने शेषे वैष्णवसत्तमे ।  
 राम एव व्यलीयन्त सर्वे दशरथात्मजे ॥३४॥  
 येऽन्ये रामस्य परितो व्यराजन्त महौजसः ।  
 अंशरूपाः कलारूपाः विभूत्यावेशिनस्तथा ॥३५॥  
 राम एव लयं जग्मुस्ते सर्वे तस्य पश्यतः ।  
 ततः स विस्मितो भूत्वा रामं तुष्टाव भूरिशः ॥३६॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे श्रीराम-  
 माहात्म्ये सप्तशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥



## अष्टाशीतितमोऽध्यायः

### शेष उवाच

नमामि ते नाथ पदाम्बुजद्वयं सुवर्णरत्नामलपादुकाश्रितम् ।  
 विरज्जित्तशक्रादिशिवान्तकादिभिर्मणिप्ररोहैः कृतनीराजनं यत् ॥ १ ॥  
 नमामि ते नाथ तनुत्रभज्जिनीं सीतादृगानन्दसमूहसागरम् ।  
 प्रावृद्धपयोवाहसुनीलदीर्घितिं भिन्नाऽजनस्तोमतमालमेचकम् ॥ २ ॥  
 नमामि च त्वां सहजानन्दरूपं परात्परं ब्रह्मणोऽपि प्रतिष्ठाम् ।  
 सदामृतस्याश्रयमेकसत्यं प्रतिष्ठितः शाश्वतो यत्र धर्मः ॥ ३ ॥  
 येयं त्रयी नाथ वितत्य संस्थिता शब्दब्रह्मात्मिका सा तवैव ।  
 समासतो व्यासतो वा गुणौघान् गायत्युच्चैर्मार्गधानां सभेव ॥ ४ ॥  
 कर्मापि ते नाथ तथैव शक्तिः क्रियात्मिका शाश्वति सुप्रतिष्ठा ।  
 इष्टाः पूर्ताद्यात्मिका सत्फलाद्या जगत्प्रतिष्ठाजनने समर्था ॥ ५ ॥

१. यशंवर्च०—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. इच्छापूर्तौघा०—अयो० ।

कालोऽपि ते नाथ दृशोनिमेषो दिवानिशं वर्षफलोपचायी ।  
 कल्पावधिर्ब्रह्मशक्राधिशक्तः' सृष्टिस्थितिप्रलयान्तक्रियो यः<sup>२</sup> ॥ ६ ॥  
 त्वं पक्षिरूपेण पुरेषु भूयो विराजसे द्वित्रिचतुष्पदेषु ।  
 प्रविष्टवद्भास्यप्रविष्टोऽपि भूमन् साक्षी नित्यश्चिद्धनस्तत्त्वतत्त्वम्<sup>३</sup> ॥ ७ ॥  
 त्वया पुरा कापि परैव सा गिरा ब्रबोधमानानिलवह्नियोगतः ।  
 असूत शब्दं त्रिवृदात्मकं यदा तदाभवत् स्थावरजङ्गमं जगत् ॥ ८ ॥  
 संजातमात्रस्य विधेर्जडस्य विवेकहीनस्य विधेयवस्तुनि ।  
 त्वमादिदेवो हृदयेऽवातरत्ततो विनिर्ममेऽसौ विविधव्यक्तिराशीन् ॥ ९ ॥  
 एकोऽपि स त्वं वहुरूपेण दृश्यः सन्नेव रामः त्रिजगद्विग्रहोऽसि ।  
 अतोऽन्यविज्ञानविनिर्मलात्मभिर्ब्रह्मैव सर्वं भाति भूतं च भव्यम् ॥ १० ॥  
 एकोऽहमेवं वहुधा भवेयमितीक्षणं ते नाथ सदैव यस्मिन् ।  
 सर्गस्यादौ निर्गताः स्वांशरूपा जीवाकाराश्चिद्गुणाः सस्वभावाः ॥ ११ ॥  
 केचित्तेषां नित्यमुक्ता बभूवुः केचिद् भूयः साधनैर्मुक्तिभाजः ।  
 केचित्संसारान्विधमध्ये दुरन्ते भूयो भूयो जन्मदुःखादिभाजः ॥ १२ ॥  
 अचित्प्रपञ्चोऽपि तवैव रूपं वैकुण्ठकुडचाङ्गणकुट्टिमादि ।  
 सदेव दृग्गोचरतां व्रजत्यपि स्वयं चिदानन्दमयं दिग्न्तरम् ॥ १३ ॥  
 नित्यैव ते नाथ विनोदलीला शृङ्गारवीरामृतसिन्धुपूरा ।  
 यस्यां निमज्जन्ति सदावदातास्ते राजहंसाः शुकनारदाद्याः ॥ १४ ॥  
 जानामि ते नाथ<sup>४</sup> परस्य सर्वेऽप्यंशा अमो स्थूलसूक्ष्मादिरूपाः ।  
 स्थूलाः स्फुटं ये विविधावताराः सूक्ष्माः परं संसृतजीवसंज्ञाः ॥ १५ ॥  
 अहो अगाधा भवतोऽस्य माया विमुक्तमायस्य चिदेकसंश्रयाः ।  
 यथैकरूपोऽपि भवान्नवैव<sup>५</sup> दृश्योऽसि भेदात्मधियां न वै सताम् ॥ १६ ॥  
 देशं सु<sup>६</sup>कोशल पदं च परं त्वदीयं धामास्ति सच्चित्सुखमद्वितोयम् ।  
 विराजते यत्र सुकोमलाख्या पुरी समुद्यत्सरयूतरङ्गा ॥ १७ ॥  
 यत्रास्ति रत्नौघसुवर्णनिर्मितः प्राकारवर्यो धृततुङ्गयन्त्रः ।  
 अनेकदुर्घर्षणगोपुरान्तःकपाटसंधद्वित<sup>७</sup>वज्रकीलकः ॥ १८ ॥

१. °धिशकः—अयो०, बडो० । २. क्रियाद्याः—अयो०, मथु०, बडो० ।  
 ३. तत्त्वतस्त्वम्—रीवाँ । ४. राम—रीवाँ । ५. °न्नैव—अयो०, मथु०, बडो० ।  
 ६. देशेषु—बडो० । ७. °संघाटित—रीवाँ ।

नित्यं<sup>१</sup> प्रमोदवनमद्भुतकेलिकुञ्जं मध्वादिसर्वमृतुसौख्यसमूहजुष्टम् ।  
 तत्राप्यशोकलतिकावनमस्ति यत्र प्राणेश्वरी विजयते तव जानकी सा ॥१८॥  
 सोऽयं तवैव महिमा निगमप्रसिद्धो यत्सार्वभौमपदबीप्रमुदां पुराणाम् ।  
 यत्रोत्तरोत्तरमभाणि शताधिकत्वं तस्यापि राम नितरामवधिस्त्वमेव ॥१९॥  
 येऽन्ये तवावतरणा इह मत्स्यकूर्मवाराहांसिहवरवामनभार्गवाद्याः ।  
 तेषामपि त्वमुदयो निलयश्च राम सीतापते सहजचित्सुखकेलिसिन्धुः ॥२०॥  
 विद्यास्वरूपमवलम्ब्यं सतां जनानां हृत्पुण्डरीकविषयेषु भवांश्चकास्ति ।  
 नोचेत्सुदुस्तरतरत्वदपारमायाबन्धात्मकाद् भवरथात् कथमुद्धृतिःस्यात् ॥२१॥  
 रामेतिनाम भवतस्त्रिवृतोऽपि वर्षं पापात्मनो<sup>२</sup> इपि सकृदुच्चरितं पुनीते ।  
 ज्ञात्वेत्थमेव मुनिभिः सततं प्रशान्तैश्चित्ते सदा परमहंसतमैनिखातम् ॥२२॥  
 त्वत्सङ्गिनीं नाथ नमामि तां परां शक्तिं सुपूर्णा सहजामद्वितीयाम् ।  
 या नित्यवृन्दावनकेलिकारिणी प्रमोदवल्लीवनदेवता च ॥२३॥  
 लीलाविशिष्ट भवतोऽपि च राम नाम रूपं च ते तादृशं मे चकास्तु ।  
 माणिक्यरत्नस्फुरितावतंसकं सुदीप्तगुज्जामणिहारशोभितम् ॥२४॥  
 माङ्गल्यकोत्सङ्गविशेषलालितं गोपाङ्गनादृष्टिकटाक्षदीक्षितम् ।  
 रामाभिधानं परमं महस्तत् सदैव नेत्रातिथितां प्रयातु मे ॥२५॥  
 रघुकुलकमनीयं कामुकं गोपिकानां व्रजपुररमणीयं नीलवैदूर्यरम्यम् ।  
 जनकनृपतनूजाप्रीतिसंदोहपात्रं सुचिरमहमुपासे राघवं रामचन्द्रम् ॥२६॥

अशोकवनकुञ्जभूसहजनित्यकेलिप्रियं

व्रजस्थहरिणीदृशां मदनरागसंवर्द्धनम् ।

ककुत्स्थकुलभूषणं निगमकोटिवक्तृस्तुतं

भजे<sup>३</sup> दशरथात्मजं परं रामचन्द्रं मुदा ॥२७॥

इतिस्तुतिपरे शेषे प्रसन्नो राघवेश्वरः ।

प्रोवाच स्मयमानेन मुखेन मधुराकृतिः ॥२८॥

अहो नागेन्द्र शेष त्वं सम्यक् व्यवसितोऽसि भोः ।

यन्मदीया परा भवितः स्फुरिता हृदये तव ॥२९॥

१. धिष्णयं—बड़ो० । २. मायात्मनो—अयो०, रीव० । ३. भजामि—अयो०,  
 मथु०, बड़ो० ।

न तां प्राप्नोति वै धाता न शिवो नायि वासवः ।  
 नित्यलीलारतिः सा ते वार्धिष्णुर्दृश्यते हृदि ॥३०॥  
 अथापि यदि यत्काम्यं तन्मत्तो त्रियतां मुहुः ।  
 संप्रीतस्तेऽनया भक्त्या ददाम्यहमतिप्रियम् ॥३१॥  
 भक्तोऽसि वैष्णवाग्रचोऽसि प्राज्ञोऽसि भुजगेश्वर ।  
 यत्ते हृदि प्रियं वस्तु मत्तस्तत् प्रार्थ्यतां मुहुः ॥३२॥  
 नह्यलभ्यं<sup>१</sup> मदोयानां भक्तानां मयि दातरि ।  
 ऐहिकामुष्मिकं वापि यत्स्वरूपं च दुर्लभम् ॥३३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे शेषस्तुतिर्नाम<sup>२</sup>  
 अष्टाश्रीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

## एकोननवतितमोऽध्यायः

### शेष उवाच

भवतोऽन्यत्र मे काम्यं राम कामदविग्रह ।  
 नहि स्वरूपाशक्तानामेहिकामुष्मिकी स्पृहा ॥ १ ॥  
 अथापि चेद्वरं देयं वरदेन त्वया विभो ।  
 निजाङ्गिकमले भक्तिर्दीयतां भक्तवत्सल ॥ २ ॥  
 सदा स्वरूपासक्तस्य स्वरूपासक्तिरेव च ।  
 निजसामीप्ययोगश्च पीठशय्यासनादिषु ॥ ३ ॥  
 लीलोपकरणत्वं च उपधानत्वमेव च ।  
 छत्रत्वं चामरत्वं च आतृसाहाय्यमेव च ॥ ४ ॥  
 मुखचन्द्रामृतास्वादं सदासविधसंस्थितिः ।  
 एतन्मे दीयतां राम निर्मल्यस्य च भोजनम् ॥ ५ ॥

१.० लब्धं—रीवाँ । २. शेषस्तुतौ—अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० ।

## श्रीराम उवाच

यद्यदिष्टतमं शेष तत्त्वास्तु मदाज्ञया ।  
 त्वमेव<sup>१</sup>भक्तवर्यो मे भविष्यति युगे युगे ॥ ६ ॥  
 आचार्यश्चैव भक्तानां भक्तिशास्त्रप्रकाशकः ।  
 सदा सविधसंस्थानं भविष्यति परं मम ॥ ७ ॥  
 त्वमेव मम वै भूयाः<sup>२</sup> पीठशय्याशनादिकैः ।  
 लीलासाधनसामग्री सर्वमेव त्वमक्षरम् ॥ ८ ॥  
 त्वमेव चोपधानं मे छत्रं चामरमेव च ।  
 अतासहचरो बन्धुः सखे मित्रं त्वमेव च ॥ ९ ॥  
 मदङ्गसङ्गिनो लक्ष्मीर्णं ते लज्जां विधास्यति ।  
 नर्मलीलारसास्वादपात्रत्वं वैष्णवाग्रणीः ॥ १० ॥  
 एवं दत्त्वा वरं रामस्तत्त्वैवाकरोत्तराम् ।  
 सोऽपि दिव्यमहावेशधरः स्फटिकनिर्मलः ॥ ११ ॥  
 सहस्रवदनो देवः पार्षदप्रवरोऽभवत् ।  
 रामस्य जानकीशस्य प्रभोदवनवासिनः ॥ १२ ॥  
 कोसला<sup>३</sup>पुरनाथस्य नित्यलीलासु संनिधिः ।  
 कमला यत्र रमते तत्रास्तेऽद्यापि सेवयन् ॥ १३ ॥  
 नित्यलीलारसं पश्यन् सहस्रफणवर्तिभिः ।  
 दिव्यदीपशतैर्भाति मन्दिरे दिव्यवेशमनि ॥ १४ ॥  
 एवं सर्वावितारेषु कलास्वंशेषु चाग्रणीः ।  
 उत्पत्तिविलयश्चैव रामो साकेतनायकः ॥ १५ ॥  
 दर्शयित्वा निजे रूपे शेषाय प्रणतात्मने ।  
 दत्त्वा प्रसादमेतस्मै समदादुत्तमं पदम् ॥ १६ ॥  
 एवं कदाचिद् भगवान् कस्मैचित् संप्रसीदति ।  
 अनिवाच्या तदिच्छा तु न विद्धः कं सुखयिष्यति ॥ १७ ॥

१. त्वमेक—अयो०, रीवाँ । २. भूयाच्च—अयो०, रीवाँ । ३. कौशला<sup>०</sup>—  
अयो०, कौशिल्या<sup>०</sup>—रीवाँ ।

गोकुलानन्दनो रामो माङ्गल्यानन्दनोऽपि च ।  
 व्रजभूनन्दनो देवः सुखितेश्वरनन्दनः ॥१८॥  
 एवं यो गृणते रामं रमेशं प्रणतार्तिहम् ।  
 तस्यासौ वश्यतां याता भक्तिभावान्न संशयः ॥१९॥  
 एवं गृणन्तो नारदद्या मुनीन्द्राः पारेजाता लोकसिन्धोर्दुस्तरस्य ।  
 तस्मादेवं सज्जनैः कीर्तनीयं गेयं ध्येयं चाभिधेयं च नित्यम् ॥२०॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे शेषवरप्रदानं<sup>१</sup>  
 नाम एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥



## नवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कोसलायां निवसति रामभद्रे सतां गतौ ।  
 लक्ष्मीशो देवदेवेशो प्रभौ त्रैलोक्यवल्लभे ॥ १ ॥  
 लक्ष्मीभराः प्रादुरासुस्तथा संपद्धरा अपि ।  
 फलिनो भूरुहा आसन् रत्नसूक्ष्म वसुन्धरा ॥ २ ॥  
 काले वर्वर्षं पर्जन्यः फलन्तिस्म लताद्रुसाः ।  
 भूधरा धातुदातारः सुवर्णरजतादिकान् ॥ ३ ॥  
 देवाः प्रसादसुमुखाः सुखाराध्या हर्विर्भुजः ।  
 यज्ञाः सद्यो विधिफलाः क्रियाः शीघ्रफलप्रदाः ॥४॥  
 ब्रह्मक्षत्रविशां चैव शूद्राणां च गृहे गृहे ।  
 सुवर्णमणिनिष्काढ्या विलसन्त्यज्ञनागणाः ॥ ५ ॥  
 सर्वे जनाः कृतानन्दा कृतोत्साहाः सुमङ्गलाः<sup>२</sup> ।  
 प्रसन्नमनसश्चासन् रामकौतुकदर्शनात् ॥६॥  
 रामेन्द्रौ यौवराज्ये स्थितवति भुवने नैव दुःखं न मर्जो  
 नोद्वेगो नाभिच्चारो न परबलभये नेतिभीतिर्न भीतिः ।

१: °वरप्रदाने-अयो०, रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २. समङ्गलाः-मथु०, बड़ो० ।

नानीतिनेतिवीतिर्थमकृतविपदां नापगोतिर्जनानां  
 नायासो न प्रवासो न धनविधुरता नानपत्यो न रुणः ॥ ७ ॥

कदाचिन्नृपतेः साक्षात् कोशलाधिपतेः प्रभोः ।  
 अश्वमेधमखोत्साहो बभूव बहुमङ्गलम् ॥ ८ ॥

पुण्याहं वाचयित्वा स शुभकामान् द्विजन्मनः ।  
 अकरोद्दीक्षणीयोर्छिष्ट प्रायणीयेष्टमेव च ॥ ९ ॥

अवर्णमश्वमेधीयमभिमन्त्र्य सुसंस्कृतम् ।  
 सुमोचात्मन इच्छाभिश्चरन्तमकुतोभयम् ॥ १० ॥

तस्य रक्षार्थमयुजन् सन्नद्धौ रामलक्ष्मणौ ।  
 महावीरौ कवचिनौ शस्त्रिणौ च निषङ्गिणौ ॥ ११ ॥

तिलो दिशश्चचाराश्वः पूर्वदक्षिणपश्चिमाः ।  
 इन्द्रेण प्रथमं रुद्धस्ततः कृत्वा महारणम् ॥ १२ ॥

विनिर्जित्य समानीतो देवकन्यागणैः सह ।  
 विभज्य भ्रातृभिः साकमूढवान् भक्तवत्सलः ॥ १३ ॥

ततो रुरोध भगवान् कालो दण्डधरः स्वयम् ।  
 तं निर्जित्य समानिन्ये कालकन्यागणानिह ॥ १४ ॥

यमदत्तानुदवहत् सौमित्रेण च वै सह ।  
 वारुण्यां वस्णो देवः स्वागतं रघुपुङ्गवम् ॥ १५ ॥

आनर्च रत्नहारौघैज्ञत्वा त्रिभुवनेश्वरम् ।  
 उत्तरस्यां ययौ चाश्वो गान्धर्वां सुमहादिशि ॥ १६ ॥

तत्र गन्धर्वलोकास्तमहरन् यज्ञघोटकम् ।  
 रत्नवर्मा चित्ररथः स्वर्णकायः सुलोचनः ॥ १७ ॥

पद्ममाली हेमकेतुः वृषपर्वः सुकेतनः ।  
 अन्ये च वहवो मुख्या गन्धर्वाः समवेत्य तम् ॥ १८ ॥

ततस्तौ सुमहावीरौ सज्यं कृत्वा धनुर्धरौ ।  
 अग्रहोष्टां शरव्रातैर्वर्षेण्ठिव महोधरान् ॥ १९ ॥

अभूद् गन्धर्वनिवैस्तत्र युद्धं महोत्कटम् ।  
 पश्यतां सर्वदेवानां रोमहर्षणकारकम् ॥२०॥  
 राममुक्तौः शरव्रातैर्गन्धर्वाः सुमदोत्कटाः ।  
 सद्यः प्रतिहताः सर्वे बभूवुस्तुङ्गविक्रमाः ॥२१॥  
 ततो गन्धर्वकन्याभिः सुमुखीभिः सहस्रशः ।  
 साकं हयवरं प्रादुर्गन्धर्वाः प्रीतमानसाः ॥२२॥

## राम उवाच

अस्ति मे कापि महिषी प्राणेशी मम जीवनम् ।  
 तस्यां सत्यां कथमहमेता उद्गोदुमुत्सहे ॥२३॥

## गन्धर्वा ऊचुः

भवान् स पुरुषः पूर्णो राम एव न संशयः ।  
 वह्नीनां रज्जनकरः कान्तानां भूरिशक्तिमान् ॥२४॥  
 गोपाङ्गनास्तव विभो ललनाः समग्रा  
 दिक्पालकाश्च भवते समदुः स्वकन्याः ।  
 अन्याश्च नागनरकिन्नरदेववधव-  
 स्त्वयेव नेत्रसुखदे हि रता बभूवुः ॥२५॥  
 तस्मादेताः किंकरीस्त्वन्महिष्यो गान्धर्वेण प्रीतियुक्तो गृहाण ।  
 यस्मादेकस्त्वं समस्तत्रिलोक्याः स्वेच्छामात्रात् पूर्णचित्ताभिलाषः ॥२६॥

इति तैर्गदितो रामो बहुमानपुरःसरम् ।  
 प्रत्यग्रहीच्च सानन्दं सर्वा गन्धर्वकन्यकाः ॥२७॥  
 चतुर्दिक्षु कृतोद्वाहः कुबेरेण च पूजितः ।  
 अश्वमेधं महायज्ञमकरोदीक्षितो नृपः ॥२८॥  
 प्रत्यक्षा देवताः सर्वा विधिवत् पर्यपूजयत् ।  
 अध्वर्युत्रूप्तिविजो होतनुद्गात्रीश्च विशेषतः ॥२९॥  
 ब्रह्माणं स्वगणोपेतं सर्वाश्च गणसंयुतान् ।  
 गजवाजिमहीस्वर्णसर्वस्वं समदानृपः ॥३०॥  
 एवं कृतमहायज्ञः सर्वस्वव्ययनिष्टया ।  
 अग्नित्रयमुपासीनस्त्रिकालं विधिवन्नृपः ॥३१॥

पुष्णन् रामे परं स्नेहमभाद्रशरथो मखी ।  
 कदाचिद् यज्ञशालायां पश्यतो नृपतेः क्षणात् ॥३२॥  
 अग्नयो लुप्ततां जगमुः पश्यतां च द्विजन्मनाम् ।  
 अदृश्यतां प्रयातेषु सेव्यमानेषु चाग्निषु ॥३३॥  
 हाहाकारो महानासीत् सर्वत्र द्विजवेशमसु ।  
 ततः सञ्चुक्रुधे रामः केन खलवग्नयो हृताः ॥३४॥  
 आत्तचापो रथे स्थित्वा अव्याहृतमनोगतिः ।  
 लक्ष्मणेन सह श्रीशः प्रतस्थे त्रिजगत्सु सः ॥३५॥  
 इन्द्रलोकेऽग्निलोके च यमलोके तथैव च ।  
 लोके च नित्र्दृतेश्चैव तथा वरुणवेशमनि ॥३६॥  
 वायुर्लोके कुबेरस्य लोके लोके शिवस्य च ।  
 स्वर्गे मर्त्ये च पाताले जगाम रघुनायकः ॥३७॥  
 तत्र तत्र नचैवाग्निमपश्यद् विस्मितान्तरः ।  
 ततोऽतिविस्मितो भूत्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः ॥३८॥  
 नागनयः सन्ति सौमित्रे त्रिषु लोकेषु कर्हचित् ।  
 नास्मद्रथगतेः कश्चिदगोचरतमोऽभवत् ॥३९॥  
 तस्माद् गता अग्नयोऽमी लोकालोकगिरेः परम् ।  
 सहस्रशीर्षा पुरुषो यत्रास्ति निजतेजसा ॥४०॥  
 अग्नीज्ञिजपितुः सेव्यानानेष्यामस्ततो वयम् ।  
 पश्यास्मद्रथवेगं त्वं लक्ष्मणामितविक्रमम् ॥४१॥  
 इत्युक्त्वा भगवान् सूतं लक्ष्मणं च रथान्तरे ।  
 स्थापयित्वा स्वयं वाहांस्तोत्रपाणिरवाहयत् ॥४२॥  
 लोकालोकं समुत्तीर्य प्राप घोरतरं तमः ।  
 तत्र स्थित्वा निजं चक्रं मध्ये मार्गमदीपयत् ॥४३॥  
 चक्रस्यामितया भासा प्रकाशे पथि ते हयाः ।  
 अवहन् स्यन्दनवरं सद्धर्मं निगमा इव ॥४४॥  
 समतीत्य विधेलोके तीर्ण मायाभिधं तमः ।  
 विरजां च समुत्तीर्य दुस्तरां सागरोत्तमाम् ॥४५॥

प्राप तं विषयं यत्र त्रिपद् ब्रह्म सनातनम् ।  
 स्वयंज्योतिः स्वयं प्राजं दधोतमानं निजत्विषा ॥४६॥  
 सहस्रवदनं देवं सहस्राननलोचनम् ।  
 सहस्रपाणिचरणं सहस्रश्रुतिनासिकम् ॥४७॥  
 यस्यांशांशावतरणा देवतिर्यङ्गनरादयः ।  
 अनेकविधयो यत्र तथा रुद्रगणा अपि ॥४८॥  
 वासवा वसवश्चैव वरुणा वायवोऽनयः ।  
 यमश्च निर्ऋतिश्चैव सर्वाश्च गणदेवताः ॥४९॥  
 यस्मादेव प्रजायन्ते व्यक्तयः स्थूलसूक्ष्मकाः ।  
 कोटिसूर्यतडित्तुल्यं महसामुत्तमं महः ॥५०॥  
 तत्र यातो रघुश्रेष्ठः सानुजः सह सारथिः ।  
 ततोऽवतीर्य रथतो भ्रातरौ मणिमन्दिरे ॥५१॥  
 जग्मतुर्यद्गृहद्वारे जयश्च विजयस्तथा ।  
 साधिष्ठौ द्वारप्रवरौ यच्च दिव्यं परं पदम् ॥५२॥  
 आयान्तं राममाज्ञाय राघवं तेजसां निधिम् ।  
 द्वारि प्रत्युद्गतो देव आदिनारायणो विभुः ॥५३॥  
 ननाम शिरसां वृन्दै रामं त्रैलोक्यसुन्दरम् ।  
 नत्वा प्रवेशयामास राममन्तःपुरे निजे ॥५४॥  
 भूयसीमर्हणां कृत्वा पादार्घ्याचमनादिभिः ।  
 सुधामयोसंविदाभिस्तुष्टाव निजमीहवरम् ॥५५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे रामयौवराज्ये  
 नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥



## एकनवतितमोऽध्यायः

**आदिनारायण उवाच**

वन्दे त्वां रामचन्द्रं सकलगुणनिर्धि निर्गुणं ब्रह्म पूर्णं  
 सत्यारामं चिदेकं स्वविमलमहसा द्योतमानं समंतात् ।  
 यस्यांशा एव सर्वे वयमिह भुवने ब्रह्मविष्णवीशमुख्याः  
 सृष्टिस्थित्यन्तलोलाविरचनचतुरा वर्तयन्तीह चक्रम् ॥ १ ॥  
 योऽहं विष्णुः स राम त्वयि परमतमे सच्चिदानन्दसिन्धौ  
 वर्तेयं विन्दुमात्रं विधिरपि च भवो भास्करो वासवश्च ।  
 एतावानेव विष्वग् विलसति महिमा तावकः कोऽपि नित्यं  
 नाभूत्तेन स्मयस्ते विहरसि पशुवत् भूय आभीरदारैः ॥ २ ॥  
 एतत्ते रूपमस्मन्नयनविषयतां सच्चिदानन्दमात्रं  
 यातं यातं स्वभाग्यैर्निगमशतशिरो वेदितं नैव किञ्चित् ।  
 को जानीते यदेतद्विहरति सरयूतीरभूमीनिकुञ्जे  
 मुग्धैराभीरदारैः पशुगणविभवैर्दुर्लभं वै मुनीनाम् ॥ ३ ॥  
 लोकालङ्कारसीमानिगमनिगदितो राघवः कौशलेयः  
 कल्याणकात्तलोकोत्तरविमलगुणः कामकेलीनिधानम् ।  
 साक्षाच्चिच्छलोकनाथो रसमयविलसद्व्यपलोलाविलासः  
 प्रेयान् प्राणाधिकस्त्वं मम किमपि परं राम सर्वस्वमेव ॥ ४ ॥  
 यथैव तेजसां लोके सर्वेषां प्राणदो रविः ।  
 तथा चैतन्यमात्रस्य भवानेकधनं प्रभो ॥ ५ ॥  
 शब्दात्मकं ब्रह्म तवैव धोषः इवासोच्छ्वासो नित्य आकाशरूपः ।  
 तेन ब्रह्मा विसृजत्यादिसर्गे लब्ध्वा पूर्णा संविदं सृज्य वर्गे ॥ ६ ॥  
 इदं च ते रूपमखण्डसौभगं नेत्रोत्सवानन्दकरं जनानाम् ।  
 सद्यो निजेच्छाप्रकटं सत्कृपादृशं लोकातीतं कालमायाद्यतीतम् ॥ ७ ॥  
 नादिर्न मध्यं तव नावसानमस्माकमायन्तमथापि मध्यम् ।  
 त्वमेव भूमन् पुरुषोत्तमेश न वाङ्मनोगोचरतां प्रयासि ॥ ८ ॥

त्वं वै विधीर्विष्णुरथापि रुद्रस्त्वं कालपालो निधयस्त्वमेव ।  
 त्वं वै दिगोशो विदिगीशस्त्वमेवमारोपमात्रं वितथोऽस्मासु शब्दः ॥ ९ ॥  
 यद्वाच्यवाचकमयं जगदेतदीश पादस्तवैष सकलो भुवनानि विश्वा  
 ऊर्ध्वं त्रिपात् पुनरुदैदमृतं तवैव रूपं परं परमहंस गुहायनस्थम् ॥ १० ॥

नमस्ते राम रमणीसहस्रसुविलासिने ।  
 नीलवैदूर्यवण्यि सच्चिदानन्दवर्चसे ॥ ११ ॥  
 नमस्ते सहजालक्ष्मीपरमानन्दमन्दिर ।  
 अशोकवनकुञ्जान्तःशय्यामन्दिरकेलिने ॥ १२ ॥  
 नमस्ते रामचन्द्राय चिच्चकोरीसुखात्मने ।  
 निःश्रेयसामृतौघाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ १३ ॥

किमर्थमीशेन यत्नो विधेयः समृतो न तत्रैव सुकोशलायाम् ।  
 अनुग्रहो वा मयि कश्चित् स्वकीये विनिमितो नाथ यदागतं सुदा ॥ १४ ॥  
 पुनर्नमोऽस्मै मुहुरेव नाथ तवामुष्मै सच्चिदानन्दधास्ने ।  
 सीताविनोदैकनिकेतनाय श्रीविग्रहायामृतवर्षणाय ॥ १५ ॥

### श्रीराम उवाच

तातेनोपासिता यज्ञा अग्नयश्च त्रयीमयाः ।  
 अविच्छेदेन यज्ञं देवानां प्रत्यपद्यत ॥ १६ ॥  
 तस्याग्नित्रितयं विष्णो कुण्डेभ्योऽपगता इति<sup>१</sup> ।  
 भ्रान्त्वा त्रिभुवनं सर्वमत्रान्वेषितुमायवस्त्र<sup>२</sup> ॥ १७ ॥  
 अत्र दृष्टाः सभायां ते अग्नयः पितृसेविताः ।  
 नेष्यामः प्रणिपत्यैतान् पितुर्मोदाय कोशले ॥ १८ ॥

### नारायण उवाच

एतेऽग्नयस्त्रयो नाथ त्वत्पित्रा समुपासिताः ।  
 मया हृताः परीक्षार्थं पूर्णस्य ब्रह्मणस्तव ॥ १९ ॥  
 नीयतां संप्रति गृहे राम श्रीकोशलापुरे ।  
 अग्नयोऽस्मी त्रयीरूपाः पितुस्तेऽभीष्टदायकाः ॥ २० ॥

१. कुण्डेभ्यो य इहागताः—रीवाँ, २. °मीयिवान्—मथु०, वडो० ।

जानाति कस्ते माहात्म्यं वेदानामपि दुर्गमम् ।  
 तवैव कृपया नाथ विज्ञेयं शुभजन्मभिः ॥२१॥  
 एवं प्रसादितो रामः पुरुषेणादिविष्णुना ।  
 नमन्तं तं विसृज्यागतीन् पुरस्कृत्य त्रयीमयान् ॥२२॥  
 रथोपस्थमुपाविश्य मुहुर्मुक्तात्मभिः स्तुतः ।  
 वैमानिकगणैर्भूयः स्तूयमानः पदे पदे ॥२३॥  
 अक्षरस्यान्तमत्येत्य निस्तीर्य विरजां पुनः ।  
 कृत्वा च तमसः पारं चक्रज्योर्तिर्विभेदिनः ॥२४॥  
 लोकालोकमतिक्रम्य रथवेगेन तत्क्षणात् ।  
 आजगाम जवाद् रामः साकेतनगरीं प्रति ॥२५॥  
 अग्नित्रयं पुरोधाय सानुजो रथरंहसा ।  
 अयोध्यानयनानन्दवद्वन्नः पुनरागतः ॥२६॥  
 आगते रथशार्दूले अग्नीनादाय भूपतिः ।  
 अतिप्रीतमना भूत्वा रामं भूयोऽभ्यनन्दयत् ॥२७॥  
 अग्नीन् कुण्डेषु संस्थाप्य विधिवत् पुनराहितान् ।  
 सायं प्रातस्तुपासीनः पूर्णर्थो नृपतेरभूत् ॥२८॥  
 इत्थं स्थितो यौवराज्ये नन्दयन् भुवनत्रयम् ।  
 कोशलाधिपतेऽन्नित्यं विशेषेण ननन्द सः ॥२९॥

१. अतः परं—“भगवान् पुरुषः पूर्णो राम एव न संशयः ।  
 बहूनां रञ्जनकरः कान्तानां भूरि शक्तिमान् ॥  
 गोपाङ्गनास्तव विभो ललनाः समग्रा  
 दिक्पालकाश्च भवते समदुः स्वकन्याः ।  
 अन्याश्च नागनरकिन्नरदैववध्य—  
 स्वयं येव नेत्रसुखदे हि रता बभूवुः ॥  
 तस्मादेताः किंकरीस्त्वं महिष्यो  
 गान्धर्वेण प्रीतियुक्ता गृहाण ।  
 यस्मादैकस्त्वं स रामस्त्रिलोक्याः  
 स्वेच्छामात्रात् पूर्णचित्ताभिलाषः ॥”  
 इत्यधिकः पाठः—रीत्वौ ।

यौवराज्ये स्थिते रामे सहस्रं शरदो यथुः ।  
 श्रीमज्जनकजापूर्णतारुप्यमदपोषिकाः ॥२०॥  
 प्रजानेत्रोत्सवो भूयान् प्रबभूव दिने दिने ।  
 श्रीरामचन्द्रपूर्णेन्दुदर्शनामृतवर्षणात् ॥२१॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे विष्णुकृत-  
 रामस्तुतौ वैकुण्ठागन्यानयनं नाम<sup>१</sup> एकनवतितमोऽध्यायः ॥१९॥

●

## द्विनवतितमोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

यौवराज्ये स्थितं रामं नीतिज्ञं धर्मकोविदम् ।  
 राज्ञो नैश्चिन्त्यकर्तरं श्रियः सर्वा: प्रपेदिरे ॥ १ ॥  
 ऐश्वर्यमतुलं वीर्यं यशस्त्रैलोक्यशीतलम् ।  
 जानक्या संमिता श्रीश्च ज्ञानं स्वात्मनिदर्शनम् ॥ २ ॥  
 वैराग्यं विषयोन्मोकं सर्वभोगसुखातिगम् ।  
 षड्विधं भगमित्येतद्रामचन्द्रे बभूव ह ॥ ३ ॥

### भुशुण्ड उवाच

षड्विधेन भगेनैष भगवानिति शब्दितः ।  
 तत्प्रायो विश्रुतप्रायं वेदेभ्यो बहुरूपतः ॥ ४ ॥  
 तथापि न समाज्ञात<sup>२</sup> रामचन्द्रगतं भगम् ।  
 प्रत्येकमैश्वर्यमुखं वर्णितं यद्भावादृशैः ॥ ५ ॥

### ब्रह्मोवाच

बहुधा वर्णितं वेदैर्भगवत्त्वमसुष्य तत् ।  
 भगं भाग्यं पराशक्तिरन्तरङ्गतया स्थितम् ॥ ६ ॥

१. °नयने—अयो०, रीवाँ०, मथु०, बड়ো० । २. मे समाचक्ष्व—  
 मथु०, बড়ো० ।

स्वरूपधर्मरूपं तत् परे ब्रह्मणि राघवे ।

न परो भगवांस्तस्माद्रामात् त्रैलोक्यसुन्दरात् ॥ ७ ॥

अथ तेऽहं प्रवक्ष्यामि रामस्यैश्वर्यमुत्तमम् ।

यस्याज्ञावशगा माया देवानामपि मोहिनी ॥ ८ ॥

सापि दासीवदासीना कस्तस्मात्पर ईश्वरः ।

कालोऽप्याज्ञाकरो यस्य सृष्टिस्थितिलयावहः ॥ ९ ॥

सर्वभूतैकग्रसनः सर्वभूतभयञ्चरः ।

आध्यात्मिकोऽधिदैवश्च स तथैवाधिभौतिकः ॥ १० ॥

लीलारसपदार्थानामाधारो रसवत्तरः ।

आधिदैव इतिख्यातः कालो रामस्वरूपकः ॥ ११ ॥

आध्यात्मिकस्तथा कालः सूर्यरूपो जनादीनः ।

त्रयीमयः स' सविता आधिदैववशानुगः ॥ १२ ॥

आधिभौतिककालोऽयमाध्यात्मिकवशानुगः ।

परिणामकरः सर्वभूतानां फलभावनः ॥ १३ ॥

कर्मोपासाज्ञानमार्गेष्वेको यः प्रतिबन्धकः ।

भगवन्तं च तद्भूतं सर्वथैव विमुच्चति ॥ १४ ॥

जीवाश्चांशा यस्य सूक्ष्माणुमात्राः स्वस्यैवाभिध्यानतः संसरन्तः ।

कामवलेशाद्यैनिरानन्दरूपाः स्वस्यैवाविर्भावितः स्वेन तुल्याः ॥ १५ ॥

ब्रह्मेत्याहुयेऽच वेदान्तवाचः सत्यज्ञानानन्दपूर्णप्रकाशम् ।

निर्विशेष्यं ज्ञानिनामेकधिष्ठयं तच्चाप्येकं यद्विभूतिस्वरूपम् ॥ १६ ॥

सूर्याचन्द्रौ यस्य नेत्रे विशुद्धे द्यौर्वै मूर्द्धा खं च नाभिविशालम् ।

आशाः श्रोत्रे भूतलं पाददेशो यस्य स्थूलं रूपमेतद्विराट् सः ॥ १७ ॥

निराकारं निर्विशेषं निर्भेदं च निरञ्जनम् ।

सर्वभूतान्तरात्मैकसूक्ष्मं तत्त्वं च यस्य तत् ॥ १८ ॥

योगिनां हृदयाकाशे प्रकाशं ज्ञानदीप्तिः ।

यन्मायथा तिरोभूय सर्वं निर्वाप्य तिष्ठति ॥ १९ ॥

सर्वतः पाणिपादादद्यं सर्वतोऽक्षिशिरःश्रुतिः ।  
 एकाकारं निराकारं नानाकारं विभक्तिमत् ॥२०॥  
 अणोरणु महच्चादिमहतो विष्वगुद्धवम् ।  
 सैवान्तर्यामिता यस्य कस्तस्मात्पर ईश्वरः ॥२१॥  
 इतीद्वैश्वर्यमनन्तमेव श्रीरामसंज्ञस्य परस्य धाम्नः ।  
 वेदेषु गीतं कविभिर्विण्ठिं च ततोऽप्यनन्तं वदतो मे निबोध ॥२२॥  
 अनन्तकोटिब्रह्माण्डं बिभ्रद्वोमविलः परः ।  
 पुरुषः सोऽपि यस्यांशः कस्तस्मात् पर ईश्वरः ॥२३॥  
 यस्य लोलैव कैवल्यं जीवानां संप्रगायताम् ।  
 ब्रह्मादीनामप्यगम्यं कस्तस्मात्पर ईश्वरः ॥२४॥  
 सृजत्या<sup>१</sup>विशते भूयो साक्षीव<sup>२</sup> निखिलं जगत् ।  
 जीवेनैवात्मरूपेण तथान्तर्यामिरूपतः ॥२५॥  
 विक्रीडति विशेषेण निजलीलारसात्मकः ।  
 सहजानन्दनीशकत्या कस्तस्मात् पर ईश्वरः ॥२६॥  
 एक एव द्विरूपेण नानालीलार्थरूपतः ।  
 नित्याविभूत एवासौ भुड्कते स्वानन्दधोरणीम् ॥२७॥  
 अप्राकृतैः प्राकृतैश्च वस्तुभिः स्वैस्तदर्थकैः ।  
 नटवत् कुरुते केलीः कस्तस्मात् पर ईश्वरः ॥२८॥  
 यथा कश्चिन्महाराजो निजेच्छामनुरुद्धय वै ।  
 अशक्यं च सुशक्यं च दुःशक्यं च विधाय हि<sup>३</sup> ॥२९॥  
 अन्यथा कुरुते भूयः करोति न करोति च ।  
 यथा प्राचीनवस्तूनि कृतानि स्वयमादरात् ॥३०॥  
 प्राकारगोपुरा<sup>४</sup>दीनि भड्कत्वोद्यानवनादिकम् ।  
 कुरुते तत्पुनर्भड्कत्वा प्राकारगोपुरा<sup>५</sup>दिकम् ॥३१॥

१. सृजन्यो—अयो०, रीवाँ । २. साक्षीत्वं—रीवाँ, मायीव—मथु०, बड़० ।
३. चापिधावति—अयो०, रीवाँ । ४. गोमुखा<sup>०</sup>—मथु०, बड़० । ५. गोमुखा<sup>०</sup>—मथु० बड़० ।

एवं स्वयं कृतान्येव कुरुते स्वेच्छयान्यथा ।  
 निजलीलारसैकार्थं कस्तस्मात् पर ईश्वरः ॥३२॥

मत्स्यो भूत्वा कदाप्येष भक्तरक्षाविचक्षणः ।  
 लक्ष्मैकयोजनायामशृङ्गस्थापितपोतकः ॥३३॥

प्रलयार्णवनिर्मग्नां वेदवाच् 'मुपाहरत् ।  
 तत्कालोचितमाधुर्यवेषविग्रहशोभितः ॥३४॥

सत्यव्रताय वहशो वेदानां हार्दमुक्तवान् ।  
 चकच्चकायमानाङ्गः<sup>२</sup> शुद्धसत्त्वमुपाविशत् ॥३५॥

कदाचित् कच्छपाकारो मन्दराचलधारणात्<sup>३</sup> ।  
 ईष्टकण्डूतिसुखवाट् देवानां हितमाचरत् ॥३६॥

कदाचिद्व्यवाराहरूपभृत् संनिवेशवान् ।  
 कल्पान्तसमयां म्भोधिजलवृन्दं विनिर्धुवन् ॥३७॥

उर्वर्मिमुदवहद् भूरि सटा<sup>४</sup> मण्डितकन्धरः ।  
 खुराघातैः<sup>५</sup> कुलाद्रीणां कूटानि त्रोटयन् रुषा ॥३८॥

संवत्सरसहस्राणि हिरण्याक्षेण युद्धवान् ।  
 विनयन् बाहुकण्डौः केवलं वीर्यसंमदी ॥३९॥

अपातयन्महेन्द्रस्य विद्वेष्टारं तमुद्धतम्<sup>६</sup> ।  
 साक्षाद्यज्ञस्वरूपेण दृष्टो ब्रह्मशिवादिभिः ॥४०॥

व्यतनोत् कर्मणां संस्थाः स्वरूपेणैव तत्क्षणात् ।  
 अथ भूयोऽपि देवोऽयं<sup>७</sup> दिव्यकेवलरूपधृक् ॥४१॥

अरण्यादागतो रुष्टो दुर्दर्शः क्रूरविग्रहः ।  
 षष्ठिवर्षसहस्राणि दितिजेन्द्रमयोधयत्<sup>८</sup> ॥४२॥

प्रल्लादस्य हितार्थाय तथारूपो बभौ प्रभुः ।  
 अथान्यदा बलिं नाम दैत्येन्द्रं त्रिजगत्प्रभुम् ॥४३॥

१. दैर्वीवाचं—मथ०, बड़ो० । २. °नाम्भः—अयो० । ३. मंदरात्—  
 रीवाँ । ४. कल्पान्तरसमां°—अयो० । ५. सदा—अयो० । ६. सुरावातैः—अयो० ।  
 ७. तमद्भुतम्—अयो० । ८. देवो वः—अयो० । ९. अबोधयत्—बड़ो० ।

सुरेन्द्रलक्ष्मीहृतारं प्रसभं छलमात्रतः ।  
 पातालं वेशयामास वामनोऽथ त्रिविक्रमः ॥४४॥  
 देवैर्नरैर्मुनिगणैर्दृष्टोऽत्यद्भुतविक्रमी ।  
 कोटिबिम्बार्कदुर्दर्शो रसनाबद्धतारकः ॥४५॥  
 गणजये त्यभिहितस्त्रैलोक्येन विराजितः ।  
 शुशुभे भगवान् साक्षादयमेव शुभाकृतिः ॥४६॥  
 अथ राजन्यवर्णेषु विधर्मक्रान्तबुद्धिषु ।  
 अब्रह्मण्येषु दुर्वृत्तेष्वात्मवीर्यविकासवान् ॥४७॥  
 कुठारधारादुर्दर्शो विप्रः क्षत्रियधातकः<sup>३</sup> ।  
 दुःक्षत्ररहितां भूमि चक्रे वारैकविंशतिम् ॥४८॥  
 अपोषयद् ब्राह्मणांश्च दानं कृत्वा महाद्भुतम् ।  
 चकर्त कार्तवीर्यस्य दोर्दण्डद्रुममण्डलीम् ॥४९॥  
 अथ दाशरथे गेहे सर्वसंपद्विभूषिते ।  
 आतृभिः सहितो जातो रसिकेन्द्रशिखामणिः ॥५०॥  
 कल्पं सारस्वतं प्राप्य साक्षात् पूर्णः शुभाकृतिः ।  
 मैथिलीनयनानन्ददायी पौरुषभूषणः ॥५१॥  
 नीतिधर्मप्रवृत्तित्वात् सतां संमतसद्गुणः ।  
 योगिभिर्वृत्तहृत्तष्ठैर्गीयमान उदारधीः ॥५२॥  
 मर्यादापालनपरश्चक्रे लीलां मनोहराम् ।  
 तामहं गदितुं शक्तो नैव जिह्वासहस्रकैः ॥५३॥  
 श्रीरामो नाममात्रेण रमयन् जीवधोरणीः ।  
 रमते रत्नाचले नित्यं भ्रात्रा सेवितपाश्वर्कः ॥५४॥  
 भूय एष क्षपयिता रावणं लोकरावणम् ।  
 अगस्त्यहृयशोषाद्यैर्ज्ञाततत्त्वः कथंचन ॥५५॥  
 महावीरो महाधीरो महाकारणिकेश्वरः ।  
 कृतज्ञो यशसां राशिर्विप्राशीभिः समैधितः ॥५६॥

१. रामोजये—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. धातुकः—मथु० बड़ो० ।  
 ३. रुद्रवै—रीवै० ।

लोकलोचनविश्रामो विरामो भूरिदुर्वदाम् ।  
 वेदमार्गनया'रामो रामो विजयतेराम् ॥५७॥  
 बलकृष्णादिरूपेण भविता च समः क्वचित् ।  
 अथ यज्ञगताऽजन्तून् दयमानो दयानिधिः ॥५८॥  
 बुद्ध इत्याख्यया युक्तो भविता स्वयमेव च ।  
 ततश्च म्लेच्छभावेषु जनेषु कलिकालतः ॥५९॥  
 पुनः संस्मृत्य स्वं धर्मं भविता कलिकरूपधृक् ।  
 इमानि दश मुख्यानि रूपाण्यस्य महात्मनः ॥६०॥  
 युगे युगेऽवतरतो गीयन्ते वेदवित्तमैः ।  
 अन्यानि चापि रूपाणि युगरूपाणि बिभ्रति ॥६१॥  
 गुणावताररूपाणि तथैवान्यानि भूरिशः ।  
 श्वेतरक्तपीतकृष्णनानावर्णानि वै खण ॥६२॥  
 तथैवान्यानि<sup>२</sup> रूपाणि कलाशचांशाः सनातनाः ।  
 तथैवावेशरूपाणि पृथुराजमुखानि च ॥६३॥  
 रामस्यैवाखिलारम्भा दृष्टाश्चैव श्रुता अपि ।  
 स्मृताः पुनन्ति भुवनं कस्तमात्पर ईश्वरः ॥६४॥  
 सकलैश्वर्यसीम्नो<sup>३</sup> इस्यैश्वर्यमुपर्णितम् ।  
 तथा हि महती भूतिरनेनात्र प्रदर्शिता ॥६५॥  
 यौवराज्यस्थितेनैव श्रीमद्वाशरथे गृहे ।  
 गृहं खलु विशालं तद् योजनोच्छायमीडितम् ॥६६॥  
 सभामण्डप<sup>४</sup> संशोभि मणिमाणिक्यभूषितम् ।  
 पितृपैतामहं यत्र हेमरत्नविभूषितम् ॥६७॥  
 निःश्रेणिका<sup>५</sup> त्रय युतं दिव्यं सिंहासनं स्थितम् ।  
 तत्रस्थोऽयं सभाकाले शभुभे यौवराज्यभुक् ॥६८॥

१. °परो—रीवाँ, “वेदमार्गश्च नयश्च ताभ्यां” टिं—मथु० । २. तथान्यानि च—मथु०, बड़ो० । ३. °सीमा—अयो०, मथु०, बड़ो० । ४. °मण्डल°—रीवाँ । ५. निःश्रेणिका—रीवाँ ।

पितुराजामनुललङ्घ्य नीतिधर्मानुशासकः ।  
 गायका नर्तकाश्चैव वादकाश्चोपवीणकाः ॥६९॥  
 अनेकशिल्पवैचित्रीशालिनः शुभर्कर्मणः ।  
 स्वां स्वां विद्यां दर्शयन्त उवासाञ्चक्रिरे मिथः ॥  
 यौवराज्यस्थितं रामं त्रिजगत्कामवर्षणम् ॥६९॥  
 युवानमाजानुविशालदोर्ध्रयं महार्हरत्नाढ्यलसत्करीटिनम् ।  
 वलक्षमुक्ताफलपूरितश्रुतिं विलम्बिहाराभरणाद्युरःश्रियम् ॥७०॥  
 निरङ्कृपूर्णेन्दुविराजिताननं जगत्त्रयीनेत्रचकोरतुष्टिदम् ।  
 समोदमीषत्स्मितरञ्जिताधरं नितान्तमाजावशागाखिलेश्वरम्<sup>१</sup> ॥७१॥  
 सुपीवरांसं<sup>२</sup> सुविशालवक्षसं सुराजराजीवविराजितेक्षणम् ।  
 सुवर्णरत्नाङ्गदभातिरस्कृतस्फुरत्सभामण्डलभूतमित्तकम् ॥७२॥  
 स्वामित्वधर्मेण वशीकृताःखिलं स्वाभाविकोद्योतसहस्रदीधितिम् ।  
 प्रसन्नकान्त्याभिसुधांशु<sup>३</sup> संपदं मनोरमालापकलासु कोविदम् ॥७३॥  
 के के न तोषितास्तेन के के न च वशीकृताः<sup>४</sup> ।  
 के के न संगताश्चैव के के न च कृतार्थिताः ॥७४॥  
 के के न काञ्चनासारैः कवयो धनदीकृताः ।  
 के के न गजसंदोहैर्जना गजपतीकृताः ॥७५॥  
 के के न वाश्वसंदोहैर्जना हयपतीकृताः ।  
 के के न मणिसंदोहैर्जना रत्नाकरीकृताः<sup>५</sup> ॥७६॥  
 दिवामणिकुलोद्योते रामे प्रकृतिरञ्जने ।  
 यौवराज्यस्थिते दूरमगात् कलुषसंभवः ॥७७॥  
 अघस्यापि न लेशोऽभूत् प्रजा धर्मानुवर्तिताः ।  
 निरस्ततिभिरं रेजे सर्वतोऽवनिमण्डलम् ॥७८॥  
 दारिद्र्दयमगमद् दूरं दिवाभीत इवोदये ।  
 चतुर्दिक्षु जयेत्येव शब्दोऽभूत् सुखवर्द्धनः ॥७९॥

१. °खिलायुधम्—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. सुपीतरासं—अयो० ।

३. च स्वीकृता—अयो०, रीवाँ । ४. °धिसुधांशु—रीवाँ । ५. वचसाहिताः—रीवाँ ।

६—६. नास्ति—अयो० ।

चतुर्णा च पुमर्थनामेष कल्पद्रुमोऽभवत् ।  
 साकेतपुरराजेन्द्रकुमारो लोकसुन्दरः ॥८०॥  
 मित्राणां स्थापनकरः प्रोज्जासनकरो द्विषाम् ।  
 कोटिकन्दर्पमूर्तित्वात् त्रिलोकीचित्तमोहनः ॥८१॥  
 तरुणार्क इवोद्योतशाली महिमभूषितः ।  
 तदेव चक्रे यत्राभूदन्येषामत्यशक्यता ॥८२॥  
 तत्रास्य बाणसंचारो यत्र राक्षससंक्षयः ।  
 ततान तादृशों कीर्ति भ्रातृव्याः यत्र मर्षिताः ॥८३॥  
 जगाद तादृशं वाक्यं यादृशं वेदसंस्मितम् ।  
 सज्जीकृत्य बलं गच्छन् गिरिशृङ्गाण्यपातयत् ॥८४॥  
 पुनश्च विनयं कृत्वा यात्रासिद्धिमवाप्य सः ।  
 जयतौर्यन्त्रिकोद्घोषैः प्रविशन् निजमन्दिरे ॥८५॥  
 असंख्यातान् गुणांस्तस्य को वा वर्णयितुं क्षमः ।  
 द्वितीयः सूर्य एवासौ साक्षाद्रामः स्वयंप्रभुः ॥८६॥  
 दिलोपस्य रघोश्चैव तथैवाजस्य भूपतेः ।  
 साक्षाद्वशरथस्यासावनुवक्रे विनुर्गुणान् ॥८७॥  
 आहोपुरुषिकां<sup>१</sup> साक्षाद्वेवानां समपूषुषत् ।  
 असुराणां नाशकृते सिद्धीनामासनं बभौ<sup>२</sup> ॥८८॥  
 वीरतायाश्च मञ्जूषा शूरताशासनो बभौ ।  
 अधर्मस्य च संधारो धर्मस्याधार एव च ॥८९॥  
 पारावारो बलस्यैष कीर्तेः कर्तनुवासरम् ।  
 भूमेर्भर्ता दशरथस्तस्य संतोषदायकः ॥९०॥  
 विभ्राणश्च स्वयं शक्त्या विप्रगोवेदबान्धवान् ।  
 परपीडापहर्ता च संसारस्योपरि स्थितः ॥९१॥  
 सर्वस्योच्चैः स्थितोऽप्येष नीचैरेवास्थितो गुरोः ।  
 वेदानां रक्षकः साक्षात् क्षत्रधर्मव्रताकरः ॥९२॥

- 
१. “अहमेव पुरुष इति अहंपुरुषस्तस्यभाव आहोपुरुषिका” टि०—मथु० ।  
 २. “असुरनाशकसिद्धीनाम् आसनमासपदभूतो रामः बभौ” टि०—मथु० ।

दूरात् कालगिनयन्त्राभः शत्रूणां भयवर्द्धनः ।  
 समीपे च महातोक्षणकालजिह्वाकृपाणवत् ॥९३॥  
 दुर्गणा<sup>१</sup> मावरणकृद्वाररोद्धा कपाटवत् ।  
 सद्धर्मकर्मणां भूमिर्गुणैर्गङ्गासमुज्ज्वलः ॥९४॥  
 अधतार्णकुटीपुञ्जज्वालनो नाममात्रतः ।  
 परसैन्यमहामेघघटासंघटमारूपः ॥९५॥  
 आकाशा इव<sup>२</sup> विस्तारी ज्योतिषां स्थानमव्ययम् ।  
 सूर्यमण्डलवच्छत्रं चामरे चन्द्रबिम्बवत् ॥९६॥  
 सिंहासनं मेरुसमं पादप्रोञ्छनवन्मही ।  
 यस्योचितं परं त्वेष पितुराज्ञाकरो भृशम् ॥९७॥  
 द्वीपाद् द्वीपान्तरं गच्छन् नामयामास भूपतीन् ।  
 समुद्रान् ग्राहयामास सैन्यैः सचतुरङ्गकैः ॥९८॥  
 पर्वतान् लोपयामास<sup>३</sup> यातायातैर्बलस्य सः ।  
 देशान्तरादुपागत्य जगुरेनं कवीश्वराः ॥९९॥  
 लेभिरे रत्नकूटानि महेभांश्च महाहयान् ।  
 लक्षकोटयधिकं द्रव्यं प्रसादोकृत्य तान् ददौ ॥१००॥  
 लेभे च महतीं कीर्ति शरच्चन्द्रांशुशीतलाम् ।  
 यथा प्रोद्धासितं विश्वं यावत्कल्पो विर्धेद्दिनम् ॥१०१॥  
 प्रजानां भालसंभाग्यं साक्षादेव रघूद्वहः ।  
 उज्जागरः श्रियामेषः सागरः सर्वसंपदाम् ॥१०२॥  
 आशीर्भिर्वर्द्धयामासुरेनं सिंहासनस्थितम् ।  
 चिरंजीव महाराजकुमार नयनोत्सव ॥१०३॥  
 श्रीराम लक्ष्मणसख भरताद्यनुजान्वित ।  
 तानेव नतवान् मूर्दैष्ना बहुमानपुरःसरम् ॥१०४॥  
 सिंहासनस्थे श्रीरामे युवराजे रघूद्वहे ।  
 रत्नभाजनसंदोहनानोपायनपाणयः ॥१०५॥

१. दर्पणा<sup>०</sup>—रीवाँ । २. °वर<sup>०</sup>—अयो० । ३. लोकयामास—रीवाँ ।

ताम्बूलभाजनकराः पर्यस्थुः पारिपाश्वकाः ।  
 माद्यदग्जवराहृष्टा नटवद्वंशसंस्थिताः ॥१०६॥  
 उपसेदुर्महामात्राः संतुष्टचै राघवेशितुः ।  
 कूर्द्मानाः केकिशिराश्चतुरङ्गा जयोद्धुराः ॥१०७॥  
 लघुपल्याणिनो वीरा अश्वपालकरस्थिताः ।  
 पट्टृसूत्रसमाबद्धा उपसेदुस्तुरङ्गमाः ॥१०८॥  
<sup>३</sup> कृष्णसाराश्चारुदृशस्तीक्ष्णश्चुङ्गा जयोद्धताः ।  
 पट्टृसूत्रसमाबद्धा उपसेदुस्तदग्रतः<sup>३</sup> ॥१०९॥  
 मृग्याधावननवाः श्वानो<sup>३</sup>मध्ये तरक्षुवत् ।  
 ललद्विलोलजिह्वाग्रा हयानामग्रगामिनः ॥११०॥  
 शार्दूलपोतैः सदृशाः परस्परगुणाधिकाः ।  
 कालवर्णाः पीतरुचः इवेताश्चित्रतनुत्विषः ॥१११॥  
 धूम्राक्षाश्चातिधूम्राभाः पट्टृसूत्रावलम्बिनः ।  
 कूर्द्मानमृगीपोतग्राहिणस्तृतीये क्रमे ॥११२॥  
 ग्रामसिंहोत्तमास्तन्न ह्युपसेदुरनेकशः ।  
 ग्रामाणां नगराणां च देशानां च विशेषतः ॥११३॥  
 निष्पत्ति तु समादाय सेवका उपतस्थिरे ।  
 कान्त्या विशालरसनाऽ नेत्रैः पीयूषवार्मुचः ॥११४॥  
 गत्या चापि गरीयांसः कीर्तिविस्तारकारकाः ।  
 आख्यानाख्यायकाः<sup>५</sup> काव्यगुरवो वर्णनक्षमाः ॥११५॥  
 अनेक शास्त्रनिपुणाः कवयश्चोपतस्थिरे ।  
 देशेषु परदेशेषु तपन्तो भानुबिम्बवत् ॥११६॥  
 पञ्चहस्तप्रमाणाङ्गा युवानोऽगण्यविक्रमाः ।  
 सर्वे विज्ञातविजयाः शस्त्रशास्त्रविशारदाः ॥११७॥  
 कृपाणिकटिसंनद्धा वाणेषुधिधराश्च ये ।  
 वाचामन्यतमाः सर्वे शूराः समुपसेदिरे ॥११८॥

१. अक्षसूत्र०—रीवौ । २—२. नास्ति—अयो० । ३. वन०—रीवौ ।

४. कृत्यार्विलरसना—अयो०, कांत्याविरलसा—रीवौ । ५. °ख्यायिकाकाव्य०—  
मथु०, बड़ो० ।

तत्र तत्रांभवद्वाग्यं यत्र यत्र दृशं ददौ ।  
 यदा यदा प्रसङ्गोऽभूत् कवीनां भाग्यवृद्धये ॥११९॥  
 तदा तदा समभवत् कांचनासारवारिदः ।  
 इति ते प्रोक्तमैश्वर्यं वीर्यमस्य शृणु द्विज ॥१२०॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे  
 रामयौवराज्ये द्विनवतितमोऽध्यायः ॥१२॥

•

### त्रिनवतितमोऽध्यायः

#### ब्रह्मोवाच

अथ वीर्यं रामचन्द्रस्य वक्ष्ये ह्यनन्यसामान्यममेयमस्य ।  
 लोकोत्तरं भागवत्त्वैकचित्तः निशम्यतां वीर भुशुण्ड मत्तः ॥१॥  
 येनैकविंशत्वारान् वै कुठारेण वरौजसा ।  
 क्षत्रियान् युधिनिर्जित्य कलृप्ताः<sup>३</sup> रक्तोदका हृदाः<sup>३</sup> ॥२॥  
 तपःप्रतापयोः पुञ्जः साक्षादग्निरिवोद्वतः ।  
 दुर्दर्शनोऽतिधाम्नैव दुराराध्यो दुरासदः ॥३॥  
 समुद्रवेष्ठितमही दानसंपूजितद्विजः ।  
 क्षत्रियान्तकरो रामः सोऽपि येन विनिर्जितः<sup>४</sup> ॥४॥  
 बलादाकृष्य तत्तेजः स्वस्मिन्नेव न्यवेशयत् ।  
 कस्तस्मादितरो वीरः श्रीमद्वशरथात्मजात् ॥५॥  
 शैलेन्द्रसारं कठिनं पुराणं शाम्भवं धनुः ।  
 अभञ्ज लीलया बालस्ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥६॥  
 पश्यतामेव सर्वेषामाद्वीपान्तमहीभूताम् ।  
 उवाह जानकीमेष ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥७॥

१. तदा—अयो०, मथु०, छडो० । २. कर्ता—रीवाँ । ३. हृदान्—रीवाँ ।  
 ४. विनिर्जितः—रीवाँ ।

भूतानां भयदं तीक्ष्णं सुबाहुं नाम राक्षसम् ।  
 सहस्रधा कृतात्मानं युद्धचन्तं शस्त्रवृष्टिभिः ॥ ८ ॥  
 मायाविनं महाघोरं जेतारं सुरसंपदाम् ।  
 विकटाटोपसंरंभदुर्दर्शं सुदुरासदम् ॥ ९ ॥  
 सहस्रधा स्वयं चापि कृत्वा स्वात्मानमुच्चकैः ।  
 अपातयद्रणे घोरे ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥ १० ॥  
 अन्ये च भूभारकृतो राक्षसा घोरदर्शनाः ।  
 विप्रद्रुहोऽपकर्त्तारः सतां देवत्रयीगिराम् ॥ ११ ॥  
 महाबला महाघोरा दुर्दुरुडा बलोच्छ्रयाः ।  
 आकाशचारिणो वीराः शिलापर्वतवर्षिणः ॥ १२ ॥  
 करालविग्रहाटोपा घटासंघटुमेचकाः ।  
 नानावर्णा दुराक्रम्या भयानकरणक्रियाः ॥ १३ ॥  
 तेऽपि नीता क्षयं बाणैस्ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ।  
 अग्रे च भ्रूभङ्गमात्राज्जलर्धि विपुलोदकम् ॥ १४ ॥  
 नियम्य पातयामास पादयोरभयङ्कुरः ।  
 शिलाभिस्तं समाच्छाद्य सेतुं कृत्वा दृढं प्रभुः ॥ १५ ॥  
 एलवङ्गांस्तारयामास लङ्घानिर्जयहेतवे ।  
 भयानकानां राक्षसानामगणय्य महाचमूम् ॥ १६ ॥  
 लङ्घामावृत्य परितः स्वसैन्यं संनिवेश्य च ।  
 पश्यतां राक्षसेन्द्राणां लङ्घाधिपतिशीर्षतः ॥  
 अपातयच्छतैर्वर्णैरातपत्राणि तत्क्षणात् ॥ १७ ॥  
 ज्ञातं च यन्महासत्त्वं मन्दोदर्या विशेषतः ।  
 वर्णितं स्वस्य पतये ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥ १८ ॥  
 वालिनं चोद्गतबलं कृतलङ्घेशनिर्जयम् ।  
 बभज्जैकेन वाणेन ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥ १९ ॥  
 योऽन्तर्यामितया सुरासुरनरत्रैलौक्यमध्ये स्थितो  
 भक्तानां भयसंजिहीर्षणकृते पाणौ धनुर्वर्णभूत् ॥  
 मर्यादापरिपालनैकनिपुणः सर्वावितारेश्वरः ।  
 श्रीमानेष चिरन्तनो विजयते पूर्णः परः पूरुषः ॥ २० ॥

अस्याज्ञातत्परो वीरो हनूमान् विश्वनिर्जयी ।  
 कुर्वन् किलकिलाशब्दैः क्षोभणं यक्षरक्षसाम् ॥२१॥  
 कपीन्द्रः स्मरणादेव दुष्टजालप्रणाशनः ।  
 रुषोऽभोधिं शोषयेद्यो धरित्रीमपि दारयेत् ॥२२॥  
 पर्वतान् पातयेदेव भिन्नाद् वज्रमपीच्छया<sup>१</sup> ।  
 मथ्यात्<sup>२</sup> त्रैलोक्यमखिलं ससुरासुरमानुषम् ॥२३॥  
 कालयेत् कालमपि यो हरेत् सर्वस्य पौरुषम् ।  
 सिंहनादी महाभीमो ब्रह्माण्डमपि चोद्धेत् ॥२४॥  
 उद्धरेन्मेरुमपि यः साक्षात्मारुतनन्दनः ।  
 तादृशो यस्य पुरतो बद्धाज्जलिपुटः स्थितः ॥२५॥  
 किंकरोमीति सततं स्वदास्थमनुदर्शयन् ।  
 आनमत्कन्धरौ भक्त्या ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥२६॥  
 इति श्रीरामचन्द्रस्य वीर्यं ते कथितं मया ॥२७॥  
 यस्यैकनाम सकलागमसारभूतं  
 भूयो जपन् किल नरः प्रविमुच्यते वै ।

**ब्रह्मादिदैवतभयानकरूपकाल—**

व्यालाननान् जयति कोऽन्य इतोऽपि वीरः ॥२८॥  
 प्राणान्तकरणोद्युक्ता<sup>३</sup> भयदा यमकिङ्कराः ।  
 सुदुर्दर्शाः पाशकराः कशाहस्ताः सुवेगिनः ॥२९॥  
 तेऽपि संयमिनोपुर्या वासिनो घोरविग्रहाः ।  
 यस्यैकनाममात्रेण पलायन्ते दिशो दश ॥३०॥  
 निर्भयो जायते मर्त्यो निस्तीर्णः कालसंकटात् ।  
 सर्वत्र पूजां लभते कस्तस्मात्पर ईश्वरः ॥३१॥  
 यस्य भ्राता लक्ष्मणाख्यो यतीन्द्रः  
 कल्पान्ताग्निक्रोधदुष्प्रेक्षरूपः ।  
 भवतस्यार्थे स्वयमात्तेषुचापः  
 कोऽन्यस्तस्मादुच्चकैर्वीरवर्यः ॥३२॥

१. °मरीक्षया—अयो० । २. तथा—अयो० । ३. °करणे युक्ता—अयो०, रीव० ।

कालस्यापि भयं यस्माद्विश्वतः कलनात्मनः ।  
 सूर्यस्य नित्यं भ्रमतो मरुतस्य सदागतेः ॥३३॥  
 अन्येषां चापिदेवानां मर्यादासंस्थितात्मनाम् ।  
 यतो भयं नित्यमेव महासंहरणात्मनः ॥३४॥  
 स्थावराणां जड्मानां यत एवास्ति संस्थितिः ।  
 स्वे स्वे स्थाने स्थापितानां नाद्याप्यस्ति व्यतिक्रमः  
 प्रभूणां चापि सर्वेषामेक एव च यः प्रभुः ॥३५॥  
 कालगिनरुद्रो जगतीतलस्य  
 करालरूपो विकटज्वालमाली ।  
 कल्पान्तेषु क्षम एषोऽस्य हृत्यै  
 सोऽप्यस्य ये स्तुल्यतां नैव याति ॥३७॥  
 यौवराज्यपदे स्थित्वा स्वपीठमधितिष्ठति ।  
 कोटिब्रह्माण्डकर्तारो विधयः कोटिशङ्कराः ॥३८॥  
 कोटयश्च महेन्द्राणां वरुणानां च कोटयः ।  
 कोटयः पावकानां च यमानां चापि कोटयः ॥३९॥  
 बद्धाज्जलिपुटा भूत्वा अग्रतः पर्युपास्थिताः ।  
 ततः प्रसादमासाद्य गच्छन्ति स्वस्य विष्टपम् ॥४०॥  
 कांश्चित् कृपाकटाक्षेण कांश्चिन्मञ्जुमुखस्मितैः ।  
 कांश्चिद्दालापमात्रेण कांश्चिद्दर्शनमात्रतः ॥४१॥  
 राघवेन्द्रोऽनुगृह्णति कोटिब्रह्माण्डनायकः ।  
 यस्यावतारसमये वैकुण्ठं वीक्ष्य शून्यवत् ॥४२॥  
 ये तत्र गामिनो देवा ब्रह्माद्या आधिकारिकाः ।  
 ज्ञात्वा परं पूरुषं तं नित्यमेवमुपासते ॥४३॥  
 तस्य वीर्यं समालम्ब्य रावणाद्यैरुपद्रुताः ।  
 विस्त्रस्ताः स्वाधिकारेभ्यः स्वान्ते संतापसञ्जुषः ॥४४॥  
 यस्य वीर्यं समालम्ब्य त्रिदशा सर्व एव हि ।  
 तादृशं विपदां भारं न किञ्चिद् गणयन्त्यहो ॥४५॥

१. एको—मथु०, बड़० । २. सोऽप्यस्यैष—मथु०, बड़० ।

स्मृत्वा यस्य धनुर्वाणौ सतां रक्षणकारकौ ।  
 दैत्यानामस्त्रशस्त्राणि मन्यन्ते तृणवच्च ते ॥४६॥  
 यस्य चक्रं महाज्वालामालादीधितिसंयुतम् ।  
 दैत्यस्तोभतृणारप्यदाहनोद्भुरताण्डवम् ॥४७॥  
 अपां तत्वं दरवरं यस्य पाणौ विराजते ।  
 यत्र मग्नास्तु दितिजा नोन्मज्जन्ति पुनः कवचित् ॥४८॥  
 वायुतत्त्वमयी यस्य गदा नित्यं बलोजिता ।  
 दैतेयघनसंघट्विद्रावणमहोजिता ॥४९॥  
 भुवनात्मकमम्भोजं यस्य पाणितले स्थितम् ।  
 मोहनं सर्वदैत्यानां ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥५०॥  
 देवानां चैव यक्षाणां गन्धर्वाणां च कन्यकाः ।  
 'राजां पुण्यजनानां च मनुष्याणां च कन्यकाः' ॥५१॥  
 ह्योपान्तरस्थितानां च विचित्रजनुषां नृणाम् ।  
 काश्मीरादिप्रदेशस्थमानवानां गुणान्विताः ॥५२॥  
 पत्न्यश्च पुत्रिकाश्चैव रूपसौन्दर्यशोभिताः ।  
 कामलुब्धेन नितरां रावणेन दुरात्मना ॥५३॥  
 द्विरागमविवाहादौ येषु तेषु<sup>२</sup> जनादिषु ।  
 पतिसंयोगकालादौ प्रसर्वं बलिना हृताः ॥५४॥  
 वन्दीकृताश्चावरुद्धाः प्रत्यहं शोककश्चिताः ।  
 यस्य वीर्यविमर्शेन वासरं गमयन्ति ताः ॥५५॥  
 दीनानां नः प्रभुरेकस्त्रिलोक्यां श्रीमान् वीरो योऽग्रगण्यः प्रतापी ।  
 कदा समागत्य रघुप्रबोरः श्रीरामचन्द्रो मोचयिष्यत्यमुष्मात् ॥५६॥  
 अस्मांस्तदेकशरणाः पतिपितृभ्रातृ—<sup>३</sup>  
 पुत्रादिभिर्विरहिता हृदिशोकभाजः ।  
 श्रीराघवेन्द्र इह संगत एव काले  
 संमोचयिष्यति बलाद् बलवान् स एकः ॥५७॥

१—१. नास्ति—अयो०, रीव० ।

२. दैवतासु—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

३. °पित्रपत्य°—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

नान्योऽस्माकं सोचयिता दृश्यते भुवनत्रये ।  
 रावणत्रिजगज्जैत्रादेकं रघुपर्ति विना ॥५८॥  
 इति विश्वस्तचित्तस्ता भावयन्ति दिवानिशम् ।  
 यस्मेव वरशार्दूलं ततः कोऽन्योऽस्ति वीर्यवान् ॥५९॥  
 संप्राप्ते संकटे चापि महाभय उपस्थिते ।  
 संग्रामे विषमे घोरे दुर्गमे जलसंगमे ॥६०॥  
 राजद्वारे भयकरे तथैवाध्वनि दुर्गमे ।  
 क्रव्यादद्विपसर्पदौ सद्यो नाशार्थमुद्यते ॥६१॥  
 कान्तारे दुर्गमे चैव पर्वते सिंहसंयुते ।  
 भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्ज्ञभकाद्यैरुपद्रुते ॥६२॥  
 रामेति यस्य नाम्नैव तरन्ति विपदोऽखिलाः ।  
 जायन्ते निर्भया लोकाः कोऽन्यस्तस्माच्च वीर्यवान् ॥६३॥  
 इति ते वीर्यमाख्यातं रामस्य सुमहात्मनः ।  
 यज्ञात्वा खलु जायन्ते अनन्यशरणा जनाः ॥६४॥  
 वीराय वीरवर्याय महावीर्यगुणात्मने ।  
 राघवेन्द्राय रामाय नित्यमेव नमोनमः ॥६५॥  
  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे  
 षड्गुणोपाख्याने [ वीर्यव्याख्यानं नाम ]  
 त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥



## चतुर्नवतितमोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

अथ ते राघवेन्द्रस्य प्रवक्ष्यामि यशोगुणम् ।  
जनो यद्गानमात्रेण भवबन्धात् प्रमुच्यते ॥ १ ॥  
सभामण्डपमागत्य स्थिते श्रीरघुसत्तमे ।  
वेदास्तापसरूपेण गायन्ति विपुलं यशः ॥ २ ॥  
अनवद्यलसद्वर्णा गद्यपद्मादिरूपिणीम् ।  
अवलम्ब्य गिरं तादृगभीरार्थविशारदाम् ॥ ३ ॥  
यमकोऽद्वासिनीं भूयो दण्डकोदण्डभण्डिताम् ।  
सरस्वतीमुपाश्रित्य सालङ्घारां गुणान्विताम् ॥ ४ ॥  
सर्वलक्षणसंयुक्तां विमुक्तक्रमसंक्रमाम् ।  
अभूतपूर्वविपुलां कविताख्यां तरञ्जिणीम् ॥ ५ ॥  
श्रीरामचन्द्रवदनालोककौस्तुभसंस्तुताम्<sup>१</sup> ।  
चमत्कारशतैर्युक्तां भारतीं समदर्शयन् ॥ ६ ॥

### वेदा ऊचुः

श्रीखण्डद्रवशीतलं विजयते नित्यं त्वदीयं यशः  
कामवलेशमुखैरूपद्रुतममुं जीवं तमःसंयुतम् ।  
संतमं बहुशो विपन्नमसकृत् संशीतयत्येव यः  
पीयूषोपममुच्चकैस्तदभितो भक्तैर्जनैर्गीयते ॥ ७ ॥  
शरच्चान्द्रीवलक्षं<sup>२</sup> यत् प्रकृत्या स्वादु शीतलम् ।  
अपहाय जनस्तादृक् तावकं विपुलं यशः ॥ ८ ॥  
कोऽन्तःसंतापसंदोहनिर्वपि<sup>३</sup> खलु वाञ्छाति ।  
इति चात्र<sup>४</sup> महामोह<sup>५</sup>व्याकुले दुर्भगे भवे ॥ ९ ॥

१. संलुताम्—मथ०, बडो० । २. शरच्चन्द्रविलक्ष्यं—अयो०, रीव० ।  
३. विवादै—अयो०, रीव० । ४. इतरत्र—अयो० । ५. अतः परं—“विवादं भजते  
पुनः, व्याकुले दुर्भगे चापि भागवान् जायते” इत्यधिकः पाठः—रीव० ।

नान्यस्त्वादृक् सुरेषु प्रतिकृतिकरणे भूरिसंतापराशः  
सर्वे त्वद्वृत्तमेव प्रलयमवधितः स्वाधिकारं भजन्ते ।  
एकस्त्वं निःसमानः प्रभुवर वरणीयोऽसि जीवैः समस्तै-  
रेषा ते राम कीर्तिस्त्रिभुवनजनताचित्तसंतापहर्त्री ॥१०॥  
कोटिनिलज्ञनेन्द्रनां भास्वन्त्या प्रभयापि च ।  
यद् दुर्जिवारतिमिरं त्वत्कीर्त्या तन्निवर्तते ॥११॥  
त्रिभुवनजनतायाश्चित्तसंतापहर्त्री  
प्रसभतरमविद्याकामकर्मादिरूपम् ।

तिमिरमपहरन्ती विष्वगौज्जवल्ययुक्ता  
विलसति तव कीर्तिः संतं राघवेन्दो ॥१२॥

क्षीराम्भोधे: समन्ताद्विलुलितलहरीलास्यलावण्यचौरी  
कर्पूरक्षोदगौरी द्रुततरविसरच्चन्दनामोदयुक्ता ।  
कीर्तिस्ते रामचन्द्र प्रकृतिसुमधुरा पूर्णपीयूषपूर—  
प्राप्तप्राज्यप्रतिष्ठा कलयति कुमुदालोकिनीं चारुचान्द्रीम् ॥१३॥

जय जय जय देव साकेतचन्द्रश्रिया'तन्त्रचन्द्रद्युते' रामचन्द्र-  
क्षमापाल शक्रादिदिवपालतेजःस्फुरच्चण्डकोदण्डदण्डस्फुटोद्गीर्णवाणावली-  
शीर्णविद्वेषिसंघ प्रभूतप्रचण्डप्रतापप्रकाशप्रकृष्टप्रसर्पत्रभावप्रसारप्रभापूरित-  
क्षमातलक्षेमदाक्षुण्ण<sup>२</sup>कौक्षयकाक्षामलक्ष्मीक सक्षेमसोन्मादमातङ्गविश्राण-  
नोद्वाम दीव्यदग्नुग्राम भूदेवविश्राम भूयस्तरायाम धर्मद्रुमाराम हेराम  
कामाभिरामद्युते ॥१४॥

जय कविजनगीत तावत्तुलातीत<sup>३</sup> नित्यप्रमुदित<sup>४</sup>शीतद्युति-  
स्फीतसत्कीर्तिसंनीतसाङ्गस्वराधीतविप्राननोक्षीतमाङ्गल्यवागीत खड्गस्फु-  
टाधातसद्यःसमुत्खातसर्वद्विषव्रात भूमण्डलायातलावण्यसंघात दोर्विक्रम-  
त्रातसद्वर्मविख्यात किञ्चिन्न वप्रातरुद्यत्पयोजातरोचिष्ठदभिख्यात-  
पादद्वयापातनम्भद्विषत्सातदानस्फुटौदार्य<sup>५</sup>सद्विप्रसत्कार्य सद्वृत्तनिर्धा-

१-२ नास्ति—अयो० । २. °दाक्षिण्य°—रीवॉ, “अक्षुण्णमखण्डितं कौक्षयेकं  
खङ्गो यस्य” टि०—मथु० । ३. °वाद्यकलातीत—रीवॉ । ४. °प्रमोदीत°—अयो०,  
मथु०, बड়ো० । ५. “किञ्चिन्नवं नवीनं प्रातरुद्यत् विकसितं यत् पयोजातं कमलं तद्वत् ।

र्यवीर्यश्रियावार्यं<sup>१</sup> सौन्दर्यसत्पात्र  
नित्यद्युते ॥१५॥

भूयोल्लसद् गात्रचञ्चद्यशोमात्र

जय जय कविजनभालभूरिस्फुरङ्ग्यभूम्येकसौभाग्यसंपत्तिसंभार-  
धौरेयतोहृष्णदोर्दण्ड शुण्डासमुच्चण्डभृङ्गावलीगण्डसोद्रेकवेतण्डविश्राण<sup>२</sup>-  
नाखण्डभूमण्डलाखण्डलोग्रप्रभाजाग्रदत्युग्रहस्ताग्र<sup>३</sup> किंभूयसा विस्तरेण  
त्वया देवकीर्तिश्रिया विश्वमेतत् समस्तं कृतं निस्तमस्कं तथा कोटिनिर्ला-  
ङ्छनेन्दुच्छवीनां छटाभिर्न संभाव्यते तादृशी श्रीरतस्त्वं समस्तावनीपाल-  
मूद्धाग्रमाणिकय हेरामचन्द्र क्षमापालचन्द्र जीयाश्चिरं देव  
जीयाश्चिरम् ॥१६॥

जय जय गुणमयकाय सर्वाधिकोच्छ्राय दीव्यत्सदाध्यायविप्रावली-  
दायजाताहितापायशातावलीशाय विस्फूर्जितामन्दसौरभ्यमाकन्द<sup>४</sup>  
लक्ष्मीलताकन्द पूर्णन्तरामन्द दत्तारिहाक्रन्द<sup>५</sup> विद्वत्सभोल्लास भूयोरसा-  
वास खङ्गोङ्गवत्रास वश्यद्विषद्वास वाणासनोत्प्रासविक्रान्तिसोङ्गास<sup>६</sup> हेराम  
तत्र त्वया कीर्तिरसंस्थापि यत्रोल्लसन्तः सुधापूरपूर्णाः स्फुरन्त्युच्चैस्तुङ्ग-  
गङ्गातरङ्गास्तथा राजहंसावली राजते यत्र कीर्तिस्तथा स्वःपते<sup>७</sup> ॥१७॥

इति ते भूयसीं कीर्ति वर्णितां कविपुङ्गवैः ।

गायन्ति देवललना विमानस्थाः स्वकेलिषु ॥१८॥

मन्दाकिनी भोगवतो गङ्गा गुणवती च या ।

सा तवैव यशोराजीपुण्यतोयतरङ्गवाट् ॥१९॥

रोचिष्णु रुचिरं अभिख्यातं प्रसिद्धं पादद्वयं तस्य पातेन ताडनेन नमा द्विषन्तस्तेषां  
सातदाने सुखप्रदाने स्फुटं औदार्यं यस्य” टि०—मथु० । १. “यस्य वीर्यश्रियौ  
वारयितुमशक्ये” टि०—मथु० । २. “शुण्डाभिः समुच्चंडो अत्युच्चो भृंगावलीयुक्तगांडो  
येषां ते तथाभूताः सोद्रेका मन्ता वेतंडा गजास्तेषां विश्राणनं दानं यस्य” टि०—  
मथु० । ३. “प्रभया जाग्रद् देदीप्यमानं अत्युग्रं सर्वकार्यसमर्थं हस्ताग्रं यस्य”  
टि०—मथु० । ४. “विस्फूर्जितं प्रसृतं अमंदं यत् सौगन्ध्यं तस्य माकंद आम्र-  
वृक्षस्ततुल्यं” टि०—मथु० । ५. “दत्त अरीणां हाक्रन्दो हाहाकारो येन” टि०—  
मथु० । ६. “वाणासनं धनुः तस्योत्प्रास आकर्षणं तस्य विक्रांतिर्विक्रमस्तया  
विराजमानं” टि०—मथु० । ७. “यत्र सुधापूरः गंगा च यत्र हंसपंक्तिस्तत्रैव तव  
कीर्तिरिन्द्रस्य कीर्तिवत्” टि०—मथु० ।

उद्गायतां प्रतिपदं सुरभीकरोति

वक्राणि कल्पतरुपुष्पपरागवद् यः ।

चेतः पुनाति रुचिमुत्कुरुते श्रवःसु

जाडचं धुनोति तनुते विपुलार्थसार्थम् ॥२०॥

श्लोकस्तादृक्तावको राघवेन्दो यज्ञो गीतः शून्य एवास्ति वेदः ।

यद्वा गीतः सर्वभावातिरेकात् किंतैर्गीतैर्दुर्विदर्घैस्तथान्यैः ॥२१॥

संगीयन्ते यस्य गुणा वदान्याः समस्तसौभाग्यमुदामजन्मम् ।

किं तेन गीतेन य एति मृत्युमुत्पद्यते प्रकृतिर्यस्य दुष्टा ॥२२॥

ईशावास्यमिदं सर्वं भवता गुणसिन्धुना ।

त्रैलोक्यबन्धुना राम संततं करुणात्मना ॥२३॥

सुभेशशिखरासीना मन्दारद्रुममूलगाः ।

दिविष्टकन्यका राम गायन्ति भवतो यशः ॥२४॥

वेदैरपि न निर्णयं यस्य नाम महद्यशः ।

के नाम तापसास्तत्र वयं वर्णयितुं क्षमाः ॥२५॥

दत्त्वा न प्रथयन्ति तज्जनमुखे शश्वद्गृहाभ्यागते ।

सानन्दं कृतसंभ्रमा इव भवन्त्याधाय कर्म प्रियम् ।

तूष्णीमासत आत्मनीतरजनस्वल्पोपकारक्रियां<sup>१</sup>

घट्टाघोषवदीरयन्ति दधते नोत्सेकमन्तः श्रियाम्<sup>२</sup> ॥२६॥

इत्याद्याः सकला गुणा विदधते कीर्ति रथूणां हि व-

स्तत्रापि त्वमिह प्रभो विदित एवात्युत्तमः पूरुषः ।

येषामद्यै<sup>३</sup> करोषि नाम सदलङ्कारं गुणानां हरे

तस्मात्ते गुणिनो जयन्ति हि गुणाः स्वार्थाः परार्था अपि<sup>४</sup> ॥२७॥

नित्यं मारकतेषु हैमसदनालङ्कारिषु प्राङ्गणे—

ज्वासीना विदुषां स्त्रियस्त्वदमलश्लोकानुकीर्तिस्पृशाम् ।

१. “वेदः यत् तव यशः न उद्गीतः नो गायति तदा शून्य एव, यद्वा सर्वा-धिक्येन गायति तदा तु अन्यगीतैः किं ?” टि०—मथ० । २. “आत्मनः स्वस्मात् इतरं जनानां स्वल्पापि उपकारक्रिया उपकारकरणं” टि०—मथ० । ३. “उत्सेकं = दर्पं श्रियं प्राप्य उद्धता न भवन्तीत्यर्थः” टि०— मथ० । ४. तेषां—अयो०, मथ०, बडो० । ५. “किंभूता गुणा गुणिनः गुणा विद्यन्ते येषु ते परार्थी परगुणगायका अपि गुणाः स्वार्थाः त्वद्गुणगायका एव” टि०—मथ० ।

मुक्ताविद्वुमहेमहीरकिरणप्रोन्मीलिताङ्गचः प्रभो  
 गृह्णे कर्मणि तावकं सुविषदं गायन्ति शशवद् यशः ॥२८॥  
 नेन्दुः पूर्णतमोऽथ शारदनिशामध्योल्लसदीघिति—  
 नो वा कैवकाननं न च सुधा संदीभिवन्मन्दिरम्<sup>१</sup> ।  
 नो वा शंभुशिरःसु मल्लिकुसुमस्त्रगिरणुपद्माः पयो  
 विश्वं भूषयते न राम भवतां यद्वद्वलक्षं यशः<sup>२</sup> ॥२९॥  
 यत्संगादशुचिः शुचिः सुमलिनोऽप्यौज्ज्वल्यवान् भासते  
 मूढोऽपि प्रगुणाकरः शठमतिश्चापीह सौहार्दवान्<sup>३</sup> ।  
 तत्तादृक् भवतो यशस्त्रभुवनालङ्घारसारं जनो  
 हित्वान्यं यदुपासते नरपति लोभात् स वै दुर्भगः ॥३०॥  
 एके कालमहाभुजङ्गमपरित्रस्तदेकौषधं  
 पीयूषोज्ज्वलमान्तराधिकपरीतापप्रतीकारकम् ।  
 श्रीमद्राघव तावकीनममलं विश्वप्रमोदप्रदम्  
 चेतोवश्यकरं यशः समुदयं प्रोद्गाय सुस्था बभुः ॥३१॥  
 नान्यो दाता न शूरो न च युद्धतिमनोहारिलावण्यलक्ष्मी-  
 नो विद्वान्नोपकर्ता न खलु पररुजां हारकस्तारको वा ।  
 प्रत्येकं रामचन्द्र त्रिजगति विरला ये गुणाः सर्वं एते  
 तेऽमी त्वामेव लीलाऽवतरणसमुपाश्रित्य<sup>४</sup> शशवज्जयन्ति ॥३२॥  
 धन्यो वाल्मीकिनामा जयति मुनिवरो धन्य एवाश्ववक्त्रो<sup>५</sup>  
 धन्यः श्रीमान् हनूमान् किमपि कलशजो धन्य उच्चैविधिश्च ।  
 धन्यः संकर्षणश्च त्रिभुवनभवनोद्दीपिनो वाक् च तेषां  
 धन्या श्रीरामचन्द्र प्रकृतिसुमधुरं त्वद्यशो ये वहन्ति ॥३३॥  
 यत्रैते ऋषयो भवन्ति ऋषयो विष्वक् प्रवृत्तिप्रदा-  
 श्छन्दोऽनुष्टुबथापि राम<sup>६</sup> वृहत्ती त्रिष्टुब्<sup>७</sup> जगत्यादिभिः ।  
 त्रैलोक्योत्तरसर्वदिव्यगुणभूस्त्वदेवता श्रीपते  
 शक्तिर्विश्वजनीनपापहरणं बीजं तथा कीलकम् ॥३४॥

१. °मन्मंदि°—रीवाँ, °मुन्मंदि°—अयो० । २. यच्चोज्ज्वलं ते यशः—  
 अयो०, रीवाँ । ३. पीशलौहार्दवान्—मथु०, बडो० । ४. लीलावतारं समुपचित-  
 मुपा°—रीवाँ । ५. “हयग्रीव;” टिं०—मथु० । ६. छन्दोभिः स्तुवतेभिराम—रीवाँ ।  
 ७. °नुष्टुब्—रीवाँ ।

त्वत्कीर्तिः सकलागमेषु विमलो मन्त्रः<sup>१</sup> परः कीर्तित-  
स्तस्यैष प्रकृतः प्रयोगविभवः प्रोद्धाति सर्वेश्वर ।<sup>२</sup>  
कामक्रोधमदप्रमादपिशुनस्तोमैकमुद्राकरः  
सिद्धि कामपि वाञ्छतामिह नृणामस्यैव संसाधनम् ॥३५॥  
सद्यः प्रत्ययकृत् प्रभाव उदयत्येतस्य<sup>३</sup> लोकोत्तरो  
यत्सर्वा अपि संसरेद्धि विषदो विघ्नाननेकानपि ।  
श्रेयो भूरि लभेत भूतिरपि च श्रोरैहिकामुष्मिकी  
के के नार्थगुणा जयन्ति जगति त्वत्कीर्तिमन्त्रे प्रभो ॥३६॥  
आदौ नामैव सर्वागमनिगमगिरामित्यमेकं रहस्यं  
चैतन्यानन्दरूपं तदनु च भवतो धाम नित्यप्रमोदम्<sup>४</sup> ।  
नित्या ते तत्र लोला तदनु विजयते पूर्णकैवल्यरूपा  
हंहो<sup>५</sup> त्वद्भृत्क्तिभाजां फलमपि परमं साधनं त्वत्पदाप्त्यै ॥३७॥  
आबाल्यादरामचन्द्र त्वमिह विहितवानुद्धृतिं जीवराशे-  
स्तामप्युदगाय लोकाः प्रभुवर भवितारः किमग्रे न तद्वत् ।  
एषा ते राघवेन्द्रो<sup>६</sup> जगति विजयते जीवजातेऽनुकम्पा-  
यस्तां जानाति नान्धः स भवति विधिना विज्ञतो बुद्धिहीनः ॥३८॥

ते वर्णाः साधुवर्णाः किमपि रघुपते तत्पदं सत्पदाख्यम्  
तद्वाक्यं साधुवाक्यं तदुपनतपदार्थश्च ते सत्पदार्थाः ।  
बुद्धिः सा शाब्दबुद्धिस्तदुपरि निगमा आगमाश्च प्रमाणं  
यत्र श्रीरामनाम्ना तव खलु निहितं स्वात्मनः स्थानमुच्चैः ॥३९॥  
वह्नालापैश्च किं तैः श्रुतिशतकशिरोभूषणैस्त्वदचशोभि-  
यै राहित्यं भजन्ते त्वदितरदिविषत्कोटिमन्त्राणि<sup>७</sup> भाजः ।  
यत्त्वत्कीर्त्याङ्कितं स्यात् प्रकृतिसुमधुरं दुर्लभं तत्किलैकं  
वाक्यं त्वज्ञामपूतं त्रिभुवनभवनधवान्तहृदौपतुल्यम् ॥४०॥

१. “तत्र मंत्रे ऋषिः छन्दः देवता शक्तिः बीजं कीलकं जपे विनियोग-  
रचेत्याद्यपेक्षितम्” टि०—मथु० । २. प्रोत्सासि सर्वेश्वरः—अयो० । ३. प्रभा  
उदयते तस्याशु—रीवौ । ४. धाम प्रमोदवनं—मथु० बडो० । ५. हृद्या—रीवौ ।  
६. राघवेन्द्र—रीवौ । ७. मंत्राणु<sup>८</sup>—रीवौ ।

आदौ मध्ये तथान्ते किमपि तव यशो गीयते राघवेन्दो  
 साम्ना ऋग्भर्यजुर्भिर्मधुमधुरमथाथर्वभिः साभिचारैः ।  
 कर्म ज्ञानं च शश्वन् मुखरमुखतया वर्णयन्तोऽपि चासी  
 स्वाभाविक्यां क्रियायां तव महिमनिधेज्ञानशक्तौ च शक्ताः ॥४१॥  
 आदौ यत्राग्निहोत्रं गदितमथ हरे पूर्णमासः सदर्श-  
 इचातुर्मास्यं पशुश्चाखिलफलकरणप्रक्रमोदारकर्मा ।  
 ज्योतिषोमाख्य उच्चैस्तदुपरि विहृतः सोमपीथक्रियावा-  
 ननिष्टोमः स एवं विलसति भवतो वर्षम् यज्ञस्वरूपम् ॥४२॥  
 आदौ त्वं पञ्चधा<sup>३</sup>भूस्तदनु च पुरुषो द्वादशात्मा<sup>४</sup> प्रदिष्टः  
 साङ्गोपाङ्गः सकाण्डः<sup>५</sup> क्रमिककृतिमयः कोऽपि पूर्वः परोऽन्यः<sup>६</sup> ।  
 विद्यर्थोल्लापमन्त्रैरविरतमुदितो नामधेयैश्च तैस्तैः<sup>७</sup>  
 सा ते शक्तिः क्रियाख्या जयति फलवती कोटिशो विस्तृताङ्गी ॥४३॥  
 साम्नामन्तेषु वाक्यर्नवभिरभिहितं इवेतकेतूपयुक्तैः  
 पुं सामर्थं चतुर्थं दृढतरचिदचिदग्रन्थिभेदेन भान्तम् ।  
 एकं ब्रह्माद्वितीयं निरूपमपरमानन्दचैतन्यधन्यम्  
 सन्तं सत्ता<sup>८</sup> मनन्तं जनितजगदुपादानमात्मानमीडे ॥४४॥  
 साङ्गस्वाध्यायसिद्धौ विधिमतविधिना<sup>९</sup> राधिताराधनीय—  
 श्रीमद्राम प्रसादात् तवविमलमनाः शुद्धसत्त्वः शरीरी ।  
 जानात्यङ्गीकृताभ्यामुपनिषदि गतौ तद्यथेत्यादिवाक्यैः  
 कार्यत्वानित्यताभ्यां जगदिदमसुखं ब्रह्मसङ्गा<sup>१०</sup> वसानम् ॥४५॥  
 यत्त्वक्षयादिशब्दादवगतमथवापामसोमेतिवाचा  
 तत्त्वाभूतादिवाक्यानुमतमनशनं दीर्घकालस्थितत्वम् ।

- 
१. “किंभूता अमी क्रियाशक्तौ ज्ञानशक्तौ चासक्ताः कर्मणि ज्ञाने च तथैव मुख्यतया प्रतिपादनमित्यर्थः” टि०—मथु० । २. “अग्निहोत्रं, दर्शपूर्ण-मासः, चातुर्मास्यं, पशुः, अग्निष्टोम एव ज्योतिष्टोमः इति पंचधा” टि०—मथु० ।
  ३. पूर्वश्लोकोक्तः । ४. द्वादशदिनकृतसंस्थाक इत्यर्थः । ५. काण्डः क्रियातंत्रः ।
  ६. “अयं यज्ञः पूर्वोऽयं पर इति क्रमः” टि०—मथु० । ७. “यजेदिति विधिः वायुवै क्षेपिष्ठा देवता इति अर्थोल्लापो नाम अर्थवादः । मन्त्रश्च नाम च तैः । इषेत्वोर्जेत्वा इत्यादिमंत्रः उद्धिदा यजेतेति नाम” टि०—मथु० । ८. “सन्तं सद्रूपं सत्तां सत्ताप्रदं” टि०—मथु० । ९. “विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति । तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसंख्येति गीयते ।” टि०—मथु० । १० °साम्नाव°—अयो० । °सत्राव°—बड়ো० ।

इत्थं दोषानुषङ्गं विषयसमुदये पश्यतो मुख्यपुंसः  
स्वैरं स्वैरं विरक्तिर्भवति बलवती भुक्त्युपेक्षैकमूर्तिः ॥४६॥

शान्तो दान्तस्तितिक्षुस्तदनु च परमां मुक्तिमेवेहमानो  
विक्षेपा<sup>१</sup>क्षुण्णचेताः श्रुतिशिखरमतारम्भविक्षम्भशाली ।

आपातज्ञातहृषं परिहृतनिखिलानर्थमानन्दसान्द्रं  
सत्यज्ञानाद्वितीयं विविदिषतितरां ब्रह्मज्ञासुवृत्तिः<sup>२</sup> ॥४७॥

शुद्धिः<sup>३</sup>श्रीयन्त्रजातामृतरसविषयस्नेहधाराभिषिक्ते<sup>४</sup>  
सज्जज्ञासानुवृत्त्या समुचित<sup>५</sup>दशया संगते चित्तपात्रे ।

हंसा यावत् कषायाम्बरनिहितकरं दर्शयन्ती न वेला  
तावन्नाभाति गर्भाश्रयतिमिरभरभ्रांशनज्ञानदीपः ॥४८॥

संन्यासं केचिद्दूचुः श्रवणविधिविनिश्चीयमाने विचारे  
नानाकर्मानुबन्धव्यपनयनमुखेनाङ्गतामाददानम् ।

इन्द्रादेः प्राग्भवीयं कथमपि निहितं चातुरैरेनमन्ये  
मन्यन्ते ज्ञानजन्मप्रतिभट्टुरितध्वंसनेन प्रधानम् ॥४९॥

तस्मात् संन्यस्तकर्मा विधिवदपि शिखायजसूत्रं विमुच्चन्  
कौपीनाच्छादनार्थं वसनमशिथिलग्रन्थं शोणं<sup>६</sup> वसानः ।

बिभ्राणो वेणुमेकं यदि मनसि रुचिर्भिक्षया कुक्षिपात्रं  
कुर्वाणः पूर्णमुच्चर्चैर्विपिनमधिवसन्नीहते ब्रह्मचिन्ताम् ॥५०॥

न्यायाभासोत्तराणामपरमुनिगिरामन्तरे संदिहानः  
कृष्णद्वैपायनोक्त्या परिचितविषयैरन्यथासिद्धिशून्यैः ।

षड्भिस्तात्पर्यलिङ्गैरथमुपनिषदामन्वयं ब्रह्ममात्रं  
शुश्रूषुः सानुकम्पं गुरुमनुसरति श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥५१॥

१. चिच्छेषा—रीवाँ । २. ब्रह्मनिष्णात<sup>०</sup>—अयो० । ब्रह्मजिह्वान्य<sup>०</sup>—बडो० ।
३. बुद्धिः—रीवाँ । ४. “श्रीरेव यंत्रः जलप्रवाहनिःसरणमूलस्थानं तत्र जाताः, अमृतरसो भगवद्रसः स एव विषयो यासां ताः स्नेहधाराः ताभिः क्षालिते” टि०—मथु० । ५. समधित<sup>०</sup>—अयो० । ६. सोण—रीवाँ । ७. “श्रुतिलङ्घवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यातमकैः” टि०—मथु० ।

१ भाषाग्रन्थात् स्वतो वा समुदयति सति ज्ञानमस्मादयोगं  
 पक्षे प्राप्तं निरस्यज्ञियमविधितथा श्रावणं वाक्यमेके ।  
 जल्पन्त्यन्ये<sup>३</sup> तु नेदं विधिरपि तु तथा ज्ञानमात्रार्थकत्वा—  
 त्तार्तीयोकं तु कश्चिद्विधिमनुमनुते वारयेद् यत्नमन्यम् ॥५२॥  
 अद्वैतात्मन्यशेषश्रुतिशिखरगतिं तत्परत्वेन बुद्ध्या  
 निःशङ्कं मानसेकं मनसि च विमूशान्नत्र विज्ञोपदेशात् ।  
 श्रौतज्ञानानुकूलं तदपि गुरुकृपासिद्धसंस्कारशुद्धि—  
 भूयस्तं युक्तितोऽपि स्वयमनुभिनुते मेयशङ्कां<sup>३</sup> विहन्तुम् ॥५३॥  
 रंहत्यंहीरितानां<sup>४</sup> मुहुरिह कलयन्नेष गत्या गतोना—  
 मुत्कान्तिक्लेशागर्भाशयविविधदशादुःखसंभेदभाजाम् ।  
 द्वेषावेशप्रगल्भं विषयसुखपरिष्वङ्गवैमुख्यमाय—<sup>५</sup>  
 आत्मध्यानं विधत्ते चिरमनुविरतं भाग्यवानादरेण ॥५४॥  
 धाराध्यानानुभावा<sup>६</sup> इपचितिमितवानन्यथा भावनायाः  
 संप्रज्ञाते समाधौ नियमितहृदयः सम्यगासन्नयोगः ।  
 प्रत्यूहव्यूहभङ्गे श्रवणसुखभवत्संस्कृतिस्वान्ततोयं  
 हन्ताद्वैतं महात्मा निगमपरिचितं पश्यति ब्रह्मतत्त्वम् ॥५५॥  
 नव्यापूर्वं विरुद्धन्<sup>७</sup> न परिणतपुराकर्मसंदोहदाही  
 प्रारब्धस्यानुरोधादणुविपुलतनूमूलमायाममृदनन्<sup>८</sup> ।

१. ‘विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति । तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ  
 परिसंख्येति कीर्तिता’ ब्रीहीन जुहोतीति ब्रीहीणां हवनमपूर्वतया विहितं, ब्रीहीनवहन्ती-  
 त्यत्रावहननं तुषापाकरणं तत्तु नखविदलनेनापि तन्निरस्यावहननमेवेति नियमः, आत्मा  
 वा रे श्रोतव्य इति श्रावणं श्रुत्या एव श्रोतव्य इति नियमविधिः । पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या  
 अत्र भक्षणं प्राप्तमन्यत्र मार्जारादावपि तत्प्राप्तं तत्रान्तिमभक्षणं निरस्यतीति परिसंख्या  
 विधिः ।” टि०—मथु० । २. “ब्रह्मज्ञानार्थं वेदान्तश्रवणमपूर्वतया विधीयत इत्यन्ये”  
 टि०—मथु० । ३. °भित्यशंकं—रीवॉ । ४. रंहत्यन्तर्गतानां—रीवॉ, वृंहत्य०—बड़ो० ।  
 “वेदस्य षोडशपादास्तत्स्थो रंहतिपादाख्य एकः पादः, तदुक्तानां” टि०—मथु० ।  
 ५. °भावा०—रीवॉ । “विचारेण विषयसुखपरिष्वङ्गे विषयसुखासक्तिः तत्र वैमुख्यं  
 विरागतमायन् प्राप्तः” टि०—मथु० । ६. धाराप्रवाहरूपं ध्यानं तस्यानुभवनात्  
 शीलनात्” टि०—मथु० । ७. विरूपन्—अयो० । “नव्यं नवीनमपूर्व॑यत् कर्मफलं  
 तत् विरुद्धन् अंकुरितमकुर्वन्” टि०—मथु० । ८. ‘अणु सूक्ष्मं विपुलं स्थूलं यत्  
 शरीरं तस्य मूलभूतं मायामपीडयन्’ टि०—मथु० ।

भिन्दनज्ञानदोषावरणमयतमोदत्तसर्वज्ञभावो  
ब्रह्मालोके विधत्ते कतिपयसमयान् योगिनो गौणमुक्तिम् ॥५६॥  
वृत्तिब्रह्मावलम्बा सकलफलभुजेरन्ततो जायमाना  
मायोच्छित्या प्रधानं कलयति परमानन्दरूपापवर्गम् ।  
पुंसो ब्रह्मात्वमेको वदति तदपरश्चेश्वरत्वेन सत्तां  
श्रीव्यासो मुक्तिमात्रे प्रथममपि परां तास्विदानोन्तनीषु ॥५७॥

इत्येवं ज्ञानमुदितं ब्रह्ममायावलम्बनम् ।  
फलाद्यं त्वत्स्वरूपं तत् सर्ववेदान्तवर्णितम् ॥५८॥  
भववन्धविनिर्मुक्तौ ज्ञानशक्तिस्तव प्रभो ।  
अधिकं यश एवेदं वेदवेदान्तवर्णितम् ॥५९॥  
ब्रह्मापि तव रामेन्द्रो महिमैव सनातनः ।  
यस्मिन् प्रतिष्ठितो नित्यं कविभिश्चारु वर्णसे ॥६०॥  
भूयः शक्तिद्वयापेतस्त्वं पूर्णः पुरुषोत्तमः ।  
सर्वां रसमयों लीलां प्रवर्तयसि संततम् ॥६१॥  
अयं वापि तव श्लोको गीयते व्रजमण्डले ।  
सहजानन्दनीयुक्तस्त्वं यत्रैव विराजसे ॥६२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे षड्गुणोपाख्याने  
[यशोव्याख्यानं नाम] चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥



### पञ्चनवतितमोऽध्यायः

[ ब्रह्मोधाच ]

अथ श्रियं प्रवक्ष्यामि रामस्य श्रीपर्तेद्विज ।  
यथा'संशोभितं नित्यं रघुराजनिकेतनम् ॥ १ ॥  
पुरग्रामव्रजारण्यदेशवेषावलम्बनी ।  
श्रीविग्रहावलम्बा श्रीबंहृधैवानुवर्णते ॥ २ ॥

१. यथा—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

पुरं तदुत्तुञ्जविशालसौधशिरः प्रविन्यस्तसुवर्णकुम्भम् ।  
 प्रत्युप्तरत्नोदभवया स्वभासा नक्षत्रलोकं पिदधद्विभाति ॥ ३ ॥  
 प्रासादतुञ्जवलभीविविधोपकलृपतवातायनौघविवरान्तरनिर्गतानाम् ।  
 यच्चित्रशालमणिरत्नमयूखभासां संदोह आक्रमति राजपथं समन्तात् ॥४॥  
 गावो हरिन्मणिविशेषसमूहकलृपतनिर्घूटीवितिषु च तृणसंभ्रमेण ।  
 उद्गीविकां किमपि कुर्वत इत्युदीक्ष्य नृत्यन्ति कौतुकवशेन हि यत्र बालाः ॥५॥  
 स्त्रीणां विलासभवनेषु मनोजकेलिसंग्रामसंत्रुटितमौवितकरत्नवृद्धैः ।  
 कीर्णरूषः सुगृहमार्जनिकानिरस्तैरादच्या भवन्ति कणभिक्षजुषोऽपि यत्र ॥६॥  
 सायं प्रदीप्तशुभदीपमनोहरेषु सानन्दसर्वमनुजेषु निकेतनेषु ।  
 श्रीः पर्यटत्यविरतं भृशमात्मवत्ता मन्वेषयन्त्यखिलपौरजनेषु यत्र ॥ ७ ॥  
 मञ्जीरमञ्जुलनिनादविशेषवत्यः कांचिज्ञणज्ञणितकौतुकितस्वचित्ताः ।  
 क्रीडन्ति यत्र कमला इव पद्महस्ता द्वारेषु मुग्धहृदया हरिणीदृशो वै ॥८॥  
 श्रीरामचन्द्रविपुलोर्जितकीर्तिगाथा दैनन्दिनानुचरितानि मनोहराणि ।  
 गायन्त्य उन्नततरेषु निकेतनेषु संमोहयन्ति सुदृशोऽप्सरसां मनांसि ॥ ९ ॥  
 श्रीः संचरत्यविरतं प्रतिसद्म यत्र रत्नाङ्गिष्ठपूरसविशेषरवानुलक्ष्या ।  
 छायावशादनुमिता करपञ्चजस्य छत्रस्तुतैर्मणिगणैरवनौ किरन्ती ॥१०॥  
 आनन्दवान् दशरथो नृपतिः कुमारकीर्तिव्रजं कथयतां विदुषां गणेभ्यः ।  
 शशवह्वदाति मणिहेमविभूषणानि रत्नानि पूरयति तानि गृहाणि लक्ष्मीः ॥११॥  
 श्रीजानकी विरचयत्यनिशं सपर्या साध्वीगणेन सह यत्र वसिष्ठपत्न्याः ।  
 स्वच्छैरलङ्घकृतिभरैर्वसनाङ्गरागैर्मन्दारमाल्यनिवैः शुभभोजनैश्च ॥१२॥  
 ता आश्विषः प्रतिपदं विदधत्यमुष्यै साकेतलक्ष्मि बहुभाग्यवती भवेति ।  
 आदाय याः स्ववसनाङ्गलरोपणेन भूयः पदोः पतति सा प्रसभं सतीनाम् ॥१३॥  
 सीतास्वयंवरकथां निमिचन्द्रलक्ष्मीं श्रीरामचन्द्रभृगुवर्यरणप्रसक्तिम् ।  
 तद्वीर्यसंहरणिकामुपवीणयन्ति यत्रोत्सुकेषु पुरवासिषु किन्नरेन्द्राः ॥१४॥  
 धर्मध्वजाः किमपि यत्र जयन्ति पौरा येषां गृहेषु सकृदेव धनाभिलाषात् ।  
 द्वाराणि नान्यधनिनां मुहुरुद्वजनिति पूर्णशिषामुपगता निजजन्म यावत् ॥१५॥

चित्रोपकलूपरचनारुचिरेषु यत्र प्रासादशृङ्गसदनेषु सुखस्थितानाम् ।  
 नानाविधद्युतिमतां विहगोत्तमानां वर्णभ्रमो भवति चित्रनिरीक्षणानाम् ॥६॥  
 रत्नाङ्गेषु धनिनां तिमिराकुलासु रात्रीषु यत्र निहिताः शुभदीपलेखाः ।  
 मन्दीभवन्ति किरणैरधिकप्रकाशैरभ्युदगतैस्तलत ऊर्ध्वगतैर्नभोऽन्तम् ॥७॥  
 कल्पद्रुमैः परिवृतेषु च निष्कुटेषु गुञ्जन्ति यत्र सततं समदा मिलिन्दाः ।  
 एकीभवन्ति ललितेन कलस्वरास्ते मन्दोपनादितमनोहरवल्लकीभिः ॥८॥  
 यत्रापणेषु वणिजां बहुलाभभाजां मूर्त्ताः स्थिता नवनवा निधयो नवापि ।  
 दृश्यन्त इत्युदितमासु निशम्य यक्षा यक्षाधिपश्च वचनात्सहस्रोपयान्ति ॥९॥  
 स्वप्नेऽपि नाधिरिह वासवतामुदेति व्याधिर्न च श्रुतिपथं कवचिदभ्युपैति ।  
 श्रीरामचन्द्रमुखचन्द्रनिरीक्षणेन नित्योत्सवानि दिवसानि नृणां प्रयान्ति ॥१०॥

कम्पः केतुषु निभन्नगत्वमुदके दौर्बल्यमश्वानने  
 दुःखं द्वेषिकुले हिरण्यविरहः स्तोमेषु<sup>१</sup> तुष्टात्मनाम् ।  
 विश्लेषप्रभवा रुजश्च रजनौ नो मानुषेष्वस्ति तत्  
 तस्मिन् भर्तरि यौवराज्यपदवीमध्यासमाने श्रियः ॥११॥

देशान्तरात् कविजना धनलिप्सयामुमभ्येत्य यावदुपयन्ति सभानिषण्णम् ।  
 तावत्कुटुम्बजनदूतमुखादुदन्तं शृण्वन्ति सद्मनि महामणिहेमवृष्टेः ॥१२॥  
 येष्वद्विग्रभविवरेषु कदापि नैव दृष्टा खनिः कनकरूपमहाधनानाम् ।  
 तेष्वेव ताः खलु निरीक्ष्य बभूव नृणां<sup>२</sup> माश्चर्यमभ्यधिकमुद्वितराजभागाः ॥  
 भूमावनुप्तमपि धान्यमुदाविरासीत्<sup>३</sup> सूर्यातिपं प्रतिनिरोद्धुमभूत्पयोदः ।  
 उम्पं च तावदभवत् फलपाकशालि यावद्गृहीतुमलसाः कृषिका बभूवुः ॥१४॥  
 देशोऽखिलः कनकरत्नविराजिभूषासंदोहवद्धिरनिशोत्सवमङ्गलाद्यैः ।  
 नारीगणैर्नरगणैः शुशुभे विशेषात् स्वर्गो यथा ससुखपीतसुधैः सुरौद्यैः ॥१५॥  
 राजा स्वयं दशरथः सुखसंपदाद्यो रामो निदेशमनुतिष्ठति तस्य नित्यम् ।  
 कार्यं च सर्वमनुतिष्ठति लक्ष्मणादिभ्रातृत्रयं किमपरं सुखमीदृगस्ति ॥१६॥  
 लोकत्रयी दशरथस्य परां समृद्धिमुद्वीक्ष्य पुत्रधनदारविशेषजुष्टाम् ।  
 प्रत्येकमात्मसदनेषु समोदमूचे श्रीरामचन्द्रगुणगानविशेषहृष्टा ॥१७॥

१. स्तोषेषु—मथु०, बड़०, स्तेषु—रीव० । २. कलप्त—अयो० ।  
 ३. आविरास—मथु०, बड़० ।

लोका उच्चः

जानीथ तद्वशरथस्य नृपेश्वरस्य पूर्वप्रभूतमतुलं सुकृतं विशिष्टम् ।

यद्वेवदानवरणे विषमे सुराणां साहाय्यमाचरितमस्य भुजद्वयेन ॥२८॥

के के न निर्भयपदं समवाप्य देवा दैत्यन्रजं जितवते<sup>१</sup> रघुपुञ्जवाय ।

अस्मै न वै दशरथाय शुभाशिषोऽर्दुर्यासामयं समभवद्भुविको विपाकः । २९।

संग्रामभूमिगत एष दुरासदानां देवद्विषां भुजबलेन बलं जहार ।

वन्दीः स्वयं दिविषदां खलु मोचयित्वा तासां शुभाशिषमुवाह बहुप्रकाराम् ३०

इत्याद्युपप्लवगणात् सततं प्रजाः स्वाः संरक्षणं स्वयमसौ नृपतिश्चकार ।

एतास्तदेनमतुलाधिकसत्फलाभिराशीर्भरेधयितुमुत्कलिकामविभ्रत् ॥३१॥

स्वेष्वाश्रमेषु मुनयो दितिजैद्विषद्भुद्वेजितास्तपसि विघ्नहता बभूवः ।

तानेव<sup>२</sup> सुस्थहृदयानकरोन्नरेन्द्रः प्रायुज्जताविरतमत्र शुभाशिषस्ते ॥३२॥

साध्यो निजन्रतविलोपभयात् सशोका दैत्येषु यौवनधरेषु विवृद्धिमत्सु ।

एतस्य विक्रमगुणैरभवन् विशोकास्ता आशिषः समपुष्पन्निह दुष्टजैत्रे ॥३३॥

येऽन्ये तपस्विन उदीर्णमुनिन्रता वै गर्हस्थ्यधर्मनिरता निहिताग्निहोत्राः ।

स्वास्थ्यं चकार नृप एष स तेषु योग-क्षेमादिसंभूतिभिरुद्यद्वारवृत्तः ॥३४॥

मर्त्या मृगा अपि खगाः पशवस्तथान्ये दीना गवादय उदीत<sup>३</sup>भयाः परेभ्यः ।

तेषामसौ सुविपुलाभयदानदक्षः स्वस्वक्रियाकुशलताकरणो नरेन्द्रः । ३५।

ते सर्व एव नृपतेरुदयप्रकर्षं वाञ्छन्त आशिषमजस्तमुदीरयन्ति ।

तस्यैतदेवमुदितं फलमुद्विभाति यद्रामचन्द्रसदृशास्तनया जयन्ति ॥३६॥

रामो जगज्जनविलक्षणवृत्तशीलस्तादृक् च लक्षणं उदारगुणाम्बुराशिः ।

अन्यौ तथैव भरतोऽपि च शत्रुमूदः सर्वेऽप्युदारचरिता भरिता गुणौद्यैः । ३७।

जीवन्तु ते चिरममो नृपतेरुदारैरत्युन्नतैर्भवविलक्षणभागधेयैः ।

कल्याणकोटिसुकृतार्जनसंभवानां साकेतपत्तनजुषां च निजप्रजानाम् । ३८।

एतैः सुपुण्यैर्चरितैस्त्रिदशापगा च त्रैलोक्यपावनसमृद्धविशिष्टशीलैः ।

सर्वे जनाः सुकृतिनः खलु संबभूवः श्रीमन्मुखेन्दुपरिदर्शनभूरिभाग्याः ॥३९॥

१. दैत्यान् जयन्ति तव ते—अयो० । २. तानेक—अयो० । तानेव—रीवॊ० ।

३. नुदीत<sup>०</sup>—अयो०, रीवॊ० । ४. स्वपुण्यै—रीवॊ० ।

श्रीराघवेन्द्रचरितामृतपूर्णधारानित्यावगाहसुविशुद्धमनोवपुष्काः ।  
 साकेतवासिन इमे मनुजाः स्वभाग्यर्धन्या इति त्रिभुवनं परिशोभयन्ति ॥४०॥  
 भूमण्डलस्य खलु कीर्तिरसावयोध्या यत्रास्ति पुण्यचरितः पुरुषः पुराणः ।  
 अंशैश्चनि [तु]भिर्भितो भुवनं समस्तमुद्दीपयन् दिवसनायकवंशदोपः ॥४१॥  
 हंहो वयं खलु निजानि निकेतनानि हित्वा वसाम रघुनाथपुरीमुपेत्य ।  
 यत्रेन्दिराप्रतिगृहं परिबंधमीति हस्तारविन्दरुचिभिर्भुवि रज्जयन्ति ॥४२॥  
 किं वर्णनीयमथ वक्त्रसहस्रकेण साकेतवासिजनतालिकपट्टैभाग्यम् ।  
 त्रैलोक्यमेव खलु भाग्यसमृद्धिमद्यच्छ्री<sup>३</sup>रामचन्द्रजनुषा शुभसंभृतेन ॥४३॥  
 या श्रीः स्वयं वसति सुस्थिरभावमाप्ना वैकुण्ठसद्वनि समस्तगुणैरुपेता ।  
 सा स्वात्मनो दयितमेनमिहावतीर्ण विज्ञाय तिष्ठति रघूत्तमराजधान्याम् ॥४४॥  
 येष्वाशयेषु पथसां न कदापि पद्मास्तेष्वत्र पद्म<sup>४</sup>कुलसंपदभूतपूर्वा ।  
 मुक्ताफलानि च भवन्ति वृहत्तमानि केलिं तथा विदधते खलु राजहंसाः ॥४५॥  
 इन्द्रालयेऽपि न तथा सुविभाति शोभा न ब्रह्मसद्वनि न वा खलु भोगवत्याम् ।  
 साकेतवासजुषि नीचतरेऽपि वर्णं यादृक् बभूव नरकिन्नरवीक्षणीया ॥४६॥  
 धिक् तस्य जन्म विधिसृष्टिमुपेत्य येन स्वप्नेऽपि नैव समवापितमक्षिमार्गम् ।  
 साकेतनामनगरं सरयूतरङ्गसंशीलितानिलसमागमपूतलोकम् ॥४७॥  
 सैवाद्भुता पुलिनभूः सरयूतटिन्याः पानीयपुष्टदृढ़मूलमहावनाढचा ।  
 नो वासवस्य नगरी हरिचन्दनाद्यैर्वज्ञानुरूपफलितैः परितः परीता ॥४८॥  
 किं पारमेष्ठयपदवीं समुपेत्य कार्यं धन्यैव सा तृणजनिः सरयूतटान्ते ।  
 यस्यां दुरापमपि तत्सुलभं शिशुत्वे क्रीडद्रघूत्तमकुमारपदारविन्दम् ॥४९॥

प्राज्यं स्वर्लोकराज्यं सुरवरवनिता पाणिपद्मोपगृह-  
 प्रोदज्चच्चामरान्दोलनगतमुरतस्वेदखेदं विहाय ।  
 श्रीमंतसाकेतपुर्याः परिसरसरयूसंसरत्तुङ्गवीची-  
 नीचीभूतैकदूर्वादिलमहिमदशामात्मनः कामयामः ॥५०॥  
 धन्या सा मलिलवल्ली किमपि दिविषदामप्यलभ्यैस्तपोभि-  
 भूयो भाग्येरयोध्यापुरगतसरयूसैकतान्ते प्ररुढा ।

१. द्विर्भिर्भितो—बडो० । २. किलपाद०—अयो० । ३. समृद्धिमद्य—रीवाँ० ।  
 ४. सद्य०—रीवाँ० ।

यस्याः पुष्पावलीभिर्विरचितमतुलं मण्डनं मैथिलीस्वै-  
 रड्गैनित्यं बिर्भूति प्रियतमनयनानन्दसंदोहदात्री ॥५१॥  
 धन्यास्ते राजहंसाः सुविशदसरयूतोयसंसारशीलाः  
 येषां लीलाऽचिच्चतानि स्वयमनुकूस्ते मैथिलेन्द्रस्य पुत्री ।  
 ये वास्याः पादपद्माभरणमणिगणकाणमाकर्णं तुष्टा-  
 स्तादृक्शिक्षावशेन स्वयमपि दधते मञ्जुलालापलीलाम् ॥५२॥  
 'धन्यास्तेऽमी मथूराः सुरुचिरसरयूकूलकुञ्जे वसन्तो  
 नीलां प्रावृद्धनालीमपि निजमनसा सन्त्यनादृत्य तुष्टाः ।  
 येषां चक्षुःप्रभोदं विरचयति सदा कोऽपि रामाभिधानः  
 पीयूषाम्भोद उच्चर्जनकनृपसुताविद्युदालिङ्गिताङ्गः ॥५३॥  
 धन्यास्ते चञ्चरीका विकसितसरयूकूलकुञ्जद्रुमाणां  
 येषां चित्तस्य नाभूत् सुरतरुकुसुमामोद आनन्दहेतुः ।  
 क्रीडार्थं संगताभ्यां प्रतिसमयसुखं मैथिलीराघवाभ्यां  
 येषां ग्राणानि नित्यं निजतनुविलसत्सौरभैः संभूतानि ॥५४॥  
 इति श्रियं वर्णयतामयोध्यापुर्यस्तदावासिजनैकलभ्याम् ।  
 मनांसि तेषां मुमुहुः समन्ताल्लोकत्रयस्थानजुषां जनानाम् ॥५५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे षड्गुणोपाख्याने  
 [श्रीव्याख्यानं नाम] पञ्चनवत्तितमोऽध्यायः ॥९५॥

१-१. अयं इलोको नास्ति—अयो०, रीवाँ ।

## षणवतितमोऽध्यायः

**ब्रह्मोवाच**

आख्याता रामचन्द्रस्य कीर्तिवेदोपर्वर्णिता ।  
 अथ ज्ञानं प्रवक्ष्यामि साक्षाद्ब्रह्मनिदर्शनम् ॥ १ ॥  
 अलौकिकानुभावेन जात्वा परमपूरुषम् ।  
 रामचन्द्रं मुनिगणाः उपजग्मुः ससंभ्रमम् ॥ २ ॥  
 राज्यर्त्सहासनासीने नृपाणां महतां गुरौ ।  
 देवे दशरथे सर्वे मुनयः समुपाययुः ॥ ३ ॥  
 कश्यपोऽत्रिर्विष्णुष्ठश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।  
 अङ्गिरा भृगुरोजस्वी दुर्वासा गर्ग एव च ॥ ४ ॥  
 कौण्डन्यश्चयवनो योगी विश्वामित्रोऽथ देवलः ।  
 शाङ्ख्यायनं स्तथा शङ्खो लिखितः कण्व एव च ॥ ५ ॥  
 अगस्त्यश्चासितो विष्णुः शर्कराक्षो दृढव्रतः ।  
 वामदेवः शुकः शान्तः सुतीक्ष्णश्च पराशरः ॥ ६ ॥  
 विदो वत्सो जामदग्न्यो जमदग्निस्तपोनिधिः ।  
 सुकलश्च भरद्वाजो मुद्गलो धौम्य एव च ॥ ७ ॥  
 सुवर्चाः सौविदः पैलः शातनिः शाकटायनः ।  
 संकराक्षः शमीकश्च ऋष्यशृङ्गो महामुनिः ॥ ८ ॥  
 कणादः कपिलो व्यासो गौतमश्च पतञ्जलिः ।  
 जैमिनिः पिण्डलादश्च शाण्डिल्यो मुनिपुङ्गवः ॥ ९ ॥  
 वरतन्तुर्वरेण्यश्च नारदाद्याः सुरर्षयः ।  
 ब्रह्मर्षयस्तथा सर्वे दिव्यज्ञानविलोचनाः ॥ १० ॥  
 वशिष्ठमग्रतः कृत्वा सर्व एव समाययुः ।  
 तेषामासनपाद्यादिविधिभिर्नितकन्धरः ॥ ११ ॥

१ शांखायनः—बड़ो० ।

सपर्या महतीं चक्रे राघवो धर्मवित्तमः ।  
 पूर्वं दशरथं सर्वे उपसन्ना मुनीश्वराः ॥१२॥  
 ततः कौतूहलाक्रान्ता रामं ददृशुरद्भुतम् ।  
 ते रामेणाद्भुतां पूजां कृत्वा समभिवादिताः ॥१३॥  
 सहषं च ततः पृष्ठाः शुद्धान्तं नृपतौ गते ।  
 महता<sup>१</sup> संभ्रमेणैव जातहृष्टाः पुराविदः ॥१४॥

### श्रीराम उवाच

उन्नतं नः पितुर्भाग्यं रघुवंशस्य सर्वशः ।  
 आतिथ्यं यस्य गृह्णन्ति ज्ञाननेत्रा भवादृशाः ॥१५॥  
 योगिनो वेदवेदान्तविदो निर्धूतकल्मषाः ।  
 विश्वस्य गुरवः साक्षान्मौनव्रतपरायणाः ॥१६॥  
 पुराविदो विधिज्ञाश्च ज्ञानविज्ञानदृष्टयः ।  
 ब्रह्मादीनां दिविषदां पूजनीयाः समंततः ॥१७॥  
 यूयं वेदविदः सर्वे स्मृतिभिर्धर्मवर्तकाः ।  
 संगता यस्य सदनं स धन्यो गृहवान् नरः ॥१८॥  
 जगतः कुशलार्थाय तीर्थानां करणाय च ।  
 परिभ्रमथ मेदिन्यां पूज्यो देशः स सर्वदा ॥१९॥  
 यत्र तिष्ठन्ति कार्येण मुहूर्तमपि योगिनः ।  
 परावरविदः साक्षाद्योगिनो ब्रह्मदर्शिनः<sup>२</sup> ॥२०॥  
 कच्चिद् वः कुशलं दिव्येष्वाश्रमेषु तपस्विनः ।  
 धर्मकर्मकहेतूनां जलादीनां सुपुष्कलम् ॥२१॥  
 कच्चिद् वः प्राकृतैर्लोकैः कामलोभेन संगतैः ।  
 एकान्तिकासनसदां<sup>३</sup> नोपप्लावित आश्रमः ॥२२॥  
 कच्चिद् वस्तपसामौग्र्यं प्रविलोक्यासहिष्णुना ।  
 इन्द्रेण नेर्येते विघ्नो रस्मादीनां प्रदर्शनैः ॥२३॥

१. सहजा<sup>०</sup>—रीवाँ । २. °दर्शनाः—अयो०, रीवाँ । ३. °पदां—बड़ो ।

कच्चिद् वो यजनाद्यासु क्रियासु बहुलासु च ।  
 अशान्तेन समीरेण वने<sup>१</sup> नोद्विज्यते मनः ॥२४॥  
 \*कच्चिद् वः स्वाश्रमवरेष्वारप्यैर्वारणादिभिः ।  
 न भज्यन्ते न पोडचन्ते तरवो धर्मसिक्तकाः<sup>२</sup> ॥२५॥  
 कच्चिद् वः स्वाश्रमवरेष्वविप्रस्तपसो बलात् ।  
 साधम्यं समुपाश्रित्य विषादादि करोति न ॥२६॥  
 कच्चिद् वः कुशलिल्यस्ताः कामधेनुसमत्विषः ।  
 अग्निहोत्रादिसौकर्यसाधिकाः किल धेनवः ॥२७॥  
 कच्चित्तासामपत्येषूपद्रुतेष्वितरैर्मृगैः ।  
 तपस्तेजःस्वभावेन<sup>३</sup> युष्माकं नाभवद्रुषा ॥२८॥  
 जनानां कुशलं येभ्यः शान्तिश्च क्रूरचेतसाम् ।  
 तेषां वः कृतिनामेतदपृछयमपि पृच्छते ॥२९॥  
 यतोऽहमादेशकरो युष्माकं ब्रह्मदर्शिनाम् ।  
 वाञ्छाम्यनुग्रहं शशवत् किंचिदाज्ञाविशेषतः ॥३०॥  
 यदाज्ञापयथ प्रेष्यं शशवदाज्ञाकरं च माम् ।  
 तत्करोमि मुनीशानाः<sup>४</sup> सकृद्रचनमात्रतः ॥३१॥  
 भवतां हि तपोविघ्नो विघ्नो भुवनसंपदाम् ।  
 अतस्तिष्ठथ<sup>५</sup> सौख्येन आश्रमेषु मुनीश्वराः ॥३२॥  
 एषोऽस्माकं पिता देवो भवतामेव सिद्धिजाम् ।  
 राज्यश्रियमुपाश्रित्य शक्तो भुवनरक्षणे ॥३३॥  
 इति श्रोरामचन्द्रस्य निशम्याभ्युदितं वचः ।  
 वक्तुं सर्वे मुनीशाना वशिष्ठं समचोदयन् ॥३४॥  
 तेषामिङ्गितमाज्ञाय वशिष्ठो ज्ञानलोचनः ।  
 उवाच वचसा रामं तोषयन् विदुषांवरः ॥३५॥

### श्रीवशिष्ठ उवाच

वर्वति सर्वतो वातं त्रैलोक्यस्यैव सुव्रत ।  
 विशेषतस्तापसानामस्माकं त्वयि राजति ॥३६॥

१. वनं—बडो० । २-२. अयं इलोको नास्ति—अयो० । ३. स्वभावेषु—रीवाँ० ।  
 ४. °शानां—अयो०, रीवाँ० । ५. तिष्ठन्ति—अयो०, रीवाँ० ।

पिता तव जगद्रक्षादक्षिणो धर्मवित्तमः ।  
 उन्मार्गगामिनां नणां नित्यं दण्डयिता बलात् ॥३७॥  
 यूयं हि राघवाः साक्षाद्वरक्षाविचक्षणाः ।  
 मान्धातृसगरादीनां लोके प्रोहोप्यते यशः<sup>१</sup> ॥३८॥  
 तेषां वंशे भवान् जातो रघुवंशैकभूषणः ।  
 जगतां तनुषे तोषं मुनीनां नो विशेषतः ॥३९॥  
 अप्येकः संब्रमो ह्येषां योगिनां ज्ञानचक्षुषाम् ।  
 भवन्तमिह विज्ञाय ह्यवतोर्णं परात्परम् ॥४०॥  
 केनचित् कालकल्पेन पौलस्त्येन महौजसा ।  
 रक्षांसि सुसमृद्धत्वं प्रापितानि विशेषतः ॥४१॥  
 अतस्तेषां विनाशाय कालरूपी दुरासदः ।  
 अवतोर्णोऽस्यमेयात्मन् साक्षाद्रामेति यो<sup>२</sup> भवान् ॥४२॥  
 इतिविज्ञाय मुनयः सर्वे त्वां समुपागताः ।  
 अवाप्तुमतुलं ज्ञानं कर्मोपास्तिफलात्मकम् ॥४३॥  
 अनेकैरद्भुतैर्लिङ्गैर्भवान् ब्रह्मैव केवलम् ।  
 तत्पदं परमं सूक्ष्ममव्यक्तात् परतः स्थितम् ॥४४॥  
 इति सामान्यतो ज्ञात्वा मुनयस्त्वामुपागताः ।  
 सर्वोपनिषदां गुह्यं सारमर्थं विवेचितुम् ॥४५॥  
 यथाधिकारं सकलैर्भवानाश्रीयसे प्रभो ।  
 धर्मार्थिनस्त्वां धर्मार्थं सन्ततं पर्युपासते ॥४६॥  
 अर्थार्थिनस्तथार्थाय कामाय च तदर्थिनः ।  
 मुक्त्यर्थिनो जनाः शश्वन्मुक्त्यै त्वामेव संश्रिताः ॥४७॥  
 तेषां वयं रामचन्द्र भवबन्धविमुक्तये ।  
 आपन्नाः शरणं शश्वदितिप्राप्ताः स्म योगिनः ॥४८॥  
 जानिनां यल्लयस्थानं संततं ब्रह्मदर्शनम् ।  
 तद्भवान् विदितो रास किमुपेक्ष्योऽस्यतः परम् ॥४९॥  
 स्वात्ममायामुपाश्रित्य मोहयन् जगतो दृशम् ।  
 परं ब्रह्म सुखाकारं सुखाकारेण राजसे ॥५०॥

१. तेजसः—अयो०, रीवाँ । २. रामचन्द्रो—बड़ो० ।

इति विज्ञाय मुनयस्त्वां लिङ्गैरेव तादृशैः ।  
भवन्तं शरणं प्राप्ता यथेच्छसि तथा कुरु ॥५१॥

### श्रीराम उवाच

किमेष व्यवसायो वः समभून्मुनिपुञ्जवाः ।  
यदेतादृश्यभूद् बुद्धिः क्वापि नैतादृशो भवेत् ॥५२॥  
व्रजन्ति यत्कर्मभिराप्तकामास्तथा परोपासनया च यत्तत् ।  
ज्ञानेन साक्षात्क्रियते भवादृशैरात्मस्थितं ज्योतिरनन्तबोद्धचम् ॥५३॥  
स्वानन्दसंपत्समुपैति यस्मिन् विश्वं समस्तं विनिमीलयन्ती ।  
योगेन तद्वो हृदये प्रकाशं ब्रह्माभिधं ज्योतिरनन्तमेकम् ॥५४॥  
अजस्त्रमुन्मीलितयोगदृष्टि प्रव्यक्तमव्यक्तपरं महस्तत् ।  
उपास्यते विश्वगुरोर्विशेषादजस्त्रमेव प्रयतैरमीभिः ॥५५॥  
अतः परं किनु परं प्रसृग्यते तत्त्वंपदौत्कण्ठच्छधियोऽत्र संगताः ।  
न ज्ञानतोऽन्यत्किमपीह साधनं तद्वो लभन्ते दृशिमात्रतो जनाः ॥५६॥  
न योगतोऽन्यः खलु कोऽपि यत्नः स चास्ति वः शिष्यसुशिष्यशिष्यगः ।  
किमन्यदादातुमुपागता वै मदोयमागारमुदारवृत्ताः ॥५७॥

### ब्रह्मोवाच

सर्वेषां मुनिमुख्यानां मतमादाय तत्क्षणे ।  
जिज्ञासामनुनिर्णीय वशिष्ठः प्रत्युवाच तम् ॥५८॥

### वशिष्ठ उवाच

सत्यमात्थ प्रभो राम नूनं तादृशमेव तत् ।  
ब्रह्मणो दर्शनं नाम योगादिभिरवाप्यते ॥५९॥  
ततश्चापि परं तत्त्वं वयं विविदिषामहे ।  
प्राह विश्लेषवेलायां व्रजदेवीषु यद्भवान् ॥६०॥

देव्यो हि ता व्रजभुवस्तव रूपराशेः सौन्दर्यसारमकरन्दभरप्रमत्ताः ।  
ईषद्वियोगमपि सोहुमशक्वनुवन्त्यस्तत्त्वं तदेव परिचोय चिरेण तस्थुः ॥६१॥  
शय्यासनादिषु कदापि निमेषमात्रमन्तर्धिमेत्य हृदि कल्पसमं विज्ञुः ।  
ता एव गोपसुदृशाः कथमन्यथा त्वां पारेपरार्द्धगुणराशिमृतेऽधितस्थुः ॥६२॥

एतद्धि तत्त्वदुपदिष्टसुसूक्ष्मतत्त्वज्ञानप्रभावजनितामलभावभाजाम् ।  
तासां मनस्त्वनुमिसीमहि सर्वकामस्वानन्दसंपदमृतं परिपोयमानम् ॥६३॥  
मन्यामहे रघुकिशोर तदेव तत्त्वं यद्विप्रयोगशमनं व्रजसुन्दरीणाम् ।  
तन्मः प्रवक्तुमुचितोऽसि दयाविशेषादेकं ततं यदखिलात्मतयागमेषु ॥६४॥

इत्युदीरितमाकर्ण्ण मुनीनामूर्द्धरेतसाम् ।  
जिज्ञासावेदिनो वाक्यं वशिष्ठस्य महामतेः ॥६५॥  
उवाच प्रहसन् रामो वीक्ष्य तान् मुनिसत्तमान् ।  
सन्ततं स्पृहयालून् वै कर्मज्ञानातिगां दशाम् ॥६६॥

## श्रीराम उवाच

प्रमोदवननारोणामुपदिष्टं मया तु किम् ।  
सहजप्रेमभावेन वशीचक्रुरिमा हि माम् ॥६७॥  
उपदेष्टव्यमेतासु किंचिन्नैवोपपद्यते ।  
एता हि फलसीमानं भजन्ते दशया स्वया ॥६८॥  
पुष्टः प्रेमा जयति सुदृशां श्रीप्रमोदाटवीषु  
स्वानन्दाब्धेरुदितममृतं यद्वि संस्वाद्यमानम् ।  
तद्वश्योऽहं कवचिदपि न ता मंक्षु विस्मर्तुमीहे  
प्राणान् यद्वत्सततमुदितश्चेतसा धारयामि ॥६९॥  
विरहं वोढुमेतासां नैव शक्तिः कदाचन ।  
इत्यहं नित्यलीलास्थो रमामि स्वजनैः सह ॥७०॥  
अयं हि दुर्लभो भावो यत्प्रेमा मत्स्वरूपगः ।  
ज्ञानस्य च पराकाष्ठा ब्रह्मतत्त्वावबोधनम् ॥७१॥  
ब्रह्मतत्त्वस्य सा सीमा यत्तदानन्दनिर्भरः ।  
आनन्दनिर्भरास्यैषा सीमा यत्प्रेम तादृशम् ॥७२॥  
प्राचीना मुनयोऽनेके ब्रह्मतत्त्वं परं यथुः ।  
एके तेषां दधुः प्रेम मत्कृपादृष्टिवीक्षिताः ॥७३॥  
सुदुर्लभतमो यस्मात्तादृशो भाव आन्तरः ।  
तस्मादेवैष विरलो मदिच्छामनुरुद्धर्य हि ॥७४॥

१ °ज्ञानादिक—अयो०, रीव० ।

मद्गोचरश्रवणकीर्तनसेवनादौ यावन्न जायत इहास्य मनःप्रवृत्तिः ।  
 प्रेम्णः कला न खलु तावदुदेति साध्वी एकैव सर्वविषयेषु विरक्तिहेतुः ॥७५॥  
 कोऽप्येष रक्तिभगुणः समुद्देत्य पूर्वचिद्विद्योम यत्समनुरज्जितमच्छमेव ।  
 प्रेमाभिधः स मम पूर्णकृपानुलभ्यस्तं ब्रह्मतत्त्वमनुगच्छति नांशतोऽपि ॥७६॥  
 इतिवस्तत्त्वमुदितं ज्ञानसारं परामृतम्  
 उपदेशमृते लभ्यं निजाशक्यैकमात्रतः ॥७७॥

### ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् रामो मुनीनामनुकम्पया ।  
 प्रकाशयामास रूपं प्रमोदवनकुञ्जगम् ॥७८॥  
 शुद्धश्यामावदातं वपुषि परिलस्त्कज्जकिञ्जलकवस्त्रं  
 श्रीमत्पद्मारुणाक्षं सुविलुलदलकश्रीविराजत्कपोलम् ।  
 कैशोरभ्राजिवेषं मधुरिमजलधिप्रेमपीयूषवर्यै-  
 दिक्प्रान्तश्रीविलासैर्मदनविटपिनं स्त्रीषु सिञ्चन्तमन्तः ॥७९॥  
 दोभ्यां वंशीं वहन्तं वदनसरसिजा<sup>१</sup>मोदिनीं राजहंसीं  
 बिम्बोष्ठस्त्रिगधकान्त्या प्रमुदवनवधूमानसं रञ्जयन्तम् ।  
 संमुष्णन्तं त्रिभङ्गीलितसुवपुषा लोचनानि प्रियाणां ।  
 रामं प्रेमाभिरामं ददृशुरनवधि श्रीमदानन्दमूर्तिम् ॥८०॥

केचिद्ददृशुरेवैनं बालवेषेण भूषितम् ।  
 नवनीतकरं रामं माङ्गल्याङ्गविराजितम् ॥८१॥  
 लम्बमानालकभ्राजदाननाम्बुजसुन्दरम् ।  
 मञ्जीरचरणाम्भोजं बिभ्रतं कटिमेखलाम् ॥८२॥  
 स्वर्णप्रत्युप्तशार्दूलनखराजितवक्षसम् ।  
 अव्यक्तकलया वाण्या मोदयन्तं स्वमातरम् ॥८३॥

केचिद् ददृशुरानन्दरूपिणं राममद्भुतम् ।  
 कैशोरवेषमधुरप्रसन्नमुखमञ्जुलम् ॥८४॥  
 प्रमोदवनकुञ्जान्तर्निविष्टं प्रियया सह ।  
 सर्वसौन्दर्यसदनं रक्षयन्तं स्वकाश्च गा: ॥८५॥

<sup>१</sup> °सरजिता—अयो० ।

श्रीराजवेशमुदितं मोदयन्तं<sup>१</sup> बधूजनान् ।  
 कदम्बकुसुमैर्युक्तां वनमालां सुबिभ्रतम् ॥८६॥  
 अङ्गुलीयमणिद्योतच्छुरिताधरवंशिकम् ।  
 नानाकेलिपरीहासैर्गोपैर्मण्डितपाश्वकम् ॥८७॥  
 केचिद् ददृशुरुदभूतराजसंपत्तिभूषितम् ।  
 सिहासनसमासीनं साकेतपुरमध्यगम् ॥८८॥  
 कौस्तुभोद्भासितग्रीवं मूर्तिमद्भिर्महायुधैः ।  
 उपासितं महाकीर्ति योगमुद्राधरं विभुम् ॥८९॥  
 उदारगुणपाथोर्धि षडैश्वर्यविभूषितम् ।  
 उन्नसं कम्बुकण्ठाढ्यं महामुकुटमण्डितम् ॥९०॥  
 नृत्यद्विद्याधरीवृन्दसभामण्डपमध्यगम् ।  
 प्रणतानेकभूपालं प्रसादसुमुखं प्रभुम् ॥९१॥  
 दासीकृतद्विषद्वृन्द<sup>२</sup>नीराजितपदद्वयम् ।  
 शिरोमुकुटरत्नांशुमञ्जरीभिः समन्ततः ॥९२॥  
 किंकुर्वाणैरनेकाबिधद्वीपदेश्यर्नराधिपैः ।  
 कृतदास्यरसावासं करुणादृष्टवर्षिणम् ॥९३॥  
 केचिदात्मतया रामं ददृशुर्योगभावितम् ।  
 केचिद् ददृशुरैश्वर्यात् साकेताधिपतिं प्रभुम् ॥९४॥  
 केचिद् ददृशुरौत्कण्ठचात् सर्वेषां बन्धुवत्स्थितम् ।  
 ज्ञानमुद्राधरं धीरं योगिनां हृदयज्ञमम्<sup>३</sup> ॥९५॥  
 यो यथाभावसंपन्नस्तद्वत्तेन निरीक्षितः ।  
 अथैनं तुष्टुवुः सर्वे योगिनः शुद्धबुद्धयः ॥९६॥  
 पुलकाञ्चित्वर्षर्माणः सर्व एव मुदान्विताः ।  
 बद्धाञ्जलिपुटाः स्थित्वा सर्वेऽदभुतरसाकुलाः ॥९७॥

मुनयः ऊचुः

नमस्ते ब्रह्मरूपाय पूर्णाय च महात्मने ।  
<sup>४</sup>सच्चिदानन्दरूपाय निजलावण्यभास्वते ॥९८॥

१. मादयन्तं—रीवाँ, मथु०, बड़ो० । २.—०वृन्दं—मथु०, बड़ो० । ३. गतम्—अयो० । ४-४. अयमंशो नास्ति—रीवाँ ।

अशेषगुणसंदोहभूषिताय कृपालवे ।  
 नानाविधलसल्लीलारसरजितवर्ज्ञे ॥१९९॥  
 हेमसिंहासनस्थाय त्रैलोक्यमपि शासते ।  
 स्वशक्तिभिः समेताय पुरुषाय महात्मने<sup>१</sup> ॥१००॥  
 विश्वसर्गादिकेलीभिर्ब्रह्मादीनां नियोगिने ।  
 धौरेयाय श्रिताशेषधर्मपालनशक्तये ॥१०१॥

परे ऊचुः

नमो रसिकवर्याय कुञ्जभूमिसुकेलये ।  
 मुक्ताहारपरीताय परिपूर्णरसात्मने ॥१०२॥  
 सर्वोद्घारप्रयत्नाय<sup>१</sup> निजलीलारसात्मने ।  
 सर्वविश्रान्तिरूपाय श्रीमद्रामाय ते नमः ॥१०३॥

अपरे ऊचुः

आविभाव्याखिलान् जीवान् कृत्वा च विविधाः स्थितीः ।  
 कुर्वते विविधाः केलीः पुरुषाग्रचाय ते नमः ॥१०३॥  
 अनवद्याखिलानन्दकल्याणगुणमूर्तये ।  
 प्रपञ्चकल्पवृक्षाय नमस्ते राघवेन्द्रवे ॥१०४॥

अन्ये ऊचुः

अनाद्यनन्तरूपाय निर्गुणाय स्वरूपतः ।  
 सच्चिदानन्दरूपाय नमः कैवल्यमूर्तये ॥१०५॥  
 वर्जिताशेषरूपाय कल्पनारहिताय च ।  
 विश्वारामाय रामाय स्वात्मने ब्रह्मणे नमः ॥१०६॥

इतरे ऊचुः

विश्वतः पाणिपादाय विश्वतोऽक्षिमुखात्मने ।  
 विश्वरूपस्वरूपाय परस्मै ते नमो नमः ॥१०७॥  
 अथापि ममतावर्तमग्नोद्धारचिकीर्षया ।  
 अङ्गीकृतावताराय तारकब्रह्मणे नमः ॥१०८॥

१. <sup>१</sup>प्रपञ्चाय—अयो० ।

## ब्रह्मोवाच

इत्येवमेष निभृतं मुनिभिः समस्तै-  
रभ्यच्चितः प्रणतपालनपादपद्मः ।  
सद्यः प्रसादसुमुखो भगवानशेषान्  
योगीश्वरान् समभिपूज्य शनैरुवाच ॥१०९॥

## श्रीराम उवाच

यद्वस्तपः परिणतं सुचिरेण धीरा-  
स्तेनेदृशी समभवन्मतिरात्मनीना ।  
ज्ञातो यथा खलु भवद्विरहं विशेषान्-  
मायां वितत्य च निजावरिकां स्थितोऽपि ॥११०॥  
जातोऽधुना सुचिरचीर्णतपोविपाको  
युष्माकमुत्तमदृशां सम भावभाजाम् ।  
मन्त्रित्यकेलिविषयां समवाप्य दृष्टि  
यूयं रमध्वमतुलप्रमुदाभ्युपेताः ॥१११॥  
येषां सर्वतपःसिद्धिप्रत्यूहरणक्षमः ।  
अहं स्थिततमश्चित्ते तेषां चिन्ता न कापि हि ॥११२॥  
धन्याःस्थ यूयं समभावमेनमवाप्य नित्यं तपसि प्रतिष्ठाः ।  
पूर्णं फलं वः समजायतोच्चैरतः परं तिष्ठत मत्स्वरूपे ॥११३॥  
ज्ञानं परं ब्रह्मनिदर्शनं यत्प्रपञ्चनिष्ठामतिवर्तमानम् ।  
तस्यापि पूर्णं फलमेतदेवमपिस्थितिर्यद्वतां प्रयाता ॥११४॥  
ब्रह्मभावमतिक्रम्य मद्भावं समुपाश्रिताः ।  
विचरन्तु भवन्तो वै परानन्दपदं गताः ॥११५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे षड्गुणोपाख्याने  
[नामव्याख्यानं नाम] षण्णवतितमोऽध्यायः ॥१६॥

## सप्तनवतितमोऽध्यायः

**ब्रह्मोवाच**

एष<sup>१</sup> ज्ञानगुणः प्रोक्तो भगं यत्परमात्मनः ।  
 अथ वक्ष्यामि वैराग्यं शृणुष्वावहितो द्विज ॥ १ ॥  
 एकमेव हि वैराग्यं श्रीरामस्य गुणात्मकम् ।  
 ज्ञानिनां योगिनां चैव वृत्तिभिर्बहुधा ततम् ॥ २ ॥  
 आत्मारामस्य रामस्य स्वानन्दैककलाजुषः<sup>३</sup> ।  
 ब्रह्मानन्दावधिः सर्वोऽप्यानन्दो नोपरोधकः ॥ ३ ॥  
 भुञ्जन्ते योगिनः सर्वे रामानन्दमनेकधा ।  
 रामस्वात्मानन्दभोगेऽप्युदासीनवदास्थितः ॥ ४ ॥  
 आब्रह्मभुवनाद्यावान् भोग आनन्दगोचरः ।  
 सोऽस्य तुच्छवदाभाति पूर्णस्वानन्दरूपिणः ॥ ५ ॥  
 एतावद्योगिनोऽप्यस्ति ज्ञानिनश्च विरक्तता ।  
 श्रीरामे तु विशेषो यत् स्वानन्देऽपिविरक्तिमान् ॥ ६ ॥  
 यथावह्नेर्न संतापः संतापैकस्वभाविनः ।  
 जलस्य न यथा शैत्यं शैत्यमात्रस्वभाविनः ॥ ७ ॥  
 तथानन्दस्वरूपस्य<sup>३</sup> रामस्य परमात्मनः ।  
 नानन्दो येन रक्तिः स्यात् क्वाप्यस्य परमोशितुः ॥ ८ ॥  
 ईशितव्यैर्यथा जीवै रमते रामचन्द्रमाः ।  
 तथा न तेषु संरक्तिः<sup>४</sup> राप्तकामस्य दृश्यते<sup>५</sup> ॥ ९ ॥  
 परब्रह्मस्वरूपस्य पूर्णनन्दपयोनिधेः ।  
 इयमेवास्य सततं ह्यामकामस्य कामना ॥ १० ॥  
 अथास्य बहुधा वक्ष्ये वैराग्यं नाम सद्गुणम् ।  
 यच्छ्रुत्वा योगिनोऽप्याशु विरक्तं जायते मनः ॥ ११ ॥

१. एवं—अयो० । २. °पुषः—रीवाँ । ३. °श्च—रीवाँ । ४. संसक्तिः—मथु०,  
बल्डो० । ५. भूपतेः—अया० ।

ऋषिभिर्बहुधाप्रोक्तं वाल्मीकिप्रभुखैश्च यत् ।  
 वैराग्यं रामचन्द्रस्य तत् ते वक्ष्यामि भूरिशः ॥१२॥  
 ब्रह्मानन्दमतिक्रम्य प्रेसानन्दवती प्रिया<sup>१</sup> ।  
 सा प्रिया कौशिकी नित्यं<sup>२</sup> तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥१३॥  
 सुधासुमधुर्वैर्नित्यं मनःसंतापहारिभिः ।  
 आलापैर्या वशीचक्रे तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥१४॥  
 खञ्जरीटकुरञ्जालिचकोरमदहारिभिः ।  
 वश्यकृद्रक्तरञ्जैर्या तांमुञ्चन्नैव बाधितः ॥१५॥  
 राकानिशाकरोद्योतपराभवसमूजितैः ।  
 राजितैर्मन्दहासैर्या तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥१६॥  
 अलकावलिसंबीतैर्मधुरस्मितराजितैः ।  
 मुखचन्द्रांशुभिर्भाति तां मुञ्चन्नैव बाधितः ॥१७॥  
 भुकुटीकुटिलश्रीभिश्चञ्चलापाञ्जीक्षितैः ।  
 अनन्यप्रेमपात्रं या तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥१८॥  
 विम्बीफलारुणद्योतैर्विद्रुमाभैर्मनोहरैः ।  
 याधरांशुभिरुद्घाति तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥१९॥  
 त्रैलोक्यजयिनो नित्यं पञ्चेषोर्जयहेतवे ।  
 यस्याः कम्बुसमः कण्ठस्तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥२०॥  
 यस्याः सिन्दूरपूरेण भूषितो मौत्तिकाचितः ।  
 नित्यमुञ्चाति सीमन्तस्तां मुञ्चन्नैव बाधितः ॥२१॥  
 यस्याः सीमन्तरत्नेन<sup>३</sup> निर्जितो मञ्जलग्रहः ।  
 करैररुणयत्याशास्तां मुञ्चन्नैव बाधितः ॥२२॥  
 पीयूषमधुराम्भोदमसृणः काममोदनः ।  
 यस्याः प्रोद्घाति धम्मिलस्तां मुञ्चन्नैव बाधितः ॥२३॥  
 यस्याः वेणी समुञ्चाति शृङ्गाररसराजिवत् ।  
 रक्तसूत्रेण ग्रथिता तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥२४॥

१. प्रिये—मथु०, बड़ो । २. नित्यसंयुक्ता—अयो० । ३. करसरोजेन—रीवाँ ।

आदर्श इव कामस्य समुद्भासितदीधितः ।  
 मुखचन्द्रस्तुतो यस्यास्तां मुञ्चन्नैव बाधितः ॥२५॥

यस्याः सुधासरोदभूतमृणालसदृशौ भुजौ ।  
 राजेते हस्तपद्माभ्यां तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥२६॥

यस्याः करौ पारिजातलुलत्पल्लवशोभितौ ।  
 नैवापगच्छतश्चित्तात् तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥२७॥

यस्याः कनककुम्भाभ्यां कुचाभ्यामुरसः प्रभा ।  
 चेतोऽवसायितुं शक्ता तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥२८॥

यस्याः सुसूक्ष्ममुदरं रोमराजिविराजितम् ।  
 समुद्भातितरां चित्ते तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥२९॥

यस्याः परमगम्भीरं पीयूषसरसोपमम् ।  
 नाभिस्थलं समुद्भाति तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३०॥

यस्यास्त्रिवलिशोभाभिः सुधास्रोतांसि सन्ततम् ।  
 निर्मीयन्ते विच्चित्राणि तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३१॥

यस्याः काञ्चीसनाथाभ्यां नितम्बाभ्यां सुशोभितम् ।  
 मध्यस्थलं समुद्भाति तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३२॥

कदलीकाण्डसदृशे जितशुण्डासमुच्छ्रये ।  
 भ्राजेते जघने यस्यास्तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३३॥

ताम्बूलसंपुटाकारं यस्याः जानु<sup>१</sup> मनोभुवः ।  
 नित्यं मादयते चित्तं तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३४॥

सुजातपद्मपत्रस्थरक्तिमश्रीहरौ पदौ ।  
 यस्याः नित्यं सुशोभेते तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३५॥

यस्या गतिः सुमधुरा मरालकुलगज्जिनी ।  
 मनो वशयितुं<sup>२</sup> शक्ता तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३६॥

यस्या विग्रहलावण्यं रतिरम्भादिनिर्जयि ।  
 चमत्करोति हृदयं तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३७॥

१. पात्र—रीवाँ । २. ऽवसायितुं—रीवाँ ।

भ्रमयन्ती करे पद्मं मन्दमन्दं च गच्छति ।  
 विलासवाटिका मध्ये तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३८॥  
 रक्तवस्त्रपरीधाना प्रवाललतिकेव या ।  
 अकालसन्ध्यां कुरुते तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥३९॥  
 प्रमोदविपिने क्रीडामध्ये कौतुककारिणी ।  
 अग्रणीः सर्वयूथेषु<sup>१</sup> तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४०॥  
 तडिल्लतेव शुशुभे युवतीगणमध्यगा ।  
 या प्रमोदारण्यवीथ्यां तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४१॥  
 यस्याः कामविलासेन सहजानन्दिनी स्वयम् ।  
 अमर्षं कुरुते चित्तं तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४२॥  
 कदाचिद् या स्वयंकृत्वा भण्डितां स्ववपुर्लताम् ।  
 मानं जहार कृष्णायास्तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४३॥  
 अहो अत्यद्भुतं यस्यां सौभाग्यं सुविशेषतः ।  
 स्वयं संवर्धितमभूत् तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४४॥  
 अशेषललनामौलीभूता गुणवती तु या ।  
 आनन्दमातनोद् भूरि तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४५॥  
 नित्यं रासविलासादौ विस्फुरन्ती सदैव या ।  
 ततान मुदमत्यर्थं तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४६॥  
 जनकस्य गृहे या च सखीनामगणीः स्वयम् ।  
 मनोनुगा श्रीजानक्यास्तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४७॥  
 एकान्ते च समासाद्य प्रियमानन्दरूपिणम् ।  
 चकार सहजाकार्यं तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥४८॥  
 ज्ञात्वापि सहजा यस्याः कौटिल्यं दूत्यमेवच ।  
 मुखदाक्षिण्यसंरुद्धा न किञ्चिद् वदति<sup>२</sup> स्वयम् ॥४९॥  
 तेनैव रमते साधु धूर्ता प्रियमनोरमा ।  
 एकान्ते च समासाद्य तां मुञ्चन् नैव बाधितः ॥५०॥

१. °भूतेषु—रीवाँ । २. वदति—अयो०, रीवाँ ।

### भुशुण्ड उवाच

कदा खलु मुमोचासौ कौशिकीं दुस्त्यजामपि ।

एतन्मम विशेषेण विरज्जे विस्तराद्वद् ॥५१॥

श्रीरामचन्द्रचरितं भरितं गुणौघैः पीयूषमेव मम कर्णपुटद्वयस्य ।

त्वद्वक्त्रचन्द्रगलितं पिबतां सुराणां नो तृप्तिरुद्भवति तद्वद् पद्मयोने ॥५२॥

### ब्रह्मोवाच

इदमाख्यानमतुलं भुशुण्ड श्रूयतां त्वया ।

रहस्यं रामचन्द्रस्य देवस्य सुमहात्मनः ॥५३॥

यदा गर्भमभूद्व्याः सीतायाः श्रीशसंगतः ।

तदास्वयमुवाचैनां क्रीडाकारणमानुषः ॥५४॥

### श्रीराम उवाच

कश्चित् तवाभिलाषोऽस्ति जनकेन्द्रस्य नन्दिनि ।

तमहं पूरयिष्यामि मय्याज्ञापय भास्मिनि ॥५५॥

इत्युक्ता प्रभुणा देवी जानकी चारुलोचना ।

उवाच मधुरं वाक्यमीषतिस्मतमनोहरा ॥५६॥

न किंचिद् दुर्लभं नाथ त्रैलोक्यस्थेषु वस्तुषु ।

यद्यदिच्छामि मनसा तत्<sup>१</sup> सर्वं संस्थितं पुरः ॥५७॥

एकस्तु मेऽभिलाषोऽस्ति हृदये बलवत्तरः ।

अरण्यात्रासमये मिलिता या मुनिस्त्रियः ॥५८॥

मुनीनां कन्यकाश्चैव तापस्यो वनवासिनीः ।

तासां वस्त्राणि भूषाश्च भोगांश्च विविधान् विभो ॥५९॥

दातुं मया प्रतिज्ञातास्तासामाश्रमवेशमसु ।

मण्डनानि विचित्राणि करिष्यामीतिनिश्चितम् ॥६०॥

तासां कुमारिकाणां च कुमाराणां च योगिनाम् ।

अहमुद्वाहकार्येषु संपदं कर्तुमुत्सुका ॥६१॥

दरिद्रा वनवासिन्यस्तापस्यो मुक्तभोगकाः ।

तासां भोगं प्रदास्यामि भुक्तिभूषाम्बरादिभिः ॥६२॥

इतिसंकलिप्तं चित्ते पूर्वमेव मया प्रभो ।

तं पूरयाभिलाषं मे गर्भवत्या विशेषतः ॥६३॥

एवं<sup>१</sup> नीत्वा कानिच्छ्रासराणि तासां रम्येष्वाश्रमेष्टपगत्य ।

आशीः पूजां तापसीनां गृहीत्वा भूयो यास्यामीश ते राजधानीम् ॥६४॥

इति श्रुत्वा प्रियावाक्यं रामो विरहकातरः ।

कष्टेन तामादिदेश तथेति रहसि स्थितः ॥६५॥

ततः परेद्युः प्रभुणा प्रियायाः कर्तुं पूर्णं तं नियताभिलाषम् ।

उक्तो भ्राता लक्ष्मणः प्रेषणाय पुण्यस्थानेष्वाश्रमेषु प्रियायाः ॥६६॥

### श्रीराम उवाच

गच्छ लक्ष्मण पारे त्वं सरख्वाः पुण्यवत्सु वै ।

तापसीनामाश्रमेषु गृहीत्वा जनकात्मजाम् ॥६७॥

तापसानां पूजनाय गच्छत्येषा तु भामिनी ।

अस्याः संकलिप्तं चित्ते पूरणीयं विशेषतः ॥६८॥

नीयन्तां वस्त्रभूषान्नसंभाराः शकटस्थिताः ।

अन्ये च विविधा भोगाः कर्पूरघुसृणादयः ॥६९॥

भूरिच्चन्दनसंभाराः स्थाप्यन्तां शकटादिषु ।

जनकेन्द्रसुता देवी यदाज्ञायपति स्वयम् ॥७०॥

तत्सर्वं त्रियतां भूरि तापसीनां सुखावहम् ।

ताः सर्वाः शश्वदामन्त्य देवी पूजयतु स्वयम् ॥७१॥

तासामाश्रमदेशेषु यात्वेषा पूजनोत्सुका ।

दंपतींस्तान् समापूज्य भवत्वाप्तमनोरथा ॥७२॥

इत्याज्ञा विद्यते भ्रातर्जनिक्यास्तत्तथास्तुवै ।

भवानिदं साधयतु प्रजावत्या मनोरथम् ॥७३॥

एषा हि वनवासान्तस्तापसीस्तपसिस्थिताः ।

तत्कन्यकाः कुमारीश्च नित्यं भोगविवर्जितान् ॥७४॥

वीक्ष्य जाता सकरुणा तेन संकलिप्तं हृदि ।

एताः संपूजयिष्यामि प्राप्तराज्ये प्रभावहम् ॥७५॥

१. स्वयं—रीवौ ।

ततस्तु त्वरितं कार्यं चिन्ताभिलषितं व्रतम् ।  
 गर्भवत्या मनःकामः पूरणीयो विशेषतः ॥७६॥  
 अन्यथा तु कृते भ्रातर्भाविनी संततिः स्त्रियाः ।  
 यावज्जन्माभिलषेण ग्रस्ता स्यान्नात्र संशयः ॥७७॥  
 तत्रैनां खलु संस्थाप्य दासदासीसखोजनैः ।  
 तूर्णमागम्यतां भ्रातर्मत्पाश्वें प्रीतिपूर्वकम् ॥७८॥

### ब्रह्मोवाच

इति भ्रातुर्निदेशेन लक्ष्मणो विहिताज्जलिः ।  
 मूर्द्धना तदाज्ञामादाय तस्थौ गन्तुं तदाश्रमान् ॥७९॥  
 तदैव त्वरितं वीरो लक्ष्मणः प्राणवत्प्रभोः<sup>१</sup> ।  
 संपाद्याखिलसामग्रीः शकटैर्भारवाहकैः ॥८०॥  
 अक्षय्यपटभूषान्ननानाभोगरसादिभिः ।  
 संभृत्य शकटांस्तूर्णं नानोपायनराशिभिः ॥८१॥  
 गृहीत्वा भ्रातृजायां तां मणिकाञ्चनमण्डिते ।  
 स्थितां महारथे देवीमनयत् तापसीगृहान् ॥८२॥  
 सरथ्वाः अपरे पारे उटजाश्रममण्डले ।  
 संस्थाप्य मुनिपत्नीनां पाश्वें जनकनन्दिनीम् ॥८३॥  
 उवाच लक्ष्मणो भूयः सिद्धकामां प्रजावतीम् ।

### लक्ष्मण उवाच

अत्र त्वं तापसीनां वै कुरु पूजां दिने दिने ॥८४॥  
 यथाभिलषितैरर्थैः पटभूषासनादिभिः ।  
 भोगैश्च विविधै रत्नैरक्षय्यैर्भूरिसंभृतैः ॥८५॥  
 तव संकल्पसिद्धयर्थं प्रभुणा प्रतिपादितैः ।  
 अलभ्यैरपि सामर्थ्यात् संचितैर्भूरिवस्तुभिः ॥८६॥  
 अनुज्ञां देहि मे देवि गच्छाम्यार्यस्य संनिधौ ।  
 कृतकार्यं पुनस्त्वां हि नेष्यामि नगरों प्रति ॥८७॥

१. °वल्लभः—रीवाँ ।

## ब्रह्मोवाच

ततश्चाज्ञापितो देव्या जानक्या लक्ष्मणः स्वयम् ।  
 नत्वा तस्याः पदाम्भोजे ह्यभिवाद्य मुनीश्वरान् ॥८८॥  
 तापसीश्च प्रणम्यासौ ताभ्यो देवीं प्रदर्श्य च ।  
 रथेन तूर्णवेगेन आजगाम पुरीं प्रति ॥८९॥  
 सा तत्र पुण्येषु तपोवनानां रम्येषु चैवाश्रममण्डलेषु ।  
 सुच्छाय॑ पुण्यद्रुमशोभितेषु कुरञ्जपोतैः परिक्षीलितेषु ॥९०॥  
 अनेकशाखामृगसेवितेषु कूजद्विहञ्जनवजनादितेषु ।  
 सुशीतलैः सारवतोयसंगान्मन्दानिलैः संततसेवितेषु ॥९१॥  
 स्वाध्यायमुच्चैः पठतां मुनीनां घोषेण रात्रिनिदिवमावृतेषु ।  
 नादेन शश्वच्छुकसारिकानां वेदाक्षरोल्लापन्नतान्वितेषु ॥९२॥  
 निरन्तरं वर्तितदीर्घसंस्थैर्महामखैः सत्रगणैश्च मुख्यैः ।  
 सौम्यैस्त्रिकर्माकुलत्रहत्विगादिगणैः कृतः स्वस्वगतक्रियेषु ॥९३॥  
 सा री॒समुच्चारितये यजामहे !?) श्रौषट् वषड्वौषडादिस्वरेषु ।  
 महेन्द्रमामन्त्रयतां मुनीनां सुब्रह्मण्यं३ स्वरितोच्चैः स्वरेषु ॥९४॥  
 स्वच्छस्फुरत्पुष्करिणीजलान्तःसमुल्लसत्पद्मसमूहसौरभैः ।  
 सुगन्धिताशेषसरित्तटेषु हुताज्यगन्धैश्च समन्ततो वै ॥९५॥  
 मनोहरैः फलितैः पुष्पवद्भिः सपल्लवच्छायततैरनोकहैः ।  
 मुनीन्द्रकन्याकरसित्तवाहैः समन्ततो वीतपयन्तकेषु ॥९६॥  
 इतस्ततो वीक्ष्यमाणा सखीभिः साकं सुरुच्या परितः पर्यटन्तो ।  
 राजेन्द्रपुत्री हृदये प्रसन्ना बभूव भूयः समवाप तुष्टिम् ॥९७॥  
 सा संगता तापसीभिः समन्तात् संमानिता संस्तुता पूजिता च ।  
 श्रोरामपत्नी मुमुदे विशेषात् कृतातिथ्या तद्विने ताभिरेव ॥९८॥  
 ऊचु श्चैनां मुनिदाराः समन्तादातिथ्यान्ते स्वागतादीन् विधाय ।  
 भत्वया नतां राजराजेन्द्रपत्नीं सत्कृत्य चात्यन्तमनोज्ञया गिरा ॥९९॥

१. सुष्वाप—अयो० । २. सात्रहृक्—रीवाँ । ३. स्वब्रह्मण्य॑—रीवाँ ।

सुनिदारा ऊँचुः

अहो अतीव धन्यासि जनकेन्द्रस्य नन्दिनि ।  
 अत्युदारचरित्रासि विश्वतः पावनैर्गुणैः ॥१००॥  
 तवैव पातिव्रत्येन सुभगाः सकला वयम् ।  
 मण्डितं भुवनं सर्वं स्त्रीकुलं च विशेषतः ॥१०१॥  
 चिरं जीवतु ते स्वामी शशवद्वशरथात्मजः ।  
 तव सौभाग्यपुण्येन विश्वभूषणकारिणा ॥१०२॥  
 अवाप्नुहि परां लक्ष्मीं त्वं च लक्ष्मी रघोः कुले ।  
 रघोर्निमेश्वर वंशस्य भूषाख्यपासि जानकि ॥१०३॥  
 अतिसम्यक् कृतं देवि भवत्या भव्यरूपया ।  
 आश्रमान् समुपेयुष्या वयं सर्वाः कृतार्थिताः ॥१०४॥  
 कस्य न स्पृहणीयासि वृत्तेन च गुणेन च ।  
 सफले नयने तस्या या त्वां देवि विलोकयेत् ॥१०५॥  
 अहो अत्यद्भुततमं शीलं ते वरवर्णनि ।  
 पतिव्रतानां सर्वासां शीलनीयमिदं सदा ॥१०६॥  
 पत्या साकं यदा दृष्टा पुरा वननिषेवणे ।  
 तदावधि महोत्कण्ठा वर्द्धतेऽस्माकमुत्तमे ॥१०७॥  
 चिराद् दृष्टासि भाग्येन देवि त्वं नो विलोचनैः ।  
 अद्य नः सफलं जन्म त्वत्समागममोदतः ॥१०८॥  
 तापस्थोऽपि वयं नाम<sup>१</sup> त्वया देवि वशीकृताः ।  
 निःस्पृहा सकले लोके त्वामेकां स्पृहयामहे ॥१०९॥  
 तव पुण्यकथाश्चित्रा<sup>२</sup> विश्वतः पावयन्ति नः ।  
 तापसीरपि चात्यर्थं तव पत्युर्महात्मनः ॥११०॥  
 युवयोः पुण्यवृत्तेन वेदगीतेन जानकि ।  
 पूतं पावयितव्यं च त्रैलोक्यमपि चाखिलम् ॥१११॥  
 यथा पुनाति त्रैलोक्ये विष्णुपादोद्भवा सरित् ।  
 सदैव युवयोः पुण्यलोकामृततरञ्जिणी ॥११२॥

१. तावत्—रीवाँ । २. गाथा—रीवाँ, मथु०, बड़० ।

निगूढं चरितं देवि भवत्या विश्वपावनम् ।  
 यस्य कर्णपथं नैति तस्य जन्म निरर्थकम् ॥११३॥  
 दिष्टचा हतः स पापोऽद्य तव पत्या महात्मना ।  
 जगद्विद्रावणकरो रावणस्तपसोर्जितः ॥११४॥  
 तव शीलेन वृत्तेन हतः स हि खलाग्रणीः ।  
 जगद्दुरितरूपात्मा रावणः सकुद्रुम्बकः ॥११५॥  
 अद्य देवि प्रजाः सर्वा मोदन्ते सुकृतैस्तव ।  
 विदधत्याशिषः पूर्णस्ताभिस्त्वं सुखिनी भव ॥११६॥  
 सुराङ्गनाभिस्त्रिदशापगायास्तीरेषु कल्पद्रुमसंवृतेषु ।  
 पुण्यानि रुच्याणि गिरां फलानि गीयन्त उच्चैर्ननु ते यशांसि ॥११७॥  
 पुण्येषु तीर्थेषु च तापसानां शुभाश्रमेषु त्वरितस्वरेण ।  
 गायन्त्य उच्चैर्मुनिकन्यकास्त्वां तुष्यन्ति कीर्तिवजशुद्धमूर्तिम् ॥११८॥  
 अत्युद्धारणुणा लक्ष्मीर्थथा वैकुण्ठवासिनी ।  
 तथात्वमनवद्याङ्गि साकेतपुरवासिनी ॥११९॥  
 अथात्र नः सुपुण्येष्वाश्रमेषु विनोदिनी ।  
 यावद्गर्भप्रसवनं चिरं तिष्ठ पतिव्रते ॥१२०॥  
 गर्भिणीनां खलु मनो वनश्रीदर्शनोत्सुकम् ।  
 इह स्थित्वा प्रजायेथाः सन्तर्ति वीर्यवत्तराम् ॥१२१॥  
 वीरसूर्भव भाग्येन रघुवंशदिवामणेः ।  
 तथा त्वं प्रजया देवि नृपं संतोषय ध्रुवम् ॥१२२॥  
 यथा दशरथो राजा रामाद्यैः पुत्रवत्तमः ।  
 तथा श्रीरामचन्द्रोऽपि भूयाद्वै पुत्रवत्तमः ॥१२३॥  
 रघोः कुलस्वभावोऽयं वर्णितो विदुषां गणैः ।  
 लुम्पन्ति<sup>१</sup> कीर्ति पूर्वेषां जाता जाता गुणोत्तराः ॥१२४॥  
 इति ताभिस्तुता देवी वचनैः सत्यसुन्दरैः ।  
 प्रत्युवाच विशालाक्षी समयमानमुखाम्बुजा ॥१२५॥

श्रीजानकयुवाच

इयं हि भवतीनां वै तपसः सिद्धिरद्भुता ।

यन्मः शुभफलोदर्कः सर्वलोकविलक्षणः ॥१२६॥

अस्माकमेतदेवोच्चैर्धनं राज्यपदस्पृशाम् ।

भवतीनां तापसीनां यत्तपः समुपार्जितम् ॥१२७॥

वयं गार्हस्थ्यचिन्ताभिः संततं किलष्टमानसाः ।

तत्रापि भवतीनां वै दर्शनं सुकृतं परम् ॥१२८॥

एतच्च परमं पुण्यं भवतीभिर्निरूपितम् ।

स्वाश्रितानां यदस्माकमुत्कर्षोऽस्ति स एव वः ॥१२९॥

वृथा जनुर्याति गृहस्थितानां गार्हस्थ्यचिन्तापरिशीलनेन ।

तत्रापि यस्मिन् भवतीषु संगः स एव कालः सुकृतेन पूर्णः ॥१३०॥

क्व नः सदा गृह्यकृत्याकुलानां युष्माभिः स्यात्तापसीभिः प्रसंगः ।

तपोनुरागेण तृणीकृतोच्चैर्महेन्द्रलक्ष्मीः सुखसंपदाभिः ॥१३१॥

इति विज्ञाय तापस्यो युष्माकं दर्शनं मया ।

प्रार्थितं स्वामिने गत्वा पुण्यमाश्रममण्डलीम् ॥१३२॥

एतद् दुर्लभमस्माकं भवतीनां विलोकनम् ।

• सर्वसार्थसमेतानां साक्षादिव तपःश्रियाम् ॥१३३॥

भाग्येन दर्शनं याता भवत्यः पुण्यमूर्तयः ।

द्रष्टुं योग्याः क्व नोऽस्माकं साक्षादिव तपःश्रियः ॥१३४॥

इति ताः परितः स्तुत्वा भुनीनां धर्मचारिणीः ।

जानकी तोषयामास व्यक्तं सूनृतया गिरा ॥१३५॥

अन्योन्यं ताभिरालप्य राघवेन्द्रकुलेन्दिरा ।

पूजयामासविधिवदुपचारैरुद्धाहृतैः ॥१३६॥

आसनैर्भूषणैवस्त्रैर्मणिकाङ्चनराजिभिः ।

महार्हाभिश्च मालाभिर्हरावलिभिरुच्चकैः ॥१३७॥

स्वयं च परिधानार्हैः सुगन्धाम्बरभूषणैः ।

देश्यैः सुजातिसंपन्नैरानीतैः पत्युराज्ञया ॥१३८॥

तासामाश्रमसद्धानि छादितानि समन्ततः ।  
 वासोभिः कान्तिसंपन्नैः काञ्चनोद्योतकालिभिः ॥१३६॥  
 तोरणानि निबद्धानि द्वारेष्वाश्रमसद्धनाम् ।  
 मणिकाञ्चनमालाभिरुद्गतामलकान्तिभिः ॥१४०॥  
 उटजेषु मुनीन्द्राणां रोपिता विपुलध्वजाः ।  
 फलिता इव रत्नौघैः पर्णशालाः समन्ततः ॥१४१॥  
 वलिभिर्धूपदीपैश्च रत्नकुम्भैः फलान्वितैः  
 पूर्णैर्विशुद्धतोयेन शातकौम्भास्वरावृत्तैः ॥१४२॥  
 पञ्चरत्नाभ्युपेतैश्च सकाञ्चनशरावर्कैः ।  
 कदलीस्तम्भरोपैश्च लस्तपल्लववलिलभिः ॥१४३॥  
 रचितैः पर्णशालायां द्वारेषु विपुलाः श्रियः ।  
 अमरावती भोगवती वासीदाश्रममण्डली ॥१४४॥  
 सर्वतः कान्तिसंपन्ना सर्वतो भोग संयुता ।  
 राघवेन्द्रपुरश्रीश्च तत्राविरभवत्तदा ॥१४५॥  
 भोजिता परमान्नेन मुनयो मुनिकन्यकाः ।  
 मुनीनां धर्मपत्न्यश्च तथा तेषां कुमारकाः ॥१४६॥  
 तथान्तेवासिनस्तेषां पटभूषणसत्कृताः ।  
 भोजिता विविधै रत्नैः स्वादुसंतुष्टिकारकैः ॥१४७॥  
 उटजावलिमार्गेषु घुसृणैश्चन्दनैस्तथा ।  
 कपूररप्यगुरुभिस्तथा मृगमदादिभिः ॥१४८॥  
 द्रवीकृतैरभूत् सेको मूलेष्वाश्रमशाखिनाम् ।  
 इतस्ततः सौरभौघैर्व्यापिताः सकला दिशः ॥१४९॥  
 मृगाः शाखामृगाश्चैव येऽन्येऽत्राश्रमवासिनः ।  
 शुकसारीप्रभृतयस्तथैवोच्चावचां खगाः ॥१५०॥  
 भोजिता विविधैरन्नैः पशवः पक्षिणतस्था ।  
 धेनवश्च विशेषेण मुनीनां होमसाधनाः ॥१५१॥  
 अलङ्कृताः शुभैर्वस्त्रैर्भूषणैर्मणिकाञ्चनैः ।  
 भोजिता विपुलैरन्नैः सवत्सा विपुलौधसः ॥१५२॥

वत्साश्च वत्सर्थश्च वृषाश्च शुभदर्शनाः ।  
 पूजिता गन्धमाल्याद्यैः पटकाज्ज्वनभूषणैः ॥१५३॥  
 भोजिताश्च विशेषेण मिष्टान्नयवसादिभिः ।  
 शृङ्खण्यलड्कृतान्युच्चैः पुष्पमालाकदम्बकैः ॥१५४॥  
 इत्थं प्रतिदिनं तत्र तासामाश्रमण्डले ।  
 पूजां विदधती देवी न्यवसज्जनकात्मजा ॥१५५॥  
 धर्मार्जिनपरा देवी तापसीनां तपोवने ।  
 सानुरागमना जाता त्यक्तग्रामजनस्थितिः ॥१५६॥  
 'तासां पुत्रेषु पुत्रीषु स्निग्धचित्ता हरेवधूः' ।  
 चलितुं नाशकत् तस्मात् स्थानाद्राजेन्द्रकन्यका ॥१५७॥  
 तपस्विनां संपठतां स्वाध्यायं श्रुतिसुन्दरम् ।  
 कुर्वतां ब्रह्मकर्माणि यजतां प्रतिवासरम् ॥१५८॥  
 अनवद्यां स्थिरं वीक्ष्य प्रसन्ना जानकी वने ।  
 स्वच्छतोयेषु पुण्येषु तीर्थेषु च तपस्विनाम् ॥१५९॥  
 स्नान्ती प्रतिदिनं देवी पूजयन्ती च तापसीः ।  
 बहूनि वासराण्यत्र निवसन्ती निनाय सा ॥१६०॥  
 कुटुम्बवत्तापसीनां<sup>१</sup> मण्डलेषु निवासिनी ।  
 तासां हृदयरागस्य पात्रमत्र बभूव सा ॥१६१॥  
 प्रियस्य विरहेऽप्येषा तपस्विवनवासतः ।  
 अनुद्विग्नमना देवी चिरमाप सुनिर्वृतिम् ॥१६२॥  
 रामोऽप्यस्या मनोवृत्तिमाश्रमेषु तपस्विनाम् ।  
 सुप्रसन्नतमां वीक्ष्य प्रेषयामास नानुजम् ॥१६३॥  
 कानिचिद्विवसान्युच्चैस्तत्रैव वसतु<sup>२</sup> प्रिया ।  
 इति न प्रेषयामास नेतुं लक्ष्मणमीश्वरः ॥१६४॥  
 कदाचिदनवद्याङ्गी तिष्ठन्ती सा तपोवने ।  
 कस्याश्चिदपि तापस्या मुखाच्छुश्राव जलिपतम् ॥१६५॥

१—१. नास्ति—अयो० । २. सकुटुम्बतापसीनां—रीवाँ । कुटुम्बतामाप सीता—मथु०, बड़ो० । ३. वसति—मथु०, बड़ो० ।

अहो राघववर्येण रामचन्द्रेण जानकि ।  
 ननु त्वं संपरित्यक्ता यतो नाकारयत्यसौ ॥१६६॥  
 एवं हि श्रूयते शब्दो नित्यं साकेतवासिनाम् ।  
 रावणस्य गृहे वासात् त्यक्ता रामेण जानकी ॥१६७॥  
 सभास्थितेन प्रभुणा पृष्ठः कोऽपि विदूषकः ।  
 इत्युवाच प्रभुं धृष्टो जनतामुखजलिपतम् ॥१६८॥  
 असाधु साधु वा लोकः किं नो वदति संसृतौ ।  
 इतिपृष्ठो मुहुर्देवं प्रत्युवाच विदूषकः ॥१६९॥  
 सर्वं खलु भवद्वृत्तं लोकः साध्वति जल्पति ।  
 एकमेव चरित्रं ते मन्यतेऽनुचितं जनः ॥१७०॥  
 अतः परं जगत्यस्मिन् दुष्टामपि निजां स्त्रियम् ।  
 नकोऽपि त्यक्ष्यति जनो रामं कृत्वा निर्दर्शनम् ॥१७१॥  
 परपुरुषकरेण स्पृष्टगात्रा निजांसं  
 मदनशरवशेनारोप्य नीता निकेतम् ।

अपिबहुदिवसौघं तत्र सा जातवासा  
 जनकनृपतिपुत्री स्वामिना संगृहीता ॥१७२॥  
 इतिस्त्रीणामसाध्वीनां भविष्यत्यवलम्बनम् ।  
 भर्ता चेत्यज्यते तर्हि वदेद्रामं निर्दर्शनम् ॥१७३॥  
 उपस्थितोऽयं जगति महान् धर्मस्य विप्लवः ।  
 स्त्रीणां स्वातन्त्र्यकरणे मूलमन्त्र इवोद्गतः ॥१७४॥  
 इति जल्पति लोकोऽयं द्वारि द्वारि गृहे गृहे ।  
 साकूतं सोपहासं च तेन विलश्यन्ति साधवः ॥१७५॥  
 इत्थं जजल्प रामेण मुहुः पृष्ठो विदूषकः ।  
 तच्छ्रुत्वा रघुवीरस्य प्रियात्यागोन्मुखं मनः ॥१७६॥  
 इतितस्याः समाकर्ण वाक्यं जनकनन्दिनी ।  
 निश्चिकाय स्वमानेतुमनागमनकारणम् ॥१७७॥  
 अतिसंतप्तहृदया देवी प्रियचरित्रके ।  
 जाता व्याकुलचित्ता सा रुदन्ती करुणायुतम् ॥१७८॥

अहो किमेतत् प्रभुणा निरागसि कृतं मयि ।  
 स्वप्नेऽपि नानुपश्यामि व्यभिचारमहं क्वचित् ॥१७९॥

अप्युक्तं वीतिहोत्रेण साक्षाद्गुगवता स्वयम् ।  
 सर्वं रपि सुरैस्तद्वद् गिरा च व्योमसंस्थया ॥१८०॥

तथा समस्तैर्मुनिभिस्तदा शपथपूर्वकम् ।  
 अहं च भगवत्यग्नौ साक्षाद्वैश्वानरेऽर्चषि ॥१८१॥

शोधयित्वा<sup>१</sup> स्वमात्मानं निर्गता वीतकलमषा ।  
 सर्वं विस्मृतवानेष प्रभुरद्य रघूतमः ॥१८२॥

अहो असहं हृदयस्य जातं प्रियस्य वृत्तं किमिदं ह्यकस्मात् ।  
 येनाहमद्वा मदसून् विहाय प्रवेष्टुमही ननु पावकान्तः ॥१८३॥

किं नु कुर्वे गर्भवती प्रविशेयं शुचौ कथम् ।  
 कथं वा जीवितं तावद्वारयिष्याम्यहं खलु ॥१८४॥

स सर्वं कर्तुमहीऽस्ति देवः श्रीरघुनन्दनः ।  
 नाहं किमपि वै कर्तुं शक्ता दुर्देववश्यगा ॥१८५॥

स तादृक्प्रणयस्तस्य तानि वृत्तानि ते गुणाः ।  
 सर्वमेकपदे जातं मयि दुर्देवसीदृशम् ॥१८६॥

अथवा पुरुषा नाम स्वभावेनैव निष्ठुराः ।  
 भवन्तीति स्फुटं मन्ये जानकी विधिना हृता ॥१८७॥

इत्यादि विलपन्त्येषा तत्क्षणाज्जातदुर्गतिः ।  
 वाल्मीकिना समाश्वस्ता रुदती साश्रुलोचना ॥१८८॥

### वाल्मीकिरुच

मा रोदीः करुणं वत्से जनकेन्द्रस्य नन्दिनि ।  
 प्रभुरेष स्वयं रामो वृत्तं जानाति तावकम् ॥१८९॥

न विजानाति लोकोऽयं दुर्दन्तो दैवविज्वतः ।  
 रामस्तु केवलं लोकमुपासीनोऽस्ति संप्रति ॥१९०॥

न कदापि च देवेशो भवतीं त्यक्ष्यति प्रियाम् ।  
 अलं विलप्य करुणं भवत्या स्थीयतां सुखम् ॥१९१॥

इदं तपोवनं नाम मम तापससेवितम् ।  
 प्रशान्तश्वापदाकीर्णमत्र तिष्ठ चिरं सति ॥१९२॥  
 लोकस्य लोक एवायं परिच्छेत्स्यति संशयम् ।  
 रामस्तु केवलं देवि निर्लेपः पद्मपत्रवत् ॥१९३॥  
 युवामेव विजानीथो युवयोर्महिमोत्करम् ।  
 स रामः श्रीपतिः साक्षात्त्वं श्रीस्तस्याङ्गभूषणे ॥१९४॥  
 परं ब्रह्म स्वयं रामस्त्वं तदानन्दिनो प्रिया ।  
 शक्तिः प्रमोदविपिने सहजेति श्रुता तु या ॥१९५॥  
 वृत्त्वावने तथा राधा त्वमेव परिगीयसे ।  
 वैकुण्ठे च स्वयं लक्ष्मीजग्निकी जनकालये ॥१९६॥  
 को विजानाति देवि त्वां चरमेण स्वचक्षुषा ।  
 ब्रह्मादीनामपि दृशां गोचरत्वं न गच्छति ॥१९७॥  
 महिमा युवयोर्नित्यं वेदेन खलु गीयते ।  
 प्राकृतः किल लोकोऽयं किंजानाति शिवात्मिकाम् ॥१९८॥  
 भवतीं नामरूपाभ्यां पावयन्तीं जगत्त्रयम् ।  
 कोटितीर्थसमश्लोकां श्रीरामस्य परां प्रियाम् ॥१९९॥  
 इत्येवं तां सुसत्कृत्य मुनिर्वल्मीकिसंभवः ।  
 निजाश्रमपदे नीत्वा लोकलक्ष्मीमवासयत्<sup>३</sup> ॥२००॥  
 एतस्मिन्नन्तरे लोला कौशिकी नाम तत्सखी ।  
 सीताविरहितं रामं रहःस्थाने समाययौ ॥२०१॥  
 चन्द्रानना चारुचकोरनेत्रा कस्तूरिकाबिन्दुविराजिभाला ।  
 सीमन्तरतनद्युतिभिः समंताह्रिशः समस्ताः परिरोचयन्ती ॥२०२॥  
 मरालगत्या श्रितपादपद्मा मञ्जीरनादैर्जितहंसनादा ।  
 पादाङ्गुलीभूषणचारुचाटुकैः कलवर्णैर्लक्षितमन्दयाना ॥२०३॥  
 शोणाम्बरोल्लासिनितम्बविम्बद्युतिस्फुरच्चञ्चल<sup>३</sup>कामचक्रा ।  
 सुवर्णरम्भातरुकाण्डजङ्घा करीन्द्रशुण्डाविजितोरुकान्तिः ॥२०४॥

१. पर°—रीवौ । २. निवासयत्—रीवौ । ३. चेलक°—रीवौ ।

गम्भीरनाभीहदहारिशोभया सुधासरःस्पद्धनया हरन्ती ।  
 शैवालवल्ली कलरोमराजीशृङ्गारवल्लीमवरोपयन्ती ॥२०५॥  
 करीन्द्रकुम्भोच्छ्रयशालिराजद्वक्षोरुक्षोभितलोकचित्ता ।  
 हारावलीगुम्फितरत्नराजीनक्षत्रमालाज्चितवक्त्रचन्द्रा<sup>१</sup> ॥२०६॥  
 ग्रैवेयकद्योतिमहोनिरस्तदिक्चक्रवालप्रसरत्तमित्रा ।  
 मरुल्लसत्पल्लवपाणिशोभा भुजद्वयीनिर्जितकन्दनाला ॥२०७॥  
 कराङ्गुलीचारुनखप्रभौघविनिर्जिताशेषमणिप्रचारा ।  
 प्रवालपङ्केरुहपत्रकान्तिन्यकारिणी पाणितलप्रभाभिः ॥२०८॥  
 पञ्चेषुकम्बुद्युतिजैत्रकण्ठी विराजिचञ्चचिचबुकाग्ररम्या ।  
 संध्यातपोदगारि सुधांशुलक्ष्मीविजैत्रमोषुद्वितयं वहन्ती ॥२०९॥  
 शुकास्यमुद्राकरकिंशुकाभनासाविलासिश्वसनानिलेन ।  
 समस्तसौरभ्यसमूहधारां प्रभूतचेतस्तृष्णमुद्वमन्ती ॥२१०॥  
 दीव्यन्मनोभूमुकुरायमाणकपोलयुगमाज्चितकुन्तलाढचा ।  
 प्रदोषताटङ्कनिबद्धमुक्ताकलापताराज्चितवक्त्रचन्द्रा ॥२११॥  
 समस्तसौभाग्यविभाविनीभिर्भूषाभिराभासितचारुगात्रा ।  
 चाम्पेयविद्युत्कनकादिजेत्री दिग्न्तसंचारकलाप्रवीणा ॥२१२॥  
 प्रभाषमाणा किलवल्लकीव विद्योतमाना तडितां छटैव ।  
 संवर्धमानामृतकूलिनीव प्रसर्पमाणांशुदलैर्लंतेव ॥२१३॥  
 व्रजे च कृष्णा सहजामुखीनां व्रजाङ्गनानां निवहेऽपि रामम् ।  
 प्रमोदयन्ती श्रुकुटीविलासैर्विराजते या नयनाञ्चलैश्च ॥२१४॥  
 सा मन्दमन्दं समुपेत्य रामं लोकाभिरामं सुसमीक्ष्य किंचित् ।  
 लज्जावतो नम्रमुखो चकासे साक्षाज्जयश्रीरिव मन्मथस्य ॥२१५॥  
 अभ्यासमासाद्य जवेन तस्थौ सा योगनिद्राविनिमीलिताक्षम् ।  
 श्रीराममुद्बोधयितुं चकार लीलारविन्दभ्रमणेन वायुम् ॥२१६॥  
 अथाक्षिणी पद्मदलाभिरामे उन्मील्य रामः समचष्ट पाश्वे ।  
 तां कौशिकीं मेचकदृक्कटाक्षैः संताडयन्तीमिव हृत् प्रियस्य ॥२१७॥

१. चन्द्रवक्रा—मथु०, बड़० । २. °मिह—रीव० ।

अथोवाच महायोगी रामः परमनिःस्पृहः ।  
कौशिकीं तप्तहेमाङ्गीमेकान्ते सुसमागताम् ॥२१८॥

### श्रीराम उवाच

किमर्थं कौशिकि प्राप्ता मत्सकाशमिहाधुना ।  
रहस्यहं तपोनिष्टस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥२१९॥

### कौशिक्युवाच

इदानीं पुण्डरीकाक्ष रहितः प्रियया भवान् ।  
अतोऽहं त्वां रमयितुं प्राप्तास्मि रहसि स्थितम् ॥२२०॥

### श्रीराम उवाच

मतिप्रिया जानकी साक्षाद्रतिकोटिमनोहरा ।  
सैव चेन्मां परित्यज्य मुनीनामाश्रमं गता ॥२२१॥  
कान्या मम मनो हतुं समर्थास्ति जगत्त्रये ।  
एकपत्नीकृतधरो नाहमन्यत्र लोलुपः ॥२२२॥  
तदाज्ञावशगो भूत्वा तया सह सुसंगताम् ।  
कदाचित्स्वां रमितवान् यथान्या गोपकन्यकाः ॥२२३॥  
सहजाज्ञावशेनाहं रतवान् व्रजमण्डले ।  
सहजा जानकी चेति रूपमेकं द्विधावपुः ॥२२४॥

### ब्रह्मोवाच

विज्ञापयन्तीमयि तां कौशिकीं जानकीसखीम् ।  
नोररीकृतवान् रामो महायोगेश्वरो रहः ॥२२५॥  
ततः सा विमुखीभूय भग्नमाना सुदुर्मनाः ।  
जानकीमेव समग्रात्पसीनां समीपगाम् ॥२२६॥  
अन्याश्च सकलाः सख्यः सीतायाः पद्मलोचनाः ।  
कमलेशीप्रभृतयः प्रियेण सहस्रोज्जिताः ॥२२७॥  
सीताविरहतसेन योगं समधितिष्ठुता ।  
भग्नमाना हतधियः सीतामेव समाययुः ॥२२८॥  
ताः सर्वाः संगता वीक्ष्य तत्रापि॑ जनकात्मजा ।  
सीता भग्नदशा वीक्ष्य प्रोवाच वचनं सती ॥२२९॥

किमर्थं भग्नमानाः स्थःसख्यः सर्वा विनिन्दिताः<sup>१</sup> ।

केनापि वज्ज्चिताः किंनु भग्नमानोकृताश्च वः ॥२३०॥

सख्य ऊचुः

प्रभुः कमलपत्राक्षो देवो दशरथात्मजः ।

तथैव विरहोद्रेकान्नास्मानादिद्रिये सखि ॥२३१॥

वयं सर्वास्ति समेता रहस्यं तपस्यन्तं योगमुद्रां वहन्तम् ।

अनेकधा चक्रममोहनं सखि स्वभावलोलैर्नयनैर्विलोक्य ॥२३२॥

स वै धीरस्त्वां विना नेतरस्यां स्वप्नेऽपि नासक्तमना मनागपि ।

अनादृतानामिति तेन पत्या गतो मानस्त्वत्सखीनामतो नः ॥२३३॥

अतः सर्वाः दुर्मनसो बभूवुस्त्वत्संनिधानं प्राप्तवत्यःस्म तस्मात् ।

यथात्वमत्राश्रममण्डले वसस्येवं तथा वयमप्यावसामः ॥२३४॥

तीक्ष्णेण तपसा नित्यं कर्षयन्त्यो निजं वपुः ।

श्रीरामचन्द्रचरणध्यानधारासुधाप्लुताः ॥२३५॥

नेष्यामः कतिचिदहानि ते समीपे तिष्ठन्त्यः वरमतमात्मयोगनिष्टुः ।

सायुज्यं पुनरथ राघवेण गत्वा देहान्ते परमपदं व्रजाम शीघ्रम् ॥२३६॥

इति ताः कृतसंकल्पाः सीतासंनिधितोषिताः ।

अचीकरस्तपस्तीव्रं कौशिकीप्रमुखाः स्त्रियः ॥२३७॥

इदमग्रे प्रवक्ष्यामि विशेषेण तवाग्रतः ।

वैराग्यस्य प्रसङ्गेन किञ्चिदुक्तं मया द्विजः ॥२३८॥

इति वैराग्यनामासौ भगः श्री रामचन्द्रगः ।

तुभ्यं भुशुण्ड कथितमुपलक्षणमात्रतः ॥२३९॥

योऽतिप्रियतमो दान्तो लक्षणः कृतलक्षणः ।

यं विना न वच्चित्तस्थौ तं त्यजन्नैव बाधितः ॥२४०॥

यस्यानुग्रहं भिछ्छन्ति नित्यं श्रीरामसेवकाः ।

सखायमात्मनः साक्षात्तं त्यजन्नैव बाधितः ॥२४१॥

येन साद्दं समावात्सीदरण्येऽपि प्रियान्वितः ।

विनीतमात्मनो भक्तं तं त्यजन्नैव बाधितः ॥२४२॥

१. अनिन्दिताः—मथ०, बड़० ।

यः साक्षादात्मना तुल्यः प्रियो भ्राता सुहृत्तमः ।  
 लक्ष्मणः परमोदारस्तं त्यजन्नैव बाधितः ॥२४३॥  
 एकान्ते यत्र सहजा जानकी वा स्वसन्निधौ ।  
 तत्रापि यस्य संपर्कस्तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२४४॥  
 आज्ञावशो निजसुहृत् सखा साहाय्यपण्डितः ।  
 यो लक्ष्मणः प्रियोऽत्यन्तं तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२४५॥  
 विनीतो वनवासेऽपि त्रतं द्वादशवार्षिकम् ।  
 आज्ञानुरोधात् कृतवान् तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२४६॥  
 सर्वकार्येषु कुशलो धर्मत्मा प्राणसंमितः ।  
 अनुजश्चैव मित्रं च तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२४७॥  
 वनेषु पर्णशालादिसर्वकार्यविधानकृत् ।  
 अनुजश्चैव शिष्यश्च त्यं त्यजन् नैव बाधितः ॥२४८॥  
 अनुग्रहस्य प्रेमणश्च य एकः पात्रतां गतः ।  
 स्थितश्च निकटे नित्यं तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२४९॥  
 यस्य क्षणवियोगे तु युगं कल्पायते दिनम् ।  
 पटान्तरेऽप्यमुक्तश्च तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५०॥  
 येन सार्द्धं विहृतवान् गृहेषु च वनेषु च ।  
 अनेकविधिलीलाभिस्तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५१॥  
 हे लक्ष्मण सखे भ्रातः प्रियमित्रेतिचाक्रवीत् ।  
 यं नित्यमात्मदयितं तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५२॥  
 यस्यानर्घ्यतमोदारगुणसंतुष्टमानसः ।  
 वनेऽपि सुखितोऽवात्सीत् तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५३॥  
 यस्य बाहुबलेनासौ हृतवान् राक्षसों चमूम् ।  
 महाबलां महाघोरां तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५४॥  
 येनैव निहतो वाणैरिन्द्रजित्समरोद्धतः ।  
 सर्वदेवौघविजयी तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५५॥  
 यस्य वीर्यबलेनासौ प्रबलं राक्षसेश्वरम् ।  
 न किञ्चिद् गणयामास तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५६॥

यस्यानुभावमखिलं लौकिकं वाप्यलौकिकम् ।  
 स्वयं वेत्ति प्रभुर्नन्यस्तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५७॥  
 यस्य सौन्दर्यसारेण स्वयमेष वशोकृतः ।  
 आत्मसौन्दर्यतुल्येन तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५८॥  
 आबाल्याच्छीलितो यस्य संगः परमसौख्यदः ।  
 नेत्रसंतृप्तिजननः तं त्यजन् नैव बाधितः ॥२५९॥  
 अयं चास्य भगो नित्यं महावैराग्यशब्दितः ।  
 संप्रोक्तो बहुधा तुभ्यं भगवान् येन कीर्तितः ॥२६०॥  
 इत्थं ते षड्गुणाः प्रोक्ताः रामस्य सुमहात्मनः ।  
 श्रुत्वैतान् सर्वमाहात्म्यज्ञाता भवति भक्तिमान् ॥२६१॥  
 माहात्म्यज्ञानमङ्गं हि भक्तेः श्रीरामगोचरम् ।  
 अतस्ते बहुधा ख्याता माहात्म्यज्ञप्तये गुणाः ॥२६२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे षड्गुणाख्याने  
 वैराग्यव्याख्यानं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

### अष्टनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवं षड्गुणसंपन्ने यौवराज्यं प्रकुर्वति ।  
 रामे सर्वगुणारामे प्रजानां परमा मुदः ॥ १ ॥  
 बभूवः परमैश्वर्यं प्रादुरासीत् प्रपश्यताम् ।  
 जनानां विस्मयश्चासीद्विलोक्य परमाः श्रियः ॥ २ ॥  
 वीर्यं च बहु तस्यासीद् यशश्च भुवनेष्वभूत् ।  
 राज्ञो दशरथस्यैष हृदयानन्दनोऽभवत् ॥ ३ ॥  
 अथैकदा रामचन्द्रे यौवराज्यासनस्थिते ।  
 विष्राः कोलाहलं चक्रुद्वारि संगत्य तत्क्षणे ॥ ४ ॥

## विप्रा ऊचुः

हा हताः स्म प्रभौ रामे यौवराज्यस्थिते वयम् ।  
 व्याघ्रेण वनचारिण्यो गावोऽस्माकं विनाशिताः ॥ ४ ॥  
 अहो दशरथो राजा विरक्तो भूमिपालने ।  
 रामे सर्वां धुरं न्यस्य कमिदानीं वदामहे ॥ ६ ॥  
 निर्धनानां द्विजानां नो गावो हि परमं धनम् ।  
 अकरमात्तक्षयं नीतं व्याघ्ररूपेण मृत्युना ॥ ७ ॥  
 ईदृशा बलिनो वीरा रघुनाथनिदेशगाः ।  
 न केनापि हतो व्याघ्रः कालरूपी गवां हि नः ॥ ८ ॥  
 प्रजानां पालने धर्मं जानात्येको रघूद्वहः ।  
 किमभाग्येन नो जातं हा हतं गोधनं बलात् ॥ ९ ॥  
 गोपालोऽपि हतस्तेन व्याघ्रेण पिशिताशिना ।  
 अहोदुर्दीर्घस्मस्माकं युवराजे रघूद्वहे ॥ १० ॥  
 अहो राम महावीर बलिनां श्रेष्ठं सत्पते ।  
 निर्धनाः स्म वयं जाता गावो व्याघ्रेण भक्षिताः ॥ ११ ॥  
 अहो - वीर नरश्रेष्ठं श्रीमन् दशरथात्मज ।  
 त्रैलोक्यदारिद्रिच्छहरे त्वयि नो दुर्गतिः कथम् ॥ १२ ॥  
 घटोधन्यः पृथुदोहास्ता गावो नः कान्तविग्रहाः ।  
 वव नु दृश्या गृष्टयस्ताः समशृङ्खचः सुलोचनाः ॥ १३ ॥  
 ईदृशी विपदस्माकं धेनवो व्याघ्रभक्षिताः ।  
 किं कुर्मः वव व्रजामश्च दैवेनैव हता वयम् ॥ १४ ॥  
 इत्युक्त्वा रुरुदुः सर्वे ब्राह्मणा जातमन्यवः ।  
 शुश्राव तद् दशरथो राजा प्रकृतिपालकः ॥ १५ ॥

## रामोवाच

---

क एतै करुणाशब्दं कुर्वन्ति द्वारदेशगाः ।  
 रुदन्तो भर्त्सयन्तश्च शपन्तश्च विशेषतः ॥ १६ ॥  
 हा हताः स्म इति क्रोशं कुर्वन्तो दैवपीडिताः ।  
 अहो मयि स्थिते राज्ञि रामे च युवराज्यगे ॥ १७ ॥

प्रजानामीदृशी पीडा कथं भवति भूयसी ।  
 ततो द्रूतैः समागत्य वृत्तं तद्विनिवेदितम् ॥१८॥  
 ब्राह्मणानां हता गावो व्याघ्रेण गहने वने ।  
 इति भूयो रुदन्तस्ते विलपन्ति विपद्गताः ॥१९॥  
 अयोध्यावासिनः केचिद् विप्रा दैवेन पीडिताः ।  
 अस्थानं रोदनं ह्येतत् किकार्यं धरणीपतेः ॥२०॥  
 अथादिशन्नृपो<sup>१</sup> वीरान् व्याघ्रं हन्तुं भयानकम् ।  
 गच्छन्तु विषिनं वीरा<sup>२</sup> व्याघ्रस्तिष्ठति यत्र सः ॥२१॥  
 गावो हि भक्षिता येन ब्राह्मणानां पुराकसाम् ।  
 एतद्यनुचितं राज्ञः प्रजायाः पीडनं तु यत् ॥२२॥  
 ततो विनिर्गता वीरा<sup>३</sup> नगरात् खड्गपाणयः ।  
 कटिप्रवद्धतूणीराः कवचैर्व्यूढविग्रहाः ॥२३॥  
 नानाशस्त्राण्युपादाय<sup>४</sup> भुशुण्डीपरिघांस्तथा ।  
 शतघ्नीस्तोमरांश्चैव चापवाणादिकांस्तथा ॥२४॥  
 सरथ्वाः पुलिने तद्वि द्रुदर्शं गहनं वनम् ।  
 विचित्रश्वापदाकीर्ण शल्लकीकुलदुर्गमम् ॥२५॥  
 प्लवङ्गमकुलैः कीर्ण<sup>५</sup> तरक्षुगणसेवितम् ।  
 शिवानिनादभयदं वराहोत्कीर्णमुस्तकम् ॥२६॥  
 वारणैनिर्गतमदैः समन्ताद्वचाप्तमन्तरा ।  
 व्यालोलूकगणाकीर्ण<sup>६</sup> महामहिषभीषणम् ॥२७॥  
 मांसाशिभिर्बहुविधैः पशुभिर्भूरिनादितम् ।  
 गिरिं गद्धरदुर्दर्शं विविधानोकहव्रजम् ॥२८॥  
 तमालसालसरलकिंशुकौघसमावृतम् ।  
 लतावितानसंछन्ननानाभूरुहभीषणम् ॥२९॥  
 राजतालीवनोद्घोषभयानकसुविस्तृतम् ।  
 दरीनिकेतद्विगुणद्वीपोकुलनिनादितम्<sup>७</sup> ॥३०॥

१. °दिशत्रयो—अयो०, रीवॉ० । २—२. नास्ति—अयो० । ३—३. नास्ति—अयो० । ४—४. नास्ति—रीवॉ० ।

कुञ्जान्तरपरिव्याप्ततिमिरौघभयानकम् ।  
 शार्दूलनिहतानेकगजमुक्ताफलावृतम् ॥३१॥  
 रुधिराञ्चितशार्दूल नखराङ्गणाङ्कितम् ।  
 जृम्भितास्यैः क्षुधाक्रान्तैः पलाशिभिरुपावृतम् ॥३२॥  
 श्येनसंदोहसंछन्नगिरिकन्दरमन्दिरम् ।  
 लोहतुण्डैर्महाकाकैव्याप्यमानं समन्ततः ॥३३॥  
 कृतकञ्चुकनिर्मोकैः कृष्णसर्पैः समावृतम् ।  
 दावानलज्वलद्वक्षशुष्ककाननसेवितम् ॥३४॥  
 खर्जूरविटपित्ताविमदलेपनदुर्मदैः ।  
 हयारिभिः समाकीर्ण शृङ्गविस्तारभीषणम् ॥३५॥  
 मार्जारकुलसंकीर्ण मत्तगोमायुसंकुलम् ।  
 ईदृशं ददृशुर्वीरा: सरयूपुलिने वनम् ॥३६॥  
 पशूनां कदनं चक्रुदृष्टिणां शृङ्गिणां तथा ।  
 आसफोटच सकला वीरा निपेतुर्निविडे वने ॥३७॥  
 अथ शैलदरीकुञ्जान्निर्यौ सुमहोद्धतः<sup>१</sup> ।  
 वीरासफोटकृत क्रोधो व्याघ्रोऽत्यन्तभयानकः ॥३८॥  
 मूर्दध्ना परिस्फुरत्पुच्छगुच्छभीषणविग्रहः ।  
 जिह्वाललनभीमास्यस्तडित्पुञ्जनिभाकृतिः ॥३९॥  
 दावानलचलन्नेत्रः कृतगुञ्जारबोद्धटः ।  
 महाशनिसुतीक्षणाग्रनखभीमप्रकोष्ठकः ॥४०॥  
 गिरिगण्डसमुत्तुञ्जः समुच्छलनपण्डितः ।  
 विकटैस्तिगमकिरणैर्नखरैः क्षोदयन् भुवम् ॥४१॥  
 सुदुर्दर्शदृग्नताभ्यां मुञ्चञ्जवालाकणावलीम् ।  
 अत्युत्कटाङ्गगन्धेन जनानां दृष्टिमन्धयन् ॥४२॥  
 कुर्वन् गिरितटग्रावस्फोटैः कटकटारवम् ।  
 प्रकाशयन् दिशः सर्वास्तीक्षणदण्डाङ्कुरत्विषा ॥४३॥

१. निर्ययुः सुमहोद्धताः—रीबौँ।

ललाटपद्मसंज्ञगनभ्रुकुटीविकटाकृतिः ।  
 क्षुरसंतीक्षणमूर्धवाग्नं निर्धुन्वन् रोममण्डलम् ॥४४॥  
 जृम्भितास्यसुदुर्दर्शः क्रूरकर्मातिनिष्ठुरः ।  
 सेनाकोलाहलक्रुद्धो घूर्णयन् विकटे दृशौ ॥४५॥  
 भासयन् वपुषा कुञ्जं काञ्चनद्युतिवर्षिणा ।  
 त्रासयन् सकलान् वीरान् दृष्टिपातैर्भयानकैः ॥४६॥  
 तमग्नियन्त्रैविशिखैश्च तीक्ष्णैः परश्वधैः शक्तिभिर्मुद्गरैश्च ।  
 जघ्नुः सर्वे वीरवराः समंताद् द्वूरेस्थिताः कृतशस्त्रास्त्रवर्षाः ॥४७॥  
 तेषां शस्त्राणि चास्त्राणि यतमानानि भूरिशः ।  
 निजगाल मुखेनासौ फलानीव क्षुधातुरः ॥४८॥  
 तद्दृष्ट्वा सुमहच्चित्रमभूद् दाशरथे बले ।  
 सर्वे च भयसंत्रस्ता बभूवुः सैनिका जनाः ॥४९॥  
 अथोत्प्लुत्य जवेनासौ पपात बलमध्यतः ।  
 कोष्ठानि पाटयामास' नखैर्निर्भिद्य वेगवान् ॥५०॥  
 आचक्राम बलात् कांशिचद् वक्षसा संमचूर्णयत् ।  
 चरणाभ्यां तथैवान्यानाक्रम्य समताडयत् ॥५१॥  
 अग्रपादहृताः केचिद्व्यसवः समशोरत ।  
 दंष्ट्राभिर्दारिताः केचित् केचिद्दीर्णोदरा नखैः ॥५२॥  
 निकृत्य कण्ठदेशेषु केषांचिद्विधिरं पपौ ।  
 कांशिचन्निपोथयामास देहभारेण भीषणः ॥५३॥  
 केषांचिलिलिहे रक्तं पाटयित्वोदरं रुषा ।  
 केषांचिद् खण्डयामास चरणान् मूलदेशतः ॥५४॥  
 केषांचिद् भुजसंछेदं चकार स्कन्धदेशतः ।  
 केषांचिदच्छिन्नद् ग्रीवां केषांचित् कर्णनासिकम् ॥५५॥  
 निर्दार बलाद्वक्षः केषांचित् कवचावृतम् ।  
 यत्र यत्र पपातोच्चैस्ते ते भुवि निपोथिताः ॥५६॥

केषांचिन्नाभिदेशेषु      केषांचिदुदरेषु      च ।  
 केषांचिज्ज्ञातलेषु      पाटयित्वासृजः      पपौ ॥५७॥  
 इत्थमेष क्षयं निन्ये सर्वं दाशरथं बलम् ।  
 पतमानानि चास्त्राणि शस्त्राणि च समंततः ॥५८॥  
 लाङ्गूलैनैव चिक्षेप विदीणास्येन जग्निवान् ।  
 मुखोत्थश्वासवातेन कानिचित् प्रतिजग्निवान् ॥४९॥  
 विद्रुताः सैनिकाः सर्वे व्याघ्रस्य विपुलं बलम् ।  
 वीक्ष्य मारितशेषास्ते राजोऽन्तिकमुपाययुः ॥६०॥  
 आचर्ख्युः सकलं वृत्तं व्याघ्रस्य विपुलं बलम् ।  
 श्रुत्वा सुविस्मितो राजा बभूव किमिदं धिया ॥६१॥  
 रामचन्द्रस्तदाकर्ण्य निर्गतः सहलक्षणः ।  
 धनुर्बाणौ समादाय विचिन्त्य हृदि कारणम् ॥६२॥  
 स गत्वा विपिनं धोरं यत्र गावो विनाशिताः ।  
 व्याघ्रेण धोररूपेण दुर्दर्शतरवर्षणा ॥६३॥  
 स वीक्ष्य संहसा व्याघ्रं सटादुःप्रेक्ष्यकन्धरम् ।  
 पश्यतो लक्षणस्थागे शरेणैकेन जग्निवान् ॥६४॥  
 स रामवाणसंस्पर्शात् सद्योनिर्धूतकल्पषः ।  
 वैयाघ्रीं तनुमुत्सृज्य बभौ परमसुन्दरः ॥६५॥  
 पश्यपत्रविशालाक्षो दिव्यगन्धानुलेपनः ।  
 दिव्यवस्त्रपरीधानो दिव्यस्त्रभूषणाङ्गिचतः ॥६६॥  
 मुहुर्विद्योतयन् देहकान्तिभिः सकला दिशः ।  
 मुक्त्काहाराभिरामेण वक्षसा विपुलौजसा ॥६७॥  
 विराजमानो हेमाभविग्रहः सुस्मिताननः ।  
 सुनासः सुकपोलाद्यः सुग्रीवः सुष्ठुमूर्द्धजः ॥६८॥  
 सुदर्शनः सुरूपाङ्गस्तरुणः शोभिताकृतिः ।  
 दिव्यं विमानमारुह्य स्थितो व्योम्नि महेन्द्रवत् ॥६९॥

दिव्यानुचरसंवीतो दिव्यस्त्रीगणसेवितः ।  
 अवरुद्धा विमानाग्रात् पादयोर्निपपात ह ॥७०॥  
 उत्थाय पुनरस्तौषीद् रामं सुन्दरविग्रहम् ।  
 लक्ष्मणेन युतं वीरं शापनिर्मुक्तिदायकम् ॥७१॥

पुरुष उवाच

नमस्ते राघवेन्द्राय रघूणां प्रवराय च ।  
 रघुवंशमहेन्द्राय रघुकीर्तिविधायिने ॥७२॥  
 नमस्तपनवंशाब्धिपूर्णचन्द्रमसे विभो ।  
 तुभ्यं परमवीराय वीरेन्द्राय च ते नमः ॥७३॥  
 नमस्त्रैलोक्यकल्याणनिधये पुरुषोत्तम ।  
 राजेन्द्रमुकुटाग्रस्थहीररुच्यपदाय ते ॥७४॥  
 नमस्ते यौवराज्येन त्रैलोक्यसुखदायिने ।  
 हेमसिंहासनस्थाय सुधीभिः सेविताङ्ग्रये ॥७५॥  
 नमस्त्रैलोक्यदारिद्रचहृतये कामधेनवे ।  
 चिन्तारत्नसमानाङ्ग्रि नखदीधितये च ते ॥७६॥  
 मन्दारप्रसवामोदशालिसुन्दरकीर्तये ।  
 राजेन्द्रगणसेव्याय श्रीदाशरथये नमः ॥७७॥  
 दरिद्रजननिस्तारकारणव्रतधारिणे ।  
 कल्पद्रुमाय साधूनां श्रीरामाय नमोस्तु ते ॥७८॥  
 सर्वमङ्गलरूपाय सर्वपापहरात्मने ।  
 सर्वतीर्थेकरूपाय श्रीरामाय नमोनमः ॥७९॥  
 रामाय रामचन्द्राय रामभद्राय ते नमः ।  
 राघवेन्द्राय वीराय वीरेन्द्राय च ते नमः ॥८०॥  
 वामे जनकजा यस्य पुरतो लक्ष्मणः स्थितः ।  
 तद्वामे हनूमांश्चैव स रामः पातु मां सदा ॥८१॥  
 इतिस्तुत्वा स गीतेन सर्ववश्यविधायिना ।  
 तोषयामास राजीवलोचनं रघुनन्दनम् ॥८२॥  
 कस्त्वमेवं विधोऽसीति पृष्ठो रामेण तर्हि सः ।  
 उवाच मुखनादेन घोषयन् सकला दिशः ॥८३॥

गन्धर्वश्चिरसंशम्भो मुनिना मन्युकारिणा ।  
 नाम्ना चित्रध्वजोऽस्मीक्षा प्रसिद्धः किञ्चरालये ॥८४॥  
 कदाचिदलक्षपुर्याः सविधे स्नातुमाययौ ।  
 स्वोतस्यलक्नन्दायाः मत्तवारणसेविते ॥८५॥  
 मुर्नि व्याघ्रमुखं नाम यथानामस्वरूपकम् ।  
 विलोक्य मम हासश्च संजातोऽनर्थकारणम् ॥८६॥  
 हसन्तं मां समालोक्य शशाप मुनिपुञ्जवः ।  
 अहो हससि दुर्बुद्धे मम वीक्ष्य मुखाकृतिम् ॥८७॥  
 व्याघ्रो भवतु वै नाम भवानपि सुदुर्मतिः ।  
 ममातिक्रमजातेन पापेनानेन भूयसा ॥८८॥  
 भक्षय त्वं वने सर्वान् पशून् विगतचेतनः ।  
 जाते रामावतारे तु मम शापाद्विमोक्ष्यसे ॥८९॥  
 रामवाणपरिस्पर्शंसद्योनिर्धूतकल्पषः ।  
 गन्तासि स्वपदं भूयो नैवं शीलं पुनः कुरु ॥९०॥  
 इत्यहं तेन मुनिना शम्भो दारुणशापिना ।  
 वैयाघ्रीं योनिमापद्य स्थितोऽत्र चिरकालतः ॥९१॥  
 इदानीं राम निर्मुक्तो जातोऽस्मि त्वदनुग्रहात् ।  
 तथापि मम चित्तस्य ग्लानिनैव निवर्तते ॥९२॥  
 अहो मया हता गावो मनुष्याश्च विनाशिताः ।  
 कां गर्ति नु गमिष्यामि घोरकर्मकृदोदृशः ॥९३॥  
 घोरस्य कर्मणो राम निष्कृतिनैव विद्यते ।  
 जन्मान्तरेऽपि तत्पापं भोक्ष्याम्येव न संशयः ॥९४॥  
 इतिसंरूढहृदयग्लानिरस्मि सतांपते ।  
 शरीरमेतत् त्यक्ष्यामि प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥९५॥

### श्रीराम उवाच

मा ग्लासीर्हृदयेन त्वमधुना किन्नरोत्तम ।  
 मत्पादकमलस्पर्शात्तीर्णमेनोऽतिदारुणम् ॥९६॥  
 राक्षसा घोररूपाश्च संततं पिशिताशनाः ।  
 बहवो मत्पदाम्भोजस्पर्शान्मुक्तिमुपाययुः ॥९७॥

मन्नामजाप्यपरमो मम ध्यानपरायणः ।  
 वसन् किंपुरुषे वर्षे भजमानोऽनिशं हि माम् ॥९८॥  
 वर्तस्व मम भक्त्येत्यं कर्मपाशं विनिर्दहन् ।  
 गन्तासि मम सायुज्यं तच्चित्रध्वज मा शुचः ॥९९॥  
 इत्यादिश्य स गन्धवं नाम्ना चित्रध्वजं तु तम् ।  
 उवाच लक्ष्मणं वीरो गते किनरथूथपे ॥१००॥  
 वैयाग्रीं योनिमापन्नो गन्धर्वोऽयं निरीक्षितः ।  
 ब्राह्मणानां वने गावो यदनेन विनाशिताः ॥१०१॥  
 तदर्थं क उपायोऽस्ति चिन्त्यतां लक्ष्मणाधुना ।  
 रुदन्ति ब्राह्मणा दुःखात्तेषां दुःखं न नाशितम् ॥१०२॥

### लक्ष्मण उवाच

गावः कालवशं याता व्याघ्रेण खलु भक्षिताः ।  
 तासां स्थाने गोसहस्रं ब्राह्मणेभ्यः प्रदीयताम् ॥१०३॥  
 ततो विप्रान् समाहूय गोदानाय प्रतिश्रुतम् ।  
 ब्राह्मणा नोररीचक्रुस्तासामर्थे सुदुःखिताः ॥१०४॥

### ब्राह्मणा ऊचुः

गोभिस्त्वया प्रदत्ताभिः किं वयं करवाम भोः ।  
 यदि शक्तोऽसि ता एव समानय रघूद्वह ॥१०५॥  
 ततो रामोऽनुजं वीक्ष्य प्रोवाच वचनं स्मयन् ।  
 एहि लक्ष्मण गच्छावो गवां नयनहेतवे ॥१०६॥  
 यमस्य नगरों यत्र प्रेतानामस्ति संस्थितिः ।  
 ब्राह्मणानां मनो दुःखं नान्यथा खलु नक्षयति ॥१०७॥  
 ततो रथं समारह्य लक्ष्मणो यत्र सारथिः ।  
 यथौ संयमिनों घोरां यमस्य नगरों हरिः ॥१०८॥  
 गत्वा परिसरे तस्या वादयामास राघवः ।  
 पाञ्चजन्यं निजं शङ्खं सर्वप्रेतविमुक्तिदम् ॥१०९॥  
 श्रुत्वा शङ्खरवं रम्यं देवो वैवस्वतः पुरात् ।  
 तूर्णं विनिर्यथौ हर्षात् श्रीरामदर्शनोत्सुकः ॥११०॥

द्वारादेव रथोपस्थे संस्थितं रघुपुञ्जवम् ।  
 समचष्ट परं भाग्यं मन्यमानो रवेः सुतः ॥१११॥  
 यमः सविधमभ्येत्य रामस्य सुमहात्मनः ।  
 ववन्दे चरणाम्भोजं लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥११२॥

## यम उवाच

अद्य मे सफलं जन्म श्रीराम तवदर्शनात् ।  
 अहो अनुगृहीतोऽहं भवताद्य दयानिधे ॥११३॥  
 अद्य मे विपुलं भाग्यं प्रेतमण्डलवासिनः ।  
 सकुटुम्बः कृतार्थोऽहं भवतोऽनुग्रहात् प्रभो ॥११४॥  
 नमः कमलकिञ्जलकपीतकौशेयवाससे ।  
 साक्षाल्लक्ष्मीकलत्राय रामाय करुणाबधये ॥११५॥  
 उभाभ्यां विश्ववन्द्याभ्यां वीराभ्यां भुवनत्रयम् ।  
 भवद्भूच्यां संप्रमुदितं गुणान् गायति नित्यशः ॥११६॥  
 जानेऽहं पुण्डरीकाक्षं युवां वै पुरुषोत्तमौ ।  
 अवतीर्णौ रवेवंशे श्रीमन्तौ वै परात्परौ ॥११७॥  
 अयं स शेषो निगमत्रयात्मा विश्वंभरा येन धृता निजांशतः ।  
 सहस्रदीव्यत्फणमण्डलस्फुरन् महामणिद्योतविभासिताकृतिः ॥११८॥  
 त्वं रामचन्द्रः कमलाकलत्रः साकेतवासी नवमेघवर्णः ।  
 पीर्तम्बरोल्लासिमनोज्जविग्रहो धनुर्धरः कामपरार्द्धसुन्दरः ॥११९॥  
 आजन्मरमणीयानि चरित्राणि तवाच्युत ।  
 गायन्ति त्रिदिवे देवा विमानाग्रेषु संस्थिताः ॥१२०॥  
 रोमाञ्जितवपुष्मन्तः प्रमोदपरिपूरिताः ।  
 भक्तिप्रकर्षसंपन्ना जयरामेतिभाषिणः ॥१२१॥  
 भूभारहरणारम्भः कृत एव त्वया प्रभो ।  
 ताडका नाशिता यस्मात् सुबाहुश्च विनाशितः ॥१२२॥  
 एवं हरिष्यति भवान् रावणादीनपि प्रभो ।  
 इति विज्ञाय देवानां वर्द्धन्ते विपुला मुदः ॥१२३॥  
 इति स्तुतिमुदीर्यसावानिनाय निकेतनम् ।  
 उभौ तौ वीरशार्दूलौ श्रीमन्तौ रामलक्ष्मणौ ॥१२४॥

तयोर्दर्शनमात्रेण तत्रत्या प्रेतमण्डली ।  
 कृतार्थीभूय सगमात् स्वर्गं पुण्यवतां सुखम् ॥१२५॥  
 ततस्तौ पूजयामास पाद्याधर्यादिसपर्यया ।  
 कृतार्थं मन्यमानः स्वं वैवस्वत उदारधीः ॥१२६॥  
 अवसाने सपर्यया रामः स्मितमुखाम्बुजः ।  
 वैवस्वतमुवाचेदं मेघगम्भीरया गिरा ॥१२७॥

### श्रीराम उवाच

ब्राह्मणानां शुभा गावो व्याघ्रेण खलु भक्षिताः ।  
 प्रत्यानेतुमहं ता वै संप्राप्तोऽस्मि तवालये ॥१२८॥

### यम उवाच

अयोध्यावासिनो ये वै नरा गावः खगा मृगाः ।  
 न तेषामिह संप्राप्तिर्मद्वृत्तिर्विधीयते ॥१२९॥  
 स्वर्गं गच्छन्ति भूतानि साकेतपुरवासतः ।  
 काकाःश्वापदचाण्डाला अधमाः पापयोनयः ॥१३०॥  
 सरथ्यवातसंस्पृष्टा मुच्यन्ते सर्वपातकैः ।  
 ब्रह्महत्यादिभिश्चापि किमुतान्यैर्जगत्पते ॥१३१॥  
 न ते चरणपाथोजपरागैः समलङ्घुते ।  
 देशो चरन्ति मद्दूता आनेतुं पापिनोऽपि हि ॥१३२॥  
 अयोध्या परितो राम योजनानां चतुष्टयम् ।  
 सुदर्शनं भवच्चक्रं ऋमतीव हि दृश्यते ॥१३३॥  
 तस्यां नगर्या न विशन्ति घोरा मदीयदूता न कलेश्च दोषाः ।  
 नान्ये तथा भूतगणा भयानका विनायका यक्षवैतालकाद्याः ॥१३४॥  
 अयोध्यायाः परितः पुण्यभूमिः प्रमोदनामा वनराजोऽस्ति यत्र ।  
 तद्देवता दुःसहवेत्रहस्ता सत्वान् प्रवेष्टुं न ददाति घोरान् ॥१३५॥  
 प्रमोदवनवातेन दूरादेवापसारिताः ।  
 न प्रवेशं लभन्ते वै विघ्नानां चापि कोटयः ॥१३६॥  
 भूतप्रेतपिशाचाद्या जूम्भका राक्षसादयः ।  
 कूष्माण्डवैतालगणा ये चान्ये त्रासका गणाः ॥१३७॥

डाकिनीपूतनादचाइच नोपसर्पन्ति तत्र वै ।  
 यत्रासाते धनुष्पाणी भवन्तौ रामलक्ष्मणौ ॥१३८॥  
 रामेति ध्वनिमात्रेण लक्ष्मणेति च नामतः ।  
 मम दूता कृतास्तत्र पलायनपरायणः ॥१३९॥  
 सरयूपयसा पूता अयोध्यारजसाप्लुताः ।  
 पापिनोऽपि नराः स्वर्गं प्रयान्तीति न संशयः ॥१४०॥  
 निशम्य भगवान् राम इत्थं तद्यमभाषितम् ।  
 चेतसा चिन्तयामास क्व नु गावो गता इति ॥१४१॥  
 स गोलोके विनिश्चिन्त्य तासां खलु गवां स्थितिम् ।  
 लक्ष्मणं प्रेषयाग्रास स्वयमास यमालये ॥१४२॥  
 रामेणाज्ञप्त एवासौ लक्ष्मणः कृतलक्षणः ।  
 गोलोकं प्रयथौ तूर्णं सुरभीकुलमण्डितम् ॥१४३॥  
 घटोधनीभिः सौरभेयीवराभिर्गोभिव्याप्तिं सिच्यमानं समन्तात् ।  
 वत्सप्रोतिप्रस्तुतैः सौरभाद्यैः पीयूषवर्णैः शीतलैस्तत्पयोभिः ॥१४४॥  
 आनन्दौघसमुल्लासिगोपगोपीजनाकुलम् ।  
 गवां हिंभारवैर्जुषं पूर्यमाणं च तर्णकैः ॥१४५॥  
 इतस्ततः कूर्दमानपीतवत्सकदम्बकम् ।  
 गोष्ठेषु सुविसर्पद्धिः प्रमत्तवृषभैर्वृतम् ॥१४६॥  
 ककुचतां बलीवर्दवराणां प्रकरैः सदा ।  
 पात्यमानतटप्रान्तवनभूमिविराजितम् ॥१४७॥  
 कलिन्दकन्यकावीचिसंगिमारुतसेवितम् ।  
 गोवधनगिरिप्रोद्यन्महाशृङ्गमनोहरम् ॥१४८॥  
 तत्र वृन्दावनं नाम समपश्यद्वनं च सः ।  
 राधावनं कृष्णवनं बलभद्रवनं तथा ॥१४९॥  
 व्यलोकत<sup>१</sup> व्रजभुवं मधुरां चात्र मध्यगाम् ।  
 वृन्दावनवृहद्वनप्रमुखैर्विपिनैर्वृतम् ॥१५०॥

१. व्यलोकयत्—अयो०, रीवाँ ।

हेमरत्नमयीं दिव्यां कुञ्जपुञ्जमनोरमाम् ।  
 श्रीमन्नन्दवजेन्द्रेण पाल्यमानां समन्ततः ॥१५१॥  
 श्रीयशोदानन्दपत्नीयशोगानपरायणैः ।  
 गोपालिकागणैर्जुष्टां पुष्ट्यवातनिषेविताम् ॥१५२॥  
 दधिमन्थानघोषेण समन्ताच्च निनादिताम् ।  
 रोहिणीसुतसानन्दक्रीडाभाजनतां गताम् ॥१५३॥  
 तत्रापश्यदसौ रामं नीलमेघमनोहरम् ।  
 बलभद्रेण सहितं गोपालं सखिभिर्वृतम् ॥१५४॥  
 पालयन्तं नन्दधेनूर्वनमालामनोहरम् ।  
 कृष्णं कमलपत्राक्षं राधाप्रेमविघूणितम् ॥१५५॥  
 अनङ्गवाणव्यथितं गोपीप्रेमैकभाजनम् ।  
 गोपालिकासहस्रस्य दृक्कटाक्षीर्विराजितम् ॥१५६॥  
 वृन्दावनपरिसरे चारयन्तं गवां कुलम् ।  
 वेणुं क्षणन्तं खेलन्तं किशोरं केलिकोविदम् ॥१५७॥  
 तं दृष्ट्वा लक्षणोऽत्यर्थं निजे हृदि विसिस्मये ।  
 अहो रामस्य माधुर्यं साक्षादाकलितं मया ॥१५८॥  
 अहो लोकस्य महिमा अहो अत्र सतां नृणाम् ।  
 सौभाग्यं च सुखं चैव प्रेम चातिशयोद्धुरम् ॥१५९॥  
 अहो अमुष्य<sup>१</sup> पुरुषोत्तमस्य रामस्यांशो यर्हि चापीह लोके ।  
 पश्यामि यस्यात्र कटाक्षपातैरुन्मत्तवद्भ्राति मनो वधूनाम् ॥१६०॥  
 अहो निसर्गो मधुरिम्ण एष यद् दृष्टमात्रो मदयन्नन्तरं से ।  
 पराद्वकन्दर्पविजैत्रमस्य माधुर्यसारं किमहं वर्णयामि ॥१६१॥  
 अहो अमीषां किमु भाग्यसिन्धोः समुद्गतः शारदपूर्णचन्द्रः ।  
 रामस्यासौ संप्रविभाति नित्यं किशोरमूर्तिर्मधुरापाङ्गवीक्ष्यः ॥१६२॥

इति सचकितचेता वर्णयन् कीर्तिपुञ्जं  
 स्थगित इव बभूव प्रेमपीयूषपूर्णः ।

१. अमुष्मै—बड़ो० ।

अमुमलपत रामो दिव्यगोपालवेषः  
 किमपि ननु विधाय स्वागतादीन् विवित्ते ॥१६३॥  
 अपि ननु कुशली नस्तात आश्चर्यवृत्तो  
 दशरथ नृपमौलिः सौष्ठुवोदार्यसिन्धुः ।  
 अपि च खलु जनन्या नाम कोशलयया मे  
 समधिगतपुमर्थाः किन्नुलब्धाः श्रियस्ताः ॥१६४॥  
 सहि ननु वसुदेवो यादवानां वरेण्यः  
 किमपि जयति पत्नी तस्य सा देवकीर्तिः ।  
 असुरबलसमूहैः पीड्यमानां विलोक्य  
 क्षितिमह मनयोर्वै द्वापरान्ते भवामि ॥१६५॥  
 कृतभरमधुनापि प्रोद्धतै रावणाद्य-  
 जंगदिदमवलोक्य ह्येतयोरेव वंशे ।  
 कृतमतिरवतीर्णे रामनामाभिराम-  
 इच्छतसृभिरपि युक्तो मूर्तिभिः स्वाभिरुच्चैः ॥१६६॥  
 इत्यालपितमाकर्ण्य लक्ष्मणो भ्रातुरुर्जितम् ।  
 उवाच वदतां श्रेष्ठो रूपमाधुर्यमोहितः ॥१६७॥

## लक्ष्मण उवाच

कुशली रघुराजोऽसौ पिता दशरथस्तव ।  
 आप्तकामा च कौशल्या त्रैलोक्यश्रीभिरालये ॥१६८॥  
 त्वमेवाखिललोलाभिः क्रीडसे राम सुन्दर ।  
 अशेषपुरुषार्थानां परां सीमानमुद्धन् ॥१६९॥  
 न ते व्यक्तिं विदन्त्यन्ये ये देवासुरमानुषाः ।  
 त्वमेव स्वात्मनात्मानं रमयन् राम खेलसि ॥१७०॥  
 भक्तानां करुणाहेतोर्दर्शयस्यात्मविग्रहम् ।  
 चिदानन्दमयं साक्षाद् ब्रह्मणोऽप्याश्रयं तु यत् ॥१७१॥  
 मोहयस्यात्मनो मायां वितत्य जगदीशितुः ।  
 यथा मोहितचित्तानां दुर्लभा व्यक्तिरीदृशी ॥१७२॥  
 तत्र लीला रसानन्दमयी सर्वमनोहरा ।  
 वसुदेवालये वापि श्रीमद्वशरथालये ॥१७३॥

नन्दालये वा सुखितालये वा यशोदया वापि माङ्गल्यया वा ।  
विराजसे लाल्यमानो नितान्तमजल्लकेलीरसमोदमग्नः ॥१७४॥

श्रूयतां मम विज्ञप्तिरतः परमरिन्दम् ।  
प्रेषितोऽहं मम भ्रात्रा रामेण पुरुषर्षभ ॥१७५॥  
त्वं चात्र तादृशो देव रामस्यांशो विलोक्तः ।  
युवां वै युवयोस्तत्त्वं जानीथो नापरो जनः ॥१७६॥  
स्वकार्यमेव भूत्येन साधनीयं विशेषतः ।  
प्रभुकृत्यं प्रभुर्वेत्तु प्रभूणां सेवकोऽस्म्यहम् ॥१७७॥  
स्वकार्यं साधयिष्यामि यदर्थं प्रेषितोऽस्म्यहम् ।  
कश्चिद् गन्धर्ववर्यो वै मुनिशापविमोहितः ॥१७८॥  
वैयाग्रीं योनिमापद्य रामराज्ये द्विजन्मनाम् ।  
गाश्च वै भक्षयामास रुदुस्ते ततो द्विजाः ॥१७९॥  
रामस्य द्वारमागत्य ततश्चुक्रोध राघवः ।  
निहतः स तु शार्दूलो महाबलपराक्रमः ॥१८०॥  
रामेण वाणेनैकेन बहवो येन नाशिताः ।  
राजा संप्रेषिता वीराः कुर्वन्तोऽपि पराक्रमम् ॥१८१॥  
मोचितः स च वैयाग्रचार्यो योनेर्गन्धर्वपुञ्जवः ।  
पश्यतो मे दिवं यातो दिव्यं यानमधिष्ठितः ॥१८२॥  
ततः सहस्रशो गावो द्विजन्मभ्यः प्रतिश्रुताः ।  
तासामेव गवामर्थे रामेणाक्षिलष्टकर्मणा ॥१८३॥  
ब्राह्मणानां गवामर्थे याचितो विनयानतः ।  
यमः प्रोवाच भगवन्नात्र ब्राह्मणघेनवः ॥१८४॥  
अयोध्यायां मृताजजन्तून् मम दूताः स्पृशन्ति न ।  
क्षणं विचिन्त्य रामेण प्रेषितोऽहमिहागतः ॥१८५॥  
त्वं प्रयच्छ शुभा धेनूब्राह्मणानामिहागताः ।  
श्रुत्वेत्थं भगवान् कृष्णो वचनं लक्ष्मणोदितम् ॥१८६॥

प्रत्युवाच रदोद्योतैर्योतयन् हरितो वने ।

### श्रीकृष्ण उवाच

सत्यमत्रागता गावो नन्दराजस्य वै व्रजे ॥१८७॥  
 रामाज्ञातः पुनर्नेया न त्वितः प्रतिगच्छति ।  
 नरो वा किन्नरो वापि पशुर्वा विहगोऽपि वा ॥१८८॥  
 प्रबला रामचन्द्राज्ञा नयेमास्तेन लक्ष्मण ।  
 ततः सुसत्कृतस्तेन लक्ष्मणो नन्दसूनुना ॥१८९॥  
 विप्राणां गाः पुरस्कृत्य पुनरागाद् यमालयम् ।  
 यत्र प्रतीक्षमाणेन रामेण स्थीयते स्वयम् ॥१९०॥  
 मार्गे सुसंगतास्तस्य देवास्त्रिदिववासिनः ।  
 आनन्दुः पुष्पवर्षेण पाद्यार्घ्यचमनादिभिः ॥१९१॥  
 गायन्तो विपुलां कीर्ति जय रामेति चोज्जगुः ।  
 अकर्तुमन्यथाकर्तुं क्षमते भगवान् प्रभुः ॥१९२॥  
 व्याघ्रेण भक्षिता गावो नीयन्ते भूतलं पुनः ।  
 रामाज्ञा प्रबला तस्मात् त्रैलोक्येऽपि न संशयः ॥१९३॥  
 इत्थं निगदतां स्वर्गे देवानां कीर्तिगायिनाम् ।  
 शृण्वन् सुविपुलं घोषं लक्ष्मणः पुनराययौ ॥१९४॥  
 यमस्य नगरी यत्र रामचन्द्रः प्रतिष्ठितः ।  
 आगतं लक्ष्मणं वीक्ष्य रामः प्रीतमना अभूत् ॥१९५॥  
 ततस्तौ यममामन्त्र्य पूजितौ तेन सत्कृतौ ।  
 दिव्यं रथं समारह्य पुरस्कृत्य गवांकुलम् ॥१९६॥  
 संस्तुतौ जयशब्देन देवैराकाशसंस्थितैः ।  
 साकेतनगरीं रम्यां तत्क्षणे समलङ्घकृताम् ॥१९७॥  
 कुतूहलसुसंपन्नैराधावद्भूरितस्ततः ।  
 नरनारीगणैः कीर्णा चित्रध्वजविराजिताम् ॥१९८॥  
 नादितां ब्रह्मघोषेण दिव्यैर्धूपैः सुधूपिताम् ।  
 आनन्दभरसंपन्नां सिच्यमानाभितस्ततः ॥१९९॥

सुगन्धितोयसदोहैर्वकुण्ठादपि शोभिताम्<sup>१</sup> ।  
 भूषितादृपणगृहां समलङ्घतगोपुराम् ॥२००॥  
 नादितां कीर्तिघोषेण सूतमागधवन्दिभिः ।  
 प्रसन्नहृदयैर्लोकैराकीर्णा भूरिमङ्गलाम् ॥२०१॥  
 गजदानद्रवोद्रेक<sup>२</sup>सित्तराजपथाङ्गणाम् ।  
 नारीगणसमारब्धमङ्गलोदगीतमज्जुलाम् ॥२०२॥  
 समंताज्जयघोषेण पूर्यमाण<sup>३</sup>दिगन्तराम्<sup>४</sup> ।  
 नवीनोत्साहसंपन्नां साश्चर्यजनकाहलाम् ॥२०३॥  
 एवंविधां विविशतुर्वर्णेरन्द्रौ रामलक्ष्मणौ ।  
 ततो दशरथः प्रीतः पुत्रयोर्वर्वर्वर्ययोः ॥२०४॥  
 पराक्रमेण महता त्रैलोक्याश्चर्यहेतुना ।  
 साश्चर्यं तौ समालिङ्गय पुत्रस्नेहपरिप्लुतः ॥२०५॥  
 आनन्दनिर्भरो भूत्वा तस्थौ स्तिमितलोचनः ।  
 निनायान्तःपुरे तौ च भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२०६॥  
 मातरस्तौ समालिङ्गच कौशल्याद्याः समुत्सुकाः ।  
 अवापुः परमां प्रीतिं विस्मयं च विशेषतः ॥२०७॥  
 मृता गावः समानीता इतिवृत्तं परस्परम् ।  
 कथयन्त्योऽवरोधस्थाः स्त्रियः साश्चर्यमानसाः ॥२०८॥  
 जगदुस्तत्र रामस्य कीर्तिमेताममानुषीम् ।  
 अथ रामं निजं पुत्रं कौशल्या विश्वमङ्गलम् ॥२०९॥  
 नीराजयामास मुदा स्नेहव्यापमनास्तदा ।  
 मणिमाणिक्यरत्नानि मुक्ताहेमशतानि च ॥२१०॥  
 परमानन्दसंपन्ना पुत्रयोर्निरमज्ज्यत् ।  
 ततो रामः समाहृय ब्राह्मणान् दुःखपीडितान् ॥२११॥  
 ददौ तेभ्यो निजानीता धेनूव्याघ्रेण भक्षिताः ।  
 अवाधिता अक्षताश्च स्वप्नादिव समुत्थिताः ॥२१२॥

१. वैकुंठात्परामिव—बड़ो० । २. °द्रवझरी°—अयो०, मथु० रीवॉ० ।  
 ३. °माणा—रीवॉ०, बड़ो० । ४. दिवंगतां—रीवॉ०, दिगंबरां—अयो०, बड़ो० ।

रत्नौधैः समलङ्कृत्य दिव्यभूषास्वरादिभिः  
 स्त्रगन्धपटवासाद्यैः परमानन्दनिर्वृत्ताः ॥२१३॥  
 दृष्ट्वा द्विजवरा धेनूर्मुदुः परया मुदा ।  
 तुष्टुवुश्चैव वीरेन्द्रं रामचन्द्रं गुणाकरम् ॥२१४॥  
 परमीश्वरमेवामुं विनिश्चित्य विशेषतः ।

## ब्राह्मणा ऊचुः

अहो अहो राघवर्वर्य तावकं सुवीर्यमेतद्वचनाद्यगोचरम् ।  
 किं वर्णयामो वचसा जना वयं न यत्र वेदः किमपि प्रवर्तते ॥२१५॥  
 यशश्च ते राघवराजनन्दन स्वर्गापिगापुण्यजलौघशीतलम् ।  
 नित्यं समुद्गाय जनास्त्रिलोकगाः स्वचित्ततापं शमयन्ति संप्रति ॥२१६॥  
 मान्धातृमुख्यास्तत्वं वंशसंभवा राजान आजन्मसुपुण्यकीर्तयः ।  
 न त्वादृशः कोऽपि बभूव भूतले सुपुण्यनामा गदतामधापहः ॥२१७॥  
 कल्याणनामा जगतां मनोहरो माधुर्यसंदोहविभाविताकृतिः ।  
 मन्दारकल्पद्रुमपारिजातवत्सुगन्धकीर्तिर्भुवने चिरञ्जय ॥२१८॥  
 जयाप्रमेयद्युतिधोरणीनिधे पुमर्थसाराखिलसद्गुणाश्रय ।  
 प्रमोदसंदोहदसुन्दराकृते श्रीराम राजीवदलायतेक्षण ॥२१९॥  
 त्वयि प्रसन्ने नरलोकभूषण स्फुटं जनानां न रुजो न च क्लमाः ।  
 पीयूषमाप्याययसि स्वकीर्तिभिस्त्रैलोक्यसंस्थाननिवासिनो जनान् ॥२२०॥  
 इहावतीर्णोऽसि परः स पूरुषः श्रीरामचन्द्रोऽनन्तगुणाकरः स्वयम् ।  
 रक्षोगणैर्भूरि निषीडितां भुवं पदाम्बुजाङ्कैः सततं प्रमोदयन् ॥२२१॥  
 इतिसंस्तुवतो विप्रान् लब्धमानान् विशेषतः ।  
 नत्वा प्रस्थापयामास बहुमानपुरःसरम् ॥२२२॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे द्विजगवानयनं  
 नाम अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥



## नवनवतितमोऽध्यायः

### ब्रह्मोवाच

दृष्ट्वा दशरथो राजा वीर्यं त्रिभुवनोत्तरम् ।  
यशश्च रामचन्द्रस्य रहसीदमचिन्तयत् ॥ १ ॥

### राजोवाच

अहो अयं देववरो मदालये समाविरासीद् द्विजदेवरक्षकः ।  
आजन्मरम्याणि सुखावहानि च स्वयं चरित्राणि करोति यत् प्रभुः ॥ २ ॥  
धनुर्धरः कामपरार्द्धसुन्दरः सरोजपाणिः प्रभुरेष वीक्षितः ।  
रामस्तदा'तेन विनिश्चितः पुरा तथाह्यसौ सद्गुणं वानपि स्फुटः ॥ ३ ॥  
अमुष्य ये पादसरोजयोस्तलं श्रयन्ति लोकाभयदानदक्षिणम् ।  
न ते प्रपश्यन्ति कदापि दुर्भगं<sup>३</sup> विरज्जिता भालतलेऽपि निर्मितम् ॥ ४ ॥  
समर्थता सर्वगुणाद्यतापि च त्रिलोकलोकोत्तारता च दृश्यते ।  
दयालुता भक्तजनेषु च स्फुटा यदेष रूपं परमं व्यभासयत् ॥ ५ ॥  
अमुष्य शश्वज्जनताशरण्ययोः पदाब्जयोर्ये शरणं व्रजन्ति न ।  
त एव मूढाः स्वजनुर्वृथा दधुः सुधां समासाद्य विषं नु भुज्जते ॥ ६ ॥  
अयं किलात्मा ज्वरं<sup>४</sup> मेनमुल्वणं भवाभिधं हन्तुमुदित्वरो भृशम् ।  
य एनमेवं न विदन्ति दुर्भगास्त एव लोके ननु दैववज्जिताः ॥ ७ ॥  
अयं पुराभूदधुना च दृश्यते भविष्यतीशः पुनरेव विस्फुटम् ।  
युगे युगे स्वां प्रकृतिं समाश्रितः स्वरूपमेष प्रकटीकरोति हि ॥ ८ ॥  
विज्ञानमेतस्य हरत्यघं तमो मायाभिधं येन निबध्यते जनः ।  
ब्रह्मेति चात्मेति च कीर्तितो गिरा स एष पूर्णः पुरुषः सनातनः ॥ ९ ॥  
गुणैः स्वलिङ्गैरयमुत्प्रकाशते नचैनमज्ञाः कलयन्ति दुर्भगाः ।  
निजात्मरूपेण लसन्तमीश्वरं कृपासमुद्रं क्षणतुष्टमद्भुतम् ॥ १० ॥

१. रामचन्द्रः—अयो०, मथु०, बडो० । २. तद्गुणं—मथु०, बडो० ।  
३. दुर्भगं—अयो०, रीवाँ । ४. परमेन—रीवाँ ।

अहो अमुष्यैव निजेच्छया जनो भवान्तरे संसरतीति निश्चयः ।  
 स्वभोगलीलाकरणे स्फुरत्कृतेः समुद्रूतोऽनेन च यः स मुच्यते ॥११॥  
 अचिन्त्यशक्तिर्भगवान् यदीश्वरः कथं स आत्मीयतया निबध्यते ।  
 तथापि भर्त्तर्मनसैकगोचरो विधीयते त्यक्तभवाखिलैषणैः ॥१२॥  
 सुतः पतिर्बन्धुरथ प्रभुः सुहृत् सखेति नानाधिष्ठणैः समाश्रितः ।  
 अयं परब्रह्मतया विनिश्चितः प्रभूतभूयोगुणरत्नवारिधिः ॥१३॥  
 विचित्रवीर्यस्य विचित्रकीर्तिता निर्धेविचित्राखिलसद्गुणाम्बुधेः ।  
 अमुष्य साक्षाद्द्वगवत्तयानिशं विराजमानस्य न किं किमद्भुतम् ॥१४॥  
 महोग्रतेजा महनीयसद्गुणो महामहैश्वर्यविभाविताकृतिः ।  
 अक्षिलष्टकर्मा भगवान् कृपैकभूरभूतपूर्वद्विनिधिर्विभात्यसौ ॥१५॥  
 अनन्तकीर्तिर्भगवाननन्तभूरनन्तवाह्वङ्गिमुखोरुनासिकः ।  
 अनन्तकर्मा स्वगुणैरनन्तकृदनन्तनामा सततं जयत्यसौ ॥१६॥  
 कल्याणनामाकृतिरेष राघवः स्वभावतः सर्वजगन्मनोहरः ।  
 पवित्रकीर्तिर्विततागमो गुणस्तथाप्यसौ वाङ्मनसाद्यगोचरः ॥१७॥  
 अमुष्य कर्माणि गुणांश्च वेदितुं तथैव संख्यातुमशक्तिरसम्यहम् ।  
 तथापि किञ्चिद्विषणा समुत्सुका समस्तहृत्कर्णरसायनत्वतः ॥१८॥  
 नितान्तमेनं समुपासते बुधाः पराद्वनामाकृतिवीर्यवत्तया ।  
 त एव सिद्धचन्ति यथा सुरद्रुमाः स्वयं परेषां च समाश्रयोचिताः ॥१९॥  
 केचिन्निजात्मार्पणभक्तिभागिनो भवन्ति सिद्धाखिलकर्मसंविदः ।  
 त एव लीलारसमग्नमानसा भवन्ति भूयस्तमसौख्यभाजनाः ॥२०॥  
 परे स्वरूपात्मतया विभावितुं विभुं परब्रह्मतया गुणातिगम् ।  
 प्रपद्य नित्यं निजलाभत्प्रये महामहैश्वर्यममुं समात्मजम् ॥२१॥  
 प्रायो न वेदा अपि शक्तिधारिणः प्रभोरमुष्य प्रभुतानिरूपणे ।  
 अतः समुच्चारितनेतिनेतिवागशक्तयोऽमी विरमन्ति' मूर्द्धनि ॥२२॥  
 असौ त्रिवेदीशिरसानिरूपितो महेशिता पूर्णगुणः परः पुमान् ।  
गुणान् वितत्यापिच संस्थितो न तैः गुणैरसञ्जात्मतया प्रसञ्जते<sup>३</sup> ॥२३॥

१. °शक्तयः श्री वीरगति—रीवाँ । °गीर्वित्माति—अयो० । “अमीवादाः, किंभूताः सम्यक् उच्चारिता नेतिनेतीति वाक् तया अशक्तिः असामर्थ्यं येषांते” टि०—मथु० । २. स तैः—रीवाँ ३. न सञ्जते—रीवाँ ।

कुत्पहलाविष्टतया जगज्जनाः भवन्ति वीर्येश्चकिता इव प्रभोः ।  
न तु स्वरूपं कलयन्ति तत्त्वतो मुहुस्त्रिवेदीशिरसा निरूपितम् ॥२४॥  
तथाप्यसावज्जनोद्धृतिक्षमः स्वरूपसंसर्गगुणेन भूयसा ।  
अयोमणिस्पर्शवशात् सुवर्णतां दधाति नो वेद यशो न निन्दनम् ॥२५॥

इति रहसि नरेन्द्रशिचन्त्यन् युक्तिपूर्वं-  
रनुभवसमुपेतैस्तत्त्ववद्भिर्वर्चोभिः ।

किमपि मनसि तृष्णोमास यावत् स ताव-  
न्मुनिजनसुदुरापां योगनिद्रामवाप ॥२६॥

यथा सुषुप्तौ किल सत्त्वंवृत्तिः साकं मनः क्वापि विलीयते भृशम् ।  
तथा विलियेऽस्य मनो महत्यदःसमानरूपां प्रकृतिं समाश्रितः ॥२७॥

अथासौ भिन्नरूपेण ददर्श प्रकृतिं पराम् ।

साधारणीभूतगुणां सर्वतत्त्वां गुणेश्वरीम् ॥२८॥

यथान्तरिक्षे पवनः प्रवाति च न वाति च ।

समुद्भूतामनुद्भूतो तथा प्रकृतिमात्मनि ॥२९॥

प्रकृतिं समतीत्याथ स्वगुणैरेव संगतः ।

तस्थौ पुरुषरूपेण साक्षिमात्रेण संस्थितः ॥३०॥

अथ ब्रह्मणि संलोनः शुद्धेऽपहृतपाप्मनि ।

अशोके विजिघत्सादिशून्ये पूर्णे परे पदे ॥३१॥

तदा क्षणं के गतोऽसौ व्यतिष्ठततस्तस्यांते जजानाहमस्मि<sup>१</sup> ।

मुक्ताहन्तावृत्तिरस्मीति जज्ञौ त्यक्त्वास्मितां च स्वरूपावशेषः<sup>२</sup> ॥३२॥

महान्तमानन्दमवाप तत्पदं स्वरूपमेकं गुणशक्तिवर्जितम् ।

विकल्पहीनं जितकालसंगमं सुनिष्कलं निश्चलमात्ममात्रम् ॥३३॥

अपेतवणश्रिमसंविभागं गतापगाभेदमिवाम्बुद्धाशिम् ।

अपेतभोगं निजमानन्दमात्रं परं पदं यद्धि वेदा वदन्ति ॥३४॥

संलीय तस्मिन् परमे पदेऽसौ तत्रस्थमोङ्कारमये विशुद्धे<sup>३</sup> ।

धाम्नि स्थितं पुरुषं संव्यचष्ट यदक्षरेति प्रवदन्ति धीराः ॥३५॥

१. सत्य—अयो० । २ “अहंकारयुक्तं स्वस्वरूपं ज्ञातवान्” टि०—मथु० ।

३. “मुक्ता अहंकारवृत्तिर्येन सः, अस्मीति अहंतायुक्तमात्मानं ज्ञातवान्, अस्मितां त्यक्त्वा स्वरूपेण तस्थौ” टि०—मथु०, । ४. “तिशुद्धे—अयो० ।

अथाक्षरे शुद्धमनावानन्तमूर्ति चिदानन्दघनस्वरूपम् ।  
व्यचष्ट रामं नवमेघनीलं तडित्तिवषा सीतया संविभातम् ॥३६॥

यथास्वपुत्रभावेन पश्यति प्रत्यहं नृपः ।

तथात्र स्वामिभावेन ददर्श नृपसत्तमः ॥३७॥

संदर्शनानन्दमिहानुभूय प्रभोनिवृत्तात्मजबुद्धिवृत्तिः ।

अथोदतिष्ठत् सहसा ततो यथा विधूय निद्रां पुरुषः सुषुप्तिगः ॥३८॥

अहो अहं चिदानन्दमये पूर्णे परे पदे ।

निमग्नं सहसा विश्वं विनिर्धूय शुचां पदम् ॥३९॥

अहो आनन्दमहिमा यत्स्वरूपैकगोचरः ।

तत्रापि परमानन्दं राममद्राक्षमद्भुतम् ॥४०॥

यदहं<sup>१</sup> चिन्तयामास स्वरूपं जानकीपतेः ।

तत्थैवेति निर्णीतं विलोक्याक्षरमध्यगम् ॥४१॥

अधुना रामचन्द्रोऽसौ परब्रह्मैव निश्चितः ।

तदेनमीश्वरं साक्षाद् व्रजामि शरणं विभुम् ॥४२॥

निश्चिनोति स्वमनसा राजा दशरथः स्वयम् ।

एकान्तसंस्थितौ प्रागाच्छरणं रामलक्ष्मणौ ॥४३॥

## राजोवाच

वशिष्ठो भगवान् योगी रघूणां नः परो गुरुः ।

यदव्रूतं परं तत्त्वं युवयो रामलक्ष्मणौ ॥४४॥

तत्थैवेति निर्णीतं परं धाम युवामिति ॥४५॥

श्रीरामरामनिखिलेशगुणाभिराम रामारमारमण रम्यतनो रसेन्द्र<sup>२</sup> ।

भोगीन्द्रमानसविलासक राजहंसज्ञातोऽसि तत्त्वत इतिस्फुटमानतोऽस्मि ॥४६॥

संकर्षणामितगुणाकरयोगिवेद्य श्रीलक्ष्मण प्रकृतिसुन्दर दिव्यरूप ।

जाने युवामनुभवेन यदस्य साक्षान्नित्यं प्रधानपुरुषेश्वरर्ता दधानौ ॥४७॥

प्रधानं पुरुषश्चेति विश्वकारणमुच्यते ।

तयोश्च कारणत्वेन युवां स्थः परमेश्वरौ ॥४८॥

१. यदहो—बड़ो० । २. रसीन्द्र—मथु०, बड़ो० ।

यद्भुग्यं तत्प्रधानं हि भोक्ता पुरुष ईदृशः ।  
 तयोरपीश्वरः साक्षाद् भवानेव न संशयः ॥४९॥  
 अवस्थाभेदतो यद्वदेको नानेव दृश्यते ।  
 तद्वद् भवान् कर्तृकर्मकरणादिस्वरूपभाक् ॥५०॥  
 त्वथ्येतद् दृश्यते विश्वं त्वथ्येव क्रियते विभो ।  
 त्वया व्याप्रियते भूयस्त्वत्त एव विभज्यते<sup>१</sup> ॥५१॥  
 त्वमेवास्य निर्मितं च तुभ्यं लीलारसात्मने ।  
 स्वरूपतोऽस्य संकलृमिः कविभिः सुनिरूपिता ॥५२॥  
 प्रयोजकस्त्वं चास्यासि त्वथ्येव प्राप्यते पुनः ।  
 समन्वयोऽस्य सर्वस्य त्वथ्येवमुपपद्यते ॥५३॥  
 स्वात्मानं<sup>२</sup> विविधं सृष्ट्वा त्वमनुप्रविशस्यदः ।  
 ज्ञानक्रियाशक्तियुतं सर्वमेतद्विभषि भोः ॥५४॥

यथास्ति वाणस्य न वेधशक्तिः सा तन्मोक्तुः पुरुषस्यैव दृष्टा ।  
 सूत्रात्मादीनां तथा शक्तयोऽपि तवैव भूमन् परकारणस्य ॥५५॥  
 सर्वज्ञ एकः खलु सर्वशक्तिस्त्वमेव सर्वान्तिधितिषुसि प्रभो ।  
 अतः समारब्धविशिष्टकार्या न तु स्वतन्त्राः प्रभवन्त्य<sup>३</sup> चेतनाः ॥५६॥  
 असंहताः यदि भूतेन्द्रियौघा मनोगुणा निर्मितौ वै विराजः ।  
 नाशकनुवंस्तर्हि विभो तवाज्ञाशक्त्यान्योऽन्यं चोदिताः संहतास्ते ॥५७॥

या वै चन्द्रमसः कान्तिः कौमुदीति निगद्यते ।  
 सा तवैव विनिर्दृष्टा सर्वहृत्तापहारिणी ॥५८॥  
 पावकस्य च यत्तेजः समुद्रस्योदरे सतः ।  
 शोषयत्यम्भसां भारं तत्तवैव विनिश्चितम् ॥५९॥  
 आदित्यस्य प्रभा या वै सर्वोद्दीपनकारिणी ।  
 सा तवैव प्रभो राम पङ्कजोल्लासकारणम् ॥६०॥  
 चन्द्राग्निसूर्यनक्षत्रविद्युतां स्फुरणात्मिका ।  
 तवैव शक्तिरुदिता नान्यथेति विनिश्चयः ॥६१॥

१. वितन्यते—रीवाँ, अयो० । २. स्वात्मना—मथु०, बड़ो० । ३. प्रसभन्त्य<sup>०</sup>  
 —रीवाँ ।

भूवार्यनिमरुद्धोमस्वस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठिता ।  
 गन्धो रसस्तथा रूपं स्पर्शः शब्द इति श्रुतः ॥६२॥  
 आकाशदेशभेदेन यद्विशामवकाशता ।  
 तत्त्वमेवासि नास्यां वै सर्वब्रह्माण्डसंस्थितिः ॥६३॥  
 अतद्वच्चावृत्तिरूपेण यद्वदन्ति परागिरः ।  
 प्रतिषेधैकशेषाय तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥६४॥  
 सच्चिदानन्दगुणकं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।  
 विलक्षणं समस्तेभ्यस्तद्ब्रह्म परमं भवान् ॥६५॥  
 अविद्यादोषरहितमैश्वर्यादिविवर्जितम् ।  
 शुद्धचिन्मात्रसंलक्ष्यं तद् ब्रह्म परमं भवान् ॥६६॥  
 यस्माद् भूतानि जायन्ते प्रतितिष्ठन्ति यत्र च ।  
 यस्मिन्नेव विलीयन्ते विभूतिस्तव तत्पदम् ॥६७॥  
 यस्यैककृतिरेषास्ति सत्तामात्रेण संस्थितिः ।  
 तद् ब्रह्म विश्वोपादानं ततोऽपि च परं भवान् ॥६८॥  
 वेदान्तविज्ञानवन्तः सुनिश्चितपरार्थकाः<sup>१</sup> ।  
 संन्यासयोगसंशुद्धा यतयो यद्विशन्ति च ॥६९॥  
 आनन्दानां च सर्वेषां श्रोतसामिव सागरः ।  
 यस्मिन्नेकपदे वेशस्तद् भवान् परमं पदम् ॥७०॥  
 विहाय निखिलं लोकमलोके<sup>२</sup> संव्यवस्थिताः ।  
 यदिच्छया यतिवरा वैराग्यं समुपाश्रिताः ॥७१॥  
 शब्दमात्रेण विज्ञाय स्वाराज्यपदमूर्जितम् ।  
 यच्छुद्धं ज्योतिषां ज्योतिरिहामुत्रार्थनिःस्पृहा ॥७२॥  
 छर्दितान्नसमं सर्वं<sup>३</sup> जगत् स्थावरजङ्गमम् ।  
 मन्यते यदिमं<sup>४</sup> नित्यं तत् केन तुलयामहे ॥७३॥  
 आपकामस्य पूर्णस्य निखिलं व्याप्य तिष्ठतः ।  
 यस्य लीलापि वै लोके न घटेत महात्मनः ॥७४॥

१. °तरार्थकाः—रीवाँ । २. मल्लोके—अयो० । ३. छर्दितानिव सर्वं च—रीवाँ । ४. मन्यन्ते यतिनो—मथु०, बड़ो० ।

स्वानन्दरसभोगाय कैवल्याय च सेविनाम् ।

घटते तत् परं ब्रह्म भवान् स्वानन्दभोगवान् ॥७५॥

त्वमेव चक्षुषश्चक्षुः श्रोत्रस्य श्रोत्रमुच्यते [से ?] ।

असि स्थूलस्य सूक्ष्मस्य तत् त्वमेवाधिदैवतम् ॥७६॥

या चेन्द्रियाणां विषयप्रकाशिनीशक्तिस्तथा तदधिष्ठायिनोऽमराः<sup>१</sup> ।

ततोऽप्यधिष्ठानगता च शक्तिस्तथैव नित्याध्यवसायशक्तिः ॥७७॥

तथैव च प्रतिसंधानशक्तिर्यद् भूतानां कारणं तामसाख्यः ।

अहंकारो राजसश्चेन्द्रियाणां स सात्त्विकोऽप्याधिदैवाध्यात्मिकानाम् ॥७८॥

जीवानां वा संसृतेः कारणं यत्तसर्वं त्वं सर्वरूपेण भासि ।

विनाशशीलेषु च वस्तुषु त्वमन्ते स्वरूपं यदवशिष्यमाणम् ॥७९॥

कार्येषु यद्वद्घटकुण्डलादिस्फुटावशेषमृतसुवर्णादिमात्रम् ।

तद्विकारेष्विलेषु पश्चात् स्वरूपतो यदवशिष्यते तत्त्वम् ॥८०॥

गुणास्तत्परिणामाश्च ये वै स्युर्महदादयः ।

स्वरूपभूतयाचिन्त्यशक्त्या ते त्वयि योजिताः ॥८१॥

त्वयि तेषां हि सत्त्वेऽपि स्पर्शो नैवोपपद्यते ।

यतो जीवस्य संसारस्त्वदज्ञाननिबन्धनः ॥८२॥

सर्वे भावाः कार्यरूपा यदान्ते नियोजितास्त्वद्योगमायाबलेन ।

तदा न सन्त्येव विनाशशालिनस्त्वं चात्मसत्तां न दधासि तेषु ॥८३॥

आदौ मध्ये व्यवहारस्तु तेषां भवन्नपि स्वप्नदृष्ट्येव सिद्धः ।

त्वत्सत्तातो नातिरिक्तां हि सत्तां संसाधयत्यनुशोच्योऽत एव ॥८४॥

अविद्वांसो निष्प्रपञ्चां गतिं ते सर्वात्मनामात्मनो व्यापकस्य ।

देहाभिमानेन कृतैः स्वकर्मभिर्भवन्ति जीवाः खलु संसारभाजः ॥८५॥

पटूनि संप्राप्य सदिन्द्रियाणि क्रियाज्ञानोभयगां चैव शक्तिम् ।

अहो जनो दैववशेन वज्जितो न चिन्तयत्येष यतः स्वर्थम् ॥८६॥

अहो अहंताममतानुबद्धो देहे तथैवानुगतेषु चैनम् ।

दुरत्ययं कालपाशं पतन्तं जानाति नैवायमतिप्रमत्तः ॥८७॥

१. शक्तिस्तदा तिष्ठति शायिनोमराः—रीवाँ । येऽमराः—अयो० ।

युवामशेषक्षितिभारहारकौ समस्तसाधूद्वृत्कार्यतत्परौ ।  
 इहावतीर्णै मम सद्गनि स्फुटं मदात्मजौ चेति विम्डबनं मम ॥८८॥  
 तत्वा'मार्तजनावनाय विहितानेकाद्भुतक्रोडनं  
 सच्चिन्मात्रसुखाकृति लवणवत् स्वानन्दसंपद्धनम् ।  
 योगीन्द्राशयपद्मकोशमधुपं माहेन्द्ररत्नच्छर्विं  
 श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं स्वशरणायोच्चैः शरण्यं भजे ॥८९॥  
 आदावेवाहमद्वा पुरुषवरवृतोऽस्मि त्वयानुग्रहेण  
 श्रीवत्साङ्गधनुःशरादिसहितं रत्नप्रभामण्डितम्<sup>२</sup> ।  
 क्वाप्यप्राप्तं नृचेतोनयनविषयतां भासयामास सूती—  
 गेहेऽस्मत्सुप्रसादं प्रकृतिसुभगतां संदधानो नितान्तम् ॥९०॥  
 तत्समै नमोऽद्य भवते विदधामि राम ज्ञात्वा परं स्वगुणलिङ्गगणैः पुमांसम् ।  
 स्नेहानुबद्धहृदयोऽपि सुतेति भावान्मध्ये प्रभूततरसुप्रणयाख्य पाशः ॥९१॥  
 यातं वयस्त्वयि परप्रणयेन राम त्वत्केलिवीक्षणसलालसमानसस्य ।  
 तेनाधुना भव भयार्तशरण्य शश्वन्मां पाहि नित्यशरणागतमादिदेव ॥९२॥  
 तिर्यक्त्वमञ्चितवतामपि<sup>३</sup> राक्षसत्वं नीचां पुलिन्दयवनश्वपचादियोनिम् ।  
 उद्धारकस्त्वमसिराम निजप्रभावात् कस्ते श्रमो मम मनोरथपूरणेन ॥९३॥

जानामि दिव्यज्ञानेन त्वद्वत्तेनैव राघव ।  
 नाधुनैवावतीर्णोऽसि मम गेहे जनार्दन ॥९४॥  
 प्रतिकल्पं प्रतित्रेतमेवमेव जगत्पते ।  
 ममालयेऽवतीर्य त्वं हंसि भूभारकारिणः ॥९५॥

### ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेत्थं रघुराजस्य पितृवाक्यं महार्थकम् ।  
 प्रजहास प्रभुः प्रीत्या रामो राजीवलोचनः ॥९६॥  
 मया महेशादिभनोरथानामगोचरेण पितृभावे वृतोऽस्ति ।  
 ऐश्वर्यविज्ञानममुष्य नाहं संकोचयत्येव च मामनेन ॥९७॥  
 आगत्य ब्रजमध्याच्च सुखितस्यालयादहम् ।  
 अनयोर्वर्द्धयामास शुद्धं प्रेम किमन्यथा ॥९८॥

१. तत्वा<sup>०</sup>—रीवाँ । २. श्रीवत्सांकं धनुर्वाणरत्नकिरीट कुंडलमहिव्यरूपं—मथु०,  
 बड्डो० । ३. निष्कर्म संचितवतामपि—रीवाँ । ४. मायामयीशादि<sup>०</sup>—मथु०, बड्डो० ।

तथाप्यहो ब्राह्मणानां गवानयनलिङ्गतः ।  
 वसिष्ठादिमुनीनां च वचनातप्रत्ययेन च ॥१९॥  
 ज्ञानांशः पुनरेतस्य प्राप्तोऽभ्युदयमुच्चकैः ।  
 इति संचिन्तयन् देवः प्रत्युवाच महोपतिम् ॥१००॥

## श्रीराम उवाच

एतद्युक्तं वचो वः सहजविनयिनं मां स्तुतिव्याजमात्रात् ।  
 कृत्वा स्वस्थोपदेशास्पदमवनिपते यत्त्वयैवाभ्यधायि ।  
 ऐश्वर्यं वैभवं चाभिहितमसदृशं तद्यथास्मासु पुत्रे-  
 ष्वेषा भावानुकम्पा प्रकृतिरथ तथा सर्वजीवेषु युक्ता ॥१०१॥  
 एषोऽहं त्वत्तनूजः परपुरुषधिया भाववन्तो भवन्तः  
 सौमित्री केकयोजः सुविदितयशसश्चापि साकेतलोकाः ।  
 एवं सर्वेऽपि चैते विमलरघुकुले श्रैष्टुचभाजो विभाव्याः  
 श्रीमद्भूः सानुकम्पैः स्वपरमपरथा दुस्तरं निस्तरेत् कः ॥१०२॥  
 पुंसां नैर्सार्गिकोयं प्रकृतिरुदयते साधुभावान्वितानां  
 यत्सर्वं ब्रह्मभावात्मकपरधिषणाभावितं धारयन्ति ।  
 संसारान्तर्निमग्नानपि समुपदिशन्त्येवमात्मस्वरूपं  
 जीवान्निस्तारयन्ति प्रकृतिसकरुणाः कोमलान्तः स्वभावाः ॥१०३॥  
 किंवा यूयं समस्ता जगदिदमखिलं चैव साकेतवास्तु  
 स्थूलं सूक्ष्मं तथान्यच्चरमचरमपि स्वेन रूपेण यावत् ।  
 तावत्कृत्स्नं प्रसिद्धं तदहमिति विमर्शात्मकेनामलेन  
 ज्ञानेन ज्ञाततत्त्वाः परिकरमखिलं पश्यथ ब्रह्मरूपम् ॥१०४॥  
 विष्णुः शुद्धावबोध<sup>१</sup>प्रकृतिभृदमलज्योतिराकार एकः  
 पूर्णः सत्योऽप्यनन्तः स्वपरसमदृशि<sup>२</sup>निर्गुणो निर्विकारः ॥  
 आत्मा सर्वोत्तमोऽयं सुकृतगुणगणैः स्वात्मने सर्वदेहे-  
 छित्थं नानेन<sup>३</sup> भाति त्रिभुवनविभवस्यैक आधारभूतः ॥१०५॥  
 आकाशो वायुरग्निर्जलमवनिरसौ तत्त्वसंघात उच्चचै-  
 राविभवी तिरोभाव्यथ लघु विपुलैर्वस्तुभिर्भूरिभावः ॥

१. °वरोध°—मथु०, बड़० । २. रसपद—रीबौं । ३. °दैहो संतिष्ठन्नेव—  
 रीबौं ।

चिन्मात्रः सन् प्रतीतः कृतमतिभिरसावेकरूपोऽप्यनेको  
नित्यो नित्यः स्वयंज्योतिरपिच विषयो निर्गुणः सद्गुणश्च ॥१०६॥

एवमुक्तः स रामेण स्वात्मौदासीन्यतत्त्वतः  
विनष्टविषयानेकबुद्धिस्तूष्णीं बभूव ह ॥१०७॥  
गोपयित्वा निजैश्वर्यं पुत्रस्नेहानुरक्षकः ।  
तमेव भावं संपुष्णन् भगवांस्तमपोषयत् ॥१०८॥  
वसिष्ठाद्युपदिष्टं तदैश्वर्यादि विदन्नपि ।

तथाभूतः प्रोत्तमना अभूत् स प्रेममानसः ॥१०९॥  
विरोधिभावोपशमं विधाय विशुद्धिभावेन निजान् विजानन् ।  
यान् भावयत्येवमनुग्रहेण कस्तेषु चिन्तालब्द आविरस्ति' ॥११०॥

प्रपञ्चेऽपि स्थितान् भक्तान् मोचयित्वेव सर्वथा ।  
स्वरूपबलमात्रेण रामो रमणकोविदः ॥१११॥  
अथ श्रीकौशल्या परमपुरुषाग्रचस्य जननी  
विशुद्धा सा लक्ष्मीः सकलसुरसंवासवसतिः ।  
प्रभोलीलाकौतूहलपरवशस्येहितकृते  
तथा लीलाशक्त्या प्रणिहितमतिः किंचिदवदत् ॥११२॥  
श्रीमन्तौ रामसौमित्री गुणलिङ्गैनिवेदितौ ।  
महानुभावौ विज्ञाय स्त्रीस्वभावाद् व्यजिज्ञपत ॥११३॥

श्रीरामचन्द्राप्रमितप्रभाव प्रभाविशेषाप्तविशेषबुद्धे ।  
योगेश्वरस्वान्तविचिन्त्यरूप प्रतीत एवासि निजानुभावैः ॥११४॥

युवां ब्रह्मादीनामपि हृदयवाचामविषयौ  
पुमांसौ तावाद्यौ निजप्रकृतिमात्रेहितधरौ ।  
धराभूयोभारोद्धरणकरणार्थं<sup>२</sup> प्रकटितौ  
जनः को जानीते किमपि ननु तत्त्वं च युवयोः ॥११५॥

ब्रह्मादयो दिविषदां प्रवरा मता ये सृष्टिस्थितिप्रलयकर्मविधानशक्ताः ॥  
तेऽमी युवामखिलशक्तिभूतोर्भवाद्योरंशांशमात्रविभवा विलसन्ति लोके ॥११६॥

१. आविरास्ते—रीवाँ । २. °हरणार्थ—अयो०, मथु०, बड़० ।

योऽयं सहस्रनयनाननपादबाहुरेकः पुमान् भुवनसंस्थितिमूलभूतः ।  
अंशोऽस्त्यमुष्य ननु सा विततैव माया तस्या इमे सविभवास्तु गुणास्त्रयस्ते ॥

तेषां लेशेन जायन्ते विश्वोत्पत्त्यादयः पृथक् ।  
पुरुषः सोऽपि युवयोरंशभूतः प्रतिष्ठितः ॥११८॥

गायन्ति नो किमपि कर्म वशिष्ठमुख्या ब्रह्मार्षयः सकलवेदविदां वरिष्ठाः ।  
आदाय राम खलु यन्महतीं सपर्यमौपासनाग्निमूनयः पुरुषस्य लोकात् ॥११९॥  
एवंविधानि सुब्रह्मनि<sup>१</sup> भवच्चरित्राण्युद्गापयन्ति भवतः पुरुषोत्तमत्वम्<sup>३</sup> ।  
प्राप्नास्म्यहं तदरणं भवतः पदाब्जं संसारसागरभूदीक्ष्य दुरन्तपारम् ॥१२०॥  
आनन्दमात्रमथ सर्वगुणावशेषं स्वात्मानमत्र च यदि<sup>४</sup> प्रकटं न कुर्याः<sup>५</sup> ।  
तद्वेदगोद्विजपुरातनधर्ममार्गः सीदेत दीर्घमिह को ह्यवलम्बनं स्थात् ॥१२१॥

तव मूर्तिरसौ धर्मश्चतुष्पाच्छुतिनिर्मितः ।  
तस्य संरक्षणकृते भवान् प्रकटितो भुवि ॥१२२॥

येऽन्ये महीन्द्रादय ईशमानास्तद्वीर्यमप्रतिममद्भुतमेव मत्वा ।  
आत्मानमुज्ज्ञतभरं सहसा विधाय प्राप्नास्त्वदड्ग्रिकमलं शरणाय राम ॥२३॥

आनोता भवता राम मृता गावो द्विजन्मनाम् ।  
अमानुषमिदं कर्म वीक्ष्य सर्वेऽपि विस्मिताः ॥१२४॥

ममापि कामः क्रियतां जगद्गुरो स्त्रीभावतोऽहं चपला नियोजये ।  
यद् भ्रातरो मे निहता सुबाहुना तान् वीक्षितुं सोत्कलिकास्मि संप्रति ॥१२५॥  
तान् वैष्णवान् सुन्दररूपदर्शन्<sup>६</sup> शोचन्त्युदश्रु प्रतिमीलिताक्षी ।  
मातामही ते महतीं शुचं गता नाद्यापि शान्ति समुपैति चित्ते ॥१२६॥  
तस्याः कृतेऽहमपि शोकजुषो जनन्याः शोकातुरास्मि भूशमुद्विजतीव चित्ते ।  
तद्राम शक्तिहरणे भवति स्थितेऽपि शोकः कथं नु भवतीति न वेद्विं<sup>७</sup> किञ्चित् ॥

१. अज्ञो—मथु०, बड़ौ० । २. सुर बन्द्य—अयो० । ३. °षोत्तमस्य—अयो० ।  
४. यदि च—अयो० । ५. कुर्यात्—मथु, बड़ौ० । ६. °दर्शन्—रीवाँ । ७. बोध—  
रीवाँ ।

ब्रह्मोवाच

मातुर्वचः समधिगम्य शुचातुरायाः<sup>१</sup> तान् स्वस्थमातुलवरान् पुरुषप्रवीरान् ।  
श्रुत्वा सुबाहुसमरे निधनं समागतानानेतुमात्तकरुणः स मर्ति चकार ॥१२८॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे  
षड्गुणाख्याने नवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥



### शततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततः सलक्ष्मणो रामः सुबाहुसमरे हतान् ।

मातुलान् पुरुषेष्टानानेतुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

रथं समास्थितो दिव्यं मषिकांचनभूषितम् ।

चराचराप्रतिहतं धनुष्पाणिः सलक्ष्मणः ॥ २ ॥

भूर्भुवस्वर्महश्चैव जनलोकमतीत्य सः ।

तपोलोकं गतो वीरो वीराणां यत्र संस्थितिः ॥ ३ ॥

दिव्यं रथं समधिरुह्य शुभासनस्थस्तूणीरबन्धनमनोज्ञकटिप्रदेशः ।

दिव्यं धनुस्ततगुणं दधदंसदेशो युक्तोऽनुजेन गगने ददृशो सुरोघैः ॥ ४ ॥

तैस्तैः स्तुतो दिविषदां प्रवरैरधीशैः शक्रादिभिः कृतमहार्हणदर्शनीयः ।

लोकान् जनेन षड्तीत्य रघुप्रवीरः प्राप्स्ततस्तपसि शूरसतीभिराढचे ॥५॥

यद्वध्वरेतसां स्थानं मुनीनां युक्तचेतसाम् ।

शूराणां च सतीनां च पातिन्त्यजुषां गृहम् ॥ ६ ॥

दिव्यैविमानप्रवरैर्मण्डचमानं<sup>२</sup> समंततः ।

दीप्यमानं विशेषण देवानां तनुरश्मिभिः ॥ ७ ॥

हेमाङ्गणसमाबद्धमणिश्चेणिमनोहरम् ।

पारिजातद्रुमारामपरिवीतपुरालयम् ॥ ८ ॥

विध्वस्ततिभिरस्तोममहालोकमहोदयम् ।

शूरतापससाध्वीभिः सेव्यमानं मुदावहम् ॥ ९ ॥

१. भृशातुरायाः—अयो० । २. मंज्यमानं—रीवाँ ।

अनेकभोगसंपन्नं	दिव्यस्त्रीगणसेवितम् ।
दिव्यरुपनटीलास्यतलनादनिनादितम्	॥१०॥
पादपूररवोद्घोषकारिणीभिः सुकान्तिभिः ।	
युवतीभिः सुमत्ताभिः समन्ताच्चैव भूषितम् ॥११॥	
व्याकोषबहुलाम्भोजकाननैर्गुज्जितालिभिः ।	
सुशीतलमरुद्धूतपरागैर्मण्डितोदकम्	॥१२॥
रत्नबद्धमहावापीराजहंसकुलवण्णः ।	
कादम्बकुलनादैश्च संनादितदिग्न्तरम् ॥१३॥	
ववचिद्वसन्तसंफुल्लमल्लीवल्लीमनोहरम् ।	
विकसच्चारुचाम्पेयहेमयूथोवनावृतम्	॥१४॥
वासन्तीलतिकापुष्पसौरभाजितकाननम् ।	
रसालमञ्जरीवृन्दपरागसुपिशङ्गितम्	॥१५॥
मणिकुट्टिमसंक्रान्तप्रतिमैः कृतकेलिभिः ।	
संकेतसञ्चसु नरैर्नारीभिः कृतकौतुकम् ॥१६॥	
सुगन्धशीतलमरुन्मन्दगत्या निषेवितम् ।	
ईदृशं तत् तपो रामो लोकानां लोकमुत्तमम् ॥१७॥	
विलोक्य रघुशार्दूलः परां मुदमवाप सः ।	
मन्दाकिनीमहाल्लोतःस्नानेन विगतश्रमः ॥१८॥	
तत्रत्यैर्मुनिर्भिर्दिव्यरुपदर्शनविस्मितैः ।	
द्वारादेव समुद्दीक्ष्य सादरं सुसर्वचितः ॥१९॥	
तपोलोकाधिपतिना संप्राप्तौ रामलक्ष्मणौ ।	
श्रुत्वा प्रत्युद्यतं॑ भूयो वरिवस्याभिरादरात् ॥२०॥	
गृहीतौ विनयाक्रान्तमानसेन सुद्वरतः ।	
संपूजितौ संस्तुतौ तौ संस्पृष्टचरणाम्बुजौ ॥२१॥	
उक्तौ सविनयं चैव सपर्यान्ते कृतादरौ ।	
अहो युवां पावयथ कीर्त्या लोकांश्चतुर्दश ॥२२॥	

अहो अत्यद्भुताः श्लोका युवयो रामलक्ष्मणौ ।  
 विध्वस्ततिमिरस्तोमाः शरत्सोमातिशीतलाः ॥२२॥  
 यौवराज्ये स्थितेनैव भवता राम सुन्दर ।  
 राजादशरथेनैव रञ्जितं भुवनत्रयम् ॥२४॥  
 स्वर्धुनीस्पर्शमात्रेण पुनाति भुवनत्रयम् ।  
 निजवर्णसमुच्छ्रायैर्दूरादेव भवद्यशः ॥२५॥  
 धरित्र्यामवतीर्णौ स्थः पुराणपुरुषौ युवाम् ।  
 असुराणां विनाशार्थं गोवेदद्विजद्रोहिणाम् ॥३६॥  
 निजदर्शनमात्रेण पश्यतां नयनवजे ।  
 सदानन्दसुधाधारां समंतादभिवर्षथः ॥२७॥  
 समौ<sup>१</sup> कमलपत्राक्षौ सुकुमारौ मनोहरौ ।  
 लोकोत्तरगुणारामौ भवन्तौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥  
 यैः सादरं दृशा दृष्टौ पुष्टौ संभाषितौ श्रुतौ ।  
 कीर्तितौ संस्मृतौ वापि ते धन्या धरणीतले ॥२९॥  
 लोकोत्तरगुणैलङ्घैर्लोके वां पुरुषोत्तमौ ।  
 विदितौ स्थस्तथाप्येते मोहिता ईशमायया ॥३०॥  
 अद्यैव भवतो राम प्रपदय चरणम्बुजम् ।  
 मुक्ताः किं न भवन्त्येते बद्धाः स्वाज्ञानतो जनाः ॥३१॥

येषां भवान् भवपयोनिधिदुःखवीचीसंपर्कहारिचरणाम्बुरुहप्रसङ्गः ।  
 ते किं भवेयुरसकृज्जनिकष्टभाजो हंहो तवैव विषमा ननु कापि माया ॥३२॥  
 येनासुरास्त्रभुवनामयरूपशोलाः संतारिता अतिखला अपि घोररूपाः ।  
 तस्य स्वभक्तजनतारणसाधुकृत्ये को नाम राम भवति श्रम आर्तबन्धो ॥३३॥  
 अन्यावतारचरितेषु न यद्विभाव्यं तत्कर्म राम कुरुषे ति विचित्रमेव ।  
 तेनेदमप्रतिममेव दधासि राम स्वं वैभवं त्रिभुवनाभयदानदक्ष ॥३४॥  
 ब्रह्मा भवस्त्रिनयनो भगवान् हयास्यस्त्वत्कीर्तिपुण्यगुणगानपवित्रगाथाः ।  
 नो चेत्तथा प्रकटयन्ति यथा जनानामानन्दनिर्भरवपुःपुलकादिभावाः ॥३५॥

ऐश्वर्यमेतदतुलं सुनिरीक्ष्य राम लोकाभिराम भवतो यदनन्यगामि ।  
कस्यापि नेश्वरतया स्थितमद्यसाक्षादित्येक एव भुवनेषु महेश्वरस्त्वम् ॥३६॥  
वोर्यं तथैतदतुलं तव रामचन्द्र संतापिते त्रिभुवने यदिहासुरोघैः ।  
ब्रह्मादयो दिविषदः समुपेत्य साक्षादेकं भवन्तमसकृद्विनिवेदयन्ति ॥३७॥

नमस्त्रिभुवनाधीश	विश्वमङ्गलविग्रह ।
आश्रितश्रुतिगोविप्रसंपालनदृढव्रत	॥३८॥
सत्यसंकल्प सत्यात्मन् सत्यपालनसुव्रत ।	
सत्यस्यापि महासत्य सत्यदेव नमोस्तुते ॥३९॥	
समस्तजगदाधार नित्यप्रमितगोचर ।	
निस्तारितजगत्क्लेश रघुनाथ नमोस्तुते ॥४०॥	
देवदेव दयासिन्धो दीनार्तिक्षणोद्धर ।	
धर्मपाल धनुष्पाणे राघवेन्द्र नमोनमः ॥४१॥	
ततस्तौ पुरुषश्रेष्ठावुदारगुणभूषणौ ।	
विश्वम्भरौ समापूज्य प्रोचुस्तापससत्तमाः ॥४२॥	
यद्गूर्ध्वरेतसो भूत्वा वयं नियमतत्पराः ।	
अकृष्णहि <sup>१</sup> तपस्तीव्रं तस्येदं फलमुत्तमम् ॥४३॥	
यद् युवां दशीनं यातौ दृशां नः पुरुषोत्तमौ ।	
अनर्घ्यगुणसंदोहभूषितौ जगतां पती ॥४२॥	
करुणारसपाथोधी महोदारगुणाकरौ ।	
सुपवित्रचरित्राद्यौ युवां श्रीरामलक्ष्मणौ ॥४५॥	
जगद्विलक्षणौ वीरौ विश्ववन्द्यपदाम्बुजौ ।	
त्रैलोक्यगीतकल्याणगुणरत्नाकरौ युवाम् ॥४६॥	
प्रधानपुरुषौ साक्षाज्जगच्चेष्टाविधायकौ ।	
स्वतन्त्रेच्छौ युवां नित्यं कुरुथो विश्वनिर्मितिम् <sup>२</sup> ॥४७॥	
सर्वेश्वरौ सर्वपुर्मर्थरूपौ सर्वाधिकानन्तविशिष्टवीर्यौ ।	
सर्वस्य रक्षाकरणे समर्थौ रघोः कुले वामवतीर्णवन्तौ ॥४८॥	

१. प्रकृष्णहि—मथु०, बडो० । २. निर्मितं जगत्—रीवौँ ।

कलाभिरंशैविभवैः स्वकीयैविराजमानौ पुरुषौ भवन्तौ ।  
सर्वाद्भुतौ सर्वविलक्षणश्रीनिकेतनौ राघववीरवयौ ॥४९॥

### वीरा ऊचुः

रणेषु दत्त्वा शिर आगता इह स्वशूरताधर्मपरायणा वयम् ।  
अद्याप्तवन्तो ननु लौकिकानां फलं युवां गोचरतां यदागतौ' ॥५०॥

वीरसेवितपादाब्जौ वीरेन्द्रौ वीरवत्तरौ ।  
निजवीर्यजगद्रक्षाविधानकुशलौ युवाम् ॥५१॥  
अद्य नः सफलो लोकः सफला लोकिता च नः ।  
युवां यदर्शनं यातौ त्रैलोक्यसुभगाकृती ॥५२॥  
विश्वरक्षापदेशेन क्रीडन्तौ विमलैर्गुणैः ।  
विराजेते भवन्तौ वै सतां गेयगुणाकृती ॥५३॥

वैतानिका यमुदयं सुकृतैर्भन्ते कष्टेन भूरिकृतकर्मकुलाकुलत्वात् ।  
सोऽपि प्रभो त्वदनुसंधिमृतेदुरापो ध्वस्तं फलेन हि परानुगृहीतिहीनम् ॥५४॥  
तंश्वाशवत्यपि फले नु वृथा यतन्ते त्वद्द्वावहीनमनसो मनुजा जगत्याम् ।  
प्राज्ञाः परे तु फलतत्त्वविदस्त्वदर्थाः कृत्वा क्रियाः कलितपूर्णफला भवन्ति ॥५५॥

### पतिव्रता ऊचुः

वैश्वानरे निजवपूषि हविविधाय प्राप्ताः स्म वीरवरलोकमिमं प्रियैः स्वैः ।  
सत्यस्य तस्य फलमद्य निरूढमेतद् यद्रामचन्द्र भवतो दृशिमाप्तवत्यः ॥५६॥  
गोप्यः प्रमोदवनवासजुषो निपीय यत्ते सुखं कमलसारभूतं कृतार्थाः ।  
नेत्रैस्तदद्य सुनिरीक्षितमस्मदीयैः किं स्यादितोऽपि सुकृतं विवुधायुषां नः ॥५७॥  
कारुण्यसागर न यर्हि नरोत्तमेन दृष्टास्त्वया कमलगर्वं मुषा दशा वः<sup>३</sup> ।  
तद्वचर्थमेव ननु रूपमदभ्रसारं नागीनगीपदजुषामसुरीसुरोणाम् ॥५८॥  
धन्ये दृशौ पुरुषवर्यं<sup>४</sup> भवत्सुरूपं माधुर्यसारमकरन्दरसं पिबन्त्यौ ।  
ग्राम्यस्त्रियोऽपि वनवासजुषश्च तस्या नान्ये सुरेन्द्रकमला<sup>५</sup> सुनिरीक्षिकेऽपि ॥५९॥

१. तदा<sup>०</sup>—रीवौ । २. 'वर्ग०—अयो० । ३. दशार्थ—अयो०, दशर्थ—रीवौ ।  
४. °धुर्य—मथु०, बडो० । ५. °स्वरूप—मथु०बडो० । ६. °मबला०—मथु०, बडो० ।

धन्याः स्त्रियोऽपि सकलागमकर्महीनास्त्यक्ताधिकारविषया अपि सर्वधर्मेः ।  
 यास्ते मुखेन्दुमभूताकरमच्छरूपं पश्यन्ति राम नयनैः कमलाधिसारैः ॥६०॥  
 लावण्यमेतदधिकं किमु वर्णनीयं जानन्ति ता वनचरीदृश आत्तमानाः ।  
 या नित्यमेव कलयन्ति गवेन्द्रगेहे केः । अपि कैतवगुणेन कृतानुषङ्गाः ॥६१॥  
 त्यक्त्वा कुलव्रतसमुद्रमनन्तपारं हित्वा त्रपानिवहपाशः सुपर्वजातम् ॥६२॥  
 यास्त्वां प्रपद्य विहिताखिलकर्मबन्धनाशा भजन्ति किमु ताः किल वर्णनीयाः ॥  
 त्यक्त्वा<sup>४</sup> सुदुस्त्यजकुलाभिमतिं कृताशास्त्वद्वक्त्रचन्द्रपरमाभूतपानमात्रे ।  
 ता एव गोपसुदृशो विधिशर्वमुख्यैदेवैर्दुरापमधियान्ति तवाङ्गसंगम् ॥६३॥  
 एतावदेव सुधियां सुविचारणीयं किं नित्यमस्ति किमनित्यमिय<sup>५</sup> त्विलोके ।  
 निश्चित्य तच्च परिशेषदृशा त्वयीश कार्या रतिर्न पुनरेति ततो विनाशम् ॥६४॥  
 नित्यं सुखं जनकजानयनाभिराम यद्रामचन्द्र भवतैव भवेद्वितीर्णम् ।  
 यत्तु प्रसक्तपशुपुत्रधनादिभिः स्यात् तत्कालगीर्णमिति कस्य भवेत् प्रतीतिः ॥६५॥  
 रामेति नाम भवतो भवतापहन्त् ये वै<sup>६</sup> गृणन्ति सकलाभयदानदक्षम् ।  
 ते कालवेगजरठीकृततुच्छसारं दुःखाकरं भवमुदस्य सुखं लभन्ते ॥६६॥  
 को नाम विद्वद्वृचितां धिषणां दधानो नित्यार्तिदे पशुसुतादिभवेऽनुषङ्गेत् ।  
 हित्वा विषादहरणं तरणं शुचाब्धे<sup>७</sup> स्त्वत्पादपद्मयुगलं दिविषज्जिषेव्यम् ॥६७॥  
 एकस्त्वमस्य भुवनस्य करोषि संस्थाः सृष्ट्यादिभिर्जनविलक्षणवीर्यराशिः ।  
 कोऽन्यः पुनः कमलनाभ भवेद्द्वृवत्तः प्राप्नापदः प्रतियुगं प्रतिकर्तुमीशः ॥६८॥  
 तस्मै नमोऽद्य भवते पुरुषोत्तमाय कुर्मः पुराणमुनिगीतमहागुणाय ।  
 दीनार्तवृन्दहरणोद्धुरकार्मुकाय रामाय नैम्यकुलचन्द्रिकयान्विताय ॥६९॥  
 अस्माकमेष खलु सत्त्वफलप्रकर्षो लोकस्तपाख्य उदिताखिलसौख्यसंघः ।  
 सोऽप्यद्य तुच्छफलवद्विदितौ नृवीर त्वद्विग्रहाभूतेत्वदनुग्रहाप्यम् ॥७०॥

इत्येवं संस्तुतो रामस्तैस्तत्त्वलोकवासिभिः ।

उवाच सर्वान् सुप्रीतःस्मयमानोऽनया गिरा ॥७१॥

एतावद्वो लोकसंख्या किलाभूदतःपरं परिमुच्यध्वमस्मात् ।

भवाभिधाद्वीर्घदीर्घान्महाब्धेर्मया यूयं तारिताः सर्व एते ॥७२॥

१. कमलापसारैः - रीवाँ । २. तपोनिवह माशु—रीवाँ । ३. <sup>६</sup>जालम्—अयो० ।
४. धूत्वा—रीवाँ । ५. <sup>७</sup>मयं—अयो० । ६. एवं—रीवाँ । ७. सुधाब्धे:-रीवाँ । ८. निमेषम्—अयो० । ९. <sup>८</sup>ग्रहास्य—रीवाँ । “सोऽपि तपोलोकोऽपि तवविग्रहं विना तुच्छो दृष्टः, किंभूतं त्वद्विग्रहं तवानुग्रहैर्णैव प्राप्यम्” दि०—मथु० ।

न प्रमाणं साधनं वा युष्माकं समपेक्षते ।  
 मदनुग्रहमात्रेण मोचिता भववारिधेः ॥७३॥  
 ब्रह्माक्षय्यसुखं धीराः समश्नुत मदाज्ञया ।  
 नित्यानन्दमयं लोकं न यस्मात् पुनरागमः ॥७४॥

अथाब्रवीत् पुरुषवरो मृदुस्मितैः प्रमोदयन् मधुरसुधानुबन्धिभिः ।  
 तथाभिधादभुततमलोकनायकं कृतार्हणः<sup>१</sup> किमपि स तेन सत्कृतः ॥७५॥

### श्रीराम उवाच

तपलोकाधिप भवल्लोके नो मातुलोत्तमाः ।  
 इमे समासते एवैतान्नयामोऽधुना वयम् ॥७६॥  
 अयोध्यानगरी राजा राघवेन्द्रेण पालिता ।  
 यत्रास्माकं संवसतिः सर्वसौख्यप्रदायिनी ॥७७॥

ततः स दिव्ये सदने विराजितान् दिव्योपभोगैः कलितप्रमोदान् ।  
 तपस्विलोकाधिपर्दशतांस्तान् ददर्श रामो निजमातुलोत्तमान् ॥७८॥  
 ये वै पुरा पद्मभुवः सभायां सामानि गायन्तमुदग्ररोषम् ।  
 सुमन्तुना संकलहायमानं तपस्विवनं मुनिमत्रेस्तनूजम् ॥७९॥

जहसुः साध्यनामानः केचिद् देवगणास्तदा ।  
 शप्तास्तेनैव मुनिना मानुषीं योनिमागताः ॥८०॥  
 ते वीरकर्मणा भूयस्तपोलोकनिवासिनः ।  
 कौशल्याया भ्रातरस्ते दृष्टा रामेण सादरम् ॥८१॥  
 अभिवाद्य ततस्तांस्तु सानुजो मातुलान् निजान् ।  
 लोकाधिपमुपामन्त्र्य स्वां जगाम स तैः सह ॥८२॥  
 अयोध्यानामनगरीं वसुधामण्डनायतोम्<sup>२</sup> ।  
 पुरो मातामहीमात्रोर्मातुलांस्तान् न्यवेदयत् ॥८३॥  
 अथ मातामही तस्य दृष्टवा पुत्रांस्तुतोष सा ।  
 भगिनी चैव तान् भ्रातृश्चिरदृष्टान् यथागतान् ॥८४॥

१. क्षतार्दनः—अयो० । २. °मण्डला°—रीवाँ ।

ते मातरं समाशिलष्य पुत्रस्नेहस्नुतान्तराम् ।  
 भगिनीं च महामान्यां तुतुषुः स्नेहसंयुताः ॥८५॥  
 ते पुनः पुनरालप्य मातरं विरहक्षताम् ।  
 भगिनीं च प्रमोदाक्ता बभूवुः स्तिंगधमानसाः ॥८६॥

ते पश्यतां रामपुरीजनानामागच्छतां व्योम<sup>१</sup> पथादपश्यन् ।  
 विशुद्धरत्नैःखचितान् विमानान् हैमान् यथापूर्वमलड़कृतान् स्वान् ॥८७॥

अथ ते तत्क्षणादेव नीलनोरदकान्तयः ।  
 पीताम्बरधरा भ्राजन् मकराकृतिकुण्डलाः ॥८८॥  
 विशुद्धेन किरीटेन भ्राजमानमुखतिविषः ।  
 शङ्खचक्रगदापद्मसमुपेतचतुर्भुजाः ॥८९॥  
 अवाप्य रामसारूप्यं दिव्यवेषविराजिताः ।  
 तान् विमानान् समारुद्धा स्तुवन्तो जानकीशितुः ॥९०॥  
 विशदा कीर्तिगाथास्ताः श्रीरामभवनं गताः ।  
 रामचन्द्रप्रभावेण सकलाश्चर्यकारिणः ॥९१॥

य इदमनुशृणोति मातुलानां किमपि समुद्धरणं भवाम्बुराशः ।  
 रघुवरचरितं जगत्पवित्रं स तु भवति प्रिय एव राघवस्य ॥९२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे षड्गुणाख्याने मातुलोद्धारणंनाम शततमोऽध्यायः ॥१००॥



## एकाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

यौवराज्यस्थिते रामे गुणैर्नन्दयति प्रजाः ।  
 लक्ष्मणे च महावीरे वहति स्वगतां धुरम् ॥ १ ॥  
 राजा दशरथो न्यस्य पुत्रयोरखिलां पुरीम् ।  
 स्वयं जगाम तीर्थानां यात्रायै धर्मभृद्वरः ॥ २ ॥

१. व्योम्नि—रीवाँ । २. शताधिकैकतमो—रीवाँ, नास्ति—मथु० ।

राममाहूय नृपतिर्जगाद् जगदीश्वरम् ।  
लक्ष्मणं च सुसत्कृत्य तीर्थयात्रार्थमुद्यतः ॥ ३ ॥

## राजोवाच

अहो रघुकुलश्लाघ्यौ चरित्रैर्गुणवत्तरौ ।  
युवयोर्वीर्यधनयोर्भुजे न्यस्य धराधुरम् ॥ ४ ॥  
तीर्थयात्राविधि कर्तुमुद्यतोऽस्मि विशेषतः ।  
निश्चन्तोऽहं त्वया राम जगदारामहेतुना ॥ ५ ॥  
पृथिव्यां सप्त द्वीपानि तेषु वर्षाणि भागशः ।  
तेषु यावन्ति तीर्थानि तानि यास्यामि सादरम् ॥ ६ ॥  
आरभ्य भारतं वर्षं यावन्ति खलु भूतले ।  
वर्षाणीह प्रतिद्वीपं तेषु तीर्थानि भूरिशः ॥ ७ ॥  
अहं तावत् सुसंगम्य स्नात्वा इत्वा च भविततः ।  
ब्राह्मणेभ्यो गवां कोटीः स्वर्णशृङ्गीः पयस्विनीः ॥ ८ ॥  
श्रियं सफलयिष्यामि त्वद्वीर्यबलवृहिताम् ।  
भूतानामनुकम्पाश्च कुर्वन्नन्नादिदानतः ॥ ९ ॥  
तेषु तेषु सुतीर्थेषु विचरिष्यामि पुण्यकृत् ।  
सप्तनीकः सानुगश्च इत्थं मे निश्चला मतिः ॥ १० ॥  
इतिश्रुत्वा पितुर्वक्यं प्रोवाच रघुनन्दनः ।  
प्रीत्या संमोदयंश्चित्तं शृण्वतामत्युदारधीः ॥ ११ ॥

## श्रीराम उवाच

सप्तद्वीपवतो पुण्या तत्र तीर्थानि भूरिशः ।  
कानि कानि तु गम्यानि मानवैर्निजशक्तितः ॥ १२ ॥  
एतन्निर्धारय विभो वशिष्ठादिसुयोगिनाम् ।  
वाक्येन राजशार्दूल यानि गम्यानि च प्रभो ॥ १३ ॥  
ततस्त्वं कुरु तोर्थानि यथागुणविशेषणम् ।  
यथाद्रव्यविधानं च यथोपस्करमादरात् ॥ १४ ॥  
इतिश्रुत्वा रामचन्द्रस्य वाक्यं गुणान्वितं सत्समाख्यातधर्मम् ।  
आकारयामास रघुप्रवीरो मुनीश्वरं स्वाश्रमात्तं वशिष्ठम् ॥ १५ ॥

तं पूजयित्वा नृपतिः समागतं वशिष्ठनामानमशेषधर्मगम् ।  
उवाच राजा धृतनम्रकन्धरो भक्तिप्रकर्षेण सुहृष्टरोमा ॥१६॥

राजोवाच

भगवन् मुनिशार्दूलं सर्वशास्त्रसुकोविद ।  
सर्वधर्मैकतत्त्वज्ञं किंचित् प्रष्टुमना अहम् ॥१७॥  
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।  
तानि मे वदतांश्रेष्ठं वद विस्तरशो मुने ॥१८॥  
शास्त्रेषु यानि चोक्तानि त्वादृशैः परमार्थिभिः ।  
कर्तव्यानि गृहस्थैर्यान्यद्भुतानि स्थलानि च ॥१९॥  
क्षेत्राणि धर्मस्थानानि महापुण्यप्रदानि च ।  
तानि मे मुनिशार्दूलं वेद वेदप्रमाणतः ॥२०॥  
सर्वशास्त्रपुराणेभ्यः प्रमितानि भवादृशैः ।  
संचीय तानि सर्वाणि प्रदर्शय महामुने ॥२१॥  
तीर्थयात्रां विधानेन करिष्याम्यहमादृतः ।  
रामचन्द्रस्य वीर्येण संचिताः परमाः<sup>१</sup> श्रियः ॥२२॥  
आनीयमानाः कोशेषु अर्जयिष्यामि तत्फलम् ।  
धारणेन च देहस्य करिष्ये सुकृतोऽद्वावम् ॥२३॥  
भवादृशानां मुनिपुञ्जवानां मुखाच्छ्रुतं शास्त्रनिगृह्णतत्वम् ।  
यदर्जनीयं सुकृतं जनेन श्रीभिः पुमर्थेन सुसंचिताभिः ॥२४॥  
पुण्येन पापेन च संभवोऽस्य देहस्य तेनानिशमर्जनीयम् ।  
निरन्तरं सुकृतं येन न स्यात् पुनर्मातुः कुक्षिमध्ये निवासः ॥२५॥  
दिने दिने क्षीयमाणस्य चास्य किमायुषः फलमेतेन लब्धम् ।  
यन्नष्टजन्मोदरमात्रभूत्यानिमर्णः स्याद्विषयसुखेषु जन्तुः ॥२६॥  
पापोऽद्वावस्य मलमात्रभूतोऽत्यनिष्टभूतस्य देहकृतकस्य<sup>२</sup> कृते क आर्थः<sup>३</sup> ।  
पापैकहेतुमुदरंभरिसेव्यमानं भोगं करोति विषयस्य घृणैकपात्रम् ॥२७॥

१. परम<sup>०</sup>—रीवाँ । २. देहस्य—अयो० । “कृतकं—कृत्रिमः” टि०—मथु०—बडो० । ३. ‘आर्थः विवेकी०’ टि०—मथु०, बडो० ।

तदहं वै पुरोधाय मुनिवर्यान् भवादृशान् ।  
 अटिष्ठामि सुपुण्यानि तीर्थानि भुवि भूरिशः ॥२८॥  
 तानि मे गणयाशु त्वमुद्देशेन महामुने ।  
 आवश्यकानि यात्रायां विहितानि विशेषतः ॥२९॥  
 येषु स्नानेन दानेन यात्रया च विधानतः ।  
 नरो मुच्येत पापेभ्यस्तानि मह्यं विनिर्दिश ॥३०॥  
 श्रुत्वा राज्ञिवचनं प्राजापत्यो मुनोश्वरः ।  
 उवाच यात्राविषये तीर्थान्यावश्यकानि सः ॥३१॥

## वशिष्ठ उवाच

शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि तीर्थानां विधिमुत्तमम् ।  
 येनाशु कृतमात्रेण चित्तशुद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥३२॥  
 अदौ तवैव भविकावलिदायिनीयं दिव्या पुरी परममञ्जलभूरयोध्या ।  
 आस्ते<sup>१</sup> परा सकलकलमषनाशितोया पुण्या विभाति सरयूः सरितां वरिष्ठा ३३  
 सर्वेषामेव तीर्थानां गङ्गा कोटिगुणा फलैः ।  
 गङ्गा कोटिगुणा नित्यं सरयूर्विश्वपावनी ॥३४॥  
 सरयूः कोटिगुणितफलायोध्यापुरी तले ।  
 ततः कोटिगुणं पुण्यं स्वर्गद्वारे विशेषतः ॥३५॥  
 पुरा यत्र स्वयं विष्णुर्भगवान् विश्वमञ्जलः ।  
 विधाय विविधं कर्म भूभारहरणोद्यतः ॥३६॥  
 गतो वैकुण्ठसदनं तदेतत् स्थानमुत्तमम् ।  
 सरयूतीर्थराशिभ्योऽप्यधिकं विश्वपावनम् ॥३७॥  
 इदानीं चापि भगवांस्त्वत्कुले जनितो हरिः ।  
 विश्वमञ्जलरूपोऽसौ रामः परमसुन्दरः ॥३८॥  
 अत्रैव नेष्यते सर्वान् साकेतपुरमानवान् ।  
 पशुकीटपतञ्जाद्यान् स्वीयं प्रमुद॑मालयम् ॥३९॥  
 तेनेदमुत्तमं स्थानं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ।  
 अत्र स्नानेन दानेन नरो मुच्येत पातकैः ॥४०॥

१. यस्यास्ते सकल०—मथु०, बडो० । २. प्रमोदमा०—मथु०, बडो० ।

अत्र दद्यात् पितृभ्योऽपि श्राद्धमञ्जलिसंपुटम्<sup>१</sup> ।  
 गथाश्राद्धेन यत्पुण्यं तत्पुण्यं लभते नरः ॥४१॥  
 यं यं कामयते कामं तं तमाप्नोति नित्यशः ।  
 नानेन सदृशं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥४२॥  
 अयोध्यायां सप्तहरितीर्थान्याहुर्मनीषिणः ।  
 पूर्वं धर्महरिः प्रोक्तो धर्मो यत्र प्रतिष्ठितः ॥४३॥  
 चतुष्पादञ्जसहितो यथा सत्ययुगे सदा ।  
 कलिधर्मप्रवेशेन संततं नोपहन्यते<sup>२</sup> ॥४४॥  
 ततो गुप्तहरिः प्रोक्तो गुप्तो यत्र हरिः स्वयम् ।  
 अशेषशुभदो नृणां स्नानदानादिकारिणाम् ॥४५॥  
 ततो भरतपूर्वश्च हरियन्त्रातिपावने ।  
 भरतो नाम राजा वः पूर्वजः सिद्धिमाप्तवान् ॥४६॥  
 भरतस्य यशः पुण्यं त्रैलोक्यस्यातिपावनम् ।  
 आख्यातं मुनिवर्येस्तु विष्णोरिव महात्मनः ॥४७॥  
 अयं च भरतो नाम तव पुत्रस्तृतीयकः ।  
 तस्यापि नाम्ना भुवने ख्यातमेतद्भविष्यति ॥४८॥  
 अयं हि भगवान् साक्षात् यथा रामस्तथा गुणैः ।  
 कल्याणकर्मा भवने धर्मसेतुरुदीरितः ॥४९॥  
 ततो विष्णुहरिः प्रोक्तो विष्णुर्यन्त्रस्वयं स्थितः ।  
 समस्त दुःखहरणे भूतानामनुकम्पया ॥५०॥  
 विष्णुशर्मा द्विजः केशिचदत्र दिव्येन कर्मणा ।  
 साक्षाललक्ष्मीपतेरुच्चैः हरेः सायुज्यमाप्तुवान् ॥५१॥  
 अथ बिल्वहरिः प्रोक्तो यत्र बिल्वफलाशनाः ।  
 मुनयो दीर्घतपसः परमां सिद्धिमाप्नुवत् ॥५२॥  
 तीर्थानामुत्तमं तीर्थमेतन्नाम्ना निगद्यते ।  
 स्नानदानविधानाद्यैः सर्वपापविनाशनम् ॥५३॥

१. °संयुतम्—मथु०, बड़०० । २. नोपहन्यते—मथु०, बड़०० ।

ततश्चन्द्रहरिः प्रोक्तो महापातकनाशनः ।  
 यत्र संस्नानमात्रेण चन्द्रलोके महीयते ॥५४॥  
 ततश्चक्रहरिनामि तीर्थराजः सनातनः ।  
 चक्रं सुदर्शनं यत्र महापातकतारणम् ।  
 यत्रास्थ पतितं नणां षण्मासाच्चक्रतां व्रजेत् ॥५५॥  
 एतेषु तीर्थवर्येषु स्नानदानादिमात्रतः ।  
 नरः शुभमवाप्नोति सद्यः प्रत्ययमेवच ॥५६॥  
 ब्रह्मकुण्डे नरःस्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
 काशी कोटिगुणं पुण्यं यत्रोत्तरवहा सरित् ॥५७॥  
 तत्र स्नानेन दानेन नरः कैवल्यमाप्नुयात् ।  
 ब्रह्मकुण्डजलस्पर्शात्कोलश्वानखरादयः ॥५८॥  
 काककञ्च्छपतञ्जाद्या अपि प्रापैकयोनयः ।  
 पशवः पक्षिणश्चापि नरा व्याघ्रादिजन्तवः ॥५९॥  
 ब्रह्महत्यादिपापौघैर्दूषिता अपि मानवाः ।  
 पापीयसीं तनुं त्यक्त्वा यान्ति नाम तथात्मताम् ॥६०॥  
 शङ्खचक्रगदापद्मचतुर्भुजविराजिताः ।  
 विमानवरमारुह्या यान्ति श्रीराममन्दिरम् ॥६१॥  
 अस्ति वै मगधे<sup>१</sup> देशे पुरं राजपुराभिधम् ।  
 तत्र कश्चिद् द्विजोऽधीत्य गुरोर्वेदमशेषतः ॥६२॥  
 तन्निन्दाचरणाज्जातो ब्राह्मणो ब्रह्मराक्षसः ।  
 पुरस्थमनुजान् नित्यमाविश्य कुरुतेऽसुखम् ॥६३॥  
 यमाविशति तस्थान्तं कुरुते ब्रह्मराक्षसः ।  
 बहवो नाशितास्तेन नरा नार्यश्च रक्षसा ॥६४॥  
 एवं प्रेतालयं जातं नगरं सर्वमेव तत् ।  
 विख्यातो राक्षसस्तत्र वसतीति श्रुतिर्जने ॥६५॥  
 कदाच्चिद् ब्राह्मणः कश्चिदागतस्तत्र पण्डितः ।  
 शास्त्रेण वाच्यमानेन श्रुतं तस्य मुखाज्जनैः ॥६६॥

१. मगध—मथुरा, बड़ो।

ब्रह्मकुण्डस्य माहात्म्यं सर्वपापविनाशनम् ।  
 ब्रह्मराक्षसवंशेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो निर्दर्शितम् ॥६७॥  
 तत्त्वात्मा तस्य वंशस्थाः पण्डितस्य द्विजन्मनः ।  
 अन्तिकं समनुप्राप्ताः प्रोचुरेतद्द्विजन्मने ॥६८॥  
  
 अस्माकं पूर्वजो विद्वान् गुरुनिन्दोऽद्वादधात् ।  
 ब्रह्मराक्षसतां ब्रह्मन् प्राप्तोऽद्यापीह तिष्ठति ॥६९॥  
 उद्वेजयति भूतानि समाविश्य भुनक्ति सः ।  
 यमाविशति तस्याशु निधनं खलु जायते ॥७०॥  
  
 कलङ्किता वयं सर्वे तेनैव ब्रह्मराक्षसा ।  
 कथं नु मुच्यते ब्रह्मन् पातकात् सोऽतिदारुणात् ॥७१॥  
 कृतानि भूरितीर्थानि गयाश्राद्धं तथा कृतम् ।  
 न मुच्यतेऽसौ पापीयान् ब्रह्मराक्षसयोनितः ॥७२॥  
 प्रेतालयं कृतं तेन नगरं सर्वमेव तु ।  
 इति श्रुत्वा द्विजो वाक्यं ब्राह्मणानिदमब्रवीत् ॥७३॥  
  
 अस्त्ययोध्यापुराभ्यासे ब्रह्मकुण्डमिति श्रुतम् ।  
 तीर्थानामुत्तमं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥७४॥  
 तत्र गच्छत भो विप्रा भवनास्तस्य वंशजाः ।  
 तीर्थोदकैस्तर्पयित्वा श्राद्धं दत्त त्रिपिण्डकम् ॥७५॥  
 एकोद्दिष्टं तु प्रथमं विधाय विधिवद् द्विजाः ।  
 तेन पुण्यप्रभावेण प्रेतयोर्नेर्विमोक्ष्यते ॥७६॥  
  
 शीघ्रं कुरुत तत्कार्यं भवतां धर्मं एव सः ।  
 किं तैः पुत्रादिभिर्जर्तैः यैः स्ववंश्या न स्मोचिताः ॥७७॥  
 द्विजोदीरितमाकर्ण्य ते तु चक्रुस्तथैव तत् ।  
 तथैव गुरुनिन्दोत्थपातकान्मुक्तिमीयिवान् ॥७८॥  
 सर्वैः प्रेतकुलैः साद्धं विमुक्तो भवत्तनात् ।  
 जलाऽजलिप्रदानेन ब्रह्मकुण्डस्य पावितः ॥७९॥

वैकुण्ठभवनं प्राप्तो विमुच्य ब्रह्मरक्षताम् ।  
 १०१। इति तद्विश्रुतं तीर्थं त्रैलोक्ये समभूतराम्<sup>१</sup> ॥८०॥  
 तद्वारभ्य ब्रह्मकुण्डं सर्वोद्घारि<sup>२</sup> विराजते ।  
 १०२। गयाकोटिगुणं पुण्यं ब्रह्मकुण्डोऽत्र संभृतम्<sup>३</sup> ॥८१॥  
 किंवा तैर्बहुभिस्तीर्थेरेकमेव निषेव्यताम् ।  
 ब्रह्मकुण्डाभिधं तीर्थं महापापौघनाशनम् ॥८२॥  
 सूर्यकुण्डस्य माहात्म्यं किं वक्तव्यं जनाधिप ।  
 कुष्ठतोऽपि विमुच्यन्ते गलत्कुष्ठादिरोगतः ॥८३॥  
 सूर्यवारे नरः स्नात्वा सर्वपापैर्विमुच्यते ।  
 पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥८४॥  
 कामार्थी लभते काम्यं यद्यन्मनसि वर्तते ।  
 उपरागे व्यतीपाते स्नानदानादिकं त्विह ॥८५॥  
 अक्षयफलतां याति नात्र कार्या विचारणा ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः कुलकोटि समुद्धरेत् ॥८६॥  
 एतदर्शनमात्रेण नरो मुच्येत पातकात् ।  
 सूर्योऽभिषेचितः सर्वदेवैरत्र पुरा नृपः ॥८७॥  
 ग्रहनक्षत्रताराणामधिराज्यमवाप सः ।  
 अक्षय्यं निहितं चात्र पुण्यं द्वादशमूर्तिना ॥८८॥  
 हृत्यामोचनमत्रैव तीर्थमुत्तमस्ति वै ।  
 ऋणहृत्या ब्रह्महृत्या भ्रूणहृत्यादिमोचनम् ॥८९॥  
 पिशाचमोचनं नाम तीर्थमत्रैव वर्तते ।  
 तस्य माहात्म्यमतुलं किमाख्येयं मया नृप ॥९०॥  
 गाधिसूनुर्महोपालो विश्वामित्रो महातपाः ।  
 ब्रह्मषितां परिप्राप्तुं महान्तं यत्नमाच्चरत् ॥९१॥  
 क्षात्रदेहं तत्क्षासौ टङ्कैः खलु तपोमयैः ।  
 तपसात्यूजितबलो नवोनकरणोद्यतः ॥९२॥

१. °भूद्वरम्—मथु०, बडो० । २. सर्वोपरि—मथु०, बडो० । ३. ब्रह्मकुण्डोत्थ-  
संभृतम्—अयो०, शीर्वाँ० ।

राजषितां गतोऽप्येष स्पृहयामास भूतले ।  
 व्रह्मिषिपदकामेन तपस्तेषे सुदुश्चरम् ॥९३॥  
 नवीनसृष्टिसामर्थ्यं दृष्ट्वा ब्रह्मा भयं गतः ।  
 तमस्तौषीन्महाराज चतुर्भिर्वदनैविधिः ॥९४॥  
 स विधिं प्रार्थयामास ब्रह्मिः स्यामहं विधे ।  
 सुदुःसाध्यप्रसादाय तस्मै विधिरुचाच ह ॥९५॥

### ब्रह्मोवाच

अस्त्ययोध्या पुराभ्यासे तीर्थं मन्नामविश्रुतम् ।  
 तत्र गत्वा भवान् भक्त्या यज[न्]रामं सदा मखैः ॥९६॥  
 ब्रह्मकुण्डप्रभावेण ब्रह्मवर्चसमाप्स्यसि [ति] ।  
 ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महातपाः ॥९७॥  
 ब्रह्मकुण्डतटे राममयष्ट विधिवन्मखैः ।  
 पत्नीयाजैस्ततश्चेष्ट्वा विधिवन्मुनिसत्तमः ॥९८॥  
 यज्ञाश्वभूथमारेभे भूयसा चोत्सवेन सः ।  
 बभूवुः संगतास्तत्र मुनयो दीर्घदर्शनाः ॥९९॥  
 यज्ञवल्क्यो महायोगी शुक्रो व्यासः पराशरः ।  
 भृगुरत्रिर्भरद्वाजो दुर्वासा पुलहोऽङ्गिराः ॥१००॥  
 ब्रह्मिषिप्रवराः सर्वे देवर्षिप्रवरास्तथा ।  
 नारदाद्या मुनिश्रेष्ठा राजषिप्रवरास्तथा ॥१०१॥  
 तस्मिन्नवभृथे राजन्' संगताः सर्वं एव ते ।  
 विधिवत् स्नापयामासुब्रह्मणाः कर्मकोविदाः ॥१०२॥  
 ब्रह्मवर्चसंकामं ते यजमानं महान्रतम् ।  
 बभूवावभूथस्यान्ते व्योमवाक् तस्य कामदा ॥१०३॥  
 शृण्वतामेव सर्वेषामृषीणां दीर्घदर्शनाम् ।  
 ब्रह्मिषिरसि संवृत्तस्त्वमिदानीं महातपाः ॥१०४॥  
 विश्वामित्र मुनीशान ऋषयोऽपि ब्रुवन्तु वै ।  
 ततः सर्वे ऋषिवराः तथैवोचुः सुविस्मताः ॥१०५॥

१. स्नातुं—अयो०, रीवॅँ ।

ब्रह्मकुण्डप्रभावेण त्वमिदानीं महाव्रत ।  
 तपोनिधेमहातेजा ब्रह्मांशिरसि सर्वदा ॥१०६॥  
 इतिप्रोक्तः प्रभावस्ते ब्रह्मकुण्डस्य भूरिशः ।  
 अयोध्यायां रामपुर्या यत्रोत्तरवहा सरित् ॥१०८॥  
 उपरागादिषु सदा तत्र स्नानाद्विधानतः ।  
 लभते सुमहत्पुण्यं कुरुक्षेत्रशताधिकम् ॥१०८॥  
 ऊषरः<sup>१</sup> पुण्यपापानामयोध्यायामिदं त्रयम् ।  
 स्वर्गद्वारं ब्रह्मकुण्डं गुपगङ्गा च भूपते ॥१०९॥  
 तीर्थानि सुबहून्यत्र कोटितीर्थसमान्यपि ।  
 तीर्थत्रयमिदं पुण्यं सर्वेभ्योऽपि विशिष्यते ॥११०॥  
 दिवि भूमितले वापि स्थानत्रयमिदं नृप ।  
 दुर्लभं सर्वदा नृणां यथैतद् गदितं मम ॥१११॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थ-  
 यात्रायामेकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥



### द्वयाधिकशततमोऽध्यायः

यज्ञवल्कयोऽपि भगवांस्तपस्तेषे महातपाः ।  
 यस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं बहुधा सकलोत्तरम् ॥ १ ॥  
 आदित्यात् समुपश्रुत्य सूक्तानि च यजूंषि सः ।  
 यत्र संपाठयामास सशिष्यो बहुविस्तरम् ॥ २ ॥  
 ईजे च भगवान् नित्यं सौमैः संप्रतिवत्सरम् ।  
 तत्र तस्य तपस्थाने योगस्थाने सुसात्विके ॥ ३ ॥  
 यः स्नाति मनुजो गत्वा तस्य पुण्यं वदामि किम् ।  
 वाजपेयादिकोटीनां फलमाप्नोति तत्क्षणात् ॥ ४ ॥

१. आकरः—रीवाँ ।

वामदेवस्तथा दिव्यं तपश्चक्रे सुदुस्तरम् ।  
 तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ ५ ॥  
 सोमयागशतं कृत्वा यत्फलं लभते नरः ।  
 तत्फलं समवाप्नोति तत्रसंस्नानमात्रतः ॥ ६ ॥  
 अहं वापि तपश्चर्या विधाय विपुलां नृप ।  
 यत्रासादितवान् सिर्द्धिं तत्क्षेत्रं केन सेवितम् ॥ ७ ॥  
 वैवस्वतो नाम मनुर्भवतां कुलवर्तकः ।  
 स च तत्रैव विपुले तपस्तेषे मया सह ॥ ८ ॥  
 तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं किं वदामि महीपते ।  
 स्नानाद्दानानात् पिण्डदानाज्जपाद् ब्राह्मणभोजनात् ॥ ९ ॥  
 विपुलं पुण्यमाप्नोति तत्क्षणादेव मानवः ।  
 मनुना विपुलं पुण्यं तत्र संस्थापितं नृप ॥ १० ॥  
 अङ्गिराश्चैव भगवान् यत्रेजे बहुदक्षिणैः ।  
 यज्ञैः साक्षाद्विधिर्यत्र ब्रह्मासीद्विश्वसृड् विभुः ॥ ११ ॥  
 शक्रादयस्तथा देवास्तत्त्वकर्मणि संस्थिताः ।  
 इष्ट्वा च बहुभिर्यज्ञैश्चक्रुरवभूथोत्सवम् ॥ १२ ॥  
 तत्पुण्यं सारवं क्षेत्रं तत्त्वाम्नैव प्रतिश्रुतम् ।  
 तत्र स्नानेन दानेन नरो याति परां गतिम् ॥ १३ ॥  
 ऋष्यशृङ्गश्च भगवान् यत्र त्वत्पुत्रहेतवे ।  
 इयाज भूरियज्ञेन तच्च क्षेत्रं महाफलम् ॥ १४ ॥  
 धनुस्तीर्थं तथा<sup>१</sup> दिव्यं यत्र रामेण शिक्षिता ।  
 धनुविद्या महाराज दैत्यदानवनाशिनी ॥ १५ ॥  
 तत्तीर्थं यत्प्रदानादिविधानैर्लोकपावनम् ।  
 विश्वामित्रेण मुनिना यत्र रामाय साधवे ॥ १६ ॥  
 शस्त्राण्यस्त्राणि च विभो शिक्षितानि महात्मनः ।  
 लक्ष्मणाय च शत्रुघ्ने [घन-] भरताय [भ्यां] च भूपते ॥ १७ ॥

मखस्थाने<sup>१</sup> नरः स्नात्वा सर्वपापं व्यपोहुति ।  
 अश्वमेधादि यागानां लभेद्पुण्यं दिनेदिने ॥१८॥  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि वनानां वनमुत्तमम् ।  
 अयोध्यापरितो राजन् चतुर्विंशतियोजनम् ॥१९॥  
 प्रमोदवनमित्युक्तं सरयूतटसन्निधौ ।  
 तस्यास्तरङ्गपवनैः पावितं सर्वतोदिशम् ॥२०॥  
 रामलीलाविहारस्य स्थानभूतं सनातनम् ।  
 रामवैकुण्ठमित्युक्तं कविभिः शास्त्रकोविदैः ॥२१॥  
 गावः संचारिता यत्र रामेण तव सूनुना ।  
 सुखितस्य गवेन्द्रस्य गोष्टुं यत्र प्रतिष्ठितम् ॥२२॥  
 तथा श्रीनन्दनस्यापि गोपालस्य महीपते ।  
 राजिनीवल्लभस्यापि स्थानमत्रैव राजते ॥२३॥  
 तन्मण्डलं महाराज साक्षाद्वैकुण्ठमुत्तमम् ।  
 पदे पदेऽश्वमेधादियज्ञकोटिफलप्रदम् ॥२४॥  
 व्रजाङ्गना यत्र रमेश्वरस्य गायन्ति पुण्यानि यशांसि शश्वत् ।  
 प्रकम्पितैरुत्पुलकैर्वपुर्भी रमन्त्य उच्चैः प्रणयप्रकर्षम् ॥२५॥

### राजोवाच

रामो राजकुले जातो वीर्यवान् वीरपुङ्गवः ।  
 कथं चारितवान् धेनूः सुखितस्य गवांपतेः ॥२६॥  
 एतन्मे संशयं छिन्धि तत्त्वज्ञोऽसि भवान् मुने ।  
 वणिजां कृत्यमेतद्वै क्षत्रस्य जनितं कथम् ॥२७॥

### वशिष्ठ उवाच

स्वतन्त्रेच्छस्य रामस्य किमेतद्यदनौचिती ।  
 तथापि कारणं तत्र वदामि तव भूपते ॥२८॥  
 आविर्भूतं परमपुरुषं त्वद्गृहे श्रीरमेशं  
 रामं सच्चित्सुखमयतनुं ब्रह्म पूर्णप्रकाशम् ।

१. तत्र स्थाने—रीवैँ ।

विज्ञायोच्चैः सहजसुखदाहृचापिवैकुण्ठधाम्नः  
 प्रादुर्भूता अमुमनुगता देववाचोऽपि तास्ताः ॥२९॥  
 कर्मज्ञानार्चनविधिपरा ऋग्यजुःसामसंस्था  
 नानाकारा<sup>१</sup>व्रजभुवि ऋचो धेनुरूपेण जाताः ।  
 भक्तेस्तत्त्वं समनुभवितुं सर्वशास्त्रोत्तमाया—  
 स्ता रामेण स्वयमविरतं पालितास्तत्र गोष्टे ॥३०॥  
 अतः परं वेदऋचः समस्ता भक्त्यैकतात्पर्यवतीः सतत्त्वाः<sup>२</sup> ।  
 जानीहि भूमीपतिसार्वभौम याधिप्रभोदाटवि संचरन्ति ॥३१॥  
 प्रभोदवनमेकान्ते भक्तिरूपं निशामय ।  
 तत्र प्रविष्टा गोरूपा ऋचो भक्तिमनुव्रताः ॥३२॥  
 गोपालाः सकलास्तत्र देवाश्च ऋषयोऽमलाः ।  
 तत्तच्छास्त्रा<sup>३</sup>चार्यपदं स्पृशन्तो भक्तिभाविताः ॥३३॥  
 काश्चिद् गुरोश्च वै धेनूर्विश्वामित्रस्य भूतले ।  
 रामः पालितवान् राजन् प्रभोदविपिनान्तरे ॥३४॥  
 कुन्दवने यथा रेमे श्रीरामः सीतया सह ।  
 श्रीनन्दनस्य सुतया तथा रामोऽत्र सुन्दरः ॥३५॥  
 एतद्रहस्यं चरितं सुपावनं रामस्य राजस्तव पुत्रतापदम् ।  
 प्राप्तस्य संप्रोक्तमतीव सुन्दरं मया त्वदग्रे हृदि तद्विधारय ॥३६॥  
 न वाच्यमिदमन्यस्मै जनाय जनतादृशे ।  
 अन्यद्वै देवचरितमन्यज्ञानं च लौकिकम् ॥३७॥  
 अविलष्टकर्मा भगवान् रघूतमस्तवात्मजो यः पुरुषः पुरातनः ।  
 न तस्य वीर्यं प्रविदन्ति तत्त्वतो ब्रह्मादयोऽन्यस्य जनस्य का कथा ॥३८॥  
 तवालये सर्वसमृद्धिसंयुते तिष्ठन्नेवायं प्रकाशान्तरेण ।  
 पूर्णस्वरूपो रममाण उच्चरधिप्रभोदाटवि संविभाति ॥३९॥  
 मैनं प्रभुं विद्धिनृप स्वमात्मजं मायागुणैः कल्पितभूरिभावम् ।  
 अयं हि साक्षात् पुरुषोत्तमोत्तमः श्रीसाकेते योऽनिशं संविभाति ॥४०॥  
 भक्त्या त्वमुष्य परमस्य प्ररस्य पुंसस्तीवं भवोद्भवमगाधमपारमेनम् ।  
 कलेशं तरन्ति भविकं च सदा लभन्ते ये स्युः पदाम्बुरुहमस्य परिप्रपन्नाः ॥४१॥

---

१. ज्ञानाकारा—रीबाँ । २. स्वतन्त्राः—रीबाँ । ३. तत्रस्था स्वा<sup>०</sup>—अयो० ।

एतत्ते कारणं प्रोक्तं रामगोचारणे नृप ।  
 अवधार्य हृदा नित्यं कृतार्थो भव संततम् ॥४२॥  
 तत्तादृक् पुण्यमाल्यातं सुन्दरं व्रजमण्डलम् ।  
 माङ्गल्यावल्लभो यत्र सुखितः संप्रतिष्ठितः ॥४३॥  
 शरदो द्वादशानेन रामेण विहृतं पुरा ।  
 यत्र सौभाग्यसंपन्ने साक्षाल्लक्ष्मीनिकेतने ॥४४॥  
 वनानि तत्र परितो विभान्ति सुबहून्यपि ।  
 तयोर्मध्ये द्वादशैव मुख्यानि रघुभूपते ॥४५॥  
 येषु श्रीरामचन्द्रस्य तव पुत्रस्य संततम् ।  
 पदाम्भोरुहचिह्नानि दृश्यन्ते भक्तिमज्जनैः ॥४६॥  
 नित्यं च कमला यत्र मूर्तिमत्यनुगायति ।  
 रामचन्द्रचरित्राणि व्रजदारान् प्रगायतः ॥४७॥  
 एकैकं चरितं तत्र रामस्य सुमहात्मनः ।  
 परमानन्दसदनं मुनीनामपि मोहनम् ॥४८॥  
 कुञ्जपुञ्जमनोज्ञास्ताः सुपुण्यव्रजभूमयः ।  
 क्षणे दृष्ट्वा अपि नृणां हरन्ति त्रिजनुःशुचम् ॥४९॥  
 सरयूजलकल्लोलसमीरणसुशीतले ।  
 व्रजदेशोऽधिवसितुं को नेच्छेत वपुर्धरः ॥५०॥  
 तत्र पुण्यानि तीर्थानि काशीकोटिसमानि वै ।  
 तानि कृत्वा जनो मुञ्चेदन्यतीर्थैर्घवासनाः ॥५१॥  
 प्रथमं मञ्जुलवनं वनानामुक्तमं वनम् ।  
 यत्र मञ्जुलवीथीषु विपुलं विमलं सरः ॥५२॥  
 यत्रश्रीः सततं भाति क्रीडन्ती परया मुदा ।  
 नित्यं निनादितं नादैस्तस्याश्चरणपूरयोः ॥५३॥  
 तत्र स्नानेन दानेन वैष्णवानां च भोजनैः ।  
 सीतारामचन्द्रौ देवौ प्रीयेते नात्र<sup>१</sup> संशयः ॥५४॥

कामिकावनमुद्दिष्टं द्वितीयं सर्वकामदम् ।  
 यत्र लक्ष्मीकटाक्षेण हरदग्धो मनोभवः ॥५५॥  
 पुनरङ्गं परिप्राप्य त्रिजगज्जेतुमुद्यतः ।  
 तत्र स्वर्णमयीं दत्त्वा प्रतिमां कामदैवताम् ॥५६॥  
 पुनः स्नात्वा विधानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।  
 कुर्याच्चैव तिलाज्याभ्यां होमं श्रीरामतुष्ट्ये ॥५७॥  
 भोजयेद् ब्राह्मणान् भूरि तस्य पुण्यं न गण्यते ।  
 तृतीयं तु प्रेमवनं यत्र श्रीक्रजयोषिताम् ।  
 रामचन्द्रमुखं दृष्ट्वा प्रेमाविर्भावं आगतः ॥५८॥  
 तत्र स्नानादिना लोको हरेः प्रेमाणमाप्नुयात् ।  
 येनांप्नेनानवाप्नव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ॥५९॥  
 तुर्यं रसालविपिनं महारसनिकेतनम् ।  
 रसैर्भौजयते विप्रान् यस्तत्र हरितुष्ट्ये ॥६०॥  
 तस्य पुण्यस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ।  
 यत्र गोचारणे रामः क्षुधितान् गोपबालकान् ॥६१॥  
 रसालफलसंदोहैर्योगमायाविनिर्मितैः ।  
 कृतवान् भूयसीं तृप्तिं कल्याणगुणभूषणः ॥६२॥  
 पुण्यं पवित्रमतुलं महापातकनाशनम् ।  
 वनानामुक्तमं स्थानं भक्तानां तद्रसावहम् ॥६३॥  
 पञ्चमं मन्दारवनं मन्दारद्रुमसंकुलम् ।  
 देवदेवीगणाकीर्णं नित्योत्सवनिकेतनम् ॥६४॥  
 स्नानदानविधानेन संततं पापनाशनम् ।  
 तत्रस्थपवनस्पर्शात् पूतो भवति मानवः ॥६५॥  
 पारिजातवनं षष्ठं सर्वर्तुसुखसंयुतम् ।  
 तत्र गत्वा नरो नित्यं स्नानंदानादि यश्चरेत् ॥६६॥  
 तस्य पुण्यमनन्तं हि मेरुणापि न तत्समम् ।  
 तुलाकोटिस्वर्णभारैर्न तत् संभावितं भुवि ॥६७॥

१. यत्रा°—अयो०, रीव० । २. सान्न°—रीव० ।

सप्तमं कन्दलवनं प्रेमानन्दैककन्दलम् ।  
 गीयते यत्र सुन्दर्या दानलीला मनोहरा ॥६३॥  
 तत्र गत्वा नरः स्नायात् स्थले वापि जलेऽस्मले ।  
 वैदिकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दधिभाण्डानि दापयेत् ॥६९॥  
 तुलाकोटिसमं पुण्यं जायते नात्र संशयः ।  
 स्वर्णादिषात्रमध्ये तु गवां दधि सुधोज्जवलम् ॥७०॥  
 सदक्षिणं प्रदातव्यं श्रीरामचन्द्रतुष्टये ।  
 तस्य पुण्यस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥७१॥  
 अष्टमं संमदवनं मनःसंमदवर्धनम् ।  
 गीयते यत्र सुन्दर्या मानलीलामहोत्सवः ॥७२॥  
 तत्र ब्राह्मणवर्येभ्यः पटभूषणभोजनैः ।  
 मानयित्वा विशेषेण महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥७३॥  
 नवमं केशरवनं नागकेशरभूषितम् ।  
 यत्र स्नात्वा नरः सद्यो गङ्गास्नानसहस्रजम् ॥७४॥  
 महत्पुण्यमवाप्नोति तथा ब्राह्मणभोजनात् ।  
 अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥७५॥  
 दशमं माणिक्यवनं नवमाणिक्यमज्जुलम् ।  
 सदापल्लवितं भाति रामकेलिनिकेतनम् ॥७६॥  
 यत्र माणिक्यनिवैर्भान्ति मज्जरिता द्रुमाः ।  
 अनेकवर्णकिरणैविचित्रितनभस्थला ॥७७॥  
 तत्र माणिक्यदानेन नरः सौभाग्यमाप्नुयात् ।  
 सुवर्णकलशोमध्ये दधिदुधादिपूरिते ॥७८॥  
 पञ्चरत्नं निधायाथ दद्याद् ब्राह्मणसत्तमे ।  
 तत्पुण्यमतुलं येन स्वर्गे लोके महीयते ॥७९॥  
 एकादशं पद्मवनं श्रिय एकान्तमन्दिरम् ।  
 शेते सीतापतिर्यत्र महालक्ष्मीनिषेवितः ॥८०॥  
 भोजयेत् सुबहून् विप्रान् तत्र शर्करपायसैः ।  
 दीर्घसत्रान् मखान् कृत्वा यत्पुण्यं लभते नरः ॥८१॥

तत्पुण्यं समवाप्नोति तत्क्षणान्नात्र संशयः ।  
 एकादश्यां व्रतं कृत्वा द्वादश्यां भोजयेद् द्विजान् ॥८२॥  
 पुण्यं सहस्रगुणितं ततोऽपि समवाप्यते ।  
 श्रीसीतारामचन्द्रौ च तुष्येतां तेन कर्मणा ॥८३॥  
 द्वादशं सौरभवनं सदा सुरभिसेवितम् ।  
 तत्र पुण्यसरो नाम सरसामुत्तमं सरः ॥८४॥  
 तत्र स्नानेन दानेन नरो मुच्येत किल्विषात् ।  
 पूजयेद् विविधैः पुष्पैः सीतारामौ परात्परौ<sup>१</sup> ॥८५॥  
 कोटियज्ञफलं तेन तत्क्षणाल्लभते नरः ।  
वनानि द्वादशैतानि पुण्यानि मधुराणि च ॥८६॥  
स्नानदानादिविधिभिः सर्वकामप्रदानि च ।  
 तावन्त्युपवनान्यत्र कीर्तितानि मनोषिभिः ॥८७॥  
 येषु स्नानादिविधिभिः कोटियज्ञफलं भवेत् ।  
 दद्याच्छाद्वानि विधिवत् पितृभ्यस्तत्र तत्र वै ॥८८॥  
 गयाश्राद्वसमं पुण्यं तेनाप्नोति पदे पदे ।  
 माधुरीकुञ्जमाद्यं स्यान्मल्लीकुञ्जं द्वितीयकम् ॥८९॥  
 तृतीयं मालतीकुञ्जं यूथोकुञ्जं तुरीयकम् ।  
 पञ्चमं लवलीकुञ्जं कालीकुञ्जं च षष्ठकम् ॥९०॥  
 सप्तमं लवंगीकुञ्जं केतकीकुञ्जमष्टमम् ।  
 नवमं मालिकाकुञ्जं रत्नकुञ्जं ततः परम् ॥९१॥  
 एकादशं केकि<sup>२</sup>कुञ्जं द्वादशं कैलिकुञ्जकम् ।  
 एतेषु गमनादेव कोटिसोमफलं लभेत् ॥९२॥  
स्नानाद्वानात्थाध्यानाद् रामसायुज्यमाप्नुयात् ।  
 सरयूपरितः सर्वा राजते शुद्धभूमयः ॥९३॥  
 तेषु वैकुण्ठरूपेण विष्णुर्वसति सर्वदा ।  
 शुद्धभक्त्या समाराध्य तत्र साक्षाद्रमापत्तिम् ॥९४॥

१. सीतारामचन्द्रविह—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. कैलि०—अयो०, मथु०, बड़ो० ।

भुडवत्वेह विपुलान् भोगानन्ते कैवल्यभाग् भवेत् ।  
 १०१ अयोध्यापरितो देशे पशुपक्ष्यन्त्यजा<sup>१</sup> अपि ॥१५॥  
 सर्वे चतुर्भुजा ज्ञेया इत्याज्ञा वैदिकी परा ।  
 १०२ नन्दिग्रामः सदा भाति साक्षान्नित्यं हरेः पदम् ॥१६॥  
 सुखिताख्येन गोपेन नित्यमेव समर्चितम्<sup>२</sup> ।  
 १०३ पालीग्रामः सदाभाति कोटितीर्थसमाश्रयः ॥१७॥  
 श्रीनन्दनो गोपराजो यत्र नित्यं प्रतिष्ठितः ।  
 १०४ आभीराणां च गोष्ठानि विभान्ति परितस्तयोः ॥१८॥  
 यत्रत्या<sup>३</sup> मनुजाः सर्वे देवरूपा न संशयः ।  
 १०५ मध्ये मञ्जुवटो नाम बहुपादविराजितः ॥१९॥  
 १०६ नीलकण्ठः स वै साक्षात्तस्य छाया मनोहरा ।  
 १०७ निषण्णास्तासु गोपाल्यो गायन्ति श्रीहरेर्यशः ॥१००॥  
 १०८ तद्गाननादमुदिताः कृष्णसाराः समंततः ।  
 १०९ तथैव सोमसवनो रामरासवटः शुभः ॥१०१॥  
 ११० देवैः संप्रार्थितो रामो यत्र नाट्यमचोकरत् ।  
 १११ तथा रामवटो नाम स्त्रिगद्यच्छायामनोरमः ॥१०२॥  
 ११२ सीतावटश्च सततं प्रोद्धाति रुचिरोच्छ्रूयः ।  
 ११३ तथास्थाणुवटो नित्यं विभाति नवपल्लवैः ॥१०३॥  
 ११४ एते पञ्चवटा पुण्याः साक्षात् कल्पद्रुमाधिकाः ।  
 ११५ तेषां छायामुपाश्रित्य भवतापो निवर्तते ॥१०४॥  
 ११६ तत्र संपूजयेद् देवं राघवं सीतया सह ।  
 ११७ भोजयेद् वहुशो विप्रान् सिताज्यबहुपायसैः ॥१०५॥  
 ११८ यथोदितेन विधिना दद्याद् गाश्च पयस्विनीः ।  
 ११९ लभते मानवः पुण्यं मेरुशैलशताधिकम् ॥१०६॥  
 १२० राजते तत्र रत्नाद्रिः साक्षाद्रत्नमयो गिरिः ।  
 १२१ यस्य छायां समाश्रित्य सरयू शीतलोदका ॥१०७॥

१. पक्षंतिजा—अयो०, मथु०, बड़० । २. समन्वितम्—मथु०, बड़० ।  
 ३. तत्रत्या—मथु०, बड़० ।

तथा सौगन्धिको नाम गिरिराजः प्रतिष्ठितः ।  
 तयोविधाय मनुजः प्रादक्षिण्यं विशेषतः ॥१०८॥  
 पृथ्वीप्रदक्षिणापुण्यं लभते नात्र संशयः ।  
 एकादश्यां वा द्वादश्यामसायां पूर्णिमादिने ॥१०९॥  
 रत्नाचलं परिक्रम्य पृथ्वीदानफलं लभेत् ।  
 रत्नार्द्धं संपरिक्रम्य स्नात्वा श्रीरामकुण्डके ॥११०॥  
 सरयुं वावगाह्याथ पुनर्जन्म न विद्यते ।  
 सौगन्धिकं महाशैलं रामकेलीनिकेतनम् ॥  
 संपूज्य लक्ष्मोरमणं जीवनमुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥१११॥  
 गत्वा द्वादश काननेषु परितः प्रेषणा परिक्रामयन्  
 स्नात्वा वार्षिकवासरेषु सलिलैः पूर्णे स्थले वा जले ।  
 ध्यात्वा गोपवधूविहाररसिकं रामाभिधानं महः  
 प्राप्नोति द्रुतमश्वमेधनिवैर्यत्पुण्यमुच्चर्जनः ॥११२॥  
 तमसामवगाह्याथ वनमालाविभूषिताम् ।  
 मुनीनां यज्ञवाटांश्च दृष्ट्वा पुण्यनिधिर्भवेत् ॥११३॥  
 अयोध्यायामादिलिङ्गं गौरीकान्तं महेश्वरम् ।  
 अन्यानि चैव लिङ्गानि परितः सन्ति यानि वै ॥११४॥  
 तानि स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च तीर्थयात्राफलं लभेत् ।  
 तथा चण्डों भगवतों संपूज्य विधिवज्ञरः ॥११५॥  
 स्नात्वा लक्ष्मणकुण्डे च कुण्डे मन्नामनिमिते ।  
 स्नात्वा दत्त्वा च दानानि तीर्थयात्राफलं लभेत् ॥११६॥  
 रामघट्टे नरः स्नात्वा स्वर्गद्वारेण मानवः ।  
 श्राद्धं दत्त्वा पितृप्रीत्यै सर्वं फलमवाप्नुयात् ॥११७॥  
 हनुमन्तं च सुग्रीवं लक्ष्मणं च विभीषणम् ।  
 अयोध्याकोटपालांश्च प्रातरुत्थाय यः स्मरेत् ॥११८॥  
 कल्याणं समवाप्नोति दुःस्वप्नादांश्च नाशयेत् ।  
 एवं यो वर्तयेन्नित्यमाजन्म सुकृती भवेत् ॥११९॥

पुरीणामथ सप्तानामयोध्या मूर्द्धगा भणिः ।  
यस्याः स्मरणमात्रेण ब्रह्महत्यादि नाशयेत् ॥१२०॥

इतिश्रीमद्विरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे<sup>१</sup> दशरथतीर्थयात्रायां  
द्व्याधिक<sup>२</sup>शततमोऽध्यायः ॥१०२॥



### त्र्याधिकशततमोऽध्यायः

#### वशिष्ठ उवाच

नैमिषारण्यमध्ये च तीर्थानि शृणु भूपते ।  
येषु स्नानेन दानेन मानुष्यं पुण्यभागभवेत् ॥ १ ॥  
शौनकस्याश्रमे दिव्ये गोमतीपुलिने नृप ।  
यत्र सूतो मुनीन्द्रेभ्यो<sup>३</sup> निजगाद विशेषतः ॥ २ ॥  
इतिहासपुराणानि विविधाश्चैव सत्कथाः ।  
ब्रह्मतीर्थे विष्णुतीर्थे रुद्रतीर्थे च भूपते ॥ ३ ॥  
स्नानं कृत्वा द्विजातिभ्यो देयानि द्रविणानि च ।  
सारस्वते महातीर्थे स्नातव्यं च विशेषतः ॥ ४ ॥  
अन्यानि चैव तीर्थानि तत्र<sup>४</sup>सन्ति सहस्रशः ।  
बलदेवस्य यात्रायां यानि पुण्यानि सत्पते<sup>५</sup> ॥ ५ ॥  
यज्ञानां विघ्नकर्तारो राक्षसा यत्र नाशिताः ।  
बलदेवेन वीरेण पुरा मुशलधारिणा ॥ ६ ॥  
तवात्मजेन रामेण यत्र पुण्यं यशः कृतम् ।  
मुनीनां तपसो विघ्ना दानवा नाशितास्तथा ॥ ७ ॥  
चिरं तत्र मुनिस्तोमा उषिता<sup>६</sup>जितचेतसः ।  
तेषामाश्रमवर्येषु गन्तव्यं च विशेषतः ॥ ८ ॥

१. अयोध्यामहात्म्ये इत्याधिकं—अयो० । “पूर्वखण्डे” नास्ति—मथु०,  
बडो० । २. त्रिं—अयो० । ३. पूतो मुनीन्द्रो यो—अयो० । ४. यत्र—अयो० ।  
५. सत्पते:—मथु०, बडो० । ६. उचिता—अयो०, रीवाँ० ।

गोमत्यां च नरो वारिष्याप्लुत्य गतपातकः ।  
 विष्णुं ध्यायेत मनसा सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥९॥  
 किं तेन न कृतं पुण्यं मानवेन महात्मना ।  
 येनेदं नैमिषारण्यं पद्मचां समवगाहितम् ॥१०॥  
 पदे पदेऽतिपुण्यानि तीर्थानि किल सन्ति वै ।  
 उँकारध्वनिरत्रैव श्रूयते सततं जनैः ॥११॥  
 ब्रह्मणा तैजसं चक्रं विसृष्टं यत्र वै पुरा ।  
 क्षेत्राधिष्ठानरूपं तज्जातमत्र न संशयः ॥  
 शीर्णा तस्य महानेमिर्मुनीनां स्थानदायिनी ॥१२॥  
 निमिषेण च वै दैत्या विष्णुना नाशिताः पुरा ॥  
 तस्मात्तन्नैमिषं नाम तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥१३॥  
 भवतां पूर्वजो यत्र भरतो नाम भूपतिः ।  
 तपः कृत्वावसद् भूपः क्षेत्रपुण्यविवृद्धये ॥१४॥  
 तस्मिन् भरतकुण्डे तु नरः स्नात्वा विमुच्यते ।  
 ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो दुस्तरेभ्योऽपि भूपतिः ॥१५॥  
 तपः कृत्वावसद् भूयः क्षेत्रपुण्यविवृद्धये ।  
 चक्रतीर्थे च तत्रैव तीर्थानामुत्तमं सिथतम् ॥१६॥  
 तत्र संस्नानमात्रेण तीर्थकोटिफलं लभेत् ।  
 तप्तकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वं पापं व्यपोहति ॥१७॥  
 गोमतीस्नानमात्रेण जनः स्यात् पड़क्तिपावनः ।  
 इतिहासपुराणानामुत्पत्तिस्थानमुत्तमम् ॥१८॥  
 पञ्चरात्रमिह स्थित्वा विष्णुपूजापरो नरः ।  
 कोटियज्ञफलं लब्ध्वा भुक्त्वान्ते मुक्तिभाग् भवेत् ॥१९॥  
 वसन्ति देवताः सर्वा ब्रह्मा चैव चतुर्मुखः ।  
 तत्र प्रवेशमात्रेण धौतपापो भवेन्नरः ॥२०॥  
 मासं चेन्निवसेत्तत्र तीर्थयात्रापरायणः ।  
 अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥२१॥

यानि तीर्थानि सर्वाणि पृथिव्यां सन्ति कोटिशः ।  
 तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति नैमिषारण्यमध्यतः ॥२२॥  
 यत्पुण्यं नैमिषारण्ये पञ्चरात्रेण जायते ।  
 वर्षकोटिशतेनापि नान्यतोर्थेषु तस्य तत् ॥२३॥  
 सरयूनिःसृता यस्मात् तत्सरश्चापि पावनम् ।  
 तत्र स्नात्वा विधानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२४॥  
 प्रयागं च ततो गच्छेत् तीर्थराजं पुरातनम् ।  
 गङ्गायमुनयोर्यत्र सङ्गमो लोकविश्रुतः ॥२५॥  
 तत्र यद्यत्कृतं सर्वं भवेदक्षयकामदम् ।  
 स्नात्वा दत्त्वा द्विजातिभ्यो महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥२६॥  
 गङ्गाभेदे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
 देवान् मुनीन् पितृस्तत्र तर्पयेत्तीर्थवारिभिः ॥२७॥  
 नरः पुण्यमवाप्नोति सोमयागशतोद्भूवम् ।  
 तेन पुण्यप्रभावेण लोके सारस्वते वसेत् ॥२८॥  
 बाहुदायां<sup>१</sup> नरः स्नात्वा वसेत्तपुलिने शुचिः ।  
 जपपूजापरो भूप एकरात्रं समाहितः ॥२९॥  
 तत्पुण्यं तस्य यत्पुण्यं लक्ष्माहृणभोजनात् ।  
 बाहुदा<sup>२</sup>तीर्थमिच्छन्ति देवाश्च पितरस्तथा ॥३०॥  
 गत्वा चिरनदौ भूयः स्नानं कुर्वद्विलक्षणः ।  
 तर्पयेत्तेन पयसा देवर्षिपितृदेवताः ॥३१॥  
 विमलाशोकमध्ये तु रात्रिमेकां समावसेत् ।  
 तेन पुण्येन राजेन्द्र दिव्यान् लोकानवाप्नुयात् ॥३२॥  
 भर्तृस्थानं समासाद्य कोटितीर्थस्य वारिणि ।  
 समाप्लुत्य नरो विद्यात् गोसहस्र फलं लभेत्<sup>३</sup> ॥३३॥  
 असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चकोशान्तरे नृप ।  
 पदे पदे महातीर्थान्यासते तत्र कोटिशः ॥३४॥

१. बहुदायां—रीवाँ । २. बहुदा<sup>०</sup>—रीवाँ । ३. नर—मथु० बड़ो० ।

एकतो भगवान् विष्णुर्माधवः संप्रतिष्ठितः ।  
 अपरत्र च लोलार्कः कोटिद्वयैः मिदं स्थितम् ॥३५॥  
 धनुराकारतापन्नं काशीपुरमुदित्वरम् ।  
 यत्र कुत्र नरः स्नात्वा कोटियज्ञफलं लभेत् ॥३६॥  
 मनसा चिन्तयन् काशीं महत्फलमवाप्नुयात् ।  
 किं पुनः स्नानदानादितीर्थयात्राविधानतः ॥३७॥  
 वाराणस्यां मृतो जन्तुः शाङ्करं लोकमाप्नुयात् ।  
 विशेषाज्ञाननिष्ठश्चेन्निर्गुणां मुक्तिमाप्नुयात् ॥३८॥  
 तत्र संपूज्य विधिवद् विश्वेश्वरमुमापतिम् ।  
 कोटियज्ञफलं प्राप्य सोऽन्ततो मुक्तिमाप्नुयात् ॥३९॥  
 कपिलाहृदसंस्नानान्महादेवस्य पूजनात् ।  
 चतुःषष्ठिदर्शनाच्च राजसूयफलं लभेत् ॥४०॥  
 ततश्च गोभतीगङ्गासङ्गमे तीर्थमुक्तमम् ।  
 अग्निष्टोमादिफलदं मार्कण्डेयमहामुनेः ॥४१॥  
 तत्र स्नात्वा वसेत्तत्र जपहोमपरायणः ।  
 ब्रह्मयज्ञं विनिर्वर्त्य जनः स्यात् पङ्क्तिैः पावनः ॥४२॥  
 ततो गच्छेद् गयां राजन् पितणां मुक्तिदायिनीम् ।  
 गयो नाम गिरिर्यत्र महापुण्यतमो नृप ॥४३॥  
 तथैव चाक्षयवटस्तत्र पिण्डान् सुनिर्वपेत् ।  
 स्मृत्वा स्मृत्वा नरव्याघ्र यावन्तो वै कुले मृताः ॥४४॥  
 ते सर्वे मुक्तिमिच्छन्ति पिण्डवापाद् गथाश्विरे ।  
 गयापिण्डप्रदातारं प्रशंसन्ति च देवताः ॥४५॥  
 पितरश्च प्रशंसन्ति जातो भाग्येन नः कुले ।  
 येन संमोचिताः सर्वे दुस्तराद् भवसागरात् ॥४६॥  
 अक्षयस्य वटस्याथ मूले दत्तां तदक्षयम् ।  
 तत्रैव विद्यते राजन् फलगुनामैः महानदी ॥४७॥

१. “एकस्यां कोटौ विन्दुमाधवः अपरस्यां च लोलार्कः उभयोर्मध्ये वाराणसी” टिं०—मथु० । २. भक्ति०—रीढँ० । ३. फलगुनामै—रीढँ० ।

तस्यामाचम्य विधिवत् तर्पयेत् सकलान् पितृन् ।  
 अक्षयं फलमाप्नोति निजवंश्यान् समुद्धरेत् ॥४८॥  
 धर्मारण्ये तु तत्रैव पुण्यं ब्रह्मसरः स्थितम् ।  
 एकां रात्रिं वसेत्तत्र कोटियज्ञफलाप्नये ॥४९॥  
 महानद्यां च कौशिक्यां जनः स्नात्वा विधानतः ।  
 प्रदद्यात् पितृदेवेभ्यः श्रद्धायुक्तं स्तिलाङ्गजलीन् ॥५०॥  
 पुण्ये ब्रह्मसरस्यद्विरवगाह्य शुचिव्रतः ।  
 ब्रह्मयूपं विधानेन नरः कुर्यात् प्रदक्षिणाम् ॥५१॥  
 गङ्गा पुण्यनदी यत्र तस्यास्तीरे भगीरथः ।  
 बहुदक्षिणयज्ञौघैरीजे पुरुषसत्तमम् ॥५२॥  
 आप्लुत्य तत्र तीर्थे तु भोजयित्वा बहून् द्विजान् ।  
 सर्वस्यास्तीर्थयात्रायाः पुण्यमाप्नोति मानवः ॥५३॥  
 विश्वामित्रस्य राजर्षेऽर्हसित्वप्रदायिनी ।  
 कौशिकी पुण्यसलिला तस्यास्तीरे वसेद् द्विजः ॥५४॥  
 भूयः प्रेतशिलादौ च स्थाने तत्र व्रजेन्नरः ।  
 तदीयेनैव विधिना सर्वत्र श्राद्धमाचरेत् ॥५५॥  
 सर्वं तत्तीर्थमतुलं पितृणां मुक्तिदायकम् ।  
 स्नानैर्नैश्च विधिभिः सर्वान् संतारयेत् पितृन् ॥५६॥  
 धेनुकं नाम तीर्थं च समासाद्य महोपते ।  
 तिलधेनूद्विजातिभ्यो दद्यात् सर्वविशुद्धये ॥५७॥  
 एकरात्रमिह स्थित्वा जपहोमपरायणः ।  
 तिलधेनुप्रदानेन सोमलोकमवाप्नुयात् ॥५८॥  
 कपिलायाः सवत्सायाः पदेषु तत्र पर्वते ।  
 सकृदाचम्य मनुजो धुनाति खलु पातकम् ॥५९॥  
 गत्वा गृद्धवटं तत्र दृष्ट्वा च शिवदं शिवम् ।  
 भस्मस्नायी लभेत् पुण्यं द्वादशाब्दव्रतोऽद्वृवम् ॥६०॥  
 पदे सावित्रके सन्ध्यामुपास्ते यः सकृत्त्वरः ।  
 तत्र द्वादशवार्षिक्याः संध्यायाः फलमाप्नुयात् ॥६१॥

---

१. श्राद्धयुक्तान्—रीवाँ ।

योनिहारं स्थलं तत्र योनिसंकटमोचनम् ।  
 तत्र गत्वा दिने स्थित्वा न पुनर्योनिमाप्नुयात् ॥६२॥  
 धर्मपृष्ठे ततो राजन् स्नात्वा कूपोदकेन च ।  
 तर्पयेद्वतांश्चैव मुनींश्चैव पितृंश्च हि ॥६३॥  
 पीत्वा कूपोदकं तत्र सर्वपापं व्यपोहयेत् ।  
 मतञ्जस्याश्रमे चापि गन्तव्यं तीर्थयात्रिणा ॥६४॥  
 ब्रह्मतीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्माणं च समर्थयेत् ।  
 इष्टं तेनाश्वमेधेन तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥६५॥  
 गत्वा राजगृहे तत्र स्थाने काक्षीवतो<sup>१</sup> मुनेः ।  
 पक्षिष्णां नित्यकं<sup>२</sup> भुक्त्वा ब्रह्महत्यादिकं त्यजेत् ६६॥  
 मणिनागे नरो गत्वा भुक्त्वा तस्य च नित्यकम् ।  
 गोसहस्रफलं प्राप्य सर्वेभ्यो निर्भयो भवेत् ॥६७॥  
 गोत्मस्य वने गत्वा स्नात्वाऽहल्या<sup>३</sup>हृदे जनः ।  
 अभ्यर्च्य<sup>४</sup> च श्रियं साक्षात्परमां श्रियमाप्नुयात् ॥६८॥  
 तत्र कुण्डे महापुण्ये स्नात्वा राजार्षिसत्तम् ।  
 अश्वमेधफलं प्राप्य महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥६९॥  
 स्नात्वा जनककूपे च देवगन्धर्वसेविते ।  
 सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीविष्णोर्लोकमाप्नुयात् ॥७०॥  
 सूर्यतीर्थे नरः स्नात्वा सूर्यलोके महीयते ।  
 तपोवनं जनो गत्वा तपःफलमवाप्नुयात् ॥७१॥  
 कर्बुदायां नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
 विशालायां ततः स्नात्वा सोमयज्ञफलं लभेत् ॥७२॥  
 धारां माहेश्वरीं सम्यगाप्लुत्य गतपातकः ।  
 अश्वमेधफलं लब्ध्वा नरः स्यात् पङ्क्तिपावनः ॥७३॥

१. कक्षीवतो—रीवाँ । २. “पक्षिष्णी नाम तीर्थं तत्र नित्यं नाम पक्षिष्णुरीवं”  
 दि०—मथु० । ३. तस्य—अयो०, रीवाँ । ४. अभ्येत्य—मथु०, बड़ो० । ५. °याज्ञि०  
 —मथु०, बड़ो० ।

देवपुष्करिणीं प्राप्य नरः स्नात्वा शुचिव्रतः ।  
 न दारिद्र्यमवाप्नोति कदापि धरणीपते ॥७४॥  
 ततः सोमपदं गत्वा स्नात्वा माहेश्वरे<sup>१</sup> पदे ।  
 तत्रैव तीर्थकोटचां च समाप्लुत्य विशेषतः ॥७५॥  
 पूजयित्वा कूर्मराजं विष्णुं दानवमर्दनम् ।  
 कोटियज्ञफलं प्राप्य वैकुण्ठे धाम्नि मोदते ॥७६॥  
 तत्र गच्छेद्धरिक्षेमं हरेः स्थानमनुत्तमम् ।  
 यत्र देवाश्च ऋषयः सदासंनिहितं हरिम् ॥७७॥  
 उपासते सदा भक्त्या देवदेवं जनादनम् ।  
 शालग्रामशिला यत्र प्रजायन्ते सहस्रशः ॥७८॥  
 विष्णोः सांनिध्यदा नित्यं पूजनात् पुण्यकोटिदा ।  
 तत्राभिगममात्रेण कोटियज्ञफलं लभेत् ॥७९॥  
 विष्णुक्षेत्रे नरः स्नात्वा विष्णुलोकं व्रजेद् ध्रुवम् ।  
 चतुःसामुद्रिके कूपे सकृदाचम्य मानवः ॥८०॥  
 देवान् पितृं स्तर्पयित्वा पुण्यकोटिमवाप्नुयात् ।  
 ऋणत्रयविनिर्मुक्तो जायते तत्क्षणान्तरः ॥८१॥  
 ततो जातिस्मरस्थाने गत्वाचम्य यथाविधि ।  
 जातिस्मरत्वसंस्कारं संप्राप्नोति त्रिजन्मजम् ॥८२॥  
 गण्डकीकौशिकीसंगे नरः स्नायाद् यथाविधि ।  
 ऐहिकामुष्मिकांश्चापि सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥८३॥  
 ततः स्नात्वा विपाशायां शोणभद्रे महानदे ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यतेजा भवेन्नरः ॥८४॥  
 वटेश्वरं वामनं च गत्वाप्लुत्य<sup>२</sup> विशेषतः ।  
 भरतस्याश्रमं गच्छेन्मुनिवर्यस्य मानवः ॥८५॥  
 तत्र स्नात्वा च कौशिकयां पुण्यनद्यां धूतव्रतः ।  
 असंख्येयं<sup>३</sup> फलं प्राप्य धूतपापो भवेन्नरः ॥८६॥

१. माहेश्वरी—अयो०, रीवाँ । २. वामनं गत्वा तत्राप्लुत्य—अयो०, रीवाँ । ३. अगणेयं—मथु०, बड़ो० ।

चम्पकारण्यमध्ये च रात्रिमेकान्ततो वसेत् ।  
 सुमहत्पुण्यमाण्नोति <sup>१</sup>तत्रेन्द्रस्य नमस्कृतेः ॥८७॥  
 विश्वेश्वरं शिवं पश्येत्तीर्थे गोष्ठिलनामके ।  
 कन्यासंवेद्यकं तीर्थं गच्छेत् पुण्यफलाप्नये ॥८८॥  
 तत्र गत्वा लभेत् पुण्यं कन्यादानशतोऽद्भुवम् ।  
 निश्चीरासंगमे स्नात्वा दत्त्वा दानं द्विजन्मने ॥८९॥  
 पुण्यमक्षयमाण्नोति <sup>१</sup> यत्र राजन् ममाश्रमः ।  
 तत्रावगाहमात्रेण महायज्ञफलं लभेत् ॥९०॥  
 देवकूटं ततो गच्छेत् कोटियज्ञफलाप्नये ।  
 कौशिक्यहृद <sup>२</sup> आप्लुत्य कौशिक्यां पुण्यकोटिदे ॥९१॥  
 विश्वामित्रं गौतमं च स्मृत्वा तत्र जितेन्द्रियः ।  
 पञ्चरात्रोषितश्चापि तीर्थवर्यमहाहृदे ॥९२॥  
 महत्पुण्यमवाण्नोति मासतश्चाश्वमेधकम् ।  
 महतीं श्रियमाण्नोति तस्मात् पुण्यप्रभावतः ॥९३॥  
 वीराश्रमस्य मध्यस्थं कुमारमभितो व्रजेत् ।  
 अग्निधारं व्रजेत् पश्चाद् यत्र विष्णुसदाशिवौ ॥९४॥  
 शैलराजे तत्र दिव्यं पितामहसरो व्रजेत् ।  
 नदी कुमारधाराख्या यत्र प्रस्त्रविणी जवात् ॥९५॥  
 तत्राप्लुत्य जनो नित्यं सोमयागफलं लभेत् ।  
 गौरीशिखरमासाद्य स्नायात् कुण्डेषु तत्र च ॥९६॥  
 देवान् पितृन् समभ्यर्च्यं महायज्ञफलं लभेत् ।  
 ताम्रारुणं ततो गत्वा वाजिमेधमवाण्नुयात् ॥९७॥  
 नन्दिन्यां च महाकूपे स्नात्वा कृत्वा च तर्पणम् ।  
 इन्द्रलोकं समासाद्य मोदते शरदां शतम् ॥९८॥  
 कलिङ्गाः <sup>३</sup>संगमे चैव कौशिक्यरुणसंगमे ।  
 स्नानं कुर्यात् त्रिरात्रेण तत्रोपोषित आदरात् ॥९९॥

१—१. नास्ति—अयो०, रीवाँ । २. कौशिकं ( क्यं—रीवाँ )—अयो०,  
 रीवाँ । ३. कलिङ्ग—अयो०, रीवाँ ।

उर्वशीतीर्थमभ्येत्य                    सोमाश्रममनुत्तमम् ।  
 कुम्भकर्णाश्रमे चैव महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥१००॥  
 कोकामुखे ततः स्नात्वा भवेज्जातिस्मरो नरः ।  
 नन्दां च सुसमाप्लुत्य नरः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥१०१॥  
 ऋषभद्रीपमाक्रज्य सरस्वत्यां समाप्लुतः ।  
 गच्छेद्वालकं तीर्थमभिषिञ्चेन्निजां तनुम् ॥१०२॥  
 ब्रह्मतीर्थं ततो गच्छेद्वाजपेयफलाम्पये ।  
 प्राप्याचम्य नरः स्नात्वा भागीरथ्यां च तर्पयेत् ॥१०३॥  
 पिण्डदानं च विधिवत् कुर्यात् पितृसुखाम्पये ।  
 निवेदिकां ततो गत्वा तां सर्वजनसेविताम् ॥१०४॥  
 सर्वयज्ञफलं प्राप्य पूतो भवति मानवः ।  
 सन्ध्याकाले ततो गच्छेत् सविद्यातीर्थं उत्तमे ॥१०५॥  
 आचम्य विधिवत् पश्चात्पूतो भवति मानवः ।  
 सर्वशास्त्रौघविद्यानां पारदर्शी भवेद् ध्रुवम् ॥१०६॥  
 लौहित्ये तीर्थराजे तु स्नात्वा विधिवदादृतः ।  
 करतोयां नदीं गच्छेत् कोटियज्ञफलाम्पये ॥१०७॥  
 'कपिलस्याश्रमे पुण्ये पञ्चरात्रोषितो नरः ।  
 वाजपेयोऽद्भुवं पुण्यं समवाप्नोति पूरुषः' ॥१०८॥  
 ततः स्नानं प्रकुर्वीत गङ्गासागरसंगमे ।  
 अश्वमेधाधिकं पुण्यं तत्राप्नोति न संशयः ॥१०९॥  
 वैतरण्यां महानद्यां स्नात्वा दत्त्वा द्विजन्मने ।  
 विरजाख्ये महातीर्थे स्नानं कुर्याद्विचक्षणः ॥११०॥  
 ततो ज्योतिरथीशोणसंगमे स्नानमाचरेत् ।  
 तर्पयेत्तेन तीर्थेन देवताश्च भुनीन् पितृन् ॥१११॥  
 ततः स्नायान्महातीर्थं नर्मदाशोणसंगमे ।  
 वंशगुल्माद्यत्र सरिन्नर्मदाख्या विनिःसृता ॥११२॥

२. निवेदितां—मथु, वडो० । १-१. अयं श्लोको नास्ति—अयो० ।

तत्र स्नात्वा नरः सम्यग् महायज्ञफलं लभेत् ।  
 ३४. ऋषितीर्थं ततः स्नायात् कोशलायां रघूद्वह ॥११३॥  
 कालतीर्थं पुष्पवत्यां त्रिरात्रं संवसेन्नरः ।  
 स्नात्वा बदरिकातीर्थं वाजिमेधफलं लभेत् ॥११४॥  
 ततो महेरुकं गच्छेज्जामदग्न्याश्रमं नरः ।  
 रामतीर्थं महापुण्ये स्नात्वा दद्याद् द्विजाय गाम् ॥११५॥  
 मतञ्ज्ञमुनि३केदारे स्नायात्तत्र विचक्षणः ।  
 श्रीपर्वते नदीतीरे गच्छेद्यत्र सदाशिवः ॥११६॥  
 संवसत्युमया देव्या तत्र स्नायाद्विचक्षणः ।  
 देवहङ्गे महापुण्ये देवतीर्थॄसुरैर्वृते ॥११७॥  
 ३५. ऋषभाद्रौ महापुण्ये पाण्डचदेशोऽतिपावने ।  
 तत्र गत्वा त्रिरात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥११८॥  
 अथावगाह्य कावेयर्थं पुण्यतीर्थं महाद्भुते ।  
 स्नात्वा दत्त्वा द्विजातिभ्यः परमां श्रियमाप्नुयात् ॥११९॥  
 सहस्रधेनवो येन दत्ता स्वर्णाद्यिलङ्घकृताः ।  
 तत्पुण्यं समवाप्नोति कावेरीस्नानमात्रतः ॥१२०॥  
 समुद्रतीरे विमले कन्यातीर्थॄऽतिपावने ।  
 तत्रोपस्पृश्य विधिवत् पुण्यदेहो भवेन्नरः ॥१२१॥  
 ततो द्वीपे समुद्रस्य गोकर्णं पार्वतीपतिम् ।  
 देवगन्धर्वर्योगीन्द्रराक्षसोरगसेवितम् ॥१२२॥  
 त्रैलोक्यबन्धुं भूतेशमभ्यर्थ्यं विधिवन्नरः ।  
 त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा तथा द्वादशरात्रकम् ॥१२३॥  
 तत्र स्थित्वा महायज्ञकोटिपुण्यफलं लभेत् ॥१२४॥  
 ततस्त्रिरात्रं निवसेद् गायत्रीस्थानमध्यगः ॥१२४॥  
 गायत्रीं चैव सावित्रीं पठेत्तात्र विशेषतः ।  
 स्मरेद् ब्राह्मण एवैनामन्यस्तु खलु विस्मरेत् ॥१२५॥

१. च पीत्वा च—अयो०, च मनुजः—मथु०, बडो० । २. द्विजातये—रीवाँ,  
 ३. °मुक्ति०—अयो०· । ४. ब्रह्मतीर्थ—मथु०, बडो । ५. भवेत्—अयो०, रीवाँ ।

संवर्तं वापिकामध्ये स्नात्वा मन्मथवद्धवेत् ।  
 वेणायां च ततः स्नात्वा धूतपापो भवेन्नरः ॥१२६॥  
 देवपित्रचर्चनपरस्तस्यास्तीरे समावसेत् ।  
 ब्रह्मलोकं व्रजेदाशु तस्मात्<sup>३</sup> पुण्यप्रभावतः ॥१२७॥  
 ततो गोदावरी तीर्थे स्नानं कुर्यादितन्द्रितः ।  
 वेणायाः संगमे चैव वरदासंगमे तथा ॥१२८॥  
 ब्रह्मस्थूणां महापुण्यां कुशाप्लवनमेव च ।  
 कुष्णवेणाजलोद्भूतं पुण्यं देवह्रदं तथा ॥१२९॥  
 ज्योतिमात्रह्रदं चैव कन्याश्रममनुत्तमम् ।  
 गत्वा स्नात्वा च विधिवदनन्तं पुण्यमाप्नुयात् ॥१३०॥  
 पयोषणीसलिले स्नात्वा सर्वपापैर्विमुच्यते ।  
 दण्डकारण्यमध्ये च स्नात्वा दत्त्वा द्विजातये ॥१३१॥  
 शरभञ्जाश्रमं गच्छेच्छुकस्थ च महाश्रमम् ।  
 ततः शूर्पारके गत्वा रामतीर्थे समाप्लुतः ॥१३२॥  
 सप्तगोदावरं गच्छेत्तत्र स्नात्वा जितेन्द्रियः ।  
 गच्छेदेवचयं पुण्यं कोटियज्ञफलाप्नये ॥१३३॥  
 तुङ्गकारण्यमतुलं पवित्रं पापनाशनम् ।  
 आङ्गीरसेन मुनिना यत्र वेदाः प्रवर्तिताः ॥१३४॥  
 ब्रह्माविष्णुमहेशाद्यैर्यक्षदेवगणैः पुरा ।  
 ऋषिभिश्च महाभागैः पुनराधानपूर्वकम् ॥१३५॥  
 वेदा उपाकृताः सर्वे तत्पुण्यं तीर्थमुत्तमम् ।  
 गत्वा स्नात्वा विधानेन महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥१३६॥  
 मेधाविके महातीर्थे स्नात्वा दत्त्वा च भूरिशः ।  
 गिरि कालञ्जरं गच्छेद यत्र देवह्रदः शुचिः ॥१३७॥  
 तत्र स्नात्वा विधानेन पुण्ये देवह्रदामभसि ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः पुण्यलोकानवाप्नुयात् ॥१३८॥

१. सूर्वर्तं—अयो०, मथु० बड़ो० । “ऋषिवापिका” टिं—मथु० ।

२. तस्याः—रीवाँ ।

चित्रकूटाचले स्नात्वा मन्दाकिन्याः शुभे जले ।  
 यत्रात्रेमुनिवर्यस्य सुपुण्यतम् आश्रमः ॥१३९॥  
 पितृन् संतर्प्य विधिवत् तत्र पुण्यतमोदकैः ।  
 महत्पुण्यमवाप्नोति दुर्गतिं च विनाशयेत् ॥१४०॥  
 श्रेष्ठस्थानं ततो गत्वा समभ्यर्च्य च शङ्करम् ।  
 चतुःसामुद्रिके कूपे स्नात्वा चैव विधानतः ॥१४१॥  
 शृङ्गवेरपुरं गच्छेद् गङ्गासेवितसंनिधिः ।  
 स्नात्वा चैव तु गङ्गायां सर्वं पायं विधूनयेत् ॥१४२॥  
 गत्वा मुज्जवटं चैव तत्राभ्यर्च्य सदाशिवम् ।  
 महत्पुण्यमवाप्नोति क्षेत्रस्यास्य प्रभावतः ॥१४३॥  
 सर्वेषामपि भूपानां यथा रघुपते भवान् ।  
 तथा प्रयागस्तीर्थानामिति शुश्रुम भूपते ॥१४४॥  
 पुष्करं च प्रयागं च कुरुक्षेत्रं तथैव च ।  
 गङ्गाद्वारं च नृपते मुखमेतच्चतुष्टयम् ॥१४५॥

## राजोवाज

पुष्करस्य विधिं न्रूहि माहात्म्यं च विशेषतः ।  
 कानि कानि च तीर्थानि तत्र सन्ति महामुने ॥१४६॥

## वशिष्ठ उवाच

मनुष्यलोके राजेन्द्र तीर्थं त्रैलोक्यपावनम् ।  
 त्रिपुष्करमिति ख्यातं दुर्लभं यद् दुरात्ममिः ॥१४७॥  
 सप्तद्वीपवतीं भूमिमधितिष्ठन्ति यानि वै ।  
 तानि सर्वाणि तीर्थानि पुष्करे निवसन्ति हि ॥१४८॥  
 दशकोटिसहस्राणि दशकोटिशतानि च ।  
 पुष्करे सन्ति तीर्थानि येषां संख्या सुदुष्करा ॥१४९॥  
 यत्र संनिहितो ब्रह्मा विष्णुश्चैव सदाशिवः ।  
 तथैव द्वादशादित्या वसवोष्टौ महीपते ॥१५०॥  
 एकादश तथा रुद्रा विश्वेदेवाश्च सर्वशः ।  
 ऊनपञ्चाशदनिलाः साध्यास्तुषितनामकाः ॥१५१॥

भास्कराश्चैव सकला महाराजिकसंज्ञकाः ।  
 गन्धर्वाप्सरसो नागा यक्षराक्षसगुह्यकाः ॥१५२॥  
 मुनयो मानवाश्चैव तथा राजर्षयोऽखिलाः ।  
 दैत्याश्च दानवाश्चैव तथा व्रह्मर्षयोऽपि च ॥१५३॥  
 तपस्विनो योगिनश्च दानशीला दृढन्रताः ।  
 पुष्करं समुपाश्रित्य परमां श्रियमाप्नुवन् ॥१५४॥  
 मनसा स्मृतमात्राणि पुष्कराणि मनीषिभिः ।  
 धुन्वन्ति सर्वपापानि त्रिसन्ध्यमवनीपते ॥१५५॥  
 गायत्र्या चैव सावित्र्या ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
 पुष्करे निवसन्निन्यं संचिनोति परां मुदम् ॥१५६॥  
 क्रृष्णः पितरो देवा ब्रह्माणमनुसंगताः ।  
 तत्रासत महाराज पुण्यतीर्थेऽतिपावने ॥१५७॥  
 अश्वमेधादियज्ञानां तत्र पुण्यं प्रतिष्ठितम् ।  
 स्नानाद्वानाज्जपाद्वोमात्तथा ब्राह्मणभोजनात् ॥१५८॥  
 पुण्यलोकानवाप्नोति पुष्करस्य प्रभावतः ।  
 यत्किञ्चिदपि कर्तव्यं पुण्यमत्र मनीषिणा ॥१५९॥  
 सकृत्सनानेन दानेन नरः सर्वमवाप्नुयात् ।  
 न दुर्गतिं व्रजेत् कांचिन्नच दारिद्र्यमाप्नुते ॥१६०॥  
 कार्तिक्यां च महीपाल यो नरः स्नाति पुष्करे ।  
 स तत्पुण्यमवाप्नोति यदक्षयं प्रचक्ष्यते ॥१६१॥  
 त्रिसन्ध्यं यः स्मरेद्राजन् पुष्कराणि दृढन्रतः ।  
 सर्वतीर्थाभिषेकस्य पुण्यमाप्नोति मानवः ॥१६२॥  
 पुष्करे स्नानमात्रेण स्त्री वा पुरुष एव वा ।  
 आजन्मकृतपापस्य परं पारमवाप्नुयात् ॥१६३॥  
 देवतानां यथा विष्णुर्ग्रहणां तपनो यथा ।  
 नक्षत्राणां यथा चन्द्रो मासानां माधवो यथा ॥१६४॥  
 सिन्धूनां सागरो यद्वद्वर्णनां ब्राह्मणो यथा ।  
 तथैव सर्वतीर्थानां मुख्यं पुष्करमुच्यते ॥१६५॥

यथा समस्तकाव्यानामाद्यं रामायणं स्मृतम् ।  
 तथा सकलतीर्थनामाद्यं पुष्करमुच्यते ॥१६६॥  
 व्रीहीन् वापि यवान् वापि यो वपेत् पुष्करावनौ ।  
 स सर्वयाज्ञिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥१६७॥  
 पूर्णवर्षशतं येन हुतमप्यावसथ्यके ।  
 कार्तिक्यां पूर्णिमायां च स्नानमात्रस्य तत्कलम् ॥१६८॥  
 कृत्वा प्रदक्षिणं तत्र पुष्करक्षेत्रमुत्तमम् ।  
 सर्वयज्ञफलं प्राप्य स्वर्गे लोके महीयते ॥१६९॥  
 यज्ञवाटं परिक्रम्य दृष्ट्वा वाराहमोश्वरम् ।  
 सोमनाथं समभ्यर्च्य गत्वा च मखवेदिकाम् ॥१७०॥  
 घृतकुल्यां मधोः कुल्यां स्नात्वा देवनदीमिह ।  
 सर्वपापविशुद्धात्मा पूतो भवति मानवः ॥१७१॥  
 गायत्रीं चैव सावित्रीं स्मृत्वा देवीं सरस्वतीम् ।  
 सर्वयज्ञफलं प्राप्य पूतो भवति मानवः ॥१७२॥  
 जम्बूमार्गं ततो गत्वा सर्वपापं व्यपोहयेत् ।  
 इदं काशीसमं क्षेत्रं पुण्यं सर्वाधिनाशनम् ॥१७३॥  
 चर्मणवत्यां महातीर्थं जम्बूमार्गाभिधं महत् ।  
 पदे पदे तत्र सन्ति शिवलिङ्गानि भूमिप ॥१७४॥  
 तानभ्यर्च्य नमस्कृत्य सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।  
 जम्बूमार्गं गमिष्यामि जम्बूमार्गं वसाम्यहम् ॥१७५॥  
 इत्येवं व्रुवमाणोऽपि प्रातस्तथाय मानवः ।  
 महत्पुण्यमवाप्नोति काशीवासशताधिकम् ॥१७६॥  
 जम्बूमार्गं महाराज मुनीनामाश्रमावली ।  
 तत्र चैव नरो गत्वा धौतपापः प्रजायते ॥१७७॥  
 पारिजातगिरिस्तत्र पुण्यदेशः प्रतिष्ठितः ।  
 तत्रैव षट्पुरुं नाम गिरिमध्ये प्रतिष्ठितम् ॥१७८॥

विल्वकेश्वररसंजं तच्छिवलिङ्गं प्रतिष्ठितम् ।  
 दर्शनात् स्पर्शनात् तस्य हरेत् पापं त्रिजन्मजम् ॥१७६॥  
 ततः पुण्यतमां गच्छेद्वगन्धर्वसेविताम् ।  
 केनुमालां च मेध्यां च समाप्लुत्य' विशेषतः ॥१८०॥  
 गच्छेत् रक्तदन्तायाः स्थानं परमपुण्यदम् ।  
 रक्तदन्तां नमस्कृत्य सुरथस्य पुरे नृप ॥१८१॥  
 आजन्मसंभवं पापं तत्क्षणादेव नाशयेत् ।  
 सुरथस्य पुरं<sup>२</sup> राजन् पवित्रं पुण्यवर्द्धनम् ॥१८२॥  
 तस्याभिगमनादेव सर्वं पापं व्यपोहयेत् ।  
 शिवलिङ्गसहस्राणि यत्र सन्ति पदेपदे ॥१८३॥  
 गङ्गारण्ये नरः स्नात्वा सर्वपार्विमुच्यते ।  
 सैन्धवारण्यथात्रान्तरेषा यात्रा प्रशस्यते ॥१८४॥  
 लोहार्गलं नाम तीर्थं तस्मिन् देशे प्रतिष्ठितम् ।  
 तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च दशसोमशतं लभेत् ॥१८५॥  
 गालवस्याश्रमं गत्वा मृगपक्षिनिषेवितम् ।  
 तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥१८६॥  
 पञ्चरात्रमिह स्थित्वा ब्रह्मचर्यपरो नरः ।  
 आजन्मसंभवं पापं विधुनोति न संशयः ॥१८७॥  
 उज्जयिन्यां पवित्राणि स्थानानि शृणु भूपते ।  
 येषु यात्रां सकृत्कृत्वा पुण्यभाजनतां वजेत् ॥१८८॥  
 तिक्ष्वस्तत्र पुरोः सन्ति महापुण्यफलप्रदाः ।  
 आदौ ब्रह्मपुरो राजन् भवेद्विष्णुपुरो ततः ॥१८९॥  
 ततो महारुद्धपुरी सर्वपापप्रणाशिनी ।  
 यस्याः संदर्शनादेव सर्वं पापं प्रणश्यति ॥१९०॥  
 महाकालपुरी सर्वा यत्र सिप्रा महानदी ।  
 महाकालेश्वरं यत्र शिवलिङ्गं पुरातनम् ॥१९१॥

१. समासुत्य—अयो० । समसुत्या—रीवॅ० । २. “सथूरपुरेति भाषा”  
टि०—मथु० ।

इमशानमूषरं क्षेत्रं पीठं चैव वनं तथा ।  
 पञ्चैकत्र न लभ्यन्ते महाकालपुरों विना ॥१९२॥  
 गन्धर्वाणां इमशानं तन्महापुण्यमिति स्थितम् ।  
 ऊषरं पुण्यपापानां तत्रैव खलु तिष्ठति ॥१९३॥  
 अवन्तिका महाक्षेत्रं जनानां पुण्यवर्द्धनम् ।  
 हरसिद्धिशिवापीठं जपतां सर्वसिद्धिदम् ॥१९४॥  
 महारुद्धपुरीमध्ये कोटितीर्थं नराधिष ।  
 स्नात्वा दत्त्वा च विप्रेभ्यः कोटितीर्थफलं लभेत् ॥१९५॥  
 अगस्त्येश्वरसंज्ञं तच्छब्दलिङ्गमिह स्थितम् ।  
 गत्वा नत्वा यमभ्यर्थं हयमेधातिगं फलम् ॥१९६॥  
 तत्र विष्णुपुरी मध्ये गोमतीकुण्डमुत्तमम् ।  
 तत्र स्नात्वा विशेषेण पूजयित्वा जनार्दनम् ॥१९७॥  
 ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्तो भवति मानवः ।  
 अङ्गप्रपाते नरः स्नात्वा पूतो भवति तत्क्षणात् ॥१९८॥  
 अधिसिद्धवटच्छायां स्थित्वा तत्र च मानवः ।  
 संसारतापनिर्मुक्तो भवेदिति न संशयः ॥१९९॥  
 तथा ब्रह्मपुरी मध्ये स्नायाद् भूरिफलाप्तये ।  
 चतुर्द्वारेषु वै तस्या यानि स्थानानि भूपते ॥२००॥  
 तेषु गत्वा च दत्त्वा च पुण्यं महद्वाप्नुयात् ।  
 यत्र<sup>१</sup> कुत्रापि क्षिप्रायां<sup>२</sup> स्नात्वा दत्त्वा च मानवः ॥२०१॥  
 असंख्यं फलमाप्नोति सोमयागकृतं नृणाम् ।  
 कामधेनूद्धवैः क्षीरैर्निर्मितेयं महानदी ॥२०२॥  
 सुरसा मृष्टसलिला तीर्थकोटिनिषेविता ।  
 अथ चन्द्रसुतां गच्छेत् पुण्याश्रमनिषेविताम् ॥२०३॥  
 तस्यामाप्लुत्य विधिवत् प्राणायामं समाचरेत् ।  
 वर्षाणि शतमाचर्यं तपसः प्राप्नुयात् फलम् ॥२०४॥

१. तत्र—रीवाँ । २. क्षिप्रायां—अयो० ।

वह्न्यः सन्ति महानद्यस्तोर्थानि सुब्रह्मनि च ।  
 तानि सर्वाणि रेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२०५॥  
 दर्शनाद्वरते पापं किं पुनः स्नानदानतः ।  
 रेवातीरे नरः स्थित्वा पञ्चरात्रं तपोरतः ॥२०६॥  
 शतवर्षकृतात्यर्थतपश्चर्याफलं लभेत् ।  
 तमालतरुसंछन्नं महावेतसवेष्टितम् ॥२०७॥  
 अनेकवनसंकीर्णं तीरमस्याः सुपावनम् ।  
 यस्मिन् क्षणमपि स्थित्वा पुण्यवातनिषेवितः ॥२०८॥  
 आजन्मसंभवैर्घरैरंहोभिर्मुच्यते नरः ।  
 नर्मदासलिलस्पर्शीं यत्र वाति समीरणः ॥२०९॥  
 स वै पुण्यतमो देशस्तपस्विजनसेवितः ।  
 प्रत्यक्ष्योता नदी पुण्या नर्मदा लोकपावनी ॥२१०॥  
 यानि तीर्थानि भुवने तानि तस्यां समासते ।  
 पितामहादयो देवा तथा देवर्षयोऽखिलाः ॥२११॥  
 सिद्धाः किंपुरुषाश्चैव तस्यास्तोरे निवासिनः ।  
 तत्र विस्तव्यः स्थानं महर्षेः संप्रतिष्ठितम् ॥२१२॥  
 कुबेरो भगवान् यत्र नित्यमेव प्रतिष्ठितः ।  
 वैदूर्यशिखरो नाम्ना पर्वतः स हि कीर्तिः ॥२१३॥  
 फलिनः पुण्यवन्तश्च हरितच्छदशालिनः ।  
 भूरुहाः सुन्दर-छायाः सूर्यातपनिवारकाः ॥२१४॥  
 प्रसन्नसलिलं द्विव्यं तत्रैव विपुलं सरः ।  
 उत्फुल्लकमलामोदसुगन्धितहरित्तटम् ॥२१५॥  
 सविलासरसोन्मत्तदेवगन्धर्वसेवितम् ।  
 विश्वामित्रस्य राजर्षेस्तत्रपुण्यतमा नदी ॥२१६॥  
 यस्यास्तीरे यज्ञसभामध्ये राजां हि पश्यताम् ।  
 नहुषस्याग्रजो राजा ययातिः पुण्यकीर्तनः ॥२१७॥  
 यतमानः स्वर्गलोकात् पुनर्लेभे परां गतिम् ।  
 कक्षषेणमुनेर्यत्र सुपुण्यतम आश्रमः ॥२१८॥

च्यवनस्य च राजेन्द्र तत्रैवाश्रम उत्तमः ।  
 कार्तवीर्यश्च राजेन्द्रो हैह्यान्वयभूषणः ॥२१९॥  
 यत्र बाहुसहस्रेण रुरोध खलु नर्मदाम् ।  
 सहस्रधाराख्यं तीर्थं नार्मदे विश्वपावनम् ॥२२०॥  
 यत्र कालाग्निरुद्रश्च सततं संप्रतिष्ठितः ।  
 स्वाह्या सहितो भाति काले काले परिस्फुटः ॥२२१॥  
 तत्तीर्थं च विशेषेण नार्मदं सर्वपावनम् ।  
 उँकारेश्वरशैले च नर्मदा विश्वपावनी ॥२२२॥  
 मान्धातृनाम्ना विदितः स शैलो दुर्गभूषितः ।  
 मुचुकुन्दस्य यत्स्थानं सर्वदेवसमन्वितम् ॥२२३॥  
 यत्र गौरीसोमनाथलिङ्गं परमसुन्दरम् ।  
 चण्डवेगा नदी यत्र संगता रेवया सह ॥२२४॥  
 तत्क्षेत्रं केन तुलितं तोर्थानामुत्तमोत्तमम् ।  
 नर्मदादर्शनेनैष सद्यः शुद्धचति मानुषः ॥२२५॥  
 रात्रौ प्रवाहिनी चैषा शाङ्करीमूर्तिरुत्तमा ।  
 सौराष्ट्रे पुण्यतीर्थानि सुबहूनि महीपते ॥२२६॥  
 ऋषीनामाश्रमाश्चैव सरितः पर्वतास्तथा ।  
 चमसोद्भेदनं नाम्ना तोर्थानामुत्तमं स्मृतम् ॥२२७॥  
 प्रभासनामतीर्थं च सर्वदेवनिषेवितम् ।  
 उदधेस्तीर्थमाख्यातं यात्रया पुण्यकोटिदम् ॥२२८॥  
 पिण्डारकमहातीर्थं मुनिवृन्दनिषेवितम् ।  
 उज्जयन्ते गिरौ यानि तोर्थानि धरणीपते ॥२२९॥  
 तेषु स्नात्वा च दत्त्वा च पूर्वजानपि चोद्धरेत् ।  
 तपःस्थानानि दिव्यानि यत्र सन्ति तपस्विनाम् ॥२३०॥  
 तेषूपस्पृश्य सकृदप्यनल्पं पुण्यमाप्नुयात् ।  
 अथ द्वारवती साक्षान्माधवस्य महापुरी ॥२३१॥  
 गोमती यत्र सततं रम्या पुण्यतमा नदी ।  
 यादवेन्द्रस्य कृष्णस्य पुण्यं यत्र निकेतनम् ॥२३२॥

सातिधन्यतमा लोके पुण्या द्वारवतो पुरी ।  
 अथ वक्ष्यामि ते राजन् कुरुक्षेत्रविधि शुभम् ॥२३३॥  
 यत्रातिपुण्यसलिला नदी नाम्ना सरस्वती ।  
 उषित्वा यत्र मासं तु सर्वं फलमवाप्नुयात् ॥२३४॥  
 द्वारपालं महायज्ञमादौ समभिवाद्य च ।  
 ततोऽन्तः प्रविशेत्तत्र कुरुक्षेत्रे नराधिप ॥२३५॥  
 विष्णोः स्थानं ततो गत्वा महत्पुण्यमवाप्नुयात् ।  
 तत्र स्नात्वा हर्षिं दृष्ट्वा महायज्ञफलं लभेत् ॥२३६॥  
 परिप्लवं नाम तीर्थं ततो गच्छेन्महीपते ।  
 तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यः पयस्विनीः ॥२३७॥  
 अग्निष्टोमफलं प्राप्य स्वर्गे लोके विराजते ।  
 पृथिव्यास्तोर्थमभ्येत्य स्नानं कुर्याद्विधानतः ॥२३८॥  
 गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ।  
 शालूकिनी महातीर्थं गत्वा स्नात्वा विधानतः ॥२३९॥  
 दशाश्वमेधिके तीर्थे स्नायात्तत्र विधानतः ।  
 नागानां तीर्थमभ्येत्य तत्र स्नात्वा विधानतः ॥२४०॥  
 अत्यग्निष्टोमजं पुण्यमवाप्नोति महीपते ।  
 नागलोकं परिप्राप्य मोदते दिवि देवबत् ॥२४१॥  
 तरन्तुकं द्वारपालं प्राप्यैकां रजनीं वसेत् ।  
 अमितं पुण्यमाप्नोति तं नमस्कृत्य मानवः ॥२४२॥  
 गत्वा पञ्चनदं तीर्थं दर्शनादेव पावनम् ।  
 कोटितीर्थे ततः स्नात्वा सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥२४३॥  
 सुपुण्यमश्विनोस्तीर्थं स्नात्वा तत्र विधानतः ।  
 अश्विनीसुतवद्रूपं लभते नात्र संशयः ॥२४४॥  
 वाराहतीर्थमासाद्य मुनिवृन्दनिषेवितम् ।  
 कोटियज्ञफलं लब्ध्वा पुण्यकायो भवेन्नरः ॥२४५॥  
 भुंजावरं<sup>१</sup> ततो गत्वा सर्वदेवनमस्कृतम् ।  
 शैवतीर्थं महत्पुण्यं सुमहत्पातकं दहेत् ॥२४६॥

तत्र रात्रं वसेद् धीरो महायज्ञफलाभये ।  
 स्नात्वा यक्षीं समभ्येत्य तत्रैव धरणीपते ॥२४७॥  
 सर्वान् कामानवाप्नोति त्रैलोक्ये कीर्तिमान् भवेत् ।  
 तत्र प्रदक्षिणो भूत्वा स्नायात् पुष्करसंस्मिते ॥२४८॥  
 जामदग्न्येन रामेण स्थापिते स्वानुभावतः ।  
 ततो रामेण वीरेण निर्मितान् क्षत्रशोणितैः ॥२४९॥  
 दृष्ट्वा पञ्चत्वादांस्तत्र महत्पुण्यमवाप्नुयात्<sup>१</sup> ।  
 पितरस्तर्पिता यत्र तथैव च पितामहाः ॥२५०॥  
 रुधिरेणैव रामेण सुमहाघोरकर्मणा ।  
 तैरेव च वरं दत्त्वा कृतं तत्तोर्थमुत्तमम् ॥२५१॥  
 तेषु हृदेषु विधिवत् स्नात्वा दत्त्वा द्विजन्मने ।  
 जामदग्न्यं समभ्यर्च्यं महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥२५२॥  
 वंशमूलकतीर्थे च स्नात्वा वंशं समुद्धरेत् ।  
 कायशोधनतीर्थे च स्नात्वा कायं विशोधयेत् ॥२५३॥  
 लोकोद्धारमहातीर्थे स्नात्वा लोकान् समुद्धरेत् ।  
 श्रीतीर्थे च समाप्लुत्य परमां श्रियमाप्नुयात् ॥२५४॥  
 कपिलातीर्थमध्ये च सकृदप्याप्लुतो जनः ।  
 सहस्रपिलादानफलमाप्नोति मानवः ॥२५५॥  
 सूर्यतीर्थे नरः स्नात्वा पितृदेवार्चने रतः ।  
 अग्निष्ठोमफलं प्राप्य सूर्यलोकमनुवज्जेत् ॥२५६॥  
 तीर्थनामुत्तमे तीर्थे गवां भवन आप्लुतः ।  
 गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ॥२५७॥  
 तथैव शङ्खिनी तीर्थे देवी<sup>२</sup>तीर्थेऽतिपावने ।  
 स्नात्वा दत्त्वा द्विजातिभ्यो महदैश्वर्यमाप्नुयात् ॥२५८॥  
 मच्क्रुकं<sup>३</sup> द्वारपालं गत्वा तीर्थपरायणः ।  
 सरस्वत्यां समाप्लुत्य महायज्ञफलं लभेत् ॥२५९॥

१. सुमहत्पुण्यमाप्नुयात्—रीबाँ । २. देव—रीबाँ । ३. मच्क्रुकं—रीबाँ, मथु०, बड़ो० ।

ब्रह्मावर्ते महातीर्थे गत्वा स्नात्वा च मानवः ।  
 ब्रह्मलोकं समासाद्य मोदते पद्मयोनिवत् ॥२६०॥  
 सुतीर्थके महातीर्थे पितृदेवार्चने रतः ।  
 अश्वमेधफलं लब्धवा पितृलोके महीयते ॥२६१॥  
 काशीश्वरं च तीर्थेषु युवत्या सुसमाप्लुतः ।  
 महीयते ब्रह्मलोके सर्वदुःखविवर्जितः<sup>१</sup> ॥२६२॥  
 मातृतीर्थे च राजेन्द्र स्नात्वा दत्त्वा द्विजातये ।  
 अनन्तां श्रियमाप्नोति सर्वसौख्यविवर्द्धितः ॥२६३॥  
 गत्वा शीतवनं चैव स्नात्वा तीर्थोत्तमे जनः ।  
 महतीं शुद्धिमाप्नोति क्षणमात्रमपि स्थितः ॥२६४॥  
 इवानलोमापहे तीर्थे स्वलोमानि निकृत्य वै ।  
 निक्षिपेत् तेन कायस्य महतीं शुद्धिमाप्नुयात् ॥२६५॥  
 दशाश्वमेधतीर्थम्बुन्याप्लुत्य रघुसत्तम ।  
 कोटितीर्थविगाहस्य<sup>२</sup> शुद्धिमाप्नोति मानवः ॥२६६॥  
 सकृदाप्लुत्य राजेन्द्र तीर्थे मृगविमोचने ।  
 निर्धूय सर्वपापानि स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥२६७॥  
 ततो मानुषतीर्थात् क्रोशोपरि महानदी ।  
 आपगेतिस्मृता नाम्ना तस्यामाप्लुत्य मानुषः ॥२६८॥  
 इयामाकपायसैर्विप्रान् भोजयित्वा कृतात्मिकः ।  
 भूयांसं धर्ममाप्नोति पितृदेवार्चने रतः ॥२६९॥  
 कोटयस्तेन वै विप्रा भोजिताः स्युन्म संशयः ।  
 स्नानैर्दानैश्च होमैश्च भूयः सुकृतमर्जयेत् ॥२७०॥  
 ब्रह्मोद्गम्बरतीर्थे च लक्ष्मणः स्थानमुत्तमम् ।  
 तत्र सप्तिष्ठिकुण्डेषु स्नायान्नियमपूर्वकः ॥२७१॥  
 तथा कल्पितकेदारे स्नात्वा तीर्थोत्तमे नृप ।  
 महतीं सिद्धिमाप्नोति कपिलस्य प्रभावतः ॥२७२॥

१. विवर्जिते—रीवाँ । २. °तीर्थविगाहस्य—अयो०, मथु०, रीवाँ ।

अभ्येत्य पद्मयोर्निं च ब्रह्मणक्षत्रियादयः ।  
 पूजयेयुलोकनाथं ब्रह्माणं विश्वकारकम् ॥२७३॥  
 तेन पुण्येन राजेन्द्र ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ।  
 गत्वा कपिलकेदारं पापराशि विदाहयेत् ॥२७४॥  
 स्नात्वा सरकतीर्थं च प्राप्य कृष्णचतुर्दशीम् ।  
 रुद्रं संपूज्य विधिवत् सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥२७५॥  
 तीर्थानि कोटयस्तस्मो यत्र संनिहितानि वै ।  
 रुद्राणां कोटयश्चैव ह्लदेषु किल जाग्रति ॥२७६॥  
 इलास्पदं महातीर्थं तत्र स्नात्वा विधानतः ।  
 देवान् संपूज्य दत्त्वा च पितृभ्यः श्राद्धमुत्तमम् ॥२७७॥  
 वाजपेयफलं प्राप्य स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ।  
 किं दानं चैव किं जप्यं<sup>१</sup> किं तीर्थमुत्तमोत्तमम्<sup>२</sup> ॥२७८॥  
 तयोः<sup>३</sup> स्नात्वा विधानेन पुण्यं स्याद्वानजाप्ययोः ।  
 यत्र प्राप्येत राजेन्द्र कोटिदानजपादिभिः ॥२७९॥  
 कलश्यां<sup>४</sup> तीर्थतोयेन सकृदाचम्य मानवः ।  
 अग्निष्टोमोद्भवं पुण्यमाप्नोति नृप तत्क्षणात् ॥२८०॥  
 ततः पूर्वं नारदस्य तीर्थे नाजन्मनामनि<sup>५</sup> ।  
 सकृत् स्नात्वा नरो राजन् न पुनर्जन्मभाग् भवेत् ॥२८१॥  
 शुक्ले दशम्यामाप्लुत्य पुण्डरीकस्य वारिणि ।  
 वैतरिण्यां पुण्यतीर्थे स्नात्वाभ्यर्च्य महेश्वरम् ॥२८२॥  
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यो महत्पुण्यमवाप्नुयात् ।  
 फलकीवनमध्ये च दृष्टद्वत्यां समाप्लुतः ॥२८३॥  
 तीर्थे चाखिलदेवौघतपःस्नानैकभाजने ।  
 महायज्ञफलं चैव महादानफलं लभेत् ॥२८४॥  
 पाणिखाते नरः स्नात्वा देवतापितृतर्पणो ।  
 ऋषीणां गतिमाप्नोति राजसूयफलान्वितः ॥२८५॥

१. यज्ञं—अयो०, रीवाँ । २. °मुत्तममत्र वै—मथु०, बड़ो० । ३. तत्र-रीवाँ  
 ४. तदस्य—रीवाँ । ५. तीर्थेन जन्मवानपि—रीवाँ ।

मिश्रके च सकृद् गत्वा स्नात्वा तीर्थेषु तत्र वै ।  
 मिश्रितं फलमाप्नोति सर्वतीर्थोऽद्भुवं नृप ॥२८६॥  
 यत्र व्यासेन तीर्थानि सर्वाणि जगतीतले ।  
 आनीय स्थापितान्यद्वा तेन मिश्रमितीरितम् ॥२८७॥  
 पुण्यं व्यासवनं गत्वा स्नात्वा तीर्थे मनोजवे ।  
 असंख्यं पुण्यमासाद्य स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥२८८॥  
 मधुवटचां शुभे तीर्थे देवस्थाने समाप्लुतः ।  
 ईश्वरों च समभ्यर्थ्य कोटिदानफलं लभेत् ॥२८९॥  
 कौशिक्याश्च दृषद्वृत्याः संगमे सुसमाप्लुतः ।  
 कोटितीर्थविगाहोत्थं पुण्यमाप्नोति मानवः ॥२९०॥  
 व्यासस्थलीं समासाद्य पुण्यसंचयवान् भवेत् ।  
 व्यासोऽत्र मायथा विष्णोः पुत्रशोकाभिर्मूर्छितः ॥२९१॥  
 देवैरुत्थापितः सर्वैर्ज्ञातितत्त्वः स्वयं मुनिः ।  
 तत्र स्नानेन दानेन पुण्यमक्षयमाप्नुयात् ॥२९२॥  
 स्नात्वा किंदत्तके कूपे तिलदायी नृपोत्तम् ।  
 ऋणत्रयविनिर्मुक्तो लभते प्रेत्य सद्गतिम् ॥२९३॥  
 वेदीतीर्थे<sup>१</sup> सकृत् स्नात्वा अहःसु दिनयोरपि ।  
 लभेत् सहस्रगोपुण्यं रविलोकं च मानवः ॥२९४॥  
 नृगृहमे रुद्रपदे स्नात्वा संपूज्य शङ्खरम् ।  
 नरोऽश्वमेधजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥२९५॥  
 कोटितीर्थे ततः स्नायात् कोटितीर्थफलाप्तये ।  
 गत्वा वामनके तत्र स्नात्वा विष्णुपदे नरः ॥२९६॥  
 वामनं चैव संपूज्य विष्णुलोके महीयते ।  
 कुलम्पुने सकृत् स्नात्वा कुलकोटि समुद्धरेत् ॥२९७॥  
 वायुहृदे देवहृदे<sup>२</sup> शालिसूर्ये च मानवः ।  
 स्नानदानादिविधिभिरसंख्यं पुण्यमाप्नुयात् ॥२९८॥

१. देवतीर्थे—रीवाँ । २. ब्रह्महृदे—अयो० ।

श्रीकुञ्जं नैमिषं कुञ्जं पुण्यक्षेत्रं सुपावनम् ।  
 सरस्वत्याः शुभे तीर्थे तयोः स्नात्वा विधानतः ॥२९९॥  
 कन्यातीर्थे च राजर्ण<sup>१</sup> ब्रह्मणः स्थान एव च ।  
 सोमतीर्थे महत्पुण्यं सप्तसारस्वते तथा ॥३००॥  
 स्नात्वा चोशनसे तीर्थे तीर्थे कापालमोचने ।  
 अग्नितीर्थे महातीर्थे विश्वामित्रस्य वै मुनेः ॥३०१॥  
 ब्रह्मयोनौ च विधिवत् स्नात्वा दत्त्वा च शक्तिः ।  
 असेयं पुण्यमाप्नोति परत्रेह च सोदते ॥३०२॥  
 तीर्थानामुत्तमं तीर्थमथ गच्छेत् पृथूदकम् ।  
 तत्राभिषिच्य विधिना तर्पयेद्देवतापितृन् ॥३०३॥  
 आजन्मकलितं तस्य घोरं पापं प्रशास्यति ।  
 अहवमेधादियज्ञानां फलमासादयेन्नरः ॥३०४॥  
 भुक्तिदं सुक्तिदं चैव कामदं शुभदं तथा ।  
 पुण्यात्पुण्यतमं प्राहुर्नृणामेतत् पृथूदकम् ॥३०५॥  
 पावनं देवयजनं<sup>२</sup> कुरुक्षेत्रं महीपते ।  
 न तत्समं क्वचित्तीर्थं त्रिषु लोकेषु कीर्तितम् ॥३०६॥  
 सर्वस्माद्वै कुरुक्षेत्रान्महापुण्या सरस्वती ।  
 ततः पुण्यानि तीर्थानि तीर्थेभ्योऽपि पृथूदकम् ॥३०७॥  
 वरेण्यं सर्वतीर्थानां काशीकोटिफलाधिकम् ।  
 स्मरणाद् गमनाद्वापि स्पर्शनाद्वर्शनादपि ॥३०८॥  
 साक्षात्मुक्तिप्रदं तीर्थं त्रिषु वेदेषु गीयते ।  
 न ततश्चोत्तमं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥३०९॥  
 पापा अपि ततस्तत्र विमुच्येरन् न संशयः ।  
 द्वूरस्थः स्मरणेनापि तस्य शुद्धतमो भवेत् ॥३१०॥  
 पृथूदकान्तर्विख्यातं तीर्थं नाम्ना मधुस्त्रवम् ।  
 तत्र स्नानेन दानेन न पुनर्जन्मभाग् भवेत् ॥३११॥

गच्छेत् पुण्यतमं राजन् देवीतीर्थमनुत्तमम् ।  
 सरस्वत्यारुणा यत्र<sup>१</sup> संगता लोकपावनी ॥३१२॥  
 त्रिरात्रमुषितस्तत्र स्नानं कृत्वा दृढव्रतः ।  
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो महायज्ञांश्च विन्दति ॥३१३॥  
 कुलकोटीः समुद्धतुं क्षमो भवति पुण्यतः ।  
 महच्छुभमवाप्नोति शुद्धि च महतीं नृप ॥३१४॥  
 तत्र तीर्थेऽवकीर्णाख्ये चतुः सामुद्रिकेऽपि च ।  
 सकृदाप्लुत्य यत्पुण्यं लभतेऽह्नाय तच्छृणु ॥३१५॥  
 अब्राह्मणो ब्राह्मणः स्यात् पूर्वत्र जगतीपते ।  
 चतुःसहस्रगोदानं परत्र च लभेद् ध्रुवम् ॥३१६॥  
 शतसाहस्रके तीर्थे तथा साहस्रकेऽपि च ।  
 स्नात्वा वा सकृदाचम्य महत्फलमवाप्नुयात् ॥३१७॥  
 यद्यत् करोति नृपते दानव्रतजपादिकम् ।  
 सहस्रगुणितं पुण्यं भवतीत्यनुशुश्रुम ॥३१८॥  
 विशुद्धे रेणुकातीर्थे तथा तीर्थे विमोचने ।  
 यज्ञेश्वरे च विधिवत् स्नानदानादिभिः शुचिः ॥३१९॥  
 तैजसे वारुणे तीर्थे कुरुतीर्थे विशुद्धिदे ।  
 स्वर्गद्वारे च नरकतीर्थे च<sup>२</sup> ब्रह्मणः स्थले ॥३२०॥  
 रुद्राणीसंनिधौ चैव तथा विश्वेश्वरालये ।  
 पद्मनाभस्य च स्थाने तीर्थे चाखिलदैवते ॥३२१॥  
 तथा पावनतीर्थे च कपिगङ्गाहदैऽपि च ।  
 गङ्गाहदे च कूपे च त्रिकोटीतीर्थसंमिते ॥३२२॥  
 आपगायां स्थाणुवटे वदरीपावने तथा ।  
 इन्द्रमार्गे महाराज आदित्यस्याश्रमे तथा ॥३२३॥  
 सोमतीर्थे दधीचस्य तीर्थे सारस्वतोद्भवे ।  
 कन्याश्रमे संनिहृत्यां संनीतायां नराधिप ॥३२४॥

१. यस्य—रीवाँ । यस्तु०—अयो० । २. वै—मथु०, बड़ो० ।

स्नानं दानं तथा श्राद्धं जपहोमादिकं तथा ।  
 यद्यत् करोति सुकृतं तत्तदक्षयतां व्रजेत् ॥३२५॥  
 यावन्ति सन्ति तीर्थानि पृथिव्यां पृथिवीपते ।  
 तानि सर्वाणि नियतं संनीतानि महात्मभिः ॥३२६॥  
 संनीतेति श्रुता लोके तेनेयं सर्वपावनो ।  
 तस्यां यः कुरुते श्राद्धं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥३२७॥  
 अश्वमेधसहस्रस्य स राजन् पुण्यमाप्नुयात् ।  
 स्नानं दानं तथा श्राद्धं तत्तद्दुष्कृतनाशनम् ॥३२८॥  
 द्वारपालं महायक्षं मच्छ्रुकमनुवजेत् ।  
 अभिवाद्य परिक्रम्य यात्राफलमुवाप्नुयात् ॥३२९॥  
 कोटितीर्थं महीपालं गङ्गाहृदमनुत्तमम् ।  
 गत्वा स्नात्वा च विधिवत् महायज्ञफलं लभेत् ॥३३०॥  
 कुरुक्षेत्रसमं तोर्थं पृथिव्यां नैव विद्यते ।  
 धर्मक्षेत्रमिति प्रोक्तं मुनिश्चेष्ठैः पुरातनैः ॥३३१॥  
 कुरुक्षेत्ररजःस्पर्शात् पापात्मापि द्विवं व्रजेत् ।  
 यावन्ति सन्ति तीर्थानि कुरुक्षेत्रे तु तानि वै ॥३३२॥  
 मनसापि कुरुक्षेत्रं यो गच्छेत् प्रातरुत्थितः ।  
 तस्यापि सर्वपापानि विलीयन्ते न संशयः ॥३३३॥  
 ब्रह्मणो वेदिराख्याता पुण्यभूमिः सनातनी ।  
 पावनं देवयजनं कुरुक्षेत्रमिति स्मृतम् ॥३३४॥  
 यत्र ब्रह्मर्षयो राजन् देवर्षिप्रवरास्तथा ।  
 राजर्षयश्च राजेन्द्रं पुण्यवन्तः समाप्तते ॥३३५॥  
 पश्यन्ति गच्छन्ति वसन्ति ये नराः पुण्यं कुरुक्षेत्रमुपासते च ये<sup>१</sup> ।  
 तेषां जनुः सार्थकमत्र संस्थितौ<sup>२</sup> परे तु दैवेन सदैव विज्चिताः ॥३३६॥  
 ये जनाः सततं राजन् कुरुक्षेत्रे निवासिनः ।  
 किं करोति यमस्तेषां पुण्यराशिनिवासिनाम् ॥३३७॥

१. यत्तद्—रीवाँ । २. तु वै—रीवाँ । तु ये—मथु०, बड़० । ३. संस्तौ—  
 मथु०, बड़० ।

तरन्तुका महापुण्या रन्तुका विश्वपावनी ।  
 तयोर्यदन्तरे क्षेत्रं पवित्रं पापनाशनम् ॥३३८॥  
 रामहृदा यत्र पुण्यास्तथा यक्षो मचक्रुकः ।  
 स्यमन्तपञ्चकं क्षेत्रं तयोरन्तश्च भूपते ॥३३९॥  
 इयमुत्तरवेदिवैं ब्रह्मणो वन्दिता सुरैः ।  
 कुरुक्षेत्रमिति ख्यातं स्थानं विश्वस्य पावनम् ॥३४०॥  
 पञ्चयोजनविस्तीर्णं सरस्वत्याभियाचितम् ।  
 कुरुणा यज्ञशीलेन यत्रोप्तो धर्म उत्तमः ॥३४१॥  
 एतदुद्देशतः प्रोक्तं मया तुभ्यं महीपते ।  
 कुरुक्षेत्रस्य माहत्म्यमत्स्तीर्थान्तरं<sup>२</sup> शृणु ॥३४२॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थ-  
 यात्रायां तीर्थानुकथने ऋग्धिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥



### चतुरधिकशततमोऽध्यायः

#### वशिष्ठ उवाच

यत्रधर्मस्तपश्चक्रे धर्मतीर्थं तदुत्तमम् ।  
 महाधर्मप्रदं भूष गमनात् पापनाशनम् ॥ १ ॥  
 स्नानदानादिभिश्चैव ज्योतिष्ठोमफलप्रदम् ।  
 विष्णुलोकप्रदं साक्षात् सप्तविश्वातिमुक्तिदम् ॥ २ ॥  
 ततः सौगन्धिकवनं ब्रह्मादिसुरसेवितम् ।  
 तपस्विनां भुनीनां च स्थानभूतं सनातनम् ॥ ३ ॥  
 सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोरगसेवितम् ।  
 तत्र गत्वा सर्वपापैर्विमुक्तो भवति क्षणात् ॥ ४ ॥  
 स्नात्वा प्लक्ष<sup>३</sup>सरस्वत्यां पितृदेवार्चने रतः ।  
 सर्वपापविशुद्धः सन्नश्वमेधफलं लभेत् ॥ ५ ॥

१. भूय०—मथु०, बड़० । २. प्रविस्तीर्णोत्तर—अयो० । ३. °पुत्य—अयो० ।

शम्यानिपातषट् के च स्नात्वा नृपतिसत्तम ।  
 सहस्रकपिलादानफलमाप्नोति मानवः ॥ ६ ॥  
 सुगन्धां शतकुम्भां च पञ्चयज्ञं च भूपते ।  
 गत्वा स्नात्वाप्युषित्वा च सत्तर्ति लभते नरः ॥ ७ ॥  
 त्रिशूलखात् तीर्थे च शाकम्भर्या भहीपते ।  
 सुवर्णक्षीमहास्थाने धूमावर्ते तथोत्तमे ॥ ८ ॥  
 रथावर्ते च निवसेत् त्रिरात्रं नियतः शुचिः ।  
 स्नात्वा प्रदक्षिणीकृत्य कोटितीर्थफलं लभेत् ॥ ९ ॥  
 धारानदीजलैः स्नात्वा किमर्थं यमकिङ्करै ।  
 भयमाप्नोति राजेन्द्र सर्वपापविवर्जितः ॥ १० ॥  
 ततो गच्छेन्महातीर्थे गङ्गाद्वारे महागिरौ ।  
 तत्र स्नात्वा कोटितीर्थे कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ ११ ॥  
 उद्धरेत् स्वकुलं चाशु महादानफलं लभेत् ।  
 नागतीर्थं लभतिकां<sup>१</sup> गत्वा स्नात्वा च मानवः ॥ १२ ॥  
 सहस्रकपिलादानफलमाप्नोति तत्क्षणात् ।  
 लभेच्च स्वर्गवासाय<sup>२</sup> पुण्यमक्षयमद्भुतम् ॥ १३ ॥  
 गङ्गायाश्च सरस्वत्याः संगमे रघुसत्तम ।  
 भद्रकर्णहृदे चैव तथा कुबजाश्चके नृप ॥ १४ ॥  
 अरुन्धती वटे चैव स्नात्वा दद्याद् यथाविधि ।  
 गोसहस्रफलं लब्धवा वाजिमेधफलं लभेत् ॥ १५ ॥  
 ब्रह्मावर्तं महापुण्यं यमुनाप्रभवं तथा ।  
 दर्वीसंक्रमणं तीर्थं सिन्धोश्च प्रभवं नृप ॥ १६ ॥  
 वेदां च ऋषिकुल्यां च वासिष्ठं तुङ्गमेवच ।  
 चीरप्रमोक्षणं सन्ध्यां विद्यातीर्थं च भूपते ॥ १७ ॥  
 गत्वा वेतसिकां चैव तीर्थं सुन्दरिकाभिधम् ।  
 ततो ब्रह्मणिकां चैव स्नायात् सुकृतकोटये ॥ १८ ॥

१. °बाण°—रीवाँ । २. भूतिकां च—अयो० । ३. मासाद्य—अयो० ।

काश्मीरमण्डले पुण्या नद्यः पुरुषसत्तम ।  
 यासु स्नानेन दानेन सर्वैः पार्पैविभुच्यते ॥१९॥  
 सर्वेषां योगिनां यत्र पुण्या आश्रममण्डलाः ।  
 प्रत्यक्षं दृश्यते यत्र भगवान् पार्वतीपतिः ॥२०॥  
 मानसस्याथ सरसो द्वारं पुण्यतमं मतम् ।  
 ततश्चोज्जानको रम्यो यवक्रीतस्य यत्स्थलम् ॥२१॥  
 अरुन्धतीवशिष्ठौ च यत्रासाते तपोरतौ ।  
 कुशवांश्च हृदः पुण्यो दिव्यपद्मविराजितः ॥२२॥  
 भृगुतुङ्गो महाशैलो देवगन्धर्वसेवितः ।  
 तत्र गत्वा च स्नात्वा च पापलेशो न विद्यते ॥२३॥  
 वितस्ता पुण्यसलिला पापराशिविनाशिनी ।  
 यस्याः कूले महर्षीणां पुण्या आश्रममण्डलाः ॥२४॥  
 जलाचोपजला चैव सुपुण्या यमुना सरित् ।  
 तासु मज्जनमात्रेण नरः पापाद्विभुच्यते ॥२५॥  
 स गङ्गायां महानद्यां संस्नातः पुण्यकर्मकृत् ।  
 पञ्चरात्रं तटे स्थित्वा पुण्यदेहो भवेन्नरः ॥२६॥  
 तीर्थं विवसनं<sup>१</sup> नाम मैनाके पर्वतोत्तमे ।  
 अस्याधिरोहमात्रेण पुण्यकर्मा भवेन्नरः ॥२७॥  
 ऋषिसेव्याः पुण्यतमा नगाः कनखलादयः ।  
 तत्र पुण्यवहा गङ्गा समर्पिणणसेविता ॥२८॥  
 यत्र सिद्धि परिप्राप्तो ब्रह्मणो मानसः सुतः ।  
 सनत्कुमारो भगवान् पर्वत्रिदशपूजितः ॥२९॥  
 भृगुतुङ्गे महाराज गमनादेव पूयते<sup>२</sup> ।  
 उष्णतोयवहा गङ्गा शीततोयवहा कवचित् ॥३०॥  
 तामुपस्पृश्य सकृदप्यधं विधुनुते नरः ।  
 मुनिः स्थूलशिरा नाम तस्य चाश्रम उत्तमः ॥३१॥

१. विवसनं—मथु०, बडो० । २. भूपते—अयो०, रीवाँ ।

रैभ्यस्य चाश्रमो रम्यः पुण्यतोयहदान्वितः ।  
 उषित्वैतेषु पुण्येषु पुण्यगात्रत्वमाप्नुयात् ॥३२॥  
 उषीरवीजं मैनाकं गिरिं इवेतं च भूपते ।  
 कालशैलमतिक्रम्य ततः स्थानममानुषम् ॥३३॥  
 यत्र सप्तविधा गङ्गा देवदृश्या महानदी ।  
 स्थानं विरजसं पुण्यं यत्राग्निर्भगवान् स्वयम् ॥३४॥  
 मन्दराद्रिश्चन्द्रसितः कल्पद्रुममनोहरः ।  
 यक्षाणां वसतिर्यत्र कुबेरस्य महात्मनः ॥३५॥  
 अनेकशतसाहस्रसंख्या गन्धर्वपुञ्जवाः ।  
 यक्षेशस्य मनोमोदं कुर्वन्ति सुखमासते ॥३६॥  
 अनेकरूपरूचिरा नानाबलपराक्रमाः ।  
 मणिभद्रमुपासीना यक्षराजं महाबलम् ॥३७॥  
 दुर्गमाः पर्वतास्तत्र कुबेरसचिवालयाः ।  
 षड्योजनसमुच्छ्रायः कैलाशश्चापि पर्वतः ॥३८॥  
 देवगन्धर्वसिद्धौघदर्शनौत्कण्ठयद्वद्वनः ।  
 विशाला यत्र नगरी देवगन्धर्वसेविता ॥३९॥  
 यक्षैःकिंपुरुषैश्चापि सुपर्णैर्नार्गसत्तमैः  
 अनेकविवृधैः सेव्या कुबेरसदनोन्मुखैः ॥४०॥  
 यत्र गङ्गा च यमुना दिव्यस्रोतोविराजिता ।  
 पुण्यगन्धवहश्चापि यत्र वाति समीरणः ॥४१॥  
 गन्धमादननामा च गिरीणामुत्तमो गिरिः ।  
 दिव्यधातुद्रवोदगारि॑शोभमानदरीमुखः ॥४२॥  
 मक्षिकादंशमशक्कर्सिंहव्याघ्रविवर्जितः ।  
 नरनारायणौ यत्र तेपाते परमं तपः ॥४३॥  
 पुण्या बदरिका यत्र विशालां नगरीमनु ।  
 कुबेरयक्षराजस्य रम्या३ पुष्करिणी च सा ॥४४॥

१. सर्वतः—रीवाँ । २. द्रवज्ञरी—मथु०, बडो०, । ३. रमा—रीवाँ,  
 मथु०, बडो० ।

बदरीप्रभवा यत्र महाशुभजला नदी ।  
 बालखिल्या महात्मानो यत्र नित्यं तपोरतः ॥४५॥  
 मरीचेः पुलहस्याथ भृगोरञ्जिरसस्तथा ।  
 सामगानेन मुखरा यत्र नित्यं शुभा दिशः ॥४६॥  
 दैत्यस्य नरकाख्यस्य यत्रास्थीनि समंततः ।  
 हिमपाण्डुरवर्णानि विकीर्णान्यभितो दिशम् ॥४७॥  
 पर्वतप्रतिमं इवेतमस्थिकूटं सुरद्विषः ।  
 नरकस्यातुलोच्छायं संततं यत्र शोभते ॥४८॥  
 निपातितोऽसौ देवानां देवेन सुमहीयसा ।  
 • विष्णुना समरे जित्वा तपोबीर्यदुरासदः ॥४९॥  
 दशवर्षसहस्राणि येन तप्तं महत्तपः ।  
 प्रवीरेण पदं दिव्यमैन्द्रं संप्राप्तुमिच्छता ॥५०॥  
 यत्र तेनैव देवेन केशवेन महात्मना ।  
 जले मग्ना मही भूप उद्धृतैकेन पाणिना ॥५१॥  
 महाशृङ्गे समारोप्य युद्धमुग्रं ततः कृतम् ।  
 वराहवपुषा दैत्यं हिरण्याक्षाभिधं छन्ता ॥५२॥  
 तद्विव्यं परमं रस्यं कामर्वाषद्वामावृतम् ।  
 नरनारायणस्थानं गङ्गावीचिसुशीतलम् ॥५३॥  
 अनेकदेवसदनं गन्धर्वगणसेवितम् ।  
 अप्सरोनृत्यतालादिस्वरमूर्छनयाज्ज्वितम् ॥५४॥  
 विशालां बदरीं प्राप्य गङ्गास्रोतसि पावने ।  
 मञ्जनेनात्मना शुद्धो दिव्यदृष्टिर्भवेन्नरः ॥५५॥  
 अमानुषे तु स्थानेऽस्मिन् मानुषो नैव गच्छति ।  
 मधुश्रवफला यत्र पुण्यवृक्षा मनोरमाः ॥५६॥  
 शीतलच्छायया युक्ता मरुलुलितपल्लवाः ।  
 विकचाम्भोजपुष्पौघाः सौरभावृतदिक्कटाः ॥५७॥

मुनीनां दीर्घंतपसां तेजसा चातिरुग्मः ।  
देशोऽसौ पावितस्तुङ्गज्ञावीचिकदम्बकैः ॥५८॥

तपसा श्रद्धया चैव वीर्येण सुगमो गिरिः ।  
गन्धमादननामात्र नरनारायणस्थितिः ॥५९॥

तयोर्दर्शनमात्रेण नरनारायणेशयोः ।  
प्राग्जन्म<sup>१</sup> दुष्कृतं चापि विधुनोति नरैः सकृत् ॥६०॥

गङ्गायाः प्रभवं चापि यमुनाप्रभवं तथा ।  
नरो दृष्ट्वा विमुच्येत महापातकराशितः ॥६१॥

नानेन सदृशी यात्रा नानेन सदृशं तपः ।  
नानेन सदृशं तीर्थं नानेन सदृशं सुखम् ॥६२॥

पुण्यो हिमगिरिः साक्षात् पार्वत्या जनकः स्वयम् ।  
सर्वतो हिमसंव्याप्तो विष्णुष्वाभिपावितः<sup>२</sup> ॥६३॥

तादृशस्तस्य पुत्रोऽपि मैनाको भूभूतांवरः ।  
तयोर्दर्शनमात्रेण पापपुञ्जं पलायते ॥६४॥

मन्दरे सुन्दरे शैले कैलाशे हरसंश्रिते ।  
गन्धमादनशैले च जनैर्गन्तुं न शक्यते ॥६५॥

विना तपोबलं राजन् विना विद्याबलं तथा ।  
विना शौर्यबलं चैव विना शौचबलं तथा ॥६६॥

बद्यर्थमयात्राया नान्ययात्रा प्रशस्यते ।  
सर्वतीर्थमयी चैव सर्वदेवमयी तथा ॥६७॥

यात्रेयं राजराजेन्द्रं राजते सर्वतोऽधिका ।  
तपोवनानि रम्याणि मुनीनामाश्रमाः शुभाः ॥६८॥

अनेकतीर्थगमनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।  
अनेकदेवसंदर्शोऽनेककुण्डावगाहनम् ॥६९॥

तप्तकुण्डेषु दिव्येषु शीतकुण्डेषु च प्रभो ।  
अवगाह्य जनः सद्यो धौतपापचयो भवेत् ॥७०॥

१. आजन्म—रीवाँ । २—२. °भियाचितः—रीवाँ ।

स्थले स्थले च गङ्गायाः स्रोतांसि हिमपर्वते ।  
 विचित्राणि मनोज्ञानि तेषु स्नानेन पूयते ॥७१॥  
 एकधा च द्विधा चैव त्रिधा चैव चतुर्विधा ।  
 पञ्चधा चैव षडधा च सप्तधा चाष्टधा तथा ॥७२॥  
 नवधा दशधा चैव शतधा च सहस्रधा ।  
 विश्वस्य पावनी गङ्गा प्रसूता दिव्यवाहिनी ॥७३॥  
 तस्याः प्रवाहेषु मनोरमेषु पुण्याश्रमस्थानतटोदितेषु ।  
 अनेकवाटीबहुवृक्षशोभानितान्तकान्तेषु सुखावहेषु ॥७४॥  
 कूजद्विहङ्गोत्तमनादितेषु देवाङ्गनाकौतुककारकेषु ।  
 पुण्याप्सरःस्नानसुखावहेषु सुच्छायदेवद्रुमशीतलेषु ॥७५॥  
 कवचिद्विरीभेदनवेगवत्सु कवचिन्महावृक्षलतानुगेषु ।  
 कवचित् सफुटदगण्डशैलच्युतेषु कवचिन्महानिर्जरशोभितेषु ॥७६॥  
 कवचिद्विकीर्णेषु गिरिप्रसंगात् कवचिद्वनेषु प्रसभोदितेषु ।  
 नानाविधानोकहपुष्पराजोसौरभ्यसंभारविभावितेषु ॥७७॥  
 सहस्रधारासुषमाज्जितेषु नृत्यत्तरङ्गावलिशोभितेषु ।  
 सौन्दर्यसंचारसमुद्गतेषु मन्दप्रसारेषु समुन्नतेषु ॥७८॥  
 उच्चावचेषु स्फुरच्छैलधातुप्रसंगतोऽनेकवर्णाश्रितेषु ।  
 \*लताप्रतानान्तरसंगतेषु छायावहेष्वातपभावितेषु ॥७९॥  
 महाहिमानीद्युतिसंगतेषु सुशीतलेष्वद्भुतनादवत्सु ।  
 स्थले स्थले हिमशैले निमज्य पुनर्न जन्मी भवतीह लोके ॥८०॥  
 इत्येव ते महाशौचकारिणां नृप भूयसाम् ।  
 तीर्थानां वैस्वरूपाणि कथितानि मनीषिणे ॥८१॥  
 यस्मिन्देशे यानि तीर्थानि राजन् तदेशजैर्मनुजैः कीर्तितानि ।  
 तानि प्रकर्तव्यतमानि भूयो विना विचारं देहपावित्र्यकामैः ॥८२॥  
 भूयांसि भूमौ तीर्थानि दिक्षु चैव विदिक्षु च ।  
 क्षेत्राणि सरहस्यानि वनानि विविधानि च ॥८३॥

\* अतः परं १०९ अध्यायस्य ९६ श्लोकं यावत् खण्डितः पाठः—अयो० ।  
 २० तदेशीयै—मथु०, बड़० ।

न तेषां महिमा राजन् कल्पकोटिशतैरपि ।  
 शक्यते कथितुं भूयो मयाचान्येन वा क्वचित् ॥८४॥  
 सर्वेषामेव तीर्थनामेक एव समुच्चयः ।  
 श्रीमद्विष्णुपदीनाम कोटिपापापहारिणी ॥८५॥  
 न गङ्गाया समं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।  
 यस्याः संदर्शनादेव नरकं नैव पश्यति ॥८६॥

किंपुनः स्पर्शनात् स्नानात्तथैवाचमनादपि ।  
 अनेकधास्य द्वुरितं विनिहन्ति हि जाह्नवी ॥८७॥  
 ॐ नमो विष्णुपद्मै ते गङ्गायै सततं नमः ।  
 इतिब्रुवाणोऽपि जनः सर्वं पायं व्यपोहति ॥८८॥

गङ्गाया अधिकं पुण्यं यमुनायावगाहतः ।  
 सप्तब्रह्माण्डभेत्वी सा कालिन्दी कृष्णरूपिणी ॥८९॥

कलिन्दगिरिसंभूता कोटिपापविनाशिनी ।  
 यमुना शोलिता येन यमलोकं न स व्रजेत् ॥९०॥  
 स्मरणादेव कालिन्दा धूतपापो विमुच्यते ।  
 किं पुनर्दर्शनात् स्पर्शात् स्नानादाचमनादपि ॥९१॥

इयं पुराणतमिका गङ्गातोऽपि गरीयसी ।  
 यमुना यमभीतिघ्नी सेविता सज्जनैः सदा ॥९२॥

एकतः सर्वतीर्थानि एकतः पुण्यकोटयः ।  
 एकतः सकला यात्रा यमुना चैकतःस्थिता ॥९३॥

कृष्णपत्नी कृष्णसमा कलिकल्मषनाशिनी ।  
 करुणामूर्तिरतुला कल्याणगणकारिणी ॥९४॥

ब्रह्मानन्दमयी साक्षात् गङ्गागुणगणोत्करा ।  
 प्रेमानन्दमयी पूर्णा यमुना तु स्वयं पुरा ॥९५॥

कृष्णस्य यमुनायाश्च न भेदस्तत्त्वतो मतः ।  
 शृङ्गाररसरूपेयं कृष्णसायुज्यदायिनी ॥९६॥

कृष्णरूपा रसमयी वनमालाविभूषिता ।  
 भक्तोद्वारकरा दिव्यदोलाकेलिविधायिनी ॥९७॥

नानया सदृशं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।  
 न यात्रान्तरमेतस्या यात्रया सदृशी भवेत् ॥१८॥  
 सर्वत्र यमुना पुण्या स्नानादाचमनादपि ।  
 मथुरातलगा त्वेषा स्वयं कृष्णस्वरूपिणी ॥१९॥  
 तीर्थानि खलु सत्येव पृथिव्यां सुबहून्यपि ।  
 मथुरास्नानसदृशं न पुण्यं कुत्रचिन्मतम् ॥२०॥  
 यमुनाजलकल्लोलरमणीयमहातटा ।  
 मथुरादर्शनादेव मथनाति खलु पातकम् ॥२१॥  
 वसन्त यस्य प्रति रोमकूपमण्डानि सप्तावरणान्वितानि ।  
 ध्यायन्ति यद्रूपमनन्यनिष्ठास्तपःसमाधिप्रयता मुनीन्द्राः ॥२२॥  
 स वै पुरुषधौरेयो यदाज्ञायां प्रवर्तते ।  
 स्वयं विहरते सोऽत्र भगवान् पुरुषोत्तमः ॥२३॥  
 सेयं मधुपुरी धन्या पुरीणामुत्तमोत्तमा ।  
 प्रणवाकारतां नित्यं बिश्रती<sup>१</sup> शुभगाकृतिः ॥२४॥  
 अकारारात्मोत्तरा कोटिरुकारात्मा स्वयं पुरी ।  
 मकारो दक्षिणा कोटिरुद्विन्दुकला सरित् ॥२५॥  
 वृत्ता द्वादशसङ्ख्याकर्वनैरुपवनैरपि ।  
 विशयोजनविस्तीर्णमण्डलेनाभिमण्डिता ॥२६॥  
 सेव्या मधुपुरी नित्यं सद्भूः कृष्णपरायणैः ।  
 अस्यां न कलिदोषाणां संभवोऽद्यापि दृश्यते ॥२७॥  
 कृष्णलीलानिजस्थानं नरनारीगणैर्वृता ।  
 नित्योत्सर्वैर्नित्यसुखैर्नित्यप्रेमविभूषितैः ॥२८॥  
 साक्षाच्चतुर्भुजाकारैराकीटपशुपक्षिभिः ।  
 सेविता सुखदा नित्यं धन्या सा मथुरापुरी ॥२९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे राजस्तीर्थयात्रायां  
 चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥२४॥

## पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

### राजोवाच

मथुरायां प्रसिद्धानि तीर्थानि वद मे मुने ।  
येषु मज्जनमात्रेण नरः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

### वशिष्ठ उवाच

वसन्ति सर्वतीर्थानि मथुरायां जनाधिप ।  
सर्वदैव विशेषात्तु चातुर्मास्ये प्रशस्यता ॥ २ ॥  
सप्तद्विष्टवती भूमिस्तस्यां तीर्थानि यान्यपि ।  
तानि सर्वाणि मथुरामायान्ति शयिते हरौ ॥ ३ ॥  
कार्तिके मासि यत्पुण्यं मार्गशीर्षे निगद्यते ।  
गुप्तस्नानं गुप्तदानं यत्रात्यन्तं प्रशस्यते ॥ ४ ॥  
मार्गशीर्ष उषःकाले आप्लुत्य यामुनेऽभसि ।  
सर्वपापविनिर्मुक्तः कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५ ॥  
तपःसमाधिनियमैः प्राणायामायुतेन च ।  
योगेनात्मैकनिष्ठानां या गतिः सा नृणामिह ॥ ६ ॥  
अश्वमेधादियागोत्थपुण्यकोटिशतेन च ।  
या गतिलंभ्यते सात्र मथुरायां निवासतः ॥ ७ ॥  
अस्ति तत्र रमाकान्तः केशवो नाम कीर्तितः ।  
तस्य संदर्शनादेव न पुनर्जायिते नरः ॥ ८ ॥  
दिव्यतेजोमयी मूर्तिः केशवस्य महात्मनः ।  
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च तां लोकस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ ९ ॥  
कार्तिके केशवस्याग्रे दीपमालां करोति यः ।  
इहामुत्र च वै तस्य तिमिरं नैव विद्यते ॥ १० ॥  
रविविम्बप्रतीकाशं विमानमधिरूप्य सः ।  
दिव्यतेजोमये लोके क्रीडतेऽप्सरसां गणैः ॥ ११ ॥

कृत्वा केशवदेवस्य दर्शनं सप्तजन्मजम् ।  
 विधुनोति नरः पापं लभेत् सायुज्यमाशु सः ॥१२॥  
 स्नात्वा श्रीयामुने तोये परिक्रम्य च केशवम् ।  
 कुलकोटि समुद्धृत्य स्वयं विष्णुमयो भवेत् ॥१३॥  
 यावन्तश्चरणन्यासाः केशवस्य प्रदक्षिणे ।  
 तावतां वाजिमेधानां फलं प्राप्नोति मानुषः ॥१४॥  
 यावन्ति लोके पुण्यानि वाजिमेधादिजान्यपि ।  
 तावन्ति केशवार्चायास्तुलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१५॥  
 अकृत्वा मथुरास्नानमदृष्ट्वा केशवं हरिम् ।  
 अगत्वा ब्रजभूमि च किं जन्म सफलं भवेत् ॥१६॥  
 शिवलिङ्गं च भूतेशं तत्रस्थं पापनाशनम् ।  
 विनास्य दर्शनं राजन् मथुराफलदायकम् ॥१७॥  
 प्रमथादीन् समादाय सर्वान् भूतगणान् सदा ।  
 मथुरामावसत्येष भूतेशो लोकशङ्करः ॥१८॥  
 दर्शनात् स्पर्शनात्तस्य पापकोटीर्विदाहयेत्<sup>१</sup> ।  
 इह भोगान् परिप्राप्य परत्र खलु मुच्यते ॥१९॥  
 वनानि द्वादशैवात्र तानि संग्रहतः शृणु ।  
 यत्र श्रीकृष्णचन्द्रस्य लीलाः सर्वाः सुखावहाः ॥२०॥  
 पूर्वं मधुवनं प्रोक्तं हरेः क्रीडाकरं वनम् ।  
 दृष्ट्वा प्रदक्षिणीकृत्य तोषयेन्मधुसूदनम् ॥२१॥  
 ततस्तालवनं नाम वनानामुत्तमं हि तत्<sup>२</sup> ।  
 तस्याभिगमनादेव सदयो मुक्तिरवाप्यते ॥२२॥  
 वनं कुमुदसंज्ञं च महाकासारवेष्टितम् ।  
 उत्फुल्लकुमुदामोदसुवासितदिग्न्तरम् ॥२३॥  
 ततः कामवनं नाम कामदं सर्वजन्मिनाम् ।  
 विमलोदकसंज्ञेन सरसा विमलीकृतम् ॥२४॥  
 वहुलावनसंज्ञं च तत्रास्ति रुचिरं वनम् ।  
 वहुला नाम सा धेनुः कृष्णहस्ता सुमोदिता ॥२५॥

१. पापकोटिर्विहायते—रीवाँ, २. हितम्—रीवाँ।

तथाधिवासितं तस्याः खुराङ्गैरभिरोचितम् ।  
 अनेककुञ्जपूजाद्यं कुसुमौघसुवासितम् ॥२६॥

ततो भद्रवनं नाम यमुनापरपारगम् ।  
 तस्याभिगमनाद्राजन् विष्णुप्रियतमो भवेत् ॥२७॥

खादिरं वनभाश्चर्यकरं खदिरमण्डितम् ।  
 यत्र शङ्खादिरं गोपीमुखाधररुचावहम् ॥२८॥

बूहद्वनं महाराज बलभद्रमुदावहम् ।  
 अनेकाश्चर्यसदनं कृष्णलीलारसावहम् ॥२९॥

बाललीलाविनोदेन रमते यत्र केशिहा ।  
 तस्याभिगमनादेव लीलारुचिमवाप्नुयात् ॥३०॥

लोहजङ्घवनं रम्यं लोहजङ्घाभिरक्षितम् ।  
 स्नानदानादिविधिभिर्वाजिमेधफलप्रदम् ॥३१॥

ततो बिल्ववनं नाम वनानामुत्तमं वनम् ।  
 तस्याभिगमनादेव कृष्णप्रेमाणमाप्नुयात् ॥३२॥

ततो भाण्डीरसंज्ञं तत् सर्वाश्चर्यमयं वनम् ।  
 तत्र गत्वा हर्दि ध्यायेत् दिव्यलीलाविभूषितम् ॥३३॥

‘भाण्डीरवटवृक्षस्य छायामाश्रित्य मानवः ।  
 विमुच्चति परीतापं त्रिविधं हृदयस्थितम्’ ॥३४॥

वृन्दावनं सुरुचिरं वृन्दादेव्याभिरक्षितम् ।  
 यस्य दर्शनमात्रेण प्रारब्धमपि नाशयेत् ॥३५॥

केशिपट्टे नरः स्नात्वा दत्त्वा चाश्वं द्विजन्मने ।  
 न पुनर्जायते जन्तुर्मातृगर्भे सुदारुणे ॥३६॥

चीरघट्टे नरः स्नात्वा कदम्बं परिपूजयेत् ।  
 वासोऽलङ्घारगन्धाद्यैर्यत्र रुढो हरिः स्वयम् ॥३७॥

स्त्रीणां वस्त्राण्युपादाय स्नान्तीनां यामुनेऽभसि ।  
 दिव्यं वरं स ताभ्यश्च दत्तवान् सर्वकामदः ॥३८॥

कालीयस्य हृदस्तत्र यमुना स्रोतसोऽन्तरे ।  
 तत्रस्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधमवाप्नुयात् ॥३९॥

यत्र प्राचीमुखं स्तोतः कालिन्द्या लोकपावनम् ।

तत्र स्नात्वा क्षणमपि स्थित्वा भाग्यनिधिर्भवेत् ॥४०॥

पञ्चरात्रोषितस्तत्र गोविन्दं योऽनुपश्यति ।

न तस्य लोके किमपि कर्तव्यमवशिष्यते ॥४१॥

‘गोपेश्वराभिधं तत्र शिवलिङ्गं प्रतिष्ठितम् ।

दृष्टूवा स्पृष्टूवा च संपूज्य सर्वदुःखातिगो भवेत्’ ॥४२॥

ततो गोवर्द्धनगिरिं गच्छेद्रत्नशिलामयम् ।

योजनद्वयमात्रोच्चर्मथुरापश्चिमे स्थितम् ॥४३॥

अनेकनिर्जरस्त्रावमनोज्ञोपत्यकान्वितम् ।

अधित्यकासमुद्भासिरत्नशृङ्खविराजितम् ॥४४॥

द्रुमगुल्मलतावृन्दसमुल्लासिप्रसूनकैः ।

सौरभ्यहृतभृङ्गौघैः<sup>३</sup> पूर्यमाणं समंततः ॥४५॥

अनेककन्दरारम्यगह्वरोदीर्णपादपम् ।

निकुञ्जपुञ्जमधुरं माधुरीलतिकाज्जितम् ॥४६॥

धातुप्रस्त्रवणानेकवर्णकान्तिविभूषितम् ।

सौभाग्यमिव भूमेस्तत्सर्वतो माधुरीमयम् ॥४७॥

सर्वाधिकोच्छ्रयभरेण विभूषिताङ्गं नानानिकुञ्जरमणीयमुदाररूपम् ।

कूजद्विजालिकुलज्ञाङ्कृतिपूर्यमाणं भूयो दरीनिलयदोपितरत्नदोपम् ॥४८॥

सायंसमुद्दगतमहामहसंचितानां नानाविधिप्रचुरदिव्यमहौषधीनाम् ।

ताभिर्निरस्ततिमिरैः स्वगृहान्तकुञ्जपुञ्जैः कुत्तहलितगोपवधूसमूहम् ॥४९॥

चत्वारोऽत्र हृदा राजन् प्रावप्रत्यग्दक्षिणोत्तरः ।

तेषु स्नात्वा नरो गच्छेहिव्यं वैकुण्ठमन्दिरम् ॥५०॥

गोवर्धनं नाम गिरिं सुधन्यं यो दीपयेत् कार्तिकमासि दीपैः ।

दीपोत्सवे च त्रिदिनं विशेषान्नं तस्य वै तामसलोकवासः ॥५१॥

गोवर्द्धनाद्रौ क्रियमाणमन्यर्थन्यैर्जनैः पश्यति यः प्रदीपम् ।

सनिस्तरेत्तामसलोकवासात् व्रजेच्च शोभ्रं भगवन्निकेतम् ॥५२॥

१-१. अयं श्लोको नास्ति—रीवाँ । २. शृङ्गोच्चैः—रीवाँ ।

सर्वाश्चर्यमयो लोके श्रीमान् गोवर्द्धनाचलः ।  
दृष्ट्वा परिक्रमेतं यः स निस्तरति दुर्गतिम् ॥५३॥  
यमुनायाश्च तीर्थानि शृणुष्वावहितो नृप ।  
तेषु स्नानेन दानेन न भूयो जन्मभागभवेत् ॥५४॥  
संसारमोक्षणं नाम तीर्थं तत्रोत्तरं नृप ।  
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च संसारान्मुच्यते जनः ॥५५॥  
प्रयागतीर्थं तत्रैव विश्रुतं पापनाशनम् ।  
स्नानदानादिभियत्र प्रयागादधिकं फलम् ॥५६॥  
तोर्थं कनखलं नाम यमुनायां प्रतिष्ठितम् ।  
स्नात्वा दत्त्वा च लभते फलं कनखलाधिकम् ॥५७॥  
ततस्तिन्दुकतीर्थाख्यं यामुनं तीर्थमुत्तमम् ।  
यत्र स्नात्वा नरो भूयो मातृयोर्नि न विन्दति ॥५८॥  
सूर्यतीर्थं महाराज तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।  
यत्र स्नात्वा नरो राजन् सूर्यवज्जायते रुचा ॥५९॥  
श्रुवतीर्थं विशेषेण स्नानमात्रेण शुद्धिदम् ।  
निर्वपेत् तत्र पिण्डांश्च पितृणां मोक्षहेतवे ॥६०॥  
तीर्थराजाभिधं तीर्थं सर्वतीर्थैघपावनम् ।  
यत्र स्नात्वा नरो राजन् महतों शुद्धिमाप्नुयात् ॥६१॥  
ऋषितीर्थं महाराज ऋषितापसमण्डितम् ।  
यत्र स्नानविधानेन ऋषीणां ज्ञानमाप्नुयात् ॥६२॥  
मोक्षतीर्थं महापुण्यं मथुरायां सुविश्रुतम् ।  
तत्राप्लुत्य नरो राजन् भोगं मोक्षं च विन्दति ॥६३॥  
कोटितीर्थाभिधं तीर्थं कोटितीर्थमयं नृप ।  
स्नानदानादिभिः सदयः पृथ्वीप्रादक्षयपुण्यदम् ॥६४॥  
वायुतीर्थं च राजेन्द्र स्नात्वा शुद्धतनुर्भवेत् ।  
यत्र सर्वजवावाप्त्यै वायुनाचरितं तपः ॥६५॥  
इत्थं दक्षिणकोटिस्थान्येतानि तत्र भूपते ।  
तीर्थान्युक्तानि सर्वाणि मया यामुनपाथसि ॥६६॥

अथोत्तरां कोटिमधिष्ठितानि तीर्थानि राजन् शृणु मन्मुखेन ।  
 नानेन दानेन च तर्पणेन सदयो मनुष्यस्य शुभप्रदानि ॥६७॥

आदौ संयमनं तीर्थं धारापतनकं ततः ।  
 नागतीर्थं ततः प्रोक्तं घण्टाभरणकं ततः ॥६८॥

ब्रह्मलोकाभिधं तीर्थं सोमतीर्थं ततः परम् ।  
 सरस्वतीदीपनकं<sup>१</sup> तीर्थानामुत्तमं नृप ॥६९॥

दशाश्वमेधसंज्ञं च तीर्थं देवर्षिपूजितम् ।  
 ततश्च मानसं तीर्थं विघ्नराजाभिधं ततः ॥७०॥

कोटितीर्थं ततः प्रोक्तं शिवक्षेत्रं ततः परम् ।  
 एषु स्नानेन दानेन नरो मुच्येत पातकात् ॥७१॥

विशेषतश्च माहात्म्यमेतेषां संप्रतिष्ठितम् ।  
 येषां मध्ये तु शुभदा विश्रान्तिः संप्रतिष्ठिता ॥७२॥

गतश्रमेण विप्रेण मुनिना तीर्थसेविना ।  
 नित्यमाराधिता पूर्वं विश्रान्तिः पापनाशिनी ॥७३॥

पुरा कंसं धातयित्वा यत्र विश्रमितो हरिः ।  
 निजगोपगणैः साद्वं दृष्टो माधुरमानुषैः ॥७४॥

देवाङ्गनाभिर्देवैश्च बलभद्रेण संयुतः ।  
 दृष्ट्वा<sup>२</sup> संपूजितश्चैव कलपद्रुमभवैः शुभैः ॥७५॥

सातवतैश्च जनैर्भक्तैः सानन्दमभिवीक्षितः ।  
 पीताम्बरधरः श्रीमान् शिखिपिच्छविभूषितः ॥७६॥

सर्वदा मथुरावासो विश्रान्तिस्नानमेव च ।  
 गतश्रमपरिक्रान्ति<sup>३</sup>स्त्रयमेतत् सुदुर्लभम् ॥७७॥

देवानामपि राजेन्द्र किंपुनर्मर्त्यवासिनाम् ।  
 दिने दिने महापुण्यं विश्रान्तिस्नानमाचरन् ॥७८॥

जीवन्मुक्तो भवेन्मर्त्यः स्वर्गस्थैरपि वन्दितः ।  
 मनसा मथुरावासं प्रातरुत्थाय मानवः ॥७९॥

१. °पतनकं—मथु०, बड़० । २. दृष्टः—मथु०, बड़० । ३. “गतश्रमः ऋषिविशेषस्तस्य परिक्रान्तिः प्रदक्षिणा” टि०—मथु०, बड़० ।

यः संस्मरति पुण्यात्मा सोऽपि धन्यो न संशयः ।  
 किं पुनर्ये वसन्त्यत्र विष्णुभक्तिपरायणाः ॥८०॥  
 भूतेश्वरं शिवं दृष्ट्वा महाविद्यां च मातरम् ।  
 दीर्घविष्णुं तथा नत्वा समभ्यचर्यं च केशवम् ॥८१॥  
 मथुरामावसन्मत्यो विश्रान्तिस्नानतत्परः ।  
 सर्वपापचयं दग्धा<sup>१</sup> मर्त्यं एव न संशयः ॥८२॥  
 कोटिद्वये नरः स्नानत्वा दत्त्वा चैव द्विजातये ।  
 यथाशक्ति सुवर्णं गां सर्वपार्पणिमुच्यते ॥८३॥  
 मथुरामण्डलं राजन् सर्वपापप्रणाशनम् ।  
 स्मरणादेव द्वूरस्थं पुनाति सकलं नरम् ॥८४॥  
 हरिस्तु पश्चिमे तत्र गोविन्दश्चोत्तरेण हि ।  
 पूर्वे गताश्रमो पुण्यो वाराहो दक्षिणे स्थितः ॥८५॥  
 तयोर्मध्ये महत्क्षेत्रं पवित्रं पापनाशनम् ।  
 माथुरं<sup>२</sup> मण्डलं नाम देवानामपि वाञ्छितम् ॥८६॥  
 अद्वचन्द्राकृति क्षेत्रं तन्मध्ये लोकविश्रुतम् ।  
 मण्डले सारभूतं तन्महासौभाग्यवर्द्धनम् ॥८७॥  
 तत्र ये मनुजाः पुण्याः पशुपक्ष्यन्त्यजा<sup>३</sup> अपि ।  
 म्रियन्ते मुक्तिभाजस्ते व्योम्निं भूमौ जलेऽपि वा ॥८८॥  
 न ते क्रियामपेक्षन्ते दाहाद्यां वेदविश्रुताम् ।  
 मथुरामरणादेव मुक्ताः कल्याणभागिनः ॥८९॥  
 परिक्रमन्ति ये पुण्यां मथुरां लोकवन्दिताम् ।  
 कार्तिके शुक्रनवमीमक्षयाख्यामुपेत्य तु ॥९०॥  
 न तेषां मातृगर्भान्तःप्रवेशो भवति ध्रुवम् ।  
 अपि पापात्पतरास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥९१॥  
 अनुज्ञाय हनूमन्तं वायुपुत्रं महाबलम् ।  
 नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य तीर्थयात्रां समारभेत् ॥९२॥

१. °पापविशुद्धात्मा—मथु०, बड़०० । २. माधुरं—रीवाँ । ३. °पक्ष्यन्तिजा—  
 मथु०, बड़०० ।

पद्मनाभं च देवेशं दीर्घविष्णुं महाप्रभुम् ।  
 देवीं वसुमतीं चैव तथा चैवापराजिताम् ॥१३॥  
 कंसवासनिकां देवीं वधूटों च महेश्वरीम् ।  
 गृहदेवोस्तथा सर्वा वसुदेवोश्च भव्यहा ॥१४॥  
 गत्वा दक्षिणकोटि च स्नात्वा संध्यामुपास्य च ।  
 संतर्प्य देवर्षिपितृं स्तोर्थयात्रां समाचरेत् ॥१५॥  
 इच्छुवासां वत्सपुत्रं गत्वा पञ्चस्थलीं चरेत् ।  
 अर्कस्थलं प्रथमतो वीरस्थलमनुत्तमम् ॥१६॥  
 कुशस्थलं ततो भूयः पुण्यस्थलमतः परम् ।  
 महास्थलं च राजेन्द्र शिवं सिद्धिमुखं तथा ॥१७॥  
 हयमूर्कित ततो गत्वा गच्छेत् सिन्दूरयावकौ ।  
 मलिलको समनुव्रज्य गच्छेत् कादम्बखण्डिकाम् ॥१८॥  
 चर्चिकस्य<sup>१</sup> स्पृशां चैव स्पृशां वा वर्षिखातकम्<sup>३</sup> ।  
 भूतेश्वरं महादेवं सेतुबन्धं ततो हरेः ॥१९॥  
 बालहृदं महापुण्यं कुवकुटक्रीडनं पुनः ।  
 स्तम्भोच्चयं तल्पगृहं देवकीवसुदेवयोः ॥२०॥  
 तथा नारायणस्थलं सर्वदेवालयं तथा ।  
 विघ्नराजं गणपतिं कुब्जिकां वामनां तथा ॥२१॥  
 महाविघ्नेश्वरीस्थानं तथादेवीं प्रभावतीम् ।  
 संकेतकुण्डमेवापि तथा संकेतकेश्वरीम् ॥२२॥  
 संकेतकेशीकुण्डं च गोकर्णं च सदाशिवम् ।  
 सरस्वतीं विघ्नराजं गङ्गारुद्रमहालयम् ॥२३॥  
 तथैव चोत्तरां कोटि गणेश्वरमतः परम् ।  
 द्यूतस्थानं तथाविष्णोर्गर्भितीर्थं तथैव च ॥२४॥  
 भद्रेश्वरस्य तीर्थं च सोमेशं सोमतीर्थकम् ।  
 सरस्वतीसंगमं च घण्टाभरणमेव च ॥२५॥

१. सिद्धमुखं—मथु०, बड़ो० । २. चर्चिकाम°—मथु०, बड़ो० । ३. वर्ष°—  
मथु०, बड़ो० ।

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं तथा गरुडकेशवम् ।  
 धारापतनकं तीर्थं तीर्थं वैकुण्ठसंज्ञकम् ॥१०६॥  
 खण्डचैलकमेवापि तथा मन्दाकिनीमपि ।  
 संयमनं चासिकुण्डं नागतीर्थं तथैव च ॥१०७॥  
 अभिमुक्तेश्वरं चैव वैलक्षण्यगरुडं तथा ।  
 गच्छेदनुक्रमेणैव परिक्रमविधौ शुचिः ॥१०८॥

एवं परिक्रम्य पुराणपूरुषं प्रियां पुरीं तां मथुराभिधानिकाम् ।  
 स्नात्वा च विश्रान्तिजले गतश्रमं' मुहुः परिक्रम्य नरो विमुच्यते ॥१०९॥  
 तीर्थानि सन्ति बहुशो जनपापपुञ्जदाहोद्धुराणिधरणीवलये परन्तु ।  
 केनोपमास्ति मथुराभगवन्नगर्याः कृष्णः स्वयं विहरति प्रणयेन यस्याम् ॥१०

जन्मतो मरणाद्वाहाद्विवाहादुपवीततः ।  
 दीक्षातोऽवभृथाच्चापि स्नानाद्वानादुपोषणात् ॥१११॥  
 दशधा मथुरा नृणां कुरुते बहुलां श्रियम् ।  
 भुक्ति मुक्ति तथैश्वर्यं राज्यं स्वाराज्यमेव च ॥११२॥  
 नानया सदृशं स्थानं त्रैलोक्ये चापि विद्यते ।  
 तस्यां संवर्ततां नृणां कृष्णप्रेमोदयो भवेत् ॥११३॥  
 स्नात्वा विश्रान्तिपयसा समभ्यर्च्यं च केशवम् ।  
 एकेनाह्ना नरो गच्छेद् दुर्लभं तद्वरेः पदम् ॥११४॥  
 राजन् द्रष्टास्यनेकानि स्थानानि धरणी तले ।  
 माथुरं मण्डलं दृष्ट्वा तृप्तिं यास्यसि चेतसि ॥११५॥

इति श्रीमद्बादिरामायणे ब्रह्मभुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथ-  
 तीर्थयात्रायां पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

## षडधिकशततमोऽध्यायः

### वशिष्ठ उवाच

अक्रूरतीर्थं तत्रैव विख्यातं यमुनाम्भसि ।  
 तस्य माहात्म्यमतुलं मया वक्तुं न शक्यते ॥ १ ॥  
 शेषशश्यास्थितं दृष्ट्वा भगवन्तं सनातनम् ।  
 यत्र प्राप मुदं पूर्णमक्रूरो नाम यादवः ॥ २ ॥  
 स्नानादानाच्च होमाच्च पिण्डनिर्वपणातथा ।  
 विप्राणां भोजनाच्चैव ध्रुवं मुच्येत पातकैः ॥ ३ ॥  
 किमर्थं सेव्यते काशी कुरुक्षेत्रं च किंफलम् ।  
 अक्रूराख्ये महातीर्थं सकृत् स्नायाद् यदानरः ॥ ४ ॥  
 नातः परतरं तीर्थं पुण्यं नातः परं नृप ।  
 कार्तिके शुक्लद्वादश्यां यदि स्नायादिह प्रभो ॥ ५ ॥  
 सकृत् संस्नानमात्रेण कोटियज्ञफलं लभेत् ।  
 पूर्णिमायां विशेषेण स्नानदानोऽद्वं फलम् ॥ ६ ॥  
 नरः संप्राप्य वसुधां किं नु शोचति मुक्तये ।  
 सकृन्मज्जनमात्रेण अक्रूरो दृष्टवान् हरिम् ॥ ७ ॥  
 यदचावद्रूपसंपन्नं साक्षाच्छ्रीपुरुषोत्तमम् ।  
 तत्तीर्थसदृशं लोके न तीर्थान्तरमिष्यते ॥ ८ ॥  
 ध्रुवस्थाने तथाक्रूरे कूपे सप्तसमुद्रके ।  
 यो नरः कुस्ते श्राद्धं तस्य मुक्ताः पितामहाः ॥ ९ ॥  
 कालियस्य हृदस्तत्र यमुनायां प्रविश्रुतः ।  
 तत्र संस्नानमात्रेण नरो मुच्येत संसूतेः ॥ १० ॥  
 मरणान्मुक्तिमिच्छन्ति पशुपक्ष्यन्त्यजा<sup>०</sup> अपि ।  
 एकां रात्रि तत्र वसेत् स्नानोपोषणतत्परः ॥ ११ ॥  
 कालियस्यैव दमनं भावयानो दिवानिशम् ।  
 स मुक्तो मनुजो राजन् घोरात् संसारसागरात् ॥ १२ ॥

<sup>०</sup>पक्ष्यन्तिजा—मथु०, बड़० ।

नमो गोविन्ददेवाय कृष्णाय परमात्मने ।  
 नमो नटाय नव्याय कालियव्यालमर्दिने ॥१३॥  
 इत्युच्चारपरो लोकः क्षणं वृन्दावने स्थितः ।  
 योगिनामप्यलभ्यं तत् स्थानमाप्नोति तत्क्षणात् ॥१४॥  
 केशितीर्थं च तत्रैव श्लोकये विश्रुतं नृप ।  
 तत्र मज्जनमात्रेण निस्तुलं फलमाप्नुयात् ॥१५॥  
 किमर्थमश्वमेधादीन् यागानाचरसि प्रभो ।  
 किमर्थं पृच्छसे चैव तीर्थान्यन्यानि भूपते ॥१६॥  
 श्रीमद्वृन्दावने दिव्यं केशितीर्थं मुदावहम् ।  
 तत्र मज्जनमात्रेण चतुर्वर्गं प्रसाधय ॥१७॥

माकेशि तीर्थे विनिमज्ज्य राजन् स्वं स्वं फलं धारय मानसे त्वम् ।  
 यत्संसृतौ संसरतां जनानां मुक्तिं प्रयच्छन्नपि लज्जते हृदि ॥१८॥  
 यत्रासुरः केशिनामा महौजाः पुरन्दराद्याखिलदेवजैत्रः ।  
 क्षणेन नारायणहस्तपद्मस्पर्शेन मुक्तः सहसोद्गतासुः ॥१९॥  
 तत्रातुले तीर्थवरे च विष्णोः पिण्डं विनिष्पात्य हितः पितृणाम् ।  
 संतारयेत् स्वं कुलमेकविंशाच्छ्रुद्धान्वितो ब्राह्मणभोजनाद्यैः ॥२०॥

कुरुक्षेत्रे च यत्पुण्यं गयायां चैव भूपते ।  
 ततोऽधिकतरं पुण्यं केशितीर्थेऽवगाहनात् ॥२१॥  
 केशितीर्थे सकृत्स्नात्वा दत्वा चाश्वं द्विजन्मने ।  
 अश्वमेधसमं पुण्यं तत्क्षणाल्लभते नृप ॥२२॥  
 किमर्थं सेव्यते काशी किमर्थं सेव्यते गया ।  
 किमर्थं च कुरुक्षेत्रं केशितीर्थे निमज्ज्य तु ॥२३॥

पशुपक्ष्यन्त्यजानामप्यत्र मुक्तिः सनातनी ।  
 पश्यतां सर्वदेवानां यत्र केशी विमोचितः ॥२४॥  
 गायन्ति निगमा सर्वे काशीजनविमुक्तिदा ।  
 केशितीर्थगुणान् वक्तुमशक्ता एव ते नृप ॥२५॥  
 गोवर्द्धने रहस्यानि स्थानानि धरणीतले ।  
 तानि वक्तुं न शक्तोऽहं कल्पकोटिशतैरपि ॥२६॥

यत्र सा मानसी गङ्गा देवानामपि दुर्लभा ।  
 तस्यां स्नात्वा च दत्त्वा च कोटियज्जफलाधिकम् ॥२७॥  
 फलं लभस्व राजेन्द्र कृत्वा शैलं प्रदक्षिणम् ।  
 अभ्यर्थ्य हरिदेवं च पुनर्जन्म न विद्यते ॥२८॥  
 पुण्डरीकं नरो गत्वा स्नात्वा कुण्डेऽतिपावने ।  
 पुण्डरीकं च संयोज्य प्रयाहि हयमेधिताम् ॥२९॥  
 नाम्ना पापहरं तत्र कुण्डं विमलपाथसम् ।  
 तत्र स्नात्वा महीपालं पायं किमनुशोचसि ॥३०॥  
 स्नात्वा सांकर्षणे कुण्डे संकर्षणसुखप्रदे ।  
 यत्र स्नानेन दानेन धूतपापो भवेन्नरः ॥३१॥  
 इन्द्रतीर्थे नरः स्नात्वा मखस्थाने च गोदुहाम् ।  
 महदैश्वर्यमाप्नोति गोसहस्रं च विन्दति ॥३२॥  
 यत्रेन्द्रयज्ञो विहृतः कृष्णेनादभुतकीर्तिना ।  
 दत्त्वा च गिरये पूजां सोऽन्नकूट इति स्फुटः ॥३३॥  
 गावो विप्रास्तथा देवां वैष्णवा ऋषयस्तथा ।  
 पूजिता नन्दराजेन यत्र कृष्णोपदेशतः ॥३४॥  
 तत्र संतर्प्य मनुजो देवर्षिस्वपितामहान् ।  
 शतसोमोद्भूवं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥३५॥  
 स्नात्वा कदम्बखण्डान्तःकुण्डे विमलपाथसि ।  
 देवान् पितृं च संपूज्य सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥३६॥  
 तत्रत्यं शिवलिङ्गं च दिव्यगोपेन्द्रपूजितम् ।  
 तस्य दर्शनमात्रेण कुण्डस्नानेन च प्रभो ॥३७॥  
 दानेन तर्पणेनापि देवर्षिपितृजन्मिनाम् ।  
 कोटियज्ञोद्भूवं पुण्यं लभस्व नृपसत्तम् ॥३८॥  
 अथो मानसगङ्गाया उत्तरेण प्रतिष्ठितम् ।  
 अरिष्टहरणं क्षेत्रं यत्रारिष्टो निपातितः ॥३९॥  
 हरिणा गोपहृष्णेण लोलामानुषवर्षणा ।  
 वृषहत्याविनिर्मुक्त्यै तत्र क्षेत्रं विनिर्मितम् ॥४०॥

महाफलं महातीर्थं पार्णिंघातोद्भवं हरेः ।  
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च सुवर्णं गां द्विजातये ।  
आजन्मकृतपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥४१॥

### राजेवाच

वृषहत्या कथं लग्ना कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ।  
कथं च निर्मितं तीर्थमेतन्मे भगवन् वद ॥४२॥

### वशिष्ठ उवाच

चन्द्रिकाविमले शीले रस्ये गोवद्धने नृप ।  
कृष्ण आकारयामास राधिकां प्राणसंमिताम् ॥४३॥

### श्रीकृष्ण उवाच

दृश्यतां विमलं स्थानं शरच्चन्द्रिकयान्वितम् ।  
आगम्यतां प्रिये शीघ्रमत्र रस्यावहे मिथः ॥४४॥  
इति प्रियोदितं श्रुत्वा तमुवाच व्रजेश्वरी ।  
ईषत्स्मितरदज्योत्स्नासुधावर्षणकारिणी ॥४५॥

### राधोवाच

सत्यमुक्तं त्वया कान्त वृषः किन्तु त्वया हतः ।  
तेनास्पृश्योऽसि मयका सांप्रतं ब्रह्महत्यया ॥४६॥  
इति श्रुत्वा प्रियावाक्यं कृष्णो मुदितमानसः ।  
उवाच मधुरं वाक्यं शीघ्रमालिङ्गनोत्सुकः ॥४७॥  
सत्यमुक्तं त्वया भद्रे लोकानुश्रुतिरोदृशी ।  
किन्त्वेतद्वोषनिर्मुक्त्यै करिष्ये तीर्थमद्भुतम् ॥४८॥  
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सप्तद्वीपस्थितान्यपि ।  
इहानेष्ये प्रिये तानि सर्वाणि वृषभानुजे ॥४९॥  
इत्युक्त्वा वचनं कृष्णः पार्णिंघातेन भूतलगत् ।  
आविर्भावितवान् रस्यं तीर्थं विश्वस्य पावनम् ॥५०॥  
कोटितीर्थमयं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।  
नानागुलमलताकीर्णं दिव्यवृक्षवनान्वितम् ॥५१॥

तत्र स्नात्वा स्वयं कृष्णः परमात्मा सनातनः ।  
 आलिङ्गितो मुदितया राधया गोपकन्यया ॥५२॥  
 तद्देहकान्त्या समभूत् कुण्डमन्यन्मनोहरम् ।  
 राधाकुण्डमिति प्रोक्तं पुराणज्ञर्मनीषिभिः ॥५३॥  
 ते कृष्णराधाकुण्डाल्ये तीर्थे सर्वस्य कामदे ।  
 तथोः स्नायान्नरो मूल्ये तीर्थयोः पुण्यरूपयोः ॥५४॥  
 कृष्णकुण्डे समाप्लुत्य राधाकुण्डे च मानवः ।  
 कोटिपापविनिर्मुक्तस्तयोः प्रियतमो भवेत् ॥५५॥  
 मोक्षराजाभिधं तीर्थं तत्रान्यत् सुमनोहरम् ।  
 दर्शनादेव लोकानां सर्वपापविनाशनम् ॥५६॥  
 इन्द्रध्वजाभिधं तीर्थं गोवर्धनगिरेः पुरः ।  
 तत्र स्नानेन दानेन न पुनर्जन्मभाग् भवेत् ॥५७॥  
 चक्रतीर्थं च तत्रैव पञ्चतीर्थाभिधं तथा ।  
 महासरः प्रविख्यातं देवानामपि वाञ्छितम् ॥५८॥  
 तत्र स्नात्वा च संतर्प्य दत्त्वा चैव द्विजातये ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः कुलकोटि समुद्धरेत् ॥५९॥  
 पदे पदेऽत्र तीर्थानि कीर्तितानि मनीषिभिः ।  
 गोवर्द्धनगिरिः साक्षात्कृष्णप्रेमैकमूर्तिकः ॥६०॥  
 गोविन्दं कुण्डमेतस्य हृदयं परिकोर्तितम् ।  
 कामधेनुस्तनोद्भूतैः पयोभिः परिपूरितम् ॥६१॥  
 रुद्रकुण्डं गिरौ पुण्यं स्नानाद्वानाच्च पावनम् ।  
 पुष्पसागरनामा च तथैव सुमहानिह ॥६२॥  
 सरोवरः सुरुचिरः कृष्णेन विनिषेवितः ।  
 तस्य दर्शनमात्रेण पापपुञ्जं पलायते ॥६३॥  
 एवं यः कुरुते यात्रां गोवर्द्धनगिरेन्दृप ।  
 तस्य पापानि नश्यन्तीत्येतत्तुच्छतरं फलम् ॥६४॥  
 यत्र मुक्तिस्तृणसमा पुलाकं ब्रह्मणः पदम् ।  
 कस्तस्य किल माहात्म्यं वक्तुं शक्तियुतो भवेत् ॥६५॥

गोवर्द्धनगिरिः साक्षाच्चिन्तामणिमयी शिला ।  
 पूजनीया विशेषेण सर्वपापप्रणाशिनी ॥६६॥  
 गोवर्द्धनगिरेर्धूलिः श्रीकृष्णचरणाङ्किता ।  
 सा यस्य देहे संलग्ना यमस्तस्य करोति किम् ॥६७॥  
 शालग्रामशिला राजन् पूजनादेव भव्यदा ।  
 गोवर्द्धनशिला त्वत्र दर्शनादेव मोक्षदा ॥६८॥  
 नानातीर्थानि तिष्ठन्ति गोवर्द्धनशिलाश्रये ।  
 तां स्नापयित्वा विधिवत् प्रातरुत्थाय मानवः ॥६९॥  
 तत्तोयं सुसमाचम्य भक्त्या मानवसत्तमः ।  
 सर्वतीर्थोद्भवं पुण्यं तत्क्षणाल्लभते नृप ॥७०॥  
 नानेन सदृशं तीर्थं पुण्यं नानेन संमितम् ।  
 त्रैलोक्यपावनी यत्र शिला गोवर्धनोद्भवा ॥७१॥

एका शिला लघुतरा नृप यस्य गेहे संपूजिता कुसुमगन्धसमूहकाद्यैः ।  
 तिष्ठत्यविघ्नकरणी भविकौघहेतुः किं तस्य देवबहुभिः खलु तीर्थपृष्ठैः ॥७२॥  
 चिदानन्दमयः सर्वोऽगोवर्द्धनगिरीश्वरः ।  
 तस्य संदर्शनादेव कोटियज्ञफलं लभेत् ॥७३॥  
 तदभावे शिला॑ चैका तस्य संस्थापिता गृहे ।  
 तदुद्भवैर्जलैः कोशं पावयेत् पाञ्चभौतिकम् ॥७४॥  
 सिंहासनस्थिता शैलशिला परममञ्जुला ।  
 गोवर्द्धनविहारेण नित्यं योजयते हरिम् ॥७५॥  
 स्नानं मानसगङ्गायां सकृन्मोक्षप्रदं हरेः ।  
 दर्शनं गिरिराजस्य प्रादक्षिण्यं च भक्तिः ॥७६॥  
 त्रयमेतत्समं राजन् पुराणज्ञैः प्रकोर्तितम् ।  
 एकैकमश्वमेधादि महायज्ञफलप्रदम् ॥७७॥  
 सर्वेषु वेदेषु तथा पुराणेष्वन्येषु शास्त्रेषु रहस्यकेषु ।  
 गोवर्द्धनस्याचलपुड्गवस्य संवर्णितोऽयं महिमैकदेशः ॥७८॥

१. चिदात्मनः सर्वेशो—रीवाँ । २. सिकता—रीवाँ ।

स्नानेन दानेन च विप्रभोज्यैः श्राद्धेन देवार्चनकोटिभिश्च ।  
 यत्कोटितीर्थेषु महाफलं स्याद् गोवर्द्धने तद्रजसि प्रतिष्ठितम् ॥७९॥  
 यत्र क्वचित्कुण्डजले सरोजले सुनिर्ज्ञरोत्ये च जले समाप्लुतः ।  
 गोवर्द्धनं प्रान्तभुवि वजे वनेष्वखण्डपुण्यप्रचयः प्रकीर्तिः ॥८०॥  
 गोवर्द्धनाद्रिभवधातुविचित्रिताङ्गो गोवर्द्धनाद्रिशिखिपिच्छकृतावतंसः ।  
 गोवर्द्धनद्रुमसुपल्लवभूषिताङ्गो गोवर्द्धनोद्धुरदरीगृहकलृमवासः ॥८१॥  
 गोविन्द आदिपुरुषो रमणीयलीलो राधाविभूषितमनोहरवामपार्श्वः ।  
 गोवर्द्धनेनिवसता मनुजेन नित्यं ध्यातव्य एष करुणावरुणालयात्मा ॥८२॥

गोवर्द्धनगिरेर्वासाद् गोविन्दसर आप्लवात् ।  
 दिव्यदृष्टिर्भवेन्मर्त्यः कृष्णं येन प्रपश्यति ॥८३॥

स्थानानि सन्ति भूरोणि रहस्यानि महीतले ।  
 गोवर्द्धनगिरेर्स्तुल्यं न किञ्चिदपि दृश्यते ॥८४॥

ततोऽतिरम्यशिखरो वरसानुगिरिर्वर्जे<sup>१</sup> ।  
 राधिकायाः पितुः स्थानं वृषभानोर्महात्मनः ॥८५॥

तस्य संदर्शनादेव जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।  
 यत्र गोष्ठानि रम्याणि धेनूनां सर्वतो दिशम् ॥८६॥

कुञ्जपुञ्जावृता<sup>२</sup>न्यद्वा गुञ्जदभृञ्जाणि सौरभैः ।  
 नन्दगोपस्य गोष्ठं च गवां हंभारवैः शुभम् ॥८७॥

सर्वतः कुञ्जपुञ्जाढयं महामञ्जलमण्डितम् ।  
 वत्सैर्वतिरोमन्थं शाद्वलेषु निषादिभिः ॥८८॥

घटोधनीभिर्युतं गोभिर्मन्थानरवमञ्जलम् ।  
 गायदगोपाङ्गनावन्दकण्ठस्वरमनोहरम् ॥८९॥

नित्यानन्दपदं धाम नन्दगोपस्य कीर्तितम् ।  
 यत्र नित्यं हरेर्वासो लीलारमणशालिनः ॥९०॥

इतस्ततश्चरन्तीनां गोपीनां पादनूपुरैः ।  
 रमणीयतमं नित्यं नित्यकौतूहलान्वितम् ॥९१॥

१. °वास्तु—रीवाँ । २. ततो निवसते राजन् वरसानुगिरि ब्रजेत्—रीवाँ ।

३. °दृता°—मथु०, बडो० ।

नन्दीश्वरगिरौ रम्ये सर्वदेवमये शुभे ।  
 प्रतिष्ठिततमं लोके विख्यातं तीर्थमुत्तमम् ॥१२॥  
 नन्दग्राम इति व्यक्तं नाम धाम निरूपितम् ।  
 अनेकैः पुण्यसलिलैः सरोभिरभितो युतम् ॥१३॥  
 राजधानीस्वरूपं तत् समस्तव्रजमण्डले ।  
 अनेकवापिकायुक्तमनेकद्रुमसंकुलम् ॥१४॥  
 तत्राभिगमनाद्राजन् शैलसंदर्शनादपि ।  
 अवगाहाच्च तीर्थानां कृष्णलीलाविचिन्तनात् ॥१५॥  
 विप्राणां भोजनाद्वानाद् व्रजधूलिविलेपनात् ।  
 माहेयस्यातिमृष्टस्य तत्रत्यस्य च भोजनात् ॥१६॥  
 आयान्तीनां च यान्तीनां गवां खुररजःस्पृशः ॥१७॥  
 दर्शनात् स्पर्शनाच्चापि संलापाद् व्रजवासिनाम् ॥१७॥  
 अनेकधा भवेन्मुक्तिस्तस्य संवासतो नृणाम् ।  
 व्रजभूमौ गमिष्यामि व्रजभूमौ वसाम्यहम् ॥१८॥  
 इत्येवं चिन्तयन्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः ।  
 व्रजवासोऽद्वं पुण्यं लभते मानवः कलौ ॥१९॥  
 संकेतस्थानमुभयोरतुलं मध्यदेशगम् ।  
 राधाकृष्णनिजक्रीडास्थानभूतं मनोहरम् ॥२०॥  
 साक्षात्त्रानुभावोऽयं लोकलोचनगोचरः ।  
 न स्पृशन्ति द्रुमांस्तत्र पक्षिणोऽपि वनेचराः ॥२०॥  
 न च विट्कणिकास्तेषु पातयन्ति सुहृरगाः ।  
 गुलमवृक्षलताद्याश्च दधते युगलात्मताम् ॥२०॥  
 कदाचिच्छ्रूयते चापि मनुर्जादिव्यमानसैः ।  
 मृदञ्जरवसंनादो मुरलीरवमिश्रितः ॥२०॥  
 दृश्यन्ते चापि धरणौ सिन्दूराज्जनबिन्दवः ।  
 यावकस्य रसश्चापि चोर्णताम्बूलिकारसः ॥२०॥

१. कीर्तिमत्तमम्—मथु०, बड़० । २. °स्पृशेत्—मथु०, बड़० ।

प्रत्यक्षदृष्टैरित्यादचैश्चह्रैर्जनमनोहरैः ।  
 राधारमणयोः क्रीडा नित्यं तत्रानुभीयते ॥१०५॥  
 अन्येषु च रहस्येषु स्थानेषु धरणीपते ।  
 द्रष्टासि तत्र प्रत्यक्षमनुभावं रहस्यगम् ॥१०६॥  
 नन्दीश्वरादवाग्देशे वरसानुगिरेरुदक् ।  
 मध्ये भूमिरजोमध्ये ब्रह्मादिसुरसेविते ॥१०७॥  
 उषितं कलहायन्ते काश्यादचास्तीर्थकोटयः ।  
 यत्र कृष्णपदाम्भोजचिह्नानि सुखमासते ॥१०८॥  
 गोवर्द्धनगिरौ चैव वरसानुगिरौ तथा ।  
 नन्दीश्वरगिरौ चैव नित्यं कृष्णस्य संनिधिः ॥१०९॥  
 यमुनायाः परे पारे गोकुलं कृष्णजन्मभूः ।  
 तस्य दर्शनमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥११०॥  
 कृष्णेन पूतना यत्र मोचिता बालकेलिना ।  
 शकटश्च तृणावर्ते यत्रैव विनिपातितः ॥१११॥  
 तथैव मृत्तिका यत्र भक्षिता मातृभीतितः ।  
 व्यादाय वदनं सर्वं ब्रह्माण्डं संप्रदर्शितम् ॥११२॥  
 तत्र स्नात्वा नरो याति कृष्णसायुज्यमुक्तमम् ।  
 यमलार्जुनपाते च नरो गच्छेद् विशेषतः ॥११३॥  
 तत्र स्नात्वा नरो सद्यो मुच्यते नात्र संशयः ।  
 कर्णवेधनकूपे च स्नायात् तीर्थौघसेविते ॥११४॥  
 लभते पुत्रपौत्रादीन् दीर्घमायुश्च विन्दति ।  
 पितृन् संतर्प्य विधिवच्छतं तारयते कुलम् ॥११५॥  
 स्नात्वा भाण्डीरकूपे च भाण्डीरवटमूलगः ।  
 तत्रत्यं सेवमानश्च समीरं मन्दशीतलम् ॥११६॥  
 कृष्णलीलादर्शनार्थमधिकारं लभेद् ध्रुवम् ।  
 मथुरायां महाकूपे समसामुद्रिकाभिधे ॥११७॥  
 स्नात्वा पितृन् सुसंतर्प्य दत्त्वा च बहुलं द्विजे ।  
 न पुनर्जायते जन्मुर्मातृगम्भेऽतिदुःखदे ॥११८॥

यस्य क्वापि न मुक्तिः स्यात् प्रेतभावाद् गयादिषु ।  
 सप्तसामुद्रिकः कूपस्तं मोचयति वै द्रुतम् ॥११६॥  
 दुष्कृतानि समृद्धानि मेरुमन्दरशैलवत् ।  
 तूलराशिवदुड्हीय गच्छन्त्यत्रावगाहनात् ॥१२०॥  
 यावन्ति भुवि तीर्थानि सप्तद्वीपावधिस्थितौ ।  
 तावन्ति विमले कूपे सप्तसामुद्रिकाभिधे ॥१२१॥  
 एवं यः कुरुते राजन् मथुरायाः समंततः ।  
 यात्रां पापहरां सद्यः स किंमर्त्यः स दैवतः ॥१२२॥  
 मथुरामण्डलेऽन्यानि तीर्थानि धरणीपते ।  
 रहस्यानि क्रियार्हाणि पितृदेवार्चनादिषु ॥१२३॥  
 तेषु स्नात्वा च दत्त्वा च यथाशक्ति द्विजन्मने ।  
 न पुनर्लभते जन्तुमातृगर्भान्तरे स्थितिम् ॥१२४॥  
 मथुरामण्डले राजन् पशुपक्ष्यन्त्यजा' अपि ।  
 चतुर्भुजा एव सर्वे इत्याज्ञा जगतो हरेः ॥१२५॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथस्य  
 तीर्थयात्रायां षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

### सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

#### राजोवाच

तीर्थानां सारभूता या विश्वतः पावनोदका ।  
 यमुना भवता प्रोक्ता माथुरे मण्डले शुभे ॥ १ ॥  
 तस्यास्तु मे समुत्पर्ति व्रूहि ब्रह्मर्षिसत्तम ।  
 कथं हि सा समुत्पन्ना केन वा हेतुना मुने ॥ २ ॥  
 किं स्वरूपा च सा प्रोक्ता कुत्र चोत्पत्तिमागता ।  
 एतन्मे मुनिशार्दूल वद विस्तरतोऽधुना ॥ ३ ॥

१. पक्ष्यान्तिजा—मथु०, बड़०० ।

## वशिष्ठ उवाच

श्रूयतां रघुशार्दूलं यमुनोत्पत्तिरद्भुता ।  
 नित्यापि सा हरेलोके शुभार्थं जगतोऽजनि ॥ ४ ॥  
 जाते तु सकले लोके जाते स्थावरजङ्गमे ।  
 जाते त्रैलोक्यसंस्थाने देवा इदमचिन्तयन् ॥ ५ ॥  
 अहो इदं जगत् सर्वं विष्णुना गुणिरूपिणा ।  
 आत्मना जनितं तावद् विचित्ररचनासयम् ॥ ६ ॥  
 स्वर्भूः पातालसंस्थाश्च तत्तत् स्थाने विकल्पिताः ।  
 देवाश्च मानुषाश्चैव राक्षसानां गणास्तथा ॥ ७ ॥  
 देवयोनिगणाश्चैव गन्धर्वा साप्सरेण्णाः ।  
 नागा नगाश्च नगराण्यटव्यो वनदेवताः ॥ ८ ॥  
 विविधा जन्तवश्चैव स्वभावाश्च पृथग्विधाः ।  
 विचित्रा लोकसंस्थाश्च भूनभोमण्डले अपि ॥ ९ ॥  
 दिशो दिग्देवताश्चैव राशयस्तारकास्तथा ।  
 दृश्यते यत्र यत्रैव तत्र तत्राद्भुतं महत् ॥ १० ॥  
 लोका विचित्ररचनाः सप्ताधः सप्त चोपरि ।  
 द्रव्याणि चाप्यनेकानि स्वर्णरत्नादिकान्यपि ॥ ११ ॥  
 धातवो विविधाकारा विविधाश्च नृणां धियः ।  
 एतत् त्रैलोक्यमतुलं वेधसा रचितं महत् ॥ १२ ॥  
 वेदानां शब्दैवृन्देभ्यः सर्वथा परिकल्पिताः ।  
 चातुर्वर्णं सदाचारं चतुराश्रमसंस्थया ॥ १३ ॥  
 वृत्तयश्च प्रजानां वै स्वस्वोचितविभक्तयः ।  
 अवलोक्य धिया पूर्वं स्वतन्त्रेण मणीषिणा ॥ १४ ॥  
 हरेराजावशेनैव कल्पितं सर्वमादरात् ।  
 अनिन्द्यं सर्वतस्तच्च कविना विश्वमूर्तिना ॥ १५ ॥  
 यतो यतः प्रसरेत दृष्टिः सूक्ष्मार्थदर्शिनी ।  
 ततस्ततोऽखिलं विश्वमनन्तं प्रतिभाति नः ॥ १६ ॥

अनन्ता रचिता जीवा इत्थं भगवता स्वयम् ।  
 निजमायामधिष्ठाय प्रकृतिं गुणिलङ्घनीम् ॥१७॥  
 तेषां दण्डधरः कश्चिन्न जात इति चिन्त्यताम् ।  
 राजानो राजधानीं स्वां शासन्त खलुदण्डतः ॥१८॥

एतावद्राज्यमतुलं विष्णोर्वै परमेशितुः ।  
 विना दण्डप्रदं भूत्यै कथं भवितुमर्हति ॥१९॥  
 इत्येका महतो चिन्ता जागर्ति खलु नोत्तरे ।  
 अत्रोपायोऽपि तेनैव कार्योऽन्तर्यामिणा स्वयम् ॥२०॥  
 येनैव रचितं विश्वं सदसत्स्थूलसूक्ष्मकम् ।  
 तस्यैवेयं भवेच्चिन्ता सर्वे विज्ञापका वयम् ॥२१॥  
 स नयः स नयस्थानं स एव नयदर्शकः ।  
 स एव नयदाता च विश्वभूः परमेश्वरः ॥२२॥  
 दृष्टमेतत् पुराकल्पे दिव्येन ज्ञानचक्षुषा ।  
 दण्डपाणिः स्वयमभूद् भगवान् कालरूपधृक् ॥२३॥

रम्यदर्शः पुण्यवतामधानां क्रूरदर्शनः ।  
 शास्ता स सर्वलोकस्य पुण्यपापविवेचकः ॥२४॥  
 स एव चाधुनाप्यस्तु भगवान् स्वात्मना विभुः ।  
 यतः समस्तभूतानां भयं भवति भूरिशः ॥२५॥

भयेन न प्रवृत्ताः स्युः स्वाच्छन्द्येन जना भुवि ।  
 एकं मूर्धिन नियन्तारं मन्यमाना दिवानिशम् ॥२६॥  
 अन्यथा स्वेच्छया वृत्या भुवनं व्याकुलीभवेत् ।  
 इतिचिन्तासमाविष्टास्तूष्णीमासन् दिवौकसः ॥२७॥

### वशिष्ठ उवाच

एतस्मिन्नन्तरे राजन् भगवल्लोकवासिनः ।  
 दिव्यपार्षदवर्यास्ते भगवन्तं विजज्ञपुः ॥२८॥  
 प्राणिनां पापसंभूतिमाज्ञाय महतीं हृदि ।  
 सर्वोपकारनिरताः करुणावशवर्तिनः ॥२९॥

पार्षदा ऊँचुः

भगवंस्त्रिजगन्नाथ                            सर्वभूतविभावन ।  
 सर्वकल्याणधिष्ठण                            करुणामय                            केशव ॥३०॥  
 शिवोऽसि शिवरूपोऽसि त्वमेवाशिवनाशनः ।  
 त्वमेकः सर्वभूतानामनुकम्पानिधे हरे ॥३१॥  
 बिभिषि कौस्तुभव्याजात् करुणाङ्कुरमीश्वर ।  
 त्वयैव सर्वदा भव्ये स्थापनीयमिदं जगत् ॥३२॥  
 न तु संप्रत्यमी जीवाः क्लेशिताः पापकर्ममिः ।  
 विपद्यन्ते विपच्यन्ते नरके तामसौकसि ॥३३॥  
 अमीषां ज्ञानविभ्रंशान्नैव कर्मास्ति तादृशम् ।  
 येनोद्धरेयुरात्मानं नारकीं गतिमास्थिताः ॥३४॥  
 नापि विज्ञानसंपत्तिरमीषां जातु दृश्यते ।  
 भूयः संसरमाणानामविद्यापिहितात्मनाम् ॥३५॥  
 नाप्यमीषां समुद्धृत्यै योगोऽपि खलु दृश्यते ।  
 एकाकिनापि चाङ्गेन संसिद्धि समुपागताः ॥३६॥  
 न तपस्तादृशं चैषु न कर्म तव तुष्टिदम् ।  
 न विज्ञानं ज्ञानबीजं न स्वाध्यायः क्षमा दया ॥३७॥  
 विनष्टा आत्मनैवामी विमूढाः कुशले पथि ।  
 त्वमेव स्वेच्छयामीषां हितकर्ता न चेद्भवेः ॥३८॥  
 भगवंस्तर्हमी जोवा विनष्टा एव केवलम् ।  
 श्रिताः पापीयसीं वृत्तिमात्मवञ्चनकारकाः ॥३९॥  
 कदाचिदात्मनोऽशेन जोवेषु करुणां दधत् ।  
 प्रादुर्भूयावतारादौ कुरुषे जगतां हितम् ॥४०॥  
 नित्यं चामलया त्रया कर्मज्ञानोपदेशनैः ।  
 विश्वचक्षुः समुन्मील्य जगतीहितमाचरः ॥४१॥  
 तथापि नो विजानन्ति विमूढाः स्वात्मनो हितम् ।  
 एषां शाश्वतिकं शाश्वत् कुशलं कर्तुमर्हसि ॥४२॥  
 अनायासेन मुच्येरन् येन मूढा जगज्जनाः ।  
 किंचित् साहजिकं पुण्यं लोके प्रकटय प्रभो ॥४३॥

यत्संपर्काद्विशुद्धाः स्युः पापा अपि नरा भुवि ।  
 दृष्टमेतत् पुरास्माभिस्त्वत्प्रसादोत्थया धिया ॥४४॥  
 नीलं महस्तव विभो तीर्थरूपं द्रवामृतम् ।  
 जगतां शोकशमनं तव सायुज्यदायकम् ॥४५॥  
 बभूव कमलाकान्त यमुनेत्याख्यया स्फुटम् ।  
 इति विज्ञापितं तेषां निशम्य गृहडध्वजः ॥४६॥  
 ईषद्विहस्य भगवांस्तूष्णीमांस जगत्प्रभुः ।  
 अथैकदा निजे लोके व्यापि<sup>१</sup> वैकुण्ठसंज्ञके ॥४७॥  
 नित्यलीलारसं पुष्णन् विरेजे भगवान् स्वयम् ।  
 श्रीमद्वन्द्वावने रम्ये ऋतुषट्कनिषेविते ॥४८॥  
 महामाधुर्यभवने महासौभाग्यसागरे ।  
 द्रुमवल्लीवनाकोर्ण धीरमारुतसेविते ॥४९॥  
 वल्लवीनिवहोद्गीत<sup>२</sup> मञ्जुलस्वरनादिते ।  
 नित्योत्सवे नित्यसुखे नित्योत्साहविर्वद्धिते ॥५०॥  
 नित्यरासरसोल्लासे नित्यकैशोरलालिते<sup>३</sup> ।  
 नित्यं च शैशवाक्रीडे नित्यकौतूहलोदधौ ॥५१॥  
 नित्यकेलिरसानन्दे नित्यस्त्रीजनसंभूते<sup>४</sup> ।  
 गवां हंभारवैनित्यं वत्सानां कूर्दनैश्च तैः ॥५२॥  
 दधिमन्थनघोषैश्च स्त्रीणां नूपुरसिज्जितैः ।  
 सायंप्रातः सदासौख्ये रात्रंदिवसुखव्रजैः ॥५३॥  
 नित्यमानन्दनिविडे महामाङ्गल्यगह्वरे ।  
 श्रीमन्नदालये तत्र भगवान् गोपिकासुतः ॥५४॥  
 बाललीलामतिक्रम्य कैशोरं समुपाश्रितः ।  
 नवीनयौवनोद्भेदप्रत्यञ्जमधुराकृतिः ॥५५॥  
 राधिकानयनानन्दो लावण्यगुणवारिधिः ।  
 संदर्दर्शं तिजं रूपं कदाचिद्रहसि स्थितः ॥५६॥

१. व्याख्य—रीवाँ । २. वल्लवीनां महोद्गीत—रीवाँ । ३. °लीलिते—  
 बड़ो० । ४. संभ्रमे—मथु०, बड़ो० ।

दर्पणे चन्द्रविमले निर्जने गहने वने ।  
 स आत्मनः प्रतिबिम्बावलोकात् संक्षुब्धचित्तो रतितत्त्वाभिमर्शात् ।  
 स्त्रीरूपमात्मानमथेहमानः शुश्राव दिव्यामृतधारासहस्रैः ॥५७॥  
 प्रत्यज्ञमात्मानमुदीक्षमाणः संक्षुब्धचेता मन्दमन्दस्तुतोऽभूत् ।  
 श्रीविग्रहः कामतत्त्वेन सर्वमाविष्टः सन् द्रवतामाप तर्हि ॥५८॥  
 इत्थं समस्ते द्रवभावं गतेऽस्मिन् श्रीविग्रहे नीलमहस्यनन्ते ।  
 शिष्टो भागो भूरितरप्रभावस्तेजो दण्डाकारतां बिभ्रदासीत् ॥५९॥

अत्रान्तरे तु तत्रागात् संकर्षण उदारधीः ।  
 दृष्ट्वा तु तद् विस्मितोऽभूत् तेजोदण्डमयं वपुः ॥६०॥  
 नीलं महो द्रवमयं प्रवाहाकारतां दधत् ।  
 आः किमेतदिति प्रोच्य स्मययानो मुहुर्मुहुः ॥६१॥  
 तत्रागाद् भगवान् ब्रह्मा सर्वविश्वसृजां पतिः ।  
 स्मयमानं बलं दृष्ट्वा प्रोवाच भगवान् स्वयम् ॥६२॥

### ब्रह्मोवाच

कि नु विस्मयसे धीमन् संकर्षण महाबल ।  
 एतद्भूगवतः कृत्यं कृष्णस्य परमात्मनः ॥६३॥  
 लौकस्यैव हितं नित्यं चरतश्चरितं हरेः ।  
 दुष्प्रतक्यं सुरैः सर्वैर्जातमेवानुभूयते ॥६४॥  
 दण्डाकारमिदं तेजो यम एव भविष्यति ।  
 जगतां दण्डदानाय पुण्यपापविमोचनः ॥६५॥  
 दृष्टमेतत् पुरा देवैश्चिन्तां कृत्वा महीयसीम् ।  
 को नु दण्डयिता लोके भवेदिति विचिन्तनात् ॥६६॥  
 स एष जातो भगवान् लोकानां यमरूपधृक् ।  
 अनेन स्वच्छन्दकृतो न भविष्यन्ति मानवाः ॥६७॥  
 नोचेललोके विशीर्णः स्यात् पुण्यपापविवेचनात् ।  
 अतो हितमिदं स्वेन हरिणैव विनिर्मितम् ॥६८॥  
 अयं च नीलमहसा महनीयतमद्युतिः ।  
 प्रवाहो भविता साक्षाद्यमुनेत्याख्यया नदी ॥६९॥

अनायासेन जगतां पुण्यौघस्य विवर्द्धनी ।  
 कृष्णप्रिया स्वयं कृष्णा सर्वेषां पापहारिणी ॥७०॥  
 यावन्ति भुवि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ।  
 तान्यस्याः कृष्णकान्तायाः कलां नार्हन्ति षोडशोम् ॥७१॥  
 कृष्णस्वरूपमालोक्य संक्षुब्धः कामतत्त्वतः ।  
 स्त्रीरूपं कामयाज्ञचक्रे तेनैषा स्त्री भविष्यति ॥७२॥  
 यानि घोराणि पापानि ब्रह्महत्याधिकानि च ।  
 तान्यस्याः स्नानमात्रेण विनश्यन्ति न संशयः ॥७३॥  
 किं च पापौघहारिण्यः सरितः सन्ति भूरिशः ।  
 गङ्गा गोदावरी चैव कावेरी च सरस्वती ॥७४॥  
 नर्मदा सिन्धुप्रमुखाः पयोष्णीप्रमुखा अपि ।  
 पुष्कराद्यानि तीर्थानि सरांसि विमलानि च ॥७५॥  
 स्थाने स्थाने च तालाङ्कः<sup>१</sup> देशे देशे च भूरिशः ।  
 सन्त्यनेकानि तीर्थानि पापं यैः प्रविनश्यति ॥७६॥  
 इयं तु यमुना साक्षाद् भगवद्भक्तिवर्द्धनी ।  
 यथा सुलभतां याति भगवान् गोपिकासुतः ॥७७॥  
 अलभ्यं फलमाधत्ते कृष्णसाक्षात्कृतिः<sup>२</sup> स्फुटम् ।  
 अतोऽस्यास्तुलतां नार्हस्तीर्थानां कोटयोऽपि च ॥७८॥  
 इयमीदृग्गुणा लोके भविता यमुना नदी ।  
 कृष्णस्वरूपसलिला कलिलाभयनाशिनी ॥७९॥  
 यत्स्वरूपेण संसिद्धेत् प्रयोजनमनुत्तमम् ।  
 नृणां तत्सेवमानानां संसिद्ध्यत्यनया ध्रुवम् ॥८०॥  
 नानया सदृशी गङ्गा न गोदा न सरस्वती ।  
 न नर्मदा न कावेरी न सिन्धुर्न पयोष्णिका ॥८१॥  
 पुष्करादीनि तीर्थानि नानया सदृशानि च ।  
 सरितः सागराश्चैव सरांसि च समानि नो ॥८२॥

१. “तालाङ्क—हे बलदेव” टिं—मथु०, बड़ो० । २. °कृतिः—मथु०,  
बड़ो० ।

यन्न संहरते गङ्गा न गोदा न सरस्वती ।  
 न नर्मदा न कावेरी न सिन्धुर्न पयोणिका ॥८३॥  
 पुष्करादीनि तीर्थानि न च हर्तुं क्षमाणि यत् ।  
 सरितः सागराश्चैव सरांसि च हरंति नो ॥८४॥  
 तत्पापं हरते नृणां यमुना स्नानमात्रतः ।  
 दर्शनात् स्पर्शनाच्चापि विन्दोराच्चमनादपि ॥८५॥  
 तरङ्गसञ्जिपवनात् सेवनानमनादपि ।  
 श्रवणात् कीर्तनाद्यच्यानाद् बालुकाधारणादपि ॥८६॥  
 तीरस्थधूलिलुठनाद् दूरादागमनादपि ।  
 यमुनां मनसोद्दिश्य यो व्रजेद् दूरदेशतः ॥८७॥  
 तस्यापि खलु मुक्तिः स्यात् काकथा तत्र मज्जतः ।  
 नित्यं संसेवमानस्य तीरस्थस्याच्युताग्रज ॥८८॥  
 शुभद्रव्यमिदं राम हरिणैव विनिर्मितम् ।  
 सर्वदेवौघविज्ञामि विज्ञाय निजमानसे ॥८९॥  
 विश्वस्य दण्डदानाय विविक्त्यै पापपुण्ययोः ।  
 आत्मनैवायमत्युग्रः पुरुषस्तेन निर्मितः ॥९०॥  
 अन्यश्च सर्वभूतानां पापसंहरणाक्षमम् ।  
 यमुनेत्याख्यया लोके तीर्थतत्त्वं भविष्यति ॥९१॥  
 इत्युक्तवत्यजे भूयो जगाद् भगवान् बलः ।  
 उभयोरनयोर्नामि रूपं च विधिवद्विधे ॥९२॥  
 विनिवर्तय विज्ञाय तत्त्वतः पुरुषोत्तमम् ।  
 स्थानं ताभ्यां समाचक्षव भवेतां यत्र संस्थितौ ॥९३॥  
 उभावेतौ दिव्यरूपौ द्वावेतौ यमुनायमौ ।  
 इत्युक्तस्तेन संप्राह विधिरेकाग्रमानसः ॥९४॥

## ब्रह्मोवाच

भगवन्नप्रभेयात्मन् संकर्षण महामुने ।  
 त्वदाज्ञया करोम्येतौ नामरूपसमन्वितौ ॥९५॥  
 धामकामवरोपेतौ विश्वोपकृतये क्षमौ ।  
 विधास्ये वैदिकैर्मन्त्रैस्तव संपश्यतः पुरः ॥९६॥

इत्युक्त्वा भगवान् वेधास्त्रयोमूर्तिस्तपोमयः ।  
दर्भमुष्टिमुपादाय कमण्डलुमहोदकैः ॥९७॥  
विरोचमानं पुरतस्तेजोदण्डममन्त्रयत् ।  
दिव्यज्ञाननिर्धि मन्त्रैः प्राणजीवेन्द्रियप्रदैः ॥९८॥

ये वै प्राणा आसन् परमेश्वरस्य वोर्यं महोबलमोजश्च तेजः ।  
ते प्राणास्ते बलमाभरन्तां यमाय त्वा पुण्यपापे विवेत्तुम् ॥९९॥  
यो वै जीवः परमात्मानमग्रे उपावृड्न्त क्राणशेक्त्याभ्युपेतः ।  
प्राणापानोदानव्यानसमानैः सजीवस्त्वा यम जीवन्तं करोतु ॥१००॥  
यानीन्द्रियाष्टग इहाविरासन्निन्द्रस्थेन्द्रावरजश्चन्द्रमसश्च ।  
श्रोत्रत्वक् चक्षुर्जिह्वाद्वाग्राणमयैस्तैरिन्द्रियैस्त्वामिन्द्रियवन्तं करोमि ॥१०१॥  
य आदिकर्तुः सततं स्थिता वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रद्वाग्राणप्राणाः ।  
यमाय त्वामभिवीर्यं स्पृणन्तस्त इहागत्य सुखं चिरन्तिष्ठन्तु ॥१०२॥  
वाक्पाणिपादाः पायुरुपस्थ॑ एनमुपासतामधिकमेन्द्रियाणि ।  
पृथिव्यप्तेजोवायवाकाशमयानि भूतानि त्वामभितः संस्पृणन्तु ॥१०३॥  
शब्दः स्पर्शो रूपरसौ गन्धस्त्वामागच्छतात् सुप्रतीकाय सम्यक् ।  
श्रद्धामेधे जुषता सर्वतस्त्वामायुर्मन्तं सुमनस्यमानाः ॥१०४॥  
कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रीर्मतिर्हीभिरेते वामभ्युपेयासुरर्थाः ।  
वर्चस्वी त्वं सर्वदेवेषु भूया मा मा हिंसी जातवेदास्तवायुः ॥१०५॥  
यमोऽसि त्वं यमनामासि शश्वत् सान्निध्यं ते संयमित्यां नगर्याम् ।  
विश्वस्मै त्वं पुण्यपापे विविच्य हितं कुर्या भगवन् कालमूर्ते ॥१०६॥  
अन्तश्चरन्नस्य लोकस्य नित्यं नियन्ता त्वं दण्डपाणे भवेति ।  
सत्याशिषः<sup>२</sup> संततं वर्द्धयामि सत्यास्ते सन्तु यजमानस्य क्रामाः ॥१०७॥  
वर्षे वर्षे सोमयाजी त्वमास्त्र शताश्वमेधैस्तद्भवान् वर्द्धषीष्ट ।  
पुण्येन पूर्णा तनुमेतां कृषीष्ट त्वमस्य दिष्टप्रमितं शर्म देयाः ॥१०८॥  
संवर्द्धितः स तेनेत्यं मन्त्रैः प्राणप्रतिष्ठया ।  
लब्धप्राणेन्द्रियः काल उदजृभृत तत्क्षणात् ॥१०९॥

१. पायुरुपस्था—रीवाँ । २. सत्याशिषं—मथुर० बड़ो० ।

कालरात्रितमोरूपमसीमेचकविग्रहः ।  
 महादण्डधरो भीमः सर्वलोकान्तको महान् ॥११०॥  
 संज्ञासंस्थानसहितो लब्धवृत्तिः स तत्क्षणात् ।  
 दिव्यरूपसमोपेतो दण्डपाणिरुवाच तम् ॥१११॥

यम उवाच

नमस्ते विश्वनिर्माणवेधसे सर्वसाक्षिणे ।  
 सर्वशक्तिविशिष्टाय सर्वलोकप्रवृत्तये ॥११२॥  
 त्रैलोक्यरचनाबीजस्वप्रकाशस्वर्यंधिये ।  
 सर्वलोकैकवन्द्याय शब्दब्रह्मात्मने<sup>१</sup> नमः ॥११३॥  
 लोकेशाय वरिष्ठाय सर्वदैवतमूर्तये ।  
 सर्ववेदस्वरूपाय पत्ये विश्वसृजां नमः ॥११४॥  
 सवर्कर्मस्वरूपाय यज्ञाय विजितात्मने ।  
 सर्वयज्ञफलेशाय नमो नित्यं स्वयंभुवे ॥११५॥  
 तपोरूपाय तप्याय तपःफलविधायिने ।  
 तपःसप्तामलोकाय सुरश्रेष्ठाय ते नमः ॥११६॥  
 सत्त्वाय ज्ञानविस्फूर्त्ये रजसे विश्वसृष्टये ।  
 तमसे विश्वरूपाय त्रिगुणाय नमोस्तुते ॥११७॥  
 सत्याय सत्यसंकल्पनिर्मिताखिलसृष्टये ।  
 सत्यलोकाधिपतये नमस्ते ब्रह्मणे नमः ॥११८॥  
 इति संस्तूप्य बहुशो भगवन्तं स वेधसम् ।  
 स्थितः कृष्णानदीतीरे तूष्णीमास महायमः ॥११९॥  
 तदन्तरेणैव ततः प्रवाहात् सुमेचकात् कृष्णतनुद्रवामृतात् ।  
 विरोचमानाभ्युदगाद्वराङ्गना प्रकाशयन्ती हरितस्तनुत्विषा ॥१२०॥  
 कल्याणरूपा कमनीयविग्रहा कृष्णा किशोरी कमलाननेक्षणा ।  
 पूर्णा शरच्चन्द्ररुचिप्रकाशिनी प्रत्यड्गविस्फूर्जितरामणीयका ॥१२१॥  
 मुक्तासरं रत्नसरं सुविभ्रती शृङ्गारसारेण वपुःश्रियान्विता ।  
 प्रत्यञ्जलावर्ष्यसुधातरञ्जिणी कन्दर्पमानन्दयितुं क्षमानिशम् ॥१२२॥

१. च शब्द ब्रह्मणे—रीवौं ।

दिव्यप्रसूनस्तवकौघगुम्फितां वेणीं दधाना प्रतिपन्न मौक्तिकम् ।  
 सीमन्तविद्योतितरत्नपट्टिकां सद्बेमताटङ्गमिलन्मणिप्रभाम् ॥१२३॥

प्रोद्भासिसीमन्तपुरःस्फुरन्मणीभालस्थलोदारतमश्रियाज्जिताम् ।  
 सौभाग्यभास्वत्तिलकाङ्कुरच्छर्वि सिन्हरविन्दुप्रभवावभासिताम् ॥१२४॥

उत्तुङ्गनासामलमौक्तिकच्छर्वि प्रत्यग्रपञ्चेहवारलोचनाम् ।  
 इयामायमानैरमलैः प्रसादजैः कटाक्षवृन्दैर्जगतां कृपावतीम् ॥१२५॥

संपवविम्बीफलमञ्जुलाधरां दन्तावलिद्योतितमन्दहासिनीम् ।  
 कण्ठत्विषा मन्मथजैत्रकम्बुवत्किञ्चचमत्कारभरं वितन्वतीम् ॥१२६॥

तुल्यांसबन्धक्रमराजिविग्रहां मृणालकाण्डामलमञ्जुदोर्लताम् ।  
 निणिक्तलक्ष्मीमुकुरायमाणयोः कपोलयोरस्त्यलकावलिद्युतिः ॥१२७॥

वक्षस्थलस्थस्तनपद्मकोरकप्रकामतारुण्यपदेन निर्मिताम् ।  
 चन्द्रावलीमञ्जुलहारसंपदा ज्योत्स्नायमानामलविग्रहच्छविम् ॥१२८॥

कुम्भीन्द्रकुम्भस्थलसंभ्रमावहौ श्रीशातकुम्भोद्भवकुम्भसुन्दरौ ।  
 वक्षोरहौ काममदेन विभ्रतीं साटोपमुज्जासितदिव्ययौवनाम् ॥१२९॥

रोमावलीमञ्जुलभृङ्गमण्डलीसंसेव्यमानामलकल्पवल्लिकाम् ।  
 तुङ्गोत्तरङ्गत्रिवलीतरङ्गिणीं गभीरनाभीहदभासितोदरीम् ॥१३०॥

शातोदरीं साधुपरीतविस्फुरत्कौशेयसोद्भासिनितम्बनिर्भराम् ।  
 सुवर्णरम्भासुभगोरुगौरवाद्रम्भाद्विजम्भारिवधूविजैत्रिका ॥१३१॥

अनर्घरत्नप्रवरैरुपासिता सिङ्गानमञ्जीरकराजहंसकौ ।  
 पद्मचां वहन्ती मृदुमञ्जुभामिनी स्वःकामिनी श्रीरतिदामिनीसमा ॥१३२॥

मुरारिमाराधयितुं मनोरमा सखी समालापकलापपेशला ।  
 भुवि प्रमोदाय भविष्णुरद्भुता शुभाधिवृन्दाटविलालनोचिता ॥१३३॥

भविष्णुरेका महिषी रमापते रमासमालोकनसौख्यकारिणी ।  
 वृन्दाटवीवासविहारसौख्यदा संसेवनायाखिलभक्तसंपदाम् ॥१३४॥

तां वीक्ष्य रम्यावयवां शुचिस्मितां संकर्षणो ब्रह्मभवो यमस्तथा ।  
 सर्वे सुराः संमुदिताः स्वमानसैर्बंभूवुरुत्सित्कदूशः कुत्पहलैः ॥१३५॥

अथोज्जिहानैः सुदृशोर्विलासिभिः कटाक्षवृन्दैरियमन्त्र पूर्ववत् ।  
प्रकल्पयामास वपुर्गदाभृतः स्थानादमुष्मादुदियाय तत्क्षणात् ॥१३६॥

यस्मिन्स्थाने द्रवीभूतो भगवान् माधवः स्वयम् ।

उदत्तिष्ठत्ततः सद्यस्तत्कटाक्षैरवेक्षितः ॥१३७॥

स तां वीक्ष्य मुदं प्राप्य मुकुन्दः स्वस्य वल्लभाम् ।

अन्योन्यं च तयोरासीत्प्रेमा सिन्धुरिवोद्गतः ॥१३८॥

अथोज्जगाद् भगवान् प्रजापतिरवेक्ष्य तौ ।

लोकस्य शुभदानाय ज्ञात्वा कार्यं जगत्पतेः ॥१३९॥

पुरा चिन्तातुरैः सर्वदेवैरेतद्विचारितम् ।

व्यक्तं तद्द्ववतादर्शं सर्वान्तर्यामिणा हरे ॥१४०॥

जाताभिमां भवद्देहाद्यमुनां लोकपावनीम् ।

वीक्ष्य पापौघदहनां कृतार्थं स्याज्जगत्त्रयम् ॥१४१॥

अस्या एवाग्रजोऽयं च यमो यमयतांवरः ।

सर्वलोकविवेकाय भविता नात्र संशयः ॥१४२॥

अस्मै तु भगवन् पूर्वं मयैव सुविमर्शितम् ।

नाम धाम च कार्यं च भवांस्तदनुभव्यताम् ॥१४३॥

अस्मै च भवता देयं विनिर्दिश्य विशेषतः ।

नाम धाम स्वरूपं च यथा कार्यं सुरोत्तम ॥१४४॥

### श्रीभगवानुवाच

मत्स्वरूपाविमौ दिव्यौ यमुना यम एव च ।

असौ ऋताग्रजोऽस्त्यस्या द्युयं चावरजा स्वसा ॥१४५॥

सर्वदेवैर्मिलित्वासौ पूर्वमेव विचिन्तितः ।

तेनैष पूर्वतो ह्यस्या जात इत्यग्रजोऽभवत् ॥१४६॥

पुरीं संयमनीं प्राप्य तपसा सुसमेधितः ।

पितृलोके प्राज्यतमो राजा चैव भविष्यति ॥१४७॥

महावीर्यो महातेजा महाबलपराक्रमः ।

सर्वस्य जंगतो नेता भविष्यति न संशयः ॥१४८॥

एष वक्ता शुभान् धर्मान् जगद्गत्रक्षेत्रकान् ।  
 कालो दण्डधरो भूत्वा त्रैल्येक्यमनुशास्यति ॥१४९॥

अतोऽयं लोकयमनाद्यम् एव त्वया कृतः ।  
 इयं यमस्यावरजा यमुनातो भविष्यति ॥१५०॥

भवान्तरे त्विमावेव सूर्यस्थात्मजतां विद्धे ।  
 प्राप्यतो लोककल्याणकरणायोद्यतौ सदा ॥१५१॥

कलिन्दान्द्रेः सुता चैषा भविता मार्गरोधिनः ।  
 कालिन्दीति ततो लोके प्रसिद्धिमनुयास्यति ॥१५२॥

जम्बूद्वीपे शुभान् लोकान् प्लावयन्ती निर्जैर्जलैः ।  
 मथुरामण्डलं गत्वा क्रमादानन्दयिष्यति ॥१५३॥

व्रजभूमि परिप्राप्य जम्बूद्वीपस्य भूषणाम् ।  
 मम रासविलासादौ प्रमोदं जनयिष्यति ॥१५४॥

कलिन्दाचलमारभ्य समुद्रान्ताऽनुगामिनी ।  
 स्थाने स्थाने महातीर्थरूपा चैषा भविष्यति ॥१५५॥

सर्वाणि तीर्थान्यादाय सम्बूद्धिपेषु यानि च ।  
 माथुरे मण्डले नित्यं निवत्स्यति यमानजार ॥१५६॥

मम लीलारसावेशपरमानन्दधारिणः ।  
 पत्नीभावं परिप्राप्य स्वात्मानं सुखयिष्यति ॥१५७॥

इत्येवं सततं लोके ममेयं नित्यवल्लभा ।  
 दर्शनादेव कालिन्दी भक्तानानन्दयिष्यति ॥१५८॥

अतोऽस्यास्तुलनां लोके न तीर्थान्तरमुच्छति ।  
 इयं मद्देहसंभूता गङ्गा मत्पादसभवा ॥१५९॥

वृन्दावने सर्वदेवर्षिरस्ये मदभवतजीवातुतमे स्थितेयम् ।  
 कल्लोलमाला कलिता जनानामानन्दयिष्यत्यस्तुनांसि ॥१६०॥

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुस्तूष्णीभूय ततः स्थितः ।  
 बलदेवेन सहितः प्रविष्टो नन्दमन्दिरम् ॥१६१॥

विद्धि विसर्जयामास भवितप्रह्वं यमं च तम् ।  
 तौ च तत्र स्थितौ नित्यं तस्यास्तीरे तपोरतौ ॥१६२॥

अथ तत्राभ्युपागच्छन् सर्वदेवाः सकौतुकाः ।  
 महादेवं पुरस्कृत्य शिवं भक्तजनप्रियम् ॥१६३॥  
 ब्रह्मा शिवमुवाचाथ स्तूयतां भगवंस्त्वया ।  
 यमुना लोककल्याणी स्वयं श्रीकृष्णवल्लभा ॥१६४॥  
 ब्रह्मणा प्रेरितो देवः शङ्करो लोकशङ्करः ।  
 तुष्टाव यमुनां देवीं नित्यं भक्तजनप्रियम् ॥१६५॥

जय जय जय देवि कृष्णप्रिये श्राद्धदेवानुजे जन्म धृत्वा  
 कृतार्थौकृतोग्रप्रभे<sup>१</sup> विश्वमाङ्गल्यभूर्नोल मेघप्रभे, भूय उच्चैः कलिन्दा-  
 चलात्संभविष्णो सरित्सागराखर्वगवैकजिष्णो, कृपालेशविस्तारिता-  
 शेषभव्ये सुधास्वादुनीरौघनित्याभिनव्ये । दिवा दीव्यदिन्दीवरानन्दिरूपे  
 यशोदासुतामन्दलीलाभिरूपे, सतां सर्वसंपत्तिसंदोहदाने दयोदारचित्तेति  
 रम्यावदाने । जयाकुण्ठवैकुण्ठसंपन्निधे ॥१६६॥

जय जय यमुनेति नामश्रुतिध्वस्तपापाटवीमूलनिर्मूलने कृष्णलीला-  
 रसानन्द पुष्टान्तरे, तारिताशेषपश्वादिजीवन्रजे भुक्तिमुक्तिप्रदानैकजैत्र  
 ध्वजे, तुञ्जवीचीघटाटोपदर्पोदधुरे राजहंसावलिकवाणचेतोहरद्वीपदेश  
 प्रतिष्ठामरौघस्तुतिप्रोद्यदम्भश्छटानित्यसंरम्भणि ब्रह्मवक्त्रोत्थतद्वर्ण-  
 वेदत्रयव्यस्तभूयोयशःस्तोमसोमप्रभानाशिताशोकलोकान्धकारोत्करे । सर्व-  
 लोकोत्तरे ॥१६७॥

जय जय जय कलिकल्मषाक्रान्तसंसारनिस्तारहेतो लसद्धर्म-  
 सेतो महोदारशीले सदारम्यलीलेऽतिकल्लोललोले समारूढदोले  
 लसद्वीचिमाले त्रसत्पापजाले चमत्कारनीरे स्फुरद्रत्नतीरे शरद्वचोमतारा-  
 समुल्लासिहारावलीराजमाने सदा साभिमाने कवचित्कृष्णरासे समुद्यद्विलासे  
 कवचित्केलिकुञ्जे महासौख्यपुञ्जे कवचिद्गोपदारेषु जाग्रद्विकारे कवचि-  
 कृष्णसंदर्शसंजातहर्षे । हरेर्वल्लभे ॥१६८॥

जय जय जय कृष्णभक्तिप्रभावेण दूरीकृताम्भोधिराजादरे तिग्म-  
 तापत्रयावेशतपात्मनामन्तरड्गे हिमानीमहाशीतले । शेषभावं सुपर्वेश-  
 भावं तथा चेशभावं विहङ्गेशभावं तथा दर्शनात्सन्धुकन्येशभावं च दत्ते

१. <sup>०</sup>कृतो भविष्णूष्णप्रभे—मथु०, बड়ো० ।

त्वमेका जगन्मङ्गलायोद्यता विद्रुतः श्रीपतेश्चिद्घनो विग्रहः कृष्णपत्नि  
पवित्रीकृतक्षमातला त्वं भवित्री त्रिलोकस्य कल्याणकृत् केवलानन्दरूपा  
कृपापूरपूर्णा जय प्रेमदे ॥१६९॥

नमः कृष्णपत्नि प्रमोदैककन्दे सदानन्दसंपत्तिसंदोहरूपे ।  
नमस्तुभ्यमासेवनोये जनानां सतो शोकमोहादिमूलापहन्त्र्यै ॥१७०॥

नमः सिद्धुलक्ष्म्यै सति प्रेमदायै जगत्क्षेमदायै पवित्राम्बुद्धत्यै ।  
चिदानन्दरूपस्य कृणस्य पत्न्यै मुनीन्द्रौघसेव्यप्रतीरक्षमायै ॥१७१॥

कलाकोटियुक्ताय कल्याणदाय त्रिवेदीश्चरस्तत्त्वरूपाय तस्मै ।  
दिवारात्रमुज्जागरोद्यत्प्रभावप्रवाहाय तेऽहं नमो देवि कुर्वे ॥१७२॥

मुनीन्द्रौरुपास्यं द्रवाकारमेतत् परं ब्रह्म विद्योति कृष्णाद्वितीयम् ।  
चिरं भावयामि स्वरूपेण नित्यं चिदानन्दसंदोहसंपद्विधातृ ॥१७३॥

गुणा भान्ति तेनैव विद्योतमानां हरेर्यत् स्वभक्तानुकस्पाकरस्य ।  
तदञ्जानुषञ्जात् सुधाशीतलस्य त्वदीयाम्भसः किन्तु वक्षिम प्रभावम् ॥१७४॥

पवित्रं विचित्रं चरित्रं त्वदीयं महाघोरपापौघभित्यै लवित्रम् ।  
रसालं विशालं सदालम्बनं ते स्वरूपं नृणां ध्यायती सर्वसिद्धैः ॥१७५॥

इयं पारमेश्वी कृपा देवि जाता समस्तावनीमानवोद्धारहेतुः ।  
यदात्मा इवाकारतामावितोऽभूत् सुविस्तीर्णतापत्रयस्यापहन्त्र्यै ॥१७६॥

लसन्नीलरत्नप्रकृष्णप्रभायै मनोमोहतामिश्रजालापहन्त्र्यै ।  
रमेशप्रसादार्तिनिर्णिकतभासे नमस्तुभ्यमस्वान्तकस्यानुजायै ॥१७७॥

इमं ते स्तवं मन्मुखोत्थं सुवर्णं गृणीतेऽनिशं मानुषो यः प्रभाते ।  
स याति स्वयं कृष्णसारूप्यमुच्चर्हृदि प्रेमपीयूषसंदोहपूर्णः ॥१७८॥

शृण्वतां देववर्याणामित्यं तुष्टाव शङ्करः ।  
यमुनां यमभीतिघ्नीमुद्यद्वीचिघटोत्कटाम् ॥१७९॥

ब्रह्मण्डिदेवर्षिवरेण्यसंघा येऽन्ये महाभागवतप्रधानाः ।  
सर्वेऽपि ते तुष्टुवुर्भवितनम्राः समेत्य तत्रामितमोदमग्नाः ॥१८०॥

एके दूरात् प्रणेमुस्त्रिजगदघहरों केऽपि भक्त्योपच्चेदः  
केचित् संकीर्यामासु रतुलयशसा स्वाभिमुख्यं विधाय ॥

केचित् तां वन्दमानाः सपदि जगदिरे सर्वजीवातुभूतां  
 सर्वैर्देवैरितीयं स्वमतिविभवतः सादरं वै गृहीता ॥१८१॥  
 संमानिता सा सकलैः सुरोघैर्हर्षार्थवर्यैश्च सुर्विषमुख्यैः ।  
 स्वकीर्तिपाठश्रुतिजातदर्पा वीचीघटाभिः सहसोच्चचाल ॥१८२॥  
 वारां धाराभिस्त्रिवर्चरलमवनितलं सर्वतः प्लावयन्ती  
 छन्ना मन्दारमाल्यैस्त्रिदशवरकरप्रच्युतैः सौरभाढच्यैः ।  
 उच्चर्णमिच्छटाभिर्गगनतलमभिच्छादयन्ती समंतात्  
 सानन्दं सोहृदपं त्रिदशपतिपदाऽमन्दमन्दं चचाल ॥१८३॥  
 इतिश्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे महाराज-  
 तीर्थयात्रायां सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥



## अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

### वशिष्ठ उवाच

ततश्च सा तु ज्ञपयश्छटाभिः प्रोद्यन्महामेघघटोहभाभिः ।  
 विश्वग्विकुण्ठातनयस्य लोकमाप्लाव्य भूयो विरजामियाय ॥ १ ॥  
 प्रधानपरमव्योम्नोरन्तराले प्रतिष्ठिताम् ।  
 ब्रह्मानन्दमहानीरां मुक्तसंदोहसेविताम् ॥ २ ॥  
 मन्दारमाल्यस्तवकैः समंतादाच्छादितात्यच्छमहाप्रवाहाम् ।  
 रमाकुचाभोगयुताङ्गरागसच्छालनाज्जातविचित्रवर्णम् ॥ ३ ॥  
 सुवर्णरत्नोपलब्द्धकूलां मुनीन्द्रवर्गैः समुपास्यमानाम् ।  
 सुधारसास्वादभूशं प्रमत्तमानन्दकूजद्बहुराजहंसाम् ॥ ४ ॥  
 उत्कुल्लपञ्चेषुहराजिराजत्परागरागाज्जितनीरपूराम् ।  
 तटस्थकल्पद्रुमफुल्लपुष्पमरन्दवृत्तैः सुरभिः समंतात् ॥ ५ ॥  
 श्रीकृष्णवंशीनिनदानुघोषप्रेमस्त्रवत्कामगवीस्तनोत्थैः ।  
 दुरधौघकुल्यानिवैः समंतात् सहस्रधासंजनितैर्मिलन्ती ॥ ६ ॥

कवचिद्वियोगस्मरतापतप्तव्रजाङ्गनारब्धसुखावगाहम् ।  
 चञ्चचिचदानन्दमयप्रवाहसकेलिकोकीगणनिकवणाढचाम् ॥ ७ ॥  
 कवचिद्रहः श्रीवृषभानुकन्यासमेतनन्दात्मजदत्तमोदैः ।  
 तरङ्गजालैरूपनीतभूयः फुलाम्बुजातार्हणसंविधानाम् ॥ ८ ॥  
 कवचिद्वने कुञ्जवनेऽन्तरालप्रसार्पणीं श्रीतलसुप्रवाहाम् ।  
 कवचिन्महाशैलदरीगृहान्तर्विभेदनोत्तुङ्गतरङ्गजालान् ॥ ९ ॥  
 विराजमानां महसां समूहैस्तडिप्रकाशैर्वंजगोपदारैः ।  
 अलौकिकैरर्थगणैः समेतां विमुक्त्यवस्थापरिदृश्यरूपैः ॥ १० ॥  
 ब्रह्मण्डकोषाश्रयसंततौघां मायावश्यैर्जीवसंघैरदृश्याम् ।  
 पारे परब्रह्मगृहप्रतिष्ठामवारगाशेषजगत्प्रतिष्ठाम् ॥ ११ ॥  
 तथा मिलित्वा ननु दिव्यरूपया जलान्तरोङ्गासितशुद्धदेहया ।  
 स्वयं च दिव्यं वपुरास्थिता हरेः प्रिया प्रमोदं हृदये पुषोष सा' ॥ १२ ॥  
 प्रत्यग्रहीत् सा यमुनां समेतां सपर्यया साधु विधीयमानाम् ।  
 सिद्धेन्द्रसेव्या विरजा समंताङ्गक्तेन्द्रसेव्यामभजत् स्वयं ताम् ॥ १३ ॥  
 तरङ्गबाहून् विरजा वितत्य तथामिलनन्दसुतस्य पत्न्या ।  
 तेनैव सा सेव्यतमा बभूव तद्ब्रह्मधामस्थितमुक्तिराशेः ॥ १४ ॥

यमुनास्पर्शमात्रेण विरजा विगतज्वरा ।  
 ब्रह्मानन्दमतिक्रम्य प्रेमानन्दमगाहत ॥ १५ ॥  
 पाद्याध्याचिमनानि चैव मधुपवर्कस्नानदानादिभि—  
 स्तामेषा समुपास्य गन्धकुसुमस्त्रग्धूपदीपादिभिः ।  
 नैवेद्यैरमृतात्मकैरपचिंति कृत्वा च नत्वा पुन—  
 स्तस्याः पादसरोरुद्धयमुरुप्रेमप्रकर्षग्रहीत् ॥ १६ ॥  
 लुण्ठन्ती तच्चरणयोर्विरजा प्रेमसंप्लुता ।  
 तुष्टाव तामभिप्रेत्य महिषीं श्रीमुरद्विषः ॥ १७ ॥

### विरजोवाच

अयि प्रियासि प्रणयैकमूर्त्वंर्वजाधिनाथस्य सुखैकहेतुः ।  
 कल्याणिनी कोटिकलाविलासा कलिन्दकन्या भवती भवित्री ॥ १८ ॥

भवान्तरे सूर्यसुताभविष्णुस्त्वं मोदयिष्यत्यसकृद् गृहेशम् ।  
 त्रिशच्च कोटीस्त्रयधिका सुराणां त्वं योजयिष्यस्यमितैः शुभौघैः ॥१९॥  
 मन्ये कलिन्दाद्विशिखावलस्य पिच्छावली त्वं यमुने भवित्री ।  
 त्वयीशि यन्नेत्रपथं गतायां पलायिता कलमषकालसर्पः ॥२०॥  
 जानाम्यहं व्योमसरोजमुच्चैश्चण्डत्विषो मण्डलपुण्डरीकम् ।  
 विहाय संमत्तमिलिन्दपड़कितः कालिन्दनीलोत्पलमेष्यसि॑ त्वम् ॥२१॥  
 गुञ्जास्त्रजः केकिकलाकलापाः पीताम्बराण्येव च वैनतेयाः ।  
 मातः कियन्तस्त्वयि सन्ति यान् वै मज्जन्त एते मनुजा अगृह्णन् ॥२२॥  
 काचस्फुरददर्पणपट्टिका त्वं सुनिर्मलाङ्गी यमुने विभासि ।  
 पुरस्थितायां ननु यद्भूवत्यां पश्यन्ति नीरूपमपि स्वरूपम् ॥२३॥  
 प्रेमप्रकर्षत् परिरभ्य कृष्णं बभूव कृष्णा भवती स्वरूपात् ।  
 त्वदम्बुसंस्पर्शनमात्रतोऽपि कृष्णस्वरूपा मनुजा भवन्ति ॥२४॥  
 पद्मासना पद्मसमानदेहा पद्मात्मिका पद्मधरा त्वमम्ब ।  
 यत्पश्यतामाचमतां जनानां निमज्जतां च श्रियमातनोसि ॥२५॥  
 लोकोत्तरं यत्कुशलं सुभव्ये त्वय्येव॒ सर्वोपरि मुक्तिधाम्नि ।  
 तत्पत्तरङ्गप्रकरप्रसङ्गाल्लोकोऽपि संप्राप्स्यति कृष्णकान्ते ॥२६॥  
 त्वं विष्णुदेहादमिता विभासि गङ्गा तु सा विष्णुपदोद्गतैव ।  
 अतोऽम्ब तस्यास्तव चापि तौल्ये गिरः कवीनां विरला भवन्ति ॥२७॥  
 व्रजाङ्गनाभिर्विहरिष्यतीशस्तवैव तीरे भगवान् मुकुन्दः ।  
 अतः प्रशस्तेऽपि॑ भवे समस्ते करोतु कस्ते समतामुदारः ॥२८॥  
 न तीर्थशक्त्या न च पुण्यप्रकर्षन्ति पापहृत्यामुख्यामर्थ्यभावात् ।  
 तव प्रशस्तिर्थमुने विदृश्यते यथाकृष्णाभिन्नरूपप्रभावात् ॥२९॥  
 यज्ज्योतिराद्यां कवयो गृणन्ति ब्रह्मेति सच्चित्सुखरूपमद्वा ।  
 तदम्ब ते धाम सनातनाऽर्ख्यं कृष्णप्रिये योगिनां ध्यानधिष्ठयम् ॥३०॥  
 ततः परं त्वत्स्वरूपं तदम्ब प्रेमानन्दाकारतामाददानम् ।  
 विच्चित्रलीलारसकेलिपात्रं भक्तप्रमोदप्रसरैकहेतुः ॥३१॥

१. “व्योम एव सरः तस्माङ्गातं सूर्यमण्डलमेव पुण्डरीकं कमलं विहाय त्यक्त्वा मत्तभ्रमरतुल्या त्वं यमुना कलिन्दपर्वत एव कमलं प्राप्स्यसि” टि०—मथु० ।  
 २. वर्वर्ति—मथु०, बडो० । ३. च—रीवाँ । ४. च संतताख्यं—रीवाँ ।

तस्य नमस्ते हरिवल्लभायै व्रजाङ्गनाकौतुककारिकायै ।  
 श्रीनन्दसूनुस्फुटनीलरत्नप्रभाभिरामप्रचुराम्बरायै ॥३२॥  
 विज्ञप्तिरेका यमुने मदीया निधीयतां कर्णपुटे भवत्या ।  
 मदन्तरे नित्यमिहाविरोधिप्रसादपात्रं कुरुमामजलम् ॥३३॥  
 इत्युक्तवत्यां विरजायां प्रकासं तथेति तद्वाक्यमुरीचकार ।  
 अथ प्रसादं प्रविधाय तस्यां मृदुस्मितैर्भूरि मुदं पुषोष ॥३४॥  
 अथोदगाद्विरजायाः प्रवाहं निर्भिद्य कल्पान्तमरुत्सवेगा ।  
 घनौघसंघटुघटाजटालैस्तरड़ग्जालैर्जगतीं पुनन्ती ॥३५॥  
 दुरापपारे विरजाप्रवाहे महेषुवद् धावमाना जवेन ।  
 अलक्षिता तत्पुलिनस्थदेवैरेवं करिष्णुर्जनपापभेदम् ॥३६॥  
 यथा जवोऽस्या विरजाप्रवाहविभेदनेऽभूत् प्रलयानिलाधिकः ।  
 तथैव सर्वाशुभपापपुञ्जमहाद्रिनिर्भेदविधौ न चित्रम् ॥३७॥  
 निर्भिद्य सप्तावरणानि साथ ब्रह्मण्डभाष्टे सहसा विभिद्य ।  
 अन्तर्बहिः पूर्णतमं तमस्तत् प्रभिद्य शुद्धां भुवमाजगाम ॥३८॥  
 निर्भिद्य साथ वेगेन लोकालोकगिरेगुहाम् ।  
 मानसोत्तरश्लेन्द्रं निर्भिद्य समुपागता ॥३९॥  
 निर्भिद्य शुद्धोदसमुद्रमित्यं ततश्च दुर्घोदधिमात्तवेगा ।  
 निर्भिद्य सप्तार्णवनीरपूरानित्यं क्रमात् प्राप भुवोऽन्तरालम् ॥४०॥  
 इवेतद्वीपपतेः स्थानमानिरुद्धस्य सागमत् ।  
 व्यापिवैकुण्ठलोकस्य यद्द्वारं परिकीर्तितम् ॥४१॥  
 अत्र सिद्धिषिदेवौघैः स्तुता संपूजिता च सा ।  
 प्रेमानन्दमयोमृद्धिमतनोत् तेषु संततम् ॥४२॥  
 ऊर्ध्वं ब्रह्मण्डगोलं समधिकजविना लोतसा खण्डयित्वा ।  
 तन्मागं प्राप्य वार्ताविधिभवनमथो तापसानां च लोकम् ।  
 प्राप्ता लोकं जनाख्यं तदनु च महल्लोकगा स्वर्गलोकम्  
 भूलोकं चैत्य पश्चाद् भुवमपि गतवत्यद्भुताम्भःप्रभावा ॥४३॥  
 लोके नारायणीये किमपि कमलया सेव्यमालोक्यमाना  
 पश्चाद् वैरिञ्चलोके मुनिवरनिवहैः सेविता संस्तुता च ।

संदोहैस्तापसानां सविनयमभितो वन्दिता तत्पुरस्ता-  
 ल्लोकस्थैः पूज्यमाना सुरतरुकुसुमामोदगर्भम्बुनेत्री ॥४४॥  
 सप्तर्षिस्तोमवन्द्या ध्रुवभवनमिता तुङ्गरिङ्गतरङ्गै-  
 नक्षत्राणां विमानावलिमुदकभरैः सर्वतः प्लावयन्ती ।  
 स्वर्गञ्जाजातसञ्जा त्रिदिवपतिगजोत्तापसंदोहृत्री  
 सूर्यादींश्च ग्रहांस्तान्निजविमलगुणैर्भूरिशो मोदयन्ती ॥४५॥  
 मुख्ये शृङ्गे सुमेरोः सजवनिपतिता नन्दने संचरन्ती  
 मन्दारोत्फुल्लपुष्पस्तबकसुरभितं वारिपूरं वहन्ती ।  
 देवैर्गन्धवंसिद्धादिभिरधिकतरं स्तूयमाना समंतात्  
 प्राप्येलावर्तवर्षं कनकमयमहाकूलशोभाभराद्या ॥४६॥  
 इलावर्ते वर्षे कनकगिरिसच्छायतलगा  
 महारत्नप्रस्थप्रचुररुचिसंदोहृवलिता ।  
 विचित्राकाराम्बुप्रवहणकरी कौतुकभरैः  
 परीतां गच्छन्ती दुरितशमनी भाति यमुना ॥४७॥  
 प्रोद्यत्कल्लोललोलप्रवहललहरीलास्यलावण्यलक्ष्मी-  
 लीलालालित्यशीला शिथिलितसुदृढोदामशैलेन्द्रमूला ।  
 काप्युच्चैः संपतन्ती जवदलितदृषद्दारुणारावकर्त्री  
 भिन्दाना देवदारुद्रुमवनमभितस्तोक्षणधाराजवेन ॥४८॥  
 इत्थं कौतूहलानि प्रतिपदमुदयद्वेगवद्धिः प्रवाहै-  
 स्तन्वाना यक्षरक्षस्त्रिदशमुनिदृगानन्दसंदोहकन्दा ।  
 दिव्यारण्यद्रुमोद्यन्मृदुमधुरमिलन्मारुतैर्वीज्यमाना  
 प्रोत्सर्पन्ती सदर्पं सुदृढगिरिदरीदारणोद्वामदर्पा ॥४९॥  
 विभिन्नभासवद्विरजाप्रवाहा ब्रह्माण्डसप्तावृतिभेदकर्त्री ।  
 विदोर्णसप्तार्णववारिपूरपारङ्गमा संगतसर्वतीर्था ॥५०॥  
 कुलाचलग्रावविभेदनोग्रा सहस्रशो मार्गंगता त्रिनेत्री ।  
 महाजवोन्मूलितवृक्षमूला क्रमेण सा प्राप कलिन्दशैलम् ॥५१॥  
 स्फुरन्महारत्नमहाप्रकाशैर्निरस्ततारागृहकान्तिदर्पेः ।  
 दिवं स्पृशद्धिः शिखरैः समंतात् प्रसह्य रुधानमिवेन्दुमार्गम् ॥५२॥

महामहावज्रशिलाकठोरैः समन्ततो दीर्घदृष्टसमूहैः ।  
 विसंधिसर्वावियवं हरस्य त्रिशूलकोटचापि न भेत्तुमुहम् ॥५३॥  
 अनेकसिद्धौषधिदीप्यमानदरीगृहक्रीडितकारिणीभिः ।  
 देवद्रुमोत्थानिलवीजिताभिः सुराङ्गनाभिः सुनिषेव्यमाणम् ॥५४॥  
 महामहारत्नखन्ति समन्तात् सुरद्रुमारण्यमनोज्ञमध्यम् ।  
 नक्षत्रमालापरिशोभिनोभिरुपत्यकाभिः परितः स्फुरन्तम् ॥५५॥  
 सर्वाधिकोच्छायशिरः सहस्रमहावज्रशिलौघसारम् ।  
 रवीन्दुजैत्रद्युतिदीपिताशं गन्धर्वलोकामितगानरम्यम् ॥५६॥  
 नितम्बसंलग्नमहाधनालीसौदामिनीदीधितिदीपिताङ्गम् ।  
 माद्यन्मयूराज्जितचारुकेकासंभिन्नपुंस्कोकिलकाकलीकम् ॥५७॥  
 सर्वतुंसंसेवितकाननौघक्रीडत्सुरस्त्रीनयनाभिरामम् ।  
 सहस्रशो निर्झरधोरणीभिः प्रक्षालितात्यच्छशिलाकलापम् ॥५८॥  
 महामहारत्नगणप्रकाशं दिवानिशोत्फुल्लसुवर्णपद्मैः ।  
 स्फुरत्सुधानिर्मलतोयपूर्णैः समन्ततो देवसरोभिराढच्यम् ॥५९॥  
 अलौकिकानेकपदार्थसार्थैः सदैव विष्वक् परिपूर्यमाणम्  
 मुनीन्द्रसिद्धाश्रमसंघजुष्टसुपुण्यदेशाज्जितमध्यभागम् ॥६०॥  
 महेन्द्रमुख्यामरहूयमानशुभारिनजात्यर्थसुपुण्यधूमम् ।  
 गन्धर्वनारीकुचकुड्कुमात्कप्रायः प्रवाहामलदेवखातम् ॥६१॥  
 इस्तस्ततः संचरतां सुरस्त्रीकदम्बकानां चरणाम्बुजेषु ।  
 मञ्जीरधोषैङ्गचकितायमानमरालबालाकवणितातिरम्यम् ॥६२॥  
 कवचित् पिशाङ्गः कलहेमशृङ्गैर्मणिक्यभाभिः कवचिदात्तरङ्गम् ।  
 श्यामायमानं कवचिदभ्रसंघैः कवचिद् द्रुमौघैर्हरितायमानम् ॥६३॥  
 कवचित्महानिर्झरवातगौरमित्यं समुद्धान्तमनेकवर्णैः ।  
 त्रैलोक्यमाङ्गल्यविधौ विधात्रा विनिर्मितं मण्डलमुख्यमुवर्यम् ॥६४॥  
 अथ तत्रागता वेगाद् यमुनादीर्घवाहिनी ।  
 शैलं भेत्तुं मनश्चक्रे चण्डमारुतवेगिनी ॥६५॥  
 यथा संवर्त्तसमये मारुतश्चण्डवेगवान् ।  
 तथा बभूव यमुना जविनी शैलभेदने ॥६६॥

जवात् सुसंगता तेन शैलेन यमुना सरित् ।  
 महावज्रौघसाराभिर्दृष्टिद्वः सा परापतत् ॥६७॥  
 योजनादात्तवेगा सा गिरिपृष्ठविदारणे ।  
 वियोजनपरावृत्ता बभूव निहतोद्यमा ॥६८॥  
 हतवेगा तु सा पश्चात् परावृत्तपयोधटा ।  
 पुनर्वेगं समाबध्य स्रोतसा सुसमाययौ ॥६९॥  
 कृत्वा महाजवं स्रोतो धृतवीर्या महोत्कटा ।  
 वाणवत् प्रेरयामास जलौघं वेगवत्तरम् ॥७०॥  
 गिरिमर्ममहावज्रशिलासंघातकर्कशम् ।  
 विभेतुमत्युदीर्णा सा महावेगप्रधाविनी ॥७१॥  
 जवेनागत्य लग्ना सा गिरिभित्तिसु मर्मणि ।  
 समुच्छलिततोयौधा परावृत्ताभवत् पुनः ॥७२॥  
 सलज्जां यमुनां देवीं हतवेगां हतोद्यमाम् ।  
 तादृशीं तां समालोक्य देवाश्चिन्तातुरान्तराः ॥७३॥  
 बभूवः सकलास्तत्र निराशा दीनचेतसः ।  
 अहो त्रैलोक्यभव्याय जाता मङ्गलरूपिणी ॥७४॥  
 शुभकृत्सर्वलोकानां सर्वतीर्थसमाश्रया ।  
 पुण्यसारा पुण्यवहा महापुण्यविवर्द्धनी ॥७५॥  
 अभायेनैव जगतां गिरिः प्रत्यहतामगात् ।  
 कृपया देवदेवस्य गिरिं भिन्द्यात्महाजवा ॥७६॥  
 अनुग्रहोऽयं भूतेषु कर्तव्यो विष्णुना स्वयम् ।  
 स्वयमेष तदाविश्य श्रोतस्यस्याः कृपानिधिः ॥७७॥  
 भिनतिं चेद् गिरिग्रावसमूहं वज्रकर्कशम् ।  
 तदा त्रैलोक्यपापौघप्रतीकारो भविष्यति ॥७८॥  
 इति चिन्तातुराः सर्वे तुष्टुवुः कैटभद्रिषम् ।  
 समस्तदेवदेवेशं त्रैलोक्यकरुणाकरम् ॥७९॥  
 नमो देवाय हरये विष्णवे प्रभविष्णवे ।  
 दैत्यदानवरक्षौघकुलदावाग्निवर्षणे ॥८०॥

चक्रतेजःप्रभासंघविदारितसुरारथे ।  
 वायुतत्त्वमयोद्वाममहावेगगदाभूते ॥८१॥  
 उद्वामशक्तये तुभ्यमक्षुण्णबलवज्मने ।  
 जगत्प्राणप्रतीकाशप्राणाधाराय ते नमः ॥८२॥  
 कल्पान्तसमयोद्वाममहावातसुवेगिने ।  
 प्राणान्तकाय दैत्यानां विष्णवे ते नमोनमः ॥८३॥  
 उद्वामरथनिर्भिन्नब्रह्माण्डशतकोटये ।  
 करालाय महोग्राय नमस्ते हरमूर्तये ॥८४॥  
 वन्ध्यापुत्रमुषेति पौरुषकलाहीनोऽपि याति व्रजं  
 स्त्रीणां मूकतमोऽपि वक्ति गुरुवद्ध्वोऽपि पश्येज्जनः<sup>१</sup> ।  
 यस्येच्छानुवशात् कृपारससमासिक्ते जने जायते  
 किं किं नैव सुदुर्घटं विजयसे स त्वं महोदारधीः ॥८५॥  
 त्वं सर्गो जगतामसि स्थितिकरस्त्वं तत्त्ववृन्दस्य सत्-  
 तत्त्वं तद्विद्वनामयो विजयसे विश्वस्य भावोऽपि च ।  
 त्वं सर्वेष्ववशिष्यसेऽवसरतो नश्यत्सु वस्तुष्वलं  
 तत्त्वामगुणस्य रूपनिलयो न त्वां विना किंचन ॥८६॥  
 नित्यं वेदवचांसि गोचरतमा किंचित् समाचक्षते  
 नित्यं प्राप्तुमतन्निरासमुखतो वाञ्छन्ति शश्वत् प्रभो ।  
 आरोपार्थमुदीरयन्ति च गुणान् नैर्गुण्यलक्ष्मीनिधे  
 नोचेत् सच्चिदद्विष्टसौख्यजलघौ तेषां प्रवृत्तिः कथम् ॥८७॥  
 ब्रह्मण्येव गिरां वृत्तिरित्थंभूता विभाव्यते ।  
 कुतस्तरां परेब्रह्मण्यासां वृत्तिर्हरे त्वयि ॥८८॥  
 नमोस्तु ते देव सदैव कुर्महे किमन्यदानन्दनिधे विधीयताम् ।  
 एतावतालं भवतोऽनुतोषणं मुकुन्दभक्त्येकजुषामिहात्मनाम् ॥८९॥  
 संप्रत्यसौ नाथ तवानुकंपया विश्वस्य माङ्गल्यविधिर्भूत् ह ।  
 यस्मादियं पुण्यपरम्परामयो पराविरासीमुनाभिधा सरित् ॥९०॥

१. पश्यत्यथान्धोजनः—मथु०, बड़० ।

सुधामयी सौख्यमयी रमामयी महोमयी मङ्गलधोरणीमयी ।  
 दयामयी ऋद्धिरपूर्वगा हरे जयत्यसौ नीलरुचिस्तरज्ज्ञणी ॥९१॥  
 अनया देवदेवेश कृतार्थमखिलं जगत् ।  
 विनैव साधनायासैविना चाध्यात्मसंविदा ॥९२॥  
 अस्या दर्शनमात्रतो मधुरिपोर्दृष्टं स्वरूपं तव  
 ब्रह्मानन्दकलाधिकं कलयति प्रेमपयोदार्णवम् ।  
 एषा श्रीर्जगतामलौकिकतमा कल्याणसंपत् परा  
 पुण्यौघैः प्रवहत्यनेकदुरितध्वंसप्रगल्भोदया ॥९३॥  
 अस्याः संप्राप्तिमध्येऽसौ प्रत्यूहः समुपस्थितः ।  
 भवतोऽनुग्रहाद्विष्णो किं तु दूरीभविष्यति ॥९४॥  
 किं किं न दुर्घटं नाथ तवानुग्रहभावितम् ।  
 जायते भुवि मर्त्यनां तत्प्रसीद जनार्दन ॥९५॥  
 ब्रह्माण्डसप्रावरणभेदनेन विलम्बिता ।  
 नापीश विरजापूरतोक्षणतोयौघभेदने ॥९६॥  
 न सप्तसिन्धुतोयौघनिर्दारणनिधावपि ।  
 तथैवेषा कलिन्दाद्रेदरणे न विलम्बताम् ॥९७॥  
 कृपां कुरु जगन्नाथ विश्वमङ्गलविग्रह ।  
 विश्वपापहरात्युग्र पूर्यतां नो मनोरथः ॥९८॥  
 विनिभिनत्तु भवतां दत्तया जववत्तया ।  
 कलिन्दपर्वतग्रावशिलावज्ज्रतटोत्करम्<sup>१</sup> ॥९९॥  
 विनिर्यातु ततो देवी यमुना लोकमङ्गला ।  
 उच्चैर्भरतखण्डस्य पावनाय पयोभरैः ॥१००॥  
 भवन्तु मनुजाः सर्वे धरणोत्तलवासिनः ।  
 दर्शनादेव निष्पापाः कृष्णसायुज्यलब्धये ॥१०१॥  
 क्रियतां च क्षणात् सर्वजन्मूद्दीपनिवासिनाम्  
 तीर्थनां मानसंदोहः सर्वेषां पापशान्तये ॥१०२॥

१. °शतोत्कटम्—सथ०, बडो० ।

वशिष्ठ उवाच

इति स्तुवत्सु देवेषु ऋत्येन्द्रगिरिशादिषु ।  
 सद्य आविरभूत् तत्र भगवान् कमलापतिः ॥१०३॥

शङ्खचक्रगदापद्मविभूषितकराम्बुजः ।  
 कौस्तुभीकञ्जकिञ्जलकपुञ्जमञ्जुतराम्बरः ॥१०४॥

वनमालान्तरप्रोततुलसीदलसौरभैः ।  
 प्रविष्टैर्द्वाणिमार्गेण क्षालयन् योगिनां मनः ॥१०५॥

प्रावृषेण्यघनश्यामः शोर्षरत्नावतंसभृत् ।  
 मकराकारनिर्णिक्तकुण्डलद्वयमर्णितः ॥१०६॥

उदारविलसत्तारमुक्ताहारविभूषितः ।  
 लम्बमानालकभ्राजन्मधुराननपञ्ज्जुजः ॥१०७॥

स्वर्णोपवीतवलितललितोदारकन्धरः ।  
 कड्कणाङ्गदरत्नोपकटिसूत्रमनोहरः ॥१०८॥

रामणीयकसंपत्तिसंदोहामृतसागरः ।  
 इत्युदारगुणोत्कर्षसुधावर्षपयोधरः ॥१०९॥

वैनतेयमयोदारमहारथमधिष्ठितः ।  
 दिव्यपार्षदवयौघसमुपासितविग्रहः ॥११०॥

सोऽवतीर्य रथात् तूर्णं वैनतेयमयाद्वरिः ।  
 स्तुवतां देववृन्दानां मध्ये प्रादुरभूद् विभुः ॥१११॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देवदेवं रमापतिम् ।  
 जयेत्यभिदधुर्देवा धृतोपायनपाणयः ॥११२॥

हरिः संभावयामास कृपादृष्ट्या सुरेश्वरान् ।  
 सुधाभिविषणा चैव मन्दहासेन शोभिना ॥११३॥

१. “झीर्षे रथं अवतंसं च यिभर्तीति, उत्तंसावतंसौ द्वौ कर्णपूरेऽपि शेखरे इत्यमरः” । टिं०—मथु० ।

तस्य प्रसादविशदैः कटाक्षैर्भाविताः सुराः ।  
मेनिरे मुनयो देवाः सिद्धमात्ममनोरथम् ॥११४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे  
यमुनोत्पत्तिर्नाम अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

६

## नवाधिकशततमोऽध्यायः

### वशिष्ठ उवाच

समागतमभिज्ञाय रमाकान्तं चतुर्भुजम् ।  
यमुना सहसागच्छत् प्राविर्भूय जलान्तरात् ॥ १ ॥  
सा नत्वा कमलाकान्तं मेघश्यामं जनार्दनम् ।  
तस्थावज्जलिमावध्य तत्समीपे धृतेक्षणा ॥ २ ॥  
तामुवाच स्मयन् देवो भगवान् कमलेक्षणः ।  
हृदयान्तःसमुद्भूतकरुणामृतसुन्दरः ॥ ३ ॥

### श्रीभगवानुवाच

गच्छ देवि महीं शीघ्रं देशान् पावय मार्गगान् ।  
जनानां हर पापानि पश्यतामपि सुव्रते ॥ ४ ॥

### यग्नोवाच

किनु कुर्यामहं नाथ प्रत्यूहोऽयं महान्मम ।  
कलिन्दगिरिरूपोऽत्र मध्येमार्गं व्यवस्थितः ॥ ५ ॥  
नैनमुल्लङ्घितुमपि शक्ताहं कमलायते ।  
रविवाहखुरस्पृग्निः शिखरैर्व्यापितं दिवि ॥ ६ ॥  
नापि भेत्तुमहं शक्ता स्रोतोजवविधायिनी ।  
महाशनिशिलासारकर्कशावयवोन्नतम् ॥ ७ ॥

### श्रीभगवानुवाच

अस्य त्वं तनया नाम्ना कालिन्दीति भविष्यसि ।  
भित्वास्य हृदयं देवि विनिर्यास्यसि सुव्रते ॥ ८ ॥

कृतार्थयिष्यसि गिरेः कुलमस्य महात्मनः ।  
 पुत्रीभावं समासाद्य भूषयिष्यसि सांप्रतम् ॥ ९ ॥  
 शैलेन्द्रसुसमुत्तुज्जं कोटिशृङ्खविभूषितम् ।  
 दिव्यभावसमायुक्तं नित्यं समधिवत्स्यसि ॥ १० ॥  
 नित्यं संनिहिता चात्र स्वेन रूपेण भाविनि ।  
 देवानृषीन् पितृश्चैव तोषयिष्यसि सर्वदा ॥ ११ ॥

यस्ते मनोज्ञपुलिनद्वयमध्यवास्तुस्त्वद्वारिमत्तनुमहो महितस्वरूपम् ।  
 संसेवयिष्यति जनः सुकृती स एव भुवित च मुक्तिमनुविन्दति भवितयुक्तः ॥ १२ ॥  
 या दुर्लभा दिविषदामपि सार्वलोकमैश्वर्यमुन्नतमखोद्भूवपुण्यजन्यम् ।  
 आकल्पमेव जुषतां ननु सा भवत्याः पाथोनुषेवणकृतां सुलभास्ति भवितः ॥ १३ ॥  
 यावज्ञ गोपललनाकुचकुड़कुमाकतं मद्विप्रयोगभवतापहरं त्वदम्भः ।  
 आचामतीह मनुजो यमुने न तावन्मत्प्रेमजां स्वमनुविन्दति शशवदार्तम् ॥ १४ ॥  
 तत्त्वं कलिन्दगिरिराजसुतात्वमेत्य प्रादुर्भवस्व हृदयादुदपाय देवि ।  
 विश्वं विभूषय कुलं च गिरेरमुष्य भवित पराममृतं माचमतां पुषाण ॥ १५ ॥  
 वृन्दाटवीं तुलसिकामकरन्दवृन्दसौरभ्यसारशुभगामभिसंचरन्ती ।  
 उच्चर्मदञ्जमहसां किल धोरणीव ध्वान्तापहा विजयसे यमुने कदा नु ॥ १६ ॥  
 यद् गोदुहां स्त्रिय इनेन्दुविजैत्रभासो बिभ्रत्यहो निरुपमां रुचिमानखादच्याम् ।  
 यत्कोटितोर्थसुकृतप्रचयं प्रतीके त्वत्पाथसां जयति मज्जनजः<sup>३</sup> प्रभावः ॥ १७ ॥

यथा मेरुगिरिर्मुख्यो गिरीणां गगनस्पृशाम् ।  
 यथा च मन्दरगिरिर्गन्धमादन एव च ॥ १८ ॥  
 हिमवांश्च यथा साक्षाद्भूवान्या वन्दितो गुरुः ।  
 मलयश्चैव मैनाकः कैलासो द्रोण एव च ॥ १९ ॥  
 गोवद्धनगिरिधन्यो विशाखगिरिरेव च ।  
 श्रीशैलश्च विशेषेण इलाघनीयो यथा जनैः ॥ २० ॥  
 यथा विन्ध्यो महाशैलः कोटितीर्थनिषेवितः ।  
 दुर्गागिरिर्यथा चैव सर्वाश्चर्यमयो भुवि ॥ २१ ॥

१. °समिति°—रीवाँ । २. प्रचुर—रीवाँ । ३. मज्जनता°—रीवाँ ।

नरायणगिरिश्चैव विष्णुपादरजोऽङ्कुतः ।  
 यथातपनशैलश्च भासमानस्तनुत्विषा ॥२२॥  
 वैदूर्यपर्वतो यद्वद् रेवापातमनोहरः ।  
 पूर्वदक्षिणपाश्चात्योत्तरशैलवरा यथा ॥२३॥  
 तथायं भूभृतांश्रेष्ठः सर्वाश्चर्यनिधिर्गिरिः ।  
 कलयत्यखिलां लक्ष्मीमिन्द्रश्च ननु भूभृताम् ॥२४॥  
 कलिन्द इति तेनासौ कीर्तितो विवृधव्रजैः ।  
 कमनीयतमोत्तुङ्गसहस्रशिखरोचितः ॥२५॥  
 अशेषदेवतावासः सिद्धगन्धर्वसेवितः ।  
 श्वेतपीतहरिद्रक्तनानावर्णमनोहरः ॥२६॥  
 वशिष्ठादिमुनीन्द्राणां तपोभिः पुष्यपूरितः ।  
 विशेषात्त्वप्रवाहेण भविता कोटितीर्थभूः ॥२७॥  
 एवं व्रुवाणे दिविषद्वरेण्ये रमापतौ भावितलोकभव्ये ।  
 तत्रातिशोभाज्ञितदिव्यवेशः कलिन्दशैलः समुपाजगाम ॥२८॥  
 आम्रे स्थितं केशवमेष वीक्ष्य प्रकामभक्तिप्रणतो गिरीन्द्रः ।  
 नीराजयस्तुङ्गशिरोग्ररत्नस्तत्पादपद्मद्वितयं पपात ॥२९॥  
 उत्थायोत्थाय शैलेन्द्रः पपात पदयोर्मुहुः ।  
 इत्थं विनीतवेशः स तस्थावग्रे कृताञ्जलिः ॥३०॥  
 तमुवाच हृषीकेशः स्मयन् मधुरया गिरा ।  
 जगत्कल्याणकरणीं करुणां समुपाश्रितः ॥३१॥

### श्रीभगवानुवाच

धन्योऽसि धन्यधन्योऽसि कलिन्दगिरिनायक ।  
 यस्य शृङ्गमलङ्कुर्तुं यमुना स्वयमागता ॥३२॥  
 इयं हि भवतो जन्म परिप्राप्य शुभावहम् ।  
 भूषेयिष्यति वै सर्वं निजतोयैर्महीतलम् ॥३३॥  
 तथा कुरु गिरिश्रेष्ठ यथा ते वक्षसि स्थिता ।  
 प्रादुर्भूय जगत्सर्वं पुनीत निजपाथसा ॥३४॥  
 भवान् हि शिखरैर्वर्योम मूलेन च महोतलम् ।  
 स्थितोऽसि व्याप्य शैलेन्द्र दिशश्च परिणाहतः ॥३५॥

ग्रहनक्षत्रताराद्या न त्वामुल्लंघ्नितुं क्षमाः ।  
 ईदृशी तव शीषणां तुड्गता परिदृश्यते ॥३६॥  
 उत्तुड्गशीर्षता चैव तथैव दृढमूलता ।  
 विष्वगायामिताचैव तव भक्त्या विभूषिता ॥३७॥  
 इयमेतादृशी भक्तिर्गोवर्द्धनगिरेव ।  
 अलङ्कूरोति त्वामुच्चैर्गिरिराज सतांगणे ॥३८॥  
 तव भक्त्यैव शैलेन्द्र नित्यं सुदृढमूलया ।  
 यमुना त्वां परिप्राप्ता साक्षादमृतवाहिनी ॥३९॥  
 आनामय शिरः स्वीयं यमुनां तत्र वासय ।  
 क्रीडिष्यति<sup>१</sup> चिरं तत्र तरङ्गकुलरङ्गिणी ॥४०॥  
 भित्त्वा च त्वां हृदयतः प्रकटत्वमुपैष्यति ।  
 त्वं चानया तनयया पूर्णकामो भविष्यति ॥४१॥  
 श्रुत्वा भगवतो वाक्यं कलिन्दः पर्वतोत्तमः ।  
 जहर्ष हृदयेऽत्यन्तं पूर्णकामोपलक्षितः ॥४२॥  
 उवाच च इलाघ्यमानो वाक्यं भगवतो हरेः ।  
 उत्कुलहृदयाम्भोजो हसन् मधुरभाषितः ॥४३॥

### कलिन्द उवाच

भाग्यं मम इदं जातं भगवन् दीनवत्सल ।

ईदृशं यदपत्यं स्यादपत्यरहितस्य मे ॥४४॥

यन्मूर्धिन संनिवसतां सततं मुनीनामार्कणितोऽयमखिलः स मया पुरैव ।  
 यद्ब्रह्मपूर्णगुणमड्गलनामधाम दुद्राव सर्वजगतामघपुजजहन्त्रि ॥४५॥  
 नीलेन दीमिकलितेन महो महिम्ना जानामि सैव यमुनेयमिति स्वचित्ते ।  
 पश्यामि भाग्यसमुदायविशिष्टवासो दृग्भ्यां रमेश भवदाकृतिनित्यमेनाम् ॥४६॥  
 पुत्री भवत्वियमपत्यविवर्जितस्य नित्यं ममैव कुलभूषणकारिरूपा ।  
 एष प्रसाद उदितो भवतो रमेश नित्यं महीतलसतां च नृणां हितार्थः ॥४७॥

### वशिष्ठ उवाच

अथ शुभावहमेत्य मुहूर्तकं समनुकूलशुभग्रहतारकम् ।

कुवलयेतिकलिन्दगिरेवर्धूः कमपि गर्भमधत्ता गुणोत्तरम् ॥४८॥

१. क्रीडिष्यत्वा—रीवौ ।

ततः कुवलया वधूः सुखमसूत पुत्रीमिसाम्  
 स्फुरत्कमलकोमलावयवसंघशोभावहाम् ।  
 महेन्द्रमणिभासुरां कुवलयावदातच्छविम्  
 महीतलशुभावहं त्रिजगतां भनो मोदिनोम् ॥४९॥  
 तज्जन्मकाले परमोत् सवोऽभूतसंजाततौर्यन्त्रिकनादमोदः ।  
 महेन्द्रमुख्यत्रिदशोपबलृप्तं मन्दारपुष्पप्रकरौघवर्षः ॥५०॥  
 शैलेन्द्रस्तां तु जानानो यमुनेत्याख्यया मुदा ।  
 सुखमामन्त्रयाऽच्चक्रे विलोचनसुखावहाम् ॥५१॥  
 रूपसारं निपीयास्या गिरिर्वात्सल्यमोहितः ।  
 नातृप्यत् तत्र शैलेन्द्रः सुखोत्करसमाचितः ॥५२॥

अन्तःपुरे तां जननीसमीपे विराजमानां विहिताङ्गभूषाम् ।  
 स्त्रीणां गणोऽमन्यत मानसेषु रमापतेर्मुख्यवधूभवित्रीम् ॥५३॥  
 सा तासु शैलेन्द्रवधूषु वाक्यं तया क्रुवाणा सुमुमोद चित्ते ।  
 जातिस्मरत्वं समवाप्य सदचो विजानती स्वेन हरेहिच्चकीर्षम् ॥५४॥  
 सा बाल्य एवाधिकसौकुमार्यमाधुर्यसंपत्समुदायरम्या ।  
 बभूव लोकस्य मनांसि हतुं समर्थरूपप्रचयाचिताङ्गी ॥५५॥

शैशवं समतिक्रम्य ततः परमियं वयः ।  
 शोभयामास चार्वड्गी शुभावयवसंपदा ॥५६॥  
 भूषितं यौवनेनास्यास्तनोः प्रथमया श्रिया ।  
 दिनेदिने विशेषेण काञ्चित्कान्तिकलां दधौ ॥५७॥  
 यौवनेन वपुस्तस्या वपुषा यौवनं तथा ।  
 विभूषितमभूत्तेन पुषोष परमां श्रियम् ॥५८॥  
 अन्योन्यशोभासंभारमभार्षीदञ्चिता गुणैः ।  
 सा च तद्यौवनं चैव ववृधे प्रतिवासरम् ॥५९॥

यतो यतो गच्छति शैलराजस्यान्तःपुरे यौवनभूषिता सा ।  
 ततस्ततो नीलसरोजराजीसंपुष्पितेवास दिनोदयेन ॥६०॥  
 अथाभवच्छैलपतेर्दुरन्ता चिन्ता तदुद्वाहविधौ त्रिलोकयाम् ।  
 नालस्मिं रूपप्रतिमो यतोऽस्याः कश्चिद्वरः सर्वगुणैघसिन्धुः ॥६१॥

अथैकदा नारद आजगाम कलिन्दशैलस्य शुभं निकेतनम् ।  
स पूजितस्तेन सुसत्कृतश्च माधव्या॑ गिरा शैलपतिं जगाद् ॥६२॥  
अहो कलिन्दाचलराज नित्यं धन्योऽसि भूभृत्कुलभूषणोऽसि ।  
यस्यात्मजा श्रीयमुना बभूव श्रीकृष्णदेहार्धमयी वरेण्या ॥६३॥

परब्रह्मस्वरूपेयं साक्षात्त्रीलघनाकृतिः ।  
रूपसौन्दर्यसाराढचा विभूषयति ते कुलम् ॥६४॥  
शुभवर विषयेऽस्याशिच्नतया किं तथा ते  
यदियमपरलक्ष्मीः सर्वसौभाग्ययुक्ता ।  
हृदि कलय भवित्रीं भाविकृष्णावतारे  
सकलभुवनभर्तुः श्रीपतेः पद्मराजीम् ॥६५॥  
जम्बूद्वीपविभूषणे शुभवने वृन्दावनाख्ये वने  
दृष्ट्वा पौरुषभूषणं यदुकुलोत्तंसं विच्चित्रक्रियम् ।  
श्रीकृष्णं कलयिष्यतीयमतुलं श्रीसंपदाढचं वरं  
रुक्मिण्यादिषु तत्प्रियासु रुचिरा संशोभमाना गुणैः ॥६६॥

इतोऽवधि क्षमातलवर्तिदेशान् घनौघकान्तैरुदकैः पुनर्न्ती ।  
व्रजावनीमेत्य विराजमाना स्थास्थत्यसौ रासविलासकादौ ॥६७॥  
गोपाङ्गनानां हरिविप्रयोगप्रभूतमुत्तापमिषं हरन्ती ।  
वृन्दावनं श्रीपतिधाम कामं विभूषयिष्यत्यमलैर्जलौघैः ॥६८॥

इति नारददेवर्षिभाषितं मधुरं वचः ।  
आकर्ष्य गिरिराट् सद्याः संपेदे परमां मुदम् ॥६९॥  
इत्युदीर्यं वचस्तस्मै देवर्षिः सहस्रोत्थितः ।  
प्रणम्य यमुनादेवीं जगाम हरिमन्दिरम् ॥७०॥  
यमुनारूपसौन्दर्यं जगौ स श्रीपतेः पुरः ।  
ववण्यन् वल्लकीं रम्यां भक्तिरोमाञ्चिविग्रहः ॥७१॥  
अथैकदा हरिस्तत्र द्रष्टुं श्रीयमुनामगात् ।  
कलिन्दगिरिवर्यस्य निकेतं श्रीभरान्वितम् ॥७२॥

आसंचरन्ती विपिने मनोज्ञे कलिन्दशैलस्य मनोहरायाम् ।  
 उपत्यकायां लसितं समंताहृदर्शं कुत्रापि रथाङ्गपाणिम् ॥७३॥  
 परार्द्धकन्दर्पमनोज्ञरूपमिन्दोवराभ्यामिव लोचनाभ्याम् ।  
 कटाक्षवाणीर्हृदयं हरन्तं रत्नावतं सोज्ज्वलराजिशीर्षम् ॥७४॥  
 नखप्रभानिर्जितसूर्यचन्द्रद्युर्ति च विद्योतितदिक्समूहम् ।  
 आनन्दसारावयवं समंतान्मुखेन्दुमन्दस्मितहारिणं तम् ॥७५॥

सा दृष्ट्वा कमलाकान्तं परार्द्धस्मरसुन्दरम् ।  
 द्रवत्वमगमद्देवी यमुना पूर्ववत् पुनः ॥७६॥  
 कृष्णोऽपि यमुनारूपं यथा दृष्टं पुनः पुनः ।  
 स्मारं स्मारं हृषीकेशो द्रवतां समुपागतः ॥७७॥  
 ते उभे श्रोतसी तत्र मिलित्वा विश्वपावने ।  
 कलिन्दहृदयं भित्त्वा विनियते व्रजान्विते ॥७८॥  
 स पूर्वरुद्धोऽपि तदा प्रवाहस्तेनैव मार्गेण विनिःसृतोऽभूत् ।  
 ततस्तदेतत्रयं मेकदेशे प्रतत्य सर्वं यमुनैव जातम् ॥७९॥  
 ओघत्रयवती कृष्णा कलिन्दाद्रेविनिर्गता ।  
 भित्त्वा दृढां गिरेर्भित्ति चचाल शनकैस्ततः ॥८०॥  
 ततो महौघा यमुना यमानुजा जगाम दर्पेण समन्दवेगा ।  
 अनेकशैलप्रकरान् पथिस्थान् विभिद्य साचोत्तरतः समवजत् ॥८१॥  
 इत्थं कलिन्दाचलकन्यका सा महौघसंघातजवान्विता नृप ।  
 स्थले स्थले तीर्थगणान् प्रकुर्वती पर्यन्नजद् देवनर्षिपूज्या ॥८२॥  
 विहायोत्तरदेशं सा देशं दक्षिणतोऽन्नजत् ।  
 काश्मीरमण्डले भूत्वा यमुना प्रभवावधि ॥८३॥  
 सर्वाणि<sup>१</sup> यामुनान्येव तानि तीर्थानि भूपते ।  
 त्रैलोक्यपावनानीति गदतो मे निशामय ॥८४॥  
 यमुनाद्वारमारभ्य यमुनोद्भेदनावधि ।  
 महातीर्थानि पुष्यानि यामुनानि महीपते ॥८५॥

१. तदद्य त्रय—मथु० बड्ड० । २. सर्व—मथु०, बड्ड० ।

पुनन्ति स्नानदानाभ्यां स्पर्शादाचमनादपि ।  
 दर्शनाद्वा सुसंपर्कात्तद्गमिजनसंगमात् ॥८६॥  
 यमुनाप्रभवे स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
 महाविष्णोः पदं स्पृष्ट्वा जीवन्मुक्तो भवेत्सरः ॥८७॥  
 यमुनाप्रभवं नाम सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।  
 तदेव यमुनादेव्याः प्रभवस्थानमुक्तम् ॥८८॥  
 यावन्ति भुवि तीर्थानि तानि सर्वाणि भूपते ।  
 द्रष्टुं श्रीयमुनादेवीमाजगमुस्तत्रसादरम् ॥८९॥  
 तेषां मध्ये स्फुरन्ती सा नक्षत्राणामिवेन्दुभा ।  
 कल्याणिनी विजयते नवनीलसमाकृतिः ॥९०॥  
 भूभूतां प्रवरो यत्र कलिद्वो नाम पर्वतः ।  
 गारुत्मतमहारत्नकोटिसानुमनोहरः ॥९१॥  
 तद्वने विचरन्ती सा दृश्यते दैवतोत्तमैः ।  
 पीताम्बरपरीधाना नवनीलघनाकृतिः ॥९२॥  
 यमुना यमभीतिष्ठनी सर्वस्थानेषु दुर्लभा ।  
 स्थानत्रये तु सा नित्यं स्वयं मूर्तिमती स्थिता ॥९३॥  
 यमुनाप्रभवे चैव यमुनाद्वार एव च ।  
 वृन्दावने रामतीर्थं मथुरांयां च भाविनी ॥९४॥  
 एषु स्थानेषु यमुना ध्यातव्या वैष्णवोत्तमैः ।  
 सततं भक्तिमिच्छद्विः परं प्रेमाभिधा हरेः ॥९५॥  
 निविडजलदवर्णा पीतकौशेयवस्त्रा  
 सततमभयहस्ता दक्षिणेनाम्बुजादच्चा ।  
 क्रलितकनकदोला रत्नताटच्छकर्णा  
 सकलसरिदुपास्या पातु कृष्णप्रिया सा ॥९६॥  
 इत्यद्भुतं ध्यानमुदीरयानो यत्र क्वचिन्मज्जति यामुने यः ।  
 तस्यापि वृन्दाटविमज्जनस्य फलं भवेच्छ्रीयमुनाप्रसादात् ॥९७॥  
 ततो ब्रह्महृदं नाम यामुनं तीर्थमुक्तरे ।  
 यत्र स्नात्वा नरः सद्यो धौतपापो विशेषद्विम् ॥९८॥

स्नात्वा विष्णुहृदे चैव यामुने तीर्थं उत्तमे ।

विष्णुभक्ति लभेदाशु यामुने विमले जले ॥१९॥

स्नात्वा रुद्रहृदे तीर्थे यामुने विमले जले ।

रुद्रस्यैव गति लब्धवा जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥१००॥

प्लक्षावतरणं नाम यामुनं तीर्थमुत्तमम् ।

दृष्ट्वा सारस्वतैर्यत्र देवैरवभूथं कृतम् ॥१०१॥

पुण्यमक्षयमेवात्र निहितं मज्जतां सताम् ।

तीर्थमग्निशिरो नाम पुण्यं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥१०२॥

यत्रेष्ट राजवर्येण सहदेवेन वै पुरा ।

तस्य पुण्यप्रभावेण यमुना पुण्यवाहिनी ॥१०३॥

सहस्रदक्षिणं नाम यमुनाम्भसि भूपते ।

विख्यातं विपुलं तीर्थं राजा तेनैव निर्मितम् ॥१०४॥

ब्रह्मयूपाभिधं तीर्थं यमुनायां प्रतिष्ठितम् ।

यत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वाजपेयफलं लभेत् ॥१०५॥

चन्द्रतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

ऋषीणां बालखिल्यानां तपः स्थानं सुदुर्लभम् ॥१०६॥

तद्विव्यं यामुनं तीर्थं दर्शनात् पापनाशनम् ।

आर्चीकपर्वते पुण्या यमुना दर्शनाननृणाम् ॥१०७॥

त्रिशृङ्गचां स्नानमात्रेण पड्क्तिपावनतां व्रजेत् ।

त्रीणि प्रस्त्रवणान्यत्र पुण्यानि यमुनाम्भसाम् ॥१०८॥

शन्तनुर्यत्र नूपतिः शनकश्च महीपतिः ।

स्थानं सनातनं प्राप्य नित्यं मुमुदतुर्हंदि ॥१०९॥

नरो नारायणश्चैव यत्र नित्यं प्रतिष्ठितः ।

देवताः पितरश्चैव यत्र सर्वे प्रतिष्ठिताः ॥११०॥

सुगम्भीरतमस्त्रोता यमुना तत्र शोभते ।

इदं प्रस्त्रवणं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१११॥

तद्यामुनं महातीर्थं दर्शनात् पापनाशनम् ।

यत्र धाताविधातारौ वरुणश्चालभद् यशः ॥११२॥

मखान् बहुतरांश्चक्रे तेने पुण्यं च भूतले ।  
 नानामहर्षिन्नहर्षिदेवर्षिगणसेवितम् ॥११३॥  
 यमुनामवगाह्यात्र महायज्ञफलं लभेत् ।  
 मान्धातृयज्ञवाटे च यमुना विश्वपावनो ॥११४॥  
 सोमकस्य च राजेन्द्र सहदेवस्य भूपतेः ।  
 यूपप्रणिखने तीर्थे यमुना विष्णुदुर्लभा ॥११५॥  
 प्रजापतेर्यज्ञवाटे यमुना देवदुर्लभा ।  
 पुरा वर्षसहस्रं स यत्र सत्रमवर्तयत् ॥११६॥  
 अम्बरीषो महाराजः क्रतून् यत्र चकार वै ।  
 नाभागश्चमहाभागस्तत्रस्नात्वा दिवं गतः ॥११७॥  
 यत्र पुण्यतमो देशो यथातेः पुण्यकर्मणः ।  
 तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च पुण्यश्लोको दिवं व्रजेत् ॥११८॥  
 यमुनाम्भः सरस्वत्या यत्र संमिलितं नृप ।  
 तत्तीर्थमतुलं लोके मयाख्यातुं न शक्यते ॥११९॥  
 दृष्टद्वती च यमुना यत्र संमिलिते उभे ।  
 तत्तीर्थमूषिभिः ख्यातं कोटिर्थसमं भुवि ॥१२०॥  
 जमदग्निमुनेभूप यत्र पुण्याश्रमस्थलम् ।  
 तत्तीर्थं यमुनावारिण्यद्भुतं विश्वपावनम् ॥१२१॥  
 भूगुतीर्थं महाराज सर्वपापप्रणाशने ।  
 आप्लुत्य यामुने वारिण्यनन्तं फलमाप्नुयात् ॥१२२॥  
 वितस्तायमुनासंगे सर्वपापप्रणाशने ।  
 सकृन्निमज्जन् मनुजः सद्भर्त्ति लभते ध्रुवम् ॥१२३॥  
 जलाचोपजला चैव यमुनामभिनिर्गते ।  
 तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥१२४॥  
 वायुतीर्थं महाराज यामुने शुभवारिणि ।  
 तत्र स्नात्वैव राजेन्द्र वायुतुल्यः शुचिर्भवेत् ॥१२५॥

औशीनरं तु राजानस्मिन्द्रागनी अभिजग्मतुः ।  
 तत्र इयेनकपोतीये स्थाने तीर्थं मनोहरम् ॥१२६॥  
 यमुना वहते यत्र सर्वतीर्थमयी सरित् ।  
 तत्र स्नात्वा द्विजान् भोज्य कोटियज्ञफलं लभेत् ॥१२७॥  
 एवमृत्तरतो राजन् यमुना दक्षवाहिनी ।  
 यं यं देशमभिप्राप्य पावयामास भूपते ॥१२८॥  
 स स देशः पुण्यतमः स्नानदानादिकर्मसु ।  
 क्रतूनामुचितश्चैव विप्राणां वसतिक्षमः ॥१२९॥  
 यमुनापुलिने वासो यमुनाम्भसि मज्जनम् ।  
 यमुनाजलपानं च देवानामपि दुर्लभम् ॥१३०॥  
 पावयन्ती शुभान् देशान् इन्द्रप्रस्थमुपागमत् ।  
 तीर्थं निगमबोधाख्यं तत्र ख्यातं महीपते ॥१३१॥  
 तत्राक्षवमेधाः शतशः सहस्रशो देवैस्तथाभूपवरैरनुष्ठिताः ।  
 तेनैतदत्युग्रतरं महीतले विभाति तीर्थं मुनिपुङ्गवैस्तुतम् ॥१३२॥  
 तत्र स्नात्वा तथा दत्त्वा पुण्यमक्षयमाप्नुयात् ।  
 तुल्यं निगमबोधस्य तत्तीर्थान्तरमिष्यते ॥१३३॥  
 इन्द्रप्रस्थं महाराज योगिनीकोटिसेवितम् ।  
 वाराहीक्षेत्रमुदितं कालिका यत्र तिष्ठति ॥१३४॥  
 तत्र श्रीयमुनावारिण्याप्लुत्य सततं नरः ।  
 ऋणहत्याकरं पापं क्षिप्रमेव विमुञ्चति ॥१३५॥  
 पापमैहिकभोग्यं यदामुष्मकफलं च यत् ।  
 स्नात्वा निगमबोधे तु सद्य एव निवर्तते ॥१३६॥  
 ततो व्रजेन्महापुण्ये नन्दगोपेन्द्रपालिते ।  
 संचरन्ती मन्दमन्दं यमुना लोकपावनी ॥१३७॥  
 अधिवृन्दावनं भूप बलस्य सुमहात्मनः ।  
 हलाकर्षणसंज्ञं तत् तीर्थं विश्वस्य पावनम् ॥१३८॥  
 तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्योऽस्मितं वसु ।  
 लोकान् पुण्यकृतान् राजन्नाकल्पं प्राप्नुयान्नरः ॥१३९॥

मथुरामण्डले यानि तीर्थानि यमुनाम्भसि ।  
 तानि सर्वाणि संगम्य स्नानं दानं समाचरेत् ॥१४०॥  
 तस्य सर्वा तीर्थयात्रा सफला स्यान्महीपते ।  
 भुक्ति मुक्ति लभेदाशु यद्यन्मनसि वाञ्छति ॥१४१॥  
 ततश्च माथुरं राजन् मण्डलं सर्वसौख्यदम् ।  
 अतीत्य रेणुकातीर्थं यमुनायां प्रतिष्ठितम् ॥१४२॥  
 यत्र रामः स्वयं भाति भार्गवो लोकपूजितः ।  
 तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च पुण्यमक्षयमाप्नुयात् ॥१४३॥  
 ततश्च यमुनातोये यमतीर्थं महीपते ।  
 सकृत्संस्नानमात्रेण यमभीर्ति निवारयेत् ॥१४४॥  
 ऋषितीर्थं महाराज यमुनायां प्रतिष्ठितम् ।  
 रामतीर्थं विशेषेण जगतः पावनं मतम् ॥१४५॥  
 चर्मण्वत्या च यमुना नितरां यत्र संगता ।  
 तत्र स्नानेन दानेन नरोऽनन्तं फलं लभेत् ॥१४६॥  
 ततश्च देवतीर्थं तद् यमुनायां सुपावनम् ।  
 स्नानादेव महीपाल ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥१४७॥  
 विश्वेषां चापि देवानां ततो वै तीर्थमुत्तमम् ।  
 तत्र स्नानेन तृप्ताः स्युविश्वेदेवा महीपते ॥१४८॥  
 आदित्यतीर्थं चाप्लुत्य यमुनायां शुभावहे ।  
 आदित्यलोकं जयति यावत्कल्पं सुपुण्यभाक् ॥१४९॥  
 वसूनां सुमहत्तीर्थं यमुनायां प्रतिष्ठितम् ।  
 तत्र स्नानेन दानेन नरो विजयते दिवि ॥१५०॥  
 पराशरमुनेस्तीर्थं यमुनावारि संस्थितम् ।  
 स्नानदानादिविधिना नरान् पावयितुं क्षमम् ॥१५१॥  
 वटेश्वरे महाराज यमुना विश्वपावनी ।  
 तत्तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतं पुण्यमन्दिरम् ॥१५२॥  
 दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव मथुरावत्सुपावने ।  
 नातः परतरं स्थानं यमुनायां प्रतिष्ठितम् ॥१५३॥

अतस्तत्र विशेषेण गन्तव्यं भूतिमिच्छता ।  
 चर्मण्वतो यमुनया यत्र संपर्कमागता ॥१५४॥  
 स देशः सर्वदा पुण्यः सर्वकर्मणि शस्यते ।  
 चर्मण्वतो महापुण्या स्वयमेव महीपते ॥१५५॥  
 किं पुनर्यमुनास्त्रोतःसंबन्धादुच्यतां मया ।  
 वेदोद्धारस्थलं नाम यामुनं तीर्थमुत्तमम् ॥१५६॥  
 यत्र देवाः समं वेदानधिजग्मुः परन्तप ।  
 तत्र श्रीयमुना साक्षान्मथुरावत् फलप्रदा ॥१५७॥  
 वेत्रवत्या समं यत्र यमुना संगता स्वयम् ।  
 तत्स्थानं सर्वदेवानां प्रभवत्वेन कीर्तिम् ॥१५८॥  
 यत्र देवाः पुरा चक्रुः सत्रं वै शतवार्षिकम् ।  
 पुण्यं च स्थापयाम्नायुस्तीर्थे लोकमुदावहम् ॥१५९॥  
 तीर्थराजे प्रयागे च गङ्गया सञ्जता स्वयम् ।  
 तत्तीर्थं वै त्रिवेणीति सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥१६०॥  
 तत्र यो ऋयते जन्तुर्भग्येन धरणीपते ।  
 स विमुक्तिमवाप्नोति दुस्तराद्भूवसागरात् ॥१६१॥  
 यमुनासंगमाद् गङ्गा प्रतिष्ठां महतीं गता ।  
 अतोऽसौ तीर्थराजाख्यः प्रयागः समुदाहृतः ॥१६२॥  
 प्रयजन्तेस्म विबुधा यत्र नित्यमकण्टकाः ।  
 प्रयाग इति तेनासौ तीर्थराजो निगद्यते ॥१६३॥  
 ब्रह्मवेदीतिसंप्रोक्तः पुराविद्वर्महीपते ।  
 यत्र ब्रह्म स्वयं भाति शब्दरूपेण संततम् ॥१६४॥  
 मुनीनां पठतां ब्रह्म यत्पुण्यं नित्यवृद्धिमत् ।  
 तत्पुण्यं तीर्थराजाख्यं प्रतिष्ठायै विजूम्भते ॥१६५॥  
 दशकोट्यश्वमेधानां यत्पुण्यं नित्यवृद्धिमत् ।  
 तत्पुण्यं तीर्थराजस्य नित्यमावपनं शुभम् ॥१६६॥  
 यावन्ति भुवि तीर्थानि तानि सर्वाणि भूपते ।  
 तीर्थराजप्रतिष्ठानि हरन्ति जगतामघम् ॥१६७॥

अतः परं महाराज यमुना गङ्गया समस् ।  
देशान् पुनन्ती व्रजती प्रकटाप्रकटा क्वचित् ॥१६८॥  
यत्र गङ्गासमं याता प्राकटचं यमुना व्रजेत् ।  
स तु पुष्टतमो देशः स्थातव्यमिह यत्नतः ॥१६९॥  
यमुनोद्भेदमासाद्य यमुना भेदमागता ।  
गङ्गायाः स्रोतसो भिन्नो यात्रात्मा प्रकटीकृतः ॥१७०॥  
तत्तीर्थं सर्वदेवानां वेदनीयतमं भुवि ।  
अन्योन्यमात्मना भिन्ने ते गङ्गायमुने उभे ॥१७१॥  
संगते स्रोतसां भेदात् समुद्रं पयसां निधिम् ।  
यमुनामागतां वीक्ष्य समुद्रो वाहिनीपतिः ॥१७२॥  
योजनद्वयमात्रेण पुरस्तादाजगाम सः ।  
प्रत्युत्थानाय कालिन्द्या आदरेण महीयसा ॥१७३॥  
यमुना वाहिनीनाथमायान्तमभिवीक्ष्य सा ।  
परावृत्ताभवत् सद्यः कृष्णपत्नीतिलज्जया ॥१७४॥  
परावृत्तजवां वीक्ष्य मानिनीमिव तां ततः ।  
समुद्रः प्रेषयामास गङ्गां श्रीयमुनां प्रति ॥१७५॥

### समुद्र उवाच

गच्छ देवि जवादेनां यमुनां विश्वपावनीम् ।  
संबोधय ततो गङ्गे मानिनीमिव तां मयि ॥१७६॥  
संबोधय सान्त्वयित्वैनामिहानय मदन्तिके ।  
गङ्गा समुद्रवचनाद् यमुनान्तिकमागमत् ॥१७७॥  
ततस्तां बोधयामास यदुक्तं तत्र सिन्धुना ।  
सान्त्वनं वचनं शान्तं प्रसादकमनुत्तमम् ॥१७८॥

### गङ्गोवाच

वाहिनीनां पतिः सिन्धुस्त्वामामन्त्रयति प्रियाम् ।  
ततश्चैनमुपागच्छ प्रसक्त्या विश्वपावनि ॥१७९॥  
सर्वाः समुपसर्पन्ति सरितो वाहिनीपतिम् ।  
आत्मनो दयितं ज्ञात्वा त्वमप्येनमुपव्रज ॥१८०॥

इति गङ्गावचः श्रुत्वा यमुना प्राह सस्मितम् ।  
 अहं वैकुण्ठनाथस्य पत्नी लोकहितैषिणी ॥१८१॥  
 घरणीमण्डलं प्राप्ता कथं सिन्धुमुपव्रजे ।  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा गङ्गोवाच सुविस्मिता ॥१८२॥  
 यद्येवं तर्हि यमुने समुद्रं निधिमस्भसाम् ।  
 कथं प्राप्तास्ति भवती पत्नी भूत्वा रमेशितुः ॥१८३॥

## यमुनोवाच

समुद्रं भवती गत्वा मद्वचो वृहि सादरम् ।  
 मार्गं मे दीयतां भद्रं यथा गच्छेयमादरात् ॥१८४॥  
 आगता यत एवाहं तत्रैव गन्तुमुत्सहे ।  
 भित्त्वा त्वां पाथसांनाथं परतो गन्तुमुत्सहे ॥१८५॥  
 तदर्थमागता ह्यत्र दृष्ट्वा त्वां जलधे बलात् ।  
 तरञ्जभुजसंदोहैः परिरम्भेच्छुमागतम् ॥१८६॥  
 परावृत्ताभवं सद्यो लज्जया कृष्णवल्लभा ।  
 ततो मैवं कुरु त्वं हि कृष्णभक्तोऽसि सागर ॥१८७॥  
 वैष्णवानामयं धर्मो न कदापि विभाव्यते ।  
 परस्य पत्नीमागन्तुं यन्मनः कुरुते बलात् ॥१८८॥  
 इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गङ्गा सागरमागमत् ।  
 यमुनोक्तं विस्तरेण सागरायाब्रवीद् वचः ॥१८९॥  
 समुद्रस्तत्समाकर्ण्य यमुनावाक्यमादरात् ।  
 भक्तिप्रह्वो ववन्दे तां कृष्णपत्नीति भावयन् ॥१९०॥  
 भक्त्यैव तु स तामेत्य परिजग्राह पूजया ।  
 पाद्याद्याच्चिमनाद्युक्तविधिसंपन्नया मुदा ॥१९१॥  
 तस्मै प्रसादसुमुखी कृष्णभक्तिं प्रदाय सा ।  
 तत्पत्नीभ्यो नदीभ्यश्च मुदा पर्यचलत् ततः ॥१९२॥  
 पुरोभूय समादाय स्वामिनीं भक्तवत्सलाम् ।  
 गृहं प्रवेशयामास प्रसादाय स आत्मनः ॥१९३॥  
 अनेकरत्नप्रकरप्रकाशं मुक्तावलम्बिप्रसरद्वितानम् ।  
 कल्पद्रुमस्तोमनिषेव्यमाणप्राकारपर्यन्तमनोज्ञमध्यम् ॥१९४॥

परिस्फुरद्वारणलोकसंपत्कदम्बकल्याणपरम्पराढचम् ।  
 लसन्महाहर्म्यतलोर्द्वसंस्थामनोहरं फुल्लवसन्तलक्षिम् ॥१९५॥  
 क्रमेण दीव्यत्सकलर्तुशोभामितस्ततो बालवधूसमेतम् ।  
 पदाम्बुजकवाणितमञ्जुघोषमाञ्जीरवाद्यानुमिताच्छभित्ति ॥१९६॥  
 अनेकमाङ्गल्यविधिप्रसंगनृत्यन्नटीवृन्दविभूष्यमाणम् ।  
 धूताखिलाश्चर्यकरप्रपञ्चं तैर्वर्णरेव जनैर्निषेव्यम् ॥१९७॥  
 मूर्ताभिरुच्चैः सरितांवराभिः पत्नीभिरारात् समुपास्यमानम् ।  
 कवचिच्च शेषाहिमनुप्रसुप्तनारायणस्थापितसंपदाढचम् ॥१९८॥  
 तत्तादृगासाद्य समुद्रसद्य दृष्ट्वा पर्ति तत्र रमार्पति स्वम् ।  
 संपूजिता पार्षदवर्यवृन्दैः सिन्धोश्च पत्नीभिरुदारहृद्धिः ॥१९९॥  
 सद्यः प्रसन्ना जलधौ बभूव भवत्यातिनम्ने निजभर्तृदासे ।  
 आज्ञामुपादाय च भर्तुरेषा स्रोतोजलाद्या परतश्चचाल ॥२००॥

इत्थं विभिद्य लवणार्णवमस्य भूयः  
 संवेष्टनं क्षितितलं परितः प्रपद्य ।  
 भित्त्वा तदग्रजलर्धिं च जलौघवेगा-  
 दन्यक्षिणिं पुनरवाप कलिन्दकन्या ॥२०१॥

पुनर्भित्वा जलधीन् सप्तसंख्यान् सप्तद्वीपांश्चैव पाथोजवेन ।  
 शुद्धोदमुद्धिद्य पुनश्च याता ब्रह्माण्डभेदाद्विरजां महोर्मिम् ॥२०२॥  
 भित्वा पुनश्च विरजां विपुलप्रतीकां तत्पारगं हरिपुरं पुनराजगाम  
 वैकुण्ठनित्यसदनं परचित्सुखैकशेषस्य तस्य परमात्मन आदिमूर्तेः ॥२०३॥

इत्थं च वैकुण्ठपुरं प्रवाहः प्रदक्षिणीकृत्य सदा जवेन ।  
 भ्रमत्यहोरात्रकमारघटन्यायाद्गता यत्पुनरेति शश्वत् ॥२०४॥  
 यातो यातो यमुनायाः प्रवाहो भूयोभूयः पुनरप्येति शश्वत् ।  
 न तस्य नाशो न च सिन्धौ निपातो न सूर्यभासा ग्रीष्मकालेऽपि शेषः ॥२०५॥

वीयूषादधिकं येन यमुनावारि सेवितम् ।  
 न तस्य प्रभवेन्मृत्युर्न जरा न शुचां पदम् ॥२०६॥  
 चिदानन्दमयं वारि यमुनाया विशेषतः ।  
 पिबत स्नात मनुजा गायत ध्यायत द्रुतम् ॥२०७॥

इति नित्योपदेशेन यो भजेद्यमुनातटम् ।  
कितस्य कोटिभिः पुण्यैर्जीवन्मुक्तस्य संततम् ॥२०८॥

इति ते रघुवार्दूलं तीर्थयात्राप्रसंगतः ।  
कथिता यस्मुनोत्पत्तिर्महात्म्यगुणवृहिता ॥२०९॥

इदं ते सर्वभक्तानां रहस्यं वृत्तमीरितम् ।  
तादृशायैव लोकाय प्रकाश्यं नेतराय च ॥२१०॥

तीर्थानां चापि सर्वेषां यात्रा ते समुदाहृता ।  
प्रकटानां महीलोके प्रकटानां च भूपते ॥२११॥

एवं क्रमेण सर्वेषां तीर्थानां धरणीतले ।  
यात्रां विधाय भूपालं कृतकृत्यो भविष्यसि ॥२१२॥

आदौ पुलस्त्यमुनिना रचिता यथार्थं  
पश्चात्त्वं लोमशमहर्षिवरेण यत्नात् ।

भूयो दिलीपरघुनाहृषकाम्बरीष-  
मान्धातृभुख्यविवुधैश्च कृता विशेषात् ॥२१३॥

तथा त्वमपि भूपालं सपत्नीकः कुरुष्व ताम् ।  
अभीष्टसिद्धिं लब्धवाशु भूयः कल्याणमाप्स्यसि ॥२१४॥

यस्य रामसमाः पुत्राइचत्वारो वीर्यभूषणाः ।  
भूषयन्ति कुलं नित्यं स धन्यस्त्वं रघूद्वह ॥२१५॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतीर्थयात्रायां  
नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

## दशाधिकशततमोऽध्यायः

### राजोवाच

सूर्यस्य तनया देवी यमुना परिकथ्यते ।  
 एतन्मे वद योगीन्द्र कथं जाता रवेः सुता ॥ १ ॥  
 तत्रैव जन्मन्यथवा जन्मान्तरमुपेत्य सा ।  
 अभूत् सूर्यसुता देवी तन्मे विस्तरतो वद ॥ २ ॥

### वशिष्ठ उवाच

शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि यथा सूर्यसुताभवत् ।  
 यमुना लोकपापघ्नी देवानां हितकारिणी ॥ ३ ॥  
 प्रभा छाया चांशुमती तपनी तापनी तथा ।  
 घना च शोषिणी चैव रोषिणी रतिका तथा ॥ ४ ॥  
 सुतपा वर्चसा वर्षा द्वादशैता रवेः प्रियाः ।  
 सर्वाः प्रसवसंपन्नाः सुभगाः सूर्यवल्लभाः ॥ ५ ॥  
 तासां कनिष्ठा त्वाष्ट्री या कन्या त्वष्ट्रप्रजापतेः ।  
 चिरादधृतगर्भा सा मनसा समतप्यत ॥ ६ ॥  
 तत आराधयामास ब्रह्माणं विश्ववेधसम् ।  
 प्रसवार्थं तपोनिष्ठा जायार्कस्य बभूव सा ॥ ७ ॥  
 निराहारा वपुःक्लेशं चक्रे यावच्छतं समाः ।  
 तस्यै प्रजार्थं विधिवत्पस्यन्त्यै शतं शमाः ॥ ८ ॥  
 त्वाष्ट्रच्यै तुतोष भगवान् विश्वकर्ता प्रजापतिः ।  
 वरेण च्छन्दयामास सा तुष्टं वेधसांपत्तिम् ॥ ९ ॥  
 अयाच्चताज्जलिं बद्ध्वा शुभां सन्ततिमिच्छती ।  
 अथ कालेन रविना संगता त्वष्टुरञ्जजा ।  
 दधार सा गुणवती गर्भं गुरुतरं गुणैः ॥ १० ॥  
 दिव्यवर्षशतं यावत्स्याः सदुदरान्तरे ।  
 ववृधे तेजसा गर्भः प्राच्यामिव कलानिधिः ॥ ११ ॥

सा पीड्यमाना भारेण त्वाष्ट्री गर्भस्य दुःखिता ।  
 इच्छन्ति सन्तर्ति भव्या न ददर्श तपस्त्विनी ॥१२॥  
 अन्तर्वत्न्यपि सा त्वाष्ट्री बभूवातिमनोहरा ।  
 विशेषाद्रूपसंपत्तिसंपन्ना स्त्रीकदम्बके ॥१३॥  
 तामेकदा तु भगवान् कामयानो विकर्तनः ।  
 वशीकृतस्तद्रूपेण संप्राप्तो रहसि स्थिताम् ॥१४॥  
 सहस्रेणापि किरणस्तामेष मदनातुरः ।  
 आलिलिङ्गं बलेनापि नेतिनेति निषेधितः ॥१५॥  
 पुरुषाणां प्रवृत्तिं हि न स्त्री वारयितुं क्षमा ।  
 विवेकेनैव वार्यन्ते वेलयेव पयोधयः ॥१६॥  
 तस्याः करसहस्रेण ताप्यमाना तु साबला ।  
 सुखाव शोभनं गर्भं पूर्णवर्षशताधिकम् ॥१७॥  
 श्यामस्तेजोमयो दण्डस्तथापूर्वं व्यदृश्यत ।  
 सहस्रकिरणाश्लेषाज्जवलितोर्वरिताकृतिः ॥१८॥  
 अत एव महत्तेजस्तादृशं रूपमुद्घृत् ।  
 जाज्वल्यमानं परितः क्रोधाविष्टमिवाद्भुतम् ॥१९॥  
 तदन्वदृश्यतात्युच्चैरपां सङ्घः सुतैजसः ।  
 कृष्ण एव सुसंजातो रन्धितो रवितेजसा ॥२०॥  
 गर्भस्त्रावं विलोक्यासौ त्वाष्ट्री लज्जान्विताभवत् ।  
 अहो मे वेधसा सम्यवितोर्णा सन्ततिः शुभा ॥२१॥  
 देवा अपि प्रजल्पन्ति वज्चयन्ति च मानुषान् ।  
 किमेतत् सुप्रसन्नेन वितीर्णं नाम वेधसा ॥२२॥  
 इत्युक्त्वा वचनं त्वाष्ट्रो यावच्छपति वेधसम् ।  
 तावदभ्याजगामैनां वेधा विश्वसृजां पतिः ॥२३॥  
 दृष्ट्वा विषण्णहृदयां त्वाष्ट्रीमेष जगाद ह ।  
 सान्त्वयन् हृदयानन्दैः शीतलैर्वचनामृतैः ॥२४॥

**ब्रह्मोवाच**

अहो ते साधिव सुमहान् संपूर्णोऽयं मनोरथः ।  
 मत्प्रसादात् पुरा देवि यदतप्यः शतं समाः ॥२५॥

तेजोदण्डस्तु पुरतो य एष परिदृश्यते ।  
 भविता स यमः साक्षाल्लोकदण्डधरोऽद्य वै ॥२६॥  
 विना दण्डधरं साक्षाद् विशीर्णेताखिलं जगत् ।  
 अतोऽयं भगवान् विष्णुः स्वयमेवोदगाद्रवेः<sup>१</sup> ॥२७॥  
 पुण्यपापविवेकाय जगतां दण्डधारणः ।  
 अग्रस्तेजोमयः साक्षाल्लोकत्रितयतापनः ॥२८॥  
 अयं च जलसंघातो नवनीलघनाकृतिः ।  
 यमुनेत्याख्यया लोके भविष्यति शुभा नदी ॥२९॥  
 अनया सर्वलोकानां हरणीयमधं महत् ।  
 यत्र गङ्गादितीर्थौर्ध्वंहियते विश्वकल्मषम् ॥३०॥  
 येन पापेन जीवोऽसौ नित्यकैङ्गुर्यतश्चयुतः ।  
 हरिष्यति स्वयमियं तत्पापं घोरमुल्वणम् ॥३१॥  
 येन पापेन मनुजैर्विस्मृतं हरिसेवनम् ।  
 हरिष्यति स्वयमसौ तापदं पापमुल्वणम् ॥३२॥  
 येऽस्यां स्नास्यन्ति मनुजाः सर्वसाधनवर्जिताः ।  
 तेऽपि लब्ध्वा हरेः प्रेम प्रयास्यन्ति कृतार्थताम् ॥३३॥  
 जम्बूद्वीपे यशश्चास्या भविष्यति विशेषतः ।  
 यन्न गङ्गादितीर्थानां सर्वमानुषपावनम् ॥३४॥  
 माथुरे मण्डले स्थित्वा श्रीमद्वृन्दावने वने ।  
 कृष्णाभिन्नस्वरूपेण पूजनीया जनैरियम् ॥३५॥  
 इत्युक्त्वा भगवान् वेधाः सान्त्वयित्वा रवेर्वधूम् ।  
 त्वाष्ट्रीं सन्तोषयामास सुसन्तानस्य काढक्षिणीम् ॥३६॥  
 प्राणप्रतिष्ठाविधिना यमं सर्वाङ्गसुन्दरम् ।  
 चकार जीविनं वेधाः सर्वत्रैलोक्यदण्डनम् ॥३७॥  
 यमोऽसि धर्मराजोऽसि त्वं वै दण्डधरोऽसि च ।  
 उत्तिष्ठ सर्वलोकानां पुण्यपापविविक्तये ॥३८॥  
 पुरीं संयमिनीं प्राप्य प्रेतवृन्दनिषेविताम् ।  
 विवेचय बलात्तत्र जगतां पुण्यपापके ॥३९॥

१. °वोदभूदवेः—मथु०, बडो० ।

प्रेताश्च कुणपाः सर्वे त्वदाज्ञाकारिणः स्फुटम् ।  
 एकाशीतिसहस्राणि वर्तन्तां पारिपाश्वर्काः ॥४०॥  
 ते नृणां म्रियमाणानां जीवमादाय सर्वतः ।  
 आनयन्तु भवत्पाश्वे पुण्यपापविवित्तये ॥४१॥  
 किं तेषां पुण्यगुप्तानां गतोः पुण्या निदेशय ।  
 पापानां च गतोः पापास्तत्क्षणात् परिभावय ॥४२॥  
 पुण्यपापौघलेखाय नित्यं यत्ताः सुसाधकाः ।  
 भवन्तु चित्रगुप्ताद्या धर्मराज तवाज्ञया ॥४३॥  
 बक्ष्यते च शुभान् धर्मान् भवान् सर्वजगद्वितान् ।  
 यैः समाचरितर्मत्यर्थो न भूयः खलु ताम्यति ॥४४॥  
 घण्टालो नीलमेघाभो महिषस्तव वाहनम् ।  
 करवीरप्रसूनानां माला ते हितकारिणी ॥४५॥  
 कुर्वप्रतिहरं राज्यं सर्वेषामन्तरात्मदृक् ।  
 न त्वां विना भविष्यन्ति रहस्येऽपि जना भुवि ॥४६॥  
 त्वं वै स भगवान् साक्षात् प्रकटः स्वयमात्मना ।  
 असंकराय लोकानां पुण्यपापाधिकारिणाम् ॥४७॥  
 उदासीनवदासीनः साक्षी सर्वस्य जन्मिनः ।  
 अन्तकाले परिप्राप्ते त्वं वै प्राकटचमेष्यसि ॥४८॥  
 एषा ते स्थितिरुद्धिष्ठा यम धर्मभूतांवर ।  
 प्रणम्य मातापितरौ गच्छ त्वं दक्षिणां दिशम् ॥४९॥  
 इतिवादिनि लोकेशो तत्क्षणात् कृष्णपाथसः ।  
 उदस्थाद् यमुना साक्षाद् यमस्य भगिनी तु सा ॥५०॥  
 तां विलोक्य मुदं प्राप्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
 इन्दीवरसमानाङ्गीं फुल्लपञ्चजलोचनाम् ॥५१॥  
 पद्महस्ताभयकरां जगतामुद्धृतौ क्षमाम् ।  
 पुराणमुनिभिः सेव्यां कृष्णाद्वैतस्वरूपिणीम् ॥५२॥  
 भासयन्तीं दिशः सर्वा निजदेहतडित्त्विषा ।  
 जातरूपप्रतीकाशतनुमण्डतभूषणाम् ॥५३॥

सा स्मयन्ती मन्दमन्दमवन्दत पितामहम् ।  
 तस्यै ब्रह्माशिषं प्रादाच्चिरञ्जय चिरञ्जय ॥५४॥  
 दत्ताशीर्ब्रह्मणा सा तु भातुः पार्श्वमुपागता ।  
 तां त्वाष्ट्री तोषयामास दिव्यावयवशेभिता ॥५५॥  
 तामुवाच स्वयं ब्रह्मा गच्छ लोकान् पथिस्थितान्  
 पुनन्ती निजनीरौधैः क्रमाद् देवि महीतलम् ॥५६॥  
 तत्र यस्तेऽन्तरा विघ्नो भविष्यति रवेः सुते ।  
 स नाशमेष्यतितरां निःशङ्कं व्रज भाविनि ॥५७॥

## बशिष्ठ उवाच

अथामुं यमुना प्राह मन्दस्मितविराजिता ।  
 सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् व्रजेयमवनीतलम् ॥५८॥  
 कायं तु मे निदेष्टव्यं किं नु कुर्यामिहं विधे ।  
 कुत्र स्थास्याम्यहं ब्रह्मन् को मे भर्ता भविष्यति ॥५९॥

## ब्रह्मोवाच

नूणां त्वं देवि पापानि दह ज्वालेव तार्णकम् ।  
 इति ते कार्यमुद्दिष्टं यमभीतिविनाशनम् ॥६०॥  
 माथुरे मण्डले चैव श्रीमद्वन्दावने बने ।  
 स्थेयं भवत्या सततं कृष्णो भर्ता भविष्यति ॥६१॥

## यमुनोवाच

कुटुम्ब एव भगवान् विरोधः स्थापितस्त्वया ।  
 प्रेतानां हि यमो राजा देयो मोक्षश्च वै मया ॥६२॥  
 यमेन के दण्डनीयाः के च मोक्ष्या मया विधे ।  
 एतत्पृष्टतरं ब्रूहि विरोधः संनिवर्तताम् ॥६३॥

## ब्रह्मोवाच

स्नास्यन्ति ये त्वयि जनाः सततं सूर्यकन्यके ।  
 तेषां दण्डयिता नैव यमः स्यादिति मे मतिः ॥६४॥  
 कार्तिके शुक्लपक्षे च द्वितीया या भविष्यति ।  
 तस्यामागत्य यमुने यमस्त्वयि निवत्स्यति ॥६५॥  
 तस्य त्वं भोजनैदिव्यैर्वस्त्रालङ्कारलेपनैः ।  
 करिष्यसि सुखं देवि तिलकेन च शोभिना ॥६६॥

तस्यां यमद्वितीयायां ये स्नात्वा मनुजास्त्वयि ।  
 यमं संतर्पयिष्यन्ति नैषां दण्डयिता यमः ॥६७॥  
 इति दत्त्वा मर्ति वेधास्त्योर्भ्रात्रोरुद्धारधीः ।  
 जगाम विष्टपं स्वीयं यमोऽपि दक्षिणा दिशम् ॥६८॥  
 यमुना पुनाति लोकान् महराद्यांस्ततस्तुसा ।  
 क्रमेण धरणीमेत्य प्लावयामास सर्वतः ॥६९॥  
 एवं ते राजशार्दूल कथानकमनुत्तमम् ।  
 यमस्य यमुनायाश्च प्रोक्तं पापप्रणाशनम् ॥७०॥  
 ए एवं शृणुयान्नित्यं यमुनोत्पत्तिमुत्तमाम् ।  
 स तीत्वा घोरपापानि कुशलं लभते नरः ॥७१॥  
 एवं कृष्णादभगवतः सूर्याच्छैव कलिन्दतः ।  
 तदुत्पत्तिं त्रिधा श्रुत्वा शुभमाप्नोति मानवः ॥७२॥

## ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तीर्थान्यशेषेण साक्षात्कथयतो मुनेः ।  
 स राजा रघुशार्दूलो मनश्चक्रे विशेषतः ॥७३॥  
 पुण्यायै तीर्थयात्रायै दानाय महतेऽपि च ।  
 पृथ्वीप्रदक्षिणायै च सुकृताय च भूयसे ॥७४॥  
 मुनिभिर्ब्रह्मणैः साकं समानवयसान्वितैः ।  
 वृद्धैश्च मन्त्रप्रवरैः सुतन्यस्तकुटुम्बकैः ॥७५॥  
 ब्रह्मचारिभिरत्यन्तं स्वाध्यायकुशलैद्विजैः ।  
 गृहस्थैर्मुनिभिर्शैव सागिनकैः कर्मशालिभिः ॥७६॥  
 वानप्रस्थैस्तपोनिष्टैः वैखानसधुरन्धरैः ।  
 यतिभिः सर्वसंन्यस्तैर्यस्त्रिदण्डैकदण्डिभिः ॥७७॥  
 अन्यैश्च पुण्यमतिभिर्ब्रह्मणैः क्षत्रियोत्तमैः ।  
 नैगमैस्त्यक्तनिखिलव्यवहारश्वर्मज्ञैः ॥७८॥  
 शूद्रैर्वैष्णवमुख्यैश्च हरिदास्यपरायणैः ।  
 उपासकैश्च बहुभिर्मन्त्रयोगपरायणैः ॥७९॥  
 अनेकशास्त्रव्याख्यानप्रवीणैब्रह्मणोत्तमैः ।  
 साङ्गस्वाध्यायकुशलैः शब्दब्रह्मातिगैरपि ॥८०॥

अलोलुपैर्जिताहारैस्तपःकर्मकृतश्रमैः ।  
 स्वल्पाहारैः सदातृसैयंथा संपन्नभोजनैः ॥८१॥  
 अयानगमनायाससहैरस्वादुभोजिभिः ।  
 कन्दमूलफलाहारकृतश्छैस्तपोरतैः ॥८२॥  
 कर्षितैः कर्मनिष्ठाभिर्भोगकृत्यविवर्जितैः ।  
 देहकर्षणशीलैश्च गृहासक्तिविवर्जितैः ॥८३॥  
 वर्षवातातपहिमवलेशकृत्यसहैर्जनैः ।  
 तान्निनाय नृपः सार्थे सेवका ये च तादृशाः ॥८४॥

### राजोवाच

इवस्तीर्थानि गमिष्यामि केऽनुयास्यन्ति मामिह ।  
 निवर्तन्तां भोजनादौ येषां स्वादुरतिर्णाम् ॥८५॥  
 येषां हृदि तपोनिष्ठा तीर्थाटनविधावपि ।  
 आदरस्तेऽनुवर्तन्तां आमनुद्वेगदायिनः ॥८६॥  
 येषां कृषीटपरिपूरणमेव भुख्यं गौणं च कायपरिकर्षणं तपो वै ।  
 अत्रैव सन्तु नगरीमनुरुद्धचमानाः कर्मण्यथो तपसि ये च सदालसाङ्गाः ॥८७॥  
 इत्युक्त्वा राजशार्दूलो राममामन्त्र्य मन्त्रवित् ।  
 लक्ष्मणं भरतं चैव शत्रुघ्नं च कृतादरः ॥८८॥  
 राज्यभारं प्रविन्यस्य रामे भ्रातृभिरादृते ।  
 वशिष्ठं च पुरस्कृत्य तीर्थान्यटितुमुद्यतः ॥८९॥  
 पत्नीं च कैकर्यीं नाम सार्थं जग्राह भूपतिः ।  
 कौशल्यां च सुमित्रां च रामप्रेमणा गृहे न्यधात् ॥९०॥  
 प्रातरुत्थाय विधिवत्कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः ।  
 कृताशीविधिवद्विष्रैः प्रतस्थौ तीर्थनिष्ठया ॥९०॥  
 सोऽनुवीक्ष्य शुभान् देशान् पुण्याश्रमविभूषितान् ।  
 पुण्यतीर्थगुणोपेतान् तृमिमाप नृपोत्तमः ॥९१॥  
 अयोध्यां परितो गत्वा तीर्थानि सुमहान्ति सः ।  
 ददौ सुवर्णं विप्रेभ्यो गाश्च रत्नौघमालिनीः ॥९२॥  
 वासांसि रत्नभूषाश्च भूरिरत्नानि चादृतः ।  
 तेषु तेषु सुतीर्थेषु सत्रमाज्ञापयन्तृपः ॥९३॥

चकार विपुलं कर्म परमेश्वरतुष्टिदम् ।  
 वेदोक्तं वैष्णवानां च यत्कार्यं रामतुष्टये ॥९४॥  
 गोप्रतारे नृपः स्नात्वा सहस्राणि चतुर्दश ।  
 ददौ गाश्च सुवर्णनि रत्नानि विविधानि च ॥९५॥  
 तमसामवगाह्नासौ पुण्यकर्म नृपोक्तमः ।  
 आज्ञापयामास महत्सत्रं ब्राह्मणतुष्टिदम्\* ॥९६॥  
 स्वर्गद्वारे समाप्लुत्य भोजयामास च द्विजान् ।  
 अनर्थ्यरत्नसहिता दक्षिणाश्च ददौ नृपः ॥९७॥  
 स्नात्वा नेत्रजलं पुण्यां वाशिष्ठौं सरयूं नृपः ।  
 पूतमात्मानमाज्ञाय दध्यौ श्रीराममादरात् ॥९८॥  
 श्रीरामः पुत्ररूपेण वात्सल्यरसवारिधिः ।  
 'वद्व्यानः सदा तस्य व्यराजत हृदन्तरे ॥९९॥  
 रामाविर्भावमुदितः पुण्यतीर्थपरिप्लुतः ।  
 व्यरोचत नृपश्रेष्ठः शरच्चन्द्र इवोज्वलः' ॥१००॥  
 वशिष्ठकुण्डे नृपतिः समाप्लुत्य तपोरतः ।  
 प्राणायामसहस्रेण शोधयामास विग्रहम् ॥१०१॥  
 हरिसप्तकतीर्थेषु समाप्लुत्य नृपोक्तमः ।  
 कृतार्थं मन्यमानः स्वं विप्रेभ्यो बह्वदाद्वनम् ॥१०२॥  
 हत्यामोचनतीर्थे च तथा पैशाचमोचने ।  
 ब्रह्मकुण्डे च सरयूर्यत्र चौत्तरवाहिनी ॥१०३॥  
 सूर्यकुण्डे च गोमत्याः संगमे तीर्थराजके<sup>2</sup> ।  
 परिक्रम्य समाप्लुत्य चकार सुकृतं बहु ॥१०४॥  
 यत्र यत्राकरोत् स्नानं राजा रघुपतिः स्वयम् ।  
 तत्र तत्र द्विजश्रेष्ठा रत्नवर्षैः कृतार्थिताः ॥१०५॥  
 केकयी च महोदारा भरतप्रेषितं धनम् ।  
 वर्षन्ती विप्रवर्येभ्यो व्यचरत् स्वामिना सह ॥१०६॥

\* १०४ अध्यायस्थ ७९ इलोकस्योक्तराद्वर्मारभ्य इतो यावत् खण्डतः पाठः—  
अयो० । १—१. नास्ति—अयो० । २. °राजिते—अयो०, रीवॅ ।

एवं क्रमेण नृपतिः कुर्वस्तीर्थावलिं जवात् ।

अभ्युपेयाय सुखितव्रजं सर्वसुखैर्युतम् ॥१०७॥

स आगतमभिप्रेत्य मित्रं दशरथं नृपम् ।

अभीयाय वृतो गोपैः सुखिताल्यो महामनाः ॥१०८॥

स तस्य घोषः सकलैः सुखैर्युतः सर्वतुंसंवासमनोहरो महान् ।

माङ्गल्यकोदारगुणोऽपवृंहितः श्रीरामसांनिध्यगुणेन भूषितः ॥१०९॥

प्रपश्यतो राजवरस्य मानसं चक्षुस्तथैवाभूतपूरपूरितम् ।

प्रमोदयामास विशेषतः श्रिया यथा न पूर्वं सुतदर्शनेऽपि वै ॥११०॥

तामेष आनन्दकलां वितर्क्यन्नभूतपूर्वा नृपतिर्मनीषया ।

जजान सद्यः सुखितव्रजागमं तद्वेतुभूतं भुवि राजसत्तमः ॥१११॥

अपूर्वानन्दसंपत्तिभावितात्मा नृपोत्तमः ।

उवाच सुखितं गोपं रामवात्सल्यभूषितम् ॥११२॥

### राजोवाच

धन्यो भासि धरातलेऽत्र सुखित त्वं गोपराजः सखे

यस्यानन्दनिधिर्व्रज्ञोऽयमसकृन्तेत्रप्रमोदाय नः ॥

वैकुण्ठेऽपि न वा भविष्यति लतासंतानगुलमद्रुम-

श्रीमत्यत्रफलप्रसूननिवहेष्वालिङ्गिता श्रीरियम् ॥११३॥

जानाम्यत्र सदा<sup>३</sup> स्वयं स भगवान्नास्ते रमाकामुकः

पूर्णनिन्दधनः प्रधानपुरुषौ साक्षाद्यदाज्ञावशौ ।

प्रेम्णा ते परमेण गोपनृपते बिभ्रत् सदा वश्यताम्

योऽसौ ध्यानपथेऽपि दुर्लभतरस्तेषां मुनीनामपि ॥११४॥

ब्रह्मानन्दकलामतीत्य परमप्रेमप्रमोदार्णवे

त्वं तावत् सततं सखे विहरसे श्रीराजहंसोपमः ॥

त्वत्सार्थं निवसन्ति ये प्रतिपदं ते गोदुहोप्युन्नता-

स्तेषां जन्मफलाङ्गितं न तु भवायासस्पृशां मादृशाम् ॥११५॥

किराज्यं धरणीतलस्य किमसावानन्दलेशः सखे,

स्वर्गेवाप्यपवर्गं एति न किमप्यद्यास्मदीयं मनः ।

१. °मनो°—रीवाँ । २. रामः—मथु०, बड़० ।

संत्यज्यैकपदे समस्तमधुना सेव्यस्तवदीयो व्रजो  
 यत्रत्याः पशुपक्षिणोऽपि परमं प्रेमान्तरे बिभ्रति ॥११६॥  
 न ज्ञानं न तपो न वा खलु मखा नो वा समाधिः सखे  
 नो धर्मो जपदानपूजनमुखः प्राप्तुं पदं त्वीदृशम् ।  
 किन्त्वेका भवतां कृपाव्रजभुवि प्राप्तास्पदानामहो  
 प्रेमानन्दमहार्णवोमिपटले नित्यं निमग्नात्मनाम् ॥११७॥  
 तन्महां कृपयाशु गोपनृपते हस्तावलम्बेन भोः  
 येन स्यां सुखित त्वदीयसदनद्वार्यङ्कुरोऽपि ध्रुवम् ।  
 यत्राहर्निशमाभिगच्छदनुगच्छद्विर्वजावासिभिः  
 पादाम्भोजरजःप्रसादकमलापात्रं क्रियेऽहं क्वचित् ॥११८॥  
 इत्युदीरितमाकर्ष्य राजो दशरथस्य सः ।  
 प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सुखितो व्रजभूपतिः ॥११९॥

### सुखित उवाच

सत्यं वदसि राजेन्द्र स्वात्मौपम्याद्वादृशाः ।  
 भावयन्ति परं प्रेम सर्वत्र समर्द्दिशनः ॥१२०॥  
 अद्य धन्यो व्रजोऽस्माकं धन्यं नो गोदुहांकुलम् ।  
 धन्ये दृशौ च संबृत्ते यदभूतव दर्शनम् ॥१२१॥  
 कच्चिद्वद्रामः सुखी राजन्नास्ते भ्रातृभिरन्वितः ।  
 आनन्दयन्नयोध्यास्थान् जनान् भाग्यवतो भूशम् ॥१२२॥  
 कच्चित् स देशो भविकैः सूयतेऽनुदिनं नृप ।  
 यत्र श्रीरामचन्द्रस्य दर्शनात् सुखिता जनाः ॥१२३॥  
 कच्चित् प्रतिदिनं राजन्नयोध्या तस्य रोचते ।  
 बाल्यं नीतवतोऽस्माभिः सर्वस्वात्मनिदेशकैः ॥१२४॥  
 कच्चिद्वद्रामस्य सुखदा मयूराः सुखमासते ।  
 येषां पिच्छावली नित्यमवतंसायते प्रभोः ॥१२५॥  
 कच्चिन्नः स्मरति क्वापि भोजनादौ रघूद्वहः ।  
 यस्य प्रियं तत्र नित्यं नवनीतं व्रजस्य मे ॥१२६॥

१. धार्यकरो—अयो० ।

कच्चित् व्रजजुषो लोकान् कृपापात्रीकरोति सः ।  
 येषां तद्व्यानमात्रेण गच्छत्यनुदिनं वयः ॥१२७॥  
 कच्चित्न्मां स्मरति स्वामी राजेन्द्रकुलभूषणः ।  
 यस्याङ्कं मण्डयामास नीलरत्नाभवर्घमणा ॥१२८॥  
 कच्चित् कुटुम्बमध्यस्थः स्मरत्यस्मत्कुटुम्बिनीम् ।  
 इह संतूप्तिमानेष प्राशयन् मथितं दधि ॥१२९॥  
 कच्चित्तन्मनस्तुष्टचै राजं स्ता राज्यसंपदः ।  
 अकिञ्चनेष्वेवास्मासु यस्यान्तःकरणं सितम् ॥१३०॥  
 कच्चिद्वाजज्ञिमा धेनूः स्मरति प्रियकाननः ।  
 नित्यं यासां परं प्रेम तद्वस्तस्पर्शलालनैः ॥१३१॥  
 लक्षणस्य पुरः कच्चिद्वामो वार्तयति क्वचित् ।  
 प्रमोदवनलीलास्ता गोपालतनयैः सह ॥१३२॥  
 सत्यं यद्यपि राजेन्द्रतनयो बहुसेवकः ।  
 तथापि स्मरते कच्चित् सेवां नो व्रजवासिनाम् ॥१३३॥  
 येषामस्माकमसकौ प्रियः स्वामी सुहृत्सखा ।  
 अनन्यवृत्या राजेन्द्र तमेव ध्यायतां भूशम् ॥१३४॥

मग्ने दृशौ च हृदयं च महावियोगदावाग्निशीलपरितापकदम्बकेषु ।  
 रात्रिन्दिवं प्रमुदकाननवासिनां नो रामे प्रयातवति तत्र पुरीमयोध्याम् ॥१३५॥  
 यद्यप्यनल्पधनसंपदुपेतमेतत् सद्यास्मद्वीथममुना रहितं तथापि ।  
 नोभाति शारदनिशाकरचन्द्रिकापि ध्वान्तायते तदनुवीक्षणकाङ्क्षिणां नः ॥३६  
 ^धन्याःस्थ यूयमधुनास्मदुपेतभाग्याः<sup>२</sup> श्रीरामचन्द्रमुखचन्द्रनिरीक्षणेन ।  
 येषां दृशौ च हृदयानि च नित्यदृप्तान्येतावदेव जनुषः फलमर्जयन्ति ॥१३७॥  
 किं तेन राज्यविभवेन किमाप्तवर्गैः किं भोगभोजनसुखैः सुवरैरलभ्यैः<sup>३</sup> ।  
 श्रीरामचन्द्रमधुराननचन्द्रकान्तिसंदोहपानविधुरा यदि दृक्चकोराः ॥१३८॥  
 व्यर्थं जनुः किमपि यत्र न रामनामसंकीर्तनाश्रवणमार्गमनुप्रयाति ।  
 प्राप्यापि भोगमुदयाज्जितसार्वभौमस्वाराज्यपूर्णपदवीगमनैकलभ्यम् ॥१३९॥

१. °काननाः—अयो° । २—२. धन्या इमेज्ज भनुजा वत भूरिभागः—  
 पाठां० टि०—अयो० । ३. °रपलभ्यैः—अयो० ।

भागोऽस्मदीय इतरासुलभः सखेऽसौ यद्राघवेन्द्रमुखचन्द्रसुधासमूहः ।  
 यं प्राप्य यूयमपि भूमिभुजः कृतार्था नो चेदकिञ्चनहितैकरसः क्व लभ्यः ॥४०  
 किंस्वत् सखे<sup>१</sup> विहितमस्ति परं भवद्विर्दानं तपो मखमुखा अथवा क्रियास्ताः ।  
 यन्नित्यमेव पिबथ त्रिदशैरलभ्यं श्रीरामचन्द्रमुखकान्त्यमृतासवौघम् ॥४१॥  
 किंवा भवद्विरखिलात्मनि सर्वभावादात्मानमप्यनिश्चर्पितवद्विरद्धा ।  
 प्राप्तं स्वभावगुणसिद्धममन्दभाग्यं येनेदृशः समुदयोऽजनि वस्त्रिलोक्याम् ॥४२  
 राजा स्वबाहुकरदोकृतसर्वभूपः संप्राप्तशेवधिच्यो<sup>२</sup> धनदादपीशः ।  
 नित्यातिथिप्रियधनागमधन्यभाग्यः पुत्रप्रपौत्रपरिशीलितयामदक्षः<sup>३</sup> ॥४३॥  
 व्यथं समस्तमपि तस्य रघूद्वहस्य रामस्य नो यदि कृपातिशयोऽलपलभ्यः<sup>४</sup> ।  
 किं तस्य देवमुनिमर्त्यंगणा यशांसि संकीर्तयन्ति तव भाग्यमृतेऽस्य<sup>५</sup> यद्वत् ॥४४  
 देवाः सुमेरुशिखरेषु सुधारसानां भोगोऽद्भुवं सुखमनादृतवन्त एव ।  
 तत्कारणं यदवधि व्रजनाथलीलासंगीतकं श्रवणभार्गमनुप्रयातम् ॥४५॥  
 चेतोनिरोधसमवाप्तमुदग्रमन्तः स्वात्मप्रमोदपटलं मुनयोऽपि राजन् ।  
 श्रीरामचन्द्रगुणकीर्तनभव्यवश्यकर्णस्तृणीकृतमिवेह न चाद्रियन्ते ॥४६॥  
 यैरेष भाग्यभवसंभृतभालपद्वैर्दृष्टः श्रुतस्त्रिभुवने मनुजैः सुधन्यैः ।  
 ते भोगभाजनमपास्य निकेतमन्तरस्यैव लीलितसुखेषु लयं<sup>६</sup> भजन्ते ॥४७॥  
 स्वर्गाङ्गनाधरसुधारसभोगहेतुमैन्द्रं पदं मखशतेन न कामयन्ते ।  
 यैरस्य पादकमलाश्रयिणी सुधातः स्वादीयसी मधुसरित् करणैर्निपीता ॥४८  
 यस्यानुभूतिगुणकीर्तनवैभवोत्थं किं वर्णयन्तु सुधियोऽपि गिरामधीशाः ।  
 यस्यानुभूतिमुपलभ्य महामुनीन्द्रा ब्रह्मानुभूतिसुखमप्युरु भर्त्सयन्ति ॥४९  
 मन्यामहे नृपतिवृन्दशिरोमणित्वं सत्यं तव त्रिदशवर्म<sup>७</sup>सुखाशिषौघैः ।  
 शश्यासनाशनविहारविचेष्टनादौ यद्रामचन्द्रतनुसंनिधिमभ्युपेताः ॥५०॥  
 एतद्वियोगरजनीषु वयं त्विदानीं ध्वान्तावृता दशदिशो न विलोक्यामः ।  
 अत्यर्थमश्रुसरिदुङ्कवमूलभूतान्यक्षोणि निष्फलजनूषि धिगेव कुर्मः ॥५१॥  
 धिगजीवनं च खलु नः फलवर्जनीयं धिक् प्राणवर्गमुरुदुःखभरं पुष्पाणम्<sup>८</sup> ।  
 यत्तादृशं सुखसमूहमुपेत्य दैवादेतादृशीं विधुरतां दधते दुरन्ताम् ॥५२॥

१. पुरा—रीवाँ । २. ऋद्धिनिवहो—मथु०, बड़ो० । ३. वामदैशः—अयो० ।  
 ४. ह्यलभ्यः—मथु० बड़ो० । ५. °मृतस्य—मथु०, बड़ो० । ६. सुखं सुलभं—रीवाँ ।  
 ७. 'वर्यं—रीवाँ । ८. जुषाणं—रीवाँ । पुराणं—अयो० ।

जोवामहे च जगदन्तकृता यमेन स्पृश्यामहे न सकलैरपि वर्जनीयाः ।

जाताः स्म ईदृशादशाजुष एतदीयवक्रेन्दुवीक्षणकलारहिता अहो हाः॥१५३॥

किं कुर्महे खलु सखे यदसंस्त्यजामस्तर्हाशया प्रतिपदं क्रियतेऽन्तरायाः ।

नो वा त्यजाम यदि सोढुमशक्य एष वज्रोपमेन च हृदा सुहृदो वियोगः ॥

विश्लेषदुःखनिवहाशनिपातपात्रं<sup>१</sup> प्राणं विमोक्षुमुदिताश्च भवाम यावत् ।

तावत् प्रियस्य मुखचन्द्रमनोऽनहासाः ध्यानाध्वना हृदिगताः प्रतिविघ्नयन्ति ॥

इत्थं निपत्य सुहृदोऽस्य वियोगतप्तसंदंशमध्यमधुनाङ्ग कदर्थयामः ।

देहेन्द्रियासुसमुदायमपारदुःखं दैवे विधौ प्रतिविधातुमपारयाणाः ॥१५६॥

राजोवलोचनविलोचनपातभाग्य<sup>२</sup> हीनाः प्रमोदवनवृक्षलताप्रतानाः ।

कालावसानविषमज्वलितानलेन स्पृष्ट्वा इवाद्य बहुदुर्भगतां भजन्ते॥१५७॥

श्रीरामचन्द्रमधुराधरलग्नवंशीनिर्हादसंततसुधारससिक्तसिक्ताः ।

ये भूरुहा उदवहन् प्रसवानुवृद्धिमाकालिकीं त इह मम्लुरकाण्डमेव॥१५८॥

श्रीराममञ्जुलमुखेन्दुमुदीक्ष्य कान्तिपीयूषपारणजुषः सहिता बभूवः ।

ते संप्रति प्रतिपदं प्रतिवर्द्धमानसंतापसंततिविलीनदशाश्चकोराः ॥१५९॥

ये राघवेन्द्रशुभवर्षसुरद्वुमोत्थसौरभ्यसारमुपलभ्य सुखं निषणाः ।

यत्र वच्चिन्मधुकराः सुहिता स्त एते शश्वद्गवेषणपराः परितो अमन्ति ॥

लीलावशेन विलसन्तमुपत्यकायां रत्नाचलस्य चपलैः सखिभिः समेत्य ।

या वीक्ष्य राघवमुदारगुणं कृतार्था गावोद्यता दृशिभिरश्रुनदान् सृजन्ति ॥

पीताम्बरद्युतितिड्वति दीर्घवंशीनिर्धोषशालि निवहाङ्कित<sup>३</sup> मौवितकाल्यः ।

आनन्दसारसमुदायसुधासमूहैर्वर्षत्यजस्त्रमभिता व्रजकाननेषु ॥१६२॥

उन्नम्रतामुपगते नवनीलमेघे श्रीराम एव भुवि जीवनमस्ति येषाम् ।

ते चातका व्रजनिवासिजनाः सखेति किनाम कुर्युरधुना परमार्तिभाजः ॥

किंवूमहे बहुतरैर्वचसां प्रसारैरेतावतैव भवता प्रमतिविधेया ।

अद्वा दृशोत्सव किमप्यनुभूतिरासीदेतावतैव विरहेण रघूद्वृहस्य ॥१६४॥

### राजोवाच

जानामि तस्य विरहान्मम तीर्थयात्रा किंरोचते मनसि तत्सविधैकतृप्ते ।

वेदोदितो विधिरपि प्रणयप्रकर्षच्छैथिल्यमेव भजते यदि किनु कुर्मः॥१६५॥

१. °निवहात्सुनिपातपत्रं—रीवौ० । २. °विलोचनभाग्य°—अयो० ।

३. शालिनि बलाकिनि°—मथुरा०, बड़ो० ।

तस्यैव तु त्रिदिववासिसुदुर्लभस्य प्रेष्णः कृते जगति तस्य चिरायुषे च ।  
कर्तुं महान्ति सुकृतानि महीं भ्रमामि सोढ्वापि दुर्विषहतद्विरहार्तिभारम् ॥  
युष्मादृशां च रघुवर्यवशित्वहेतुप्रेमप्रकर्षमवलोकयितुं नितान्तम् ।  
जानीहि मामतुलभाग्यनिर्धेनकेतान्निष्क्रान्तमङ्गुं भुवि भाविततीर्थवर्यम् ॥  
स्थानानि तानि मम दर्शय गोपराज श्रीरामचन्द्रचरणाम्बुजचिह्नभाज्जि ।  
संप्राप्य यैः परिचयं रचयन्ति नित्यं प्रायः सुरा अपि तनौ पुलकप्रसारम् ॥  
लङ्घेशसंततनिदेशकरान् बलाद्यान् रात्रिज्वरीप्रमुखराक्षसवृन्दवर्यान् ।  
येषु स्थलेषु स मर्मदं गुणाद्यचलीलास्तानि स्थलानि मम दर्शय तीर्थभवतेः ॥  
प्रायः प्रमोदवनमेतदशेषमेव श्रीरामचन्द्रचरितामृतपूरपात्रम् ।  
यत्कुञ्जभूमिरजसः कणिकापि गात्रे लग्ना सुरैरसुलभां मुदमातनोति १७०  
तीर्थाटनं मम फलाद्यमभूदिदानीं त्वत्सङ्गसंजनितसंततमङ्गलस्य ।  
द्रक्ष्ये प्रमोदवनमद्य भवद्विरद्धा निर्दिष्टमिष्टरघुनन्दनसच्चरित्रैः ॥१७१॥  
अद्य प्रमोदवनमञ्जुलमाधुरोणां सौरभ्यमैन्द्रवनगैर्धमरैरलभ्यम् ।  
ग्राणाध्वना मम मनः प्रतिविश्य कांचित् प्रेष्णो दशां किमु जनिष्यति वै यथा वः ॥

इत्युत्कण्ठितमानसस्य नृपतेर्वाक्यं समाकर्ण्य स  
प्रीतः श्रीसुखिताभिधो व्रजपतिः पूर्वं निनाय व्रजम् ।  
राजानं खलु केक्याधिपसुतासंशोभिवामं पुन—  
स्तत्रातिथ्यमचोकरत्तदमुयोः साकं परीवारकैः ॥१७३॥

रघुराजो व्रजं दृष्ट्वा सर्वसंपद्वर्चितम् ।  
गवां हंभारवैर्युक्तं पूर्यमाणमितस्ततः ॥१७४॥  
कूर्दमानसुखोपेतनैचिकीचक्रवालकम् ।  
तर्णकैर्निष्कभरणैरलङ्घकृतमितस्ततः ॥१७५॥

कुर्वद्विर्वप्रप्रान्तेषु	महाबलपराक्रमैः ।
श्वेतचन्द्रनिभैः	स्थूलैर्गोबलीवर्दकैर्युतम् ॥१७६॥
प्रातर्गोदोहनोद्वोषनिनादितदिग्न्तरम्	।
दधिमन्थनघोषैश्च	सर्वतो मुखरीकृतम् ॥१७७॥

संफुल्लानेकलतिकालिङ्गितानेकभूरुहम् ।  
 अपूर्वसौरभोदगारैः सर्वतः परिपूरितम् ॥१७८॥

गात्रगौरवसंपन्नैरापीनभरभूषितैः ।  
 वत्सालेहमुहुःस्त्रिगृष्णिवृन्दैरलङ्घृतम् ॥१७९॥

ग्राम्यगानस्वरोल्लापमधुराननपञ्चजैः ।  
 स्थले स्थले गोपवृन्दैरलङ्घृतगृहाङ्गणैः ॥१८०॥

बर्हिबर्हकृतोत्सैर्गुज्जामणिविभूषणैः ।  
 मुख्यगोपतिभिर्नित्यं गृहोत्साहेषु भूषितम् ॥१८१॥

रामप्रेमरसोन्मत्तैराभीराणां कदम्बकैः ।  
 लतावितानच्छायासु समारब्धकलस्वरम् ॥१८२॥

वायूपनीतमधुरतुलसीवनसौरभम् ।  
 कामक्रोधलोभमदमात्सर्यादिविर्जितम् ॥१८३॥

सर्वतः कलिदोषाणामजातप्रतिवेशनम् ।  
 श्रीरामचरितोद्गानसुखिताभीरदारकम् ॥१८४॥

प्रतिवीथि॑ परिभ्रान्तखिन्नमुक्तिचतुष्टयम् ।  
 द्रुमगुलमलतापुष्पगुच्छविश्वान्तषट्पदैः ॥१८५॥

सर्वतः कृतज्ञाङ्कारमधुरस्वरपूरितम् ।  
 प्रतिसन्तानकतरुविटपस्थैर्विहङ्गमैः ॥१८६॥

सर्वतः कूजितं सर्वमुनीन्द्रगणपूजितम् ।  
 सर्वदेवदृगानन्दसाक्षाद्वैकुण्ठमदभुतम् ॥१८७॥

अतिरम्यकृतानेकपुष्पसंतानशालिभिः ।  
 ब्रह्मादीनां दिविषदामवाङ्मनसगोचरम् ॥१८८॥

वृन्दावनाद्यष्टकेन॑ मध्याङ्गणविराजितम् ।  
 श्रीरामविषयानन्तप्रेमपीयूषपूरितम् ॥१८९॥

सर्वविद्वद्गुरुवरव्रजस्त्रीप्रेमचर्यया ।  
 सर्वतो भूषितं दिव्यरसभावविशारदम् ॥१९०॥

कवचिद्रामप्रियतममभिसारक्रियाकुलैः ।  
 प्रौढगोपालनारीभिरामंन्वितसखीजनम् ॥१९१॥  
 कवचिदन्याङ्गनासक्षितदूषितं रामकामुकम् ।  
 अनादृत्याकुलगोपदारैरादृतदूषितिकम् ॥१९२॥  
 'कवचिद् गोचारणोद्यातरामविश्लेषमन्थरैः ।  
 'गोपालदारकैर्ध्यातिप्रदोषागमसंभवम् ॥१९३॥  
 कवचिदामन्त्रयन्द्विः स्वान् प्रियनर्मसखीजनान् ।  
 गोपालदारैः पूर्यमाणपुल्कोद्भैरविग्रहम् ॥१९४॥  
 कवचित् संकेतभवने वासकं सज्जमानकैः ।  
 उत्कर्गोपीजनैर्दृष्टभवनद्वारतोरणम् ॥१९५॥  
 कवचित्संगम्य संकेतमनुद्वीक्ष्य रमापतिम् ।  
 गोपीजनैः शप्यमानसखीदूतीजनाकुलम् ॥१९६॥  
 अतिप्रेमगुणोत्कर्षरूपसारविभूषितैः ।  
 दिव्यगोपीजनैः सद्यो वशीकृतरघूद्वहम् ॥१९७॥  
 अनेकभावभवनमनेकाद्भुतभावनम् ।  
 अनेकसुखसंदोहमनेकप्रेमचर्यकम् ॥१९८॥  
 मुमोद नृपशार्दूलः प्रसन्नमधुराशयः ।  
 प्रविष्टं लौकिकातीते धाम्यात्मानमनन्यता ॥१९९॥  
 प्रविवेश ततस्तस्य सुखितस्यैव गोदुहः ।  
 निकेतनं नवनिधिसेवितद्वारदेशकम् ॥२००॥  
 प्रविष्टमानो नृपतिः सुखितालयमद्भुतम् ।  
 अभूत् सुखित एवासौ परमानन्दपूरितः ॥२०१॥  
 परोक्षमपि तत्रासौ परोक्षमपि तत्क्षणे ।  
 राजीवलोचनं रामं जग्नौ नृपतिपुङ्कवः ॥२०२॥  
 केनाप्यद्भुतरूपेण महसा तद्गृहस्य सः ।  
 तृणीचक्रे निजं वेशम राज्यसंपद्भुरान्वितम् ॥२०३॥

तत्र माङ्गल्यका देवी महोदाराशया स्वयम् ।  
 अभ्यागतां केकयेन्द्रसुतामभ्युद्ययौ जवात् ॥२०४॥  
 श्रीरामजननीभावप्रेमभूषितया तथा ।  
 भाषिता स्वागतं पृष्ठा केकयी के न्यमज्जत ॥२९५॥  
 सा तथा कुशलप्रश्नस्वागतादिप्रसादिता ।  
 अगाहततरां चित्रे परमानन्दवारिधिम् ॥२०६॥  
 सुखितः सुप्रसन्नास्यः पाद्यार्घादिसपर्यया ।  
 पूजयामास नृपर्ति कोशलेन्द्रं समाहितः ॥२०७॥  
 दिव्याङ्गरागलेपेन रञ्जयामास तद्वपुः ।  
 दिव्यपुष्पमयीं मालां तुष्टस्तद्वक्षसि न्यधात् ॥२०८॥  
 दिव्यागुरुमयैर्धूपैर्धूष्यामास तं नृपम् ।  
 प्रदोपराजिकां न्यस्य प्रकाशं प्रचकार सः ॥२०९॥  
 माङ्गल्यका करानोत्तेवेद्यैः स्वादुभो रसैः ।  
 चतुर्विधैस्तमतुलैरानन्दयदुदारधोः ॥२१०॥

तथैव माङ्गल्यकयापि केकयी संतोषिता शन्तमया सपर्यया ।  
 तौ स्वादुना रामगवोम्हौधसामपूर्वतृप्तिं पयसाभिजग्मतुः ॥२११॥

रामहस्तकमलानुलालितश्चेष्टधेनुपयसां विकारकैः ।  
 भृक्ततमपरिहषितान्तरौ भूपतिश्च महिषो च तस्य सा ॥२१२॥  
 प्राप्य वाङ्मनसगोचरातिगां ब्रह्मदर्शनशतांशिकां मुदम् ।  
 सद्य एव जनितां जगाहतुः प्रेमपूर्णहृदयौ च रेजतुः ॥२१३॥  
 परिवारोऽपि सकलः सान्तःपुरजनस्तयोः ।  
 प्राप्यातिथ्यं गोपगृहे मुमुदे परया मुदा ॥२१४॥  
 समाधिरुद्धचित्तानां योगिनां यः सदुर्लभः ।  
 सकलोपि जनस्तत्र तमानन्दमगाहत ॥२१५॥  
 प्राप्यानन्दसमुद्रान्तर्मज्जनं सकलो जनः ।  
 दधौ चमत्कृतमिव चित्तमाइचर्यपूरितः ॥२१६॥  
 अनन्यहेतुकं मोदं मन्वानश्चतुरो जनः ।  
 असाधारणमाहात्म्यादस्तौषीद् व्रजभूपतिम् ॥२१७॥

अहो सुखित गोपेन्द्र वैकुण्ठमिव ते गृहम् ।  
 यत्र श्रीरामचन्द्रस्य मनः प्रापानुरागिताम् ॥२१८॥  
 अस्माकमार्यपुत्रस्य मनः परमशक्तिमत् ।  
 तेनैव तर्कयामस्त्वाभनन्यविषयश्रियम् ॥२१९॥

अहो भाग्यं गोकुलस्यैव नित्यमनन्यसाधारणवृत्ति मन्महे ।  
 यत्र प्रीतिः श्रीमतो राघवेन्द्रकुमारवर्यस्य विशेषतोऽभवत् ॥२२०॥  
 अहो भाग्यं सुखित प्रेयसीनां त्वदालयाश्रयिणीनां विशिष्टम् ।  
 वैकुण्ठलोकेऽपि भविष्यतीयं न प्रायशः प्रेमऋद्धिः श्रियोऽपि ॥२२१॥  
 अहो भाग्यं सुखित श्रीमतस्ते यद्रामचन्द्रस्य मनः सदा त्वयि ।  
 अनन्यसाधारणवृत्तिवृद्धं वशंवदं भवतः प्रेम वीक्ष्य ॥२२२॥

सहजप्रमोदविजिताश्चतुर्विधाः प्रतिवीथि यत्र विलपन्ति मुक्तयः ।  
 अनया श्रिया व्रजपुरस्य मन्महे त्रिजगत्पतेरपि विनिर्जिताः श्रियः ॥२२३॥  
 विदुषामवाङ्मनसिगोचरा इमा भुवने जयन्ति तव भाग्यसंपदः ।  
 ननु रामचन्द्ररतितः पराङ्मुखं क्षणमप्यदृश्यत न जातु यन्मनः ॥२२४॥  
 किमु कामधेनकुलदुर्घदोहनैः किमु वा सुरद्रुमफलौघसंपदा ।  
 किमु रत्नवर्यविषयानुनाथनैः सततं जिता व्रजपुरस्य संपदः ॥२२५॥

सर्वसंपत्समूहेन पूर्णेऽस्मिन् सुखितव्रजे ।  
 आश्रयन्ति सुराः सर्वे प्रायो ब्रह्मादयस्त्वयि ॥२२६॥  
 अनन्यगोचरामृद्धि वीक्ष्य व्रजपुरस्य ते ।  
 कस्य नो सार्वभौमस्य मनो विचकितं भवेत् ॥२२७॥  
 अत्र ग्राम्यजनस्त्रीणां पादाम्भोरुहनुपुरः ।  
 अवहेलितका जाताश्चन्तामणिगणा अपि ॥२२८॥  
 कः पृच्छति व्रजपुरे कल्पद्रुमसमुद्धवान् ।  
 प्रसवानल्पगुलमादिपत्रपुष्पफलश्रिया ॥२२९॥  
 अत्र कामगवीजातिः परस्तात् क्रियतेतराम् ।  
 प्रमोददृष्टिर्गृष्टीनां गणैर्वर्तसविभूषितैः ॥२३०॥

राजोवाच

यन्मामूचुस्तरां लोका अतृपा श्रियमद्भुताम् ।

तत्सत्यमभवत् सर्वं दृष्ट्वा स्वानुभवादपि ॥२३१॥

अस्माकमाराध्यतमोऽसि नित्यं प्राप्तं परां प्रेमरमामितीदृशीम् ।

त्वदड्ग्रिपद्मप्रतिकूलधीजुषां किमीदृशः प्रेमलवोऽपि लभ्यः ॥२३२॥

ध्रुवं ब्रह्मादयो देवा लुठन्ति व्रजधूलिषु ।

त्वज्जनाड्ग्रिसरोजोत्थधूलीमिश्रासु गोपते ॥२३३॥

अद्य नो जन्मसाफल्यं बभूव किमपि ध्रुवम् ।

त्वत्संगसुखपीयूषधारासु हितचेतसाम् ॥२३४॥

आब्रह्मावधि विस्तरात् कविगिरो गीर्वाणिकर्णातिथेः

कीर्तेः पूर्णकलेन्दुकुन्दसदृशो यास्याम्यहं पात्रताम् ।

किञ्चान्यज्जनितश्च मोऽप्ययमभूदाकण्ठतृपस्य मे

युष्मत्संगसुखामृतेन सफलः संसारचक्रभ्रमः ॥२३५॥

अहो अपूर्वा रामस्य सिद्धिर्विजयतेतराम् ।

तत्रस्थोऽपि भवत्स्नेहान्नित्यमत्रैव दृश्यते ॥२३६॥

एतत्स्तुतिपरं वाक्यं जनानां नैव दृश्यते ।

अतस्मिस्तत्समारोपः स्तुतिमात्रमिति स्मृतिः ॥२३७॥

प्रशंसन्ति जना यत्तु सुखित त्वां ससाक्षिकम् ।

ततोऽप्यधिकमाङ्गल्यगुणसन्दोहवानसि ॥२३८॥

यतो वाचो निवर्त्तेन् अप्राप्य मनसा सह ।

तदेतत् तव माहात्म्यं वर्णयन्तु जनाः कथम् ॥

स्वानुभूत्या तु यत्किञ्चिद् ब्रुवन्ति हृदि तोषिताः ॥२३९॥

प्राप्यापि सुखसंदोहं यो न ब्रूयाद्यशोऽप्यलम् ।

परोपकृतिचौरस्य तस्य मूर्ध्नि भवेदृणम् ॥२४०॥

संप्रत्यसौ परिकरः सकलो मदीयः संप्रापितो हृदि मुदां प्रसरं समक्षम् ।

व्रूते व्रजं सुखितगोपपते त्वदीयं वैकुण्ठतोऽप्यधिकमेव किमत्र कुर्वे ॥२४१॥

अहं तु चकितोऽस्म्यद्वा वीक्ष्य ते संपदं पराम् ।

आनन्दव्याप्तचित्तत्वान्न वक्तुं पारयामि च ॥२४२॥

यथा पश्यामि मनसि पूर्णानन्दपयोनिधिम् ।

न तथा वक्तुकामोऽपि पारये वक्तुमादृतः ॥२४३॥

अथावदत् केक्यराजपुत्रो माङ्गल्यकां मातरमच्छभाग्याम् ।

श्रीरामचन्द्रस्य विभोरुदग्रवात्सल्यभावान्वितचित्तधन्याम् ॥२४४॥

### कैक्ययुवाच

किं व्रवीमि वचनेन भवत्याः कीर्तिमद्भुतकलापरिपूर्णम् ।

तत्किमद्भुतमिह स्फुटमेवं रामचन्द्रजननीप्रवरासि ॥२४५॥

शूरो वीरः सत्यवादी मनस्वी सौन्दर्याढ्यो भास्वतोवंशभाग्यः

सर्वैराढ्यो रामचन्द्रोगुणैघैस्तद्वेतुस्ते स्तन्यपानं प्रतीतम् ॥२४६॥

कौशल्याया भाग्यराशिः प्रवृद्धस्त्वत्स्तन्योत्थः प्रादुरासीद् गुणश्च

यस्यास्वादाद्रामचन्द्रो गुणानां सर्वेषां वै पात्रतामाजगाम ॥२४७॥

अस्त्वेतावद् गौरवं तवकीनं किं वक्तव्यं सर्वमेव मया तत् ।

घोषस्यापि श्रीरियं विष्वगेव प्रयाति नो वाङ्मनोगोचरत्वम् ॥२४८॥

अपूर्वमानन्दमवापितास्मि माङ्गल्यके त्वत्पददर्शनेन ।

वैकुण्ठलोकाधिकमेतदेव स्थानं प्रपद्यास्मि विमुक्तकल्पा ॥२४९॥

भुक्तिमुक्तिकरणीं ननु दिव्यां देविकामपि दशां जनयामः ।

चित्तमप्रमितसत्सुखवश्यं त्वत्समागम इतोऽत्र विधत्ते ॥२५०॥

### ब्रह्मोवाच

इत्येवं तत्र कुर्वणैः कौतुकेन शुभाः कथाः ।

कैकेयीरघुशार्दूलौ माङ्गल्यासुखितौ प्रति ॥२५१॥

सुखं सुषुपतुर्घोषे समस्तस्वजनान्वितौ ।

वशिष्ठश्च महाभागः प्रणिधाय मनः स्थितः ॥२५२॥

ते तत्र सकलास्तस्त्वमद्राक्षुर्निशि निद्रिताः ।

नित्यलीलारसोपेतं रामनाम सनातनम् ॥२५३॥

अपश्यन्नद्भुतं घोषमादिवजसमाह्रयम् ।

कोटिसूर्येन्दुसदृशदिव्यानेकगृहान्वितम्<sup>१</sup> ॥२५४॥

१. अयं इलोको नास्ति—अयो० ।

चिदानन्दमयाकारं प्रकाशमयमद्भुतम् ।  
 नित्यमेकरसं भान्तं स्वप्रकाशैकगोचरम् ॥२५५॥  
 सर्वतो निस्तमिलं च दिव्यसंस्थानभासुरम् ।  
 यद्वच्च सैन्धवघनं स्वरूपावयवान्वितम् ॥२५६॥  
 एकमेव द्विधा त्रेधा चतुर्धा भानगोचरम् ।  
 सर्वाश्चर्येकसंपन्नं सर्वानन्दकलाकुलम् ॥२५७॥  
 कल्पवृक्षाधिकगुणैस्तरुभिः परिवेष्टितम् ।  
 सुवर्णवर्णस्तम्भैश्च महामरकतच्छदैः ॥२५८॥  
 महारत्नैकविटपैश्चन्तारत्नप्रसूनकैः ।  
 सुधारत्नफलोपेतैः कोटिसूर्येन्दुभासुरैः ॥२५९॥  
 तन्मध्ये सुखितागारं प्रमोदवनमद्भुतम् ।  
 वृन्दावनाद्यष्टकोणमहागणसमुज्ज्वलम् ॥२६०॥  
 वल्लवीयूथसंगीतजितकोकिलनिःस्वनम् ।  
 सहजानन्दिनीकीर्तिचन्द्रिकौघविभासितम् ॥२६१॥  
 कृष्णासखीमहायूथकेलिकौतूहलान्वितम् ।  
 वल्लभेन्द्रयशश्चन्द्रासत्त्वचित्तचकोरकम् ॥२६२॥  
 नित्यकौतुककेलीनामालयं प्रेममन्दिरम् ।  
 माङ्गल्यकामहोदारवात्सल्यरसवारिधिम् ॥२६३॥  
 गोपीजनमनःक्षेमप्रेमदं रसवर्द्धनम् ।  
 दिव्यभावतरङ्गाबिधमशोकपदमुत्तमम् ॥२६४॥  
 तत्र रासविलासादैः क्रोडन्तं भावकोविदम् ।  
 कोटिलक्ष्मीसमुद्रित्कटाक्षशतसेवितम् ॥२६५॥  
 चिन्नभः॑श्यामलतनुमतनु॒व्यूहसुन्दरम् ।  
 ईषच्छैशवमत्येत्य कैशोरवयसाञ्चितम् ॥२६६॥  
 सहजानन्दिनीकृष्णप्रेमपालनदक्षिणम् ।  
 मन्दहाससुधास्रोतोमूलवक्रसुधाकरम् ॥२६७॥

पीतकौशेयवसनविद्युद्रोचितविग्रहम् ।  
 नीलनीरदगम्भीरमहोमहिममोहनम् ॥२६८॥  
 गोचारणमिषोद्भूतवनकेलिविशारदम् ।  
 मरलीनादपीयूषैः सिञ्चन्तं काननद्रुमान् ॥२६९॥  
 त्रैलोक्यसुन्दरं रामं रमणीयूथमध्यगम् ।  
 गोपवेशधरैर्नित्यं त्रिभिर्भ्रातृभिरन्वितम् ॥२७०॥  
 माङ्गल्यागृहसर्वस्वं सहजाप्राणनायकम् ।  
 श्रीमत्सुखितगोपेन्द्रनित्यलीलासु<sup>१</sup> भाजनम् ॥२७१॥  
 अयोध्यां च तथाद्राक्षुर्वंजभूमिविभूषिताम् ।  
 रामलीलाविशेषेण भावितां प्रतिवासरम् ॥२७२॥  
 तद्दृष्ट्वा तत्क्षणादेते सर्वं एव समुत्थिताः ।  
 निद्रावेशं परित्यज्य क्षणात्संजातजागराः ॥२७३॥  
 अनुवंशच तदन्योऽन्यं दृष्टं यश्निद्रया निशि ।  
 अत्यद्भुतरसोपेताश्चकिता इव सर्वतः ॥२७४॥  
 अहो किमद्राक्षम् निशिप्रसुप्ता विचित्रं रूपं रघुनन्दनस्य ।  
 विचित्ररूपांश्च जनान् व्रजस्य<sup>२</sup> धन्यान् सदा रामविहारदृष्टीन् ॥२७५॥  
 तद्विद्य एवास्य रघूद्रहस्य रामस्य सर्वाङ्गसुखाकरस्य ।  
 नित्यासु केलोषु किमप्यजस्तं प्राकाम्यमेतत्सहसा व्यलोकि ॥२७६॥  
 वन्दामहे तं पुरुषोत्तमोत्तमं व्रजेन्द्रबालं रसलीलाललामम् ।  
 मयूरपिच्छाङ्गितचारुशोषं गुज्जालजाभूषितवक्षसं परम् ॥२७७॥  
 अनुगृहीतनिजाङ्गिसरोजगतित्रिजगदार्तजनावनपणिडतम् ।  
 सरसकेलिनिधानकलानिधिं कमलकोमलनीलघनाकृतिम् ॥२७८॥  
 व्रजवधूनयनाङ्गितविग्रहं सुरलिकाकलकाकलिकाकरम् ।  
 जय जयेत्यखिलश्रुतिकीर्तिं विमलकीर्तिसुधारसवर्षणम् ॥२७९॥  
 तद्भुमेव शरण्यमियाम वै शरणमात्मकृतार्थतया ननु ।  
 तदितरं मनसापि न दध्महे परममुक्तिनिधिं प्रणयातुराः ॥२८०॥  
 इतिजल्पन्त एवामी प्रातःकाले समुथिताः ।  
 गोपराजं पुरस्कृत्य वनयात्रां प्रचक्रमुः ॥२८१॥

१. नित्यलालन°—मथु०, बड़० । २. ब्रजस्थान—मथु०, बड़० ।

उत्थाय राजा प्रवरो रघूणां नित्यक्रियान्ते कृतदानसङ्घः ।

प्रणम्य गोपेश्वरपादपद्मौ वनानि गन्तुं प्रकृतो बभूव ॥२८२॥

कैकेयी च महाभागा माङ्गल्यामात्मनः पुरः ।

विधाय वनयात्रायामुपचक्राम सादरम् ॥२८३॥

रज्ञे रघूणांपतये सुखिताह्वो व्रजेश्वरः ।

व्रजं प्रदर्शयामास वनमालाविभूषितम् ॥२८४॥

केकथीं च महोदारां रामप्रेमविघूर्णिताम् ।

माङ्गल्या दर्शयामास व्रजं वनविभूषितम् ॥२८५॥

सरय्वाः पुलिने रम्ये रम्याणि विपिनानि सः ।

रसालवनमुख्यानि प्रापश्यद्वीरमानसः ॥२८६॥

तमाह गोपशार्दूलो व्रजवीक्षणसादरम् ।

तानि तानि पदान्यत्र दर्शयन् करुणाकरः ॥२८७॥

### सुखित उवाच

तदिदं राजशार्दूल स्थानानां स्थानमुत्तमम् ।

यत्राद्भुतं महद्भूतं तत्क्षणात् पश्यतो मम ॥२८८॥

तन्न दृष्टं त्वया राजन् न च त्वत्पारिपाश्वकैः ।

न चान्येन च केनापि ज्ञानयुक्ताक्षिगोचरम्<sup>१</sup> ॥२८९॥

यस्त्वया शिशुरानीतः परमश्यामसुन्दरः ।

त्वदङ्गभूषणकरो नीलरत्नमहोनिधिः ॥२९०॥

स मदङ्गस्थिते रामे शिशौ नीलधनाकृतौ ।

तत्कालसंभवे सद्यस्तिरोभूय समाविशत् ॥२९१॥

तदद्वष्टवात्यद्भुतं जातं मम विभ्रान्तचक्षुषः ।

तदद्भुतसमाविष्टं मुनिर्मा समुपाययौ ॥१९२॥

भगवानत्रितनयो दुर्वासानाम नामतः ।

अहं च पृष्ठवानेतदद्भुतं चकितेक्षणः ॥२९३॥

भगवन् मुनिशार्दूल संभ्रमो मे महान् हृदि ।

तद्भवन्तं विशेषेण पृच्छामि भगवन्नहम् ॥२९४॥

१. °मुक्ताक्षिगोचरे—रीवौ ।

त्रिकालज्ञं मुनिवरं वेदवेदाङ्गवित्तम् ।  
 जगत्कल्याणकर्तारं पादाब्जजलपावनम् ॥२९५॥  
 किमेतन्मुनिशार्दूल संजाततममद्भुतम् ।  
 नृपेण रघुवर्येण किमानीतमिदं महत् ॥२९६॥  
 मत्पुत्रनिर्विशेषेण यन्मया दृष्टमद्भुतम् ।  
 किमर्थं च मदङ्गस्थं पुत्रमाविशदागतम् ॥२९७॥  
 इदानीं कश्च मे पुत्रः को वा दशरथस्य च ।  
 स्नेहश्च मम मत्पुत्रे वर्द्धते भुवनोत्तरः ॥२९८॥  
 किमहं चार्पयिष्यामि राजे समय आगते ।  
 मत्पुत्रो मे प्रियतमो न तमर्पयितास्म्यहम् ॥२९९॥  
 एतन्मे संशयं छिन्धि त्रिकालज्ञ महामुने ।  
 भवदन्यो न संदेहं छेत्ता मे भुवनेऽपि च ॥३००॥

## दुर्वासा उवाच

गोपराज महाभाग शृणु मत्तः परं वचः ।  
 रामस्य तत्त्वं वक्ष्यामि रहस्यं देवगोपितम् ॥३०१॥  
 नाख्येयं यस्य कस्यापि लोके तन्माययावृते ।  
 ऋतस्य मूलं सञ्छन्नमनृतेन समन्ततः ॥३०२॥  
 अनृता पिहिता देवा अनृता पिहिता जनाः ।  
 अनृता पिहिता दैत्या यक्षरक्षोगणादयः ॥३०३॥  
 अनृता पिहिता धीमस्त्रयोलोकाः सनातनाः ।  
 अनृता पिहिताः सर्वे मुनियोगिवरादयः ॥३०४॥  
 सर्वं चानृतमूलं हि यद्वस्तु व्यवहारतः ।  
 ऋतमेकं समस्तेषु वेदेषु परमार्थतः ॥३०५॥  
 ऋतस्य चानृतस्यापि अन्तरं महदन्तरम् ।  
 भक्त्या तत्त्वं प्रविज्ञाय मुच्यते भवबन्धनात् ॥३०६॥  
 आदावन्ते च मतिमनृतमेव प्रतिष्ठितम् ।  
 गन्धर्वनगराकारं मध्येऽनृतसमुद्भवम् ॥३०७॥

तदप्यन्तेन संभिश्वरूपासते नृणाम् ।  
 'न केवलं स्यादनृतमृतसंयोजनं॑ विना ॥३०८॥  
 ऋतानृते उभे अस्मिन्नेकोकृत्यात्मसत्तया॑ ।  
 निर्माणमण्डकोटीनां पुरापुंसा विनिर्ममे ॥३०९॥  
 तत्ते ऋतं प्रवक्ष्यामि रामतत्त्वं सनातनम् ।  
 अशेष वस्तु राशीनां महाकारणकारणम् ॥३१०॥  
 पुरेदमसदेवासीच्छून्यं तत्त्वं तमोबृतम् ।  
 संसुप्तवदनिर्वाच्यमनीदृशमविस्तरम् ॥३११॥  
 मायां समुपसंहृत्य चिन्मात्रमवशेषितम् ।  
 कार्यजातं प्रति तदा मिलिताक्षमिव स्थितम् ॥३१२॥  
 स्वसत्तामात्रसततं चिदानन्दात्मकं ध्रुवम् ।  
 अनाविष्कृतशक्तित्वात्तद्ब्रह्मोत्यभिधीयते ॥३१३॥  
 साक्ष्यभावादसाक्षित्वात् साक्षिणापि विवर्जितम् ।  
 अहं बहुस्थां जायेय प्रवर्तेय गुणान्वितः ॥३१४॥  
 इत्थं खलु परस्येच्छां सर्तीं समनुवर्त्य तु ।  
 चतुर्धा समभूदेकं तस्य तन्महितं महः ॥३१५॥  
 अक्षरं चैव कालश्च कर्म चापि तदात्मकम् ।  
 स्वभावश्च गुणैरादच्यः परस्यैव मायया ॥३१६॥  
 यदक्षरमभूद ब्रह्म द्विधा तदजनि स्फुटम् ।  
 प्रकृतिः पुरुषश्चैव कलासमुदयाज्जितः ॥३१७॥  
 सहस्रशोष्णनयनः सहस्राननबाहुकः ।  
 सहस्रकरपादोरुः सहस्रश्रुतिनासिकः ॥३१८॥  
 अहमेवं भविष्यामीत्यभिध्यासहितेच्छया ।  
 अन्तःसमुत्थितात् सत्त्वगुणतः सृष्टिहेतुतः ॥३१९॥  
 तिरोहित इवानन्दे परस्मात् तद्विशिष्यते ।  
 सृष्टीच्छाव्यापृतः सोऽसौ भगवानेव केवलम् ॥३२०॥

मुख्यजीवतया सर्ववेदान्तेष्वभिधीयते ।  
 अत एव चितां तत्र स्वयोग्ये चित्स्वरूपके ॥३२१॥  
 प्रवेशोऽस्तीति<sup>१</sup> कथितमौडुलोमिमतं ध्रुवम् ।  
 इच्छामात्रात्तिरोभावेऽप्यानन्दमयताक्षता ॥३२२॥  
 पुरुषावतारो भगवानतएव प्रकीर्तिः ।  
 तदेव ब्रह्म कूटस्थमव्यक्तमिति चोच्यते ॥३२३॥  
 नैरन्तर्यं सदैवास्य परमात् पुरुषोत्तमात् ।  
 सप्तावरणसंयुक्तकोट्ट्यण्डनिवहात्मकम् ॥३२४॥  
 कार्यजातं तु तत्रैव सर्वदा प्रतितिष्ठति ।  
 नित्यं च तदवच्छिन्नं परस्मात् पुरुषोत्तमात् ॥३२५॥  
 पुरुषोत्तमरूपस्य नित्याधारतया स्थितम् ।  
 आविर्भूते परस्मस्तदाविर्भूतमनेकधा ॥३२६॥  
 तस्यलोकस्तस्य पीठं तच्छय्या तस्य चासनम्<sup>२</sup> ।  
 नानाजीवजडाकारैराविर्भवति तद्युतम् ॥३२७॥  
 अत एव च ते जीवा नित्यमुक्ता उदीरिताः ।  
 जडा अपि च तत्रत्याश्चिन्मया एव कीर्तिताः ॥३२८॥  
 अन्तर्यामिस्वरूपेण हरेरन्तरूपासने ।  
 सद्यो<sup>३</sup> मुक्तौ ज्ञानिनां तच्चरणाब्जे प्रवेशनम् ॥३२९॥  
 पुरुषोत्तमसंज्ञस्य चरणं तत्प्रकीर्तिम् ।  
 अवतारस्वरूपेऽपि तथैव तद्वच्चवस्थितम् ॥३३०॥  
 अधिदैवस्वरूपे च तद्वदेव व्यवस्थितम् ।  
 तथानन्दमयस्यास्य पुच्छमक्षरमीरितम् ॥३३१॥  
 ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठेति श्रुतिरप्याह तादृशम् ।  
 अक्षरत्वेनैव तस्य सेवनं ज्ञानवर्त्मनि ॥३३२॥  
 तज्ज्ञानात्तमयत्वाप्तिर्वेदान्तेषु निरूप्यते ।  
 यो ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवतीति श्रुतेर्मतम् ॥३३३॥

१. प्रवेशोसीति—अयो०, मथु०, बड़ो० । २. तद्वच्छया तस्य चाक्षणा ( चासनं—अयो० )—अयो०, रीवौ० । ३. सिद्धी—अयो० ।

तस्मादप्युक्तमो धीमन् श्रीरामः पुरुषोत्तमः ।  
 ब्रह्मानन्दात् समधिकः प्रेमानन्दो भवेद्यतः ॥३३४॥  
 कालेऽपि चाक्षरस्यैव स्वरूपान्तरमुच्यते ।  
 सर्वाकारेण भवनं यत्तसामर्थ्यमक्षरे ॥३३५॥  
 तदन्यसर्वसामर्थ्यमुक्तः काल उदीरितः ।  
 सर्वाधिकारसंयुक्तः सर्वदा फलसाधकः ॥३३६॥  
 इच्छामात्राच्चिदानन्दतिरोभावे विकल्पितः ।  
 सर्वानुभवसिद्धोऽपि सर्वप्रत्यक्ष एव सः ॥३३७॥  
 क्रियाशक्तिप्रधानोऽसौ सकलोऽद्वकारणम् ।  
 सर्वं जगत्स्थापयित्वा स्वस्मिन् याति निरन्तरम् ॥३३८॥  
 अक्षरे च परे चापि न तत्सामर्थ्यमल्पकम् ।  
 विकृतावेव चात्यन्तं सृष्टिस्थित्यन्तभावकः ॥३३९॥  
 बहिर्मुखानां तु बहिर्व्यवहारेण तादृशः ।  
 यादृशो ज्ञानिनां शुद्धभगवत्त्वेन भासते ॥३४०॥  
 सच्चिदानन्दरूपोऽतः सर्वदा प्रकटत्वतः ।  
 भगवद् तस्मैश्वर्यं भजते नित्यमेव सः ॥३४१॥  
 स सर्वायिक्षया तस्य<sup>१</sup> सेवकेष्वन्तरञ्जकः ।  
 आसुरादितमोऽन्धानां तस्यैवोपासनालयौ ॥३४२॥  
 प्रभूरिच्छानुसारेण क्रिया तस्य व्यवस्थिता ।  
 तस्याधिभौतिकं रूपं सूर्यं एव न संशयः ॥३४३॥  
 युगाद्याध्यात्मिकं रूपमाधिदैवं स्वयं हरिः ।  
 इति ते संनिगदितं कालतत्त्वं व्रजेश्वर ॥३४४॥  
 कर्मापि चाक्षरस्यैव रूपान्तरमुदाहृतम् ।  
 पुंभिर्विधिनिषेधाभ्यां प्रकटीक्रियते तु तत् ॥३४५॥  
 हिताहितप्रदानेषु लोकानां स विशिष्यते ।  
 फलपर्यन्तमेवास्य प्राकटचं समुदाहृतम् ॥३४६॥  
 भगवानेव तद्रौपैराविर्भूय तिरोभवन् ।  
 कर्मेति कीर्त्यते लोके प्रतिजीवं व्यवस्थया ॥३४७॥

१, सर्वपापक्षयात्तस्य—अयो०, सर्वा सेवया पेक्ष्या तस्य—रीवाँ ।

पूर्वापरीभावभेदाद् द्वेधा प्राकटचमस्य च ।  
 कालस्यैवाङ्गमेतच्च कालस्य च वशे स्थितम् ॥३४८॥  
 स्वभावं तु हरेरिच्छारूपेण प्रकटः सदा ।  
 असाधारणतामेत्य सर्ववस्तुसमाश्रितः ॥३४९॥  
 जगदाकाररूपेण वर्तते जगति स्फुटः ।  
 तस्य पश्चाद्भूगगतं सर्वमेव जगत् स्थितम् ॥३५०॥  
 ज्ञानकर्मगुणाश्चैव वस्तूनि बहुशस्तथा ।  
 सदुद्गमतिरोभावहेतवो बहवो मताः ॥३५१॥  
 परिणामेन कार्येण नित्यमेषोऽनुमीयते ।  
 अक्षराद्याश्च चत्वारो वासुदेवादिसंज्ञकैः ॥३५२॥  
 चतुर्भिर्भगवद्रूपैराविष्टा इति शुश्रुम ।  
 वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥३५३॥  
 चतुर्मूर्तिः स्वयं विष्णुरादिदेवस्त्रयोस्तुतः ।  
 महापुरुष इत्युक्तः साक्षात्तारायणो हरिः ॥३५४॥  
 वैकुण्ठनाथो भगवानेष एव सनातनः ।  
 ब्रह्मानन्दमयी तस्य रमा सर्वज्ञसंगिनी ॥३५५॥  
 विशुद्धं सत्त्वमतुलं विग्रहोऽस्य प्रकीर्तिः ।  
 रामस्य पूर्णं एवांशः स्वयं भगवतो हृष्यम् ॥३५६॥  
 चतुर्विधमसौ मोक्षं सेवकेभ्यः प्रयच्छति ।  
 ज्ञानसंमिश्रया भवत्या तस्य सेवा प्रकीर्तिता ॥३५७॥  
 सहस्रशीर्षनयनः पुरुषोऽस्यांश उच्यते ।  
 तस्माद्रामचन्द्रो देवः सर्वकारणकारणम् ॥३५८॥  
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सृष्टिस्थित्यन्तकर्मणि ।  
 गुणावतारास्तस्यैव पुराविद्विरुद्धाहृताः ॥३५९॥  
 तथान्ये मत्स्यकूर्माद्या अवताराः समीशितुः ।  
 स एव भगवान् साक्षादभूद्वाशरथे गृहे ॥३६०॥  
 मर्यादापालनार्थाय सतामुद्धरणाय च ।  
 द्विजधर्मत्रयीभूमिकलेशसंहरणाय च ॥३६१॥

तस्याप्यात्मा स्वयं रामः सच्चिदानन्दविग्रहः ।  
 प्रभोदवनचन्द्रो यः सनातनतया स्थितः ॥३६२॥  
 प्रेमानन्दमयी तस्य रमा नित्याङ्गसञ्ज्ञिनी ।  
 सहजानन्दिनी सैषा लीलाधिष्ठानमास्थिता ॥३६३॥  
 शुद्धसत्त्वाव्यवहितः सच्चिदानन्दविग्रहः ।  
 सर्वांशैः परिपूर्णोऽसावंशित्वेनैव संस्थितः ॥३६४॥  
 स्वयं स भगवान् साक्षात् सर्वानन्दकलानिधिः ।  
 निजलीलाप्रवेशाख्यं सर्वकामफलात्मकम् ॥३६५॥  
 प्रेमानन्दमयं मोक्षं भक्तेभ्यो यः प्रयच्छति ।  
 विशुद्धभक्त्या संसेव्यः कर्मज्ञानाद्यमिश्रया ॥३६६॥  
 न तस्य कार्यकरणं विद्यते भुवनत्रये ।  
 गुणेभ्यः समतीतोऽसौ गुणावतरणोज्जितः ॥३६७॥  
 अन्यावतारदशया सततं परिवर्जितः ।  
 सर्वोदासीन् एवासौ भक्तरज्जितमानसः ॥३६८॥  
 निर्मर्यादिमहालीलामाधुर्यरसवारिधिः ।  
 असतां चापि जीवानां ससुद्धरणपण्डितः ॥३६९॥  
 निजांशोदधृतगोविप्रश्रुतिधर्मानुरक्षकः ।  
 सर्वात्मनामप्यात्मासौ स्वेनैव च विशेषितः ॥३७०॥  
 स एष नित्यं गोपेन्द्र त्वदालयविभूषणः ।  
 रसभावमयीं लीलां नित्यमत्र करिष्यति ॥३७१॥  
 ऐश्वर्योत्थं भद्रं चैष निहन्तीश्वरमानिनाम् ।  
 यावतीर्मललीला वै ता एवासौ करिष्यति ॥३७२॥  
 'अवतारचरित्राणि निजावेशात् करिष्यति ।'  
 सहजानन्दिनी लक्ष्मीर्हुदयं मोहयिष्यति ॥३७३॥  
 कोटिलक्ष्मीकदम्बान्तर्विलासं वितनिष्यति ।  
 नाम धाम स्वरूपं च गुणाश्चरितमेव च ॥३७४॥  
 नित्यमेवास्य सकलं श्रुतिवृन्दैर्निरूपितम् ।  
 महारासविलासेन क्रीडिष्यति वधूगणैः ॥३७५॥

नित्यश्चास्य विलासोऽयं प्रमोदवनवीथिषु ।  
 अस्यैव सोपि पूर्णोऽशः कृष्णो वृन्दावनान्तरे ॥३७६॥  
 अन्यथान्यावतारेभ्यो माहात्म्यं किं विशिष्यते ।  
 रामेति द्वचक्षरो मन्त्रः सर्वमन्त्रशिरोमणिः ॥३७७॥  
 को विजानाति माहात्म्यं यच्च यावच्च तस्य तत् ।  
 रामस्यातिप्रियं नाम रामेत्येतदहर्निशम् ॥३७८॥  
 स्वयं जपति वै नित्यं सहजानन्दिनीसखः ।  
 रामस्यापि ग्रियं नाम रामेत्येव सनातनम् ॥३७९॥  
 रात्रिनिद्वं गृणन्नेष भाति वृन्दावने स्थितः ।  
 यच्च कृष्णस्य सामर्थ्यं पापेन्धनविदाहने ॥३८०॥  
 तद्रामनामसंजापमाहात्म्यमिति निश्चितम् ।  
 हयग्रीवस्तथागस्त्यो मनुरत्रिश्चतुर्मुखः ॥३८१॥  
 कुबेरः कामदेवश्च पद्मबन्धुः सुधाकरः ।  
 अहं हरिर्हरश्चैव नन्दीशश्च शतक्रतुः ॥३८२॥  
 शुको द्वैपायनश्चैव वसिष्ठाद्यश्च योगिनः ।  
 नव योगीश्वराश्चैव याज्ञवल्क्यश्च गौतमः ॥३८३॥  
 जनकश्च तथान्ये च देवर्षिनरसत्तमाः ।  
 साक्षाच्छ्रीरामचन्द्रस्य नाममाहात्म्यवेदिनः ॥३८४॥  
 येषां तदेव सर्वस्वं प्राणपोषणमौषधम् ।  
 वेदशास्त्रपुराणेषु तत्त्वमेकं सुनिश्चितम् ॥३८५॥  
 रामेति चित्तरमणं नाम सद्यो विमुक्तिदम् ।  
 वाराणस्यां व्योमकेशो म्रियतां प्राणिनां ध्रुवम् ॥३८६॥  
 व्याचष्टे तारकं ब्रह्म रामेति द्वचक्षरात्मकम् ।  
 इति ते तनयस्यास्य स्वरूपं परमं ध्रुवम् ॥३८७॥  
 रहस्यं सर्वदेवानां विमृश्य कथितं मया ।  
 नित्याविर्भूतिता चास्य प्रमोदवनमन्तरा ॥३८८॥  
 साकेतनाथो भगवानाविर्भूतो नृपालये ।  
 न तस्य रावणादिभ्यो भयं च व्यापि विद्यते ॥३८९॥

यतः कालो बिभेत्येष त्रिनेमिरखिलोद्भवः ।  
 तथापि प्रेमवशगो राजा दशरथाभिधः ॥३९०॥  
 स्वप्रेम्णा रावणाद् भूत्वा भीतो निहितवांस्त्वयि ।  
 जातमात्रं शिशुं सैष रामं कैवल्यनायकम् ॥३९१॥  
 अवतीर्ण स्वलोकात् तमादायेह समागतः ।  
 तवाति भगवान् पूर्णः साक्षाद्रामोऽक्षरात्परः ॥३९२॥  
 तदैवाजनि यह्येवं राजो दशरथादभूत् ।  
 दासीनां श्रुतिरूपाणां नित्यानां च मृगीदृशाम् ॥३९३॥  
 नागीनां च नगीनां च नारीणां च मृगीदृशाम् ।  
 ब्रह्मादिदैवरूपाणां सुन्दरीणां स्वरूपतः ॥३९४॥  
 नित्यलीलानन्ददानसिद्धये भोगसिद्धये ।  
 प्रेमानन्दस्वरूपायाः सहजायाः परश्रियः ॥३९५॥  
 सह रतिविहारेण मनोभिलषितप्रदः ।  
 भक्तानां भूरिभाग्यानां प्रेमानन्दपदस्पृशाम् ॥३९६॥  
 श्रीमत्परमहंसानां न्यासिनां च परा गतिः ।  
 त्वयि नित्यं वसत्येष रामः प्रेम प्रमोदभूत् ॥३९७॥  
 दशरथस्यालये च नित्यं विहरते यथा ।  
 अथ काले परिप्रामे गन्तैष नगरीं प्रति ॥३९८॥  
 अवतारार्थसिद्धचर्थं सदा रामेति कथ्यते ।  
 रामस्तु त्वद्गृहे<sup>३</sup>स्थाता न पदं यास्यति क्वचित् ॥३९९॥  
 नानयोश्च मतो भेदो रामसाकेतनाथयोः ।  
 आत्यन्तिके ह्यभेदे हि भेदकृत्त्वारकी भवेत् ॥४००॥  
 आविश्य वै मनो नित्यं श्रीरामे पुरुषोत्तमे ।  
 भक्तो<sup>४</sup> लीलारसानन्दं यथैवानुभविष्यति ॥४०१॥  
 तथैव वै तस्य हृदि श्रीरामः पुरुषोत्तमः ।  
 अयोध्यायां रामलीलां स्वयं चानुभविष्यति ॥४०२॥

१. रामं चैव सेनापतिं—अयो०, मथु०, बड़० । २. यह्येष—मथु०, बड़० ।

३. त्वद्गृहि०—अयो० । ४. अत्र—रीव० ।

इत्येवमनयोस्तत्त्वं श्रीरामचन्द्रसीतयोः ।  
 मुनिभिः प्राक्तनैर्गीतमुच्चैः परमहंसकैः ॥  
 वर्णयेच्छृणुयाद्वापि सोऽपि मुच्येत् संसृतेः ॥४०३॥

## सुखित उवाच

इत्युक्त्वा मां मुनिवरः श्रीमानत्रितनूद्धवः ।  
 जगाम श्रीरामगुणान् गायन्तुच्चैः स्वमाश्रमम् ॥४०४॥  
 ज्ञाततत्त्वो मुनिवरादहं च परया मुदा ।  
 प्रेममया समाविष्टो बभूवैकान्ततत्परः ॥४०५॥  
 आसने शयने याने संक्रोडापानभोजने ।  
 राम एवार्पितमना बभूदाहमनन्यधीः ॥४०६॥

निपीय तद्वक्त्रसरोजसंभृतं प्रकाममाधुर्यमयं महन्मधु ।  
 विलीनसर्वोन्द्रियवृत्तिसंसरश्चिराय योगीव बभूव निर्वृतः ॥४०७॥  
 पत्नी च मे तन्मयतामवाप सा विहाय शय्यासनभोजनादिषु ।  
 एकान्ततो बद्धमना न किञ्चन विवेद वाह्यं विषयं न चान्तरम् ॥४०८॥  
 इत्येवमस्मास्वतदन्य॑वृत्तिषु रामोऽपि रेमे रमणैककोविदः ।  
 वात्सल्यभावैकविदात्मभावो भूशं स्वरूपात् प्रणयं पुषोष च ॥४०९॥  
 तस्य स्वभावैकविदः सदा वयं सोऽस्मत्स्वभावं च विवेत्ति संततम् ।  
 जानीमहे न त्रिषु धामसु कवचित्तच्चितरक्त्यै प्रभवेत् परोऽपि सन् ॥४१०॥

या यास्तस्य शुभा लीलास्तासां सारं वयं खलु ।  
 जानीमहे परस्यास्य नित्यानुग्रहभागिनः ॥४११॥  
 इतिश्रुत्वा दशरथो गोपराजस्य भाषितम् ।  
 परमानन्दपाथोधौ ममज्जातीव तत्क्षणे ॥४१२॥  
 धन्यं धन्यमिति प्राह गोपराजं सहानुगः ।  
 पपात पादयोरस्य प्रेमाविर्भावविह्वलः ॥४१३॥  
 दृष्ट्वा तत्स्थानमत्यर्थं गोष्ठमुख्यं सुपावनम् ।  
 व्रजस्य शिर एतद्वै इत्याह नृपसत्तमः ॥४१४॥  
 तत्स्थानदर्शनोद्भूतप्रेमोत्कण्ठः सुविह्वलः ।  
 कथं कथमपि स्वैरमन्यतोऽगान्तृपोत्तमः ॥४१५॥

सुखितेन समादिष्टं मार्गमासाद्य भूपतिः ।  
आदिव्रजस्थलीं पश्यस्तुतोष परया मुदा ॥४१६॥

इति श्रीमद्भाद्रिमायणे ब्रह्मशुण्डसंवादे पूर्वखण्डे दशरथतोर्थयात्रायां  
आदिव्रजागमनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥



### एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

सुखित उवाच

इदं स्थानं महाराज तीर्थभूतं भवेन्नृणाम् ।  
यत्र रामः स्वयं चक्रे डाकिन्या हननक्रियाम् ॥ १ ॥  
यहि वाव मुनिश्रेष्ठो नारदो रक्षसां पतौ ।  
देवगुह्यतमं कार्यं कथयामास तत्क्षणे ॥ २ ॥  
लङ्घाधिपः कृतक्रोधः प्रेषयामास राक्षसीम् ।  
डाकिनीं लोकबालघनीं विचरन्तीं स्थले स्थले ॥ ३ ॥  
प्रतिग्रामं प्रतिपुर प्रत्यावासं चचार सा ।  
घनन्ती विविधरूपेण बालकान् सदतोऽदतः ॥ ४ ॥  
सा यथौ कालनिर्दिष्टा ब्रजे यत्र गृहं मम ।  
घोरा कपटवेशेन सुन्दरी भूपकामगा ॥ ५ ॥  
प्रसुम् पायितं मात्रा निगृढमिव पावकम् ।  
दृष्टीर्जनानामाच्छाद्य तस्करी स्वकरे दधात् ॥ ६ ॥  
न विद्यः कथमायाता कुतो वा पापमानसा ।  
कासौ क्रूरा केन दृष्टा जग्राह प्राणजीवितम् ॥ ७ ॥  
गृहकृत्ये स्थितं मात्रा दासीभिश्च तदाज्ञया ।  
बालैः संक्रीडने लग्नं मया गोचारणे गतम् ॥ ८ ॥  
इहत्यं वृत्तमाख्यातं बालैः कुतुकविह्वलैः ।  
मृता सा सकलैर्दृष्टा बह्योजनविग्रहा ॥ ९ ॥

अहो गोपाः शृणुतेयं सुधोरा पूर्वं दृष्टा सुन्दरो सुष्ठुवेशा ।  
 रामं समादाय करेण सुप्तं प्रपायथामास पयःस्तनोत्थम् ॥१०॥  
 रामेण रुद्धाङ्कजुषा' कराभ्यां निष्पीडिता वक्षसि गाढमेषा ।  
 मा मुञ्चमुञ्चेति चिरं विलप्य मुमोच निःश्वासमुदग्रवेगम् । ॥११॥  
 विवृत्य विस्तीर्णतरानुदग्रान् केशांश्च दन्तान् वदनं शिरश्च ।  
 दृशौ च हस्तौ चरणौ च पश्चाच्छब्देन भूमौ महता पपात ॥१२॥  
 ततो व्रजस्त्रीनिवहः समन्तात् कृतार्तनादः सहसा जगाम ।  
 ददर्श चैतां सुभयानकास्यां विस्तीर्णकेशीं पृथु लम्बोदरीं च ॥१३॥

इत्युदीरितमाकर्ष्य बालानां मूढचेतसाम् ।  
 नैव श्रद्धधिरे गोपा अजानन्तोऽस्य वैभवम् ॥१४॥  
 कुटुम्बिनी च मे तस्य वात्सल्यप्रेमपूरिता ।  
 सहसोत्सङ्गं आरोप्य परिरेखे भयातुरा ॥१५॥  
 अहं च विपिनादेत्य श्रुत्वा कोलाहलं व्रजे ।  
 अपश्यं डाकिनीकायं बहुयोजनविस्तृतम् ॥१६॥  
 निशम्य सकलं वृत्तं गोपबालमुखोद्गतम् ।  
 बभूव परमाश्चर्यं ममापि हृदये नृप ॥१७॥  
 ततः कश्चित् प्रौढकल्पो गोपबालोऽन्नवीद्रहः ।  
 ममागत्य स्फुटं तत्र यद्वृत्तं डाकिनीगतम् ॥१८॥  
 श्रूयतां सुखित स्वामिन् सत्यमेतन्मयोदितम् ।  
 डाकिन्या वदनात्तोजो रामदेहे व्यलीयत ॥१९॥  
 तच्छ्रूत्वा महदाश्चर्यं बभूव मम मानसे ।  
 अहो रामस्य माहात्म्यं बाल्य एवायमीदृशः ॥२०॥  
 ततोऽहमागत्य निकेतमात्मनो माङ्गल्यकायाः करतः सुजीवनम् ।  
 बालं समादाय समाश्लिषन् मुदा बभूव वात्सल्य रसोर्मिघूर्णितः ॥२१॥  
 गोप्यः सर्वाः प्रवीणास्ता मातरो व्रजवन्दिताः ।  
 आगत्य विदधू रक्षां बालस्याङ्गेषु सर्वतः ॥२२॥

अहं चाहूय विप्रेन्द्रान् मन्त्रज्ञान् सर्वरक्षकान् ।  
 रक्षोद्धनमन्त्रसंदोहै रक्षयामास बालकम् ॥२३॥  
 स्वस्ति पुण्याहमावाच्य द्विजमुख्यान् हुतानलः ।  
 मन्त्रपूर्तैर्जलैर्बालं स्नापयामास सादरः ॥२४॥  
 दत्त्वा च दक्षिणास्तोमं चतुर्वेदाश्रिष्ठां गणैः ।  
 वर्द्धयित्वा शुभैर्बालं नत्वाभ्यर्थ्य व्यसर्जयम् ॥२५॥  
 इत्यसौ डाकिनी घोरा महापातककारिणी ।  
 मृता स्वेनैव पापेन रामस्य च सदा शुभम् ॥२६॥  
 स्वकरस्पर्शमात्रेण डाकिनीं ताममारयत् ।  
 अतारयच्च पापेभ्यो मुक्तिं च समदात् प्रभुः ॥२७॥  
 निकृत्य परशुच्छेदैर्दद्यमाना तु डाकिनी ।  
 मुमोचातीव सौरभ्यं धूमं सर्वाङ्गितो व्रजे ॥२८॥  
 तदञ्जधूमसौरभ्यर्धपिताः सकला दिशः ।  
 रामाङ्गस्पर्शमात्रेण तादृक्पदमगादियम् ॥२९॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दशरथतीर्थयात्रायां  
 [ डाकिनीवृत्तं नाम ] एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥



### द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

#### ब्रह्मोवाच

तदन्यतो दिशं नीत्वा राजानं सुखिताह्वयः ।  
 उवाच वचनं भूयो रामलीलारसालयम् ॥ १ ॥

#### सुखित उवाच

स्थानं च तदिदं राजन् यत्र रामो व्यर्थयत् ।  
 'शयानोऽधःस्थितां खट्वां विधाय तिलशः क्षणात् ॥ २ ॥  
 दृष्ट्वा तत्रस्थितैर्बालैरुचे पूर्ववद्भुतम् ।'  
 पुरुषो मुद्गरकरः करालवदनाकृतिः ॥ ३ ॥

प्रांशुधोरतराकारो मेघमेचकविग्रहः ।  
 पश्यतां नः क्षणादेत्य खट्वां राक्षस आविशत् ॥ ४ ॥  
 खट्वेयं रामशिशुना मुहुर्मर्दयतोच्चकैः ।  
 चूर्णिता तिलशः कृत्वा गजदन्तमयी जवात् ॥ ५ ॥  
 संचूर्णितायां खट्वायां राक्षसः पुनरुद्गतः ।  
 दृष्टो मुद्गरमादाय धावमानोऽस्य संमुखम् ॥ ६ ॥  
 यावत्प्यातयते शस्त्रं तावद्बालपदाहतः ।  
 पतितोऽत्र विवृत्याङ्गं डाकिन्याः सोदरो यथा ॥ ७ ॥  
 भूयोऽस्य वदनात्तेजो विनिर्गम्योङ्गुसन्निभम् ।  
 प्राप्य रामस्यैव वपुस्तत्क्षणेन व्यनश्यत ॥ ८ ॥  
 इदमद्भुतमाकर्ण्य वृत्तं रामस्य दुष्करम् ।  
 पूजयन्तः शिशून् सर्वान् गोपालाश्चकिता इव ॥ ९ ॥  
 अहं च विप्रानामन्त्र्य मंत्रै रक्षोच्चकलपकैः ।  
 अरक्षयन् मुह राजन् सर्वाङ्गप्राणजीवनम् ॥ १० ॥  
 हुत्वाग्नौ विविधैर्मन्त्रैर्बालरक्षाविधायकैः ।  
 ग्रहाणां चाहुतीर्दत्त्वा स्नापितो मन्त्रिताम्भसा ॥ ११ ॥  
 राजिकां लवणैः साद्वं निमंक्ष्य प्राणजीवने ।  
 अपातयत् गोपदारा विकीर्णं सर्वतो दिशम् ॥ १२ ॥  
 गोपुच्छभ्रामणं चास्य विदधुः सर्वविग्रहे ।  
 अरक्षयं इच्च फूल्कारैर्मन्त्रसिद्धमुखोद्गतैः ॥ १३ ॥  
 योगिभिश्च कृतैर्नदैर्वृजे विघ्नान् न्यवारयन् ।  
 मयूरपिच्छमुष्टच्चा च रक्षां चक्रुः सुकातराः ॥ १४ ॥  
 इत्येवं शमितोऽ विघ्नः सारिष्टः साशुभप्रदः ।  
 व्रजदारैहितपरै रामस्य शुभकाङ्गक्षिभिः ॥ १५ ॥  
 नारदस्य मुखाद्राजन् श्रुतं वृत्तमनन्तरम् ।  
 रावणप्रेषितोऽयं वै<sup>२</sup> विकटाख्यो महासुरः ॥ १६ ॥  
 हृतः स्वेनैव पापेन परापकृतितपरः ।  
 बहवो निहता तेन शिशांवो निद्रयावशाः ॥ १७ ॥

१. एवं सक्रामितो—अयो०, रीबाँ । २. दुष्टैः—रीबाँ ।

ततश्च परमस्माभिरप्रमादैरिहस्थितैः ।  
 प्राणजीवनरक्षायां तत्परद्वंभत्तपरैः ॥१८॥  
 अन्तःपुरे हिततमाः स्थापिता बृद्धमातरः ।  
 अप्रवेशश्च सर्वेषां यस्य कस्याप्यनागमः ॥१९॥  
 वहिर्निःसरणं चास्य विशेषेण विवर्जितम् ।  
 स्वहस्तावर्जितं दुर्घं मम गेहिन्यपाययत् ॥२०॥  
 अदृष्टभोजनं चैवमदृष्टोदकसेवनम् ।  
 जनसंचाररहिते देशे स्वापस्तथासनम् ॥२१॥  
 अवधानपररेभिः सर्वदा स्थापितः प्रभो ।  
 यतो व्रजे नः सर्वेषां रामो जीवातुरेधताम् ॥२२॥

## ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा गोपपतेर्वाक्यं विस्मितो नृपसत्तमः ।  
 तत्स्थाने परमे तीर्थे सर्वाङ्गस्नानमाचरत् ॥२३॥  
 तदन्यां च दिशं तेन संप्राप्य नृपसत्तमः ।  
 उक्तो गोपालपतिना स्थानं निर्देश्य सादरम् ॥२४॥  
 इदं तत्स्थानमतुलं यत्र क्रीडन् शिशुर्भुवि ।  
 हृतो वात्याजवेनाञ्च प्रापितो घोररक्षसा ॥२५॥  
 निहत्य गग्ने रक्षो गलग्रहपरासुकम् ।  
 अपातयच्छिलापृष्ठे विचूर्णिततनुं जवात् ॥२६॥  
 स वै वात्यास्वरूपेण प्राप्नो घोरतमोऽसुरः ।  
 निहतः स्वेन पापेन भाग्यरेष च जीवितः ॥२७॥  
 इतश्च नृपशार्दूल दत्तदृष्टिविलोक्य ।  
 अत्र मत्प्राङ्गणे रूढः पातितोऽनेन भूरुहः ॥२८॥  
 एकदा राजशार्दूल देवानां च द्विजन्मनाम् ।  
 आमन्त्र्य भोजनार्थाय चक्रेऽन्नानि कुटुम्बिनी ॥२९॥  
 व्यजजनानि च भूयांसि शाकानि विविधानि च ।  
 फलानि च सुपक्वानि नानाजातीनि मद्गृहे ॥३०॥

अनेकधा कृताः स्तिंगधा<sup>१</sup> द्विदलाश्च विशेषतः ।  
 वटकाश्च पूपिकाश्च तथा पूरणपूरिकाः ॥३१॥  
 शष्कुल्यो मण्डकाश्चैव बहुशः खण्डमण्डकाः ।  
 आदर्शाश्चेन्दुसञ्छाशास्तथैव जलवलिलकाः ॥३२॥  
 शर्करापारिकाः स्तिंधा दध्यपूपाश्च भूरिशः ।  
 पायसापूपकाश्चैव तथा कर्पूरनाडिकाः ॥३३॥  
 नवनीतापूपकाश्च फेणिकाश्च महोज्जवलाः ।  
 माठिकाः<sup>२</sup> खाद्यपूपाश्च तथा पापचिकाः शुभाः ॥३४॥  
 चक्रिकाः क्षीरचक्राश्च बर्बराश्च महत्तराः ।  
 लड्डुकानां जातयश्च मोदकानां च जातयः ॥३५॥  
 सितया मण्डिताः पूपा अनेकविधपूरिकाः ।  
 विधाय मत्कुटुम्बिन्या सर्वतः सद्य पूरितम् ॥३६॥  
 घृताक्तानि सुगन्धीनि सिताक्तानि सितानि च ।  
 पक्वान्नानि विनिर्मयि पात्राणि समपूपुरत् ॥३७॥  
 गतान्यहानि सप्तास्याः संविधाया विनिर्मितौ ।  
 पाकक्रियाप्रवीणानां प्रावीण्यं च परीक्षितम् ॥३८॥  
 तस्यां रात्रौ ततः सूदाः सर्वपाकान् विनिर्ममुः ।  
 सुशालिभक्तावरणशाकादीन् स्वादुवत्तमान्<sup>३</sup> ॥३९॥  
 अथ कौतूहली रामो बालकैः सह सर्वशः ।  
 विधाय सद्यनि च्छिद्रं भित्तौ पश्चिमतो दिशि ॥४०॥  
 पक्वान्नानि समस्तानि समादाय यदृच्छया ।  
 मृगान् संभोजयामास प्रमोदवनवासिनः ॥४१॥  
 मृगान् शाखामृगांश्चैव<sup>४</sup> गवयान् महिषांस्तथा ।  
 कोलान् गौरखरांश्चैव शुनो मार्जरकांस्तथा ॥४२॥  
 तरक्षन् शशजांश्चैव क्रोष्टस्तज्जननीस्तथा ।  
 भल्लूकांश्चैव गौधेरान् शरभान् मूषकांस्तथा ॥४३॥

१. कृताभिस्सा—मथु० बडो० । २. माडिका—अयो० । ३. उत्तमान—  
 अयो०, रीवाँ० । ४. सखीन् गवांश्चैव—रीवाँ० ।

पक्षिणोऽनेकजातीयानाहृयाहृय कौतुकी ।

पववान्नैर्भोजयामास ब्राह्मणार्थोपकलिपतैः ॥४४॥

पारावतान् मयूरांश्च चाषान् परभूतांस्तथा ।

कोकिलांश्च शुकांश्चैव श्येनोलूकांश्च वायसान् ॥४५॥

ते तर्पिता रामकरोपनीतैः पववान्नसंघैर्मधुरैर्मनोज्जैः ।

उदीरयन्तो निनदान् प्रजग्मुरधिप्रमोदाटविकेलिकुञ्जान् ॥४६॥

रामस्य यूथात् कोऽपि गोपालबालः संजातभेदः सहसागत्य तेभ्यः ।

निवेदयामास तदेव वृत्तं कुटुम्बिन्यै गृहकार्याकुलायै ॥४७॥

बलादुपश्रुत्य समस्तमेतत् रामस्य संचेष्टिमार्तबन्धोः ।

संजातरोषा गृहिणी मदोया पववान्नगेहं सहसा जगाम ॥४८॥

भाण्डागारं स्वयमेषा विलोक्य विकीर्णपववान्नकदम्बकं तत् ।

गृहीतयष्ठिः कुपिता प्रयत्नाज्जवेन रामाभिमुखं जगाम ॥४९॥

स बालयूथस्थित एनां निरीक्ष्य सवेत्रहस्तां जननीं ताडनोद्यताम् ।

पलायितो द्वरतरं जवेन सा तत्पृष्ठलग्ना व्यचलत् कृपान्विता ॥५०॥

तत्स्थानादेष बालैः पलायय मध्ये गृहं तत्र निलोय तस्थौ ।

गवेषयन्त्या प्रतिसद्म चामुया क्रमेण तत्रैत्य निरीक्षितः शिशुः ॥५१॥

एकान्तचारी विरुद्भुदश्रुणी विलोचने अञ्जनपूर्णपक्षमणी ।

मृजन् कराम्भोजयुगेन शोभिना निकेतकोणोपगतोऽतिभास्वरः ॥५२॥

तमादाय ततो गोपी रूपातिशयभूषिता ।

न ताडितवतो यष्टचा वात्सल्यसनेहमोहिता ॥५३॥

तमानीयाङ्गणस्थेन तरुणायुष्यशालिना ।

बबन्ध करयोर्दम्ना बालं क्रीडनकारिणा ॥५४॥

पुनश्च पववान्नगृहं समेत्य निरीक्ष्यते यावदसौ वसूनि ।

तावत्समस्तं परिपूर्णमेव प्रपश्यती मुमुदे मानसेन ॥५५॥

रामश्च तेन तरुणा कल्पवृक्षसमत्विषा ।

निबद्धः करयोर्मात्रा यावदाक्षिपते गुणम् ॥५६॥

तावदुन्मूलितो वृक्ष आमूलाद् भूरिविस्तरः ।

गगनस्पर्शिविटपस्कन्धस्तुङ्गशिखाधरः ॥५७॥

तर्हमहोच्छायविभूषितो जवात् सनिष्पतन्भूतलमीरितस्वनः ।  
रामस्य पर्यन्तचरैः शिशुव्रजैनिरीक्षितो भूरिफलप्रसूनधृक् ॥५८॥

तस्य निष्पततः शब्दं समाकर्ण्य जना व्रजे ।  
आययुस्त्वरितं तत्र यत्र वद्धोऽनया शिशुः ॥५९॥  
तन्मात्रापि तदागत्य दृष्टो बालः स्वभाग्यतः ।  
शनैरुन्मोचितो वृक्षाद् दाम्ना बद्धः सुनिश्चलः ॥६०॥  
पृष्ठाश्च पर्यन्तचराः शिशावो गोदुहां हि ये ।  
कथमेष महावृक्षः स्वयमेवान्वभज्यत ॥६१॥  
ततस्ते वालका ऊचुर्यावद्रामः स्वयं मुहुः ।  
गुणमाक्षिपते तावदभज्यत महातरुः ॥६२॥  
तरावुन्मूलिते रामबलेनैव<sup>१</sup> व्रजस्त्रियः ।  
तत उद्गम्य पुरुषो महानेको व्यदृश्यत ॥६३॥  
दद्योतमानो दिशः कान्तिसंदोहेनातिभूयसा ।  
प्रांशुरुखेन्दुसंकाशो रूपसारविभूषितः ॥६४॥  
रत्नहारयुतोरस्को दिव्यदेहविराजितः ।  
दिव्यवस्त्रद्वयवृतो मनोज्ञः पद्मलोचनः ॥६५॥  
मुहुः संस्तूय रामं स प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ।  
दिव्यं विभानमारुह्य पश्यतां नः खमारुहत् ॥६६॥  
गोपबालवचः श्रुत्वा नरा नार्यश्च विस्मिताः ।  
चिरञ्जीवतु रामोऽयमिति सर्वे बभाषिरे ॥६७॥  
गोपालिका रामचन्द्रं स्वाङ्क आरोप्य विह्वला ।  
स्नेहेन लालयामासुर्भहता प्राणजीवनम् ॥६८॥  
अहो मङ्ग्नागयनिवहैरयमुर्वरितस्तरोः ।  
देवतानां प्रसादेन स्वाशीर्भिश्च द्विजन्मनाम् ॥६९॥  
कृतस्वत्ययनं बालं कृतदानं द्विजन्मने ।  
चिरादङ्कं समारोप्य परिरेभे सुविस्मिता ॥७०॥

कुलदेवीं ततोऽभ्यर्च्य संपूज्य च सुखं सुरान् ।  
 देवताश्च पितृश्चैव पूजयित्वा विधानतः ॥७१॥  
 विप्रानाहूय सकलान् समुपामन्त्रितान् पुरा ।  
 सुखेन पूजयामास संतुष्टा मत्कुटुम्बिनी ॥७२॥  
 ततो ज्ञातीन् समाहूय नरान् नारीश्च कोटिशः ।  
 अवशिष्टं ब्राह्मणेभ्यो भोजयामास भूतये ॥७३॥  
 अक्षयं तदभूत् सद्ग<sup>१</sup> पवबान्नपरिपूरितम् ।  
 भुक्तं भुक्तमभूद् भूयो रामस्यैव प्रसादतः ॥७४॥  
 चन्दनादिभिरालिप्य ब्राह्मणान् दत्तदक्षिणान् ।  
 विसर्जनाशिषामन्ते संतुष्टा मत्कुटुम्बिनी ॥७५॥  
 एवमेतत्स्थलं राजन् कोटितीर्थौघपावनम् ।  
 रामचन्द्रपदाम्भोजैरङ्कितं दृश्यतां मुहुः ॥७६॥

### ब्रह्मोवाच

द्रुमभञ्जस्थले स्नात्वा भक्त्या दशरथो नृपः ।  
 अन्यतो दिशभानीय बभाषे सुखितेन सः ॥७७॥  
 इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे दशरथतीर्थयात्रायां  
 द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥



### त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

#### सुखित उवाच

उत्पातान् समभिज्ञाय महाघोषे महीपते ।  
 शङ्कयानः शिशोर्विघ्नं गोपैः साकममन्त्रयम् ॥ १ ॥  
 प्रियमोदप्रमोदाद्या गोपवृद्धाः पुरातनाः ।  
 शुभार्थिनो मे ये सर्वे तेषां वृद्धः प्रियाभिधः ॥ २ ॥  
 गोपालो मतिमान् धीरो वोरः परपुरञ्जयः ।  
 अब्रवीन्मन्त्रमतुलं तन्निशामय भूपते ॥ ३ ॥

१. सद्गः—अयो०, रीवाँ ।

## प्रिय उवाच

होराशास्त्रे प्रवीणोऽहं शिष्यो माण्डव्यधीमतः ।  
 राजनीतौ च निपुणो लोकवार्ताविचक्षणः ॥ ४ ॥  
 तस्मान्मम मतं पक्वं कार्यमायुष्मता सदा ।  
 राजलक्ष्मीमतिक्रम्य लक्ष्मीस्ते शोभतेऽधुना ॥ ५ ॥  
 श्रोतव्या प्रथमं नोतिस्ततो<sup>१</sup> धर्मस्त्वया विभो ।  
 ततो लोकहिताचारः सानुष्टानप्रयोजनः ॥ ६ ॥  
 पथ्यं तथ्यं च यो ब्रूते स हितः स सखाजनः ।  
 तमेव च पुरस्कृत्य कृतं कायं न शोर्यति ॥ ७ ॥  
 संपदा सेवितं वीक्ष्य बहवो यान्ति सेवितुम् ।  
 तेषां स्वरूपं संस्थानं ज्ञेयं संपद्वता सदा ॥ ८ ॥  
 संपदि प्रायशः सर्वे घनतां यान्ति मानुषाः ।  
 आपत्काले विशीर्यन्ति धना इव मरुज्जवे ॥ ९ ॥  
 एक एव हितः श्रेयान् किमनलैर्हिताविदैः ।  
 तं राजा न त्यजेज्जातु स हि तस्यासुसंमितः ॥ १० ॥  
 संपदा नावजानोयाद्वितज्जं मानुषं धनी ।  
 संपदो भूरि जायन्ते हितज्जो विरलो जनः ॥ ११ ॥  
 संपदः पुरुषो लोके संपदं रक्षयेत् सदा ।  
 सुकरः सञ्चयस्तस्य दुष्करं रक्षणं पुनः ॥ १२ ॥  
 एकस्य संपदं वीक्ष्य विकृतिं यान्ति वै परे ।  
 छिद्रान्वेषिभ्य एतेभ्यो रक्षणं कार्यमुच्चकैः ॥ १३ ॥  
 संपत्सु च प्रभूतासु न कर्तव्यः स्मयो बुधैः ।  
 स एव तासां नाशस्य प्रकारो मुख्य उच्यते ॥ १४ ॥  
 आपन्न इव संपत्सु दीनतां सर्वतः श्रयेत् ।  
 ईशस्य हि वशे कृत्वा संपदः सुखमेधते ॥ १५ ॥  
 अन्यं न विश्वसेज्जातु संपत्सु कुशलो नरः ।  
 अनेकरूपतो दुष्टाः संचरन्त्यपहारकाः ॥ १६ ॥

१. स्तयोर्—अयो०, रीवाँ ।

यथा प्रतिष्ठा जगति प्राणानां चापि वर्तनम् ।  
 तामेव संपदं नित्यं जानीयादात्मनो हिताम् ॥१७॥  
 हितानेव जनान् धर्मं ज्ञापनीयं न भूयसः ।  
 संपत्संरक्षणार्थापि मृग्यं संपद्वता स्थलम् ॥१८॥  
 यत्रस्थः संपदो भुड्क्ते पररपरिभावितः ।  
 संपद्वता स्थलं ग्राह्यमाकरादिविर्वर्जितम् ॥१९॥  
 संभावितश्रीविषये परैरुत्साद्यते चिरात् ।  
 साधारणे स्थले स्थित्वा साधारणतया वसन् ॥२०॥  
 भुज्जीत नियतान् भोगान् सशङ्कितमनाश्चिरम् ।  
 धर्मं चार्थं च कामं च सेवमानोऽनिशं जनः ॥२१॥  
 उत्तरोत्तरतो विद्यात्तुर्ये सर्वान् नियोजयेत् ।  
 अह्नचर्जयेत्तथा येन रात्रौ स्वस्थमनाः स्वपेत् ॥२२॥  
 अर्जयेद्वयसा येन वार्द्धके सुखमेधते ।  
 जन्मना चार्जयेद् येन भुक्वान्ते सुखमाप्नुयात् ॥२३॥  
 दुःखाभावः सुखं चेति पुरुषार्थो यतो द्वयम् ।  
 कुर्यात् सत्पुरुषेः सङ्गं देवांशाविष्टचेतनः ॥२४॥  
 असुरांशैः कृतः संगः समूलं नाशयेज्जनम् ।  
 धर्मं समाचरेन्नित्यं यथा संपन्नवस्तुभिः ॥२५॥  
 संपदां चात्मनश्चैव धर्मं एवाभिरक्षकः ।  
 आपद्यपि जनः प्राप्तो धार्मिको नियतं भवेत् ॥२६॥  
 जित्वा धर्मबलात् सर्वान् भूयः प्राप्नोति संपदः ।  
 धर्मं येषां स्थिरा निष्ठा किं तेष्वापत् करिष्यति ॥२७॥  
 आपदोऽपि नृणां तेषां संपत्प्राप्या उद्दीरिताः ।  
 आत्मा कुटुम्बिनी पुत्रा गृहं परिजना भुवः ॥२८॥  
 यः सर्वमेव धर्मार्थं प्रयुज्जीत स पण्डितः ।  
 यस्य धर्मं परा निष्ठा प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥२९॥

सर्वशास्त्रादिविद्यासु मूर्खं एव स पण्डितः ।  
 आत्मना फलयेजजन्म जन्मना त्रिविधं वयः ॥३०॥  
 वयसा भौतिकं पिण्डं पिण्डेनात्मप्रयोजनम् ।  
 धर्मोऽस्य परमो वन्धुरिह चैव परत्र च ॥३१॥  
 न तमापत्<sup>१</sup> स्पृशेजजातु यस्य धर्मे ध्रुवा मतिः ।  
 नातीयालौकिकं वृत्तमलौकिकपरोऽपि सन् ॥३२॥  
 लौकिकं पालयानस्य सिद्धचेत् सर्वमलौकिकम् ।  
 लोकस्य नैकदेशोऽस्ति शास्त्रं यद्यप्यलौकिकम् ॥३३॥  
 तथापि लोकवर्तित्वान्नियोज्योऽत्येति नैव तम् ।  
 यत्र यस्य स्थिरानित्यं सोऽनुरुध्यात् सदैव तम् ॥३४॥  
 प्राशनीत मधुरं चापि न मत्स्यः सलिलाद्वहिः ।  
 अलौकिको क्रिया चापि विरुणद्धिन लौकिकम् ॥३५॥  
 विरोधे संशयप्राप्तौ त्यज्यते शास्त्रमप्युत ।  
 लोकसिद्धो य आचारः स कार्यो भूतिमिच्छता ॥३६॥  
 परम्परायाः प्रामाण्यं प्रयोजकमनुत्तमम् ।  
 लोके वर्द्धयते कीर्ति व्यवहारः सुरक्षितः ॥३७॥  
 क्रियते कीर्तये सर्वं तदस्य परमं वपुः ।  
 लौकिका यद्विनिन्दन्ति तन्निन्द्यं वैदिकैरपि ॥३८॥  
 एक एव शुचिः पन्थाः प्रायशो लोकवेदयोः ।  
 इदं से मतमातिष्ठन् गोपराज सुखी भव ॥३९॥  
 त्वयैव सुखिना सर्वे सुखिनः स्म वयं यतः ।  
 संपत् ते संप्रति परा स्वयं रामः सुखाकरः ॥४०॥  
 सर्वविप्रसमूहेभ्यो गोपायैनमतन्द्रितः ।  
 यस्मिन् सुरक्षिते सर्वं सकलं स्याद् गवांपते ॥४१॥  
 तदेव रक्षणीयन्त आत्मनापि धनैरपि ।  
 धर्मशिक्षा<sup>२</sup> तु ते नित्यं धर्मनिष्ठैकवेशमनः ॥४२॥

१. न यमो तं—अयो० । २. धर्मसंज्ञा—रीबाँ ।

पुनरुक्ताय तेऽस्मासु तदप्याशास्महे शुभम् ।  
 प्रवृत्तोऽपि हि सन्मार्गं धीमान् सङ्क्षिः प्रवर्तयन् ॥४३॥  
 पूर्वप्रवृत्तिदाढर्य भुहस्तत्र नियोज्यता ।  
 लोकवृत्तोपदेशोऽपि व्यवहारपटोस्तव ॥४४॥  
 न किञ्चिदुपयुज्येत स्नेहात्तु प्रेरिता वयम् ।  
 धर्मेण लोकवृत्तैश्च नित्यं गोपाय गोपते ॥४५॥  
 अशेषव्रजजीवातुरामं बालमिमं प्रियम् ।  
 भवितायं व्रजभुवः सर्वस्या एव नायकः ॥४६॥  
 गोदुहां च कुलेष्वेष सुश्रियं वर्द्धयिष्यति ।  
 गावो वत्सास्तथानेन पालनीया विशेषतः ॥४७॥  
 यथा पौरन्दरी लक्ष्मीस्तृणवद्वास्थते नृणाम् ।  
 अलौकिकीं श्रियमयं व्रंजे संभावयिष्यति ॥४८॥  
 यथा देशाधिनाथानां श्रीमदः शान्तिमेष्यति ।  
 हरिष्यन्ति वर्लिं भूपाः किमु वाच्यमिदं लघु ॥४९॥  
 इन्द्रादिमुकुटैरस्य यत्सेव्या यन्नखप्रभा ।  
 सर्वसौख्यफलान्येष सर्वतः संफलिष्यति ।  
 अपवर्गसुखं येन तृणवत्प्रतिभास्यति ॥५०॥  
 अभ्युद्धरिष्यति कुलानि च गोदुहां नः स्वर्गापिवर्गसुखसंततिसार्वभौमः ।  
 माङ्गल्यमेष वितनिष्यति भूय एव स्वेच्छावशात्त्रिजगतामशुभोत्करणः ॥५१  
 स्वर्गापिवर्गस्थानेष्वप्यलभ्यं भोगमुत्तमम् ।  
 अयं भावयिता साक्षाद् ग्राम्याणामपि गोदुहाम् ॥५२॥  
 ऋद्धयः सिद्धयश्चापि भजिष्यन्ति स्वतो व्रजम् ।  
 अस्यैव संप्रसादेन न किञ्चिद् दुर्लभं च वः ॥५३॥  
 अस्य प्रभावं मे सर्वमूच्चुरेकान्ततः सखे ।  
 मुनयः सर्ववेत्तारो योगचक्षुर्निरीक्षकाः ॥५४॥  
 दुर्वासा भगवानत्रिविशिष्ठः पुलहस्तथा ।  
 पुलस्त्यो नारदश्चैव याज्ञवल्वयोऽथ गौतमः ॥५५॥